भारत-भैषज्य-रत्नाकरः

तस्याऽयं

द्वितीयो भागः

गुर्जरप्रान्तान्तर्गत 'ऊंझा' जनपदनिवासिना

ऊंझा आयुर्वैदिक फार्मसी नामक आयुर्वेदीयौषधालयाध्यक्षेण

श्री नगीनदास छगनलाल शाह रसवैद्येन

संगृहीतः

卐

मनुष्यका आहारादि पुस्तकप्रणेता, श्री काशीनागरी–प्रचारिणीसभा

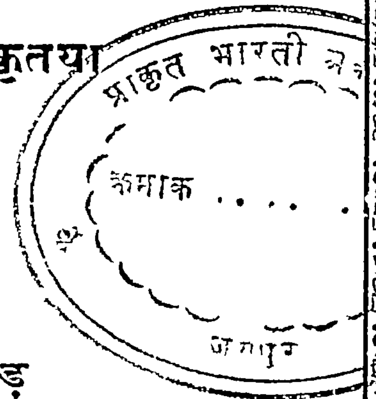
प्रभृतितो लब्धपदकेन,

'आरोग्य–दर्पण'–सम्पादकेन, बिजनौरमण्डलान्तर्गत हल्दौरवास्तव्येन

स्व. श्री वैद्य गोपीनाथ भिषग्रत्नेन कृतया

भावप्रकाशिकाख्यव्याख्यया

समलंकृतः


प्राकृत भारती
क्रमांक . . . .

卐

प्रकाशकः **ऊंझा फार्मसी लिमिटेड**

ऊंझा, उत्तर गुजरात

वीरसम्वत् २४७३	मूल्य	वैक्रमाब्द २००३
ईस्वीसन् १९४७	९)	

प्रकाशक
ऊंझा फार्मेसी लिमिटेड
ऊंझा [उ० गुजरात]

सर्वाधिकार प्रकाशकके लिए सुरक्षित हैं।

भारत-भैषज्य-रत्नाकर,			प्रथम भाग	(पक्की जिल्द)	मू०	१०)
,,	,,	,,	तृतीय भाग	(,,)		१०)
,,	,,	,,	चौथा भाग	(,,)		१०)
,,	,,	,,	पांचवा भाग	(,,)		९)

पांचों भाग साथमें खरीदने पर ४५) और "वैद्यक-शब्दनिधि" भेट। मूल्य नेट है।

: मुद्रणस्थान :
शारदा मुद्रणालय, पानकोर नाका,
अहमदाबाद
मुद्रक
गोविन्दलाल जगशीभाई

H. H. The Maharaja Saheb Sayaji Rao Gaekwar



श्रीमंत सरकार सयाजीराव गायकवाड

सेना खासखेल समशेर बहादुर

समर्पण पत्रिका

सेवामें

विश्व विश्रुत, अखण्ड प्रौढ प्रतापी

श्रीमंत सरकार सयाजीराव गायकवाड

सेना खास खेल समशेर बहादुर

G C. S. I., G. C. I. E, LLD.,

फरजन्दे-खास, दौलते-इंगलिशिया,

बडोदा राज्य, **बडौदा.**

महामान्य !

संसार के बुद्धिशाली व्यक्तियों में आपका स्थान है, आप भारत के अग्रगण्य राज्य कर्ता हैं, श्री और सरस्वती दोनों आपके आधीन हैं। आप विद्या और विद्वानों को आश्रय दान देकर वर्तमान भोजकी उपाधि के पात्र हुवे हैं, आपने अपनी प्रजाकी आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था सुधारनेके लिये भगीरथ प्रयत्न किया है। आपने देशकी अवनतिके सत्य कारणों को खोजा है और उनके दूरीकरणका यथोचित यत्न किया है। प्रजाकी शारीरिक स्थिति सुधारने के लिए आयुर्वेदको आश्रय प्रदानकर, आपने प्राचीन चिकित्सा-पद्धति को सजीव किया है। आपके इन गुणों से प्रेरित होकर आयुर्वेदका यह अभिनव ग्रन्थ श्रीमानको भेंट करते हुवे आपके इस प्रजाजनको अत्यानंद होता है।

हम है

आपका कृपाभिलाषी,

मेसर्स नगीनदास वैद्य एन्ड सन्स

ऊंझा फार्मसी, ऊंझा.

ऊंझा. (गुजरात)

बडोदा राज्य

ता. ४-१-२९

ऊंझा फार्मसी के संस्थापक



स्व. रसवैद्य नगीनदास छगनलाल शाह

विज्ञप्ति

हमें सहर्ष स्वीकार करना पड़ता है कि विद्वान वर्ग विनयशील और उत्साहवर्द्धक है। भारत-भैषज्य-रत्नाकर के पांचों भागोके यथाक्रम प्रकाशनके साथ साथ विद्वद्‌वृन्दने उत्साह पूर्वक इसका स्वागत किया है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि शीघ्र ही इस पुस्तककी द्वितीयावृत्ति निकालनी पड़ी है। हमारे जैसे अल्पमति व्यक्तियोंकी कृति विद्वानोंमें इतना आदर पा सकेगी इसका हमें ध्यान भी न था। इस पुस्तकमें त्रुटियोकी भरमार होगी किन्तु विद्वानोंने उन्हें दृष्टिच्युत करके अपनी उदार बुद्धिका परिचय दिया है। इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

धन्यवादके पात्र तो वे विद्वान् शिरोमणि हैं कि जिन्होने हमें यथासमय आवश्यकीय परामर्श देकर हमारी त्रुटियोका सुधार किया है। इसमें प्रायः सब ही आयुर्वेदके विद्वानोका हाथ है और हम उन सबके ही कृतज्ञता पूर्वक आभारी है। हमारी अल्पमति जहां तक पहुंच सकी हमने इस द्वितीय संस्करणमें पर्याप्त सशोधन किये है और विद्वन्मण्डलसे प्रार्थना करते है कि वे कृपया यथावकाश हमें परामर्श प्रदान करते रहें जिससे आयुर्वेद-औषध-निर्माण पद्धति और औषध संग्रह सम्पूर्ण भारतवर्षमें सम हो सकें। औषध निर्माताओंसे हमारी विशेष प्रार्थना है कि वे भी यथासम्भव ऐसी प्रणालिकाओं और निर्माणविधियोंका आयुर्वेद जगतको परिचय कराते रहें कि जिनके विधि विधान विशिष्ट प्रकारके है।

इस संस्करणमें औषध निर्माण पद्धति (शास्त्रोक्त), औषध प्रयोग प्रकार, मात्रा, काल आदिका भली प्रकार विवरण है।

सखेद लिखना पड़ता है कि 'भारत-भैषज्य-रत्नाकर' के प्रसिद्ध टीकाकार पं. गोपीनाथजी गुप्त भिषग्रत्न का अकालहीमें स्वर्गवास हो गया इसी कारणसे इस द्वितीय आवृत्ति का प्रूफ संशोधन आदि कविराज हरस्वरूप शर्मा आयुर्वेदाचार्यने किया है, इसी लिए हम उनका आभार मानते है।

आशा है कि विद्वान् वर्ग आयुर्वेदकी इस प्रचार प्रवृत्तिमें हमारा सहयोग देते हुए हमें प्रोत्साहित करेंगे और धन्यवादके पात्र बनेंगे।

ऊंझा
ता. २५-४-४७

विनीत
नगीनदास छगनलाल शाह

विषयानुक्रमणिका



:: ५३ वर्षों से सुप्रसिद्ध ::

औषधियां बनाने का विशाल कारखाना

ऊंझा फार्मसी लिमिटेड

ओथोराइज्ड केपीटल: रु. २००००००) (बीस लाख)

इस्युड एन्ड पेइड केपीटल रु. १२५००००) (साडेबारह लाख)

मेनेर्जींग एजन्ट्स : **नगीनदास वैद्य एन्ड सन्स**

यह फार्मसीमें हर तरहकी आयुर्वेदिक दवाइयां जैसे कि रस, भस्म, गुटिका, गुग्गुल, चूर्ण, आसव, अवलेह, लेप, सत्त्व आदि विपुल प्रमाणमें शास्त्रोक्त पद्धतिसे उत्तम वनस्पतिमेंसे तैयार की जाती है। उसकी उत्तमताके लिए अनेक वैद्य सम्मेलनो और प्रदर्शनोंमें से सोने-रूपेके चांद और सर्टीफिकेट मिले हैं।

यह फार्मसी की दवाइया हर वैद्य-डॉक्टर, दवाखाना, म्युनिसिपल और लोकल बॉर्डों के दवाखानेमें इस्तेमाल हो रही है यही उनकी उत्तमताका सावूत है।

आयुर्वेदिक दवाइयांके सिवाय टींक्चर, ऐक्स्ट्रेक्ट आदि एलोपथिक दवाइयां भी वनानेकी शुरु की है।

इसके उपरांत आयुर्वेदीय पुस्तके जैसे कि वैद्यकशब्द निधि, अनुभव मंजूषा, चारु चिकित्सा, मनुष्यका आहार, इन्डियन फार्माकोपिया, चिकित्सा दर्पण आदि प्रकाशित किये हैं।

किसी भी दवाइयांकी जरूरत पडे तो हमें एक वख्त याद करें।

सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये।

ऊंझा फार्मसी लिमिटेड, ऊंझा. [उ गुजरात]

(सप्रेम भेंट)
डा०रवि प्रकाश उ. त्रिजोहो[illegible]
अधि.-स्नातक(आयुर्वेद)-आयुर्वेद रत्न
कन्सलटेन्ट आयुर्वेद फिजीशियन
राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा परिषद
बिहार (पटना) द्वारा अधिकृत चिकित्सक
चिकित्सा अधिकार पत्र सं. 70721



સ્વ. પં. ગોપીનાથ ગુપ્ત, ભિષગ્રત્ન.



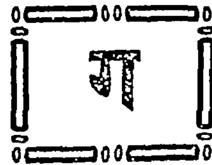
भारत-भैषज्य-रत्नाकरः

द्वितीयो भागः

श्री धन्वन्तरये नमः

अथ मङ्गलाचरणम्

धृतं विश्वं विश्वं नियमततिभिर्येन सुधिया;
समग्रां सामग्रीं सकलसुखदात्रीं विहितवान् ।
रुजाक्रम्यन्ते वै खलु स्खलितनियमा यस्य हि जनाः;
अपायात्पायाद्वः सकलभुविभर्ता स हि पिता ॥
त्वत्कारुण्यकणैर्जनोपकरणैः कारुण्यरत्नाकरः;
रेखामात्रमपि स्खलेम न वयं, त्वीश त्वदीयात्पथः ।
येन स्याम सदैव नीरुजशरीरा ऋद्धिमन्तो वयम्;
दिव्यं कुर्म तथा सदा सुखमयं नो मानुषं जीवनम् ॥



अथ गकारादि कषायप्रकरणम्

(**द्रष्टव्य**--कषाय प्रयोगोंमें जिन औषधियोंकी मात्रा न लिखी हो वह सब, समान भाग मिलाकर, २ तोले लीजिए और आध सेर पानीमें पकाकर आध पाव शेष रहने पर छान लीजिए। विशेष व्याख्याके लिए भा. भै. र. प्रथम भाग पृ. ५ अवलोकन कीजिए।)

(११०८) गङ्गाधरक्वाथः (भा.प्र.,ग.नि.। अति०।)
केश्चटदाडिमजम्बूशृङ्गाटकपत्रवर्हिष्टम् ।
जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात् ॥

चौलाई, अनार, जामुन और सिंघाड़ेके पत्ते तथा नेत्रवाला, नागरमोथा और सोंठ; इनका क्वाथ सेवन करनेसे गङ्गाके समान वेगवान् अतिसार भी रुक जाता है।

(११०९) गङ्गावतीमूलयोगः (वृं.मा.।अश्म०)
गङ्गावत्या मूलं क्वथितं घृततैलसैन्धवैर्मिश्रम् ।
मूत्रमतिरुद्धं वेगात्प्रपीतमात्रं प्रवर्तयति ॥

गङ्गावतीकी जडके क्वाथमें घृत, तैल और सेंधा नमक मिलाकर पीनेसे रुद्ध (रुका हुवा) मूत्र तुरन्त आ जाता है।

(१११०) गजपिप्पल्यादि क्वाथः (रा.मा.।बा.रो.)
मातङ्गपिप्पलीवारिलोध्रधातकीश्रीफलैः ।
सर्वातिसारहृत्क्वाथः शिशोस्तच्चूर्णमेव वा ॥

गजपीपल, नेत्रवाला, लोध, धायके फूल और बेलगिरीका क्वाथ अथवा चूर्ण, बालकोंके समस्त प्रकारके अतिसारोंका नाश करता है।

(प्रयोग विधिः—आठ, दस वर्ष तकके बालकोंको आंवसे एक माशे तक चूर्ण प्रातः सायं शरबत हब्बुलास या शहदमें मिलाकर चटाना चाहिए।)

(११११) गण्डमालाहरकषायाः
(वृ. यो. त. । त. १०८; यो. त. । त. ५)
माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ।
गण्डमालां निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥

वरनेकी जडकी छालके क्वाथमें शहद डालकर अनेक बार (बहुत समय तक) सेवन करनेसे पुरानी गण्डमाला भी शीघ्र नष्ट होजाती है।

(१११२) पलमर्धपलं वापि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
काञ्चनारत्वचं पीत्वा गण्डमालां व्यपोहति ॥

कचनारकी १ पल (५ तो०) अथवा अर्द्धपल छालको चावलोंके पानीमें पीसकर सेवन करनेसे गण्डमालाका नाश होता है।

(१११३) अलम्बुपादलोद्भूतात्स्वरसाद्द्वेपले पिबेत् ।
अपच्यागण्डमालायाः कामलायाश्चनाशनः ॥

मुण्डीके पत्तोंके २ पल (१० तोले) स्वरसको (नित्य प्रति) पीनेसे अपची, गण्डमाला और कामलाका नाश होता है।

गन्धर्वतैलसिद्धहरीतकी (वं.से.। प्ली.चि०)
(५७८ संख्यक प्रयोग अवलोकन कीजिए)

गन्धर्वादि क्वाथः (वं. से. । वा. र.)
संख्या ५४६ "एरण्डादि" अवलोकन कीजिए)

(१११४) गम्भारिकादुग्धः (यो.र.।शी.पि.)
गम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः ।
क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खादितं पथ्यसेविना ॥

गम्भारीके पक्के और शुष्क फलोंको दुग्धमें पकाकर सेवन करने तथा पथ्यपूर्वक रहनेसे शीतपित्त रोग नष्ट होता है।

(१११५) गरुडीमूलयोगः—
(रा. मा. । अ. मा. अ. २८, ग. नि. । सर्प. चि.)
पुष्येनिपीतं गरुडीसमुत्थं मूलं नृणां पन्नगदंशभीतिम् ।
संवत्सरार्धं हरति प्रसह्य का वृश्चिकाद्यैर्गणनैवतेषां ॥

नस्याञ्जनालेपनपानयोगैर्भुजङ्गदष्टस्य विषं निहन्ति।
मूलं गरुड्याः परिघृष्यमाणं[1] न श्यामलत्वं प्रतिपद्यते चेत् ॥

गिलोयकी जड़को पुष्य नक्षत्रमें उखाड़ कर (पीसकर) पीनेसे ६ मास तक सर्पदंशका भय नहीं रहता फिर बिच्छू आदि तो हैं ही किस गणनामें।

इस गिलोय की जडको सूंघने से, लेप करने से अथवा पिलाने से सांप के काटे हुए का विष दूर हो जाता है और गिलोय की जड को घिसकर पिलाने से शरीर में कालापन नहीं रहता।

(१११६-१७) गर्भरक्षका योगाः

(यो. र. । यो. रो., यो. त. । त. ७५)

(१) मधुकं शाकबीजञ्च पयस्या सुरदारु च।
(२) अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी॥
(३) वृक्षादनी पयस्या[2] च लता चोत्पलसारिवा।
(४) अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च॥
(५) बृहतीद्वय काश्मर्य क्षीरिभृङ्गास्त्वचो घृतम्।
(६) पृश्निपर्णी बलाशिग्रुःश्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका॥
(७) शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता।
सप्तैतान्पयसायोगानर्धश्लोकसमापितान्॥
क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत्।
(८) कपित्थ बिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिजैः॥
मूलैःशृतं प्रयुञ्जीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे।
(९) नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाःपिबेत्।
(१०)क्षीरंशुण्ठीपयस्याभ्यांसिद्धंस्याद्दशमेहितम्।
सक्षीरा वा हिता शुण्ठीमधुकं सुरदारु च॥

(११)क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवाम्।
पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये॥
(१२)सिताविदारिकाकोलीक्षीरिकाश्चमृणालिकाः।
गर्भिणी द्वादशेमासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम्॥
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रारुक्चोपशाम्यति॥

(१) मुलैठी, सागोनके बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु।

(२) पत्थरचटा, काले तिल, मजीठ और शतावर।

(३) बन्दा, क्षीरकाकोली, फूलप्रियङ्गु और सारिवा।

(४) अनन्तमूल, सारिवा, रास्ना (रायसनाय), पद्मा (मजीठ या भारङ्गी) और मुलैठी।

(५) कटेली, कटेला, खम्भारीकी छाल (वा फल), क्षीरकाकोली, भंगरा, दारचीनी और घी।

(६) पृष्ठपर्णी (कबरा), खरैटी, सहंजनेकी छाल, गोखरु और खम्भारी (अथवा गिलोय)।

(७) सिंघाड़ा, कमलनाल, मुनक्का, कसेरु, मुलैठी और मिश्री।

आधे आधे श्लोक में समाप्त कियेहुए इन सात योगों को, क्रमशः प्रथम सात मासो में गर्भस्राव या गर्भपात के भय को निवारण करने के लिए दूधमें उबाल कर प्रयोग करे।

(८) कैथकी छाल, बेलगिरी, कटेला, पटोलपत्र, ईखकी जड और कटेलीकी जड, इन सबको दूध से सिद्ध करके आठवें मासमें पीवे।

(९) मुलैठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और सारिवा। नवमें मासमें इस का प्रयोग करे।

(१०) सोंठ और क्षीरकाकोली। अथवा सोंठ, मुलैठी और देवदारु। १० वे मासमें यह हितकर है।

१ परिपीयमानमिति पाठभेदः। २ पयसेति पाठान्तरम्। ३ वयस्येति पाठान्तरम्। ४ कृष्णेति पाठान्तरम्। ५ शृङ्गेति च पाठः।

(११) क्षीरकाकोली नीलोफर, मजीठकी जड़, और हैड़। इस योगको ११वे मासमें गर्भशूलकी शान्तिके लिए पीवें ।

(१२) मिश्री, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली और कमलनाल । इस शूलघ्न योगका प्रयोग बारवें मासमें करना चाहिए ।

इन प्रयोगोका इस प्रकार सेवन करनेसे गर्भ पुष्ट होता है और भयङ्कर वेदनाएं शान्त होती है।

(प्र० वि०—१—घृत अथवा मिश्रीको पीनेके समय मिलाना चाहिए ।

२—प्रयोगकी सब ओषधियां समान भाग मिलाकर २ तोले लीजिए और उसमें १६ तोले दूध तथा ६४ तो० पानी मिलाकर दुग्ध शेष रहने तक पकाइये ।)

(११२८-३५) गर्भरक्षका योगाः

(यो. र. । योनि०)

(१)

चलनं प्रथमे मासि गर्भस्य यदि जायते ।
औषधञ्च तदा देयं विचक्षणभिषग्वरैः ॥
मृद्वीका ज्येष्ठिका चैव चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
गवाश्च पयसा पेयं स्थिरता जायते ध्रुवम् ॥
नीलोत्पलं सवालञ्च शृङ्गाटञ्च कसेरुकम् ।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणाऽलोड्य तत्पिबेत् ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ॥

यदि प्रथम मासमें गर्भस्राव होता हो तो चतुर चिकित्सकको चाहिए कि गर्भिणीको—मुनक्का, मुलैठी, सफेद चन्दन और लाल चन्दनको गोदुग्धमें पकाकर पिलाए। इससे अवश्य ही गर्भ स्थिर हो जाता है। अथवा नीलोफर, नेत्रबाला, सिंघाडा और कसेरुको शीतल जलमें पीसकर दूधमें मिलाकर पीनेसे भी गर्भस्राव और गर्भिणीका शूल रुक जाता है ।

(२)

द्वितीये मासि गर्भस्य चलनञ्च भवेद्यदि ।
पयसा च तदा पेयं मृणालं नागकेशरम् ॥
तगरं कमलं बिल्वं कर्पूरेण समन्वितम् ।
अजाक्षीरेण तत्पिष्ट्वा क्षीरेणाऽऽलोड्य पूर्ववत् ॥

यदि दूसरे मासमें गर्भस्राव होता हो तो कमलनाल और नागकेसरको दूधमे पीसकर अथवा तगर, कमल, बेलगिरी और कपूरको बकरीके दूधमें पीसकर और फिर (गो) दुग्धमे मिलाकर पीना चाहिए ।

(३)

तृतीये मासि चलनं जायते गर्भजं यदि ।
पयसाऽऽलोडितं पेयं शर्करानागकेशरम् ॥
पद्मकं चन्दनं चैव बालकं पद्मनालकम् ।
पिष्ट्वा शीतेन तोयेन क्षीरेणाऽऽलोड्यतत्पिबेत् ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ॥

यदि तीसरे मासमें गर्भस्राव होता हो तो मिश्री और नागकेशरको दूधमें पीसकर पिलाना चाहिए अथवा—पद्माख, लाल चन्दन, नेत्रबाला और पद्मनाल को ठण्डे पानीमें पीसकर दूधमें मिलाकर पीनेसे भी गर्भस्राव नही होता और गर्भिणीका शूल शान्त हो जाता है ।

(४)

यदि गर्भस्य चलनं चतुर्थे मासि जायते ।
तृष्णाशूलविदाहश्च ज्वरेण च निपीडनम् ॥
क्षीरञ्च कदलीमूलमुत्पलं बालकं तथा ।
आलोड्य समभागेन पिबेद्रोगोपशान्तये ॥

यदि चतुर्थ मासमें गर्भस्राव होता हो या गर्भिणीको तृष्णा, शूल, दाह और ज्वर हो जाय तो केलेकी जड़, नीलोफर और नेत्रवाला समान भाग लेकर दूधमें पीसकर पिलाना चाहिए।

(५)

पञ्चमे मासि गर्भस्य चलनं कुत्रचिद्भवेत्।
दध्ना च मधुना पेयं दाडिमीपत्रचन्दनम्॥
नीलोत्पलं मृणालञ्च कौन्ती क्षीरीं तथैव च।
केशरं पद्मकं चैव तोयेनाऽऽलोडय्च तत्पिबेत्॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति॥

यदि पांचवे मासमें गर्भपातका भय हो तो अनारके पत्ते और लाल चन्दनको पीस कर दही और शहदमें मिलाकर सेवन करना चाहिए। अथवा नीलोफर, कमलनाल, रेणुकाबीज, विदारीकन्द, नागकेशर और पद्माख को जलमें पीसकर पिलानेसे भी गर्भपात रुक जाता है और गर्भिणीका शूल शान्त होता है।

(६)

षष्ठे मासि तु गर्भस्य चलता जायते यदा।
गैरिका गोमयं भस्म कृष्णा मृत्स्ना तथैव च॥
एतेषां साधितं प्राज्ञभिषजा चामृतं तदा।
पेयं[1] शीतं परं सार्कं सितया चन्दनेन च॥

यदि छठे मासमें गर्भपातकी आशङ्का हो तो सोनागेरू, गोमय भस्म (गायके गोबरकी राख) और काली मिट्टीसे सिद्ध-जलमें मिश्री और चन्दन का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

१ देयमिति साधुः।

(७)

सप्तमे मासि गर्भस्य चलनं जायते यदा।
उशीरं गोक्षुरघनः समङ्गा नागकेशरम्॥
सपद्मकं समधुना पाययेच्च विचक्षणः॥

यदि सातवें मासमें गर्भपातका भय हो तो खस, गोखरू, नागरमोथा, मजीठ, नागकेशर और पद्माखके चूर्ण (अथवा कल्क) को शहदमे मिलाकर पिलाना चाहिए।

(८)

अष्टमे मासि चलनं गर्भस्य यदि जायते।
लोध्रमागधिकाचूर्णं मधुना पयसा पिबेत्॥
नवमे सुप्रसूतिः स्यादेवं गर्भस्य पोषणम्॥

आठवें मासमे गर्भपात होता हो तो लोध और पीपलके चूर्णको शहद और दूधमे मिलाकर पिलाना चाहिए। इस प्रकार गर्भपोषण होकर नवम मासमें भली भांति प्रसव हो जाता है।

(११३९-५३) गर्भिणीशूलहरोपायाः

(भै. र. । स्त्री. रो.)

(१)

प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
चन्दनं शतपुष्पा च शर्करा मदयन्तिका॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा।
पाययेत् पयसालोडय्च गर्भिणीं मात्रया भिषक्॥
तथातिलान् पद्मकञ्च शालूकं शालितण्डुलान्।
क्षीरेण पिष्ट्वा क्षीरेण सिताक्षौद्रान्वितेन च।
आलोडय्च पाययेन्नारीं ततः सम्पद्यते शुभम्।
तस्मिन्सुजीर्णे दातव्यं भोजनं क्षीरसंयुतम्॥

यदि गर्भिणीको प्रथम मासमे पीड़ा (शूल) हो तो—लाल चन्दन, सौंफ, खांड (मिश्री), और मोगरा (पुष्प विशेष) समान भाग लेकर तण्डुल जलसे पीसकर और दूधमें मिलाकर यथोचित् मात्रानुसार पिलाना चाहिए। अथवा—तिल, पद्माख, कमलनाल और शालि तण्डुल (वासमती या साठीके चावल) समान भाग लेकर दूधसे पीसकर और दूधमें ही मिलाकर मिश्री तथा शहद डालकर पीनेसे भी लाभ होता है।

औषधके भली भांति पच जाने पर क्षीरयुक्त आहार देना चाहिए।

नोट—'तण्डुल जलविधि,' प्रथम भागके परिशिष्टमें देखिए।

(२)

द्वितीये मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
तदोत्पलस्य कल्कन्तु शृङ्गाटककसेरुकम् ॥
तण्डुलोदकपिष्टन्तु पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
निवार्य गर्भशूलञ्च स्थिरं गर्भं करोति च ॥

यदि गर्भके दूसरे मासमे गर्भिणीको पीड़ा होने लगे तो नीलोफर, सिंघाड़ा और कसेरुको तण्डुल-जलमें पीसकर तण्डुल-जल (चावलोंके पानी-धोवन-) के साथ ही पिलानेसे गर्भशूल नष्ट होकर गर्भ स्थिर हो जाता है।

(३)

तृतीये क्षीरकाकोली काकोल्यामलकीफलम्।
पिष्टमुष्णोदकेनैतत्पाययेत् गर्भिणीं भिषक् ॥
शाल्यन्नं पयसा जीर्णे भोजयेदनु गर्भिणीम् ॥
तथा पद्मोत्पलं कुष्ठं शालूकञ्च समांशिकम् ॥
सितोदकेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत्।
तेन शूलं निवर्त्तेत न गर्भो व्यथते ध्रुवम् ॥

गर्भिणीको तीसरे मासमे गर्भशूल होनेपर, क्षीरकाकोली, काकोली और आमलेको उष्ण जलमें पीसकर पिलाना और औषध पचनेपर दुग्ध मिश्रित भात खिलाना चाहिए।

अथवा—कमल, नीलोफर, कूठ, कमलनाल और मिश्रीको जलमें पीसकर दूधमे मिलाकर पिलानेसे भी शूल शान्त होता है, और गर्भ व्यथित नहीं होता।

(४)

चतुर्थे तु विधानज्ञ पाययेदिदमौषधम्।
पिष्ट्वोत्पलञ्च शालूकं कण्टकारी त्रिकण्टकम् ॥
यथाग्निमात्रया काले गर्भिणीं पयसा सह।
तथा गोक्षुरकसिंहीं बालकं नीलमुत्पलम् ॥
पिष्ट्वा क्षीरेण पातव्यं गर्भशूलनिवारणम् ॥

गर्भिणीको चतुर्थ मासमें पीड़ा होने लगे तो नीलोफर, कमलनाल, कटेली और गोखरुको दूधमें पीसकर अग्निबलानुसार यथासमय पिलाना चाहिए।

अथवा—गोखरु, कटेली, नेत्रवाला और नीलोफरको दूधमें पीसकर पिलाना चाहिए।

(५)

पञ्चमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
तत्र नीलोत्पलं वीरां पिष्ट्वा क्षीरेण पाचनम् ॥
घृतक्षौद्रान्वितं पीत्वा गर्भस्य च रुजां हरेत्।
तथा नीलोत्पलं नारीं काकोलीं समभागिकम् ॥
शीततोयेन पिष्ट्वा च क्षीरेणालोड्य पाययेत्।
अनेन विधिना गर्भः स्थिरः स्याद्रुक् प्रशाम्यति ॥

गर्भिणीको पांचवें महीनेमें शूल उत्पन्न हो तो नीलोफर और खसको पीसकर दूधमें पकाकर और उसमें घृत तथा शहद मिलाकर पिलाना चाहिए।

अथवा—नीलोफर और काकोलीको समान भाग लेकर शीतल जलसे पीसकर दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिए।

इन प्रयोगोसे गर्भिणीका शूल शान्त होता है और गर्भ स्थिर रहता है।

(प्र. वि.—शहद इतना डालना चाहिए कि दूध मीठा हो जाय। द्वितीय प्रयोगमें दूध को मिश्रीसे मीठा कर लेना चाहिए।

(६)

षष्ठे मासि यदा गर्भे वेदना जायते तथा।
मातुलुङ्गस्य बीजानि प्रियङ्गुचन्दनोत्पलम् ॥
क्षीरेणालोड्य पातव्यं गर्भशूलनिवारणम्।
तथा प्रियालबीजानि मृद्वीकालाजसक्तवः ॥
एतत्सुशीतलं काले पीत्वा च सुखमश्नुते ॥

यदि षष्ठ मासमे गर्भिणीको पीडा उत्पन्न हो तो निम्नलिखित दो प्रयोगोंमेंसे कोई एक सेवन कराना चाहिए।

(१) मातुलुङ्ग (बिजौरे) नींबूके बीज, फूल प्रियङ्गु, लाल चन्दन और नीलोफरको पीसकर दूधमें मिलाकर पिलावें।

(२) पियाल बीज (चीरौजी), मुनक्का, और खीलोंके सत्तूको शीतल जलमें मिलाकर यथासमय पिलाना चाहिए।

(७)

सप्तमे शतपुत्रीञ्च मृणालसहितां पिबेत्।
पिष्ट्वा क्षीरेण शूलार्तागर्भिणी या सुखार्थिनी ॥
कपित्थक्रमुकान्मूलं सलाजं शर्करायुतम्।
शीततोयेन संपिष्टं क्षीरेणालोड्य पाययेत् ॥
पीत्वा हन्त्य(?)बला शीघ्रं शूलं गर्भसमुद्भवम् ॥

सप्तम मासमें गर्भिणीको शूल—शान्तिके लिए शतावर और कमलनालको दूधमें पीसकर, अथवा—

कैथ और सुपारीकी ज़ड़ (जडकी छाल) और खीलोको शीतल जलसे पीस, दूधमें मिलाकर और खांडसे मीठा करके पिलाना चाहिए।

इससे गर्भविकारज शूल शीघ्रही शान्त हो जाता है।

(८)

अष्टमे तु यदा मासि गर्भे भवति वेदना।
तदा पिष्ट्वा तु धन्याकं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥
शूलं निवर्तते तेन गर्भः सन्धार्यते स्त्रिया।
एवंपलाशस्यदलंसुपिष्टंसंपीयतोयेन सुशीतलेन॥
अत्यन्त घोराष्टममासगर्भव्यथातुरा यान्ति सुखं तरुण्यः ॥

यदि गर्भिणीको अष्टम मासमें पीड़ा उत्पन्न हो तो चावलोंके पानीमें धनियां पीस कर पिलाना चाहिए। अथवा—शीतल जलके साथ ढाक (पलाश) के पत्ते पीस कर पीनेसे भी अष्टम मासमें होने वाली अत्यन्त भयङ्कर गर्भव्यथा शान्त हो जाती है।

(९)

गर्भिण्या नवमे मासि यदा भवति वेदना।
एरण्डमूलं काकोलीं पिष्ट्वा शीतोदकेन च ॥
पीत्वा शूलाद्विमुच्यते तदा नारी न संशयः।
तथा पलाशबीजञ्च सकाकोलीकुरण्टकम् ॥
भक्तेन वारिणा पिष्ट्वा गर्भशूलं व्यपोहति ॥

नवम मासमें गर्भिणीको वेदना होने पर अरण्डमूल, और काकोलीको शीतल जलसे पीसकर (पानीके साथ) पिलानेसे अवश्य लाभ होता है।

अथवा—ढाकके बीज (ढक पन्ने), काकोली और कटसरैया को चावलोके पानीके साथ पीसकर पीनेसे भी गर्भशूल शान्त होता है।

(१०)

अथवा दशमे मासि वेदना जायते यदा।
तदा नीलोत्पलं यष्टीमधुकं मुद्गसंयुतम् ॥
ससितं चाम्भसा पिष्ट्वा क्षीरेणालोड्यपाययेत्।
दोषश्च नाशयेदेष शूलं गर्भसमुद्भवम् ॥

दशवें मासमें गर्भशूल शान्तिके लिए नीलोफर, मुलैठी, मूंग और मिश्रीको पानीसे पीस कर दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिए।

(११)

तथा चैकादशे मासि गर्भे भवति वेदना।
मधुकं पद्मकञ्चैव मृणालं नीलमुत्पलम् ॥
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत् ॥

एकादश (११ वें) मासमें गर्भशूल शान्तिके लिए मुलैठी, पद्माक, कमलनाल और नीलोफरको शीतल जलसे पीसकर दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिए

(प्र. वि.–दूधको मीठा करनेके लिए मिश्री मिलाई जा सकती है।

(११५४) गवाक्षीकल्कः (वं.से.,ग.नि.।उ.रो.)

गवाक्षीशङ्खिनीदन्तीनीलिनीकल्कसंयुतम्[1]।
सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रपानमाचरेत् ॥

इन्द्रायन, शङ्खपुष्पी, दन्ती और नीलिनीके कल्कको गोमूत्रमें मिलाकर पीनेसे सर्व प्रकारके उदरविकार नष्ट होते हैं।

(११५५) गाङ्गेरुकीस्वरसः

(शा ध.। खं. २ अ. १)

खड्गादिछिन्नगात्रस्य तत्कालपूरितो व्रणः।
गाङ्गेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः ॥

१ नीलितिल्वकेति पाठभेदः।

तलवार इत्यादि शस्त्रोंसे उत्पन्न घावमें तुरन्त ही गंगेरनकी जड़का स्वरस भर देनेसे वेदना शान्त हो जाती है।

(११५६) गायत्र्यादि क्वाथः (भा.प्र.। वि.चि.)

गायत्री त्रिफला निम्बः कटुका मधुकं समम्।
त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंशाः पृथक् पृथक् ॥
मसूरान्निरतुषान्दद्यादेष क्वाथो व्रणाञ्जयेत्।
विद्रधिगुल्मवीसर्पदाहमोहज्वरापहः ॥
तृण्मूर्च्छाच्छर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामला ॥

खैरसार, त्रिफला (हर्र,बहेड़ा,आमला),नीमकी छाल, कुटकी और मुलहटी प्रत्येक एकएक भाग तथा निसोथ और पटोलकी जड़ एवं तुष(छिलके) रहित मसूर चार चार भाग लेकर क्वाथ बनाएं। यह क्वाथ व्रण, विद्रधी, गुल्म, विसर्प, दाह, मोह, ज्वर, पिपासा, मूर्च्छा, वमन, हृद्रोग, रक्तपित्त, कुष्ठ और कामलाका नाश करता है।

(११५७) गायत्र्यादि क्वाथः (वृ नि र.।ज्व.चि.)

गायत्रीत्रिफलानिम्बपटोलीवासकामृता।
क्वाथोमधुघृताभ्याञ्च रक्तदोषेति शस्यते ॥

खैरसार, त्रिफला (हर्र,बहेड़ा,आमला),नीमकी छाल, पटोलपत्र, वांसा (अडूसा) और गिलोय के क्वाथमें शहद और घीका प्रक्षेप देकर पीना रक्त-विकारोंके लिए अत्यन्त हितकर है। (प्र.वि.–शहद और घी एक एक तोला मिलाने चाहिएँ, और शहद उस समय मिलाना चाहिए कि जब कषाय बिलकुल ठण्डा हो जाय।)

(११५८) गिरिकर्णिकामूलयोगः (ग.नि.।ग्रन्थ्य)

प्रातः पिबेच्छिफां पिष्ट्वागण्डमालां व्यपोहति।
गिरिकर्ण्याः सितायास्तु घृतेन परिमिश्रिताम् ॥

गिरिकर्णिका (कोयल) की जड़को पीस कर उसमें मिश्री और घृत मिलाकर प्रातःकाल सेवन करनेसे गण्डमालाका नाश होता है।

(प्र. वि.-कोयल की जड ६ मा० मिश्री ६ मा० और घी १ तोला लेना चाहिए।)

(११५९) गिरिमल्लिकाद्यं क्षीरम् (वं.से.।अति.)

निःक्वाथ्यमूलममलं गिरिमल्लिकायाः
सम्यक्फलं द्वितयम्बु चतुश्शरावे।
तत्पादशेषसलिलं खलु शोषणीयं,
क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः॥
प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले।
रक्तातिसारी तत्पीत्वा नैरुज्यमिह विन्दति॥

कुड़ेकी जडकी छाल और द्वितीय त्रिफला (खम्भारी, फालसा और मुनक्का) १-१ पल (सब मिलाकर ४ पल) लेकर कूटकर ३२ पल पानीमें पकाएं और चौथा भाग जल शेष रहनेपर छानलें, तत्पश्चात् उसमें २ पल निरोग बकरीका दूध डाल कर पुनः पकाएं, जब समस्त क्वाथ जल जाए तो उतार कर ठण्डा करके उसमें ८ माशे शहद मिला कर पिएं। इससे रक्तातिसार नष्ट होता है।

गिरिमालपञ्चककषायः (ग.नि.। ज्व.चि.)

(आरग्वधादि कषाय देखिए।)

(११६०) गुडदुग्धयोगः (यो र.। मू कृ चि.)

गुडेन मिश्रितं दुग्धं कदुष्णं कामतः पिबेत्।
मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत्॥

किञ्चित् उष्ण दुग्धको गुड़से मीठा करके यथेच्छ मात्रामें पीनेसे सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र, शर्करा और वातरोगों (उष्ण वात) का नाश होता है।

(११६१) गुडार्द्रकयोगः (ग. नि.। अर्श०)

गुडार्द्रकं भक्षयित्वा मदिरातर्पणं पिबेत्।
सस्नेहैः सक्तुभिर्युक्तं बद्धविड्गुदजातुरः॥

अद्रक और गुडको मिलाकर मदिरा और सत्तु से निर्मित घृतयुक्त तर्पणके साथ सेवन करनेसे बवासीर रोगमें होनेवाला कब्ज नष्ट होता है।

(११६२-६४) गुडार्द्रकाद्यास्त्रयो योगाः

(ग. नि.। शोफ०)

गुडार्द्रकं वाऽथ सदारुविश्वं
सनागरं वाऽथ किराततिक्तम्।
योगत्रयं श्रेष्ठतमं प्रदिष्ट-
मित्यौषधं शोफहरं नराणाम्॥

सूजनको नष्ट करनेके लिए (१) गुड़ और अद्रक (२) देवदारु और सोंठ तथा (३) सोंठ और चिरायता, यह तीन प्रयोग अत्युत्तम है।

(११६५) गुडूचिकादि क्वाथः

(हा. सं.। स्था. ३ अ. २)

गुडूचिका निम्बदलानि शुण्ठी
मुस्तञ्च कुस्तुम्बरु चन्दनानि।
क्वाथं विदध्यात्कफपित्तवात-
ज्वरं निहन्याच्च गुडूचिकाद्य॥
एष सर्वज्वरान्हन्ति हृल्लासाद्यानरोचकान्।
प्रतिश्यायपिपासाघ्नः शोषदाहनिवारणः॥

गिलोय, नीमके पत्ते, सोंठ, नागरमोथा, कुस्तुम्बरु (नैपाली धनिया) और लाल चन्दनका क्वाथ सेवन करनेसे वातज, पितज और कफज इत्यादि सर्व प्रकारके ज्वर, हृल्लास (उबकाइ, जी मचलाना), अरुचि, जुकाम, पिपासा, शोष और दाह आदि रोग नष्ट होते है।

(११६६) गुडूचीक्वाथः (वै. जी.। वि. ३)
विलासिनी विलासेन विलासिहृदयं यथा।
तथा गुडूची विश्वेन हरेदामसमीरणम्॥

जिस प्रकार विलासिनी, विलाससे विलासी पुरुषका हृदय हर लेती है उसी प्रकार शुण्ठि-चूर्णयुक्त गुडूची क्वाथ आमवातको हर लेता है।

(११६७) गुडूचीस्वरसः [वं. से.। ज्व.]
पिप्पलीमधुसम्मिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत्।
जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम्॥

गिलोयके स्वरसमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पीनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहारोग (तिल्ली) खांसी और अरुचिका नाश होता है।

(प्र. वि.-पीपल का चूर्ण १ माशा और शहद क्वाथ का चतुर्थांश मिलाना चाहिए।)

(११६८) गुडूचीस्वरसः (वं. सेन। प्र. अ.)
गुडूच्याः स्वरसः पेयो मधुना सह मेहजित्।

(दो तोले) गिलोयके स्वरसमें (६ माशा) शहद डालकर सेवन करनेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है।

(११६९) गुडूची स्वरसादि प्रयोगः
(वृं. मा.। वा. र.)
गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्वाथमेव वा।
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात्॥

गिलोयका स्वरस, कल्क अथवा चूर्ण, वा क्वाथ दीर्घ काल तक सेवन करनेसे वातरक्तका नाश होता है।

(११७०) गुडूची हिमः
(भा. प्र., वै. र.। छर्दि०)
गुडूच्या रचितं हन्ति हिमं मधुसमन्वितम्।
दुर्निवारामपि छर्दिं त्रिदोषजनितां बलात्॥

गिलोयके हिममें शहद मिलाकर पीनेसे त्रिदोष जनित, कष्टसाध्य छर्दि (वमन) भी अवश्य नष्ट हो जाती है।

(प्र. वि०-हिम जुसान्दा) बनानेकी विधि प्रथम भागमें देखिए। इसकी मात्रा साधारणतः ५ तोलेसे १० तोले तककी है। शहद १। तोलेसे २॥ तोले तक मिलाया जा सकता है।

(११७१) गुडूच्यनुपानम्
(भा. प्र.। म. ख. वा. र.)
घृतेन वातं सगुडा विबन्धं
पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च।
वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा
शुण्ठ्यामवातं शमयेद् गुडूची॥

गिलोय, क्रमशः घृत, गुड़, मिश्री, शहद, एरण्ड तैल और शुण्ठिके साथ सेवन करनेसे यथा-क्रम, वायु, मलावरोध, पित्त, कफ, प्रबल वातरक्त और आमवातका नाश करती है।

(११७२) गुडूच्यादि कल्कः (वं. से.। श्ली.)
पिबेदेवं गुडूचीं वा नागरं भद्रदारु च।
पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये॥

श्लीपदकी निवृत्तिके लिए गिलोय, अथवा सोठ और देवदारुके कल्कको सरसोंके तेलमें मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(११७३) गुडूच्यादि क्वाथः (१)
(भा. प्र०। छर्दि, वं० से०। अ. पि०)
गुडूचीत्रिफलानिम्बपटोलैः क्वथितं जलम्।
पिबेन्मधुयुतं तेन छर्दिर्नश्यति पित्तजा॥

गिलोय, त्रिफला (हैड, बहेड़ा, आमला), नीमकी छाल, और पटोलपत्रके क्वाथ [आठवां भाग] शहद मिलाकर पीनेसे पित्तज छर्दि (वमन) नष्ट होती है।

(यही क्वाथ बंगसेनके मतानुसार अम्लपित्त तथा पितरोग नाशक है ।)

(११७४) गुडूच्यादि क्वाथः (२)

(ग.नि.।ज्व.चि.)

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठिबिल्वाब्दबालकैः ।
पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः ॥
कषायः शीतलः पेयो ज्वरातिसारशान्तये ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥

गिलोय, अतीस, धनियां, सोठ, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रबाला, पाठा (जलजमनी),चिरायता, कुड़ेकी छाल, लाल चन्दन, खस और पद्माखका शीत कषाय[1] सेवन करनेसे ज्वरातिसार, हृल्लास [उबकाई—वमनेच्छा], अरुचि, वमन, पिपासा और दाहका नाश होता है।

(११७५) गुडूच्यादि क्वाथः (३)

(बृ. नि. र.। वा० र०)

गुडूची वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमन्दकः ।
हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥
बालं नागबला यष्टिः मधूकं क्षुरकोपि च ।
पटोलस्य लतोशीरं मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥
गुडूच्यादिरयं क्वाथो वातरक्तान्तकारकम् ॥
कुष्ठानामपि संहर्त्ता कण्डूमण्डलखण्डनः ॥
वातिकान् रौधिकान्सर्वान्विकारानाशु नाशयेत् ।
मुनिभिः करुणाकीर्णैः कषायोयं प्रकाशितः ॥

[1] शीतकषाय विधि प्रथम भागमें देखिए।

गिलोय, बावची, पवांड़के बीज,नीमकी छाल, हैड़, हलदी, आमला, अडूसा (बांसा), शतावर, नेत्रबाला, नागबला [कंघी भेद], मुलैहटी, महुआ, तालमखाना, पटोलकी बेल, खस, मजीठ और लाल चन्दन। इनका क्वाथ वातरक्त, कुष्ठ, खुजली, मण्डल [चकत्ते] और समस्त वातज तथा रक्तज रोगोंको शीघ्र नष्ट कर देता है।

(११७६) गुडूच्यादि क्वाथः (४)

(भै० र०। ज्व० चि०)

गुडूची मुस्तभूनिम्बं धात्री क्षुद्रा च नागरम् ।
बिल्वादि पञ्चमूलञ्च कटुकेन्द्रयवासकम् ॥
निशाभवं ज्वरं वातकफपित्तसमुद्भवम् ।
चिरोत्थं द्वन्द्वजं हन्ति सकणं मधुसंयुतम् ॥

गिलोय, मोथा, चिरायता, आमला, कटेली, सोठ, बिल्वादि पञ्चमूल (बेलकी छाल, सोनापाठा, खम्भारी, पाढ़ल और अरणी), कुटकी, इन्द्रजौ और जवासेके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पीनेसे रात्रिके समय बढ़ने वाले वातज, पित्तज, कफज और पुराने द्वन्द्वज ज्वरका नाश होता है।

(प्र० वि०:—पीपलका चूर्ण एक माशा और शहद २ तोले मिलाकर प्रातः सायं पीना चाहिए।)

(११७७) गुडूच्यादि क्वाथः (५)

(वृ.नि.र.।ज्वर)

गुडूचीमुस्तधान्याक मधुकं कटुरोहिणी ।
तृष्णाशूलारुचिच्छर्दिपित्तज्वरहरो गणः ॥

गिलोय, नागरमोथा, धनियां, मुलहटी, और कुटकीका क्वाथ पीनेसे तृषा, शूल, अरुचि, वमन और पित्तज्वर नष्ट होता है।

(११७८) गुडूच्यादि क्वाथः (६)

(वृ. नि. र. । ज्व. प्र.)

गुडूचीपद्मलोध्राणां सारिवोत्पलयोस्तथा ।
शर्करामधुरः क्वाथः पीतः पित्तज्वरापहः ॥

गिलोय, पद्माख, लोध, सारिवा और नीलोफरके क्वाथको मिसरीसे मीठा करके पीनेसे पित्तज्वरका नाश होता है ।

(११७९) गुडूच्यादि क्वाथः (७)

(वृ. नि. र. । मसू० चि०)

गुडूचीपर्पटानन्ताकटुकाक्वथितं पिबेत् ।
वातपित्तमसूर्यान्तु घोरोपद्रवभाजि च ॥

घोर उपद्रव युक्त वातपित्तज मसूरिका (छोटी माता) में गिलोय, पितपापड़ा, अनन्तमूल और कुटकीका क्वाथ पीना हितकर है ।

(११८०) गुडूच्यादि क्वाथः (८)

(वृ. नि. र. । ने. चि.)

गुडूचीत्रिफलाक्काथो मधुना सह योजितः ।
पीतःसर्वाक्षिरोगघ्नः कृष्णाचूर्णावचूर्णितः ॥

गिलोय और त्रिफले (हंड, बहेड़ा, आमला) के क्वाथमें शहद और पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे आंखोंके सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ।

[प्र० वि०:—पीपल १ माशा और शहद २ तो. मिलाना चाहिए ।]

(११८१) गुडूच्यादि क्वाथः (९)

(वृ० नि० र० । वा० रो०)

गुडूचीचन्दनोशीरधान्यनागरतो यदि ।
क्वाथः तृतीयकं हन्याच्छर्करामधुमिश्रितः ॥

गिलोय, लालचन्दन, खस, धनियां और सोंठके क्वाथमें मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे तृतीयक ज्वर (तिजारी) शान्त होता है ।

(११८२) गुडूच्यादि क्वाथः (१०) (वृ. नि. र. । ज्व.)

गुडूची सारिवा द्राक्षा बला चांशुमती तथा ।
एषोऽपि परमः सिद्धो वातज्वरविनाशनः ॥

गिलोय, सारिवा, मुनक्का, खरैटी और शालपर्णीका क्वाथ भी वातज्वरको नष्ट करनेके लिए अत्यन्त उत्तम है ।

(११८३) गुडूच्यादि क्वाथः (११)

(वृ० नि० र० । ज्व० प्र०)

गुडूच्यामलकीयुक्तः केवलो वापि पर्पटः ।
पित्तज्वरं हरेतूर्णं पित्तशोपभ्रमान्वितम् ॥

गिलोय, आमला और पितपापड़ेका अथवा केवल पितपापड़ेका क्वाथ दाह, शोष और भ्रमयुक्त पित्तज्वरको अत्यन्त शीघ्र नष्ट कर देता है ।

(११८४) गुडूच्यादि क्वाथः (१२)

(वृ.नि.र.।ज्व.)

गुडूची चन्दनं पद्मं नागरेन्द्रयवाम्बुकम् ।
अभयारग्वधोशीरपाठाधान्याब्दरोहिणी ॥
कषायं पाययेदेतत्पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।
तन्द्राकासज्वरश्वासपिपासा दाहनाशनः ॥
विण्मूत्रानिलविष्टम्भत्रिदोषप्रभवस्य च ।
गुडूच्यादि गणो ह्येष पाचनो दीपनः परः ॥

गिलोय, लाल चन्दन, पद्माख (अथवा पोहकर मूल), सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हैड़, अमलतासका गूदा, खस, पाठा (जल जमनी), धनियां, नागरमोथा और कुटकी । इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे तन्द्रा, कास, ज्वर, श्वास, पिपासा, दाह, मलमूत्र और अपान वायुका अवरोध

[रुकना] एवं सन्निपातज्वरका नाश होता है। यह क्वाथ अत्यन्त दीपन पाचन (अग्निकी वृद्धि करने और आहार तथा दोषादिको पचानेवाला) है।

(प्र० वि०:—पीपलका चूर्ण १ माशा डालना चाहिए।)

(११८५) गुडूच्यादि क्वाथः (१३)

(वं.से.। मे.रो.)

गुडूचीत्रिफलाक्काथस्तथा लोहरजो युतः।
अश्मजं महिषाक्षं वा तेनैव विधिना पिबेत्॥

गिलोय और त्रिफलेके क्वाथमें लोह चूर्ण अथवा शिलाजीत और भैंसिया गूगल मिलाकर सेवन करनेसे मेदरोग नष्ट होता है।

(प्र० वि०:—लोह चूर्णके स्थानमें एक रत्ती लोह-भस्मका प्रयोग किया जाय तो विशेष उत्तम है। शुद्ध लोह—चूर्ण भी उचित मात्रानुसार प्रयोग करनेमें कोई हानि प्रतीत नहीं होती। शिलाजीत और गूगलकी शास्त्रोक्त मात्रा ४ माशे है, परन्तु आज कल रोगियोंके बलानुसार आधेसे १ माशे तक ही सेवन कराना पर्याप्त है।)

(११८६) गुडूच्यादि क्वाथः (१४)

(वं० से०। मसू० चि०)

गुडूची मधुकं रास्ना पञ्चमूलं कनिष्ठकम्।
चन्दनं काश्मर्यफलं बलामूलं विकङ्कतम्॥
पाककाले मसूर्यान्तु वातजायां प्रयोजयेत्॥

वातज मसूरिकाके पकनेके समय गिलोय, मुलहटी, रास्ना, लघु पञ्चमूल (शालपर्णी, पृष्टपर्णी, बड़ी कटेली, कटेली, गोखरू), लाल चन्दन, खम्भारीके फल, खरैटीकी जड़ और कटेलीका क्वाथ पिलाना हितकर है।

टिप्पणीः—जो औषधि दो बार आती है वह द्विगुण ली जाती है यथा इस प्रयोगमें कटेली।

(११८७) गुडूच्यादि क्वाथः (१५)

(हा० सं०। स्था. ३, अ. २)

गुडूची शतपुष्पा च द्राक्षा रास्ना पुनर्नवा।
त्रायमाणकक्काथश्च गुडैर्वातज्वरापहः॥

गिलोय, सौंफ, मुनक्का, रास्ना, पुनर्नवा और त्रायमाणा (बनफशा) के क्वाथमें गुड़ डालकर पीनेसे वातज्वर नष्ट होता है।

(प्र० वि०:—गुड़ एक तोला मिलाना चाहिए।)

(११८८) गुडूच्यादि क्वाथः (१६)

(हा० सं०। स्था. ३ अ. २)

गुडूचिनिम्बत्वग्वासकश्च
शठी किरातं मगधा बृहत्यौ।
दार्वी पटोली कथितं कषायं
पिबेन्नरः पित्तकफज्वरश्च॥

पित्तज और कफज ज्वरमें गिलोय, नीमकी छाल, बाँसा (अडूसा), कचूर, चिरायता, पीपल, छोटी और बडी कटेली, दारुहल्दी और पटोलपत्र का क्वाथ सेवन करना लाभदायक है।

(११८९) गुडूच्यादि क्वाथः (१७) (ग.नि.।ज्वरा.)

गुडूच्यतिविषोशीरं गिरिमल्ली च मोचकः।
कुष्ठं लज्जावतीयष्टीमधुचन्दनसारिवाः॥
एषां कषायः कथितो मधुना च विमिश्रितः।
हन्तिज्वरातीसारं सकुक्षिशूलं निषेवितः॥

गिलोय, अतीस, खस, कुड़ेकी छाल, मोचरस, कूट, लज्जालु, मुलहटी, लाल चन्दन और सारिवाके क्वाथमें शहद मिलाकर पीनेसे कुक्षि शूल युक्त ज्वरातिसार नष्ट होता है।

---

१ ज्वरे चेति साधुः।

(११९०) गुडूच्यादि क्वाथः (१८)
(हा० सं०। ३ स्था. अ. १४)

गुडूची नागरं भार्गी व्याघ्रीक्वाथःकणायुतः।
कासश्वासौ जयत्याशु गुडेन सैन्धवेन च॥

गिलोय, सोंठ, भारंगी और कटेलीके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और गुड तथा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करनेसे खांसी और श्वास अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाते है।

(प्र० वि०:—पीपलका चूर्ण १ माशा, गुड़ १ तो० और सेंधानमक १ से ४ माशे तक आवश्यकतानुसार मिलाना चाहिए।

(११९१) गुडूच्यादि क्वाथः (१९)
(वृं.मा.।ज्वरा.)

गुडूचीचित्रबिल्वाब्दरक्तचन्दनवालकैः।
कलिङ्गकःसमायुक्तैर्ज्वरातीसारशोफनुत्॥

गिलोय, चीता, बेलगिरी, नागरमोथा, लाल चन्दन, नेत्रवाला और इन्द्रजौका क्वाथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार और शोफ(सूजन)का नाश हो जाता है।

(११९२) गुडूच्यादि क्वाथः (२०)
(यो.चि.।अ.४)

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चन्दनोशीरनागरैः।
कृतं क्वाथं पिबेत्क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः॥

गिलोय, धनिया, नागरमोथा, लाल चन्दन, खस और सोंठके क्वाथमें शहद और मिश्री मिलाकर पीनेसे ज्वर नष्ट होता है। (प्र. वि.:—शहद, वातपित्त और कफज्वरमें यथाक्रम क्वाथका सोलहवॉ, आठवां और चौथा भाग, और मिश्री क्रमश: चौथा, आठवॉ और सोलहवॉ भाग मिलानी चाहिए।)

(११९३) गुडूच्यादि क्वाथः (२१)
(वृ. यो. चि.। अ. पि. चि.)

गडूचीचित्रकारिष्टपटोलैःक्वथितं पिबेत्।
क्षौद्रयुक्तं निहन्त्येतच्छर्दिंपित्ताम्लसम्भवाम्॥

गिलोय, चित्रक (चीता), नीमकी छाल और पटोलपत्रके क्वाथमें शहद डालकर पीनेसे अम्लपित्तज छर्दि नष्ट होती है। (प्र. वि.:—शहद क्वाथका आठवॉ भाग मिलाना चाहिए।)

(११९४)गुडूच्यादि क्वाथः (२२)(रा.मा.।ज्व.)

वातज्वरोपशमनाय पिबेद्गुडूची
दुस्पर्शनागरघनक्वथितं कषायम्॥

वातज्वरकी शान्तिके लिए गिलोय, जवासा, सोंठ और नागरमोथेका क्वाथ पीना चाहिए।

(११९५) गुडूच्यादि क्वाथः (२३)
(वं.से.।मसू.अ.)

गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैस्सह।
पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम्॥
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति॥

गिलोय, मुलहटी, मुनक्का, ईखकी जड़, और अनार (वृक्ष) की छालके क्वाथमें गुड़ मिलाकर मसूरिका पकनेके समय सेवन कराया जाय तो वह शीघ्र पक जाती है और वायु कुपित नहीं होने पाती। (प्र. विधिः—गुड़ १ तो. मिलाना चाहिये।)

(११९६)गुडूच्यादि क्वाथः (२४)(यो.र.।कुष्ठा.)

गुडूची त्रिफला दार्वी क्वाथ उष्णैश्च वारिभिः।
त्वग्दोषव्रणशोफघ्नः पीतो मासं सगुग्गुलुः॥

एक मास पर्यन्त, गिलोय, त्रिफला (हैड, बहेडा, आमला) और दारुहल्दीका क्वाथ अथवा उष्ण जलके साथ गूगल सेवन करनेसे त्वग्दोष, व्रण [घाव] और सूजनका नाश होता है।

(प्र. वि.:—गूगल रोगीके अग्नि बलानुसार १से ३ माशे तक सेवन कराया जा सकता है।)

(११९७)गुडूच्यादि क्वाथः(२५)(वै.जी.।वि.१)

वाञ्माधुर्यजिताऽमृतेऽमृतलतालक्ष्मीशिवाभेशिवा
विश्वं विश्ववरे घनो घनकुचे सिंही चसिंहोदरि !
एभिःपञ्चभिरौषधैर्मधुकणामिश्रःकषायः कृतः
पीतश्चेद्विषमज्वरः किमु तदा तन्वङ्गि न क्षीयते॥

हे सुमधुर भाषिणी, लक्ष्मी, शिवा विनिन्दित कान्तिमते, हे विश्वश्रेष्ठभामिनी, पीनपयोधरे, सिंहोदरि, तन्वङ्गि ? क्या अमृता (गिलोय), शिवा (हैड), विश्वा (सोंठ), घन (मोथा), और सिही (कटली) का पिप्पली चूर्णयुक्त क्वाथ पीनेसे विषम ज्वर नष्ट नहीं हो सकता ?

(११९८) गुडूच्यादि क्वाथः (२६)
(यो.र.।स्त्रीरो.)

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वथितोदकधारया ।
योनिं प्रक्षालयेत्तेन ततः कण्डूप्रशाम्यति ॥

गिलोय, त्रिफला और दन्तीमूलके क्वाथकी धारा (तरैड़ा) देनेसे स्त्रियोके गुह्याङ्गकी कण्डू (खुजली) शान्त होती है ।

(११९९)गुडूच्यादि क्वाथः (२७)
(वैद्यामृत ।अलं.३)

गुडूच्यतिविषामुस्तनागरैः क्वथितं जलम् ।
मन्दानलामसंयुक्ते हितं हि संग्रहणीगदे ॥

मन्दाग्नि और आमयुक्त संग्रहणीरोगमें गिलोय, अतीस, नागरमोथा और सोठका क्वाथ लाभदायक है।

(१२००) गुडूच्यादि क्वाथः (२८)
(भा.प्र.।ज्व०)

गुडूची भूमिनिम्बश्च बालं वीरणमूलकम् ।
लघुमुस्तं त्रिवृद्धात्री द्राक्षा वासा च पर्पटः ॥
एषांक्वाथो हरत्येव ज्वरं पित्तकृतं द्रुतम् ।
सोपद्रवमपि प्रातर्निपीतो मधुना सह ॥

गिलोय, चिरायता, नेत्रबाला, खस, सफैद दूब, नागरमोथा, निसोथ, आमला, मुनक्का, बाँसा (अडूसा) और पित्तपापड़ेके क्वाथमें मधु मिलाकर प्रातःकाल सेवन करनेसे उपद्रवयुक्त पित्तज्वर अवश्य नष्ट होता है ।

(प्र. वि.--शहद क्वाथका आठवाँ भाग लेना चाहिए ।)

(१२०१)गुडूच्यादि क्वाथः (२९)(ग.नि.। ज्व.)

गुडूची नागरं मुस्तं पटोलारिष्टवत्सकम् ।
त्रिफला च कषायः स्यात्पाचनोज्वर नाशनः ॥

गिलोय, सोठ, नागरमोथा, पटोलपत्र, नीमकी छाल, कुड़ेकी छाल और त्रिफलेका क्वाथ ज्वरको पकाता और शान्त करता है ।

(१२०२)गुडूच्यादि क्वाथः (३०)(ग.नि.।ज्व.)

गुडूची त्रायमाणा च द्राक्षा काश्मर्यसारिवे ।
कषायो गुडसंयुक्तः सद्यो वातज्वरं जयेत् ॥

गिलोय, त्रायमाणा (बनफशा),मुनक्का,खम्भारी की छाल और सारिवाके क्वाथमें गुड़ मिलाकर पीनेसे वातज्वर शीघ्र नष्ट होता है ।

(प्र. वि :--गुड़ एक तोला मिलाना चाहिए।)

(१२०३) गुडूच्यादि क्वाथः (३१)
(ग.नि.। ज्व.)

गुडूचीनागरक्वाथः सद्यो वातज्वरं हरेत् ।

गिलोय और सूंठका क्वाथ सेवन करनेसे वातज्वर शीघ्र नष्ट होता है ।

(१२०४) गुडूच्यादि क्वाथः (३२)
(ग.नि.। ज्व.)

गुडूच्यंशुमतीदारुबलामधुकसारिवे ।

रास्नापरूषकं द्राक्षा त्रिफला शैलवालुकम् ॥
कोष्णं सगुडसर्पिष्कं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥

गिलोय, शालपर्णी, दारुहल्दी, खरैटी, मुलहटी, दोनो सारिवा, रास्ना, फाल्सेकी छाल, मुनक्का, त्रिफला (हैड, बहेड़ा, आमला) और शैवाल (सिरवाल) के किञ्चित् उष्ण क्वाथमें गुड और घृत मिलाकर पीनेसे वातज्वर नष्ट होता है।

(प्र. वि :-गुड़ और घृत ६-६ मासे मिलाने चाहियें।)

(१२०५) गुडूच्यादि क्वाथः (३३)
(ग.नि। ज्व.)

गुडूच्यतिविषामूर्वामञ्जिष्ठाधन्वयासकैः।
वासाखदिरनिम्बैश्च पिबेत्क्वाथं हि वातिके ॥

गिलोय, अतीस, मूर्वा, मजीठ, धमासा, बांसा [अड़्सा], खैरसार और नीमका क्वाथ वातज्वरमें हितकर है।

(१२०६) गुडूच्यादिगणः
(सु० सं०। सू. अ. ३८)

गुडूचीनिम्बकुस्तुम्बरुचन्दनानि पद्मकश्चेति।
एष सर्वज्वरान्हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥

गिलोय, नीमकी छाल, कुस्तुम्बुरु (नैपाली धनियां), लाल चन्दन और पद्माख। यह गुडूच्यादि गण सर्व ज्वर नाशक और दीपन हैं।

(१२०७) गुडूच्यादि पुटपाकः (आ.वे.वि.)

गुडूची पर्पटं मेषपर्णी च हिलमोचिका।
पटोलं पुटपाकेन[1] रस एषां मधुप्लुतः ॥
वातपित्तज्वरं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥

गिलोय, पितपापड़ा, मण्डूकपर्णी, हुलहुल और पटोलपत्रका स्वरस पुटपाके विधिसे निकालकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे वातपित्त-जनित भयङ्कर जीर्णज्वरका नाश होता है।

(१२०८) गुरुपञ्चमूली क्वाथः (वै.जी.।वि.३)

अतः परं कोमलवाणि कास-
श्वासप्रतिकारमुदीरयामः।
निहन्ति कासं गुरुपञ्चमूली
कृतः कषायश्चपलासहायः ॥

अयि मृदुभाषिणि? अब मैं कास श्वास प्रतिकार बतलाता हूँ। बृहत्पञ्चमूल (बेलकी छाल, सोनापाठा, खम्भारी, पाढल और अरणी) के क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे कास श्वास नष्ट होते हैं।

(१२०९) गृहधूमादि क्वाथः (यो.र.।मु.रो.)

गृहधूमारनालेन क्वाथं समधुसैन्धवम्।
पाणिना मर्दयेच्चाऽऽस्ये उपजिह्वाप्रशान्तये ॥

घरका धुवां काञ्जीमें पकाकर उसमें शहद और सैंधानमक मिलाकर उंगलीसे इसकी मालिश करनेसे उपजिह्वा रोग नष्ट होता है।

(१२१०) गैरिकादि क्वाथः (वृ.नि.र.।उप.)

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः।
चन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पेयः पित्तोपदंशहा ॥

गेरू, सुर्मा (अथवा रसौत), मजीठ, मुलहटी, खस, पद्माख, लाल चन्दन और नीलोफरके क्वाथ में घृत मिलाकर सेवन करनेसे पित्तजनित उपदंश नष्ट होता है।

---

[1] पुटपाक विधि प्रथम भागके परिशिष्टमें अवलोकन कीजिए।

(१२११) गोकण्टकादि क्राथः

(वृ. नि. र.; यो. र. । अति.)

गोकण्टकगुहाव्याघ्रीकषायं सुशृतं पिबेत् ।
आमश्लेष्मातिसारघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥

गोखरू, पृष्ठपर्णी और कटेलीका क्वाथ पीनेसे आमातिसार (कच्चे दस्त) और श्लेष्मातिसार नष्ट होता है। यह क्वाथ अत्यन्त दीपन पाचन है।

(१२१२) गोकण्टकादिभिःसिद्धपयः

(वा. भ. । चि. स्था.। र. पि. चि.)

गोकण्टकाभीरुशृतं पर्णिनीभिस्तथा पयः ।
हन्त्याशु रक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगान् ॥

गोखरू और शतावरी तथा शालपर्णी, पृष्ठ-पर्णी, मुद्गपर्णी और माषपर्णीसे सिद्ध दुग्ध वेदना युक्त रक्तपित्त और विशेषतः मूत्र मार्गसे जाने वाले रक्तपित्तको अत्यन्त शीघ्र नष्ट कर देता है।

(प्र० वि० :-२० तोले दूधमें २॥ तोले औषध और ८० तोले पानी मिलाकर दुग्ध शेष रहने तक मन्दाग्निसे पकाना चाहिए।)

(१२१३) गोकर्णादि योगः (वै. म. । प. ६.)

गोकर्णत्वङ्मुस्तानमस्करीधातकीकुटजसिद्धम् ।
ज्वरातिसारं जयति जलं चतुःपञ्चषड्भिर्दिवसैः॥

आसगन्ध, दालचीनी, नागरमोथा, लज्जालु (अथवा सफ़ैद दूर्वा), धायके फूल और कुड़ेकी छालका क्वाथ पीनेसे ५, ६ दिनमें ज्वरातिसार नष्ट हो जाता है।

(१२१४) गोक्षुरक्वाथः (१) (यो. र.। मू. कृ)

समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः ।
नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥

मूल सहित गोखरूके क्वाथमें मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात (सूजाक) नष्ट होते हैं।

(१२१५) गोक्षुर क्वाथः (२) (यो.र.। मू.कृ.)

क्वाथो गोक्षुरबीजानां यवक्षारयुतः सदा ।
मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जातं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥

गोखरूके क्वाथमें यवक्षार मिलाकर पीनेसे मल रोकनेसे उत्पन्न हुआ मूत्रकृच्छ्र शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(प्र० वि०:-यवक्षार १ मा० मिलाना चाहिए।)

(१२१६) गोक्षुर क्वाथ (३) (वृ. यो. त.)

पीतो गोकण्टकक्वाथः सशिलाजतुकौशिकः ।
मूत्रकृच्छ्रान्मूत्रशुक्रान्मूत्रोत्संगाद्विमुच्यते ॥

गोखरूके क्वाथमें शिलाजीत और गूगल मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र, मूत्रशुक्र और मूत्राघात (पेशाब बन्द होना)का नाश होता है।

(प्र० वि०:-गूगल २ माशे और शिलाजीत ४ रत्ती मिलानी चाहिए।)

(१२१७) गोक्षुरादि क्वाथः

(ग. नि. । प्र० अ०)

गोक्षुरो वंशसारश्च कासमर्दनलाङ्घ्रिजः ।
क्वाथः पित्तप्रमेहं च निहन्ति सितया सह ॥

गोखरू, बंसलोचन, कसौंदी और नलके क्वाथमें मिश्री डालकर पीनेसे पित्तज प्रमेहका नाश होता है।

(प्र० वि० :-मिश्री क्वाथसे चौथाई डालनी चाहिए और बंसलोचन क्वाथमें पीसकर प्रक्षेप रूपसे डालना उचित प्रतीत होता है।

(१२१८) गोजिह्वादि क्वाथः

(वृ. नि. र. । सन्नि० चि०)

गोजिह्वामूलमेकं द्विगुणबर्हिशिखा-
मूलकुस्तुम्बरुणा- ।
मष्टांशे क्वाथतोये मधुसितारजो
मिश्रमन्ते पिबेत्तत् ॥
तस्यार्शः षड्विधोपि हरति गुदरुजस्राव
मामानुबन्धम् ।
कीलं कण्डू ग्रहण्यां शूलमति भिषजा (?)
मण्डलात्पथ्यसेवी ॥

गोजिया घासकी जड़ १ भाग, मोर शिखा-मूल २ भाग, और कुस्तुम्बुरू (नैपाली धनियां) ८ भाग। इनके क्वाथमें शहद और मिसरी मिलाकर पीनेसे ६ प्रकारका अर्शरोग, गुदाकी पीड़ा, रक्तस्राव, आम, मस्से, खुजली, ग्रहणी और शूल रोगका नाश होता है। इसे एक मण्डल अर्थात् ४८ दिन तक पथ्य पूर्वक सेवन करना चाहिए।

(१२१९) गोधापदीमूलादि योगः

(ग. नि. । मूत्रा.)

गोधापदीमूलमनल्पसर्पि
स्तैलान्वितं गोक्षुरसंयुतञ्च ।
निहन्ति सम्यक् क्वथितं निपीतं
मृत्युत्कटां मूत्रनिरोधपीडाम् ॥

हंसपादी और गोखरूके क्वाथमें पर्याप्त घृत अथवा तैल मिलाकर पीनेसे मरणासन्न कर देने वाली मूत्रावरोध पीड़ा भी नष्ट हो जाती है।

(प्र. वि.:-दोनों औषधें १-१ तोला लेकर क्वाथ बनावें और ऽ-क्वाथमें २॥ तोले घृत मिलाएं।)

(१२२०) गोधावन्यादि क्वाथः

(वृ. नि. र. । मू. घा.; यो. र. । मू. कृ.)

गोधावन्यामूलं क्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् ।
पीतमविरुद्धमचिरात् भिनत्ति मूत्रस्य संघातम् ॥

पाषाणभेदी, और मुद्गपर्णीकी जड़के क्वाथमें घृत, तैल, और गोदुग्ध मिलाकर पीनेसे मूत्राघात रोग अत्यन्त शीघ्र नष्ट होता है।

(१२२१) गोधूमादि प्रयोगः

(सु. सं. । चि. वाजी. क.)

क्षीरपक्वांस्तु गोधूमानात्मगुप्ताफलैस्सह ।
शीतान् घृतयुतान् खादेत्ततः पश्चात्पयःपिबेत् ॥

गेहूँके चूर्ण (आटा) और कौंचके बीजोंको दूधमें पकाकर ठण्ठा करनेके पश्चात् घृत मिलाकर पियें और ऊपरसे दुग्ध पान करें।

(इससे बल और कामशक्ति बढ़ती है)

(प्र० वि० :-गोधूम चूर्ण और कौंचके बीजोंका चूर्ण एक तोला, दूध १६ तो० पानी ६४ तो० मिलाकर दुग्ध शेष रहने तक पकावें और एक तो० घी डालकर पियें।)

(१२२२) गोपालकर्कटी योगः

(यो. र. । अश्म.)

गोपालकर्कटीमूलं पिष्टं पर्युषिताम्भसा ।
पीयमानं त्रिरात्रेण पातयत्यश्मरीं हठात् ।

ककड़ीकी जड़ बासी जलमें पीसकर तीन दिन तक सेवन करनेसे पथरी अवश्य निकल जाती है।

(१२२३) गोमयसादि योगः

(ग. नि. । पां. रो.)

गोमयस्य रसं सर्पिर्गुडं तण्डुलवारि च ।
पाण्डुरोगविनाशाय पाययेद्भिषगातुरम् ।

वैद्यको चाहिये कि पाण्डु रोगीको गोमय रस (गायके गोबरका स्वरस), घी, गुड़ और चावलोंके पानीको एकत्र करके सेवन करावे।

(प्र० वि०:—चावलोंका पानी १२ तो०और अन्य औषधियाँ एक एक तोला लेनी चाहिएं। तण्डुल जल विधि प्रथम भागके परिशिष्टमें अवलोकन कीजिए।)

(१२२४) गोमूत्रयोगः (वृं. मा. । शोथोदर.)

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा
क्षीरं गवां वा त्रिफलाविमिश्रम्।
क्षीरान्नभुक्केवलमेव गव्यं
मूत्रं पिबेद्वा श्वयथूदरेषु॥

भैंसके दूधमें गोमूत्र मिलाकर, अथवा त्रिफला युक्त गोदुग्ध वा केवल गोमूत्र सेवन करने और केवल क्षीरान्न (दूध भात) खानेसे शोथोदर (उदरकी सूजन) रोग नष्ट होता है।

(प्र० वि०:—३ से ६ माशेकी मात्रानुसार त्रिफलेका चूर्ण अथवा त्रिफलेसे यथा विधि दुग्ध सिद्ध करके पिया जा सकता है।)

(१२२५) ग्रन्थिकादि क्वाथः (१)

(यो० र० । उरु० नि०)

ग्रन्थिकारुष्क कृष्णानां क्वाथं क्षौद्रान्वितं पिबेत्।

पीपलामूल, भिलावा और पीपलके क्वाथमें शहद डालकर पीनेसे उरुस्तम्भ रोग नष्ट होताहै।

(प्र०वि०-शहद क्वाथका सोलहवां भाग मिलाना चाहिए।)

(१२२६) ग्रन्थिकादि क्वाथः (२)

(यो.र.।सन्नि.)

ग्रन्थीन्द्रजामरतरुकृमिशत्रुभार्गी,
भृङ्गत्रिकटुवनलकट्फलपौष्कराणां।
रास्नाभयाबृहतिकाद्वयदीप्यभूत-
केशीकिरातकवचाचविकावृकीणाम्॥
क्वाथो हन्यात्सन्निपातान्समग्रान्।
बुद्धिभ्रंशं स्वेदशैत्यप्रलापान्॥
शूलाध्मानं विद्रधिश्लेष्मवातान्।
वातव्याधीन् सूतिकायोश्च तद्वत्॥

पीपलामूल, इन्द्रजौ, देवदार, बायविड़ंग, भारंगी, भांगरा, त्रिकुटा [सूंठ, मिर्च, पीपल], चीता, कायफल, पोखरमूल, रास्ना, हर्र, दोनो कटेली, अजवायन, निर्गुण्डी, चिरायता, बच, चव्य और पाठा। इनका क्वाथ सब प्रकारके सन्निपात, बुद्धिभ्रंश, स्वेद, शीत, प्रलाप, शूल, अफारा, विद्रधि, कफवात रोग, वातव्याधि, और सूतिका रोगोंका नाश करता है।

(१२२७) ग्रन्थिकादि क्वाथः (३)

(वृ. नि. र. । सन्नि., यो. र. । ज्व.)

ग्रन्थिककलितरुपथ्याकृतमालशिवाटरूषकैर्विहितः।
एरण्डतैलयुक्तः क्वाथो हन्यान्मरुन्मांद्यम्॥

पीपलामूल, बहेड़ा, हर्र, अमलतासका गूदा, आमला और अडूसेके क्वाथमें अरण्डका तेल (कास्टर आइल) डालकर पीनेसे वातविकार नष्ट होता है।

(प्र. वि.:—एरण्ड तेल ऊष्ण क्वाथमें, और १ तोलेकी मात्रासे मिलाना चाहिए तथा ऊष्ण ही पीना चाहिए।)

(१२२८) ग्रन्थिकादि क्वाथः (४)

(वृ. नि. र. । ज्वर०)

ग्रन्थिकं पर्पटो वासा भार्गी विश्वा गुडूचिका ।
एभिः सुसाधितं तोयं तीव्रवातज्वरापहम् ॥

पीपलामूल, पितपापडा, अडूसा, भारंगी, सोंठ और गिलोयका क्वाथ तीव्र वातज्वरका नाश करता है ।

इति गकारादि कषायप्रकरणम् ।

अथ गकारादि चूर्णप्रकरणम्

(१२२९) गगनायस चूर्णम् (यो. चि. । चूर्णा.)

त्रिकटु त्रिसुगन्धश्च लवङ्गं जातिकाफलम् ।
तुगाक्षीरी शटी शृङ्गी वाजिगन्धा च दाडिमी ॥
एतानि समभागानि सर्वतुल्यमयोरजः ।
आयसेन समं देयं गगनं च सुशोधितम् ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्यात्सितोपला ।
कर्षप्रमाणं दातव्यं खादयेच्च यथाबलम् ॥
अग्निसञ्जननं हृद्यं प्रमेहं हन्ति दारुणम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च धातुस्थं विषमज्वरम् ॥
नाशयेच्च त्रिदोषञ्च राजयक्ष्मज्वरापहम् ।
पीनसं कासश्वासघ्नं रुच्यं श्वासहरं परम् ॥

त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात), लौंग, जावित्री, जायफल, वंसलोचन, कचूर, काकड़ासिंगी, असगन्ध और अनार दाना प्रत्येक समान भाग और इन सबके समान शुद्ध लोह चूर्ण तथा अभ्रकभस्म एवं इन सबके बराबर मिश्री लेकर यथा विधि चूर्ण बनावें ।

इसे १ कर्ष (१। तोले) अथवा अग्निबलानुसार मात्रासे सेवन करना चाहिए ।

यह चूर्ण अग्निवर्द्धक, हृद्य, भयङ्कर प्रमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, धातुगत विषमज्वर, सन्निपात, यक्ष्मा, पीनस, खांसी और श्वास नाशक तथा रोचक है ।

(लोहचूर्णके स्थानमें लोहभस्म डालना उत्तम है ।)

(१२३०) गङ्गाधरचूर्णम्

(ग. नि. । अति.; वै. जी. । १ वि.)

कट्वङ्गमुस्ते कुटजस्य बीज-
माम्रास्थि शुण्ठी जलरोध्रपाठा ।
जम्बूफलं कोमलबिल्वधात्री-
विषाह्वयष्ट्यप्यथ धातकी च ॥
गङ्गाधरं नाम वदन्ति चूर्णं
सर्वानतीसारगदान्निहन्ति ॥

(नोट-वैद्यजीवनमें पाठ भिन्न है, प्रयोग यही है ।)

सोना पाठा, नागरमोथा, इन्द्रजौ, आमकी गुठलीका गर्भ (गिरी), सोठ, नेत्रबाला, लोध, पाठा (जलजमनी), जामन (जामनकी गुठली), वेलका कचा फल (वेलगिरी), आमला, अतीस, मुलैठी और धायके फूल । समान भाग लेकर चूर्ण बनावें । यह गङ्गाधर नामक चूर्ण हर प्रकारके अतिसार रोगको नष्ट करता है ।

(मात्रा=१ माशा, अनुपान=मथित) ।

(१२३१) गङ्गाधरचूर्णम् (भा. प्र. । अति.)

मोचरसमुस्तानागरपाठारलुधातकीकुसुमैः ।
चूर्णमथितसमेतं रुणद्धि गङ्गाप्रवाहमपि सद्यः ॥

मोचरस, मोथा, सोठ, पाठा (जलजमनी), अरलु (सोना पाठा) और धायके फूल। प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।

इसे मथित (जलरहित, वस्त्रसे छने हुवा दही) के साथ सेवन करनेसे गङ्गाके समान वेग· वान् अतिसार भी नष्ट हो जाता है।

(मात्रा १ माशा, दिन भरमें २–३ बार सेवन कराएं।)

(१२३२) गङ्गाधरचूर्णम् (द्वितीयम्)
(भा. प्र. । अति.)

मुस्तावत्सकबीजं मोचरसो बिल्वधातकीलोध्रम् ।
गुडमथितसंप्रयुक्तं गङ्गामपि वेगवाहिनींरुन्ध्यात्॥

नागरमोथा, इन्द्रजौं, मोचरस, बेलगिरी, धायके फूल और लोधके चूर्णको गुड और मथित (जलरहित कपड़ेसे छना हुवा दही)के साथ सेवन करनेसे वेगवान् गङ्गोपम अतिसार भी नष्ट हो जाता है।

(मात्रा–१ माशा। दिनमें २–३ बार खिलाएं।)

(१२३३) गङ्गाधरचूर्णम् (मध्यम)
(भै. र. । ग्रहण्य.)

बिल्वं शृङ्गाटकदलं दाडिमं दलमेव च ।
समुस्तातिविषाचैव सर्जश्वेतश्च धातकी ॥
मरिचं पिप्पलीशुण्ठी दार्वी भूनिम्बनिम्बकम् ।
जम्बूरसाञ्जनश्चैव कुटजस्य फलं तथा ॥
पाठा समङ्गा ह्रीवेरं शाल्मली वेष्टमेव च ।
शक्राशनं भृङ्गराजचूर्णं देयं समं समम् ॥
कुटजस्य त्वचूर्णं सर्वचूर्णसमं मतम् ।
एतत्गङ्गाधरं नाम महच्चूर्णं महागुणम् ॥
नानावर्णमतीसारं चिरजं बहुरूपिणम् ।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति तृष्णां कासदुर्जयम् ॥
ज्वरश्च विविधं हन्ति शोथश्चैव सुदारुणम् ।
अरुचिं पाण्डुरोगञ्च हन्यादेव न संशयः ॥
छागीदुग्धेन मण्डेन मधुना वाथ लेहयेत् ॥

बेलगिरी, सिंघाड़े और अनारके पत्ते, मोथा, अतीस, सफ़ेद राल, धायके फूल,स्याह मिर्च,पीपल, सोठ, दारुहल्दी, चिरायता, नीमकी छाल, जामनकी (गुठली), रसौत, इन्द्रजौं, पाठा, मजीठ, नेत्रबाला, सैंभलकी छाल, भांग और भांगरा प्रत्येक समान भाग तथा कुड़ेकी छाल सबके बराबर लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे बकरीके दूध, मण्ड अथवा शहदके साथ चाटनेसे नानावर्णसंयुक्त (रंग बिरंगा) पुराना और अनेक प्रकारका अतिसार, कष्टसाध्य ग्रहणी, तृष्णा, भयङ्कर खांसी, अनेक प्रकारके ज्वर, दुस्साध्यशोथ, अरुचि और पाण्डु रोग अवश्य नष्ट होते है।

(मात्रा–१॥ माशा, दिनमें ३–४ बार)

(१२३४) गङ्गाधरचूर्णम् (वृद्धम्)
(भा. प्र. । अति.)

मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः ।
बिल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥
आम्रबीजसमङ्गातिविषायुक्तैश्च चूर्णितैः ।
मधुतण्डुलपानीयं पीतं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥
हन्ति सर्वानतीसारान्ग्रहणीं हन्ति वेगतः ।
वृद्धं गङ्गाधरं चूर्णं रुन्ध्याद्गीर्वाणवाहिनीम् ॥

नागरमोथा, अरलु (सोना पाठा), सोठ, धायके फूल, लोध्र, नेत्रवाला, वेलगिरी, मोचरस, पाठा (जलजमनी), इन्द्रजौं, कुड़ेकी छाल, आमकी गुठलीका गर्भ [गिरी], मजीठ और अतीस। समान भाग लेकर चूर्ण वनाएं।

इसे (१ माशेकी मात्रानुसार) शहदमें मिलाकर तण्डुल जल [चावलोंको पानीमें भिगोकर नितारा हुवा जल]के साथ सेवन करनेसे प्रवाहिका (पेचिश) सव प्रकारके अतिसार और ग्रहणी रोग अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते है। यह वृद्ध गङ्गाधर चूर्ण भयङ्कर अतिसारको रोक देता है।

गङ्गाधरचूर्णम् (वृहद्) (भै.र.ग्र.)
रस प्रकरणमें अवलोकन कीजिए।

(१२३५) गङ्गाधरचूर्णम् (भै. र. । ग्रह.)

मुस्तसैन्धवशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवत्सकैः।
बिल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयववालकैः॥
आम्रबीजमतिविषा लज्जाचेति सुचूर्णितम्।
क्षौद्रतण्डुलतोयाभ्यां जयेत्पीत्वा प्रवाहिकाम्॥
सर्वातिसारशमनं सर्वशूलनिषूदनम्।
संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकातङ्कमेव च॥

नागरमोथा, सेंधानमक, सोठ, धायके फूल, लोध, कुड़ेकी छाल, वेलगिरी, मोचरस, पाठा [जलजमनी], इन्द्रजौं, नेत्रवाला, आमकी गुठलीका गर्भ (गूदा—मज्जा), अतीस और लज्जालु। समान भाग लेकर चूर्ण वना लीजिए।

इसे शहद और चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे प्रवाहिका, सव प्रकारके अतिसार, शूल, संग्रहणी और सूतिका रोगोका नाश होता है।

(मात्रा १॥ से ३ माशे तक। चावलोंका पानी वनानेकी विधि प्रथम भागके परिशिष्टमें देखिए।

(१२३६) गन्धकचूर्णम्

(यो. र. । कुष्ठ, वृ. नि. र. । त्वग्दोष)

गन्धपाषाणचूर्णन्तु कटुतैलेन योजयेत्।
लेपनादथ पानाद्वा कच्छुपामाविनाशनम्॥

(शुद्ध) गन्धकके चूर्णको (½ माशेकी मात्रानुसार) कड़वे तेलमें मिलाकर पीने अथवा लेप करनेसे कच्छु और पामा (खुजली) का नाश होता है।

(१२३७) गन्धकयोगः (र. चं. । उप. चि.)

शुद्धं वलिं च त्रिफला समभागानि चूर्णयेत्।
तत्समं शर्करा ग्राह्या सर्वमेकत्रमर्दयेत्॥
तच्चूर्णं च त्रिमाषञ्च प्रातर्मधुयुतं लिहेत्।
सप्तकत्रयसेवान्ते उपदंशं विनाशयेत्॥
सत्यं सत्यं पुनःसत्यं योगोऽयं मुनिभाषितः॥

शुद्ध आमलासार गन्धक और त्रिफले (हैड़, वहेड़े, आमले)का चूर्ण समान भाग लेकर उसमें सवके वरावर मिश्री मिलाकर खरल करें।

इसे प्रतिदिन प्रातःकाल ३ माशेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे ३ सप्ताहमें उपदंश अवश्य नष्ट हो जाता है।

(१२३८) गन्धक योगः(वृ. यो. त. । त.७३)

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयःपिवेत्।
विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहपिडिका अपि॥

(शुद्ध आमलासार) गन्धकके चूर्णको समान भाग गुड़में मिलाकर १ कर्ष (१। तोले) की

मात्रानुसार दूधके साथ सेवन करनेसे बीसों प्रकारकी प्रमेह पिडिकाएं नष्ट हो जाती हैं।

(व्यवहा० मात्रा—१ माशा)

(१२३९) गन्धक योगः (र. र. । र. ख.)

गन्धकं कटुतैलेन घर्मे भाव्यं दिनावधि।
तत्पलार्धं सदाखादेद्दिव्यकायकरं नृणाम्।
जायते स्वर्णवद्देहो वत्सरात्वलिवर्जितः॥

गन्धकके चूर्णको कड़वे तैलमें मिलाकर दिन भर धूपमें रखिये। इसे अर्धपल मात्रानुसार सेवन करनेसे शरीर कान्तिवान् (त्वग्रोग रहित) हो जाता है। यदि एक वर्ष पर्यन्त निरन्तर सेवन किया जाय तो मनुष्यकी देह काञ्चनसदृश सुन्दर और वलि (झुर्री) रहित हो जाती है।

(प्र० वि०:—तैल इतना डालना चाहिए कि गन्धकसे एक अंगुल ऊपर रहे। व्यवहारिक मात्रा=१ माशा तक। अनुपान=गोदुग्ध।)

(१२४०-४२) गन्धक प्रयोगाः

(र. र. स. । पू. ख. अ. ३)

घृताक्ते लोहपात्रे तु विद्रुतं शुद्धगन्धकम्।
घृताक्तदर्विकाक्षिप्तं द्विनिष्कप्रमितं भजेत्॥
हन्तिक्षयमुखान् रोगान्कुष्ठरोगं विशेषतः।
गन्धकस्तुल्यमरिचः षड्गुणत्रिफलान्वितः॥
घृष्टः शम्पाकमूलेन पीतश्चाखिलकुष्ठहा।
तन्मूलं सलिले पिष्टं लेपयेत्प्रत्यहं तनौ॥
दृष्टप्रत्यययोगोऽयं सर्वत्राप्रतिवीर्यवान्।
श्रीमतासोमदेवेन सम्यगत्र प्रकीर्तितः॥
क्षाराम्लतैलसौवीरविदाहिद्विदलं तथा।
शुद्धगन्धकसेवायां त्याज्यं योगयुतेन हि॥

शुद्ध गन्धकको घृताक्त (घृतसे चिकने) लोहपात्रमें पिघलाकर घृतसे चिकनी कीहुई करछलीमें निकाल लें।

इसे २ निष्क (८ माशे)की मात्रानुसार सेवन करनेसे क्षय इत्यादि और विशेषतः कुष्ठ रोगोंका नाश होता है।

शुद्ध गन्धक १ भाग, स्याह मिर्च १ भाग और त्रिफला ६ भाग लेकर चूर्ण करके अमलतासकी जड़के रसमे घोटकर रख लीजिए।

इसे (३ माशेकी मात्रानुसार दूधके साथ) सेवन करने और साथ ही अमलतासकी जड़को पीसकर लेप करनेसे समस्त प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं।

श्रीमान् सोमदेव महाशय द्वारा प्रकट, यह प्रयोग अनुभूत और अन्य समस्त प्रयोगोंकी अपेक्षा अत्यन्त प्रभावशाली है।

शुद्ध गन्धक सेवन कालमें क्षार, अम्ल, तैल, सुरा, विदाही पदार्थ [मरिचादि] और सब प्रकारकी दालोंसे परहेज़ करना चाहिए।

(१२४३) गन्धद्रव्याणि (च. द. । वातव्या.)

एलाचन्दनकुङ्कुमागुरु मुराकक्कोलमांसीशटी
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणीध्वजोशीरकम्।
कस्तूरीनखपूतिगन्धजलमुङ्मेथी लवङ्गादिकम्
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु॥

इलायची, सफ़ेद चन्दन, केसर, अगर, मुरामांसी [मुरमुकी], कंकोल, जटामांसी [बालछड़], कचूर, चीड़के पत्ते, ग्रन्थिपर्णी, कपूर, भूरिछरीला, ताल [ताड], खस, कस्तूरी, नख, खट्टाशी [जुन्द बेदस्तर], नागरमोथा, मेथी और लवङ्गादि गन्ध-

नागरमोथा, अरलु (सोना पाठा), सोंठ, धायके फूल, लोध्र, नेत्रबाला, वेलगिरी, मोचरस, पाठा (जलजमनी), इन्द्रजौ, कुड़ेकी छाल, आमकी गुठलीका गर्भ [गिरी], मजीठ और अतीस। समान भाग लेकर चूर्ण बनाएं।

इसे (१ माशेकी मात्रानुसार) शहदमें मिलाकर तण्डुल जल [चावलोंको पानीमें भिगोकर नितारा हुवा जल]के साथ सेवन करनेसे प्रवाहिका (पेचिश) सब प्रकारके अतिसार और ग्रहणी रोग अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते है। यह वृद्ध गङ्गाधर चूर्ण भयङ्कर अतिसारको रोक देता है।

गङ्गाधरचूर्णम् (बृहद्) (भै.र.ग्र.)

रस प्रकरणमें अवलोकन कीजिए।

(१२३५) गङ्गाधरचूर्णम् (भै. र. । ग्रह.)

मुस्तसैन्धवशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवत्सकैः ।
बिल्वमोचरसाभ्याश्च पाठेन्द्रयवबालकैः ॥
आम्रबीजमतिविषा लज्जाचेति सुचूर्णितम् ।
क्षौद्रतण्डुलतोयाभ्यां जयेत्पीत्वा प्रवाहिकाम् ॥
सर्वातिसारशमनं सर्वशूलनिषूदनम् ।
संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकातङ्कमेव च ॥

नागरमोथा, सेंधानमक, सोंठ, धायके फूल, लोध, कुड़ेकी छाल, वेलगिरी, मोचरस, पाठा [जलजमनी], इन्द्रजौ, नेत्रबाला, आमकी गुठलीका गर्भ (गूदा-मज्जा), अतीस और लज्जालु। समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे शहद और चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे प्रवाहिका, सब प्रकारके अतिसार, शूल, संग्रहणी और सूतिका रोगोंका नाश होता है। (मात्रा १॥ से ३ माशे तक। चावलोंका पानी बनानेकी विधि प्रथम भागके परिशिष्टमें देखिए।

(१२३६) गन्धकचूर्णम्

(यो. र. । कुष्ठ, वृ. नि. र. । त्वग्दोष)

गन्धपाषाणचूर्णन्तु कटुतैलेन योजयेत् ।
लेपनादथ पानाद्वा कच्छुपामाविनाशनम् ॥

(शुद्ध) गन्धकके चूर्णको (½ माशेकी मात्रानुसार) कड़वे तेलमें मिलाकर पीने अथवा लेप करनेसे कच्छु और पामा (खुजली) का नाश होता है।

(१२३७) गन्धकयोग. (र. चं. । उप. चि.)

शुद्धं बलिं च त्रिफला समभागानि चूर्णयेत् ।
तत्समं शर्करा ग्राह्या सर्वमेकत्रमर्दयेत् ॥
तच्चूर्णं च त्रिमाषश्च प्रातर्मधुयुतं लिहेत् ।
सप्तकत्रयसेवान्ते उपदंशं विनाशयेत् ॥
सत्यं सत्यं पुनःसत्यं योगोऽयं मुनिभाषितः ॥

शुद्ध आमलासार गन्धक और त्रिफले (हैड़, वहेड़े, आमले)का चूर्ण समान भाग लेकर उसमें सबके बराबर मिश्री मिलाकर खरल करें।

इसे प्रतिदिन प्रातःकाल ३ माशेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे ३ सप्ताहमें उपदंश अवश्य नष्ट हो जाता है।

(१२३८) गन्धक योगः(वृ. यो. त. । त.७३)

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयःपिबेत् ।
विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहपिडिका अपि ॥

(शुद्ध आमलासार) गन्धकके चूर्णको समान भाग गुड़में मिलाकर १ कर्ष (१। तोले) की

मात्रानुसार दूधके साथ सेवन करनेसे बीसों प्रकारकी प्रमेह पिडिकाएं नष्ट हो जाती हैं।

(व्यवहा० मात्रा—१ माशा)

(१२३९) गन्धक योगः (र. र. । र. ख.)

गन्धकं कटुतैलेन घर्मे भाव्यं दिनावधि।
तत्पलार्धं सदाखादेद्दिव्यकायकरं नृणाम्।
जायते स्वर्णवद्देहो वत्सरात्वलिवर्जितः॥

गन्धकके चूर्णको कड़वे तैलमें मिलाकर दिन भर धूपमें रखिये। इसे अर्धपल मात्रानुसार सेवन करनेसे शरीर कान्तिवान् (त्वग्रोग रहित) हो जाता है। यदि एक वर्ष पर्यन्त निरन्तर सेवन किया जाय तो मनुष्यकी देह काञ्चनसदृश सुन्दर और वलि (झुर्री) रहित हो जाती है।

(प्र० वि०:—तैल इतना डालना चाहिए कि गन्धकसे एक अंगुल ऊपर रहे। व्यवहारिक मात्रा=१ माशा तक। अनुपान=गोदुग्ध।)

(१२४०-४२) गन्धक प्रयोगाः

(र. र. स. । पू. ख. अ. ३)

घृताक्ते लोहपात्रे तु विद्रुतं शुद्धगन्धकम्।
घृताक्तदर्विकाक्षिप्तं द्विनिष्कप्रमितं भजेत्॥
हन्तिक्षयमुखान् रोगान्कुष्ठरोगं विशेषतः।
गन्धकस्तुल्यमरिचः षड्गुणत्रिफलान्वितः॥
घृष्टः शम्पाकमूलेन पीतश्चाखिलकुष्ठहा।
तन्मूलं सलिले पिष्टं लेपयेत्प्रत्यहं तनौ॥
दृष्टप्रत्ययोगोऽयं सर्वत्राप्रतिवीर्यवान्।
श्रीमतासोमदेवेन सम्यगत्र प्रकीर्तितः॥
क्षाराम्लतैलसौवीरविदाहिद्विदलं तथा।
शुद्धगन्धकसेवायां त्याज्यं योगयुतेन हि॥

शुद्ध गन्धकको घृताक्त (घृतसे चिकने) लोहपात्रमें पिघलाकर घृतसे चिकनी कीहुई करछलीमें निकाल लें।

इसे २ निष्क (८ माशे)की मात्रानुसार सेवन करनेसे क्षय इत्यादि और विशेषतः कुष्ठ रोगोंका नाश होता है।

शुद्ध गन्धक १ भाग, स्याह मिर्च १ भाग और त्रिफला ६ भाग लेकर चूर्ण करके अमलतासकी जड़के रसमे घोटकर रख लीजिए।

इसे (३ माशेकी मात्रानुसार दूधके साथ) सेवन करने और साथ ही अमलतासकी जड़को पीसकर लेप करनेसे समस्त प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं।

श्रीमान् सोमदेव महाशय द्वारा प्रकट, यह प्रयोग अनुभूत और अन्य समस्त प्रयोगोंकी अपेक्षा अत्यन्त प्रभावशाली है।

शुद्ध गन्धक सेवन कालमें क्षार, अम्ल, तैल, सुरा, विदाही पदार्थ [मरिचादि] और सब प्रकारकी दालोंसे परहेज़ करना चाहिए।

(१२४३) गन्धद्रव्याणि (च. द. । वातव्या.)

एलाचन्दनकुङ्कुमागुरु मुराककोलमांसीशटी
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणीध्वजोशीरकम्।
कस्तूरीनखपूतिगन्धजलमुञ्मेथी लवङ्गादिकम्
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु॥

इलायची, सफ़ेद चन्दन, केसर, अगर, मुरामांसी [मुरमुकी], कंकोल, जटामांसी [बालछड़], कचूर, चीडके पत्ते, ग्रन्थिपर्णी, कपूर, भूरिछरीला, ताल [ताड], खस, कस्तूरी, नख, खट्टाशी [जुन्द बेदस्तर], नागरमोथा, मेथी और लवङ्गादि गन्ध-

द्रव्य कहलाते हैं। यह सब द्रव्य विष्णुतैलादिमें प्रयुक्त करने चाहिएं।

(१२४४) गन्धद्रव्याणि (भै. र.। वा. व्या.)

कुष्ठश्च नलिका पूतिरुशीरं श्वेतचन्दनम्।
जटामांसी तेजपत्रं नखी मृगमदः फलम् ॥
कक्कोलं कुङ्कुमं चोचं लताकस्तूरिका वचा।
सूक्ष्मैलागुरुमुस्तश्च कर्पूरं ग्रन्थिपर्णिकम् ॥
श्रीवासःकुन्दुरुर्देवकुसुमं गन्धमात्रिका।
सिह्लको मिषिका मेथी भद्रमुस्तं तथा शटी ॥
जातिकोषं शैलजश्च देवदारु सजीरकम्।
एतानि गन्धद्रव्याणि तैलपाकेषु युक्तितः ॥

कूठ, नाली, जुन्दवेदस्तर, खस, सफेदचन्दन, जटामांसी, तेजपात, नखी, कस्तूरी, जायफल, कंकोल, केशर, दालचीनी, लताकस्तूरी, वच, छोटी इलायची, अगर, नागरमोथा, कपूर, ग्रन्थिपर्णी, श्रीवास [धूपसरल], कुन्दुरु, लौंग, गन्ध मात्रिका, शिलारस, सोया, मेथी, मोथा, कचूर, जावत्री, भूरी छरीला, देवदारु और जीरा। यह गन्धद्रव्य है। इन्हे तैलपाकमें प्रयुक्त करना चाहिए।

(१२४५) गर्भस्तम्भनः प्रयोगः

(र. थ. । अ. ९)

समभागं सितायुक्तं शालितण्डुल चूर्णकम्।
उदुम्बरशिफाक्वाथे पीतं गर्भं सुरक्षति ॥

समान भाग चावल और मिश्रीके चूर्णको गूलरकी जड़की छालके काथके साथ सेवन करनेसे गर्भ सुरक्षित रहता है।

[मात्रा—६ माशेसे १ तोले तक।]
[गूलरकीछाल २ तोले लेकर ऽ॥ पानीमें पकावें।]

(१२४६) गर्भस्तंभनः प्रयोगः [र.मं.।अ.९]

पतन्तं स्तंभयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका।
मधुच्छागीपयःपीत्वा किंवाश्वेताद्रिकर्णिका ॥
ललना शर्करा पाठा कन्दश्च मधुनान्वितः।
भक्षितो वारयत्येव पततं गर्भमंजसा ॥

कुम्हारके यहांकी (कमाईहुई, तैयार) मिट्टी, शहदमें मिलाकर बकरीके दूधके साथ पीनेसे, अथवा सफेद कनेर, नेत्रवाला (या चिरौंजी), खांड, पाठा (जलजमनी) और विदारीकन्दके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे गिरता हुवा गर्भ रुक जाता है।

(१२४७) गवाक्षी चूर्णम् (वं. से. । विष.)

गवाक्षीबिल्वकाकोलीतिलमूलाः सशर्कराः।
मध्वाज्यसंयुताः पीताः मूषिकाविषनाशनाः ॥

इन्द्रायन, वेल, काकोली, तिलकी जड़ और खांडके चूर्णको शहद और घीमे मिलाकर पीनेसे मूषक (चूहेका) विष नष्ट हो जाता है।

(१२४८) गवाक्ष्यादि चूर्णम्

(च. सं. । उदर. चि)

गवाक्षीं शङ्खिनीं दन्तीं तिल्वकस्य त्वचं वचाम्।
पिबेद्द्राक्षाम्बुगोमूत्रकोलकर्कन्धुशीधुभिः ॥

इन्द्रायन, शङ्खाहोली (शंखपुष्पी), दन्तीमूल, लोध, और वचके चूर्णको अंगूरके रस, गोमूत्र, कोल, कर्कन्धु (वेर) से निर्मित सीधुके साथ सेवन करनेसे उदर रोग नष्ट होते हैं।

(१२४९) गाढीकरणयोगः

(यो. स. । ५ समुद्देशः)

वेतसस्य च मूलानिकाथयेन्मृदुवह्निना।
भगप्रक्षालनात्तेन गाढत्वमुपगच्छति ॥

मन्दाग्नि पर बनाए हुए वेतकी जड़के क्वाथसे धोनेसे स्त्रीके गुह्य अङ्गकी शिथिलता नष्ट होती है।

(१२५०) गाढीकरणयोगः

(यो. र. । ५ समुद्देशः)

वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरीचानि तथैव च।
अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥

बच, नीलोफर, कूठ, काली मिर्च, असगन्ध और हल्दीके क्वाथसे प्रक्षालन करनेसे स्त्रीके गुह्य अङ्गकी शिथिलता दूर होती है।

(१२५१) गुडक्षारयोगः (ग.नि.।मू.कृ.२७)

गुडेन मिश्रितं क्षारं कदुष्णं कामतःपिबेत्।
मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगजित् ॥

यवक्षारको गुड़में मिलाकर (उष्ण जलके साथ) पीनेसे सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्र और शर्करा (पेशावकी रेग) तथा वातज रोग नष्ट होते है।

(१२५२) गुडचतुष्टयः (शा. सं.)

आमेषु सगुडां शुण्ठीमजीर्णेषु गुडपिप्पलीम्।
कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यादर्शःसु सगुडाभयाम् ॥

आममें गुड और सोठ, अजीर्णमें गुड़ और पीपल, मूत्रकृच्छ्रमें जीरा और गुड़ तथा अर्शमें गुड़ और हर्र मिलाकर खिलाना चाहिये।

(१२५३) गुडजीरकयोगः (वृ.नि र.। ज्वर.)

जीरकं गुडसंयुक्तं विषमज्वरनाशनम्।
अग्निमांद्यं जयेच्छीतं वातरोगहरं परम् ॥

जीरके चूर्णको गुड़में मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर, अग्निमांद्य, शीत और वातरोग नष्ट होते है। (प्र. वि.—प्रत्येक वस्तु ३ से ६ माशेतक लेकर दिनमें ३—४ बार उष्ण जलसे सेवन करे।)

(१२५४) गुडदीप्यकयोगः (वृं.मा.।शी.पि.)

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः।
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥

अजवायनके चूर्णको गुड़में मिलाकर पथ्य-पालन पूर्वक सेवन करनेसे १ सप्ताहमें सर्वाङ्गगत उदर्द रोग (रक्त विकारज रोग विशेष) नष्ट हो जाता है।

(१२५५) गुडबिल्वम् (आ. वे. वि.। अ.२१, भा. प्र, भै. र. । अति, हा. सं. । स्थान ३ अ. ३, धन्व. । अति.)

गुडेन खादितं बिल्वं रक्तातीसारनाशनम्।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥

बेल गिरीके चूर्णको गुड़में मिलाकर सेवन करनेसे रक्तातिसार, आम, शूल, मलावरोध और कुक्षिशूलका नाश होता है।

(१२५६) गुडशुण्ठ्यादि योगः

(ग. नि., भा. प्र. । अति.)

गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां
पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा।
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु,
वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥

आम, अजीर्ण, गुदरोग, (बवासीर इत्यादि) और कब्जमें, नित्य प्रति सोठ, दन्तीमूल, हर्र और दाड़िममेसे किसी एकका चूर्ण गुड़में मिलाकर सेवन करना चाहिए।,

(मात्रा—३ माशे। अनुपान--उष्णजल)।

(१२५७) गुडहरीतकीयोगः

(ग. नि., बं. से. । अर्श.)

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छूकण्डूरुजापहा।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाऽभया ॥

हर्रके चूर्णको गुड़के साथ सेवन करनेसे पित्त, कफ, कच्छू, कण्डू (खुजली) और अर्श (ववासीर)का नाश होता है।

(१२५८) गुडादि चूर्णम् (१) (वृ.नि.र.। वा.रो.)

सगुडं नागरं विल्वं यः खादति हिताशनः।
त्रिदोषग्रहणीरोगान्मुच्यते नात्र संशयः ॥

सोठ और वेलगिरीके चूर्णको गुड़में मिलाकर पथ्यपालन पूर्वक सेवन करनेसे त्रिदोषज संग्रहणी अवश्य नष्ट हो जाती है।

(प्र. वि.:—सोठ और वेलगिरी १॥-१॥ माशा तथा गुड़ ३ माशे मिलाकर दिनमें ३-४ वार उष्ण जलसे सेवन करें)

(१२५९) गुडादि चूर्णम् (२)

(वृं० मा०, वृ. नि. र., वं. से., यो. र., ग. नि. शोथ ३३)

गुडपीप्पलीशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम्।
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥

गुड, पीपल और सोठका चूर्ण; सूजन, आमाजीर्ण और शूलनाशक तथा वस्तिशोधक है

(१२६०) गुडादि चूर्णम् (३) (भा.प्र.।शो.चि.)

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गवेरपलत्रयम्।
शृङ्गवेरसमा कृष्णा लोहविट्तिलयोः पलम् ॥
चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथु नाशनम् ॥

गुड ३ पल (१५ तोले), अदरक (सोठ), ३ पल, पीपल ३ पल और मण्डूर (भस्म) तथा तिल १-१ पल लेकर चूर्ण बना लीजिए। इसके सेवनसे सर्व प्रकारके शोथ नष्ट होते हैं।

(मात्रा—४ माशे। अनुपान—त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र वा उष्ण जल)

(१२६१) गुडादि मण्डूरम्

(र. का. धे., भा० प्र., यो. र., वं. से.। शू., वृ. यो. त.। त. ८५)

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम्।
त्रिपलं लोहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा ॥
समालोड्य समश्नीयादक्षमात्रप्रमाणतः।
आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥
अन्नद्रवं जरत्पित्तं परिणामरुजन्तथा ॥

गुड़, आमला, और हर्रका चूर्ण १-१ पल (५ तोले) और मण्डूर भस्म ३ पल लेकर एकत्र मर्दन कर लीजिए।

इसे प्रतिदिन १ कर्ष (१। तोला) की मात्रानुसार शहद और घीमें मिलाकर भोजनके आदि, मध्य और अन्तमें सेवन करनेसे अन्नद्रवशूल, जरत्पित्त और परिणाम शूल नष्ट होता है।

(१२६२) गुडादि योगः

(यो. र.। पीन., वृ. यो. त.। त. १३०)

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकामम्।
हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ॥
यदि तु सघृतमन्नं श्लक्ष्णगोधूमचूर्णैः।
कृतमुपहरतेऽसौ तत्कुतोऽस्यावकाशः ॥

गुड़ और मिर्च (स्याह मिर्च) के चूर्णको दहीमें मिलाकर यथेच्छ मात्रामें पीनेसे कष्टसाध्य पीनस भी नष्ट हो जाती है।

यदि इस प्रयोगके साथ साथ महीन गोधूम चूर्ण (वारीक गेहूंके आटे) से निर्मित अन्नमें घृत

डालकर (हलवा बनाकर) सेवन कियाजाय तो फिर तो पीनस होनेकी सम्भावना ही नहीं रहती।

(१२६३) गुडाद्यं चूर्णम् (वं. से.। अर्श.)

गुडभल्लातकं शुण्ठीं विडङ्गं वृद्धदारुकम्।
त्रिगुणं दीपनं वृष्यमर्शसो विड्बन्धनुत्॥

गुड़, भिलावा (शुद्ध), सोंठ, और बायबिडंग प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।

यह चूर्ण तीन गुण युक्त है। दीपन (अग्नि-वर्द्धक), वृष्य और अर्श संबन्धी मलावरोध नाशक। (मात्रा—३ माशे। उष्ण जल अथवा त्रिफलाक्काथ के साथ सेवन करें।)

१२६४) गुडामलकयोगः (वृं.मा.;ग.नि.।मू.कृ.२८)

गुडेनाऽमलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं प्रियम्।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम्॥

गुड़में मिलाकर आमलेके चूर्णका सेवन करनेसे वीर्य वृद्धि होती है, थकावट दूर होती है, शरीरमें स्फुर्ति और नवीनता का आभास होता है तथा रक्तपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है।

(१२६५) गुडार्द्रकयोगः

(यो.र., च.द., वृं.मा.। शोथ, वृ.यो.त.। त०१०६)

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा;
गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा।
कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं;
खादेन्नरः पक्षमथापि मासम्॥
शोफप्रतिश्यायगलास्य रोगान्;
सश्वासकासारुचिपीनसादीन्।
जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्;
हन्यात्तथान्यानपि वातरोगान्॥

अद्रक, सोंठ, हैड़ और पीपल में से किसी एक वस्तुके चूर्णको गुड़में मिलाकर १५ दिन अथवा १ मास पर्यन्त प्रतिदिन १–१ कर्ष (१। तोले) मात्रा बढाकर १२ तोलेकी मात्रा पर्यन्त खावे। इस प्रकार सेवन करनेसे सूजन, जुकाम, गले और मुखके रोग, श्वास, खांसी, अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, बवासीर और ग्रहणी विकारादि तथा अन्य वातज रोगोंका नाश होता है।

(प्र. वि.—१२ कर्ष मात्रातक पहुंचने के पश्चात् प्रतिदिन १–१ कर्ष मात्रा घटानी चाहिए।)

यदि १२ कर्ष मात्रा सहन न हो सके तो रोगी और रोगके बलाबलका विचार करके अधिकसे अधिक जितनी मात्रा सहन हो सके उतनी तक बढाना चाहिए अथवा एक कर्षके स्थानमें आधा या चौथाई कर्ष मात्रा नित्य बढ़ानी चाहिए। अनुपानमें उष्ण जलका व्यवहार किया जा सकता है।

(१२६६) गुडार्द्रकाद्यास्त्रयो योगाः

(ग. नि.। शो०)

गुडार्द्रकं वाऽथ सदारुविश्वं
सनागरं वाऽथ किराततिक्तम्।
योगत्रयं श्रेष्ठतमं प्रदिष्ट
मित्यौषधं शोफहरं नराणाम्॥

(१) गुड़ और अदरक। (२) गुड़, देवदारु और सोठ। तथा (३) गुड, सोठ और चिरायता। यह तीनों योग शोथ रोगके लिए अत्यन्त प्रभावशाली है।

(१२६७) गुडाष्टकम्

(वृ. यो. त.। त.७१, वृ. नि. र.। अजी., र. र.। उदा०, वं. से.। उदा०)

व्योषदन्तीत्रिवृच्चित्राकृष्णामूलं विचूर्णितम्।
तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः॥
एतद्गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्धनम्।
शोथोदावर्त्तशूलघ्नं प्लीहपाण्ड्वामयापहम्॥

त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), दन्तीमूल, निसोत, चीतेकी जड़की छाल और पीपलामूल। समान भाग लेकर चूर्ण करके गुड़में मिलाकर प्रातःकाल सेवन करनेसे बल, वर्ण, अग्निकी वृद्धि तथा शोथ, उदावर्त, शूल, तिल्ली, और पाण्डु रोगका नाश होता है।

प्र. वि.—गुड सबके बराबर मिलाकर ३ माशेसे ६ माशे तककी मात्रानुसार उष्ण जलके साथ सेवन करना चाहिए।

(१२६८) गुडूचीलौहम्

(र. का. धे., भै. र.। वा. र., रसे. चि.। अ. ९; र. रा. सुं, रसें. सा. सं। पित. रो.)

गुडूचीसत्वसंयुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः।
वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वरोगहरं तथा॥

गिलोयका सत, सोठ, मिर्च, पीपल, हड़, बहेडा, आमला, दालचीनी, तेजपात, और नागकेसर १-१ भाग तथा शुद्ध लोहचूर्ण (अथवा भस्म) १० भाग लेकर चूर्ण करके (शहद और घृतमें मिलाकर) सेवन करनेसे वातरक्त तथा इसके अनुबंधी सब रोग नष्ट होते है।

(१२६९) गुडूच्यादि चूर्णम् (वृ नि.र.।शू.रो)

पीतमुष्णाम्भसा चूर्णं, गुडूचीमरिचोद्भवम्।
हृच्छूलं वातशूलञ्च हन्ति पथ्याशनो नरः॥

पथ्यपालन पूर्वक गिलोय और मिर्चका चूर्ण मिलाकर गरम पानीके साथ पीनेसे हृदयका शूल और वातज शूल नष्ट होते हैं।

नोट—इसी ग्रन्थमें अन्यत्र कथित इसी प्रयोग को जम्बीरी नीम्बूके साथ सेवन करनेका विधान है।

(१२७०) गुडूच्यादिगणः (हा. सं.। क्ष.रो.)

गुडूचीं च बले द्वे च, धात्री च मरिचानि च।
चूर्णं गुडेन संयुक्तं राजयक्ष्मापहं नृणाम्॥

गिलोय, खरैटी, कंघी, आमला और मिर्चके चूर्णको गुड़के साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा का नाश होता है।

(१२७१) गुडूच्यादि चूर्णम् (१) (यो.चि.।वाजी.)

सत्वं गुडूच्या गगनं सलौहं,
एलासिताभागधिका समेतम्।
एतत्समस्तं मधुनावलीढं,
रामाशतं सेवयतीह षण्ढः॥

गिलोय का सत्व, अभ्रकभस्म, लोह भस्म, इलायची, मिश्री और पीपल समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए। इसे शहद में मिला कर (आध माशेकी मात्रानुसार) सेवन करनेसे नपुंसक मनुष्यमें भी इतनी अधिक कामशक्ति उत्पन्न हो जाती है कि वह सैकड़ो स्त्रियो के साथ रमण कर सकता है।

(१२७२) गुडूच्यादि चूर्णम् (२) (भै.र.। प्ली.)

गुडूच्यतिविषाशुण्ठीभूनिम्बो यवतिक्तकम्।
मुस्तकृष्णायवक्षारः कासीसं भ्रमरातिथिः॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत्।
यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमग्निमान्द्यरोचकम्॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
नानादेशोद्भवं चैव वारिदोषभवं तथा॥
विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति॥

गिलोय, अतीस, सोंठ, चिरायता, यवतिक्ता, मोथा, पीपल, यवक्षार, कसीस और चम्पा। सब औषधियां समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए। यह यकृत्, प्लीहा, पाण्डुरोग, अग्निमांद्य, अरोचक, आठ प्रकारके साध्य तथा असाध्य ज्वर, नाना देशोके जलदोषसे उत्पन्न ज्वर तथा विरुद्ध औषध से उत्पन्न ज्वरको शीघ्र नष्ट कर देता है।

(१२७३) गुडूच्यादि चूर्णम् (३) (वं.से.।श्ली.)

पिबेदेवं गुडूचीं वा नागरं भद्रदारु च।
पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये॥

गिलोय अथवा सोठ और देवदारुके चूर्ण को सरसो के तेलके साथ पीनेसे श्लीपद रोग नष्ट होता है।

(१२७४) गुडूच्यादि प्रयोगः (यो.र.।मेद.)

गुडूचीभद्रमुस्तानां प्रयोगस्त्रैफलस्तथा।
तक्रारिष्टप्रयोगश्च प्रयोगो माक्षिकस्य च॥

गिलोय, भद्रमुस्ता (नागरमोथा), त्रिफला, तक्रारिष्ट अथवा शहद सेवन करनेसे मेद रोग नष्ट होता है।

(१२७५) गुडूच्यादि रसायनचूर्णम्
(वृं. मा.। रसा., यो.चिं.। चूर्ण अ.; वंग. से.। रसा.)

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी
वचाभयाशुण्ठिशतावरी समम्।
घृतेन लीढं प्रकरोति मानवं
त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम्॥

गिलोय, चिरचिटा, बायविड़ंग, शंखाहोली (शंखपुष्पी), बच, हर्र, सोंठ और शतावर समान भाग लेकर चूर्ण करें। इसे घृतमें मिलाकर चाटनेसे ३ दिनमें ही स्मरण शक्ति इतनी हो जाती है कि प्रतिदिन १ सहस्र श्लोक कण्ठ किए जा सकते है।

प्र. वि.:—३ माशा चूर्ण १ तोला घृतमें मिलाकर प्रातः सायं चाट कर ऊपरसे मिश्री युक्त दूध पीना चाहिए।

१ ब्राह्मी वचेति पाठभेदः।

(१२७६) गुल्मनाशकचूर्णम् (च. सं.)

त्रुटिं सुराह्वां लवणानि पञ्च,
यवाग्रजं कुन्दुरुकाश्मभेदौ।
कम्पिल्लकं गोक्षुरकस्य बीज-
मेर्वारुबीजं त्रपुषस्य बीजम्॥
चूर्णीकृतं चित्रकहिङ्गुमांसी
यवानितुल्यं त्रिफला द्विभागम्।
अम्लैः सशुक्तैः रसमद्ययूषैः
पेयं हि गुल्माश्मरीभेदनार्थम्॥

छोटी इलायची, देवदारु, पांचो नमक, यवक्षार, कुन्दरु, पत्थरचटा, कमीला, गोखरु, ककड़ी और खीरेके बीज, चीता, हींग, जटामांसी और अजवायन एक एक भाग तथा त्रिफला दो भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे काञ्जी, शुक्त, मधु अथवा यूषके साथ पीनेसे गुल्म और अश्मरीका नाश होता है।

(१२७७) गुल्महरचूर्णम् (यो. त.। त. ४५)

क्षारद्वयानलव्योषनीलीं लवणपञ्चकम्।
चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम्॥

दोनों क्षार (सज्जी क्षार, जवाखार), चीता, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), नील और पांचो लवण। (समान भाग लेकर) चूर्ण करके घृतमें

मिलाकर पीनेसे सर्व प्रकारके गुल्म और उदररोग नष्ट होते हैं।

(प्र. वि.:—२ माशा चूर्ण १—१ तोला घृतमें मिलाकर प्रात.सायं सेवन करे।)

(१२७८) गुह्यदौर्गन्ध्यनाशनः योगः

(यो. स. । स. ५ ।

उशीरमांसीजलचन्दनैश्च सपद्मकैः केसरकुष्ठयुक्तैः।
त्रिरात्रिमुद्वर्तनकं वराङ्गप्रक्लेददुर्गन्धविनाशहेतुः॥

खस, जटामांसी, सुगन्धवाला, सफेदचन्दन, पद्माख, केसर (ज़ाफरान या नागकेशर) और कूठ समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए। इसे मर्दन करने से स्त्रियोके गुह्य भाग की दुर्गन्ध और क्लेद(आर्द्रता)का ३ दिनमें नाश हो जाता है।

(१२७९)गृहधूमादि चूर्णम्(१) (वं.से.।विष.अ.)

गृहधूमं हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम्।
अपि वासुकिना दंष्ट्रः पिबेद्दधिघृतप्लुतम्॥

घरका धुवां, दोनो हल्दी (हल्दी, दारुहल्दी) और मूल सहित चौलाई का पौदा समान भाग लेकर पीसकर दही और घृतमें मिलाकर पिलाना सर्प दंश (सांपसे काटे हुवे रोगी) के लिए हितकर है)

(१२८०)गृहधूमादि चूर्णम्(२) (वं.से.।व्र.रो अ.)

गृहधूमः सलवणः सकिण्वतिलचित्रकः।
मेदोदुष्टव्रणान्याशु शोषयेन्मधुमिश्रितः॥

घरका धुवां, सेंधानमक, सुराबीज और तिल (अथवा तिलकी खल) और चित्रकके चूर्ण को शहदमें मिलाकर लेप करनेसे (अथवा इनकी पट्टी लगानेसे) मेदसे दुष्ट व्रण शीघ्र शुष्क हो जाते हैं।

(१२८१) गैरिकादि चूर्णम्

(यो. र. । यो. कन्द. चि.)

गैरिकाम्रास्थिजठररजन्यञ्जनकट्फलाः।
पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः॥

गेरु, आमकी गुठलीकी गिरी, (गर्भ), हल्दी, सुरमा (अथवा रसौत) और कायफल के चूर्णको शहदमें मिलाकर योनिमें भरनेसे योनिकन्द नष्ट होता है।

(१२८२) गोक्षुरचूर्णम्

(यो. र. । नपुंसका., वं. से. । रसा.)

शमयति गोक्षुरचूर्णं छागक्षीरेण साधितं समधु।
शुक्रं क्षपयति पाण्ढ्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण॥

गोखरू के चूर्णको बकरी के दूधमें पकाकर मधु मिलाकर पीनेसे कुप्रयोगो से उत्पन्न हुआ नपुंसकत्व नष्ट होता है।

१२८३)गोक्षुरादिचूर्णम्(१)(हा.सं.स्था३अ.३५)

गोक्षुरकस्य बीजानां धातुमाक्षिकं संयुतम्।
चूर्णं महिषीदुग्धेन पानं चाश्मरिपातनम्॥

गोखरू और सोनामक्खीके चूर्ण (भस्म) को भैंसके दूधके साथ सेवन करनेसे अश्मरी (पथरी) निकल जाती है।

(१२८४) गोक्षुरादि चूर्णम् (२)

(नपुंसका. त. ३ यो. त. । त. ८४)

गोक्षुरकःक्षुरकःशतमूली—
वानरीनागबलाऽतिबला च।
चूर्णमिदं पयसा निशि पीतं
वाजिकरं परम मनुजानाम्॥

गोखरु, तालमखाना, शतावर, कौंचके बीज, नागबला (खरैंटी भेद) और खरैंटी के चूर्ण को

रात्रिके समय दूधके साथ सेवन कीजिए। अह अत्यन्त वाजीकरण है।

(१२८५) गोक्षुरादिचूर्णम् (३) (वा.भ.।वाजी०)

श्वदंष्ट्रेक्षुरमाषात्मगुप्तबीजशतावरी।
पिबन्क्षीरेण जीर्णोऽपि गच्छति प्रमदाशतम्॥

गोखरु, तालमखाना, उड़द, कौचके बीज और शतावर के चूर्णको दूधमें मिलाकर पीनेसे वृद्ध पुरुषमें भी सैंकड़ों स्त्रियोके साथ रमण करनेकी शक्ति आ जाती है।

(१२८६) गोक्षुरादि पञ्चमूलम् (नि. र.)

गोक्षुरो बदरी चेन्द्रवारुणी कासमर्दिका।
गोक्षुराद्यं पञ्चमूलं शिरीषेण समन्वितम्॥
गोक्षुरादिकपञ्चानां मूलं कुष्ठार्शनाशनम्।
वृष्यं वातं कफं गुल्मं व्रणं चामञ्च नाशयेत्॥

गोखरू, बेर, इन्द्रायण, कसौंदी और सिरस। इन पांचोंकी जड़के समूहका नाम "गोक्षुरादि पञ्चमूल" है। यह कुष्ठ, अर्श, वात, कफ, गुल्म, व्रण तथा आम नाशक और वृष्य है।

(१२८७) गोजिह्वादि चूर्णम् (वृ.नि.र.। ज्व.)

गोजिह्वा च जपामूलं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा।
पीतं शीतज्वरं हन्ति पाठाद्भिर्मरिचानि च॥

गोभी और जपा (गुडहर)की जडको तण्डुल जलमें पीसकर अथवा पाठाके काथमें मिर्च मिलाकर पीनेसे शीतज्वर नष्ट होता है।

(१२८८) गोधूम चूर्णम् (यो.र.,वृ.यो.त ।भग्न चि.)

ईषद्विदग्धगोधूमचूर्णं पीतं समाक्षिकम्।
कटिसन्धिषु भग्नेषु भग्नेष्वस्थिषु पूजितम्॥

किञ्चिद् दग्ध (अधजले) गेहूंका चूर्ण शहदमें मिलाकर पीनेसे कमर, सन्धि और हड्डीके टूटनेमें अत्यन्त हित करता है।

(१२८९) गोधूमपार्थचूर्णम् (वृं. मा. । हृ.)

तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थजं वाऽपि।
पिबति पयोनु च स भवेज्जितसकलहृदामयः पुरुषः॥

गेहूं या अर्जुनकी छालके चूर्णको तैल, घृत और गुड़में पकाकर दूधके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके हृद्रोग नष्ट होते है।

(१२९०) गोधूमादिचूर्णम् (१)

(वृं. मा.; वृ. नि. र. । हृ. रोग)

गोधूमककुभचूर्णं छागपयोगव्यसर्पिषा पक्वम्।
मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम्॥

गेहूं और अर्जुनकी छालके चूर्णको बकरीके दूध और गायके घृतमें पकाकर (ठण्डा होनेपर) शहद और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त प्रवृद्ध हृद्रोग भी नष्ट हो जाता है।

(१२९१) गोधूमादिचूर्णम् (२) (वृ.नि.र.।स्नायु.)

गोधूमशणबीजस्य चूर्णं ग्राह्यं समांशकम्।
घृतपक्वं गुडेनात्तं त्रिदिनात्स्नायुकापहम्॥

गेहूं और सनके बीजोके समान भाग चूर्णको घीमें पकाकर गुडमें मिलाकर ३ दिन तक सेवन करनेसे स्नायुक (नहरुआ) नष्ट हो जाता है।

(१२९२) गोमूत्रमण्डूरम् (वं.से.,यो र.।शो.)

गोमूत्रसिद्धमण्डूरं सुरसीरसभावितम्।
माणकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत्॥
त्रिफला कटु चव्यानां चूर्णं पाणितलद्वयम्।
निहन्ति सर्वजं शोफं सर्वाङ्गं च विशेषतः॥

गोमूत्र–सिद्ध मण्डूरको तुलसी, मानकन्द और अद्रकके स्वरसकी भावना देकर उसमें सम भाग मिश्रित त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), कुटकी

और चव्यका चूर्ण (मण्डूर के बराबर) मिला लीजिए।

इसे २ कर्ष की मात्रानुसार सेवन करने से सर्वदोषज और विशेषतः सर्वाङ्गगत शोथ नष्ट होता है।

(१२९३) गोमूत्रसिद्धमण्डूरम्

(च. द. । शूला० २६)

गोमूत्रसिद्धं मण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥

गोमूत्र-सिद्ध (गोमूत्रमें पक्व) मण्डूर और हर्र, बहेड़ा तथा आमलेका चूर्ण समान भाग मिलाकर घी शहदके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है।

(१२९४) गोमूत्रहरीतकीयोगः (वृ.नि.र.।पां.)

त्रिसप्ताहं गवां मूत्रैरभयां च विभावयेत् ।
एकैका भक्षिता नित्यं पाण्डुरोगविनाशिनी ॥

(पीली-बड़ी) हैड़ोंको २१ दिनतक गोमूत्रमें भिगोए रखनेके बाद नित्य प्रति १ हैड़ (पीस कर-उष्ण जलके साथ) सेवन करनेसे पाण्डु रोग नष्ट होता है।

(प्र. वि.—हैड़ों को गुठली रहित करके भिगोना चाहिए और प्रतिदिन नया गोमूत्र बदलते रहना चाहिए।

(१२९५) गोरोचनचूर्णम् (१) (र.र.। विष.)

नृणां मूत्रेण संपिष्टो गोपित्तमधुसंयुतः ।
शृगालैरथमार्जारैर्मण्डूकैरथवाहिभिः ॥
कालेनापि हि दष्टस्य मृतसञ्जीवनो ह्ययम् ॥

गोरोचनको मनुष्यके मूत्रमें पीसकर शहदमें मिलाकर प्रयुक्त करनेसे, गीदड़, बिल्ली, मेंडक और सांपका विष नष्ट होता है।

(१२९६) गोरोचनचूर्णम् (२) (यो.र.,भा.१।ज्वर.)

गोरोचनं च मरिचं रास्ना कुष्ठं च पिप्पली ।
उष्णोदकेन पीतं च सर्वज्वरविनाशनम् ॥

गोरोचन, स्याह मिर्च, रास्ना, कूठ और पीपलके चूर्ण को (३ माशेकी मात्रानुसार) उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

(१२९७) गोरोचनादि चूर्णम् (३) (यो.र.।ने.रो.)

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ।
प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगणे इष्यते ॥

लगण [नेत्रकी पलकमें होनेवाली फुंसी (पिडिका) विशेष] के फूट जाने पर गोरोचन, यवक्षार, तूतिया और पीपलमेंसे किसी एकके चूर्णको शहदमें मिलाकर प्रतिसारण करना (रगड़ना) चाहिए।

(१२९८) गोशृङ्गवचादिचूर्णम् (वै.म.।पटल१६)

महिषीनवनीतयुतं गोशृङ्गवचाश्वगन्धबहुलम् ।
दिनकरतप्तं कुर्यादंसस्थललम्बिनौ कर्णौ ॥

गायकासींग, वच और असगन्धके चूर्णको भैंसके घृतमें मिलाकर थोड़े समय तक धूपमें रक्खा रहने दीजिए।

इसकी मालिश करनेसे कान बहुत अधिक बड़े हो जाते हैं।

(१२९९) ग्रन्थिकादि चूर्णम् (वृ.नि.र.। का०)

ग्रन्थिकमागधिमहौषधै रुचितं-
चूर्णमिदं मधुना युतम् ।
हरति कासभवं दरमाततं
विविधदोषहरं च निषेवितम् ॥

पीपलामूल, पीपल और सोंठके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे खांसीसे उत्पन्न होनेवाले विकार नष्ट होते है।

(१३००)ग्रन्थिकाद्यं चूर्णम् (ग.नि.।ग्र०रो०३)

सग्रन्थिकं त्रिकटुकं लवणत्रयं च
क्षारद्वयं सचविकं च सचित्रकं च।
साजाजीदीप्यमिशिहिङ्गु विधाय चूर्णम्
सद्बीजपूरकरसप्लुतमेतदेषाम् ॥
तक्रेण कोष्णसलिलेन तुषाम्बुना वा
पीतं कुलत्थयवकोलरसेन चापि।
मन्दानलेषु नृषु दीप्तिकरं ग्रहण्या-
मर्शस्सु गुल्मिषु च भेषजमेतदेव ॥

पीपलामूल, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), सेंधानमक, कालानमक, सांभरनमक, जवाखार, सज्जीखार, चव, चीता, जीरा, अजवायन, सौंफ, और हींग (घीमें भुना हुवा) समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए और फिर उसे बिजौरे नींबूके रसमें घोटकर रख लीजिए।

इसे (१॥ माशेकी मात्रानुसार) तक्र, किञ्चिदुष्णजल, काञ्जी, जौके अथवा कुलथीके क्वाथ के साथ सेवन करनेसे मन्दाग्नि दीप्त होती है और अर्श तथा गुल्म रोग नष्ट होता है।

ग्रहणीशार्दूलचूर्णम् (भै. र.। ग्रहण्य०)
रस प्रकरणमें अवलोकन कीजिए।

ग्रीष्मर्तौ विरेचनम् (यो. त.। ७ त.)
त्रिवृद्विरेचन अवलोकन कीजिए।

इति गकारादि चूर्णप्रकरणम्।

अथ गकारादि गुटिकाप्रकरणम्

गगनगर्भा वटी (र.र.स. उ.ख.। अ० २१)
(रस प्रकरणमें देखिए।)

गगनगर्भिता वटी (र. का. धे.। अ० ३७)
(रस प्रकरणमें देखिए।)

गगनादि वटी (र. सा. सं. वातव्या.)
(रस प्रकरणमें देखिए।)

(१३०१) **गन्धकवटी** (१) (र.सा.सं.।अजीर्ण)

शुद्धगन्धकं भागैकं सत्वं शुण्ठ्याश्चतुर्गुणम्।
निम्बुनीरेण संमर्द्य सप्तवारं विशेषतः॥
पुनश्च सैन्धवं क्षेप्यं यथारुचि भिषग्वरैः।
चणकप्रमितां कुर्याद्वटिकां रुचिदायिनीम्॥
भोजनान्ते सदा देया गन्धकाख्या वटी शुभा॥

शुद्ध गन्धक १ भाग और सोंठका सत ४ भाग ले मिश्रित करें। इसे नींबूके रसकी सात भावना देकर यथारुचि सेंधानमक मिलाकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

यह "गन्धकवटी" नित्य भोजनके अन्तमें सेवन करनेसे रुचि और अग्निवृद्धि करती है।

(१३०२)**गन्धकवटी**(२) (रसायनसार पृ.५१०)

वराग्निरम्भाचणकाऽर्कजातं,
क्षारश्च पुष्पं नवसादरस्य।
सुधाम्बुघृष्टं पुटितं वितस्तौ,
पुटे समानं पटुपञ्चकञ्च॥

तदर्धगन्धं च चतुर्गुणाश्च,
व्योषाग्निसंभर्जितजीरवाह्लीः ।
घृष्ट्वाऽम्लभृष्टे लशुनेऽम्लनीरे,
वटीःकरोत्वग्निसयीरजीर्णे ॥

त्रिफला, चित्रक (चीता), केलेकी जड, चनेके क्षुपक (वृक्ष), मन्दारका पञ्चाङ्ग। इनके जुदे जुदे क्षार बनाले। और नवसादरको डमरु यन्त्रमें रखकर दो पहरकी अग्निसे उसका फूल उड़ाले। इन सब क्षारोको समान समान लेकर प्रतिसारणीय क्षारके साथ घोटकर हंडिया के संपुटमें रखकर कुक्कुट पुटमें फूंकदे तो अपूर्व क्षार बन जायगा। इस क्षारके समान पाँचों नमक (सेंधामोन, कालानोन, सांभरनोन, खारीनोन, सामुद्रनोन) डालकर और कुल चीज़ोंसे आधी शुद्ध गन्धक डालकर बिजौरे नींबूके रसके साथ घोटें। बाद सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक, घीमें भुनी हुई हींग और घीमें भुना हुवा सफ़ेद जीरा, ये सब औषधें गन्धकसे चतुर्गुण लेकर अम्लवेतके क्वाथके साथ और घीमें छौंके हुवे लशुनके रसके साथ घोटकर गोलियां बनाले। ये गोलियां अजीर्ण, अतिसार, हैज़ा, संग्रहणी आदि अनेक रोगोंके नष्ट करनेवाली हैं और बहुत स्वादिष्ट हैं।

(मूल पुस्तकसे उद्धृत)

(१३०३) गन्धकवटी(३) (वै.र.। अग्नि. मां.)

गन्धकं मरिचं चुक्रं सौवर्चलसमन्वितम् ।
टङ्कप्रमाणगुटिकां बद्धकोष्ठेऽग्निदीपनी ॥

गन्धक, स्याहमिर्च, और सौंचल नमक को चुक्र में पीसकर एक एक टङ्क (४ माशे) की गोलियां बना लीजिए। यह कोष्ट-बद्धता नाशिनी और अग्नि दीपिनी है।

(१३०४) गन्धकवटी (४) (वै.र.। अग्नि मां.)

गन्धकं-मरिचं शुण्ठीं सैन्धवं यवजं लवम् ।
निम्बूरसेन वटिका चणमात्राग्निदीपिनी ॥

गन्धक, स्याहमिर्च, सोंठ, सेंधानमक, यवक्षार और लौंग समान भाग लेकर चूर्ण करके नींबूके रसमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

यह गोलियां अग्निको प्रदीप्त करती हैं।

(१३०५)गन्धकादिवटी(हा.स.।स्था.३ अ.४)

गन्धकं सैन्धवं व्योषं निम्बूरसविमर्दितम् ।
आतुरो भक्षयेच्छीघ्रं विषूचीनां निवारणम् ॥

गन्धक, सेंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ,मिर्च, पीपल) का चूर्ण समान भाग लेकर नींबूके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

विषूचिका (हैज़ा) होने पर तुरन्त ही इन गोलियोंका सेवन प्रारम्भ कर देना चाहिए।

गुग्गुलु गुटिका (ग. नि.)
गुग्गुलुवटकः (यो. र., भा. प्र.)
गुग्गुलुवटिका (भा. प्र., र. र.)
गुग्गुलुवटी (वं. से.)
गुग्गुल्वादि वटी (वृ. नि. र.)
गुग्गुलु प्रकरणमें देखिए

गुञ्जागर्भरसायनम् (यो. र.)
गुञ्जारसेन्द्रवटी (भै. र.)
रस प्रकरणमें अवलोकन कीजिए।

(१३०६)गुडचतुष्टयःवटिका(यो.चिं.।अ.३)॥

गुडविश्वौषधं पथ्यामागधीदाडिमैः कृता ।
गुटिर्हन्ति भक्ष्यमाणा गुल्मार्शोवह्निजागदान्

सोठ, हर्र, पीपल और अनार दानेके समान भाग चूर्ण को गुड़ में मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे गुल्म, बवासीर और अग्निदोष नष्ट होते हैं।

(प्र० वि०:—गुड़ अन्य समस्त चूर्णके बराबर मिलाना चाहिए। मात्रा=२ माशे। अनुपान= उष्णजल)

(१३०७) गुडपिप्पलीमोदकः (१)

(भै. र., धन्व. । प्ली.)

विडङ्गं त्र्यूषणं कुष्टं हिङ्गुर्लवणपञ्चकम् ।
त्रिक्षारं फेनकं वह्निः श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥
तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कूष्माण्डकस्य च ।
अपामार्गस्य चिञ्चायाश्चूर्णानि चिक्कणानि च ॥
सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम् ।
एतस्माद्द्विगुणाच्चूर्णात्पुराणो द्विगुणो गुडः ॥
मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत् ।
भक्षयेदुष्णतोयेन प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥
यकृतं पञ्चगुल्मञ्च उदरं सर्वरूपकम् ।
जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पञ्चविधं तथा ॥
अश्विभ्यां निर्मिता श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली ॥

बायविड़ङ्ग, सोठ, मिर्च, पीपल, कूठ, हींग, पांचो नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार, सुहागा, समुद्रफेन, चीता, सौंफ, कलौंजी, तालपुष्प और पेठेकी बेलका क्षार, अपामार्ग (चिरचिटे) का क्षार और इमलीका खार, एक एक भाग तथा पीपलका चूर्ण समस्त औषधियोंके बराबर लेकर खूब महीन खरल कीजिए और समस्त चूर्णसे चार गुना पुराना गुड़ मिलाकर कूटकर मोदक बना लीजिए।

अश्विनी कुमारों द्वारा अविष्कृत इस गुड़ पिप्पलीको जल के साथ सेवन करनेसे यकृत् (जिगर), प्लीह (तिल्ली), पांच प्रकारके गुल्म रोग, सर्व प्रकारके उदररोग, जीर्णज्वर, शोथ और पांच प्रकारकी खांसीका नाश होता है।

यह बालकोंके लिए विशेष लाभदायक है।

(पूर्ण मात्रा—१ तोला तक)

(१३०८) गुडपिप्पलीमोदकः (२) (र.र.।प्ली.)

पलैकं गुडमादाय पिप्पलीश्च तथैव च ।
हिंगुत्रिकटुकादीनां सैन्धवानां द्विमाषिकम् ॥
चित्रकञ्च विडञ्चैव द्वौ क्षारौ शिखरीं तथा ।
तालपुष्पं कोकिलाक्षं चिञ्चाक्षारं सफेनकम् ॥
स्नुहीक्षारसमायुक्तं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥

गुड़ १ पल, पीपल १ पल, हींग, सोठ, मिर्च, पीपल, सेंधा नमक, चीता, बायविडङ्ग, यवक्षार, सज्जीखार, अपामार्ग (चिरचिटे) का क्षार, तालपुष्प, तालमखाना, इमलीका खार, समुद्रफेन, और थोहरका क्षार प्रत्येक २—२ मासे लेकर यथाविधि मोदक बना लीजिए।

इनके सेवनसे तिल्ली रोग और ज्वर नष्ट होता है।

(मात्रा=१ तोले तक। अनुपान=उष्ण जल)

(१३०९) गुडादि गुटिका (शा.सं.। गुटि.अ.)

गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्गुटिका धारयेन्मुखे ।
श्वासकासेषु सर्वेषु केवलं वा बिभीतकम् ॥

गुड, सोठ, हर्र और मोथा, समान भाग मिश्रित कर गोलियां बना लीजिए।

इन्हे अथवा केवल बहेड़े को मुखमें रखकर रस चूसनेसे सर्व प्रकारके श्वास तथा कास रोग नष्ट होते हैं।

(१३१०) गुडादि मण्डूरम् (र.का धे.। पाण्डु)

गुडनागरमण्डूरतिलशान्मानतः समान्।
पिप्पलीं द्विगुणा दत्वा गुटिका पाण्डुरोगिणाम्॥

गुड, सोठ, मण्डूर, और तिल १-१ भाग तथा पीपल दो भाग लेकर यथा विधि गुटिका बनाकर सेवन करनेसे पाण्डुरोग नष्ट होता है।

(१३११) गुडादि मोदकः (१)

(यो. र.। अ पि., ग. नि.)

गुडपिप्पलीपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः।
पित्तश्लेष्महरःप्रोक्तो मन्दाग्नित्वं च नाशयेत्॥

समान भाग गुड, पीपल और हैड़से निर्मित मोदक पित्त, कफ और अग्निमांद्यका नाश करते है।

(मात्रा—६ माशेसे १ तोले तक। उष्ण जलके साथ, प्रात सायं सेवन कीजिए।)

(१३१२) गुडादि मोदकः(२) (व.से.। विरे.)

गुडस्याष्टपलं पथ्या विंशतिः स्युः पलानि च।
दन्तीचित्रकयोः कर्षौ पिप्पलीत्रिवृतोर्दश॥
कृत्वैतान्मोदकानेकं दशमे दशमेऽह्नि।
स खादेदुष्णसेवी चाहारे नियन्त्रणास्त्वमी॥
दोषघ्ना ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठनाशनाः॥

गुड़ ८ पल (८ छटांक), हैड़(पीली) २० पल, दन्तीमूल, चीता, २॥-२॥ तोले, पीपल और निसोत १०-१० कर्ष (१२॥ तोले) लेकर चूर्ण करके मोदक बनाएं। हर दसवें दिन एक मोदक उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, और कुष्ट रोग नष्ट होता है। इसके सेवन कालमें उष्ण पदार्थ सेवन करने चाहिएं अन्य किसी प्रकारके परहेज़की आवश्यक्ता नहीं है।

(व्यवहारिक मात्रा १ तोला)

(१३१३) गुडूचीमोदकः* (भा. प्रं.। ज्व.)

अमृतायाः शतं चूर्णं वाससा परिशोधितम्।
पृथक्षोडशभागाः स्युर्गुडमाक्षिकसर्पिषा॥
यथाग्निभक्षयेद्तन्नरो हितमिताशनः।
नास्यकश्चिद्भवेद्व्याधिर्न जरा पलितं न च॥
न ज्वरा विषमा नैव मोहा नानिलरक्तकम्।
न च नेत्रगतारोगा परमेतद्रसायनम्।
मेधाकरं त्रिदोषघ्नं प्रयोगादस्य बुद्धिमान्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं तथैवादितिजस्तथा॥

गिलोयका कपड़छन चूर्ण १०० भाग तथा गुड, शहद और घृत प्रत्येक १६-१६ भाग लेकर यथाविधि मोदक बना लीजिए। इन्हे पथ्य एवं मिताहार पालनपूर्वक अग्निबलोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे मनुष्य व्याधि, जरा (वृद्धावस्था), पालित्य (बाल सफेद होना), विषमज्वर, मोह, वातरक्त और नेत्ररोगोंसे सुरक्षित रहता है।

यह महारसायन मेधावर्द्धक और त्रिदोषनाशक है। इसके सेवनसे मनुष्य प्रतिष्ठापूर्वक १०० वर्ष पर्यन्त जीवित रह सकता है।

---

* यह प्रयोग अकारादि गुटिका प्रकरणमें सम्मिलित होनेसे छूट गया है।

गुडूच्यादि मोदकः (वृ. नि. र.)

रस प्रकरणमें देखिए।

गुडूच्यादिवर्तिः (च. सं. । ने. चि.)

अञ्जन प्रकरणमें अवलोकन कीजिए।

गुणायतीवर्तिः (धन्व. । व्र. चि.)

लेप प्रकरणमें अवलोकन कीजिए।

गुल्मवज्रिणी वटी (र. रा. सुं.)

रस प्रकरणमें देखिए।

गुल्महरिवर्तिः (सु. सं. । उत्त. अ० ४२)

मिश्र प्रकरणमें अवलोकन कीजिए।

(१३१४) गृहधूमगुटिका (यो. स. । समु. ३)

अर्कस्य दुग्धेन गृहस्य धूमं,
संमर्द्य सम्यग्गुटिका विधेया।
सा भक्षणीया किलजीर्णतापे,
शीतोदकं मुद्गरसं च पथ्यम्॥

घरके धुवेंको आकके दूधमें भली भांति घोटकर गोलियां बना लीजिए।

यह गोलियां जीर्ण ज्वरमें हितकर है। इनके सेयन कालमें शीतल जल और मूंगका यूष पथ्य है।

(मात्रा—१ रत्तीसे २ रत्ती तक)

(१३१५) गोक्षुरकादि वटी (यो. र. । प्रमे. चि.)

त्रिकटु त्रिफला तुल्यं गुग्गुलं च समांशकम्।
गोक्षुरक्वाथं समायुक्तां गुटिकां कारयेद्बुधः॥
देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम्।
न चात्र परिहारोस्ति कर्मकुर्याद्यथेप्सितम्॥
प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च।
मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाशु नाशयेत्॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हैड़, बहेड़ा, और आमला एक एक भाग तथा (शुद्ध) गूगल ६ भाग लेकर (चूर्ण करके) गोखरुके क्वाथमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें देश, काल और बलके अनुसार सेवन करनेसे प्रमेह, वातव्याधि, वातरक्त, मूत्राघात—मूत्र-दोष और प्रदर रोग नष्ट होता है।

इन गोलियोंके सेवन कालमें किसी प्रकारके परहेज़की आवश्यकता नहीं है, यथेच्छ आहारविहार कर सकते हैं।

(टिप्पणी—साधारण मात्रा=२ माशे। अनुपान उष्णजल। विशेष परहेज़ न भी किया जाय तथापि साधारण पथ्यापथ्यका ध्यान अवश्य रखना चाहिए।)

गोरक्षवटी

रस प्रकरणमें देखिए।

(१३१६) ग्रहणीकपाटवटिका

(यो. चिं. । गुटिका. ३)

चातुर्जातकचव्यजीरकयुगं,
व्योषारलुग्रन्थिकम्।
श्रीवृक्षातिविषाजमोदयुगलं,
चूतास्थि पाठाम्बुदम्॥
यष्टी चेन्द्रयवाम्लिकास्थिकवचा,
लोध्रं समङ्गारजाः॥
कुर्यान्मीचरसान्वितं समजये-
द्वासावनो तद्गुडान्॥

आवध्य ग्रहणीकपाटवटिका-
लक्षप्रमाणान्भजेत्।
साध्यासाध्या ग्रहणीविकाररुधिरा-
तिसारविच्छित्तये॥

चातुर्जात (तेजपात, दाल चीनी, इलायची, नागकेसर), चव्य, सफेदजीरा, स्याहजीरा, सोठ, मिर्च, पीपल, अरलु (सोनापाठा) की छाल, पीपलामूल, वेलगिरी, अतीस, अजमोद, अजवायन, आमकी गुठली (का गूदा), पाठा (जलजमनी), नागरमोथा, मुलैठी, इन्द्रयव, इम्लीके वीज, वच, लोध, मजीठ और मोचरस समान भाग लेकर चूर्ण करके सबके समान गुडमें मिलाकर एकएक कर्ष (१। तोले) की गोलियां वना लीजिए।

यह 'ग्रहणी कपाट' नामक वटिका साध्यासाध्य ग्रहणी विकार और रक्तातिसारका नाश करता है।

(मात्रा—६ माशे। तक्रके साथ प्रातःसायं सेवन करें।)

ग्रहणीगजेन्द्रवटिका (भै.र.;र.सा.सं.। ग्रह.)

(रस प्रकरणमें देखिए)

(१३१७) ग्रहणीशार्दूलवटिका (भै.र.।ग्र.चि.)

जातीफलं देवपुष्पमजाजीकुष्ठटङ्कणम्।
विडन्त्वगेलाधत्तूरं फणिफेनसमं समम्॥
प्रसारिणीरसेनैव संमर्द्य वटिका कृता।
यथा दोषानुपानेन सेविता ग्रहणीं हरेत्॥
नानावर्णमतीसारं दारुणाञ्च प्रवाहिकाम्।
नाम्ना ग्रहणीशार्दूलवटिका ग्राहिणी परम्॥

जायफल, लौंग, जीरा, कूठ, सुहागेकी खील, वायविडङ्ग, दालचीनी, इलायची, धतूरेके-वीज और अफीम वरावर वरावर लेकर प्रसारिणी (खीप) के रसमें घोटकर गोलियां वना लीजिए।

इन्हें यथा दोष अनुपान और उचित मात्रानुसार सेवन करनेसे ग्रहणी, अनेक वर्ण संयुक्त अतिसार और प्रवल प्रवाहिका नष्ट होती है। इसका नाम "ग्रहणीशार्दूलवटिका" है।

(१३१८) ग्रहनाशिनी गुटिका (१)

(र. र. स.। वा. रो.)

राजीकरञ्जपुन्नाटशिरीषार्कनिशाद्वयम्।
प्रियङ्गुत्रिफलादारुहिङ्गुव्योषकुचन्दनम्॥
मञ्जिष्ठोग्राजमूत्रं च गुटिका ग्रहनाशिनी।
पाननस्याञ्जनालेपस्नानोद्वर्त्तनधूपनात्॥

राई (अथवा वावची), करञ्जवेकी गिरी, पंवाड़के वीज, सिरसकी छाल, अर्क(आक), हल्दी, दारुहल्दी, फूल प्रियङ्गु, त्रिफला (हर्र, वहेड़ा, आमला), देवदारु, हींग, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), पतङ्ग, मजीठ और वचके महीन चूर्ण को वकरीके मूत्रमें पीसकर गोलियां वना लीजिए।

इन्हे पान, नस्य, अञ्जन, लेप, स्नान, उद्वर्तन, और धूम द्वारा प्रयुक्त करनेसे ग्रहदोष नष्ट होता है।

(१३१९) ग्रहनाशिनी गुटिका (२)

(सु. सं.। उ. त., अ० ६०)

गजाह्व पिप्पलीमूल व्योषामलकसर्षपान्।
गोधानकुल मार्जार ऋक्षपित्तप्रभावितान्॥
नस्याभ्यञ्जन सेकेषु विदध्याद्योग तत्ववित्॥

गजपीपल, पीपलामूल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), आमला, सरसों। इन सबका बारीक चूर्ण करके गोधा(गोह), नौला, बिलाव और रीछके पित्तसे भावित करके (भावना देकर) गोलियां बना ले।

इन गोलियोंके नश्यसे (सूंघनेसे), मालिश करनेसे, आंखमें आंजनेसे और धूनी लेनेसे ग्रहोंका दोष नष्ट होता है।

॥ इति गकारादि गुटिकाप्रकरणम् ॥

अथ गकारादि गुग्गुलुप्रकरणम्।

(१३२०) **गुग्गुलुकल्पः**-(ग. नि.। औ. क.; हा. सं.। स्था० ५ अ० ५)

हिमवच्छिखरे रम्ये सिद्धचारणसेविते।
तत्रस्थं भिषजां श्रेष्ठमात्रेयमृषिपुङ्गवम् ॥
देदीप्यमानं तपसा ज्वलन्तमिव पावकम्।
विनयादुपसंगम्य हारीतः परिपृष्टवान् ॥
भगवन्! गुग्गुलोर्नामयोगवीर्यमथोगुणाः।
वक्तुमर्हसि रोगेषु येषु वापि प्रशस्यते ॥
एवमुक्तस्तु शिष्येण प्रत्युवाच महातपाः।
मरुभूमौ प्रजायन्ते प्रायशः पुरपादपाः ॥
भानोर्मयूखैः सततं ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलुः।
हिमार्दिता वा हेमन्ते, विधिवत्तं समाहरेत् ॥
जातरूपनिभं शुभं पद्मरागनिभं क्वचित्।
क्वचिन्महिषनेत्राभं यक्षदैवतवल्लभम् ॥
विज्ञानं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम।

गुग्गुलोर्गुणाः—

त्रिदोषशमनो वृष्यः स्निग्धोबृंहणदीपनः ॥
गुग्गुलुः कटुकः पाके वर्ण्यश्च बलवर्धनः।
आयुष्यः श्रीकरः पुण्यः स्मृतिमेधाविवर्धनः ॥
पापप्रशमनः श्रेष्ठः शुक्रार्त्तवकरः स्मृतः।

गुग्गुलोर्प्रयोगविधिः

वर्णगन्धरसोपेतो गुग्गुलुर्मात्रया युतः ॥
भेषजैः सह निः क्वाथ्यो यथा व्याधिहरैः पृथक्।
मात्रावशिष्टं तं दृष्ट्वा गालयेच्छुक्लवाससा ॥
मृण्मये हेमपात्रे च राजते स्फाटिकेऽपि वा।
पुण्ये तिथौ शुभे ये च जीर्णाहारक्षमान्विते ॥
हुत्वाग्निं पर्युपासीत देवब्राह्मणभक्तितः।
प्रविश्य कुसुमाकीर्णे मन्दिरे च समाश्रितः ॥

वातरोगे—

रास्ना गुडूची चैरण्डो दशमूलं प्रसारिणी।
क्वाथं तेषां यथायोग्यं यवान्या वातिके पिबेत् ॥

पित्तरोगे—

पृथक्भृतैर्जीवनीयैः पिबेत्पित्तामयार्दितः।
वासाचन्दनह्रीबेरं मृद्वीका तिक्तरोहिणी ॥
खर्जूरश्च परूषश्च तथा जीवकर्षभकौ।
सपित्तरोगे पानाय क्वाथःस्याद् गुग्गुल्वन्वितः ॥

कफरोगे—

त्रिफलाव्योषगोमूत्रनिम्बधान्यकपुष्करैः।
अमृता दीप्यकःक्वाथः पटोली च कफार्दितः ॥

व्रणादौ—

नाडीदुष्टव्रणग्रन्थिगण्डमालार्बुदान्वितः ।
त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं पिबेन्मेही व्रणी तथा ॥
किरातकामृतानिम्बवृषाव्याघ्रीदुरालभाः ।
एषां क्वाथेन संयुक्तं गुग्गुलं पाययेद्भिषक् ॥
गुल्मे कासे क्षते श्वासे विद्रधावरुचौ व्रणे ।

कण्ड्वादौ —

दार्वीपटोलक्वाथेन संयुतं गुग्गुलं पिबेत् ॥
कण्डूपिटकशोफाद्ये पिबेद् वातकफापहम् ।

पाण्ड्वादौ—

पथ्यापुनर्नवादार्वीगोमूत्रसमृता तथा ॥
एषां क्वाथो हितः पाण्डौ शोथोदककिलासिनाम् ।

गुग्गुलोर्मात्रा—

भवेन्मात्रां पलं यावत्कर्षादारभ्य यत्नतः ॥
जीर्णेऽश्नीयान्मुद्गयूषैः . ... ।
पयसा षष्टिकान्नं च शालीनामोदनं मृदुः ॥
दिनानि सप्त प्रथमा मध्यमा द्विगुणा स्मृता ।
त्रिगुणा परमा मात्रा विज्ञेया योगचिन्तकैः ॥

सेवनफलम्—

सेवते गुग्गुलं यो वै वर्षेणापि नरः क्रमात् ।
स्थावराजङ्गमाच्चैव न स्यादस्य क्षतिर्विषात् ॥
निर्मुक्तो वलितत्वचोपि पलितो वृद्धो युवा जायते
मेधादृष्टिबलोजवीर्यमधिकं वृद्धत्वहीनो भवेत् ॥
गुल्माष्ठीलकमामवातशमनः कुष्ठं प्रमेहाश्मरीं ।
शूलानाहविसर्परक्तशमनो भूतोपसृष्टे हितः ॥

सिद्ध-चारण-सेवित, रम्यस्थल हिमगिरि शिखरपर विराजमान, भिषग्श्रेष्ठ, ऋषि पुङ्गव, तपतेजसे देदीप्यमान् महर्षि आत्रेयके निकट अत्यन्त विनम्रभावसे जाकर श्री हारीतने प्रश्न किया—"भगवन् ! गुग्गुलु के नाम, प्रयोग, वीर्य, गुण और यह जिन रोगोंमें प्रयुक्त किया जा सकता है वह सब बतलानेकी कृपा कीजिए।" यह सुनकर महर्षि आत्रेयने उत्तर दिया कि—"गूगलके वृक्ष प्रायः मरुभूमि (रेगिस्तान) में उत्पन्न होते हैं। (गुग्गुलु इन्ही वृक्षोंके गोंदका नाम है)। निरन्तर सूर्यके तापसे उत्तप्त होकर ग्रीष्म ऋतुमें और शीतके प्रभावसे हेमन्त ऋतुमें गूगल इन वृक्षोंमें से निकलता है। इसे यथाविधि संग्रहीत करना चाहिए।

(गुग्गुलु आकृति भेदसे अनेक प्रकारका होताहै),

किसीका रंग स्वर्ण सदृश उज्ज्वल, किसीका पद्मरागमणिके समान, और किसी जातिके गुग्गुलुका रंग भैंसके नेत्रके समान नीलवर्ण संयुक्त होता है। यह यक्ष और देवताओंको अत्यन्त प्रिय है।

अब में गुग्गुलुके वैधविधानका वर्णन करता हूं, सुनो —

गुग्गुलोर्गुणाः—गुग्गुलु त्रिदोषशामक, वृष्य, स्निग्ध, बृंहण, दीपन, पाकमें कटु, वर्ण्य (वर्ण संस्कारक), बलवर्द्धक, आयुष्य, (आयुकी वृद्धि करनेवाला), कान्ति, भक्ति, स्मृति और मेधावर्द्धक, पाप (दोष) नाशक, तथा शुक्र और आर्तव उत्पादक है।

प्रयोग विधिः—यथावत वर्ण, गन्ध और रस वाला गुग्गुलु यथोचित मात्रानुसार लेकर (जिस रोगमें सेवन करना हो उस) रोगको शान्त करनेवाली औषधियोंके साथ पकाइए। जब योग्य

मात्रा जल शेष रह जाय तो उतारकर स्वच्छ वस्त्रमें से मृत्तिका, स्वर्ण, रजत अथवा स्फटिकके पात्रमें छान लीजिए।

इस भांति निर्मित गुग्गुलुक्काथको, शुभकालमें आहार पच जानेके पश्चात् क्षमतापूर्वक, अग्निहोत्र करके और भक्तिपूर्वक देवों तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करके, पुष्पोसे सुसज्जित मन्दिरमें प्रवेश करके पीना चाहिए।

वातरोगोंकी शान्तिके लिए—रास्ना, गिलोय, अरण्डमूल, दशमूल, प्रसारिणी और अजवायनके क्काथके साथ सेवन करना चाहिए।

पित्तरोगोंकी शान्तिके लिए—जीवनीय गणकी औषधियोंमेंसे किसी एकके क्काथके साथ अथवा—वासा, लाल चन्दन, नेत्रबाला, मुनक्का, कुटकी, खजूर, फालसा, जीवक और ऋषभकके क्काथके साथ पीना चाहिए।

कफरोगोंकी शान्तिके लिए—त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), त्रिकुटा (सोंठ,मिर्च,पीपल), गोमूत्र, नीमकी छाल, धनियां, पोखरमूल, गिलोय, अजवायन और पटोलपत्रके क्वाथके साथ सेवन करना चाहिए।

नाड़ी, दुष्ट व्रण, ग्रन्थि, गण्डमाला, अर्बुद, व्रण और प्रमेहकी शान्तिके लिए—त्रिफलाके क्काथके साथ सेवन करना चाहिए।

गुल्म, कास, क्षत, श्वास, विद्रधि, अरुचि और व्रणमें—चिरायता, गिलोय, नीमकी छाल, वासा, कटेली और धमासेके क्काथके साथ सेवन कराना चाहिए।

कण्डू (खुजली), पिडिका, शोफ और वातकफकी शान्तिके लिए—दारुहल्दी और पटोलपत्रके क्वाथके साथ सेवन कराना चाहिए।

पाण्डु, शोथ, जलोदर और किलास कुष्ठको नष्ट करनेके लिए—हर्र, पुनर्नवा, दारुहल्दी, गोमूत्र और गिलोयके क्काथके साथ सेवन करना चाहिए।

गुग्गुलोर्मात्रा—गुग्गुलु १ कर्ष (१। तोले) से प्रारम्भ करके १ पल (५ तोले) तककी मात्रानुसार यत्नपूर्वक सेवन कराना चाहिए। प्रथम सप्ताहमें प्रथमा मात्रा (१ कर्ष), दूसरे सप्ताहमें मध्यमा मात्रा और तृतीय सप्ताहमें उत्तमा मात्रा सेवन करानी चाहिए।

मध्यमा मात्रा प्रथमा मात्रासे द्विगुण और उत्तमा त्रिगुण समझनी चाहिए।

पथ्यः—गुग्गुलु पच जाने पर मूंगके यूष अथवा दूधके साथ षष्ठि (साठी) अथवा शालि चावलोंका मृदु भात खाना चाहिए।

गुग्गुलुसेवन फलम्—जो मनुष्य एक वर्ष पर्यंत क्रमपूर्वक गुग्गुलु सेवन करता है उसे स्थावर अथवा जङ्गम विषसे हानि नहीं पहुंच सकती। वृद्ध पुरुष भी वलिपलित रहित युवकके समान हो जाता है। इसके सेवनसे मेधा, दृष्टि, बल, ओज और वीर्यकी वृद्धि तथा जरा, गुल्म, अष्ठीला, आमवात, कुष्ठ, प्रमेह, अश्मरी, शूल, आनाह, विसर्प, रक्तदोष और भूतबाधाका नाश होता है।

नोट—उपरोक्त मात्रा वर्तमान कालके लिए अधिक है-अतएव आधा माशासे ३ माशे तक सेवन कराना चाहिए।

(१३२१) गुग्गुलुकल्पः (सु.सं. । चि.स्था.अ.५)

सुगन्धिःसुलघुः सूक्ष्मस्तीक्ष्णोष्णः कटुको रसः ।
कटुपाकसरो हृद्यो गुग्गुलुःस्निग्धपिच्छिलः ॥
सनवो बृंहणो वृष्यःपुराणस्त्वपकर्षणः ।
तैक्ष्ण्यौष्ण्यात्कफवातघ्नःसरत्वान्मलपित्तनुत् ॥
सौगन्ध्यात् पूतिकोष्ठघ्नः सौक्ष्म्याच्चानलदीपनः ।
तम्प्रातस्त्रिफलादार्व्वीपटोलकुशवारिभिः ॥
पिबेदावाप्य वा मूत्रैः क्षारैरुष्णोदकेन वा ।
जीर्णे यूषरसक्षीरैर्भुञ्जानो हन्ति मासतः ॥
गुल्मं मेहमुदावर्त्तमुदरं सभगन्दरम् ।
कृमिकण्ड्वरुचिश्वित्राण्यर्वुदग्रन्थिमेव च ॥
नाड्याढ्यवातश्वयथुकुष्ठदुष्टव्रणांश्च सः ।
कोष्ठसन्ध्यस्थिगं वायुं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

गुग्गुलु, सुगन्धित, लघु, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, उष्ण और कटु रस युक्त, कटु पाक युक्त तथा सर, हृद्य, स्निग्ध और पिच्छिल है। नवीन गुग्गुलु बृंहण और वृष्य, तथा पुरातन अपकर्षक (कृश करनेवाला) होता है।

यह तीक्ष्णता और उष्णतासे कफवातनाशक, सर होनेके कारण मल और पित्तनाशक, सुगन्धित होनेसे कोष्ठगत दुष्ट वातावरोध द्वारा होनेवाली दुर्गंधका नाश करता है, तथा सूक्ष्मताके कारण अग्निदीपक है।

गुग्गुलुको प्रातःकाल एकमास पर्यन्त त्रिफला, दारुहल्दी, पटोलपत्र और कुशाके क्वाथ, गोमूत्र, क्षारजल अथवा उष्ण जलके साथ सेवन करने और उसके पचने पर (मूंगादिका) यूष तथा दुग्धाहार करनेसे गुल्म, प्रमेह, उदावर्त, उदररोग, भगन्दर, कृमि, कण्डू (खुजली), अरुचि, श्वित्र, अर्वुद (रसौली), ग्रन्थि, नाडीव्रण, आढ्यवात, शोथ, कुष्ट, दुष्टव्रण तथा कोष्ठ सन्धि और अस्थिगत वायु अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाती है।

(१३२२) गुग्गुलुगुटिका
(ग. नि. । परिशिष्ट, गुटि. ४)

गुग्गुलु कुडवादर्धं ककुभलगयोरजोविडङ्गानि ।
भल्लातकगोक्षुरकौ त्रिवृता त्रिफलाद्वितीयार्धम् ॥
भुक्त्वैनां गुटिकां यथेष्ट चरितः षण्मासयोगात्पुमान्
सव्याधीन्सभगन्दरान्सपिटिकानर्शांसि-
दुष्टव्रणान् ॥
खालित्यं पलितं जरामपि तनोर्जित्वा प्रदीप्तानलः ।
सौभाग्याससुखो निरामयतनुर्जीवित्समानांशतम् ॥

गूगल २ पल (१० तोले), अर्जुनकी छाल, लोहचूर्ण (भस्म), वायविड़ङ्ग, शुद्धभिलावा, गोखरु, निसोत और द्वितीय त्रिफला (ह्रस्व त्रिफला—खम्भारी, मुनक्का और फालसेके फल) आधा आधा कुडव (१०—१० तोले) लेकर यथाविधि गुटिका बना लीजिए।

इन्हे ६ मास पर्यन्त यथेच्छाहार विहारपूर्वक सेवन करनेसे भगन्दर, पिडिका, अर्श, कुष्ठ, व्रण, खालित्य (गंज), पालित्य (बाल श्वेत होना), और जराका नाश होकर अग्नि प्रदीप्त होती है, तथा मनुष्य सौभाग्य और सुखपूर्वक १०० वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

(१३२३) गुग्गुलुप्रयोगः [१]
(वृं. मा. । वृद्ध्य. ४)

गुग्गुलं रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥

गोमूत्रके साथ गूगल अथवा अरण्डीका तैल पीनेसे पुरातन वातज अण्डवृद्धिरोग शीघ्र नष्ट होता है।

(१३२४) गुग्गुलुप्रयोगः [२]

(रा. मा. । भगन्द १७)

क्वाथोदकेन मिलितस्त्रिफलोद्भवेन ।
पीतः प्रणाशयति तत्खलु गुग्गुलुर्वा ॥

त्रिफलाके क्वाथके साथ गुग्गुलु सेवन करनेसे भगन्दर रोग नष्ट होता है।

(मात्रा २ माशे । प्रातः सायं सेवन करें।)

(१३२५) गुग्गुलुप्रयोगः [३] (ग.नि.।शोफा.)

पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रेऽथ केवले ।
दशमूलरसे वापि गुग्गुलुः शोफनाशनः ॥

गूगलको पुनर्नवा, देवदारु और सोठके क्वाथके साथ अथवा केवल गोमूत्रके साथ या दशमूलके क्वाथके साथ सेवन करनेसे शोथ रोग नष्ट होता है।

(१३२६) गुग्गुलुरसायनम् [१]

(वं. से. । रसाय.)

त्रिफलाशनखदिरामृतवर्षाभूभृङ्गगोक्षुरक्वाथे ।
सार्द्धाढके तु गुग्गुलुःपलानि त्रिंशच्च लेहवद्विपचेत्॥
मधुघृतसिताविमिश्रंलिहेन्नरःकान्तिबलबुद्धियुतः।
तथा गदैर्विमुक्तो जीवति सम्वत्सरास्त्रिशतान् ॥

त्रिफला, असन, खैर, गिलोय, पुनर्नवा, भांगरा और गोखरुके १॥ आढक (६ सेर) क्वाथ में ३० पल (ऽ१।।।=) गूगल मिलाकर अवलेहके समान पाक सिद्ध करके उसमें यथोचित मात्रानुसार शहद, घृत और मिश्री मिला लीजिए।

इसके सेवनसे मनुष्य कान्ति, बल और बुद्धि युक्त होकर ३०० वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

(१३२७) गुग्गुलुरसायनम् [२]

(र. र. स. । उ. खं. अ. २६)

कान्ताभ्रत्रिफलाविडङ्गरजनीताप्याद्रिदेवद्रुम व्यो-
षैलाग्निपुनर्नवाद्रिगिरिजाङ्कोलैःसमंगुग्गुलुम् ।
पिष्ट्वाभृङ्गजलेन सूक्ष्मगुटिकां खादेद्यथासात्म्यतो
मेदः श्लेष्मसमीरणोल्वणगदेष्वन्येषु वा पुरुषः॥

कान्तलोह भस्म, अभ्रकभस्म, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), बायबिड़ङ्ग, हल्दी, स्वर्णमाक्षिक भस्म, नागरमोथा, देवदारु, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), इलायची, चीता, पुनर्नवा, शिलाजीत और अङ्कोल (अङ्कोट) एक एक भाग तथा गूगल सबके समान लेकर भांगरेके स्वरस (अथवा क्वाथ) में घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हे यथोचित मात्रा और अनुपानके साथ सेवन करनेसे मेदरोग और कफ वातज रोग नष्ट होते है।

(साधारण मात्रा १॥ से ३ माशे तक। उष्ण जलके साथ)

(१३२८) गुग्गुलुवटकः

(यो. र. । भा. २, भा. प्र. । व्र. रो.)

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः ।
निषेवितो विबन्धघ्नो व्रणशोधनरोपणः ॥

समान भाग त्रिफलेका चूर्ण और गुग्गुलु मिलाकर वटक बना लीजिए।

इनके सेवनसे मलावरोध नष्ट होता तथा घाव शुद्ध होकर भर आता है।

(मात्रा=३ माशे। अनुपान=त्रिफला क्वाथ या उष्ण जल)

(१३२९) गुग्गुलुवटिका (भा.प्र.,र.र.।व्रणरो.)

त्रिडङ्गत्रिफलाव्योपचूर्णं गुग्गुलुना समम्।
सर्पिषा वटकीं कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः॥
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनम्॥

वायविड्ङ्ग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आमला) और त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण १-१ भाग तथा इन सबके समान शुद्ध गुग्गुलु लेकर घृतमें कूटकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हे पथ्य-पालनपूर्वक सेवन करनेसे दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ट और नाड़ीव्रणरोग नष्ट होता है।

(मात्रा=२ माशे, अनुपान=त्रिफलाक्वाथ या वायविड्ङ्गका क्वाथ अथवा उष्ण जल।)

(१३३०) गुग्गुलुवटी (वं से.;भा.प्र.।वातरक्त.)

गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्राक्षालुङ्गरसेन वा।
त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिका कोलसम्मिता॥
भक्षयेन्मधुनाऽऽलोड्य शृणु कुर्वन्ति यत्फलम्।
पादस्फोटं महाघोरं स्फोटं सर्वाङ्गजञ्च यत्॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु ह्यसाध्यं वातशोणितम्॥

गिलोयके स्वरस अथवा क्वाथ, या मुनक्काके क्वाथ अथवा विजौरे नींबूके रस या त्रिफलेके क्वाथमें गूगलको घोटकर १-१ कोल (४-४माशे) की गोलियां बना लीजिए।

इन्हें शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे पैर अथवा शरीरका भयङ्कर स्फोट (फटना) और असाध्य (कष्टसाध्य) वातरक्त शीघ्र नष्ट होता है।

(१३३१) गुग्गुलुशोधनम् [१]

(र. सा. सं.। पू. खं.)

गुडूचीत्रिफलाक्काथे क्षीरे चैव विशेषतः।
पक्त्वा च खण्डशः शुद्धं गृह्णीयान्मृदुगुग्गुलुम्॥

गूगलको चूर्ण करके गिलोय और त्रिफलाके क्वाथ तथा दूधमें (पृथक् पृथक्) पकाकर (छान लेनेसे) वह शुद्ध हो जाता है।

(१३३२) गुग्गुलुशोधनम् [२] (र.र.।उप.१०)

दशमूलक्काथे उष्णे पूते
गुग्गुलुं परिक्षिप्यालोड्य च।
वस्त्रपूतं विधाय चण्डा-
तपे विशोष्य घृतं दत्वा पिण्डिम्॥

गूगलको दश मूलके स्वच्छ (वस्त्रपूत) और उष्ण क्वाथमें मिलाकर कपड़ेसे छानकर तेज धूपमें सुखानेके पश्चात् घृत डालकर कूटनेसे वह शुद्ध हो जाता है।

(१३३३) गुग्गुल्वादिप्रयोगचतुष्टयः

(वृं. मा.। शोथा.)

पुरं मूत्रेण संसेव्यं पिप्पली वा पयोन्विता।
गुडेन वाऽभया तुल्या विश्वं वा शोथरोगिणाम्॥

शोथ रोगकी शान्तिके लिए गोमूत्रके साथ गूगल, वा दूधके साथ पीपलका चूर्ण, या गुड़के साथ समान भाग हैड़ अथवा गुड़ और सोंठ समान भाग मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(मात्रा=प्रत्येक ३ माशे।)

(१३३४) गुग्गुल्वादियोगः

(वा. भ.। उ. स्था. अ. २८, ग. नि.। भग.)

गुग्गुलुपञ्चपलं पलांशका
मागधिका त्रिफला तथैव।
त्वक्त्रुटिकर्षयुतं मधुलीढं
कुष्ठभगन्दरगुल्मगतिघ्नम्॥

गूगल ५ पल (२५ तोले), पीपलका चूर्ण १ पल, त्रिफलाका चूर्ण १ पल तथा दालचीनी

और छोटी इलायचीका चूर्ण १–१ कर्ष (१। तोला) लेकर एकत्र कूट लीजिए। इसे शहदके साथ चाटनेसे कुष्ठ, भगन्दर और गुल्म रोगकी वृद्धि रुक जाती है।

(मात्रा=१॥ माशेसे ३ माशे तक)

(१३३५)गुग्गुल्वादिवटी (वृ.नि.र.।अर्श.चि.)

गुग्गुलुं लशुनं निम्बबीजरामठनागरैः।
गुटी शीतोदकेनोक्ता अर्शान् हन्ति च तत्क्षणात्॥

गूगल, लशुन (ल्हसन), निबौली, हींग (घीमें भुना हुवा) और सोंठ समान भाग लेकर चूर्ण करके गोलियां बना लीजिए।

इन्हें शीतल जलके साथ सेवन करनेसे अर्श रोग (बवासीर) अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

(मात्रा=१॥ माशा)

(१३३६)गुडूच्यादिगुग्गुलुः(यो.र.।वा.व्या.)

गुडूचीत्रिफलाक्काथैर्गुग्गुलुः पिण्डितो वरः।
क्रोष्टुशीर्षं निहन्त्युच्चैः सेवितो मासमात्रतः॥

गिलोय और त्रिफलेके क्वाथमें गूगलको कूटकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हे एक मास पर्यन्त सेवन करनेसे भयङ्कर क्रोष्टुशीर्षका भी नाश हो जाता है।

(मात्रा=१॥ माशा, अनुपान त्रिफला या गिलोयका क्वाथ)

(१३३७) गोक्षुरादिगुग्गुलुः

(वृ. नि. र. । प्रमेह., शा. सं. । खं. २ अ. ७; यो. चि. । मिश्र. अ. ७, वै. र. । मूत्रकृ., गं. नि. । प्र०; वृ. यो. त. । १०० त., वृं.मा.। प्र.)

अष्टाविंशति संख्यानि पलान्यानीय गोक्षुरात्।
विपचेत्षड्गुणे नीरे क्वाथो ग्राह्योऽर्धशेषितः॥
ततः पुनः पचेत्तत्र पुरं सप्तपलं क्षिपेत्।
गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिःक्षिपेत्॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चूर्णितम् पलसप्तकम्।
ततः पिण्डीकृतं चास्य गुटिकामुपयोजयेत्॥
हन्यात्प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्रघातकम्।
वातास्रं वातरोगांश्च शुक्रदोषं तथाश्मरीम्॥

२८ पल (१४० तोले) गोखरुको ६ गुने पानीमें पकाकर आधा शेष रहनेपर छान लीजिए। इसके पश्चात् उसमें सात पल (३५ तो०) शुद्ध गूगल मिलाकर अवलेहके समान पका लीजिए और फिर त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला) और मोथेका ७ पल चूर्ण (प्रत्येक वस्तुका १–१ पल चूर्ण) मिलाकर कूटकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, मूत्राघात, वातरक्त, वातव्याधि, शुक्रदोष और अश्मरी (पथरी) रोगका नाश होता है॥

॥ इति गकारादि गुग्गुलु प्रकरणम्॥

अथ गकारादि लेहप्रकरणम् ।

(१३३८) गुडकूष्माण्डकावलेहः

(वृं. मा.. धन्वन्तरिः वं. से.; भै. र. र. र.।वाजी० च.द.। वृष्या.,वृ.यो त.। त.१४७, ग.नि.। लेहा.५)

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
प्रस्थश्च घृततैलस्य[1] तस्मिंस्तप्ते प्रदापयेत् ।।
त्वक्पत्रधान्यकव्योपजीरकैलाद्वयानलम्[2] ।
ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पल्यः शृङ्गवेरकम् ।।
शृङ्गाटकं कसेरुश्च प्रलम्बं[3] तालमस्तकम् ।
चूर्णीकृतं पलांशं तु गुडस्य तुलया पचेत् ।।
शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः सम्प्रदापयेत् ।
कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनाश्च दीपनम् ।।
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् ।
प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः ।।
क्षयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम् ।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्तिच्छर्दिमरोचकम् ।।
गुडकूष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम् ।
खण्डकूष्माण्डवत्पात्रं स्विन्नकूष्माण्डकद्रवः ।।

पेठेके उबाले और छिलके तथा बीजादि रहित टुकड़े १०० पल (६। सेर) लेकर १-१ प्रस्थ (१ सेर) घृत और तिलतैलमें भून लीजिए। और फिर १ तुला (१०० पल) गुड़की चाशनी बनाकर उसमें उक्त पेठा तथा दालचीनी, तेजपात, धनियां, सोंठ, मिर्च, पीपल, जीरा, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, चीता, पीपलामूल, चव्य,गजपीपल, अदरक (सोंठ), सिंघाड़ा (शुष्क), कसेरु, तालवृक्ष-की शाखा और तालमस्तकका १-१ पल (५तोले) चूर्ण मिलाइये; तथा शीतल होने पर ८ पल शहद मिलाकर सुरक्षित रखिए।

अश्विनि कुमारो द्वारा आविष्कृत यह "गुड कूष्माण्ड" कफ, पित्त और वायुनाशक,अग्निदीपक, कृश (दुर्बल) मनुष्योंके लिए पौष्टिक, अत्यन्त वाजीकरण (कामशक्तिको उत्तेजित करने वाला), कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, छर्दि और अरुचि नाशक तथा कामासक्त क्षीणवीर्य और क्षयग्रस्त व्यक्तियो के लिए अत्युपयोगी है।

इस प्रयोगमें खण्डकुष्माण्डके समान १ पात्र (१ आढक=४ सेर) पेठेका पानी [जिस पानीमें पेठा पकाया गया है] डालकर (गुड़की चाशनी बनानी चाहिए।)

(प्र० वि०:-चाशनी न बनाकर पेठ और गुड़को पेठके पानीमें एकसाथ पकाकर भी गाढ़ा होने पर औषधियोका चूर्ण मिलाया जा सकता है। मात्रा=१ तोला। अनुपान=दूध।)

(१३३९) गुडभल्लातकः (च. द्. । अर्शा.५)

भल्लातकसहस्रे द्वे जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन्पचेद् गुडतुलां भिषक् ।।
भल्लातकसहस्रार्धं छित्वा तत्रैव दापयेत् ।
सिद्धेऽस्मिंस्त्रिफलाव्योषयमानीमुस्तसैन्धवम् ।।
कर्षांशसंमितं दद्यात्त्वगेलापत्रकेशरम् ।
खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थाय मानवः ।।
कुष्ठार्शः कामलामेहग्रहणीगुल्मपाण्डुताः ।
हन्यात्प्लीहोदरं कासक्रिमिरोगभगन्दरान् ।।
'गुडभल्लातको' ह्येष श्रेष्ठश्चार्शोविकारिणाम् ।।

---

[1] तिलतैलस्येति पाठान्तरम्। [2] जीवकैलेति पाठभेदः। [3] प्रवालमिति पाठभेदः

२ हज़ार [शुद्ध] भिलावोंको १ द्रोण (१६ सेर) जलमें पकाइये, जब ४ सेर जल शेष रह जाय तो छानकर उसमें १ तुला (१०० पल—६। सेर) गुड और ५०० शुद्ध भिलावोंकी पिट्ठी मिलाकर पुनः पकाइये। जब अवलेहके समान गाढा हो जाय तो उसमें त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), अजवायन, मोथा, सेंधा नमक, दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसरका १–१ कर्ष (१। तोला) चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रखिए।

इसे प्रातःकाल अग्नि बलानुसार सेवन करनेसे कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, पाण्डु, प्लीहोदर, कास, कृमिरोग और भगन्दरका नाश होता है।

यह "गुडभल्लातक" अर्श विकारको शान्त करनेके लिए अत्यन्त उत्तम है।

(मात्रा=६ माशेसे १ तोले तक। अनुपान= दूध। तेल, खटाई और गर्म पदार्थों तथा धूप और अग्नितापादिसे बचना चाहिए।)

(१३४०) गुडादिलेहः (वृ. नि. र. । श्वास.)

गुडोषणानिशारास्नाद्राक्षामागधिकासमाः।
तैलेन चूर्णिता लीढास्तीव्रश्वासनुदः स्मृताः॥

गुड़, स्याह मिर्च, हल्दी, रास्ना, मुनक्का, और पीपल समान भाग लेकर चूर्ण करके तेलमें मिलाकर चाटनेसे तीव्र श्वास नष्ट होता है।

(प्र० वि०:—मात्रा=६ माशेसे १ तोले तक। कटु तैलमें मिलाकर प्रातः, दोपहर, सायम् सेवन करें।)

(१३४१) गुडाद्यं मण्डूरम्

(र. चं. । उदावर्त्त., वै. र. । शूल.)

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम्।
त्रिपलं लौहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा॥
समालोड्य ततः खादेदक्षमात्राप्रमाणतः।
आद्यमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत्॥
अन्नद्रवं जरत्पित्तमम्लपित्तं सुदारुणम्।
परिणामसमुत्थं च शूलं संवत्सरोत्थितम्॥

गुड, आमला और हर्रका चूर्ण १–१ पल (५ तोले) और मण्डूरका चूर्ण (भस्म) ३ पल लेकर सबको शहद और घीमें मिला लीजिए।

इसे भोजनके आदि, मध्य और अन्तमें १ अक्ष (१। तोले) की मात्रानुसार सेवन करनेसे अन्नद्रव, जरत्पित्त (शूलभेद), भयङ्कर अम्लपित्त और १ वर्षका पुराना परिणाम शूल नष्ट होता है।

(व्यवहारिक मात्रा १ माशा)

(१३४२) गुडाद्यवलेहः (वृ. नि. र. । श्वास.)

गुडदाडिममृद्वीकापिप्पलीविश्वभेषजैः।
मातुलुङ्गरसं क्षौद्रं लीढं श्वासनिबर्हणम्॥

गुड, अनारदाना, मुनक्का, पीपल और सोठके चूर्णको जम्बीरी नीबूके रस और शहदमें मिलाकर चाटनेसे श्वास रोग नष्ट होता है।

(मात्रा=३ माशे। नीबूका रस और शहद १–१ तोला। प्रातः, सायं, दोपहर सेवन करें।)

(१३४३) गुडावलेहः (वृ.यो.त ।त.८,वृं.मा.।हिक्का.)

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत्।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निःशेषतो जयेत्॥

गुड़को समान भाग कटु तैलमें मिलाकर ३ सप्ताह तक सेवन करनेसे श्वास रोग समूल नष्ट होता है।

(मात्रा=१-१ तोला । प्रातः सायम् सेवन करें ।)

(१३४४) गोकण्टकाद्यवलेहः

(यो. चि. । पाका. १, वं. से. । प्रमे., भा. प्र. । प्र.; वृ. नि. र. । मू. कृ.)

गोकण्टकं सदलमूलफलं ग्रहीत्वा
सङ्कुट्टितं पलशतं क्वथितं तु तोये ।
पादस्थितेन सलिलेन पलानि दत्वा
पञ्चाशतं तु विपचेदथ शर्करायाः ॥
तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णितानि
दद्यात्पलद्वयमितानि सुभाजनानि ।
शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलां
जातीयकोपककुभत्रपुसीफलानि ॥
वांशीपलाष्टकमिह प्रणिधाय नित्यम्
लेह्यं तु शुद्धममृतं पलसंमितन्तु ।
हन्त्याशु मूत्रपरिदाहविबन्धशुक्र-
कृच्छ्राश्मरीरुधिरमेहमधुप्रमेहान् ॥

मूल, पत्र. फल सहित १०० पल (६। सेर) गोखरुको कूटकर एक द्रोण (१६ सेर) जलमें पकाइये, जब चौथा भाग शेष रह जाय तो काथको छानकर उसमें ५० पल खांड मिलाकर चाशनी बना लीजिए और फिर उसमें सोंठ. मिर्च, पीपल, पान, दालचीनी, इलायची, जावित्री, अर्जुनकी छाल और खीरेका चूर्ण २-२ पल तथा वंसलोचन का चूर्ण ८ पल मिला लीजिए ।

इसे नित्य प्रति १ पल (५ तोले) की मात्रानुसार (दूधके साथ) सेवन करनेसे मूत्रकी दाह, मूत्रावरोध, मूत्रशुक्र, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, रुधिरमेह और मधुमेहका शीघ्र नाश होता है ।

(व्यवहारिक मात्रा १ तोला)

(१३४५) गोक्षुरादिलेहः (भा.प्र.।ख.२ वाजी.)

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजीगन्धा शतावरी ।
मुसलीवानरीबीजं यष्टी नागबलाबला ॥
एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाज्येन भर्जितम् ।
सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥

गोखरु, तालमखाना, असगन्ध, शतावरी, मूसली, कौंचके बीज, मुलैठी, नागबला (खरैंटी भेद) और खरैंटीके समान भाग चूर्णको ४ गुने दूधमें पकाकर खोया बना लीजिए और फिर उसे गोघृतमें भूनकर समान भाग मिश्रीकी चाशनीमें मिलाकर मोदक बना लीजिए ।

यह अत्यन्त वाजीकर (कामशक्ति वर्धक) हैं।

(मात्रा=१ से २ तोले तक । दूधके साथ)

(१३४६) ग्रहणीविजयावलेहः (यो.स.।समु.४)

सिन्धूत्थकृष्णाघनधातकीनां
सम्यग्रजोभिर्विपचेद्द्विताबत् ।
लेहत्वमुपगच्छति यावदेवं
सुशीतलः क्षौद्रयुतोऽतिसारं ॥
लेहो हरेदाममथो विपक्वम्
सवेदनं वा बहुमर्णमस्रं
प्रवाहिका च ग्रहणी चिरोत्थाम् ।
अर्शांसि सम्यग्विलयं प्रयान्ति
पापानि विष्णोरिव चिन्तनेन ॥

सैंधानमक, पीपल, नागरमोथा और धायके फूल समान भाग लेकर चूर्ण करके चार गुने पानीमें पकाइये । जब चतुर्थांश शेष रह जाय तो

१ त्रुटिजयाग्रजकेसराणि संपानीतिपाठभेदः ।

उतारकर छान लीजिए और फिर पुनः पकाकर लेहके समान गाढाकर लीजिए एवं शीतल होने पर यथोचित मात्रानुसार शहदमें मिलाकर सेवन कीजिए।

इसके सेवनसे आमातिसार, पक्वातिसार, वेदना युक्त और अनेक रंगका रक्तातिसार, प्रवाहिका (पेचिश), पुरानी संग्रहणी और अर्श रोग इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे विष्णुके चिन्तनसे पाप।

(मात्रा=६ माशेसे १ तोले तक।)।

इति गकारादि लेहप्रकरणम्।

अथ गकारादि पाकप्रकरणम्

(१३४७) गोक्षुरकादिपाकः (यो.त.।त.८०)

प्रस्थं गोक्षुरसूक्ष्मचूर्णमुदितं दुग्धाढके पाचितम्।
गायत्रीसलवङ्गलोहमरिचं कर्पूरमन्दारकम् ॥
अब्धेःशोषमजाजियुग्मरजनीधात्रीकणाकेसरम्।
जातीकोषफले सदीप्यनलदं शुण्ठीकुबेराक्षकम् ॥
तुल्यं शर्करया तदर्द्धविजया प्रस्थार्धकं गोघृतम्।
युक्त्या वैद्यवरेण निर्मितमिदं प्रौढाङ्गनादर्पनुत् ॥
वीर्यस्तम्भकरं च पुष्टिजनकं वाजीकरं कामिनाम्।
भुक्तो गोक्षुरपाक एष हरिणीनेत्राविलासास्पदम् ॥

गोखरूके १ प्रस्थ (१ सेर) महीन चूर्णको १ आढक (४ प्रस्थ) दूधमें पकाकर खोया बना लीजिए फिर उसे आधा प्रस्थ गोघृतमें भून लीजिए। इसके पश्चात् समस्त ओषधियोंके समान मिश्रीकी चाशनी बनाकर उसमें उक्त खोवा और खैरसार (कत्था), लौंग, लोहभस्म, स्याहमिर्च, कपूर, सफेद आककी जड़की छाल, समुद्रसोख, सफेद जीरा, स्याह-जीरा, हल्दी, आमला, पीपल, नागकेसर, जावित्री, जायफल, अजवायन, खस, सोंठ और करञ्जफलका चूर्ण समान भाग तथा भांग सबसे आधी महीन चूर्ण करके मिला दीजिए।

यह पाक वीर्यस्तम्भक, पौष्टिक, वाजीकर और अत्यन्त कामशक्तिवर्द्धक है।

(१३४८) गोक्षुरपाकः (१) (वृ.यो.त.।१४७)

प्रस्थं गोक्षुरसूक्ष्मचूर्णमुदितं दुग्धाढके पाचितम्।
जातीपत्रलवङ्गलोहमरिचं कर्पूरमाकल्लकम् ॥
अब्धेःशोषमजाजियुग्ममुसलीधात्रीकणाकेशरम्।
जातीकोशफले सदीप्यनलदं शुण्ठीकुबेराक्षजम् ॥
त्वक्पत्रं करिकेसरं गजकणारात्रिर्बलाबीजकम्।
चीनीकन्दयवानिकुङ्कुमतुगाकर्षद्वयं योजयेत् ॥
तुल्यं शर्करया तदर्धविजयां प्रस्थार्द्धकं गोघृतम्।
युक्त्या वैद्यवरेण निर्मितमिदं प्रौढाङ्गनादर्पनुत् ॥
वीर्यस्तम्भनतुष्टिपुष्टिजनकं वाजीकरं कामिनाम्।
भुक्तो गोक्षुरपाक एषहरिणीनेत्राविलासास्पदम् ॥

गोखरुके १ प्रस्थ (१ सेर) महीन चूर्णको १ आढक (४ सेर) दूधमें पकाकर खोया बन जानेपर आधा प्रस्थ गोघृतमें भून लीजिए। इसके पश्चात् खोया सहित समस्त ओषधियोंके बराबर मिश्री की चाशनी करके उसमें यह खोया और निम्न लिखित ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रखिए।

जावित्री, लौंग, लोहभस्म, स्याहमिर्च, कपूर, अकरकरा, समन्दरसोख, दोनों जीरे, मुसली(स्याह) आमला, पीपल, केशर, जावित्री, जायफल, अजवायन, खस, सोंठ, करञ्जफल (करञ्जवेकी गिरी), दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, गजपीपल, हल्दी, खरैंटीके बीज (बीजबन्द), चीनीकन्द, अजवायन, केसर और बंसलोचन प्रत्येकका चूर्ण २-२ कर्ष (२॥ तोले) तथा सब औषधियोंसे आधी भांग।

यह 'गोक्षुरपाक' प्रौढाङ्गनादर्पनाशक, वीर्यस्तम्भक, वाजीकर तथा तुष्टि और पुष्टिजनक है।

(मात्रा=१ तोला। दूधके साथ)

(१३४९) गोक्षुरपाकः(२) (यो.चि.म.।अ.१)

प्रस्थं गोक्षुरसूक्ष्म चूर्णमुदितं दुग्धाढके पाचितम्।
जावित्री च लवङ्गलोध्रमरिचैः कर्पूरके शाल्मली॥
अब्धिशोपसुवर्णबीजरजनीधात्रीं कणाकेशरम्।
चातुर्जातमथाहिफेनममलं कच्छूकुबेराख्यकम्॥
तत्तुल्या च सिता तदर्धविजया प्रस्थद्वयं गोघृतम्।
प्रोक्तं वैद्यवरेण निर्मितमिदं मन्दाग्निना पाचयेत्॥
प्रातःसेव्यमिदंहिमानवमितंव्याधेश्चविध्वंसनम्।
अर्शसिविहितं प्रमेहशमनं सङ्गेऽङ्गनाद्रावकम्॥
क्षीणे पुष्टिकरं क्षयहरं वाजीकरं कामिनाम्।
एतद्गर्वितमानिनीमृगरिपुर्यातीतिजित्वौषधम्॥

१ प्रस्थ (१ सेर) गोखरूके सूक्ष्म चूर्णको १ आढक दूधमें पकाकर खोवा बना लीजिए और फिर उसे २ प्रस्थ गोघृतमें भूनकर निम्न लिखित औषधियोंके चूर्ण सहित समान भाग मिश्रीकी चाशनीमें मिलाकर मोदक बना लीजिए।

जावित्री, लौंग, लोध, मिर्च (स्याह), कपूर, सेमलका गोंद, समन्दरसोख, धतूरेके बीज, हल्दी, आमला, पीपल, केसर, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची, शुद्ध अफीम, कौंचके बीज और करञ्ज (करञ्जवे) की गिरी एक एक कर्ष। और भांग सबसे आधी।

इसे यथोचित (२ से ६ माशे तक) मात्रानुसार प्रातःकाल सेवन करनेसे अर्श, प्रमेह और क्षयका नाश होता है तथा क्षीणव्यक्ति पुष्ट होते हैं, कामियोंमें कामशक्ति प्रबल होती है। प्रमदा-प्रसङ्गसे स्त्री स्खलित होती है एवं मानिनी कामिनीका मद चूर चूर हो जाता है।

(१३५०) गोक्षुरपाकः (३) (वै.र.। प्रमेह०)

चूर्णंगोक्षुरतश्चतुःकुडविकंनिक्षिप्य दुग्धाढके।
श्रीसंज्ञोपणलोहजातित्रिफलाकूपारशोषोषणा॥
एलेन्दूत्कजातिपत्ररजनीधात्र्यः कुबेराक्षतो।
बीजंसर्पजफेनजात्यखिलमित्येतत्पृथक्कार्षिकम्॥
श्वेतासर्वसमार्द्धतश्च विजयासर्पिः पुनःप्राश्य।
पक्त्वायुक्तितएतदक्षतुलितं प्रातर्भजेद्भेषजम्॥
मेहस्तम्भनपोषतोषकृदति प्रौढाङ्गनासंगमो-
द्दामानेकमनोजसंगरभिधातव्यं तु तेजःप्रदम्॥

१ प्रस्थ (१ सेर) गोखरूके चूर्णको ४ सेर दूधमें पकाकर खोवा बना लीजिए, तत्पश्चात् इसे १ प्रस्थ घीमें भूनकर समस्त औषधियोंके बराबर मिश्रीकी चाशनीमें मिला लीजिए और साथ ही निम्नलिखित औषधियोंका चूर्ण भी मिलाकर सुरक्षित रखिए—लौंग, पीपल, लोहभस्म, जायफल, तालमखाना, जावित्री, हल्दी, आमला, करञ्जकी गिरी और अफीम, प्रत्येक एक एक कर्ष (१¼तो.) और भांग समस्त औषधियोंसे आधी।

इसे प्रातःकाल १ कर्ष मात्रानुसार (दूध के साथ) सेवन करनेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है और तेज तथा स्तम्भनशक्ति बढ़ती है।

अथ गकारादि घृतप्रकरणम् ।

(१३५१) गरविषहरघृतम् (अमृतघृत)

(ग० नि० । गर विष०)

अपामार्गस्य बीजानि शिरीपस्य फलानि च ।
श्वेते द्वे काकमाची च गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥
सर्पिरेतेषु संसिद्धं विषसंशमनं परम् ।
अमृतं नाम विख्यातमपि संजीवयेन्मृतम् ॥

चिरचिटे और सिरसके बीज, दोनो प्रकारकी श्वेता (कोयल) और काकमाची [मकोय]के गोमूत्र पिष्ट कल्क (और चतुर्गुण जल)के साथ सिद्ध घृत अत्यन्त विषनाशक है। यह, विषसे मृततुल्य दशा को प्राप्त प्राणीको जीवनदान देनेके लिए अमृतके समान है।

(प्र० वि०—घी १ सेर, जल ४ सेर और कल्क द्रव्य समान भाग मिश्रित पाव सेर लेकर घृत शेष रहने तक पकाएं।)

(१३५२) गव्यघृतादियोगः (च.द.।वृद्धच.)

गव्यं घृतं सैन्धवसंप्रयुक्तं
शम्बूकभाण्डे निहितं प्रयत्नात् ।
सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वं
निहन्ति कूरण्डमतिप्रवृद्धम् ॥

४ भाग गोघृत और १ भाग सेंधानमकको एकत्र करके शंखमें भरकर ७ दिन तक धूपमें रक्खा रहने दीजिए।

इसे (मर्दन, पानादि द्वारा) सेवन करनेसे अत्यन्त प्रवृद्ध अण्डवृद्धि रोग भी नष्ट हो जाता है।

(१३५३) गुग्गुलुतिक्तकं घृतम् (ग.नि.।घृता.)

निम्बामृतापटोलानां कण्टकार्या वृषस्य च ।
पृथग्दशपलान्भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता रजनीद्वयवत्सकम् ॥
शुण्ठी दारुहरिद्रा च पिप्पलीमूलचित्रकम् ।
भल्लातकं यवक्षारं कटुकातिविषा वचा ॥
विडङ्गं स्वर्जिकाक्षारः शतपुष्पाऽजमोदकम् ।
एषामक्षसमैर्भागैर्गुग्गुलो पञ्चभिः पलैः ॥
सुसिद्धं पीयमानञ्च एतद्गुग्गुलुतिक्तकम् ।
विद्रधिं हन्ति सद्यो हि त्वग्दोषानपि दारुणान् ॥
कुष्ठानि स्वापसङ्कोचवेगवन्ति स्थिराणि च ।
वातश्लेष्मसमुत्थानि मारुतास्रकप्रभेदि च ॥
गण्डमालार्बुदग्रन्थिनाडीदुष्टभगन्दरान् ।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं पाण्डुरोगं ज्वरं क्षयम् ॥
विषमज्वरहृद्रोगलिङ्गदोपविषक्रिमीन् ।
प्रमेहासृग्दरोन्मादशुक्रदोषगदान् जयेत् ॥

क्वाथ—नीमकी छाल, गिलोय, पटोलपत्र, कटेली और बांसा। प्रत्येक १०-१० पल (५० तोले) लेकर कूटकर १ द्रोण (१६ सेर) जलमें ४ सेर शेष रहने तक पकाकर छान लीजिए।

कल्क द्रव्य—सोंठ, मिर्च, पीपल, हैड़, बहेडा, आमला, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, इन्द्रजौ, सोंठ, पीपलामूल, चित्रक, शुद्धभिलावा, यवक्षार, कुटकी, अतीस, बच, वायबिडङ्ग, सज्जीखार, सोया और अजमोद प्रत्येक १-१ कर्ष (१। तोला) और गूगल ५ पल (२५ तोले)।

क्वाथ और कल्क तथा १ प्रस्थ घृतको अग्नि पर चढाकर उसमें गूगलको दोलायन्त्र विधिसे लटका दीजिए। घृत सिद्ध हो जाने पर छानकर

उसमें उक्त गूगल डालकर पुनः पकाइये और गूगल घृतमें मिल जानेपर उतारकर सुरक्षित रखिए।

इसके सेवनसे विद्रधि, भयङ्कर त्वकूदोष और भयङ्कर स्थिर तथा संकोचयुक्त कुष्ठ, वातकफसे होनेवाला वातरक्त, गण्डमाला, अर्बुद, ग्रन्थि, दुष्ट नाडीव्रण (नासूर), भगन्दर, खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, पाण्डुरोग, ज्वर, क्षय, विषमज्वर, हृद्रोग, लिङ्गदोष, विष, कृमि, प्रमेह, रक्तप्रदर, उन्माद और शुक्रदोष नष्ट होते हैं।

(मात्रा=१ तोला। अनुपान=गर्म दूध या गिलोयका क्वाथ।)

(१३५४) गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम् (१)

(वं. से० । कु.)

पटोलवत्सकातिक्तनक्तमालसहामृताः ।
निःक्वाथ्य सलिलद्रोणे पलैर्विंशतिर्भागिकैः ॥
पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
कल्कैरक्षसमैर्दारुत्रिफलात्र्यूषणाग्निभिः ॥
पृथ्वीप्रतिविषापाठा चव्येन्द्रयवदीप्यकैः ।
मूर्वाक्षारद्वयाजाजीवचाक्रिमिहरैर्युतैः ॥
कटुकासप्तपर्णाभ्यां पुरस्याष्टपलेन च ।
कुष्ठानि रक्तपित्तञ्च वीसर्पपूतिकुष्ठताम् ॥
पानात्प्रशमयेदेतद्गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकः ।
सिद्धमेतेन विधिना सर्पिः प्रस्थं सगुग्गुलम् ॥
पानाभ्यञ्जननस्येषु तचोक्तानाप्नुयाद्गुणान् ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ (कड़वे), चिरायता, करञ्जवा और गिलोय २०-२० पल (१०० तोले) लेकर १ द्रोण (१६ सेर) जलमें चतुर्थांशावशेष पर्यन्त पकाकर छान लीजिए।

तत्पश्चात इस क्वाथ और निम्न लिखित ओषधियोके कल्कके साथ १ प्रस्थ (१ सेर) घृत पाक सिद्ध कर लीजिए।—कल्क द्रव्य—दारुहल्दी, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोठ, मिर्च, पीपल, चीता, कालाजीरा (अथवा बड़ी इलायची), अतीस, पाठा, चव्य, इन्द्रजौं, अजवायन, मूर्वा, यवक्षार, सज्जीखार, सफेदजीरा, वच, वायविडङ्ग, कुटकी और सतौना वृक्षकी छाल, १-१ कर्ष (१। तोला) तथा गूगल ८ पल।

क्वाथ, कल्क और घृतको एकत्र करके पकाइये तथा पाक कालमें उसमें गूगलकी पोटलीको दोलायन्त्र विधिसे लटका दीजिए। पाक सिद्ध हो जाने पर घृतको छानकर पुनः उक्त गूगल मिलाकर पकाइये और जब घृतमें गूगल भली भांति मिल जाय,तब उतारकर सुरक्षित रखिए।

इस "गुग्गुलुपञ्चतिक्तघृत" को सेवन करनेसे कुष्ठ, रक्तपित्त, विसर्प, और गलित्कुष्ठ रोग नष्ट होता है।

इसे पान, अभ्यञ्जन (मर्दन) और नस्य द्वारा प्रयुक्त करना चाहिए।

(मात्रा=१ तोला। अनुपान=गर्म दूध।)

(१३५५) गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम् (२)

(ग नि । घृता., र. र. । कुष्ठा., वृ. यो. त. । त. १२०, वृं. मा. । कु.)

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागानिमान्दशपलान्विपचेद्घटेऽपाम् ।
अष्टांशशेषितशृतेन पुनश्च तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेद् घृतभागकल्कैः ॥

पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या-
द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः।
तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः॥
मञ्जिष्ठयाऽतिविषया वरया यवान्या
संशुद्धगुग्गुलुःपलैरपि पञ्चसंख्यैः।
तत्सेवितं विधुवति प्रबलं समीरं
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक्॥
नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला-
जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान्।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसशोफकास-
हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तान्॥

क्वाथ—नीम, गिलोय, बासा, पटोलपत्र और कटेली १०-१० पल लेकर कूटकर १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें २ सेर जल अवशेष रहने तक पकाकर छान लीजिए।

कल्क—पाठा, बायबिड़ङ्ग, देवदारु, गजपीपल, यवक्षार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी, सौंफ, चव, कूठ, तेजोवती (मालकंगनी), काली मिर्च, इन्द्रयव, अजवायन, चीता, कुटकी, शुद्ध भिलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला और अजमोद समभाग मिश्रित पावसेर, शुद्ध गूगल ५ पल (२० तोले)।

विधिः—क्वाथ, कल्क और १ प्रस्थ (८० तोले) घृतको एकत्र मन्दाग्नि पर पकाइये और पकते समय गूगलको कपड़ेकी पोटलीमें बांधकर दोलायन्त्र विधिसे उसीमें लटका दीजिए। पाक सिद्ध होनेपर घृतको छानकर पुनः गूगलके साथ पकाइये और जब गूगल उसमें भलीभांति मिल जाय तो उतारकर सुरक्षित रखिए।

इसके सेवनसे सन्धि, अस्थि और मज्जागत प्रबल वात तथा कुष्ठ एवं नाड़ीव्रण (नासूर), अर्बुद (रसौली), भगन्दर, गण्डमाला, उर्ध्वजत्रु (गलेसे ऊपर) गत समस्त रोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, राजयक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, शोथ, कास (खांसी), हृद्रोग, पाण्डु (पीलिया), मद, विद्रधि और वातरक्तका नाश होता है।

(मात्रा=१ तोला। अनुपान=गर्म दूध या गिलोयका क्वाथ।)

(१३५६) गुडघृतम् (वृं. मा.। वा. र.)

कफरक्तप्रशमनं, कच्छूवीसर्पनाशनम्।
वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम्॥

गुड़ और घृत (बराबर बराबर) मिलाकर सेवन करनेसे कफ, रक्त, कच्छू, विसर्प और वातरक्तका नाश होता है। यह प्रयोग हृदयके लिए भी हितकर है।

(१३५७) गुडपिप्पलीघृतम्

(वंगसे., च. द.। परि. शू०)

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे।
विनिहन्त्यम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम्॥

पीपल और गुड़के कल्क तथा चार गुने दूधके साथ सिद्ध घृत अम्लपित्त और परिणाम शूलका नाश करता है।

(१३५८) गुडादिघृतम् (वृ.नि.र.। अ.पि.)

गुडजीरकणासिद्धं सर्पिरत्र प्रयोजयेत्।
सवाते सविबन्धेऽस्मिन्हिता कंसहरीतकी॥

वातजन्य अम्लपित्तकी शान्तिके लिए गुड, जीरा और पीपलके कल्कसे सिद्ध घृत एवं मल-मूत्रावरोध युक्त अम्लपित्तके निवारणार्थ कंसहरी-तकी सेवन करनी चाहिए।

(१३५९) गुडूचीघृतम् (१) (भा.प्र.। वातर.)

गुडूचीस्वरसे सर्पिर्जीवनीयैश्च साधितम्।
कल्कैश्चतुर्गुणैः क्षीरैः सिद्धं वाऽजस्रवातनुत्॥

गिलोयके स्वरस अथवा चतुर्गुण दुग्ध और जीवनीय गणके कल्कसे सिद्धघृत वातरक्तका नाश करता है।

गुडूचीघृतम् (२) (आ. वे. वि.। वातर.)

१५६ संख्यक 'अमृताद्यघृत' अवलोकन कीजिए।

गुडूचीघृतम् (३) [महा] (भा. प्र.। वातर.)

'महागुडूचीघृतम्' अवलोकन कीजिए।

(१३६०) गुडूचीघृतम् (४)

(वृं. मा.; च. द., वृ. नि. र.; वं. से.; भा. प्र. खं. २; ग. नि। वा. र.; च. सं.। वा. र. चि.: वं. से.; ग. नि.; यो. र.। पाण्डु.)

गुडूचीकाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृतम्।
हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम्॥

गुडूचीके कल्क, क्वाथ और दूधके साथ सिद्ध घृत वातरक्त तथा भयङ्कर कुष्ठका नाश करता है।

(प्र. वि.—गुडूची (गिलोय) का क्वाथ ४ सेर, गिलोयका कल्क पावसेर, दूध १ सेर और घृत १ सेर। यथाविधि पाक सिद्ध करें।

(१३६१) गुडूच्यादिघृतम् (१) (वं.से.।स्त्री.रो.)

गुडूचीत्रिफलाभीरुशुकनासानिशाह्वयैः।
श्रीपर्णीशैर्यकद्राक्षाकासमर्दकविल्वकैः॥
परूपकान्वितैरक्षसमैः प्रस्थो घृतः शृतः।
योनिवातविकारघ्नो गर्भदः परमो भवेत्॥

गिलोय, हर्र, बहेड़ा, आमला, शतावर, श्योनाक (अरलू), हल्दी, अरणी, कालावासा, दाख (मुनक्का), कसौंदी, बेलगिरी और फालसेकी छाल १-१ कर्ष (१। तोला) लेकर इनके कल्क (और ४ सेर जल) के साथ १ सेर घृत सिद्ध कर लीजिए। यह घृत वातज योनिरोग नाशक और गर्भस्थापक है।

(१३६२) गुडूच्यादिघृतम् (२) (वं.से.। रसा.)

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशंखिनी
वचाशतावर्यभयामहौषधैः।
घृतं विपक्वं पिबतां प्रशस्त-
वचस्तु येषां विकलश्च जल्पताम्॥

गिलोय, अपामार्ग (चिरचिटा), वायविड्ङ्ग, शंखाहोली (शंखपुष्पी), बच, शतावर, हैड़ और सोंठके कल्कसे सिद्ध घृत वाणीकी विकलता (गदगद-हकलापन) के लिए हितकर है।

(१३६३) गुडूच्यादिघृतम् (३)

(सु. सं.। उत्त. ज्व.)

गुडूचीत्रिफलावासात्रायमाणायवासकैः।
क्वथितैर्विधिवत्पक्कमेतैः कल्कीकृतैःसमैः॥
द्राक्षामागधिकाम्भोदनागरोत्पलचन्दनैः।
पीतं सर्पिःक्षयश्वासकासाजीर्णज्वराञ्जयेत्॥

गिलोय, हर्र, बहेड़ा, आमला, वासा, त्रायमाणा और जवासेके क्वाथ तथा मुनक्का, पीपल,

---

१ जीवनीय गण—जकारादि कषाय प्रकरणमें देखिए।

नागरमोथा, सोंठ, नीलोफर और लाल चन्दनके कल्कसे विधिवत् सिद्ध घृत पीनेसे क्षय, श्वास, खांसी, अजीर्ण और ज्वरका नाश होता है।

(प्र० वि०—क्वाथकी ओषधियां सम भाग मिश्रित २ सेर। १६ सेर जलमें पकाकर ४ सेर शेष रक्खें। कल्ककी औषधे समभाग मिश्रित पावसेर। घी १ सेर।

(मात्रा=१ तोलेसे २ तोले तक। अनुपान= गर्म दूध।)

(१३६४) गुडूच्यादिघृतम् (४)

(वा. भ. । चि. स्था. कास.)

गुडूचीकण्टकारीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः॥

गिलोय और कटेलीके ३०-३० पल रस (क्वाथ) के साथ १ प्रस्थ घृत सिद्ध कर लीजिए।

इस घृतके सेवनसे वातज कास नष्ट होता और अग्नि प्रदीप्त होती है।

(१३६५) गुडूच्यादिघृतम् (५)

(च० सं० । चि० स्था० अ० १२)

गुडूचीं पिप्पलीं मूर्वां हरिद्रां श्रेयसीं वचाम्।
निदिग्धिकां कासमर्दं पाठां चित्रकनागरम्॥
जले चतुर्गुणे पक्त्वा पादशेषेण तत्समम्।
सिद्धं सर्पिः पिबेद्गुल्मश्वासार्तिक्षयकासनुत्॥

गिलोय, पीपल, मूर्वा, हल्दी, हर्र, वच, कटेली, कसौंदी, पाठा [जलजमनी], चीता और सोंठ समान भाग मिश्रित १ सेर लेकर ८ सेर जलमें पकाएं और २ सेर जल शेष रहनेपर छानकर उसमें आध सेर घृत मिलाकर घृत मात्र शेष रहने तक पकाइये।

इसके सेवनसे गुल्म, श्वास और क्षयरोग नष्ट होता है।

(१३६६) गुडूच्यादिघृतम् (६)

(वृ. नि. र., च. द.; बं. से. । ज्वरा., वा. भ. । चि. स्था. अ० १)

गुडूच्यारसकल्काभ्यां त्रिफलाया[1] रसेन तु।
मृद्वीका वा बलायाश्च सिद्धा स्नेहा ज्वरच्छिदः॥

गिलोय, त्रिफला, मुनक्का और खरैटीमेंसे किसी भी ओषधिके कल्क और क्वाथसे सिद्ध घृत ज्वरका नाश करता है।

(१३६७) गुडूच्यादिघृतम् (७) (यो. र.)

सर्पिर्गुडूचीवृषकण्टकारी
क्वाथेन कल्केन च सिद्धमेतत्।
पेयं पुराणज्वरकासशूल
प्लीहाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु॥

पुरातन ज्वर, कास, शूल, प्लीहा (तिल्ली), अग्निमांद्य और ग्रहणी रोगकी शान्तिके लिए गिलोय, बासा और कटेलीके क्वाथ तथा कल्कसे सिद्ध घृत पीना उपयोगी है।

गोक्षुरादिघृतम् (१) (यो. र. । यक्ष्मा.)

श्वदंष्ट्रादिघृतम् देखिए।

गोक्षुरादिघृतम् (२)

(वृ. नि. र. । क्षया., वा. भ. चि. कास.)

श्वदंष्ट्रादिघृत अवलोकन कीजिए।

गोक्षुरादिघृतम् (३) (च.सं.।चि.स्था.प्रमे.अ.६)

त्रिकण्टकादि घृत देखिए।

---

१ त्रिफलाया वृषस्य चेति पाठभेदः।

(१३६८) **गोघृततर्पणम्** (वृं. मा. । नेत्र.)

गव्यक्षीरोत्थितं सर्पिस्तर्पणार्थं विधीयते।
दृष्टिप्रसादनं श्रेष्ठं तिमिरस्यापकर्षणम् ॥
अभिष्यन्दाधिमन्थाभ्यां कर्षतेऽक्षिणीबलावहम्।
दोषानुत्सादयत्याशु तथैवाश्रुनियच्छति ॥

गोघृतके तर्पण (धूम, धूलि आदिरहित स्थान में लिटाकर रोगीकी आंखोमें घृत पूर्ण करने) से दृष्टि स्वच्छ होती है, तिमिर, अभिष्यन्द, अधिमन्थ और दोष नष्ट होकर दृष्टि शक्ति बढ़ती है तथा अश्रुपात (अधिक आंसू बहना) शान्त होता है।

(१३६९) **गोधूमाद्यं घृतम्**

(भै. र, वं. से, वृं. मा.। वाजी., नपुं. मता. । त. २ च. द. वृष्या., वृ. यो. त. । त० १४७)

गोधूमात्तु पलशतं निष्क्वाथ्य सलिलाढके।
पादशेषे च पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥
गोधूममुञ्जातफलं माषा द्राक्षा परूषकम्।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी ॥
अश्वगन्धा सखर्जूरा मधुकं त्र्यूषणं सिता।
भल्लातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥
घृतप्रस्थं पचेदेवं क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम्।
मृद्वग्निना च सिद्धे तु द्रव्याण्येतानि निक्षिपेत् ॥
त्वगेले पिप्पली धान्यं कर्पूरं नागकेशरम्।
यथालाभं विनिक्षिप्य सिता क्षौद्रं पलाष्टकम् ॥
दत्वेक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत्।
केवलस्य पिबेदस्य पलमात्रं प्रमाणतः ॥
न चास्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत्।
बल्यं परं वातहरं शुक्रसंजननं परम् ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानाञ्चापि शस्यते।
पलद्वयं तदश्नीयात् दशरात्रमतन्द्रितः ॥
स्त्रीणां शतञ्च भजते पीत्वा चानु पिबेत्पयः।
अश्विभ्यां निमितञ्चैव गोधूमाद्यं रसायनम् ॥
जलद्रोणेऽत्र गोधूमक्वाथे तच्छेषमाढकम्।
मुञ्जातकस्य स्थाने तु तद्गुणं तालमस्तकम् ॥
कल्कद्रव्यसमं मानं त्वगादेःसाहचर्यतः ॥

सामग्री—[१] क्वाथ—१०० पल (६। सेर) गेहूं लेकर १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें पकाइये और ४ सेर जल शेष रहने पर छान लीजिए।

[२] कल्क द्रव्य—गेहूं का सत्व (नशास्ता), मुञ्जातफल (अभावमें तालफल), उर्द, दाख(मुनक्का), फालसा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, शतावरी, असगन्ध, खजूर, मुलैठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, मिश्री, शुद्ध भिलावेकी गिरी और कौंचके बीज समभाग मिश्रीत २० तोले लेकर पानीके साथ पीस लीजिए।

[३] घी १ सेर। [४] दूध ४ सेर।

[५] प्रक्षेपद्रव्य—दालचीनी, इलायची, पीपल, धनियां, कपूर और नागकेसर। इनमेंसे जितनी औषधियां मिल सकें सबका समभाग मिश्रित चूर्ण २० तोले।

[६] मिश्री और शहद ४०-४० तोले।

विधिः—क्वाथ, कल्क द्रव्य, घृत और दूधको एकत्र मिलाकर घृतमात्र शेष रहनेतक मन्दाग्नि पर पकाइये, तत्पश्चात् छानकर उसमें प्रक्षेप द्रव्योंका महीन (कपड़ छन) चूर्ण तथा मिश्री और शहद डालकर इक्षुदण्ड (गन्ने)से मिलाकर सुरक्षित रखिए।

अश्विनिकुमारों द्वारा आविष्कृत यह गोधूमादि रसायन घृत दूधमें डालकर सेवन करनेसे लिङ्ग शैथिल्य और शुक्र क्षय नहीं होता। यह अत्यन्त बल्य, वायुनाशक, शुक्रोत्पादक और मूत्रकृच्छ्र नाशक तथा वृद्धोके लिए हितकारी है।

इसे २ पल (१० तोले) की मात्रानुसार सावधानीपूर्वक १० दिन पर्यन्त दूधके साथ सेवन करनेसे सैकड़ो रमणियोके साथ रमण करनेकी शक्ति प्राप्त होती है।

यदि यह घृत केवल (भातादि रहित) सेवन करना हो तो ५ तोलेकी मात्रानुसार सेवन करना चाहिए।

(व्यवहारिक मात्रा—१ से २ तोले तक)

(१३७०) गोपीड्यादिघृतम् (वृ.नि.र.।ज्वरा.)

गोपीडयामलकीस्थिरा—
मगधजातिक्तापयपालिनी।
द्राक्षाश्रीफलधावनी—
हिमविषामुस्तेन्द्रजैःसाधितम्॥
स्यादाज्यं विषमज्वरक्षयशिरःपार्श्वव्यथारोचक-
च्छर्दीशोषहलीमकप्रशमनं लीलालतामञ्जरी॥

सारिवा, आमला, शालपर्णी, पीपल, कुटकी, नेत्रबाला, मुनक्का, बेलगिरी, पिठवन, चन्दन, लाल-चन्दन, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौंके कल्क तथा क्वाथसे सिद्ध घृत विषम ज्वर, क्षय, शिरःशूल, पार्श्व पीड़ा, अरुचि, वमन, शोथ और हलीमक का नाश करता है।

(१३७१) गौराद्यंघृतम्

(भै. र., धन्वं.; यो. र., ग. नि., वृ. मा, र. र., च. द.। व्रणा०। वृ. यो. त.। त. ११२)

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च।
प्रपौण्डरीकं ह्रीवेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम्॥
जातीनिम्बपटोलश्च करञ्जं कटुरोहिणी।
मधूच्छिष्टं समधुकं महामेदा तथैव च॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
एष गौरो महायोगः सर्वं व्रणविशोधनः॥
आगन्तुसहजाश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः।
विषमामपिनाडीन्तु शोधयेच्छीघ्रमेव तु॥

कल्क द्रव्य—सफेद सरसों, हल्दी, मजीठ, जटामांसी (बालछड़), मुलैठी, पुण्डरिया, नेत्रबाला, नागरमोथा, लाल चन्दन, चमेलीके पत्ते, नीमकेपत्ते, पटोलपत्र, करञ्ज (करञ्जवे) की गिरी, कुटकी, मोम, मुलैठी और महामेदा समभाग मिश्रित २० तोले।

क्वाथ द्रव्य—पञ्चवल्कल (बड़, गूलर, बेत, पीपल [अश्वत्थ] वृक्ष और पिलखनकी छाल सम-भाग मिश्रित २ सेर।

विधिः—क्वाथ द्रव्योको कूटकर १६ सेर पानीमें पकाकर ४ शेर रहने पर छान लीजिए तत्पश्चात् १ सेर गोघृत, यह क्वाथ और उपरोक्त कल्क द्रव्य मिलाकर पकाइये। जब घृत शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए।

यह गौरादिघृत, आगन्तुक, सहज और अत्यन्त पुराने घावोका तथा विषम मार्गगामिनी नाडी (नासूर) को अत्यन्त शीघ्र शुद्ध कर देता है।

(१३७२) गौराद्यं सर्पिः

(वृ. यो. त। त. १२४, यो. र.; वं. से.। विसर्प, शा. सं.। घृता.)

द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम्।
मधुकं मधुपर्णी च पद्मकं पद्मकेसरम्॥

उशीरमुत्पलं मेदा त्रिफला पञ्चवल्कलम्।
कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
विषवीसर्पविस्फोटकीटलूतात्रणापहम्।
गौराद्यमिति विख्यातं सर्पिःश्लेष्ममरुत्प्रणुत् ॥

हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, मूर्वा, सारिवा, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, मुलैठी, गिलोय, पद्माख, कमलकेसर, खस, नीलोफर, मेदा, हैड़, वहेडा, आमला और पञ्चवल्कल (पीपल, पिलखन, गूलर, सिरस और बड़की छाल) एक एक अक्ष (१। तो.) लेकर इनके कल्क और चतुर्गुण जलसे १ प्रस्थ (१ सेर) घृत पका लीजिए।

यह घृत विष, विसर्प, विस्फोटक, मकड़ी आदिका विष, घाव और कफवातनाशक है।

(१३७३) गौर्य्यादिघृतम्

(सु. सं.। चि. स्था. अ. १३)

घृतस्य गौरीमधुकारविन्द-
रोध्राम्बुराजादनगैरिकेषु।
तथार्षभे पद्मकसारिवासु
काकोलिमेदाकुमुदोत्पलेषु ॥
सचन्दनायां मधुशर्करायां
द्राक्षास्थिरापृश्निशताह्वयासु।
कल्कीकृता सूदकमत्र दत्त्वा-
न्यग्रोधवर्गस्य तथास्थिरादेः ॥
गणस्य बिल्वादिकपञ्चमूल्या-
श्चतुर्गुणं क्षीरमथापि तद्वद्।
प्रस्थं विपक्वं परिषेचनेन
पैत्तींनिहन्यात्तु विसर्पनाडीम् ॥
विस्फोटदुष्टव्रणशीर्षरोगान्
पाकं तथास्यस्य निहन्ति पानात्।
ग्रहार्दिते शोषिणि चापि बाले
घृतं हि गौर्यादिकमेतदिष्टम् ॥

हल्दी (अथवा मजीठ), मुलैठी, कमल, लोध, नेत्रवाला, खिरनी वृक्षकी छाल, गेरु, जीवक, ऋषभक, पद्माख, सारिवा, काकोली, मेदा. कुमुद, नीलोफर, चन्दन, शहद, मिश्री दाख (मुनक्का), शालपर्णी, पृश्निपर्णी और सौंफके कल्क, और न्यग्रोधादिगण तथा दशमूलके चतुर्गुण क्वाथ और चतुर्गुण दूधसे १ प्रस्थ (१ सेर) घृत सिद्ध कर लीजिए।

इसे विसर्प जन्य नासूरके भीतर लगानेसे वह नष्ट हो जाता है एवं पीनेसे विस्फोटक, दुष्ट व्रण (घाव), शिरोरोग, मुखपाक और ग्रहपीड़ाके कारण बालकोंका सूखना आदि रोग नष्ट होते है।

(१३७४) गौर्याद्यं घृतम् (ग. नि. घृता. १)

गौर्यारिष्टपटोलरोध्रफलिनीयष्ट्याह्वनीलोत्पलै-
र्मञ्जिष्ठाकटुकेन्द्रवारुणिजपा मूर्वानिशाचन्दनैः
जातीक्षीरकपत्रकेशरदलैः पूतीकघोटाफलै
स्तुल्यैःसिक्थकसारिवाद्वययुतैर्गव्यं घृतं पाचयेत्॥
यष्टिक्षीरसपञ्चकोलजलदक्वाथैश्च गौर्यादिभिः
सिद्धं सर्पिरिदं हितं त्रिषु भवेत्सद्यःक्षतेषु ध्रुवम्।
येगूढाश्चिरकालजातगतयः प्रोच्छिन्नमांसा व्रणाः
सस्रावाःसरुजःसदाहपिडिकाःशुष्यन्तिरोहन्ति च॥

हल्दी, नीमके पत्र, पटोलपत्र, लोध, मेंहदीके पत्र, मुलैठी, नीलोफर, मजीठ, कुटकी, इन्द्रायणकी जड़, जपापुष्प [औड़ पुष्पी], मूर्वा, हल्दी, लाल चन्दन, चमेलीके पत्ते, क्षीरकपत्र (क्षीरमोरट लता नामक वृक्षके पत्र), मौलसरीके पत्र, पूतिकरञ्ज

(करञ्ज भेद), घोटाफल (गोपघोण्टा—बदरभेद—क्षुद्र-बेर), मोम, सारिवा और कृष्ण सारिवाके कल्क तथा मुलैठी, क्षीरक, पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) और नागरमोथेके क्वाथसे सिद्ध गव्य घृत तीनो प्रकारके क्षतोंमें हितकर है।

यह 'गौरादिघृत' गले सड़े, पुराने और अन्तर्मुख, छिन्नमांस, स्रावयुक्त, पीड़ायुक्त, दाह और पिड़िकायुक्त घावोंको भर कर सुखा देता है।

(प्र. वि.—घृत १ सेर, कल्क द्रव्य समभाग मिश्रित पावसेर, क्वाथद्रव्य समभाग मिश्रित २ सेर, क्वाथ करनेके लिए जल १६ सेर, शेष ४ सेर।)

—इस घृतको घाव पर लगाना चाहिए।

॥ इति गकारादि घृतप्रकरणम् ॥

अथ गकारादि तैलप्रकरणम्।

(१३७५) गण्डमालापहं तैलम् (वृं.मा.।ग.गं.)

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा—।
बिम्ब्यश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं वाऽपि नावनम् ॥

शाखोट (सिहोड़े)की छाल, कन्दूरी, कनेर और संभालूसे सिद्ध तैलकी नस्य लेनेसे गण्डमाला नष्ट होती है।

(१३७६) गण्डीरादि तैलम् (१)

(वै. म.। पट० १६)

गण्डीराख्यज्वलनहपुषाबाणपुङ्खाङ्घ्रित्राण—
शौण्डीमूलैः सममिति समैर्विश्वमेषां कषाये।
सिद्धं तैलं वदननिहितं वक्त्ररोगानशेषा—
नेलाशुण्ठीमगधमरिचोद्भूतकल्कं निहन्ति ॥

मजीठ, चीता, हाऊबेर, सरपोखा (शरपुंखा) की जड़, मूंज, पिप्पलीमूल और सोंठके क्वाथ तथा इलायची, सोंठ, पीपल और मिर्च (स्याह)के कल्कसे सिद्ध तैल मुखके समस्त रोगोका नाश करता है।

(१३७७) गण्डीरादि तैलम् (२)

(वं. से.; वृं. मा., च. द.। कुष्ठा.)

गण्डीरिकाचित्रकमार्कवार्क—
कुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः।
तैलं पचेन्मण्डलदद्रुकुष्ठ
दुष्टव्रणारुक्किटिभापहारी ॥

मजीठ, चीता, भृङ्गराज (भंगरा), आक, कूट, कुड़ेकी छाल और सेंधानमक सब समान भाग लेकर इनके (१ सेर कल्क) और १६ सेर गोमूत्रके साथ ४ सेर तैल पका लीजिए।

यह तेल मण्डल, दाद, कुष्ठ, दुष्ट व्रण और किटिभका नाश करता है।

(१३७८) गन्धकतैलम् (१)

(वृ. नि. र., वं. से.; यो. र.; वृं. मा.। कर्ण., यो. त.। त० ७० कर्ण. रो.)

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन
मुष्ट्यंशकेन कटुतैलपलाष्टकन्तु।
धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं
नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥

"गन्धकादीनामत्र मिलित्वा पलं ग्राह्यम्"

गन्धक, मनसिल, और हल्दीका समान भाग मिश्रित चूर्ण १ पल और धतूरेका रस ८ पल लेकर यथाविधि ८ पल तैल सिद्ध करें।

इसे कानमें डालनेसे कानका पुराना नासूर भी नष्ट हो जाता है।

(प्र. वि.—पाककी उत्तमताके लिए इसमें ३२ पल पानी भी डालना चाहिए।)

(१३७९) गन्धकतैलम् (२)

(र. मं. । अ. ३; र. र. स. । अ. ३)

अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा।
गन्धकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेत्तु तत्॥
तद्वर्त्तिर्ज्वलिता वंशैर्धृता धार्या त्वधोन्मुखी।
तैलं पतत्यधोभाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत्॥
अग्निसन्दीपनं श्रेष्ठं वीर्यवृद्धिं करोति च॥

वस्त्रके एक टुकड़ेको सात सात बार अर्क-दुग्ध और थोहरके दूधमें भिगोकर सुखा लीजिए फिर उसपर नवनीत (मक्खन—नौनी घी) में पीसे हुवे गन्धकका लेप करके वत्ती बना लीजिए। इस वत्तीको जलाकर एक चिमटेसे पकड़कर उल्टी लटका दीजिए और उसके नीचे एक पात्र रख दीजिए। इस पात्रमें जो तैल एकत्र हो जाय उसे सुरक्षित रखिए।

इस तैलके सेवनसे अग्नि दीप्त और वीर्यवृद्धि होती है।

प्र. वि.-प्रातः सायं-१०-१५ बूंद दूधमें डालकर पिएं।)

(१३८०) गन्धकतैलम् (३) (र. र। कर्ण.)

निशागन्धपले द्वे तु कटुतैलं पलाष्टकम्।
धूर्त्तपत्ररसे सिद्धं कर्णनाडीजिदुत्तमम्॥

हल्दीका चूर्ण १ पल (५ तोले) और गन्धकका चूर्ण १ पल लेकर इनके कल्क और धतूरेके पत्र-स्वरससे ८ पल कटु तैल पका लीजिए।

इसे कानमें डालनेसे कानका नासूर नष्ट होता है।

(१३८१) गन्धतैलम्

(धन्वं., च. द.; भै. र.; भा. प्र.; वं. सेन। भग्ना., ग. नि.। तै. अ.; सु. सं.)

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले।
दिवादिवैव संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत्॥
तृतीयं सप्तरात्रं वा भावयेन्मधुकाम्बुना।
ततःक्षीरान् पुनःपीतान् शुष्कान् सूक्ष्मान् विचूर्णयेत्
काकोल्यादिं सयष्ट्याह्वं मञ्जिष्ठां शारिवां तथा।
कुष्ठं सर्जरसं मांसी सुरदारु सचन्दनम्॥
शतपुष्पं च संचूर्ण्य तिलचूर्णानि योजयेत्।
पीडनार्थं च कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत्पुनः।
एलामंशुमतीं पत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा॥
लोध्रं प्रपौण्डरीकञ्च तथा कालानुसारिवाम्।
शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम्॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकञ्चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च।
एभिश्चविपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नासां सर्वकर्मसु।
आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहेः।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयंगताः॥
पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्यवस्तिषु भोजने।
ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते॥

---

१ जीवकमिति पाठभेदः। २ तगरमिति पाठान्तरम्। ३ सैरेयकमिति च पाठः।

मुखं च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥
राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः ।
तिलचूर्णसमं त्वत्रमिलितं चूर्णमिष्यते ॥

काले तिलोको कपड़ेमें बांध कर ३ अथवा ७ दिन तक रात्रि भर बहते पानीमें डाले रखिए और दिनको सुखा लिया कीजिए । इसके पश्चात् उन्हें इसी प्रकार एक दिन दूध और मुलैठीके क्वाथमें रात्रि भर भिगोकर प्रातःकाल सुखाइये फिर गोदुग्धसे एक रात भिगोकर चूर्ण कर लीजिए। तत्पश्चात् काकोल्यादि गण, मुलैठी, मजीठ, सारिवा, कूठ, राल, जटामांसी, देवदारु, चन्दन, और सोया बराबर बराबर लेकर चूर्ण करके उपरोक्त तिल इस चूर्णमें चूर्णके समान प्रमाणमें मिला लीजिय । तत्पश्चात् इस चूर्ण को सर्वगन्ध[1] सिद्ध दुग्ध[2]से आर्द्र (गीला) करके कोल्हूमें पिलवाकर तैल निकलवा लीजिए ।

इस तैलको चतुर्गुण जल और इलायची, शालपर्णी, तेजपात, जीवन्ती, असगन्ध. लोध, पुण्डरिया, तगर, भूरिछरीला, क्षीर बिदारी, दूब, मूर्वा, सिंघाड़ा और पूर्वोक्त काकोल्यादिगण[3], मुलैठी इत्यादि समस्त ओषधियोंके कल्कके साथ मन्दाग्नि पर पका लीजिए ।

इसे पान, अभ्यङ्ग, नस्य, बस्ति और भोजनमें प्रयुक्त करनेसे भग्न, आक्षेपक, पक्षाघात, तालुशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बाधिर्य, तिमिर, अधिक स्त्री प्रसंगसे उत्पन्न क्षीणता, और गरदनका हिलना इत्यादि रोग नष्ट होते हैं ।

नृप—व्यवहार योग्य इस गन्धतैलके व्यवहारसे मुख कमलके समान सुन्दर एवं सुगन्धित हो जाता है।

(१३८२) गन्धपिष्टीतैलम्

(र. र. स. । उ. ख., अ० २०)

विपक्का कटुतैलेन पामाहृत् गन्धपिष्टिका ।

गन्धकपिष्टी*को कड़वे तैलमें पकाकर तैल छानकर रख लीजिए। इसकी मालिशसे पामा (खुजली) नष्ट होती है ।

(प्र. वि.—गन्धक पिष्टी १ भाग, तैल ४भाग, पानी १६ भाग लेकर तैलावशेष पर्यन्त पकाइये ।)

(१३८३) गन्धर्वहस्ततैलम्

(भै. र.; धन्वं.; र. र., ग. नि.; वं. से. । वृद्धि ग. नि. । परिशिष्ट तै. २)

शतमेरण्डमूलस्य पले शुंठ्या यवाढकम् ।
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥
तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च ।
प्रस्थमेरण्डतैलस्य तन्मूलाच्च चतुष्पलम् ॥
त्रिपलं शृङ्गबेरश्च गर्भं दत्वा विपाचयेत् ।
तत्पिबेत्प्रयतः शुद्धो नरःक्षीरान्नभुक्सदा ॥
अन्त्रवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् ॥

१—सर्वगन्ध=गन्धद्रव्याणि अवलोकन कीजिए।

२—ओषधियोंसे ८ गुना दूध और दूधसे चार गुना पानी एकत्र मिलाकर दुग्ध शेष रहने तक पका लीजिए ।

३—काकोल्यादि गण—भा. भै. र, भाग १ में ककारादि क्वाथ प्रकरणमें अवलोकन कीजिए ।

* गन्धकको अमलतासके गूदेमें घोट लीजिए अथवा ५ तोले गन्धक और १ तोला पारदको देवदाली (बिंडाल डोढे) के रसमें घोट लीजिए । इसीका नाम गन्धक पिष्टी है ।

अरण्डमूलकी छाल १०० पल (६। सेर) सोठ २ पल और जौं ४ सेर लेकर कूटकर १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें पका लीजिए। जब चार सेर पानी शेष रहे तो छान लीजिए। तत्पश्चात् यह क्वाथ और ४ सेर दूध तथा १ सेर अरण्डका तैल और चार पल अरण्डमूलकी छाल, एवं ३ पल (१५ तो.) अदरखका कल्क एकत्र करके पकाइये। जब केवल तैल शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए।

कोष्ट शुद्धिके पश्चात् इसे यथोचित मात्रानुसार सेवन करने और दुग्ध भात भोजन करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है।

(मात्रा—६ माशेसे १ तोला तक, सोठके क्वाथके साथ।)

(१३८४) गर्भविलासतैलम्

(भै. र. । स्त्रीरो., धन्व. । सूतिका.)

विदारी दाडिमं पत्रं रजनी च फलत्रयम्।
शृङ्गाटकस्य पत्रञ्च जातीकुसुममेव च॥
वरी नीलोत्पलं पद्मं तैलमेतैः पचेत्सुधीः।
एतद्गर्भविलासाख्यं गर्भसंस्थापनं परम्॥
निहन्ति गर्भशूलञ्च शोणितस्रुतिसंहरम्।
परं वृष्यतरं ह्येतत् काशीराजेन निर्मितम्॥

विदारीकन्द, अनानके पत्ते, हल्दी, हैड़, बहेडा, आमला, सिंघाडेके पत्ते, चमेलीके फूल, शतावर, नीलोफर और कमलपुष्प, इनके क्वाथ तथा कल्कसे तेल सिद्ध कर लीजिए।

यह काशीराज निर्मित 'गर्भविलास' नामक तैल गर्भसंस्थापक, गर्भशूल और रक्तस्राव नाशक तथा अत्यन्त वृष्य है।

(१३८५) गुग्गुल्वाद्यं सूर्यपाकतैलम्

(ग. नि. । तैला० २)

गुग्गुलुमरिचविडङ्गैः सर्षपकासीसमुस्तसर्जरसैः।
श्रीवेष्टतालगन्धैर्मनःशिलाकुष्ठकम्पिल्लैः॥
उभयहरिद्रासहितैः कटुतैलं विमिश्रितैरेभिः।
आदित्यरश्मिपक्वैः कुष्ठं विनिहन्ति संस्पर्शात्॥

गूगल, मिर्च (स्याह), वायविडङ्ग, सरसो, कसीस, मोथा, राल, तारपीन, हरताल, गन्धक, मनसिल, कूठ, कमीला, हल्दी और दारु हल्दीके समान भाग चूर्णको चारगुने तैलमें मिलाकर तेज़ धूपमें रखिए।

इस तेलकी मालिशसे कुष्ठरोग नष्ट होता है।

(प्र. वि.—तैलसे चार गुना जल मिलाकर जल शुष्क होने तक धूपमें रक्खा रहने दीजिए।)

(१३८६) गुञ्जातैलम् (१)

(रा. मा. । शिरो. रो., यो. त. । त. ७३)

मार्कवस्वरसभावितगुञ्जा
बीजचूर्णपरिपाचिततैलम्।
मिश्रितं त्रुटिजटामुरकुष्ठैः
केशभारजननं वनितायाः॥

गुञ्जा (चौंटली) के चूर्णको भांगरेके रसकी भावना दे लीजिए तत्पश्चात् इस चूर्ण और इलायची (छोटी), जटामांसी (बालछड़), मुर (मुरमुकी) और कूठके चूर्णके साथ तैल सिद्ध कर लीजिए।

इसके व्यवहारसे स्त्रियोंके केश अत्यधिक बढ जाते हैं।

(प्र. वि.—समस्त वस्तुओका समभाग मिश्रित चूर्ण १ भाग, तैल ४ भाग, पानी १६ भाग मिलाकर पकावें।)

(१३८७) गुञ्जातैलम् (२) (भै.र.; धन्व.। शिरो.)

विशुद्धं तिलतैलञ्च तत्समं काञ्जिकं भवेत् ।
आरनालसमं भृङ्गद्रवं कृत्वा प्रदापयेत् ॥
मन्दाग्निना ततः पाच्यं यावत्तैलं स्थितं भवेत् ।
तैलमध्ये प्रदातव्यं पिष्ट्वा गुञ्जापलद्वयम् ॥
उत्तार्य तैलशेषं तु दिनैकं तत्तु रक्षयेत् ।
शिरोरोगेषु दुष्टेषु अर्द्धशीर्षे सुदारुणे ॥
भ्रूशङ्खकर्णपीडाश्च नश्यन्ति नात्र संशयः ।
गुञ्जातैलमिति ख्यातं दत्तं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥

शुद्ध तिलतैल ८ पल, काञ्जी ८ पल, भांगरेका रस ८ पल, पानीमें पिसी हुई गुञ्जा (चोंटली) २ पल। सबको एकत्र करके तैल शेष रहने पर्यन्त पकाकर, छानकर एक दिन तक सुरक्षित रखिए, तत्पश्चात् काममें लाइये।

इस (गुञ्जातैल) के व्यवहारसे (मर्दन करनेसे) भयङ्कर शिरोरोग, अर्द्धशीर्ष (आधासीसी), भ्रू, शंख और कर्णपीडा अवश्य नष्ट हो जाती है।

(१३८८) गुञ्जातैलम् (३)

(वृं.मा.; र.र.; धन्वं., यो.र.; भा.प्र.; भै.र.; वं.से.। क्षु. रो., आ. वे. वि.। उत्तरा. अ० ८१)

गुञ्जाफलैः भृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च ।
कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥

भांगरेके रस और गुञ्जा (चोंटली)के कल्कसे सिद्ध तैल कण्डू (खुजली), दारुण और कपाल-कुष्ठका नाश करता है।

(नि. वि.—तैल १ सेर, भांगरेका रस ४सेर, गुञ्जाका कल्क पाव सेर। तैल शेष पर्यन्त पकाएं।)

(१३८९) गुञ्जातैलम् (४) (वृ.यो.त.।त.१२७)

त्रिफलायोरजोमांसीमार्कवोत्पलसारिवैः ।
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गादरुंषिं जयेत् ॥

त्रिफला (हैड़, बहेडा, आमला), लोहचूर्ण, जटामांसी, भांगरा, नीलोफर, सारिवा और सेंधा-नमकके कल्कसे सिद्ध तैल अरुंषि (शिरोरोग विशेष) का नाश करता है।

(नि. वि.—समस्त वस्तुओका सम भाग मिश्रित कल्क—पिट्ठी १ भाग, तैल ४ भाग, पानी १६ भाग। एकत्र मिश्रित कर तैलावशेष पर्यन्त पकाइये।)

(१३९०) गुञ्जातैलम् (५)

(वृ. नि. र; यो. र.; वं. से.; भा. प्र.। गं. मा.; यो. चि.। तैला. वृ. यो. त.। त. १०८)

गुञ्जामूलफलैस्तैलं तोयद्विगुणितं पचेत् ।
तस्याभ्यङ्गेन शमयेद्गण्डमालां सुदारुणाम् ॥

गुञ्जा (चौंटली) की जड़ और फलके कल्क और द्विगुण जलके साथ सिद्ध (कटु) तैलकी मालिशसे भयङ्कर गण्डमाला रोग नष्ट होता है।

(१३९१) गुञ्जाद्यं तैलम्

(भै. र.। श्ली., र. र., च. द. गलगं.)

गुञ्जाहयारिश्यामार्कसर्षपैर्मूत्रसाधितम् ।
तैलं तु दशधा पश्चात्कणालवणपञ्चकम् ॥
मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत् ।
अभ्यङ्गादपचीमुग्रां वल्मीकार्शोऽर्बुदव्रणान् ॥

गुञ्जामूल, कनेरकी जड़, बावची, अर्कमूल (आककी जड़) और सरसोंके कल्क तथा गोमूत्रसे दश बार सिद्ध (कड़वे) तैलमें पीपल, पांचो नमक और मरिचका महीन चूर्ण मिलाकर मालिश करने

से वल्मीक, अर्श, अर्बुद व्रण और प्रत्येक अवस्थामें पहुंची हुई भयङ्कर अपची (गण्डमाला भेद) नष्ट होती है।

(नि. वि.—कल्क द्रव्य २० तोले, तैल ८० तोले (१ शेर), गोमूत्र ४ सेर लेकर तैलावशेष पर्यन्त पकावें। तैल छानकर पुनः पुनः इसी प्रकार १० वार पकावे। और अन्तमें पीपल इत्यादिका चूर्ण मिलाएं।)

(१३९२) गुञ्जाफलतैलम् (रा. मा. । कर्णरो.)

गुञ्जाफलैर्विदलितैः क्वथितान्महिष्याः।
क्षीरात्क्रमेण जनितं घृतमाददतानाम् ॥
अभ्यञ्जनादनुदिनं कुरुते मृदुलं।
विस्तीर्णताञ्च परमामिह कर्णपाल्याः ॥

(१ सेर) भैसके दूधमें ४ सेर पानी और (१० तोले) गुञ्जाफल (चौंटली) का कल्क (पिट्ठी) मिलाकर दुग्ध शेष रहने पर्यन्त पकाकर दही जमा दीजिए और उसका मन्थन करके घृत निकाल लीजिए।

प्रतिदिन इसकी मालिशसे कर्णपाली (कानोकी लो) कोमल और विस्तीर्ण होती है।

(१३९३) गुडूचीतैलम् [१]

(र. र.; वं. से.; भा. प्र. । वा. र.. ग. नि. । तैला.)

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम्।
क्षीरंद्रोणन्तु ताभ्याञ्च पचेत्तैलाढकं शनैः ॥
कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठा जीवनीयगणस्तथा।
कुष्ठैलागुरुमृद्वीकामांसी व्याघ्रनखं नखी ॥
हरेणुं श्रावणी व्योपं शताह्वा शृङ्गिशारिवे।
त्वक्पत्रार्जुनविक्रान्तास्थिरामामलकी तथा ॥
नतं ह्रीवेरकेशरं पद्मकोत्पलचन्दनम्।
सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥
सेव्यं वातास्रजो हन्ति सर्वधात्वन्तराश्रयाः।
स्वेदकण्डूरुजाया सशिरः कम्पामयार्दितः ॥
हन्याद्व्रणकृतान्दोपान् गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥

१ तुला (६। सेर) गिलोयको कूटकर १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें चतुर्थांश शेष रहने तक पकाकर छान लीजिए। तत्पश्चात् इस क्वाथ और १ द्रोण दूध तथा निम्न लिखित कल्कके साथ, १ आढक (४ सेर) तैल मन्दाग्नि पर पकाइये।

कल्क द्रव्य—मुलैटी, मजीठ, जीवनीय [1]गण, कूठ, इलायची, अगर, मुनक्का, जटामांसी(बालछड़), नख, नखी (सुगन्धित द्रव्य विशेष), रेणुका मुण्डी, सोठ, मिर्च, पीपल, सोया, काकडासिंगी, सारिवा, दालचीनी, तेजपात, अर्जुन वृक्षकी छाल, वराहक्रान्ता, शालपर्णी, आमला, तगर, नेत्रबाला, नागकेशर, पद्माख, नीलोफर और लाल चन्दन प्रत्येक १-१ कर्ष (१। तोला)। सबको पानीके साथ पीसकर तैलमें पकते समय मिलाइये।

इस गुडूच्यादि तैलको पान, मर्दन अथवा अनुवासन वस्ति द्वारा प्रयुक्त करनेसे समस्त धातुओंमें व्याप्त वातरक्त, स्वेद, कण्डू, शिरोकम्पन, अर्दित (लकवा) और व्रणदोष (घावसे उत्पन्न विकार) नष्ट होते हैं।

गुडूचीतैलम् [२] (अमृताख्यं तैलम्)

(भा. प्र. । च. सं.)

"अमृताख्यं तैलम्" अवलोकन कीजिए।

---

१ जीवन्ती, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महा मेदा, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, जीवक, ऋषभक और मुलैठी।

(१३९४) गुडूचीतैलम् [३] (वं.से.।वस्ति क.)

गुडूच्येरण्डपूतीकभार्ङ्गीवृषकरौहिषम् ।
शतावरीं सहचरं काकनासां पलोन्मितान् ॥
यवमाषातसीकोलकुलित्थान् प्रसृतोन्मितान् ।
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ॥
पचेत्तैलाढकं पेष्यैर्जीवनीयः पलोन्मितैः ।
अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥

गिलोय, अरण्डमूल, पूतिकरञ्ज, भारंगी, बासा, रोहिष तृण (मिर्चियागन्ध), शतावर, काला बासा और काकनासा १—१ पल (५ तोले) तथा जौं, उर्द, अलसी, बेर और कुलत्थ २—२ पल लेकर सबको एकत्र कूटकर चार द्रोण (६४ सेर) पानीमें पकाइये, और १ द्रोण शेष रहने पर छान लीजिए।

इस क्काथ और १—१ पल जीवन्ती, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवक, ऋषभक और मुलैठीके कल्कके साथ १ आढक (४ सेर) तैल सिद्ध कर लीजिए।

इसे अनुवासन बस्ति द्वारा प्रयुक्त करनेसे समस्त वातविकार नष्ट होते है।

(१३९५) गुडूचीतैलम् [४]

(र. र.; भै. र.; च. द.; यो. र., च. सं.। चि. स्था. वा. र.)

गुडूचीक्काथकल्काभ्यां[1] तैलं लाक्षारसेन वा ।
सिद्धं मधुककाश्मर्यरसे वा वातरक्तनुत् ॥

गिलोयके क्काथ और कल्कसे अथवा लाखके क्काथके साथ या महुवा और खम्भारीके क्वाथसे सिद्ध तैल वातरक्तको नष्ट करता है।

१ गुडूचीक्काथदुग्धाभ्यामिति पाठान्तरम्।

(१३९६) गुडूच्यादि तैलम् (च.सं.।चि.अ.३०)

गुडूचीमालतीव्याघ्री श्रेयसीसुरदारुभिः ।
बलाचित्रकयष्ट्याह्वयूथिकाभिश्च कार्षिकैः ॥
तैलप्रस्थं गवां मूत्रे क्षीरे च द्विगुणे पचेत् ।
वातार्तायैः पिचुं तस्माद्योनौ च प्रणयेत्सदा ॥

गिलोय, चमेलीके पुष्प, कटेली, रास्ना, देवदारु, खरैटी, चीता, मुलैठी और जूहीके फूल १-१ कर्ष (१।—१। तोला) लेकर इनके कल्क और २ प्रस्थ (२ सेर) गोमूत्र तथा २ प्रस्थ दूधके साथ १ प्रस्थ तैल पका लीजिए।

वातपीड़िता योनिमें सदैव इस तैलका फाया रखना चाहिए।

(१३९७) गृध्रसीहरतैलम् (वृ.नि.र.। वा.व्या.)

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात् ।
द्वे पले भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाढके ॥
आरनाले पचेत्प्रस्थं तैलस्यैतैरपत्यदम् ।
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोन्तः सर्ववातविकारनुत् ॥

सैन्धव २ पल (१० तोले), सोंठ ५ पल, पीपलामूल २ पल, चीता २ पल और भिलावेकी गिरी ४० पल लेकर इनके कल्क और १ आढक (४ सेर) काञ्जीके साथ १ प्रस्थ (१ सेर) तैल पका लीजिए।

यह तैल सन्तानप्रद, तथा गृध्रसी, उरुग्रह, अर्श और समस्त वातरोगनाशक है।

(१३९८) गृहधूमादि तैलम् [१]

(र. र., ग नि.; भा. प्र., यो. र.। नासा. रो.)

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।
सिद्धं शिखरीबीजैश्च तैलं नासार्शसे हितम् ॥

घरका धुवां, पीपल, देवदारु, यवक्षार, करञ्ज, सेंधानमक, और चिरचिटेके बीजोंके कल्क तथा क्वाथसे सिद्ध तैल नासार्शके लिए हितकर है।

(१३९९) गृहधूमादि तैलम् [२] (र.र.।उप.)

गृहधूमनिशाकिण्वैरेकद्वित्र्यंशकैःक्रमात्।
तैलं सिद्धं सकण्डूश्च शोथं चैवोपदंशनुत् ॥

घरका धुवां १ भाग, हल्दी २ भाग और किण्व (सुराबीज अथवा खल) ३ भाग लेकर इनके कल्क और क्वाथसे तैल सिद्ध कर लीजिए।

यह तैल खुजलीसहित सूजन और उपदंशका नाश करता है।

गोक्षुराद्यं तैलम् (वं. से. । वा. र.)

'श्वदंष्ट्रादि तैलम्' अवलोकन कीजिए।

(१४००) गोजिह्वातैलम् (वं.से.,भा.प्र.।उपदंश.)

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम्।
एतत्सर्वोपदंशेषु श्रेष्ठं रोपणमिष्यते ॥

गोजिया घास, वायविड़ङ्ग और मुलैठीसे सिद्ध तैलमें सर्व गन्ध मिलाकर प्रयुक्त करनेसे सर्व प्रकारके उपदंशव्रण (आतशकके घाव) भर जाते हैं।

(१४०१) गोमयाद्यं तैलम्

(र. र, भै. र । नेत्ररोगा.)

गवां शकृत्क्काथविपक्कमुत्तमं
हितञ्च तैलं तिमिरेषु नस्यतः।

गोशकृत् (गोबर)के क्वाथ (अथवा स्वरस) से सिद्ध तैलकी नस्य लेनेसे तिमिररोग नष्ट होता है।

(१४०२) ग्रन्थिकादि तैलम् (वं.से.।वा.व्या.)

ग्रन्थिकाग्निकणाशुण्ठीरास्नासैन्धवकल्कितम्।
माषक्काथाम्बुना तैलं पक्षाघातं व्यपोहति ॥

पीपलामूल, चीता, पीपल, सोंठ, रास्ना और सेंधानमकके कल्क तथा उर्दके क्वाथसे सिद्ध तैल पक्षाघातका नाश करता है।

(१४०३) ग्रहणीमिहिरतैलम्

(भै. र., धन्वन्त; र. र. । ग्रह.)

धान्यं धातकी लोध्रं समङ्गातिविषाःशिवा।
उशीरं मुस्तकश्चैव जलमोचरसाञ्जनम् ॥
बिल्वं नीलोत्पलं पत्रं केशरं पद्मकेशरम्।
गुडूचीन्द्रयवश्यामाः पद्मकं कटुरोहिणी ॥
तगरं जटिलाभृङ्गकेशराजपुनर्नवाः।
आम्रजम्बूकदम्बानां त्वचः कुटजवल्कलम् ॥
यवानीजीरकश्चैव कार्षिकाणि प्रकल्पयेत्।
तैलप्रस्थं पचेत्तेन तक्रेणान्यतमेन वा ॥
कुटजत्वक्कषायेण धान्यकक्कथितेन वा।
बुद्ध्वादोषगतिं वैद्यो यथा स्वौषधवारिणा ॥
एतद्रसायनं तैलं वलीपलितनाशनम्।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि ॥
ज्वरं तृष्णां तथा श्वासं तथा हिक्कां वमिं भ्रमम्।
सोपद्रवां कोष्ठरुजं नाशयेत्सद्य एव हि।
ग्रहणीमिहिर नाम तैलं भुवनदुर्लभम् ॥

कल्क द्रव्य—धनियां, धायके फूल, लोध्र, मजीठ, अतीस, हर्र, खस, मोथा, नेत्रवाला, मोचरस, रसौत, बेलगिरी, नीलोफर, तेजपात, नागकेशर, कमलकेशर, गिलोय, इन्द्रजौं, कालानिसोत, पद्माक, कुटकी, तगर, भूमि छरीला, भंगरा, काला भंगरा, पुनर्नवा. आमकी छाल, जामनकी छाल, कदम्बकी छाल, कुड़ेकी छाल, अजवायन और जीरा १-१ कर्ष (१। तोला)।

इनके कल्क और तक्र अथवा कुड़ेकी छालके क्वाथ या नवीन धनियेके क्वाथ अथवा दोषके अनुसार किसी अन्य ओषधिके क्वाथके साथ १ प्रस्थ (१ सेर) तैल पका लीजिए।

यह भुवनदुर्लभ 'ग्रहणीमिहिर' नामक तैल रसायन है। वली (त्वचाकी झुर्रियां), पलित (बालोंकी सफेदी) नाशक और सब प्रकारके अतिसार, ग्रहणी, ज्वर, तृष्णा, श्वास, हिक्का, वमन, भ्रम और उपद्रवयुक्त उदररोगोंका अत्यन्त शीघ्र नाश करता है।

(प्र. वि.—इसे ३ से ६ माशे तक यथोचित अनुपानके साथ पिलाना और पेट पर मलना चाहिए।

इति गकारादि तैलप्रकरणम्।

अथ गकाराद्यासवारिष्टप्रकरणम्

(१४०४) गण्डिकाद्रोणः (ग.नि.। आस.६)

दद्यात्सलिलद्रोणं कृतमन्थेक्षुगण्डिकाद्रोणम्।
धान्ययवानीदीप्यकपृथ्वीकाश्चेति कुडवांशाः॥
द्विपलीनाः स्युर्देयास्तेजवती चव्यचित्रकाजाज्यः।
मधुनः कुडवं दत्वा घृतरूढे भाजने स्थाप्यः॥
एष काञ्जिकराजो लवणयुतः कत्तृणार्द्रकसुगन्धः।
दशरात्रात्पातव्यः सलिलश्च पुनः पुनर्देयम्॥
अर्शोभगन्दरगदग्रहणीमेदप्रमेहदोषांश्च।
नाशयति सेव्यमानो वह्निकरो गण्डिकाद्रोणः॥

एक द्रोण (१६ सेर) पानीमें काट कर भली भांति मथे हुए १ द्रोण ईखके टुकड़े (गण्डेरी) मिलाकर उसमें धनियां, अजवायन, अजमोद और कलौंजी २०-२० तोले, तेजवती (गजपीपल) चव्य, चीता और ज़ीरा १०-१० तोले, सब चीज़ोंका महीन चूर्ण और शहद २० तोले, मिलाकर घी से चिकने हुए (बहुत समय तक घी रक्खा गया हो ऐसे) बर्तनमें भरकर, बर्तनका यथाविधि मुख बन्द करके १० दिन तक रक्खा रहने दीजिए। तत्पश्चात् छानकर उसमें सेंधानमक मिलाकर तथा सुगन्धतृण [मिर्चिया गन्ध] और अद्रकसे सुगन्धित करके सेवन करना चाहिए।

इस काञ्जीमें पुनः पुनः पानी डालते रहना चाहिए। अर्थात् जब पानी कम हो जाय तो उसे पूर्ण करके पात्रका मुख पूर्ववत् बन्द करके १० दिन तक रक्खा रहने दें और फिर आवश्यक्तानुसार काममें लाएं।

इस 'गण्डिकाद्रोण'के सेवनसे अर्श, भगन्दर, ग्रहणीरोग, मेदरोग, प्रमेह तथा इनके अनुसंगिक अन्य रोगोका नाश होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

(१४०५) गण्डीराद्यरिष्टः

(च. सं.। चि. स्था. श्वयथु.)

गण्डीरभल्लातकचित्रकांश्च,
व्योषं विडङ्गं बृहतीद्वयञ्च।
द्विप्रस्थिकं गोमयपावकेन;
द्रोणे पचेत्काञ्जिकमस्तुनस्तु॥

त्रिभागशेषश्च सुपूतशीतम्;
द्रोणेन तत्प्राकृतमस्तुनस्तु।
सितोपलायाश्च शतेन युक्तं;
लिप्ते घटे चित्रकपिप्पलीनाम्॥
वैहायसे स्थापितमादशाहात्;
प्रयोजयंस्तद्विनिहन्ति शोफान्।
भगन्दरार्शः क्रिमिकुष्ठमेहान्;
वैवर्ण्यकार्श्यानिलहिक्कनश्च॥

थोहर, भिलावा, चीता, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), वायविड़ङ्ग और दोनो कटेली प्रत्येक २-२ प्रस्थ (२ सेर) लेकर, कूटकर, १ द्रोण (१६ सेर) काञ्जीमें कण्डोंकी अग्नि पर पकाइये। जब त्रिचतुर्थांश (पौना भाग) काञ्जी शेष रहे तो शीतल होनेके पश्चात् छानकर उसमें १ द्रोण साधारण मस्तु (द्विगुण जलयुक्त तक्र) और १०० पल मिश्री मिलाकर चित्रक और पिप्पलीके चूर्णसे लिप्त मटकेमें भर कर मुख बन्द करके दश दिन पर्यन्त रक्खा रहने दीजिए। तत्पश्चात् छानकर काममें लाइये।

इसके सेवनसे शोथ, भगन्दर, अर्श, कृमि, कुष्ट, प्रमेह, वैवर्ण्य, कृशता, वायु और हिक्का रोग नष्ट होता है।

(मात्रा—१। तोला। समान भाग पानीमें मिलाकर भोजनके पश्चात् पियें।)

(१४०६) **गण्डीरासवः** (ग. नि.। आस.६)

जातसारं तु गण्डीरं सपुष्पं परिशोषयेत्।
खण्डशः क्षोदितं कृत्वा तस्य पञ्चाढकं पचेत्॥
त्रींश्चैव त्रिफला प्रस्थान् दशमूली तुलां तथा।
दद्यात्कुटजवल्कस्य पलानां पञ्चविंशतिम्॥३४३
भल्लातकानीन्द्रयवं विडङ्ग घनमेव च।
अर्धप्रस्थसमान् भागानेकैकस्य समावपेत्॥३४४
पाठा मधुरसा दन्ती षड्ग्रन्था चित्रकस्तथा।
एषां दशपलान्भागान्मृद्वीकायास्तथाढकम्॥३४५
तोयद्रोणेषु दशसु पचेद् द्विद्रोणशेषितम्।
तस्मिन्कषाये पूते तु गुडस्यैकां तुलां क्षिपेत्॥
तथा तु शोधितस्यापि शुभे भाण्डे निधापयेत्।
द्वौ प्रस्थौ मधुनश्चैव द्वावयोरजसस्तथा॥३४७
अर्धं प्रस्थो विडङ्गानां कुडवो मरिचस्य च।
एतयोः सूक्ष्मचूर्णानि प्रतिवापार्थमाहरेत्॥३४८
चूर्णं मरीचकानाश्च मधुना सह योजयेत्।
भाण्डप्रलेपः कर्त्तव्यः समासिच्य निधापयेत्॥
एष मासस्थितः पेयो यथाव्याधि बलाबलम्।
गण्डिरारिष्टइत्येष व्यासतः परिकीर्त्तितः॥३५०
एष शोषान् प्रमेहांश्च गुल्मांश्च जठराणि च।
क्रिमिकुष्ठानि वर्ध्मानि प्लीहार्शांसि भगन्दरम्॥
श्वयथून् पाण्डुरोगांश्च ग्रहणीदोषमेव च।
ग्रन्थींश्च गलगण्डं च गण्डमालां तथैव च॥३५२
विषमज्वरकासांश्च विद्रधीन् वातशोणितान्।
अरिष्टः शमयत्याशु युधि शक्र इवासुरान्॥३५३

सार और पुष्पयुक्त शुष्क मजीठ २० सेर (१६०० तोले), त्रिफला ३० सेर, दशमूल ६। सेर, कुड़ेकी छाल २५ पल (१२५ तोले), भिलावा, इन्द्रजौ, वायविड़ङ्ग और नागरमोथा प्रत्येक आधा आधा प्रस्थ (४० तोले), पाठा, मूर्वा, दन्तीमूल, वच और चीता १०-१० पल तथा मुनक्का १ आढक (४ सेर)। सबको कूटकर १० द्रोण (१६० सेर) पानीमें पका लीजिए, जब दो द्रोण पानी शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए।

तत्पश्चात् इसमें १ तुला (६। सेर) शुद्ध गुड़, २ प्रस्थ (२ सेर) शहद और शुद्ध लोहचूर्ण २ प्रस्थ, बायविडङ्ग आधा प्रस्थ और स्याह मिर्च २० तोले। सबका महीनचूर्ण मिलाकर घृताक्त [चिकने] मटकेमें (कि जिसके भीतर मरिच चूर्ण मिश्रित मधुका लेप कर दिया गया हो) भर कर यथाविधि मुख बन्द करके १ मास पर्यन्त रक्खा रहने दीजिए और उसके पश्चात् छानकर रोगी और रोगके बलाबलका विचार करके यथोचित मात्रानुसार सेवन कराना चाहिए।

यह 'गण्डीरारिष्ट' शोष, प्रमेह, गुल्म, उदर-रोग, कृमि, कुष्ठ, प्लीहाभिवृद्धि, अर्श, भगन्दर, शोथ, पाण्डु, ग्रहणीदोष, ग्रन्थि, गलगण्ड, गण्ड-माला, विषमज्वर, खांसी, विद्रधि और वातरक्तको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार युद्धमें इन्द्र असुरोंका संहार करता है।

(१४०७) **गुग्गुल्वासवः** (ग. नि. । आसवा.)

शतं हरीतकीनान्तु विभीतकशतं तथा।
प्रस्थमामलकानाञ्च गुग्गुलोश्च चतुष्पलम् ॥
त्वगेलापिप्पलीमूलचव्यचित्रकदीप्यकम्।
तालीसपत्रत्रिकटुमुस्तकेसरकट्फलम् ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं पादशेषे जले ततः।
धातक्याः प्रस्थमेकन्तु तथा गुडशतद्वयम् ॥
द्राक्षादाडिमखण्डानां भागान्दशपलोन्मितान्।
सर्वमेतत्समालोड्य स्थापयेद्भाजने शुभे ॥
यदा युक्तरसः स्याच्च सुजातो गन्धवर्णतः।
तम्पूरयेत्तदा भाण्डे स्रक्तस्येक्षुरसस्य तु ॥
षण्माससंयुतो ह्येष द्रवो पेयः प्रयोगतः।
गुग्गुल्वासव इत्येष देयः सर्वेषु रोगिषु ॥
प्राग्भक्तं मध्यभक्तं वा ग्रासे ग्रासान्तरे तथा।
दद्यात्क्रमेण योगं तु वयः सात्म्यमपेक्ष्य च ॥
नाशयेदुदरं प्लीहामूरुस्तम्भं सकामलम्।
चिरोत्थितमपिश्वासं कासशोफभगन्दरान् ॥
कृमिकुष्ठप्रमेहेषु हितश्चैवाग्निदीपनः ॥

क्वाथ द्रव्य—हर्र और बहेड़ा १००–१०० नग अथवा (१००–१०.० पल), आमले (शुष्क) १ प्रस्थ (१ सेर), गूगल ४ पल (२० तोले), दालचीनी, इलायची, पीपलामूल, चव्य, चीता, अजवायन, तालीसपत्र, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), मोथा, नागकेसर और कायफल। २०–२० तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—धायके फूल १ प्रस्थ (१ सेर), गुड़ २०० पल, द्राक्षा (मुनक्का) और अनारके टुकड़े १०–१० पल।

विधिः—क्वाथद्रव्योंको कूटकर २द्रोण (३२ सेर) जलमें पकाकर ८ सेर शेष रहने पर छान लीजिए। और फिर उसमें प्रक्षेप द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर घृतसे चिकने मटकेमें भरकर मुख बन्द करके रख दिजिए। जब उसमें ओषधियोका रस वर्णादि प्रकट हो जाय तो उसे ईक्षुरसके पात्रमें भरकर मुख बन्द करके रख दीजिए और ६ मास पश्चात् निकालकर काममें लाइये।

यह गुग्गुल्वासव आयु और सात्म्यादिका विचार करके सभी रोगोमें भोजनके आदि, मध्य, अन्त, प्रत्येक ग्रास अथवा हर दूसरे ग्रासके पश्चात् (यथोचित मात्रानुसार) सेवन कराया जा सकता है।

यह उदररोग, तिल्ली, उरुस्तम्भ, कामला, पुराना श्वास, कास, शोथ, भगन्दर, कृमि, कुष्ठ

और प्रमेह रोगका नाश करता है तथा अग्नि प्रदीप्त करता है।

(१४०८) गुडतक्रम् (शुक्तम्)
(वं. से. । रसा.)

गुडमधुकाञ्जिकतक्रम्,
यथोत्तरं द्विगुणभागसंवृद्धम्।
न्यस्तन्तु धान्यराशौ,
त्रिदिवसमिति भवेच्छुक्तम्॥

गुड १ भाग, शहद २ भाग, काञ्जी ४ भाग और तक्र ८ भाग एकत्र करके मटकेमें भरकर मुंह बन्द करके अनाजके ढेरमें दबा देनेसे ३ दिनमें शुक्त तैयार हो जाता है।

(१४०९) गुडारिष्टः (च.सं.। चि.स्था.पाण्डु.)

मञ्जिष्ठारजनीद्राक्षाबलामूलान्ययोरजः।
रोध्रं चैतेषु गौडः स्यादरिष्टः पाण्डुरोगिणाम्॥

मजीठ, हल्दी, द्राक्षा (मुनक्का), खरैटीकी जड़, शुद्ध लोहचूर्ण लोध और गुड़। इनसे निर्मित गौडः (गुडारिष्ट) पाण्डुरोगीके लिए हितकर होता है।

(नि. वि.—समस्त ओषधियोंका चूर्ण ४-४ पल और जल १ द्रोण (१६ सेर) लेकर पकाकर उसमें १०० पल गुड़ मिलाकर मिट्टीके मटकेमें भरकर १ मास तक रक्खा रहने दीजिए, तत्पश्चात् छानकर काममें लाएं। मात्रा १। तोला, समान भाग पानी मिलाकर भोजनके पश्चात् पियें।)

इति गकाराद्यासवारिष्ट प्रकरणम्।

अथ गकारादि लेपप्रकरणम्।

(१४१०) गदादिलेपः (वृ नि.र.। ग्रन्थि.)

सर्वेषामेव ग्रन्थीनां रक्तस्रावः प्रशस्यते।
गदार्कदुग्धतालेन जैपालेन विनाशयेत्॥

सर्व प्रकारकी ग्रन्थियोंमें रक्तस्राव कराना हितकर होता है।

ग्रन्थि पर कूठ, आकका दूध, हरताल और जैपाल (जमालगोटे) का लेप करनेसे वह नष्ट हो जाती है।

(१४११) गन्धकादिलेपः [१]
(वृ.नि र.। त्वग्दोष वृं.मा., वं.से.: यो. र.। कुष्ट.)

गन्धपाषाण मिश्रेण यवक्षारेण लेपितम्।
सिध्मं नाशमुपैत्याशु कटुतैलयुतेन च॥

गन्धक और यवक्षारको कड़वे तैलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्म (चेपा—सीप) नष्ट होता है।

(१४१२) गन्धकादिलेपः [२]
(वृ. नि. र., यो. र.। गं. मा.)

गन्धकं टङ्कणं सिन्धुकाञ्चनी नवसारकम्।
सौवर्चलं यवक्षारं काचं रक्तं सुवर्चलम्॥
सितंरक्तञ्च पाषाणं मूषकोत्थं नियोजयेत्।
जैपालबीजमज्जा च सर्वं-जम्बीरपीडितम्॥
शस्त्रैश्छित्वा प्रदातव्यं वेष्ट्यमेरण्डपत्रकैः।
एवं त्र्यहात्स्फुटन्त्यत्र दध्यन्नं बन्धयेत्ततः॥
गण्डमालाग्रन्थ्यपच्यो बहिर्निर्यान्ति नान्यथा॥

गन्धक, सुहागेकी खील, सेंधानमक, हल्दी, नवसादर, कालानमक (सौंचल), जवाखार, कंच, शिंगरफ (अथवा सिन्दूर), सज्जीखार, सफ़ेद और लाल संखिया, मूषाकर्णी (अथवा चूहेकी मींगन) और जमालगोटेकी गिरी समान भाग लेकर नींबूके रसमें घोट लीजिए।

गण्डमाला और अपचीको शस्त्रसे चीर कर उनके ऊपर यह लेप लगाकर ऊपरसे अरण्डका पत्ता बांध दीजिए। इनसे तीन दिनमें गांठे फूट जांयगी तब उन पर दही-भातकी पुल्टिस बांध दीजिए। इस क्रियासे गण्डमाला और अपचीकी गाठें बाहर निकल जाती है।

(१४१३) गन्धकादिलेपः [३]

(वृ. नि. र.; यो. र. । गं. मा.)

गन्धकं सूतकं तुल्यं अर्कक्षीरं ससैन्धवम्।
पिष्ट्वा च काञ्चनीमूलं लेपोयं गण्डमालिके ॥

गण्डमालामें, गन्धक, पारा, अर्कदुग्ध, सेधानमक और हल्दीको पीसकर लेप लगाना चाहिए।

(प्र. वि.—प्रथम पारे और गन्धकको एकत्र घोटकर कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर आकके दूधमें घोटिए।)

(१४१४) गन्धकादिलेपः[४] (यो.र.।अर्बुद)

गन्धाशिलाविश्वौषधविडङ्ग
नागभस्मभिः समैश्चूर्णम्।
कृकलासरक्तयुक्तं
लेपात्सद्योऽर्बुदध्वंसि ॥

गन्धक, मनसिल, सोठ, वायबिडङ्ग और सीसेकी भस्म बराबर बराबर लेकर चूर्ण करके लेप करनेसे रक्तयुक्त कृकलास (कुष्ठ भेद) और अर्बुद (रसौली) का नाश होता है।

(१४१५) गन्धकादिलेपः [५]

(रसें. चिं. म. अ. ९)

गन्धकं मूलकक्षारमार्द्रकस्य रसैर्दिनम्।
मर्दितं हन्ति लेपेन सिध्मं तु दिनमेकतः ॥

गन्धक और मूलीके खारको एक दिन अद्रकके रसमें घोटकर लेप करनेसे सिध्म रोग (त्वक् विकार विशेष—चेपा—सीप) एकही दिनमें नष्ट हो जाता है।

(१४१६) गन्धकादिलेपः[६] (यो.र.कुष्ठा.)

बलिवेल्लाग्निभल्लातदन्तीशम्पाकनिम्बकैः।
काञ्जिकैः पेषितैर्लेपः श्वेतकुष्ठविनाशकृत् ॥

गन्धक, बायविड़ङ्ग, चीतेकी जड़, भिलावा, दन्तीमूल, आमलतास और नीमकी छालको काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है।

(१४१७) गन्धपाषाणलेपः

(वृ. यो. त. । त. १२०)

गन्धपाषाणचूर्णन्तु कटुतैलेन योजितम्।
लेपनादथ पानाद्वा कच्छूपामाविनाशनम् ॥

[शुद्ध] गन्धकको कटु तैलमें मिलाकर लेप करने और पीनेसे कच्छू और पामा रोग नष्ट होता है।

(१४१८) गाढीकरणो लेपः (यो.चिं.।अ.७)

सूकरं धातुकी जाङ्गी सोराष्ट्रफुल्लकं तथा।
माञ्जूफलं हौहवेरलोध्रं दाडिमत्वक् तथा ॥
कादंबर्या भगे लेपो गाढीकरणमुत्तमम् ॥

नीलोफर, धायके फूल, कावली (पीली) हैड़, फिटकरीकी खील, माजूफल, हाऊवेर, लोध और

अनारकी छालके चूर्णको कादम्बरी (सुरा)में मिलाकर लेप करनेसे स्त्रीका गुह्याङ्ग दृढ होता है।

(१४१९) गायत्र्यादिलेपः

(वृ. नि. र.; यो. र.; वं. से.। विसर्प.)

गायत्रीसप्तपर्णाह्वासारग्वधदारुभिः।
कुटन्नटैर्भवेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे॥

खैरसार, सतौना, वासा, अमलतास, देवदारु और केवटीमोथा समान भाग लेकर पीसकर कफज विसर्पमें लेप करना हितकर है।

(१४२०) गिरिकर्णिकादिलेपः

(वैद्यामृत। विषय २४)

मूलं सिताया गिरीकर्णिकाया
मूलं विशालाभवमुग्रगन्धा।
गोमूत्रपिष्टत्रितयस्य लेपा-
त्सोपद्रवा गच्छति गण्डमाला॥

सफेद कोयलकी जड़, इन्द्रायणकी जड़ और वच, वरावर वरावर लेकर गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे उपद्रवयुक्त गण्डमाला भी नष्ट हो जाती है।

(१४२१) गिरिकर्णिपुष्पलेपः(वै.म.।प.१६)

अन्तर्बहिर्नयनयोर्गिरिकर्णिकायाः
पुष्पं गवां पयसि पेषितगर्भकानाम्।
संयोजयेद्दशनजन्मनिदानभूतम्॥
रोगं कुकूणकमपोहति शीघ्रमेव॥

गिरिकर्णिका (कोयल अथवा अमलतास) के फूलोंको गायके दूधमें पीसकर बच्चोंकी आंखके बाहर लेप करने और भीतर आंजनेसे दांत निकलनेके कारण उत्पन्न कुकूणक नामक नेत्ररोग शान्त होता है।

(१४२२) गिरिकर्णिमूललेपः(रा.मा.।कुष्ठ.)

मूलेन पिष्टेन सिताद्रिकर्ण्या-
शीताम्बुयुक्तेन विलिप्य गाढम्।
पक्षात्प्रणाशं सितमेति कुष्ठं
चिरप्ररूढं द्विगुणैर्दिनैस्तु॥

सफेद कोयलकी जड़को शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे नूतन श्वेत कुष्ठ १५ दिनमें और पुराना १ मासमें नष्ट हो जाता है।

(१४२३) गिरिकर्ण्यादिलेपः(वृ.नि.र.।वि.चि.)

गिरिकर्णिद्वयं शेलुः पाटला द्वे पुनर्नवे।
कपित्थश्च शिरीषश्च लेपो लूतां विषापहः॥

दोनो प्रकारकी कोयल, ल्हिसोड़ा (रीठा); पाढल, दोनो प्रकारका पुनर्नवा, कैथ और सिरसकी छालका लेप करनेसे मकड़ीका विष नष्ट हो जाता है।

(१४२४) गुग्गुल्वादिलेपः

(वा. भ.। चि. स्था. कुष्ठा. १९)

गुग्गुलुमरिचविडङ्गैः सर्षप कासीससर्जरसमुस्तैः।
श्रीवेष्टकालगन्धैर्मनः शिलाकुष्ठकम्पिल्लैः॥
उभय हरिद्रासहितैश्चाक्रिक तैलेन मिश्रितैरेभिः
दिनकरकराभितप्तैः कुष्ठं घृष्टञ्च नष्टञ्च॥

गूगल, स्याह मिर्च, वायविडङ्ग, सरसों, कसीस, राल, मोथा, श्रीवेष्ट (धूप सरल), हरताल, गन्धक, मनसिल, कूठ, कबीला, हल्दी और दारुहल्दी, के समान भाग चूर्णको पंवाड़के तैलमें मिलाकर धूपमें गरम करके लेप करनेसे घृष्ट (खरोट) और कुष्ठ नष्ट होता है। *

* अथवा कुष्ठको खुजाकर लेप करनेसे वह नष्ट होता है।

(१४२५) गुञ्जादिलेपः [१] (वृ नि.र.।त्व.दोष.)

गुञ्जां कुष्ठवचानिम्बैर्वारिपिष्टैः प्रलेपनात् ।
श्वेतापराजितामूलं हन्ति श्वित्रमसंशयम् ॥

गुञ्जा (चौंटली), कूठ, वच, नीमकी छाल और सफेद अपराजिता (कोयल) की जड़को पानीमें पीसकर लेप करनेसे सफेद कोढ अवश्य नष्ट हो जाता है ।

(१४२६) गुञ्जादिलेपः [२]

(ग. नि.; रा. मा. कुष्ठा.)

अपगततुषगुञ्जाचूर्ण हैयङ्गवीनं
प्रमृदितमुपशान्ति कुष्ठिनो याति कुष्ठम् ।
यदि तु भवति लिप्तं सर्वतस्ताम्रपात्रे
गृहितमथितकिट्टैस्तन्नभूयो भवेत्तु ॥

छिलके रहित गुञ्जा (चौंटली) के चूर्णको नवनीत (नौनी—मस्का) में गोटकर मालिश करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है । और यदि मन्थकी गाद (जल रहित छानी हुई दहीकी तलछट) को (कुछ समय तक) ताम्रपात्रमें रक्खा रहने देनेके बाद समस्त शरीरमें उसकी मालिश की जाय तो पुनः कुष्ठ होनेका भय नहीं रहता ।

(१४२७) गुञ्जादिलेपः [३] (यो.र.। कुष्ठ)

गुञ्जाचित्रकशङ्खभस्मरजनीदूर्वाभयालाङ्गली
स्नुक्सिन्धूत्थकुमारिकाजलधरार्कक्षीरधूमेशजैः।
वल्गूएडगजविडङ्गमरिचक्षौद्रैश्च वारियुतैः
कार्यं वै गजचर्मदद्रुरकसाकण्डुघ्नमुद्वर्त्तनम् ॥

चौंटली (गुञ्जाफल), चीतेकी जड़, शंखभस्म, हल्दी, दूब घास, हर्र, कलिहारी, थोहरका दूध, सेंधानमक, घीकुमार, नागरमोथा, अर्क दुग्ध, घरका धुवां, पारा, बावची, पंवार, बायविडङ्ग और स्याह मिर्चका समान भाग चूर्ण एकत्र करके शहदमें मिलाकर मलनेसे गजचर्म, दाद, रकस और खुजली नष्ट होती है ।

(विधि—प्रथम पारदको घरके धुवेंके साथ घोटकर कज्जली कर लीजिए, पश्चात् अन्य वस्तुओंका चूर्ण मिलाइये ।)

(१४२८) गुञ्जापत्रादिलेपः (वं.से.।क्षुद्ररो.)

गुञ्जापत्रं विषं तैलं तिला मधुककाञ्जिकम् ।
पतन्त्यनेन नो केशा लेपाद्रोहन्ति चाद्भुम् ॥

चौटलीके पत्ते, मीठातेलिया, तिलतैल, तिल और मुलैठीके चूर्णको काञ्जीमें पीसकर शिरपर लेप करनेसे (अथवा इस मिश्रणसे शिर धोनेसे) बाल नहीं गिरते और इतने अधिक बढ़ते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है ।

(१४२९) गुञ्जाफललेपः [१] (यो. र.)

तक्षयित्वा क्षुरेणाङ्गं केवलानिलपीडितम् ।
तत्र प्रदेहं दद्याच्च पिष्ट्वा गुञ्जाफलैः कृतम् ॥
तेनापबाहुजा पीडा विश्वाची गृध्रसी तथा ।
अन्यापि वाजता पीडा प्रशमं याति वेगतः ॥

यदि किसी अङ्गमें केवल वातज पीड़ा हो तो वहां नशतर लगाकर चौटलीको पीसकर लेप कर देना चाहिए। इस क्रियासे अपबाहुक, विश्वाची, गृध्रसी और अन्य वातज पीड़ाएं शीघ्र नष्ट होती है ।

(१४३०) गुञ्जाफललेपः [२] (रा.मा.।शिरो.१)

प्रच्छानपूर्वं परिपिष्टगुञ्जा
फलैः समालेपितमिंद्रलुप्तम् ।
प्रणाशमायात्यचिरेण पुंसा
मल्पैर्दिनैर्दारुणकं सुघोरम् ॥

(जोकादिसे) रक्तस्राव करानेके पश्चात गुञ्जाफल (चौंटली) को भलिभांति पीसकर लेप करनेसे इन्द्र लुप्त (वाल नष्ट हो जाना-गञ्ज) और भयङ्कर दारुण रोग अत्यन्त शीघ्र (कुछही दिनोमें) नष्ट हो जाता है।

(१४३१) गुञ्जाफलादिलेपः

(वृ.नि.र.।त्वग्दोष.रसे चिं.म.। अ.९,र.रा.सु.।कुष्ठा.)

गुञ्जाफलाग्निचूर्णस्य लेपनं श्वेतकुष्ठनुत् ।
शिलापामार्गभस्मादिलेपाच्छ्वित्रविनाशशम् ॥

गुञ्जाफल (चौटली) और चीतेके चूर्णका अथवा मनसिल और चिरचिटे (अपामार्ग-पुटकण्डे) की राखका लेप करनेसे श्वेतकुष्ठ (सफेद कोढ़) नष्ट होता है।

(१४३२) गुञ्जालेपः(यो.त.।त.७२,रा.मा.शिरो)

मार्कवस्वरसभावितगुञ्जाबीजचूर्णपरिपाचिततैलम्
मिश्रितंत्रुटिजटासुरकाष्ठैः केशभारजननंजनतायाः

काले भांगरेके स्वरससे (कई वार) भावित गुञ्जा (चौटली) और छोटी इलायची, जटामांसी (वालछड) और देवदारके कल्क तथा क्वाथसे सिद्ध तैल (शिरमें लगाने) से अत्यधिक केशवृद्धि होती है।

(१४३३) गुञ्जासूरणलेपः (वृ.नि.र. अर्श.)

गुञ्जाशूरणकूष्माण्डबीजैर्वर्तिस्तथा गुणाः ।

गुञ्जाफल (चौटली), ज़िमीकन्द और पेठेके बीजोंको पीसकर बत्ती बनाकर गुदमार्गमें रखनेसे अर्श नष्ट होती है।

(१४३४) गुडगृहधूमलेपः (वै.म.। प.१७)

गुडगृहधूमचूर्णसमुदायविलिप्तमिदम् ।
कफपवनोद्भवग्रथितशोफरुजावहुलम् ॥
व्रणमथ हन्त्यनघं जनयेत् सुखमाशुतरम् ॥

गुड़ और घरका धुवां समान भाग मिलाकर लेप करनेसे कफवातज सूजन और पीड़ायुक्त पुराना व्रण (घाव) अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है और पीड़ा तुरन्त शान्त हो जाती है।

(१४३५) गुडादिलेपः (रा.मा.। पादरोगा.)

गुडगुग्गुल सर्जरसैर्गैरिक सिन्धूत्थसिक्थकाक्षौद्रैः
सिद्धार्थक मधुकघृतैंन स्फुटतो लेपिताव्ङ्घ्री ॥

गुड़, गूगल, राल, गेरु, सेंधानमक, मोम, शहद, सरसों, मुलैठी और घृतका मरहम बनाकर लगानेसे पैर नहीं फटते।

(विधि-मोमको पिघलाकर उसमें घृत और शहद मिलाइये तत्पश्चाद् अन्य वस्तुओका चूर्ण मिला लीजिए।

(१४३६) गुडूच्यादिलेपः

(वृ. नि. र.; यो. र.। श्लीपदा.)

गुडूची कटुकी शुण्ठी देवदारु विडङ्गकम् ।
पिष्ट्वा गोमूत्रसंयुक्तं लेपं श्लीपदनाशम् ॥

गिलोय, कुटकी, सोंठ, देवदारु और बायविडङ्गके समान भाग चूर्णको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्लीपद (फीलपा) रोग नष्ट होता है।

(१४३७) गुणवतीवर्तिः (धन्वं.। व्र.रो.चि.)

तुल्यं सर्जरसं लोध्रं सिन्दूरातिविषा-निशा ।
अक्षकम्पिल्लश्रीवासगुग्गुलुघृततैलकैः ॥
तुल्यांशं पेषयेत्पिण्डं तत्तुल्यं सिक्थकं भवेत् ।
मृद्वग्निना पचेत्पात्रे मिश्रितं तं समुद्धरेत् ॥
वर्तिगुणवतीनाम्नी योज्या शीतैर्जलान्विता ।
दुःसाध्यव्रणगण्डेषु हिता नाडी व्रणेषु च ॥
शोधने रोपणे चैव स्वास्थ्यमुत्पादयत्यलम् ॥

राल, लोध, सिन्दूर, अतीस, हल्दी, बहेड़ा, कमीला, श्रीवासधूप (धूपसरल), गूगल, घी और तैल समान भाग लेकर पीसकर सबको बराबर मोममें मिलाकर मन्दाग्नि पर पिघलाकर एक जीव कर लीजिए। -

इस मरहमको शीतल जलसे ठण्डा करके घाव पर लगानेसे दुस्साध्य व्रण (घाव) और नासूर शुद्ध होकर भर आता है।

(१४३८) गृहधूमादि लेपः [१]

(ग. नि.। कुष्ठाधिकार.)

गृहधूमपञ्चलवणक्षारद्वयचक्रमर्दशशिरेखा ।
व्योषविषवह्निबृहतीरात्रिद्वयकुष्ठकम्पिल्लैः ॥
उग्राशिलालसर्षपसूतकसिन्दूरतुत्थकासीसैः ।
गोमूत्रसंप्रपिष्टैः स्नुगर्कपयसाऽन्वितैर्लेपः ॥
कुष्ठमपहन्त्यशेषं समुत्थितं मण्डलं समुल्लिखति ।
नाशयतिस्तब्धसुप्तिं चिरजमपि सवर्णयेच्छ्वित्रम्॥

घरका धुवां, पांचों नमक (सेंधा, कालानमक समुद्रनमक, खारीनमक, काचलवण), यवक्षार, सज्जीखार, पंवाड़के बीज, बाबची, सोठ, मिर्च, पीपल, मीठातेलिया, चीता, कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, कमीला, बच, मनसिल, हरताल, सरसो, पारा, सिन्दूर, नीलाथोथा और कसीस। सब चीज़ें बराबर बराबर लेकर गोमूत्रमें भलीभांति घोटकर थोहर और आकके दूधमें घोट लीजिए।

इसको (गोमूत्रमें मिलाकर) लेप करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ, मण्डल और त्वचाकी सुप्ति (बेहोस होना—सुन्नवहरी) नष्ट होती है एवं पुराना सफेद कुष्ठरोग भी नष्ट होकर त्वचाका रंग पूर्ववत् हो जाता है।

(१४३९) गृहधूमादि लेपः [२]

(यो. चि.। मिश्र.)

गृहधूमं कम्पिल्लं च टङ्कणं मरिचं निशा ।
घृतपिष्टप्रलेपोयं सर्वव्रणनिवृत्तये ॥

घरका धुवां, कमीला, सुहागा, स्याह मिर्च और हल्दीका चूर्ण समान भाग लेकर घीमें पीसकर लेप करनेसे सर्व प्रकारके व्रण (घाव) नष्ट होते है।

(१४४०) गृहधूमादिलेपः [३]

(बं. से., ग. नि.; यो. र., वृं. मा.। बा. रो.)

गृहधूमनिशाकुष्ठमर्जकेन्द्रयवैः शिशोः ।
चन्दनोशीरपद्मैश्च सिध्मपामाविचर्चिनुत् ॥

घरका धुवां, हल्दी, कूठ, राल और इन्द्रजौ अथवा चन्दन (सफेद), खस, और कमलपुष्पका लेप करनेसे बालकोका पामा (खुजली) और विचर्चिका रोग नष्ट होता है।

(प्र. वि.—तक्रमें मिलाकर लेप करना चाहिए।)

(१४४१) गृहधूमादिलेपः [४]

(भा. प्र.। म., वं. से.। वा. र.)

गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ।
प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥

घरका धुवां, बच, कूठ, सोया, हल्दी और दारुहल्दीका लेप करनेसे वातकफ प्रधान वातरक्त पीड़ा शान्त होती है।

(१४४२) गैरिकादिलेपः [१] (भा.प्र.।कर्णमूल.)

गैरिकं कठिनी शुण्ठी कट्फलारग्वधैः समैः ।
उष्णैः काञ्जिकसम्पिष्टैर्लेपः कर्णकमूलनुत् ॥

१ लेपस्तक्रेण हन्त्याशु इति पाठान्तरम्।

गेरु, खडिया मिट्टी, सोंठ, कायफल और अमलतासका गूदा समान भाग लेकर गर्म काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे कर्णमूल नष्ट होता है।

(१४४३) गैरिकादिलेपः [२] (वं.से.।उपदंश)

सौराष्ट्री गैरिकं तुत्थं पुष्पं काशीशसैन्धवम्।
लोध्रं रसाञ्जनं चापि हरितालं मनः शिलाम्॥
हरेणुकैले च तथा समांशान्यपि चूर्णयेत्।
तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु योजितम्॥

फिटकरी, गेरु, नीलाथोथा, पुष्पकासीस (कसीस), सेंधानमक, लोध, रसौत, हरताल, मनसिल, रेणुका (संभालूके बीज) और इलायची समान भाग लेकर चूर्ण करके शहदमें मिलाकर उपदंशके व्रणोपर लगाना लाभदायक है।

(१४४४) गैरिकादिलेपः [३] (र.र.।उपदंश)

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः।
सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत्॥

पैत्तिक उपदंश (आतशक) के व्रणपर गेरु, सुरमा, मजीठ, मुलैठी, खस, पद्माख, सफेदचन्दन और नीलोफरके चूर्णको घृतमें मिलाकर लगानेसे लाभ होता है।

(१४४५) गोक्षुरादिलेपः [१]
(वृ. नि. र., वं. से.। क्षु, रो.)

गोक्षुरसतिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी।
शिरःप्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते॥

समान भाग गोखरु और तिलपुष्पोंके चूर्णको बराबर बराबर शहद और घीमें मिलाकर शिरपर लेप करनेसे अत्यधिक बाल उत्पन्न होते हैं।

गोक्षुरादिलेपः [२] (वृ.नि.र.,यो.र.।मू.कृ.)
(श्वदंष्ट्रादि लेप अवलोकन कीजिए।)

(१४४६) गोजिह्वायोगः (रा.मा.।अवि.२८)

पिष्टा जलेन मधुना मिलिता ततोऽनु
गोजिह्विका हरिति लेपविधौ प्रयुक्ता।
सर्वाणि दन्तनखजानि विषाणि पुंसा-
मभ्युद्गमो दिनकरस्य यथा तमांसि॥

गोजिया घास (अथवा गोभी) को पानीमें पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे समस्त प्रकारके दन्त और नख विष (जंतुओंके काटने या नोचनेसे शरीरमें प्रवेश करने वाले विष) इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार कि सूर्योदयसे अन्धकार।

(१४४७) गोदन्तलेपः (धन्व.। व्रण.)

गवां दन्तं जले घृष्टं बिन्दुमात्रं प्रलेपतः।
अत्यन्तकठिने चापि व्रणे पाचनभेदनम्॥

गायके दन्तको जलमें घिसकर एक बिन्दु मात्र लेप कर देनेसेही अत्यन्त कठिन व्रण (कच्चा घाव—फोड़ा) भी पककर फूट जाता है।

(१४४८) गोपीचन्दनलेपः (यो.र.।उपदंश)

गोपीचन्दनतुत्थे च समभागेन मर्दयेत्।
कज्जली जलसंयुक्ता व्रणानां लेपने हिता॥

गोपीचन्दन और नीलाथोथा समान भाग लेकर खरल करके कज्जलके समान बारीक कर लीजिए।

इसे पानीमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंशव्रण (आतशकके घाव) नष्ट होते हैं।

(१४४९) गोमूत्रादिलेपः (ग.नि.;रा.मा.कुष्ठ.)

आरण्यगोमयनिघृष्टमति प्रलिप्तं।
गोमूत्रतक्रलवणैः क्वथितैः प्रयत्नात्॥

नाशं प्रयाति रकसं चिरसम्प्ररूढ- ।
मप्याशु पापमिव संस्मरणेन शम्भोः ॥

सेंधानमकको गोमूत्र और तक्रमें पकाकर गाढ़ा कर लीजिए। फिर रकस (सूखी खुजली)को अरण्य गोमय (गायके अरने उपले) से रगड़कर उपरोक्त क्वाथका लेप कर दीजिए। इस प्रयोगसे रकस अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(१४५०) गोरोचनादिलेपः(भा.प्र.।मु.रो.)

तद्वद् गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपितम् ।

गोरोचन और स्याहमिर्च समान भाग पीसकर मुख पर लेप करनेसे यौवन पिडिका (युवावस्थामें उत्पन्न होनेवाली पिडिका-मुंहासे) नष्ट होती है।

(१४५१)गोशकृदादिलेपः(वृ.यो.त.।त.१२०)

गोशकृत्सिन्धुसंयुक्तं रजनीमाक्षिकेण तु ।
पिष्टाप्रलेपनं योज्यं पामाकच्छूविनाशनम् ॥

गायका गोबर, सेंधानमक और हल्दीके चूर्णको शहदमें मिलाकर लेप करनेसे पामा(खुजली) और कच्छूरोग नष्ट होता है।

(१४५२) गौरसर्षपलेपः(भा.प्र.।ख.२,वा.र.)

गौरसर्षपकल्केन प्रदेहो वा रुजापहः ।

सफेद सरसोंको पिट्ठीकी भांति पीसकर मोटा मोटा लेप करनेसे वातरक्तकी पीड़ा शान्त होता है।

(१४५३) गौरीपाषाणलेपः(वृ.नि.र.।अर्श.)

गौरीपाषाणकर्षैकं स्नुहिकाण्डे विनिःक्षिपेत् ।
पाचयेत्पुटपाकेन तत उद्धृत्य यत्नतः ॥
रेवाचिनी च कुष्ठं च कल्की कृत्य त्रयं समम् ।
लेपयेत्तेन अर्शांसि निवार्यंते न संशयः ॥

थोहरके डण्डेको थोड़ी दूर तक चाकूसे काट-कर भीतरका गूदा निकाल दीजिए और फिर उसमें १। तोला सफ़ेद संख्या भरकर उसके मुख पर वही थोहरका कटा हुवा टुकड़ा लगाकर भलीभांति कपड़मिट्टी करके भूबलमें दबा दीजिए। जब वह पक जाय तो संख्येको निकाल कर पीस लीजिए। उसमें समान भाग रेवन्द चीनी और कूठका चूर्ण मिलाकर पानीमें पीसकर लेप करनेसे मस्से अवश्य नष्ट हो जाते है।

इति गकारादि लेपप्रकरणम्।

अथ गकारादि धूपप्रकरणम्।

(१४५४) गुग्गुलुधूपनम् (रा. मा.। विष.)

दष्टं नरं रक्तककीटकेन
प्रधूपयेद्गुग्गुलुना प्रकामम् ।
प्रस्वेदनाशे सघृतार्कपत्रपिण्डी
च दंशे विधिवत्प्रदेया ॥२८१॥

रक्तकीट (लालबर्र—ततैये) के दंश स्थानको गूगलकी धूप देकर पसीना निकल जानेके बाद अर्क (आक)के पत्तोकी घृतयुक्त पिण्डी बांध दी जाय तो पीड़ा शान्त हो जाती है।

(१४५५) गुग्गुल्वादि धूपः(अपराजितधूपः)

(वं. से., वृ. नि. र.; च. द.। ज्वरा.)

पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः ।
सर्वज्वरहरो धूपः श्रेष्ठोऽयमपराजितः ॥

गूगल, गन्धतृण, वच, राल, नीमके पत्ते, अर्क (आक), अगर और देवदार। समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए। इसकी धूपसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट हो जाते है।

(१४५६) ग्रहघ्नधूपः (र.र.स.।उत्तर खं.।अ.२३)

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतक-
त्वङ्मांसीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचकैः ॥
नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः।
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशग्रहघ्नः परम् ॥

कपासके बीज (विनौले) की गिरी, मोरका-पंख, बड़ी कटेलीके फल, शिव निर्माल्य, तगर, दारचीनी, जटामांसी (बाल छड), बांसा, मक्खीकी विष्ठा, तुष (धानका छिलका-भूसी), वच, बाल, सांपकी कांचली, हाथीदांत, सींग, हींग और मरिच (स्याह मिर्च)का समान भाग चूर्ण एकत्रित करके धूप देनेसे स्कन्दापस्मार, उन्माद, पिशाच, राक्षस, सुरावेश और ग्रहबाधा इत्यादि नष्ट होती है।

इति गकारादिधूपप्रकरणम् ।

अथ गकाराद्यञ्जनप्रकरणम्

(१४५७) गन्धकद्रुतिः (अञ्जनम्)
(र. र. स. । उ. खं. अ० २३)

आर्द्रकस्य रसे पिष्टं गन्धकेन विमिश्रितम् ।
तुत्थं तु निष्कदशकं तन्मानं चाभ्रकं भिषक् ॥
दशनिष्केन तन्मानं ताम्रं च शकलीकृतम् ।
भर्जयेत्खर्परे क्षिप्त्वा दहेत्तदनु चूर्णयेत् ॥३९
तन्मिश्रं कन्दुकस्थेन चूर्णमेतेन भर्जयेत् ।
गन्धकं चूर्णितं कृत्वा कर्षं तु विधिना शनैः॥४०
मर्दितं तज्जलप्रस्थे नीलश्चापि शिलाजतु ।
कर्षप्रमाणं निक्षिप्य मर्दयेत्भावयेत्पुनः ॥४१॥
प्रसादं श्रावयेत्पश्चादातपे परिशोषयेत् ।
गन्धकद्रुतिरेषा सर्वनेत्रामयापहा ॥४२॥
विशेषाद् व्रणकुष्ठञ्च पिल्लं काचं कुकूणकम् ।
जयेत्स्तन्यघृतक्षौद्रैः सर्वं तत्परिकल्पयेत् ॥४३॥
व्रणान्कृच्छ्रान् सूक्ष्माग्रानपि शीघ्रं निवर्तयेत् ।
तत्किट्टं दद्रुकिटिभपामादींल्लेपनाज्जयेत् ॥४४॥

गन्धकका चूर्ण, नीला थोथा, अभ्रकभस्म और ताम्र चूर्ण १०-१० निष्क (४० माशे) लेकर अद्रकके रसमें भलीभांति घोटकर मिट्टीके एक खर्पर (ठीकरे) में भरकर अग्निपर रखिए और चलाते रहिए, जब जलांश शुष्क हो जाय तो उतारकर उसमें १ कर्ष गन्धकका चूर्ण मिलाकर घोटकर कन्दुक[1] यन्त्रमें स्वेदित कीजिए तत्पश्चात् उसमें १ कर्ष नीला थोथा (अथवा सुरमा) और

१ एक हाण्डीमें पानी भरकर उसके मुख-पर कपडा अथवा घास रखकर उसके ऊपर स्वेदनीय औषध रखकर दूसरे पात्रसे ढक दीजिए। तत्पश्चात् उसे अग्नि पर चढ़ाकर औषधिको स्वेदित कर लीजिए इस यन्त्रको कन्दुक यन्त्र कहते हैं।

१ कर्ष शिलाजीत मिलाकर १ प्रस्थ पानीमें भली भांति घोटकर निथरनेके लिए रख दीजिए और फिर ऊपरसे स्वच्छ पानी नितारकर फेंक दीजिए, एवं शेष भागको धूपमें सुखा लीजिए।

यह गन्धकद्रुति समस्त नेत्ररोग और विशेषतः व्रण, कुष्ठ, पिल्ल, काच और कुकूणक रोगका नाश करती है।

इसे घृत, शहद अथवा स्त्रीके दूधमें घिसकर आंखमें लगाना चाहिए।

इसका लेप करनेसे कष्टसाध्य और सूक्ष्म मुखवाले व्रण, दाद, किटिभ और पामादि नष्ट होते हैं।

(१४५८) गरुडवर्तिः (वृं. मा.। ने. रो.)

पिप्पलीं सतगरोत्पलपत्रां
वर्तयेत्समधुकां सहरिद्राम्।
एतया सततमञ्जयितव्यं
यःसुपर्णसममिच्छति चक्षुः॥

पीपल, तगर, नीलोफरके पत्र, मुलैठी और हल्दीके समान भाग चूर्ण की बती बनाकर उसे नित्यप्रति आखोंमें आंजनेसे दृष्टि सुपर्ण (स्वर्ण चूड नामक पक्षी विशेष) की दृष्टिके समान तीक्ष्ण हो जाती है।

(१४५९) गरुडाञ्जनम् [१](यो.र.। विषचि.)

सूतं चूर्णमगारधूममलं प्रत्येकगद्याणकम्।
धत्तूरस्य रसेन मर्दितमलं पश्चाच्छतं भासुरम्॥
जेपालं मरिचं चतुःशतयुतं वातारिबीजं लस-।
द्युक्तं षष्ठिसु खल्विदं दृढतरैर्जम्बीरनीरैर्वरैः॥
कुर्यान्माषवदाकृतिश्चवटिकांछायासुशुष्कीकृताम्।
रात्र्यन्धंग्रहसर्पसन्धिसकलं शीतज्वरं दुर्धरम्॥
सन्नेत्राञ्जनमात्रकश्च भुवने चाजीर्णदोषापहम्।
नश्यन्ति प्रबलं महागुणायुतं श्रीपूज्यपादोदितम्॥

पारा, चूना कलई और घरका धुवां, ६–६ माशे लेकर धतूरेके स्वरसमें खरल कीजिए,पश्चात् उसमें १०० माशे फिटकरी, जमालगोटा और स्याहमिर्च चारचार सो, और अरण्डीके बीज ६० नग मिलाकर जम्बीरी नींबूके रसमें अच्छी तरह घोटकर उर्दके बराबर गोलियां बनाकर और छायामें सुखाकर रख लीजिए।

इन्हें आंखमें आंजनेसे रतौंधा, ग्रह, सर्प विष, भयङ्कर शीतज्वर और अजीर्ण दोष नष्ट होता है। इस महागुणयुक्त औषधका आविष्कार पूज्यपाद महानुभावद्वारा हुवा है।

(१४६०) गरुडाञ्जनम् [२]

(र. र. स.। उ. खं. अ० २३)

कतकसैंधवतुत्थरसाञ्जनं
त्रिकटुकस्फटिकाब्दवराटकम्।
त्रिपटुताम्रमयोहिमरोहिणी
जलधिफेनवचानृकरोटिका॥
उरगपारदटङ्कणमञ्जनम्
त्रिफलया मधुकेन च संयुतम्।
करञ्जवल्करसेन सुपेषितं
गरुडदृष्टिसमां कुरुते दृशम्॥

निर्मलीके बीज, सेंधानमक, शुद्ध नीलाथोथा, रसौत, सोंठ, मिर्च, पीपल, फिटकरीकी खील,नागरमोथा, कौड़ी भस्म, तीनों नमक (सेंधा,कालानमक, सांभर नमक), ताम्रभस्म, लोहभस्म, कपूर, मांस रोहिणी, समुद्रफेन, वच, मनुष्यकी कपालास्थि, सीसा भस्म, पारद, सुहागेकी खील, सुरमा, हैड,

वहेड़ा, आमला और मुलैठी सबका महीन चूर्ण करके करञ्ज (करञ्जवे) के स्वरसमें घोटकर अञ्जन तैयार कर लीजिए।

यह अञ्जन दृष्टिको गरुड़की दृष्टिके समान तीक्ष्ण कर देता है।

(१४६१) गिरिकर्ण्याद्यक्षिपूरणम्

(रा. मा. । ने. रो.)

श्वेताद्रिकर्ण्याः सपुनर्नवाया
मूलैः प्रपिष्टैर्यवचूर्णयुक्तैः ।
विलोचनपूरितमम्बुयुक्तं
विमुच्यते पुष्पकृतोपसर्गात् ॥

सफेद कोयल और पुनर्नवाकी जड़ तथा जौ को पानीमें पीसकर आंखमें डालनेसे पुष्प (फूला) नष्ट होता है।

(१४६२) गुञ्जामूलाञ्जनम्

(ग. नि., रा. मा., यो. र. । नेत्ररो.)

गुञ्जामूलं वस्तमूत्रेण पिष्टं
निघृष्टा वा वारिणा भद्रमुस्ता ।
आन्ध्यं सद्यस्तैमिरं हन्ति
पुंसामत्युद्गाढं नेत्रयोरञ्जनेन ॥

गुञ्जा (चौंटली) की जड़को बकरेके मूत्रके साथ अथवा नागरमोथेको पानीके साथ घिसकर अञ्जन लगानेसे अत्यन्त प्रवृद्ध तिमिर और आन्ध्य रोग नष्ट होता है।

(१४६३) गुटिकाञ्जनम् [१]

(सु. सं. उत्तर. अ० १९)

व्योषं पलाण्डु मधुकं लवणोत्तमञ्च ।
लाक्षाञ्च गैरिकयुतां गुटिकाञ्जनं वा ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, प्याज, मुलैठी, सेंधानमक, लाख और गेरु समान भाग लेकर महीन पीसकर (पानी की सहायतासे) गोलियां बना लीजिए।

इन्हें आंखमें आंजनेसे कुकूणक रोग नष्ट होता है।

(१४६४) गुटिकाञ्जनम् [२]

(वै. र. । ने. रो., बृ. यो. त. । त. १३१)

पिप्लीत्रिफलालाक्षालोध्रसैन्धवसंयुतम् ।
भृङ्गराजसे घृष्टं गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥
अर्मं सतिमिरङ्काचं कण्डूशुक्रं तथार्जुनम् ।
अञ्जनं नेत्रजान्रोगान् निहन्त्येतन्न संशयः ॥

पीपल, हर्र, वहेड़ा, आमला, लाख, लोध और सेंधानमकके महीन चूर्णको भंगरेके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें (पानीमें पीसकर) आंखमें आंजनेसे अर्म, तिमिर. काच, खुजली, फूला और अर्जुनादि नेत्र रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

(१४६५) गुटिकाञ्जनम् [३] (च.द.नेत्ररोग.५८)

नलिनोत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम् ।
गुडिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥

कमलकेसरको गायके गोवरके रसमें पीसकर गोलियां बना लीजिए। इन्हें (पानीमें घिसकर) आंखमें आंजनेसे दिवान्ध्य और नक्तान्ध्य (रतौंधा) नष्ट होता है।

(१४६६) गुटिकाञ्जनम् [४] (भै. र.। नेत्र.)

गैरिकं सैन्धवं कृष्णा तगरञ्च यथोत्तरम् ।
पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्या गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥

गेरु १ भाग, सेंधानमक २ भाग, पीपल ४ भाग और तगर ८ भाग लेकर महीन चूर्ण करके पानीमें पीसकर गोलियां बना लीजिए।

इस गुटिकाञ्जनके प्रयोगसे नेत्राभिष्यन्द रोग (आंख दुखना) नष्ट होता है।

(१४६७) गुटिकाञ्जनम् [५](वं.सेन।विषूच्या.)

गुडपुष्पसाराशिखरीतण्डुलं
गिरिकर्णिका हरिद्रे द्वे।
अञ्जनगुटिका विलयति
विषूचिकां त्रिकटुकसनाथा॥

गुड, शहद, अपामार्ग (चिरचिटे) के बीज, कोयलकी जड़, हल्दी, दारुहल्दी और त्रिकुटेका चूर्ण करके गोलियां बना लीजिए।

इसे (पानीमें घिसकर) आंखमें आंजनेसे विषूचिका नष्ट होती है।

(१४६८) गुडूच्यादिवर्त्तिः
(च. सं.। चि. स्था.; ने. चि.)

अमृताह्वा बिसं बिल्वं पटोलं छागलं शकृत्।
प्रपौण्डरीकं यष्टयाह्वं दार्वी कालानुसारिवा॥
सुधौतजर्जरीकृत्य कृत्वा चार्धपलांशकम्।
तोये पक्त्वा रसेपूते भूयः पक्वे घने रसे
कर्षं च श्वेतमरिचज्जातिपुष्पान्नवात्पलम्।
चूर्णं कृत्वा कृता वर्तिः सर्वाक्षिरोगनुत्॥

गिलोय, कमलनाल, बेलगिरी, पटोलपत्र, बकरीकी मींग (मल), पुण्डरिया, मुलैठी, दारुहल्दी, हल्दी और सारिवा आधा आधा पल लेकर सबको भली भांति धोकर, कूटकर (४० पल=२॥ सेर) पानीमें पकाइये। और (जब १० पल पानी शेष रहे तो उतारकर) छान लीजिए। इसके पश्चात् इसे पुनः पकाइये और गाढा होने पर १ कर्ष श्वेत मरिच (सुहांजनेके बीज) और १ पल चमेलीके नवीन फूलोका चूर्ण मिलाकर वत्तियां बना लीजिए। यह बत्तियां समस्त नेत्ररोगों का नाश करती हैं।

(१४६९) गुडूच्याद्यञ्जनम् (यो. र.। नेत्र.)

गुडूचीस्वरसः कर्षः क्षौद्रः स्यान्माकषोन्मितम्।
सैन्धवं क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥
अञ्जयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत्।
काचकण्डूलिङ्गनाशं शुक्लकृष्णजातान्गदान्॥

गिलोयका स्वरस १ कर्ष और शहद तथा सेंधानमक १-१ माषा (स्वरसका १६ वां भाग) मिलाकर अञ्जन लगानेसे पिल्ल, अर्म, तिमिर,काच, कण्डू (खुजली), लिङ्गनाश और शुक्ल तथा कृष्ण पटल गत नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

(१४७०) गुहामूलाद्यञ्जनम्(वृं. मा. नेत्ररो.)

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थमरिचान्वितम्।
आरनालेन संघृष्टमञ्जनं पिल्लनाशम्॥

शालपर्णी अथवा पृष्टपर्णीकी जड़, सेंधानमक और काली मिर्चको काञ्जीके साथ ताम्र पात्रमें घिसकर अञ्जन लगानेसे पिल्ल नामक नेत्र रोग नष्ट होता है।

(१४७१) गोपयः सर्पिषोर्योगः
(ग. नि.। नेत्रा.)

कृष्णाया कृष्णवत्साया गोपयः सर्पिरेव च।
पानेऽक्ष्णि तर्पणे नस्ये परमं चक्षुषोर्हितम्॥

कृष्णवत्सा (काले बच्चेवाली) काली गायका दूध और घृत पीना, आंखोमें डालना और उसकी नस्य लेना आंखोके लिए हितकर है।

(१४७२) ग्रहोपशमनार्थमञ्जनम् [१]
(रा. मा. अप.)

कूष्माण्डीफलसलिलेन पुष्यसंज्ञे
नक्षत्रे मसृणतरां प्रपिष्य दार्वीम् ।
कर्त्तव्यं नयनयुगेऽञ्जनं प्रशस्तं
निश्शेषग्रहरजनीचरोपशान्त्यै ॥

दारुहल्दीको पुष्य नक्षत्रमें कुष्माण्डीफल (क्षुद्र कुष्माण्ड—छोटा पेठा) के स्वरसमें महीन पीसकर दोनो आंखोमें आंजनेसे समस्त ग्रह और राक्षस शान्त होते हैं ।

(१४७३) ग्रहोपशमनार्थमञ्जनम् [२]

(रा. मा. अपस्मारोन्मादाधिकारः)

गोपित्तसिन्धुभवमागधिकाप्रसूत-
चूर्णैः कृतं समरिचैर्नयनाञ्जनं यत् ।
भूतग्रहशमनं तदुदाहरन्ति
संत्रासनञ्च रजनीचरसंहतानाम् ॥

गोरोचन, सेधानमक, पीपल और मरिच (स्याह मिर्च)के चूर्णको आंखोमें आंजनेसे भूत, ग्रह और राक्षसोंका भय नष्ट होता है ।

॥ इत्यञ्जनप्रकरणम् ॥

अथ गकारादि नस्यप्रकरणम् ।

(१४७४) गण्डमालाहरनस्यम् [१]

(वृ. यो. त. । त. १०८)

कोशातकीनां स्वरसेन नस्यं
तुम्ब्यास्तु वा पिप्पलिसंयुतेन ।
तैलेन वाऽरिष्टभवेन कुर्यात्
वचोपकुल्ये सह माक्षिकेण ॥

कड़वी तोरीके स्वरस अथवा पिप्पली चूर्ण-युक्त तूंबीके रस या नीमके तैल अथवा वच और दन्तीमूलको शहदमें मिलाकर उसकी नस्य लेनेसे गण्डमाला नष्ट हो जाती है ।

(१४७५) गण्डमालाहरनस्यम् [२]

(वृ. यो. त. । त. १०८)

गण्डमालाभयार्त्तानां नस्यकर्मणि योजयेत् ।
निर्गुण्ड्यास्तु शिफां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम् ॥
निष्पीड्य तद्रसान्नस्यं गण्डमालापचीहरम् ॥

निर्गुण्डी (संभाल्लु)की जड़को पानीमें पीसकर रस निकाल कर नस्य लेनेसे गण्डमाला और अपची रोग नष्ट होता है ।

(१४७६) गान्धार्यादिघृतनस्यम्

(वृ. नि. र. । शिरो.)

गान्धारी च जटामांसी घृतेनसह पाचयेत् ।
तदाज्यं नस्यमात्रेण निहन्त्यर्धशिरोरुजम् ॥

कटेली और जटामांसी (बालछड़) के कल्क और चतुर्गुण जलसे सिद्ध घृतकी नस्य लेनेसे आधे शिरकी पीड़ा (आधासीसी) शान्त होती है ।

(१४७७) गिरिकर्णिकानस्यम्

(यो. र., वृ. नि. र. । शिरो.)

गिरिकर्णीफलं मूलं सजलं नस्यमाचरेत्।
मूलं वा बन्धयेत्कर्णे निहन्त्यर्धशिरोरुजम्।

इन्द्रायनकी जड़ या फलको पानीमें पीसकर नस्य लेनेसे अथवा उसकी जड़को कानमें बांधनेसे अर्धशीर्ष (आधासीसी—आधे शिरका दर्द) नष्ट होता है।

(१४७८) गिरिकर्णीमूलयोगः (रा.मा.।उन्मा.)

संपिष्य तन्दुलजलेन सिताद्रिकर्णी
मूलं घृतेन सह नस्यविधौ प्रयुक्तम्।
भूतग्रहोपशमनं, मुनिवृक्षपुष्प-
जातो रसः समरिचश्च तथैव दृष्टः॥

सफेद कोयलकी जड़को पानीमें पीसकर घीमें मिलाकर नस्य लेनेसे अथवा मरिच (स्याह मिर्च) चूर्णयुक्त अगस्ति (अगथिया) के पत्तोंके स्वरसकी नस्य लेनेसे भूतबाधा और ग्रहदोष शान्त होते हैं।

(१४७९) गुडनागरादिनस्यम्

(यो. र. भा. २। शिरो.)

गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत्।

गुड़ और सोंठके चूर्णको मिलाकर नस्य लेनेसे मस्तकशूल नष्ट होता है।

(१४८०) गुडादिनस्यम् [१] (वृ.नि.र.।शिरो.)

गुडं करञ्जबीजञ्च नस्यमुष्णजले हितम्॥

गुड़ और करञ्ज बीज (करञ्जवेकी गिरी) को उष्ण जलके साथ पीसकर नस्य लेनेसे आधासीसी शान्त होती है।

(१४८१) गुडादिनस्यम् [२] (वृ.नि.र.।शिरो.)

नावनं सगुडं विश्वं पिपलीसैन्धवाम्बुना।
भुजस्तम्भादिरोगेषु सर्वमूर्द्धगदेषु च॥

गुड़, सोंठ, पीपल और सेंधानमकके समान भाग चूर्णको जलमें पीसकर नस्य लेनेसे भुजस्तम्भ अर्दित (लकवा) और सब प्रकारके शिरोरोग शान्त होते हैं।

(१४८२) गोधेरकविषापहं नस्यम्

(ग. नि.। गर वि. ९)

उष्णोदकेन मसृणं दृषदि प्रपिष्य
कन्थारिपादपजटां कृतनावनानाम्।
गोधेरकस्य गरलं नयति प्रशान्ति-
मर्कांशुतापभरमम्बुदमालिकेव॥

कन्थारीकी जड़की छालको उष्ण जलसे पत्थर पर अत्यन्त महीन पीसकर नस्य लेनेसे गोधेरक (गोय) का विष इस प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य की तीक्ष्ण किरणोंसे मेघवाला छिन्नभिन्न हो जाती है।

(१४८३) ग्रहोपशमनार्थं नस्यम्

(रा. मा.। अपस्मारोन्मादा.)

गोमूत्रेण तु सहितं सम्यक्पक्वं फलं विशालायाः।
नस्येन हन्ति भूतान् रक्षांसि ब्रह्मपूर्वपदान्॥

इन्द्रायणके फलको गोमूत्रमें पकाकर नस्य लेनेसे भूतबाधा और ब्रह्मराक्षसोंका नाश होता है।

॥ इति गकारादि नस्यप्रकरणम्॥

अथ गकारादि कल्प प्रकरणम्।

(१४८४) गुडूचीकल्पः [१] (र.चि.। स्त.९)

रसभस्मगुडूच्याश्च सत्त्वमेकत्र च द्वयम्।
ततः शाल्मलिजेनैव रसेन परिभाव्यते॥
पञ्चाशद्भावनास्तस्य मासार्धमधिकस्य च।
टङ्कद्वयमितं चूर्णं सेव्यं प्रतिदिनं नरैः॥
दिने प्रभातसमये शाल्मलीरससंयुतम्।
तीक्ष्णं मद्यं तथा क्षारं लवणां परिवर्जयेत्॥
तक्रदुग्धाशनप्रीतो भूमीशायी जितेन्द्रियः।
एकासनः स्वच्छचित्तः सन्मित्रोः भक्तवत्सलः॥
सुखासनसमासीनः सत्यधर्मपरायणः।
निश्चिन्तो निर्विकारश्च कल्पमेनं भजेन्नरः॥
त्रिमासादूर्ध्वतः केशा भ्रमरीगणसन्निभाः।
जायन्ते तच्छरीरस्था निश्चलाः शवलाः कलाः॥
षण्मासमभ्यासाच्च शरीरमजरामरम्।
अनंगसदृशं रूपं दशमासेन जायते॥
वर्षमात्राभ्यासवशाद् वर्द्धन्ते धातवोऽखिलाः।
इच्छाहारविहारी च स्वर्गतिर्मतिमान्नरः॥
एवं कल्पो विधातव्यो सुखं जीवतुमिच्छुभिः।
अमृतायाःशिवः सौम्यो ह्यमृतोपमलाभदः॥

मकरध्वज (अथवा रस सिन्दूर) और गिलोयका सत समान भाग लेकर एकत्र खरल करके उसे सेंभलके रसकी ५० भावना दे लीजिए।

इसे प्रतिदिन प्रात काल ८ मासेकी मात्रानुसार सेंभलके रसके साथ सेवन करनेसे ३ मासके पश्चात् बाल भौंरेके समान काले हो जाते हैं, ६ मासके सेवनसे शरीर अजर अमर और १० मास पर्यन्त सेवन करनेसे रूप कामदेवके समान सुन्दर हो जाता है, तथा १ वर्ष पर्यन्त सेवन करनेसे शरीरके समस्त धातुओंकी वृद्धि होती है।

सुखाभिलाषी यथेच्छाहार विहारी बुद्धिमान् मनुष्यको इस अमृतके समान लाभदायक और सौम्य अमृतकल्पका व्यवहार करना चाहिए।

प्रयोगकालमें तीक्ष्ण पदार्थ, मद्य, क्षार और लवणका परित्याग करके तक्र अथवा दुग्धाहार करना चाहिए, एवं भूमिमें शयन करना चाहिए और स्वच्छ चित्त, सन्मित्रयुक्त, भक्तवत्सल, सत्य-धर्म परायण, निश्चिन्त, निर्विकार और ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक रहना चाहिए।

(१४८५) गुडूचीकल्पः [२]

(ग. नि.। ओषधिकल्पा.)

तामङ्गुष्ठपर्वमात्रां गुडूचीं परिकल्पिताम्।
खण्डानि सर्पिषा भृष्ट्वा खादेत्सप्त नवाथ च॥
पुनः पुनः प्रतिदिनं यथेष्टाहारचेष्टितम्।
जयेत्तृष्णां भ्रमं श्वासं सकासं शूलवेपथुम्॥

गिलोयके, अंगूठेके पोरवे (पर्व) के समान मोटे और बड़े टुकड़े करके घीमें भून लें और उनमेंसे सात या नौ टुकड़े रोज खा लिया करे, एवं इच्छानुसार आहार विहार करें। इस प्रयोगसे तृष्णा, भ्रम, श्वास, कास, शूल और कम्पनका नाश होता है।

गुडूचीकल्पः [३]

पिबेन्नरोऽपि तत्काथमेरण्डस्नेहयोजितम्।
जयेद्गृध्रस्युदावर्त्तं वातरक्तमशेषतः॥

गुडूचीके क्वाथमें अरण्डीका तेल मिलाकर पीनेसे गृध्रसी, उदावर्त और वातरक्तका समूल नाश हो जाता है।

गुडूचीकल्पः [४]

कषायश्छिन्नरोयाहा निहन्याद्विषमज्वरम्।
रात्रिज्वरं ज्वरं जीर्णं तृतीयकचतुर्थकौ॥

गुडूचीका क्वाथ विषमज्वर, रात्रिज्वर, जीर्णज्वर, तिजारी और चौथिया (चातुर्थिक) ज्वरका नाश करता है।

गुडूचीकल्पः [५]

निःक्वाथोऽमृतवल्लयास्तु शुण्ठीचूर्णसमन्वितः।
पीतो हन्ति कटीपृष्ठपादजङ्घोरुजां रुजम्॥

गिलोयके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे कमर, पीठ, पैर, जंघा और उरु प्रदेशकी पीड़ा नष्ट होती है।

गुडूचीकल्पः [६]

अमृतायाः पलशतं चूर्णीकृत्य तुलाधृतम्।
घृतक्षौद्रगुडं चाथ सर्वमेकत्र संलिहेत्॥
यथाग्न्यभ्यवहारस्तु नरो हितमिताशनः।
नास्यकश्चिद्भवेद्व्याधिर्नजरा पलितं न च॥
न गृध्रसी न वातासृङ् न चैव विषमज्वरः।
न च नेत्रगता रोगा परं चैतद्रसायनम्।
मेधाकरं त्रिदोषघ्नं, प्रयोगादस्य बुद्धिमान्॥
जीवेद्वर्षशतं पूर्णं यथैकं दिवसं तथा॥

१०० पल (६। सेर) गिलोयके चूर्णको घृत, शहद और गुडमें मिलाकर रक्खें, इसे प्रतिदिन अग्निबलोचित मात्रानुसार सेवन करने और पथ्यपालनपूर्वक रहनेसे जरा, व्याधि, पलित, गृध्रसी, वातरक्त, विषमज्वर और नेत्ररोग नहीं होते।

यह प्रयोग रसायन, त्रिदोषनाशक और बुद्धिवर्धक है। इसको सेवन करनेसे मनुष्य पूरे १०० वर्ष तक १ दिनकी भांति जीवित रहता है।

गुडूचीकल्पः [७]

स्वरसममृतवल्लया यः पिबेन्मासमेकम्
परिसृतघृतभक्षः क्षीरयूषौदनाशी।
वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तो
तरुरिवनवपत्रः स्नेहकान्तिर्विभाति॥

एक मास पर्यन्त गिलोयके स्वरसको पीने और घृत, शहद तथा दूध, मूंगका यूष और भात खानेसे मनुष्य बलिपलित रहित, सर्वरोग मुक्त और वृक्षोकी नवीन कोपलोंके समान कान्तिमान हो जाता है।

(१४८६) गोक्षुरकल्पः (ग. नि.। औ. क. २)

अरिष्टपाषाणपथि स्मशान-
जीर्णालये गोक्षुरकं प्रजातम्।
अपास्य सुक्षेत्रनदीतडाग-
गोष्ठप्रजातं समुपाददीत॥
शरद्यपेतानिलमेघपङ्के
फलान्वितं गोक्षुरकं समूलम्।
चूर्णीकृतं सान्द्रपटान्तपूत-
मथैनमत्यन्तविशुद्धकायः॥
तिथौप्रशस्ते पयसा लिहेत्तत्
कर्षाभिवृद्धया द्विपलं तु यावत्।
दिने दिने सार्धपलं तु नित्यं
जीर्णे पयः षष्टिकभोजनञ्च॥

ततोऽष्टरात्रात्परतस्तु कामं-
वृष्यः कुकुद्मानिव गोकुलेषु ।
प्रकामकामः प्रमदा सहस्रं
भजेदुदीर्णेन्द्रिय सर्वचेष्टः ॥
यां चापि गच्छेत्प्रमदां स वृद्धां
हिमेन्दुगङ्गामलकुन्दकेशीम् ।
सा चापि कौमारमुपैति भावं
रूपान्विताऽथाप्सरसेव भाति ॥

निकृष्ट पथरीले मार्ग, श्मशान और पुराने खण्डहरोंमें उत्पन्न गोखरुका परित्याग करके नदी तड़ागादिके तटवर्ती उत्तम प्रदेशमें वायु, आकाश, कीचड़ आदि दूर होने पर शरद ऋतुमें उत्पन्न सफलमूल गोखरु लेकर चूर्ण करके मोटे कपड़ेसे छान लीजिए।

वमन विरेचन द्वारा शरीरशुद्धिके पश्चात् प्रशस्त तिथिमें १॥ कर्ष की मात्रासे दूधके साथ सेवन प्रारम्भ करें और प्रतिदिन १ कर्ष (१। तो.) बढाते जांय, यहां तक कि २ पल (१० तोले) मात्रा तक पहुंच जांए। औषध पचने पर साठी चावल और दूधका आहार करें।

इस प्रकार आठ दिन तक यह प्रयोग करनेसे कामशक्ति अत्यधिक प्रबल हो जाती है।

इस प्रयोगका प्रयोगी यदि किसी वृद्धाके साथ रमण करता है तो वह भी अपसरा समान रूप-लावण्ययुक्त प्रतीत होती है।

॥ इति गकारादि कल्पप्रकरणम् ॥

अथ गकारादि रसप्रकरणम्।

(१४८७) गगनगर्भरसः (रसे. मं.। अ. ३)

अभ्रं तालकताम्रतीक्ष्ण-
सुरभं सूतं समानांशकम् ।
भार्गीकट्फलधान्यकाम्बु-
नि वचा शृङ्गी च शुण्ठी शिवा ॥
एषां पर्पटकद्रवेण-
रचिता गद्याण मात्रावटी ।
लीढा सा मधुना निहन्ति
सहसा श्लेष्मान्वितं मारुतम् ॥९॥

अभ्रक भस्म, हरताल भस्म, ताम्र भस्म, लोह भस्म, गन्धक (शुद्ध), शुद्ध पारद और भारङ्गी, कायफल, धनियां, नेत्रवाला, बच, काकड़ासिंगी, सोंठ और हैड़का चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य समस्त औषधियां मिलाकर पित्तपापड़ेके स्वरस या क्काथमें घोटकर ६-६ माशेकी गोलियां बना लीजिये।

इन्हें शहदमें मिलाकर चाटनेसे कफयुक्त वायु अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

(व्यवहारिक मात्रा १ माशा)

(१४८८) गगनगर्भावटी (रसः)
(र. र. स. । उ. खं. अ. २१; र. रा. सुं.। वा.व्या.)

सूताभ्रं तीक्ष्णताम्रं च मृतं तालकगन्धकम्।
भार्गी शुण्ठी वचा धान्यकम्पिल्लं चाभयाविषम्॥
मर्द्यं पर्पटकद्रावैर्निष्कैकां भक्षयेद्वटीम्।
वातश्लेष्महरा ह्याशु वटी गगनगर्भिता॥

शुद्ध पारा, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म, हरताल भस्म, शुद्ध गन्धक और भारङ्गी, सोठ, बच, धनियां, कबीला, हैड़ और मीठे तेलिये का चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धकको घोटकर कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर पित्तपापड़ेके क्वाथ या स्वरसमें घोटकर ४-४ माशेकी गोलियां बना लीजिए।

यह "गगनगर्भितावटी" वातकफको अत्यन्त शीघ्र नष्ट कर देती है।

(मात्रा=१ माशा। अनुपान=मधु)

(१४८९) गगनसुखरसः (रसे. मं.। अ. ३)

गगनं स्याद्रसे जीर्णं तीक्ष्णं शुल्बं सुरायसम्।
वज्रामयरसे घृष्टं सूर्यावर्त्तविनाशनम्॥२०५

अभ्रक ग्रास युक्त पारद, तीक्ष्ण लोहभस्म, ताम्र भस्म और कान्त लोहभस्म (समान भाग लेकर) स्नुही (सेंड)के दूधमें पीसकर सेवन करनेसे सूर्यावर्त (मस्तकशूल भेद) रोग नष्ट होता है।

(१४९०) गगनसुन्दरो रसः [१]

(भै. र., र. रा. सुं.। ज्वराति.)

टङ्कणं दरदं गन्धमभ्रकञ्च समं समम्।
दुग्धिकाया रसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम्॥
द्वि गुञ्जं मधुना देयं श्वेतसर्जस्य वल्लकम्।
विविधं नाशयेद्रक्तं ज्वरातीसारमुल्वणम्॥

१ तारमिति रसकामधेनौ।

पथ्यं तक्रं पयच्छागमामशूलं विनाशयेत्।
अग्निवृद्धिकरो ह्येष रसो गगनसुन्दरः॥

सुहागेकी खील, शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ़), शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्म, समान भाग लेकर ३ दिन पर्यन्त दूधीके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

१-१ गोली शहदमें मिलाकर चाटने और तत्पश्चात् सफेद रालका ३ रत्ती चूर्ण खानेसे ज्वरातिसारमें आने वाला रक्त और आम शूल नष्ट होता है तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

पथ्य—तक्र और बकरीका दूध।

(१४९१) गगनसुन्दरो रसः [२]

(रसें. चिं. म.। अ. ९)

रसगन्धाभ्रकाणाञ्च भागानेकद्विकाष्टवान्।
संचूर्ण्य सर्वरोगेषु युञ्ज्याद्वल्लचतुष्टयम्॥
ग्रहणीक्षयगुल्मार्शोमेहधातुगतज्वरान्।
निहन्ति सूतराजोयं मण्डलैकस्य सेवया॥५४

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और अभ्रकभस्म ८ भाग लेकर पारेगन्धक की कज्जली करके अभ्रक भस्म मिलाकर घोट लीजिए।

इसे ४ वल्ल (८ रत्तीकी) की मात्रानुसार ४० दिन पर्यन्त सेवन करनेसे, ग्रहणी, क्षय, गुल्म, अर्श, प्रमेह, धातुगत ज्वर और अन्य समस्त रोग नष्ट होते हैं।

(व्यवहारिक मात्रा २ रत्ती। अनुपान शहद।)

(१४९२) गगनसुन्दरो रसः [३]

(र. का. धे.। संग्र. चि.)

दग्ध्वा कपर्दिकामिष्टां त्र्यूषणं टङ्कण विषम्।
मर्दयेच्छुद्धसूतञ्च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः॥१०२

मर्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥

उत्तम जातिकी कौड़ियोंकी भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुहागेकी खील, शुद्ध मीठा तेलिया और शुद्ध पारद समान भाग लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें भलीभांति घोट लीजिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार खाकर पश्चात् घृतमें मिलाकर स्याह मिर्चका चूर्ण चाटनेसे ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

पथ्य—तक्र भात।

(१४९३) गगनादिलौहम्

(रसें. चि. म.। अ. ९; र. चं.। स्त्रीरो., र. सा. सं.; र. रा. सु., धन्वं.। सोमरोग)

गगनं त्रिफला लोहं कुटजं कटुकत्रयम्।
पारदं गन्धकश्चैव चिपटङ्कणसञ्ज्ञिका।
त्वगेला तेजपत्रं च वङ्गं जीरकयुग्मकम्।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥
तदर्धं चित्रकं चूर्णं कर्षैकं मधुना लिहेत्।
अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसारसोमकम् ॥

अभ्रकभस्म, हर्र, बहेडा, आमला, लोहभस्म, कुडेकी छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागेकी खील, सज्जीखार, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वंगभस्म, सफेद ज़ीरा और स्याह जीरा समान भाग लेकर महीन चूर्ण बना लीजिए। तत्पश्चात् इसमें इस समस्त चूर्णमें आधा चीतेका चूर्ण मिला लीजिए।

इसे १ कर्ष (१। तोले)की मात्रानुसार शहदमें मिलाकर चाटनेसे मूत्रातिसार और सोमरोग अवश्य नष्ट होता है।

(१४९४) गगनादिवटी (रसः)

(र. सा. सं., र. रा. सुं., धन्वं.।-वा. व्या.)

मृतगगनरसार्कं मुण्डतीक्ष्णं सताप्यम्।
सबलिसममिदं स्याद्यष्टितोयप्रपिष्टम् ॥
तदनु सलिलजातैर्वासकैर्गोस्तनीभिर्।
मर्दितमनु विदारीवारिणा घस्रमेकम् ॥
घृतमधुसहितेयं निष्कमात्रा वटीति।
क्षपयति गुरुवातं पित्तरोगं क्षयञ्च ॥
भ्रममदकफशोषान्दाहतृष्णासमुत्थान्।
मलयजमिह पेयञ्चानुपेयं सचन्द्रम् ॥

अभ्रक भस्म, शुद्ध पारा, ताम्र भस्म, मुण्ड लोहभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, सोनामक्खी भस्म, और गन्धक (शुद्ध) समान भाग लेकर पारे और गन्धककी कज्जली करके समस्त औषधोंको एकत्र मिला लीजिए। तत्पश्चात् १-१ दिन मुलैठी, वासा, मुनक्का और विदारी कन्दके क्वाथमें घोटकर ४-४ माशेकी गोलियां बना लीजिए।

इसे घी (६ माशे) और शहद (२ तोला) में मिलाकर चाट कर पश्चात् श्वेत चन्दन और कपूरको घिसकर पीनेसे प्रबल वायु, पित्तरोग, क्षय, भ्रम, मद, कफ, शोषरोग, दाह और तृष्णा नष्ट होती है।

(१४९५) गगनाद्यो रसः (रसे. मं.। अ. ३)

गगनकनकताम्रं शाणमात्रं च धृत्वा।
रसवरकृतपिष्ट्या सौरभान्ते विपक्त्वा ॥
समयुतकृतसेभिस्तालकं बोलताप्यं।
विषमनलसुपर्वाः शृङ्गिका सिन्दुवारम् ॥
सुरभिमधुकसिन्धुटङ्कणक्षारवन्ध्या।
कलशिपिचुविशालाशृङ्गवेराम्लवेतम् ॥

लघुबदरफलाभा छायया शोषिता हि ।
हरति सकलजातं सन्निपातं च कुष्ठम् ॥

अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हरताल भस्म, बीजाबोल, सोनामक्खी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, चीता, श्वेत दूब, काकड़ासिंगी, संभालूके पत्ते, गन्धक, मुलैठी, सेंधानमक, सुहागेकी खील, यवक्षार, बांझ कुकोड़े की जड़, पृष्टपर्णी, नीमछाल, इन्द्रायनकी जड़, अद्रक और अम्लवेत १-१ शाण (४-४ माशे) लेकर चूर्ण योग्य ओषधियोंका कपड़छन महीन चूर्ण कर लीजिए। तत्पश्चात् पारे और गन्धककी कज्जली करके उसे पर्पटीकी भांति पका लीजिए और फिर समस्त ओषधियोको एकत्र घोटकर (पानीसे) छोटे बेरके समान गोलियां बना कर छायामें सुखा लीजिए।

इनके सेवनसे समस्त प्रकारके सन्निपात और कुष्ठ रोग नष्ट होते है।

(१४९६) गगनायस-रसायनम्

(र. चि. । स्तब. ८)

कृत्वा धान्याभ्रकं श्लक्ष्णं मुस्ताक्वाथेन मर्दयेत् ।
दिनैकमातपे तप्तं पूपं कृत्वा ततः परम् ॥
शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा देयश्चोपरि खर्परः ।
वस्त्रमृत्तिकया लेप्य पुटं दद्यात्ततः परम् ॥
स्वाङ्गशीतलतां याते तच्चूर्णं पेषयेत्पुनः ।
मुस्तानीरेण च क्षुण्णं पूपं कुर्यात्पुनः पुनः ॥
एकविंशतिवारांश्च दद्याद्युक्त्याऽनया पुटम् ।
वारं वारञ्च संचूर्ण्य शरावस्थं तदभ्रकम् ॥
एवं हि पुटितं व्योम भवेन्निश्चन्द्रिकं परम् ।
एकं कान्तायसं सिद्धमेतन्निश्चन्द्रमभ्रकम् ॥
समं क्षिप्याथ खल्वे तद्द्वयं पिष्ट्वैकतां नयेत् ।
रसायनं द्वयोर्योगान्निष्पन्नं गगनायसम् ॥
प्रातरुत्थाय गद्याणो ग्राह्यः शीतजलान्वितः ।
अष्टादशसु मेहेषु वातश्लेष्मादि रोगिषु ॥
अतिसारेषु पित्तेषु देयमेतद्रसायनम् ।
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय यः करोति सदा नरः ॥
तेजस्वी बलवाञ्छूरो बलेन गजसन्निभः ।
स्तम्भितो तेन वा हस्ती पदमेकं न गच्छति ॥

धान्याभ्रकका सूक्ष्म चूर्ण करके उसे एक दिन मोथेके रसमें घोटकर टिकिया बना लीजिए और धूपमें सुखाकर दो शरावोमें बन्द करके ऊपरसे कपर मिट्टी करके सुखाकर गजपुटमें फूंक दीजिए। स्वांगशीतल होने पर निकालकर पुनः मोथेके रसमें घोटकर पुट दीजिए। इसी प्रकार २१ पुट देनेसे अभ्रक निश्चन्द्र हो जायगा।

इस प्रकार निर्मित अभ्रककी निश्चन्द्र भस्म १ भाग और कान्त लोह भस्म १ भाग लेकर दोनोंको खरलमें घोटकर एक जीव कर लीजिए। इसीका नाम "गगनायस रसायन" है।

इसे प्रतिदिन प्रातःकाल ६ माशेकी मात्रानुसार शीतल जलानुपानसे सेवन करनेसे अठारह प्रकारके प्रमेह, वातकफज रोग और पित्तज अतिसार नष्ट होता है।

इसे सदैव सेवन करते रहनेसे मनुष्य तेजस्वी, शूर और हस्तीसदृश बलशाली हो जाता है। यदि वह हाथी को रोक ले तो हाथी एक पग भी नहीं चल सकता।

(व्यवहारिक मात्रा=२-४ रत्ती)

(१४९७) गगनेश्वर रसः (र.र.रसा.। उ.२)

पारदो गगनं कान्तं तीक्ष्णं च मारितं समम्।
भृङ्गधात्रीफलद्रावैश्छायायां भावयेत्र्यहं॥
सितामध्वाज्यकैस्तुल्यैः सर्वं भाण्डे निरोधयेत्।
धान्यराशौ स्थितं मासं ततो निष्कत्रयं समम्॥
भक्षयेच्च पिबेत्क्षीरं कर्षैकं त्रिफलामनु।
रात्रौ शुण्ठीं कणां खादेद्वर्षैकादमरो भवेत्॥
जीवेद् ब्रह्मदिनं वीरः स्याद्रसो गगनेश्वरः॥

शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, कान्त लोहभस्म और तीक्ष्ण लोहभस्म, समान भाग लेकर सबको ३ दिन तक भांगरे और आमलेके रसकी छायामें भावना दीजिए। पश्चात् उसमें समान भाग मिश्री शहद और घी मिलाकर मिट्टीकेके बरतनमें भरकर अनाजके ढेरमें दबा दीजिए और एक मास पश्चात् निकालकर काममें लाइये।

इसे प्रति दिन ३ निष्क (१२ माशे) की मात्रानुसार खाकर पश्चात् १ कर्ष (१। तोला) त्रिफला चूर्ण दूधके साथ सेवन कीजिए। और रात्रिको सोंठ और पीपल (१॥ माशेकी मात्रानुसार) भक्षण करते रहिए। इस प्रकार १ वर्ष तक सेवन करनेसे मनुष्य वीर होकर १ ब्रह्म दिन (२००० दिव्ययुग) पर्यन्त जीवित रहता है।

(१४९८) गङ्गाधरचूर्णम् (रसः)

[बृहद्] (भै. र.। ग्रह.)

बिल्वं मोचरसं पाठा धातकी धान्यमेव च।
समङ्गा नागरं मुस्तं तथैवातिविषा समम्॥
अहिफेनं लोध्रकञ्च दाडिमं कुटजं तथा।
पारदं गन्धकञ्चैव समभागं विचूर्णयेत्॥
तक्रेण खादयेत्प्रातश्चूर्णंगङ्गाधरं महत्।
ज्वरमष्टविधं हन्यादतीसारं सुदुस्तरम्॥

बेलगिरी, मोचरस, पाठा (जलजमनी), धायके फूल, धनियां, मजीठ, सोंठ, मोथा, अतीस, अफीम, लोध, अनारदाना, कुड़े की छाल, पारा और गन्धक समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे प्रातःकाल तक्रके साथ सेवन करनेसे आठ प्रकारके ज्वर और कष्टसाध्य अतिसार नष्ट होते है।

(निर्माण वि.—प्रथम पारे गन्धकको अलग घोटकर कज्जली बना लीजिए।)

मात्रा=१ से २ माशे तक।

(१४९९) गङ्गाधर रसः (र. का. धे.। अति.)

शुद्धसूतं शुद्धगन्धमभ्रकं मारितं तथा
कुटजातिविषं लोध्रं बिल्वमज्जा च धातकी॥
वासरत्रितयं मर्द्यमहिफेनस्य वल्कलैः।
रसो गङ्गाधरो नामः देयं वल्लद्वयं खलु॥
गुडतक्रानुपानेन सोऽतिसारं विनाशयेत्।
प्रवाहिकाञ्च ग्रहणीं सायम्प्रातश्च दापयेत्॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, कुड़ेकी छाल, अतीस, लोध, बेलगिरी और धायके फूल समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली कर लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोंका महीन चूर्ण मिलाकर ३ दिन तक पोस्तके डोढेके पानीमें घोटकर (गोलियां बना लीजिए)

इसे २ वल्ल (४ रत्ती) की मात्रानुसार गुड़-युक्त तक्रके साथ प्रातः सायम् सेवन करनेसे अतिसार, प्रवाहिका और ग्रहणीरोग नष्ट होता है।

(१५००) गङ्गाधरो रसः

(वृ. नि. र; र. चं; र. रा. सुं., वै. र. । अति.)

मुस्तमोचरसं लोध्रं कुटजत्वक् तथैव च।
बिल्वास्थि धातकीपुष्पमहिफेनं च गन्धकम् ॥
शुद्धं हि पारदं चैव सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
रसो गङ्गाधरो नाम्ना मासमात्रं प्रयोजयेत् ॥
वल्लमात्रमिदं खादेद्गुडतक्रसमन्वितम्।
सर्वातीसारं ग्रहणीं प्रशमं याति वेगतः ॥
पथ्यं तक्रोदनं देयं सात्म्यं ज्ञात्वा भिषग्वरः ॥

मोथा, मोचरस, लोध, कुड़ेकी छाल, बेलगिरी, धायके फूल, अफीम, गन्धक और शुद्ध पारद समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, पश्चात् अन्य ओषधियोंका महीन चूर्ण मिलाकर खरल कर लीजिए।

इसे १ वल्ल (२ रत्ती) की मात्रानुसार गुड़-युक्त तक्रके साथ १ मास तक सेवन करनेसे समस्त प्रकारके अतिसार और ग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं।

इस पर रोगीके सानुकूल हो तो तक्रभातका पथ्य देना चाहिए।

(१५०१) गजकेशरी (वृ. नि. र. । शू. रो.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेत् दृढम् ॥
द्वयोस्तुल्ये शुद्धताम्रसम्पुटे तन्निरोधयेत् ॥
उर्ध्वाधो लवणं दत्वा मृद्भाण्डे धारयेद्भिषक्।
ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥
सम्पुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखण्डे द्विगुंजकम्।
भक्षयेत्सर्वशूलार्त्तो हिङ्गुशुण्ठीसजीरकम् ॥
वचामरिचचूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत्।
असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोयं गजकेशरी ॥

१ भाग शुद्ध पारद और २ भाग शुद्ध गन्धकको १ पहर तक भली भांति खरल करके इस कज्जलीको इसके समान वज़नी ताम्र सम्पुटमें बन्द करके उसे मिट्टीके शरावोमें, ऊपरनीचे सेंधा-लवणका चूर्ण रखके, बन्द कर दीजिए और कपड़-मिट्टी करके सूखनेके पश्चात् गजपुटमें फूंक दीजिए। जब स्वांगशीतल हो जाय तो निकालकर ताम्रके सम्पुट (प्यालियों) समेत खरल कर लीजिए।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार पानमें खाकर ऊपरसे हींग, सोंठ, जीरा, बच और स्याह मिर्चका समभाग मिश्रित १ कर्ष चूर्ण उष्ण जलके साथ सेवन करना चाहिए।

इसके सेवनसे सर्व प्रकारके असाध्य (कष्ट-साध्य) शूल भी नष्ट हो जाते हैं।

(१५०२) गजचर्मारि रसः (र.का.धे.।कुष्ठ.)

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यूषमुस्ताफलत्रयम्।
गुडूचीं चूर्णयेत्तुल्यां चूर्णस्य द्विगुणं गुडम् ॥
द्विगुञ्जा वटीं खादेन्मासैकं गजचर्मनुत् ॥

शुद्ध पारा और गन्धक समान भाग लेकर कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, मोथा, हर्र, बहेड़ा, आमला और गिलोयका समभाग मिश्रित चूर्ण इस कज्जलीके बराबर और इस चूर्णसे द्विगुण गुड़ मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हे एक मास पर्यंत सेवन करनेसे गजचर्म रोग नष्ट होता है।

१-पाठ भिन्न है, प्रयोग समान है।

(१५०३) गण्डमालाकण्डनरसः

(वृ.नि.र.;र.चं.;यो.र.।गण्ड., वृ.यो.त.।त.१०९)

कर्षसूतं शुद्धभस्म गन्धकं त्वर्धमुत्तमम् ।
सार्धकर्षं ताम्रभस्म मृतं किट्टत्रिकर्षकम् ॥
व्योषं पट्कर्षतुलितमक्षार्धं सैन्धवं स्मृतम् ।
काञ्चनारत्वचश्चूर्णं पलत्रयमितं क्षिपेत् ॥
पलत्रयं गुग्गुलोश्च शुद्धस्य समुपाहरेत् ॥
एतद्युक्त्या तु संमेल्य सुरभिसर्पिषा दृढम् ॥
गण्डमालाकण्डनोयं रसो मापत्रयात्मकः ।
भुक्तो निहन्ति गण्डानि गण्डमालाञ्च दारुणाम्॥

शुद्ध पारद १ कर्ष (१। तो०), शुद्ध गन्धक आधाकर्ष, ताम्रभस्म १॥ कर्ष, मण्डूरभस्म ३ कर्ष, सोंठ, मिर्च, पीपल २-२ कर्ष, सेंधानमक आधा कर्ष, कचनारकी छालका चूर्ण ३ पल (१५ तोले) और शुद्ध गूगल ३ पल लेकर प्रथम पारे और गन्धकको घोटकर कज्जली बना लीजिए पश्चात अन्य औषधें मिलाकर गायके घीमें भलीभांति घोटिए।

इस 'गण्डमाला कण्डन' रसको ३ माशेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे गण्डमालाकी गांठ नष्ट होती हैं।

(अनुपान=कचनारकी छालका काथ।)

(१५०४) गदमदनदहनो रसः

(वृ. नि. र.। शूल.)

नागं वङ्गं सुताम्रं दरदमनः
शिला तुत्थताम्राभ्रगन्धम् ।
भस्म स्यात्स्वर्णतुल्यं रसक-
मपि रविक्षारघृष्टं सुगोप्यम् ॥
कृत्वा तत्काथ यन्त्रे लवण-
विरचिते भावयेदार्द्रकाद्भिः ।
वासानिर्गुण्डिकाद्भिः सुरस-
मगधया सेवनियः क्रमेण ॥
पार्श्वे शूलाग्निमान्द्ये स्वरुचि-
समुदिते ओषधं सन्निपाते ।
हृद्रोगे गुल्ममेहे कफप-
वनजयते सर्वरोगे ज्वरेपि ॥
देया भक्त्या रसेन्द्रस्त्रिभुवन-
रचितो भोगिलोकप्रसिद्धो ।
नागानां वल्लभोऽयं गदमद -
दहनो रक्तपित्तप्रहन्ता ॥

सीसाभस्म, वंग (रांग) भस्म, ताम्र भस्म, शुद्धहिंगुल, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण भस्म और खपरिया भस्म समान भाग लेकर आकके क्षारमें घोटकर एक गोला बना लीजिए और फिर उसे ऊपर नीचे सेंधानमक रखकर दो शरावोमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् निकालकर अद्रक, वासा और संभाळूके रसमें एक एक दिन घोट लीजिए।

इसे तुलसीके रस और पीपलके चूर्णके साथ सेवन करनेसे पसलीका शूल, अग्निमांद्य, अरुचि, सन्निपात, हृद्रोग, गुल्म, प्रमेह, कफवातविकार, ज्वर और रक्तपित्त रोग नष्ट होता है।

(१५०५) गदमुरारि रसः [१]

[इच्छाभेदी] (र. सा. सं.। ज्वर.)

रसवलिगगनार्कं शुद्धतालं विपञ्च ।
त्रिफलात्रिकटुकमेतत् टङ्कणं भृङ्गमेभिः ॥
सममिह जयपालोद्भूतचूर्णं विमर्द्य ।
द्विनिशमनिशमेतद्भृङ्गराजोत्थवारा ॥

भवति गदमुरारिः स्वेच्छया भेदकोयम् ।
हरति सकल रोगान् सन्निपातानशेषान् ।।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मीठा तेलिया, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), सुहागेकी खील और दालचीनी १–१भाग तथा शुद्ध जमालगोटेका चूर्ण इन सब ओषधियोंके बराबर लेकर प्रथम पारे गन्धकको घोटकर कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर दो दिन तक निरन्तर भांगरेके रसमें घोटिये।

इस 'गदमुरारि रस' से यथेच्छ विरेचन हो कर सन्निपात और अन्य समस्त रोग नष्ट होते हैं।

(सेवन विधिः—प्रातःकाल १ रत्तीसे २ रत्ती तक शीतल जलके साथ खाएं और बारबार शीतल जल पीते रहें। जब दस्त बन्द करना चाहें तो मिश्रीका शर्बत पीलें।

(पथ्य—घृतयुक्त भात।)

(१५०६) गदमुरारि रसः [२]

(रसे. सा. सं.। ज्वर.)

रसबलिशिललोहताम्राणि तुल्या-
न्यथ सदरदनागं भागमेतत् प्रदिष्टम् ।
भवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जाद्वयं वै
क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम् ।।

शुद्ध पारा, गन्धक, मनसिल, लोह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) और नाग (सीसा) भस्म, समान भाग लेकर (अद्रकके रसमें) घोटकर २–२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

यह "गदमुरारि" रस प्रबल आमज्वरको भी एकही दिनमें नष्ट कर देता है।

(१५०७) गदमुरारि रसः [३]

(र. रा. सु.। उ. ख. ज्व.)

हिङ्गुलश्च विषं व्योषं टङ्कणं नागराऽभया।
जयपाल समायुक्तं सद्यो ज्वरविनाशनम् ।।

शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), सुहागेकी खील, सोंठका चूर्ण, हर्रेका चूर्ण और शुद्ध जमालगोटा समान भाग लेकर (पानीसे पीसकर २–२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।)

इससे ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(से. वि.—प्रातःकाल १ गोली शीतल जलसे खाएं।)

(१५०८) गदमुरारि रसः [४]

(वृ.नि.र., र.का.धे.। ज्व.चि., र.चि.म.। स्त. ११)

रसबलिफणिलोहव्योम[1]ताम्राणि तुल्यान्य-
थरसदल[2]भागो वत्सनागः[3] प्रदिष्टः ।
भवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जार्द्धवारों[4]–
क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम् ।।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नाग (सीसा)भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म १–१ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर भली भांति घोट लीजिए।

---

१ व्योषेति रसकामधेनौ। २ बलि र. का. धे.। ३ नागएतत्प्रदिष्टमिति रसचिन्तामणौ कामधेनौ च। ४ गुञ्जार्द्धवारेति रसचिन्तामणौ।

इसे अद्रकके रसके साथ १ रत्तीकी मात्रानुसार देनेसे प्रबल आमज्वर एकही दिनमें नष्ट हो जाता है।

(१५०९) गन्धककज्जलीविधिः

(र. चं.; र. सा. सं.; भै. र.। ज्वर.)

कण्टकारिः सिन्धुवारस्तथा नाटकरञ्जकम्।
अमीषां रसमादाय कृत्वा खर्परखण्डके॥
प्रक्षिप्य गन्धकं तत्र ज्वालां मृद्वग्निना ददेत्।
गन्धके स्नेहतापन्ने पारदं तत्समं क्षिपेत्॥
मिश्रीकृत्य ततो द्वाभ्यां द्रवं तमवतारयेत्।
आमर्दयेत् तथा तं तु यथास्यात्कज्जलप्रभम्॥
ततस्तु रक्तिकामस्य जीरकस्य च माषकम्।
माषैकं लवणस्यापि पर्णे कृत्वा प्रदापयेत्॥
ज्वरे त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिबेदनु।
छर्द्यां शर्करया दद्यात् सामे दद्यात्तथा गुडम्॥
क्षये च छागदुग्धं स्यादनुपानं प्रयोजितम्।
रक्तातिसारे कुटजमूलवल्कलजं रसम्॥
रक्तक्षये तथा दद्यादुदुम्बरभवं रसम्।
सर्वव्याधिहरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः॥
आयुर्वृद्धिकरश्चायं मृतं चापि प्रबोधयेत्॥

कटेली, संभालू और नाटे करञ्जका स्वरस बराबर बराबर लेकर एक मिट्टीके ठीकरेमें भरकर धीमी अग्नि पर चढ़ा दीजिए और साथही उसमें शुद्ध गन्धकका चूर्ण भी मिला दीजिए। जब गन्धक पिघल जाय तो उसमें उसके (गन्धकके) बराबर पारा डालकर अच्छी तरह मिला दीजिए और फिर नीचे उतारकर खरलमें डालकर इतना घोटिये कि वह घुटते घुटते कज्जलके समान हो जाय। इसीका नाम गन्धककज्जली है।

एक रत्ती यह कज्जली १ माषा ज़ीरके चूर्ण और १ मापा सेधानमकमें मिलाकर नागरवेलके पानके साथ उष्ण जलानुपानसे सेवन करनेसे घोर सन्निपातज्वर नष्ट होता है।

इसे छर्दि (वमन) में शर्करा (खांड)के साथ, आममें गुड़के साथ, क्षयमें बकरीके दूधके साथ, रक्तातिसारमे कुड़ेकी छालके क्वाथके साथ और रक्तक्षयमें गूलरके रसके साथ सेवन करना चाहिए।

यह 'गन्धककज्जली' सर्वव्याधिनाशक और आयुवर्द्धक है।

(१५१०) गन्धककल्पः [१]

(वं. से.। रसा.; आ. प्र.। अ. २)

चूर्णीकृत्य पलानि पञ्च
नितरां गन्धाश्मनो यत्न-
स्तच्चूर्णं त्रिगुणो च मार्कव-
रसे छायाविशुष्कीकृतम्।
पथ्याचूर्णमथो तथा मधु
घृतं प्रत्येकमेकं पलम्,
वृद्धो यौवनमेति प्रास-
युगलं खादेन्नरः प्रत्यहम्॥

५ पल शुद्ध गन्धक चूर्णमें १५ पल भांगरेका रस मिलाकर छायामें सुखा लीजिये। तत्पश्चात् इसमें १-१ पल हर्रका चूर्ण और घृत तथा शहद मिला दीजिए।

इसमेंसे प्रतिदिन यथोचित मात्रानुसार प्रातः सायं सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य भी युवावस्थाको प्राप्त हो जाता है।

मात्रा=१ माशा। अनुपान=दूध।

(१५११) गन्धककल्पः[२] (आ.प्र.। अ.२)

इत्थं विशुद्धं त्रिफलाज्यभृङ्ग-
मध्वन्वितः शाणमितो हि लीढः।
गृध्राक्षितुल्यं कुरुतेऽक्षियुग्मं
करोति रोगोज्झितदीर्घमायुः॥
(अत्र पथ्यं तु दुग्धोदनम्)

शुद्ध गन्धक, त्रिफलाचूर्ण, घृत, भांगरा और शहद बराबर बराबर मिलाकर प्रतिदिन ४माशेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे दृष्टि गृध्रदृष्टिके समान तीव्र हो जाती है तथा रोगरहित दीर्घायु प्राप्त होती है।

पथ्य—दूधभात।

(१५१२) गन्धककल्पः[३] (आ.प्र.। अ.२)

शुद्धो गन्धो निष्कमात्रसदुग्धः
सेव्यो मासं शौर्यवीर्यप्रवृद्धेः।
षण्मासात्स्यात्सर्वरोगप्रणाशो
दिव्या दृष्टिर्दीर्घमायुः सुरूपम्॥

४ माशेकी मात्रानुसार शुद्ध गन्धकको दूधके साथ १ मास पर्यन्त सेवन करनेसे शौर्य, वीर्यकी वृद्धि होती है, तथा छ मास पर्यन्त सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट होकर दिव्यदृष्टि, दीर्घायु और सुरूपकी प्राप्ति होती है।

(१५१३) गन्धककल्पः [४] (आ.प्र.।अ.२)

गन्धकस्य पलं चैकं रसस्यार्धपलं तथा
कुमारीरससंघृष्टं दिनैकं गोलकी कृतम्।
अन्धमूषाधृतं ध्मातं लेहयेन्मधुसर्पिषा
मासमात्रप्रयोगेण जरादारिद्र्यनाशनम्॥

शुद्ध गन्धक १ पल और शुद्ध पारा आधा पल लेकर घोटकर कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसे १ दिन पर्यन्त घी कुमारके रसमें घोटकर गोला बनाकर सूख जाने पर अन्धमूषामें बन्द करके पुट लगा दीजिए; और स्वांग शीतल होने पर निकालकर सेवन कीजिए।

इसे १ मास पर्यन्त सेवन करनेसे जरा (वार्द्धक्य) नष्ट हो जाती है।

(१५१४) गन्धककल्पः [५] (आ.प्र.।अ.२)

द्विनिष्कप्रमितो गन्धः पीतस्तैलेन शोधितः।
पश्चान्मरिचतैलाभ्यामपामार्गजलेन च॥
पेषयित्वा वलिः सर्वदेहे लिप्तः प्रयत्नतः।
घर्मे तिष्ठेत्ततो रोगी मध्याह्ने तक्रभक्तकम्॥
भुञ्जीत रात्रौ सेवेत वह्निं प्रातः समुत्थितः।
महिषीच्छगणैर्देहं संलिप्य स्नानमाचरेत्॥
शीतोदकेन पामादिखर्जूकुष्ठं प्रशाम्यति॥

२ निष्क (८ माशे) गन्धकको तेलके साथ प्रातःकाल पिलाकर समस्त देह पर गन्धक और मरिचके चूर्ण को चिरचिटेके क्वाथमें घोटकर और तैलमें मिलाकर मालिश करके रोगीको धूपमें बिठला दीजिए और मध्याह्नमें तक्रभात खिलाइये। तत्पश्चात् रात्रिको अग्निसे तपाकर प्रातःकाल समस्त शरीरपर भैंसके गोबरकी मालिश कराके शीतल जलसे स्नान कराइये।

इस प्रयोगसे पामा और खुजली तथा कुष्ठ रोग नष्ट होता है।

(१५१५) गन्धकगन्धनाशनप्रकारः

(आ. प्र.। अ. ६)

विचूर्ण्य गन्धकं क्षीरे घनीभावावधिं पचेत्।
ततः सूर्यावर्त्तरसं पुनर्दत्वा पचेच्छनैः॥

पश्चाच्च पातयेत् प्राज्ञो जले त्रैफलसम्भवे।
जहाति गन्धको गन्धं निजं नास्तीह संशयः॥

गन्धकके चूर्णको (८ गुने) दूधमें इतना पकाएं कि वह गाढा हो जाय, फिर उसमें सूर्यावर्त (हुलहुल)का रस डालकर धीरेधीरे पकाएं और गाढा होनेपर त्रिफलाके क्राथमें डालदें।

इस क्रियासे गन्धककी गन्ध नष्ट होजाती है।

(१५१६) गन्धकगन्धहरणम्

(रसें. चि. मं. । अ. ५)

देवदाल्यम्लपर्णी वा नागरं वाथ दाडिमम्।
मातुलुङ्गं यथालाभं द्रवमेकस्य वा हरेत्॥
गन्धकस्य तु पादांशं टङ्कणद्रवसंयुतम्।
अनयोर्गन्धकं भाव्यं त्रिभिर्वारं ततः पुनः॥
धत्तूरतुलसीकृष्णालशुनं देवदालिका।
शिग्रुमूलं काकमाची कर्पूरं शङ्खिनीद्वयम्॥
कृष्णागुरुश्च कस्तूरी वन्ध्याकर्कोटकी समम्।
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा क्षिपेदेरण्डतैलके॥
अनेन लोहपात्रस्थं भावयेत् पूर्वगन्धकम्।
त्रिवारं क्षौद्रतुल्यस्तु जायते गन्धवर्जितः॥

४ भाग गन्धक और १ भाग सुहागेको एकत्र करके देवदाली (विण्डाल डोढा), अम्लपर्णी, नारङ्गी, अनार और बिजौरे नींबूमेंसे किसी एकके रसकी ३ भावनाएं दीजिए, तत्पश्चात् समान भाग धतूरा (पश्चाङ्ग) तुलसी, पीपल, ल्हसन, देवदाली, सहंजनेकी जड, मकोय, कपूर, दोनों प्रकारकी शङ्खाहोली, काला अगर, कस्तूरी और बांझ ककोड़े को बिजौरे नींबूके रसमें घोटकर अरण्डीके तेलमें मिलाकर इससे उपरोक्त गन्धकको लोहेके पात्रमें तीन भावना दीजिए। इस क्रियासे गन्धक गन्ध रहित हो जाता है।

(१५१७) गन्धकगुणाः (भा. प्र. । ख. १)

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः।
पित्तलः कटुकपाके कण्डूवीसर्पजन्तुजित्॥
हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान् रसायनम्॥

गन्धक कटु, तिक्त, उष्ण वीर्य, कषाय, सर, पित्तवर्द्धक, पाकमें कटु और खुजली, विसर्प, कृमि, कुष्ठ, क्षय, प्लीह (तिल्ली) और कफवात नाशक तथा रसायन है।

(१५१८) गन्धकग्रासविधिः

(र. चि. मं. । स्तव. १)

सामुद्रकं द्विखण्डं स्यात्तिलखण्डस्य मध्यगम्।
कुर्यात्कुण्डलिकां प्राज्ञो मृन्मयां तां द्रढायसीम्॥
तस्यां च गन्धकं दध्यात्स्थाने स्थाने च चूर्णितम्।
तदधः पारदं दध्याद् द्वितीयं खण्डमूर्ध्वगम्॥
कुर्याच्च घण्टिकायुक्तं द्वयमेकत्र योजयेत्।
चुल्लिकायां तदा दध्यात्स रसं तं समुन्नतम्॥
संहतं मुद्रितं गाढं कचलिप्तं महोत्तमम्।
वह्ने सहं वलिं दत्वा पश्चाच्चाति सुभक्तितः॥
गुरुपूजादिकं कुर्यात्तथा च रसपूजनम्।
अधोवह्निर्विधातव्यो मध्ये चोर्ध्वे समुद्गतः॥
गन्धको जार्यते शुद्धो यावच्छक्यस्तु सत्वरम्।
रसस्तं ग्रसते गन्धं शीघ्रमेव न संशयः॥
अनेन विधिना सूतो गन्धक ग्रसते नवम्॥

समुद्र नमकके दो टुकड़ोंको खोखरा करके दो कटोरीसी बना लीजिए और उनको तिलकी पिट्ठीके बीचमें रखकर उसके ऊपर मिट्टीका लेप कर दीजिए। तत्पश्चात् उनमेंसे एक कटोरीमें

नीचे ऊपर शुद्ध गन्धकका चूर्ण बिछाकर बीचमें पारा रख दीजिए। और फिर दूसरी कटोरी उसके ऊपर उल्टी रखकर दोनोंके मुख मिलाकर कपर-मिट्टी करके भली भांति बन्द कर दीजिए और उसके ऊपर काचका पोत चढाकर अग्नि सहनशील बना लीजिए।

अब बलि देकर और गुरु तथा पारद पूजन करके इस सम्पुटको अग्निपर चढा दीजिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि कपरमिट्टी आदि करते समय या अग्निपर चढाते समय सम्पुट उल्टा न हो जाय। इस क्रियासे पारदमें शीघ्रातिशीघ्र गन्धक जारण हो जाता है और पारदमें पुनः नवीन गन्धकभक्षणकी शक्ति आ जाती है।

(१५१९) गन्धकजारणम् [१] (यो. र)

मृतकुण्डे निक्षिपेन्नीरं तन्मध्ये च शरावकम्।
मृतकुण्डे च पिधानाभं मध्ये मेखलया युतम्॥
क्षिप्त्वा च मेखलामध्ये संशुद्धं रसमुत्तमम्।
रसस्योपरि गन्धस्य रजो दद्यात्समांशकम्॥
तस्योपरि शरावश्च भस्ममुद्रां प्रदापयेत्।
तस्योपरि पुटं दद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः॥
एवं पुनः पुनर्गन्धं षड्गुणं जीर्यते बुधैः।
गन्धे जीर्णे भवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मसु॥

मिट्टीके कुण्डेमें पानी भरकर उसमें ढकनकी भांति एक ऐसा शराव रख दीजिए कि जिसमें मेखला (कंगूरा=चारो ओर उभरा हुवा किनारा) हो। पानी इस शरावके किनारोके बराबर होना चाहिए और सावधानी रखनी चाहिए कि उसके अन्दर पानी न गिरने पावे। अब उस शरावमें शुद्ध पारद रखकर उसके ऊपर समान भाग गन्धक चूर्ण रखकर एक दूसरे शरावेसे ढककर सन्धिको उपलोंकी राखसे बन्द कर दीजिए। और फिर उसके ऊपर ४ अरने उपले (कण्डे) रखकर उनमें अग्नि लगा दीजिए। स्वांग शीतल होनेपर पुनः पारदके समान गन्धक डालकर इसी प्रकार पुट लगाइये। इस प्रकार षड्गुण गन्धक जारण करनेसे पारद तीक्ष्णाग्नि हो जाता है अर्थात् फिर वह स्वर्णादि धातुओंको भलीभांति ग्रहण (अपनेमें लय) कर सकता है।

वि. सू.—ऊपरवाला शराव नीचेके शरावकी मेखलापर जम जाना चाहिए कि जिससे उक्त मेखलाके भीतरे हवा जानेको स्थान न रह जाय।

(१५२०) गन्धकजारणम् [२] (यो. र.)

तप्तखल्वेरसंक्षिप्त्वा अधश्चुल्ल्यास्तुषाग्निभिः।
स्तोकं स्तोकं क्षिपेद्गन्धमेवं वै षड्गुणं चरेत्॥

चूल्हेमें तुषाग्नि (धान इत्यादिकी भूसीकी आग) जलाकर उसपर खरल रखकर उसमें पारा डाल दीजिए, जब खरल गर्म हो जाय तो उसमें थोड़ा थोड़ा गन्धकका चूर्ण डालकर घोटिए यहां तक कि पारदसे छः गुना गन्धक जल जाय।

(१५२१) गन्धकतैलपातनम्

(र. प्र. सु. । अ. ६; आ. प्र. । अ. २)

कलांशव्योषसंयुक्तं शुद्धगन्धकचूर्णकम्।
वस्त्रे वितस्तिमात्रे तु गन्धचूर्णं सतैलकम्॥
विलिप्य वेष्टयित्वा च वर्त्तिं सूत्रेण वेष्टयेत्।
धृत्वा संदशतो वर्त्तिमध्यं प्रज्वालयेच्च ताम्॥
विद्रुतः पतते गन्धो बिन्दुशः काचभाजने।
तां द्रुतिं प्रक्षिपेत्पत्रे नागवल्ल्यास्त्रिबिन्दुकाम्॥

रसं वल्लमितं तत्र दत्त्वाऽङ्गुल्या विमर्दयेत् ।
तत्सर्वं भक्षयेत्पश्चाद्गोदुग्धं चानु संपिबेत् ॥
कामस्य दीप्तिं कुरुते क्षयपाण्डुविनाशनम् ।
ग्रहणीं नाशयेद्दुष्टां शूलातिश्वासकासकम् ॥
आमाजीर्णं प्रशमेल्लघुत्वं च प्रजायते ।
गन्धकस्य गुणान्वक्तुं शक्तः कः शम्भुना विना ॥

शुद्ध गन्धकके चूर्णमें १६ वां भाग त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण मिलाकर तैलमें घोटकर एक बालिश्त चौड़े कपड़े पर उसका लेप करके बत्ती बना लीजिए और फिर उसके ऊपर कच्चे सूतका डोरा लपेट दीजिए। अब इस बत्तीको चिमटेसे पकड़ कर जलाइये और उल्टी लटकाए रहिए। इस प्रकार जलानेसे उससे जो तैल टपके उसे कांच के बरतन मे इकट्ठा कर लीजिए।

इस तेलकी २ बूंद पानके ऊपर डालकर उस पर २ रत्ती× शुद्ध पारद डालकर उंगलीसे मर्दन करके खा लीजिए, और पश्चात् गोदुग्ध पीजिए।

इस प्रयोगसे कामशक्तिकी वृद्धि होती है। क्षय, पाण्डु, दुष्टग्रहणी, शूल, कास, श्वास और आमाजीर्णका नाश होता है तथा शरीर हल्का हो जाता है।

गन्धकके गुणोंका वर्णन करनेमें शङ्करके अतिरिक्त अन्य कोई समर्थ नहीं हो सकता।

(१५२२) गन्धकदोषाः (भा. प्र. । खं. १)

अशुद्धो गन्धकः कुर्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् ।
हन्ति वीर्यबलं रूपं तस्माच्छुद्धः प्रयुज्यते ॥

× शुद्ध पारदके स्थानमें २ रत्ती रससिन्दूर डालना उचित प्रतीत होता है।

क्योंकि अशुद्ध गन्धक कुष्ठ, पित्तरोग और भ्रम उत्पन्न करता तथा वीर्य, बल और रूपका नाश करता है अतएव शुद्ध गन्धकही प्रयुक्त किया जाता है।

(१५२३) गन्धकद्रुतिः (वं. से. । रसा.)

पलमिह गन्धकचूर्णं राजिकातःकर्षकलितमादाय
सिततरवसननिरुद्धं हविषा प्लुतशोषितं वह्नौ ॥
तद्द्रवमाज्ये मग्नं त्रिकटुकचूर्णैककर्षसंयुक्तम् ।
मिलितैकशाणमात्रं प्रातः खाद्यं नियतपर्णम् ॥
वर्णबलयुक्तमेतज्जनयति कुरुते देहसुखम् ।
सततभ्यासवशादतिजनयति सुधाधामलावण्यम् ॥

५ तोले शुद्ध गन्धकके चूर्ण और १। तोला राइको पीसकर एक अच्छे सफ़ेद कपड़ेमें लपेटकर बत्ती बना लीजिए और इसे घीमें भिगोकर चिमटेसे पकड़कर जलाइये और उल्टी लटकाए रखिए; इससे जो घृत मिश्रित द्रुत (पतला) गन्धक निकले उसमें १। तोला त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण मिला लीजिए।

इसमेंसे प्रतिदिन ४ माशेकी मात्रानुसार पानमें डालकर निरन्तर सेवन करनेसे बल, वर्ण और सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

(व्यवहारिक मात्रा=५-६ बूंद।)

(१५२४) गन्धकपिष्टिरसः (रसें.मं.। अ.३)

गन्धकेन समायुक्तां कृत्वा सूतस्य पिष्टिकाम् ।
युक्त्या च ताम्रपात्रेण हिक्कां पञ्चविधाञ्जयेत् ॥

ताम्र पात्रमें समान भाग शुद्ध पारद और गन्धकको घोटकर कज्जलीके समान बना लीजिए।

इसके सेवनसे पांचों प्रकारकी हिक्का (हिचकी) नष्ट होती है।

(मात्रा १–२ रत्ती, शहदमें मिलाकर चटाएं।)

(१५२५) गन्धकप्रयोगः [१]

(र. का. धे. । प्रमे. २९)

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा प्रमेहजित् ।
जयन्त्या वा जयायुक्तं हन्ति मेहं महाद्भुतम् ॥

शुद्ध गन्धक चूर्ण को (चार गुने) गुड़में मिलाकर जया या जयन्तीके रसके साथ सेवन करनेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है।

नोट—१। तोलेकी ४ मात्रा बनानी चाहियें।

(१५२६) गन्धकप्रयोगः [२] (र.का.धे.।कु.४०)

गन्धकं तिलतैलेन निष्कमात्रं सदा पिबेत् ।
क्षीरशाल्यन्नभोजीस्यात्पामां हन्ति महाद्भुतम् ॥

दूधभातका आहार करते हुवे नित्य प्रति शुद्ध गन्धकके चूर्ण को तिलके तैलमें मिलाकर पीनेसे पामा (खुजली) अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

(मात्रा=गन्धक २–४ रत्ती, तैल ६ माशे। प्रातःसायं सेवन करें।)

(१५२७) गन्धकप्रयोगः [३]

(र. का. धे. । कु. ४०)

गन्धकार्धं पलं शुद्धं पीतं दुग्धेन सप्तशः ।
दुग्धान्नभोजिनो हन्ति कण्डूपामाविचर्चिकाः॥

आधा पल (२॥ तोले) शुद्ध गन्धकको दूधके साथ सेवन करने और दूधभातका आहार करनेसे सात दिनमें खुजली, खाज और विचर्चिका नष्ट हो जाती है।

(१५२८) गन्धकभेदाः (यो. र.)

चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः।
रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने ॥
व्रणादि लेपने श्वेतः श्रेष्ठः कृष्णसुदुर्लभः ॥

गन्धक ४ प्रकारका होता है–(१) लाल, (२) पीला, (३) सफेद और (४) काला।

लाल गन्धक हेम क्रियामें, पीला रसायनमें, और सफेद व्रणादि पर लेप करनेके लिए प्रयुक्त होता है और काला गन्धक प्राप्त होनाही दुर्लभ है।

(१५२९) गन्धकयोगः [१]

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयः पिबेत् ।
विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः पिटिका अपि ॥

समान भाग शुद्ध गन्धक और गुड़ मिलाकर नित्य प्रति दूधके साथ सेवन करनेसे २० प्रकारके प्रमेह और प्रमेह पिड़िका नष्ट होती है।

(१५३०) गन्धकयोगः [२] (र.प्र.सु.।अ.६)

संशुद्धगन्धकं चैव तैलेन सह पेषयेत् ।
अपामार्गक्षार तोयैस्तैलेन मरिचेन च ॥
विलिप्य सकलं देहं तिष्ठेत्सूर्यातपेषु च ।
भोजयेत्तक्रभक्तश्च तृतीये प्रहरे खलु ॥
वह्निना स्वेदयेद्रात्रौ प्रातरुत्थाय मर्दयेत् ।
महिषस्य पुरीषेण स्नायाच्छीतेन वारिणा ॥
गन्धतैलं ततोऽभ्यज्य पश्चात्कोष्णेन वारिणा ।
स्नानं कुर्यादुषस्येवं कण्डूः पामा च नश्यति ॥
दृष्टप्रत्यय योगोऽयं कथितोऽत्र मया खलु ।
नाशयेच्चिरकालोत्थः कुष्ठपामाविचर्चिकाः ॥

तेलमें पिसा हुआ शुद्ध गंधक खिलाएं और चिरचिटेके क्षारके पानीमें गंधक, तेल और स्याह मिर्चका चूर्ण मिलाकर उसे रोगीके समस्त शरीरमें मलकर धूपमें निठला दीजिए। तीसरे पहर तक्र भात खिलाइये और रात्रिको अग्नि तापनेके लिए अ[illegible]। फिर दूसरे दिन प्रातःकाल शरीर

को भैंसके गोबरसे रगड़कर शीतल जलसे स्नान कराइये। तत्पश्चात् शरीर पर गन्धतैल (अथवा गन्धक तैल) की मालिश कराके किञ्चिदुष्ण जलसे स्नान करा दीजिए।

इस प्रयोगसे पुरानी खुजली, पामा, कुष्ठ और विचर्चिका नष्ट होती है।

यह प्रयोग मेरा अपना (प्रयोग लेखकका) अनुभूत है।

(१५३१) गन्धकयोगः [३]

(वृं. मा.; ग. नि.। कुष्ठा.)

पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तं पामनो यः पलार्धम्।
त्रिदिनतदनुषिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्त्या कामयुक्तो मनुष्यः॥

प्रतिदिन २॥ तोले शुद्ध गन्धक चूर्णको कटु तैलमें मिलाकर सूर्य किरणोंसे भलीभांति तप्त करके पीने और दुग्धाहार करनेसे ३ दिनमें पामा नष्ट होकर शरीर स्वर्णसदृश कान्तिवान हो जाता है तथा काम वृद्धि होती है।

(व्यवहारिक मात्रा—१ माशेसे ३ माशे तक)

गन्धकरसपर्पटी (वं. से.। रसा.)

रसपर्पटी देखिये।

(१५३२) गन्धकरसायनम् [१]

(वृ॰ नि. र., वै. र.। शू. रो.)

पलैकं त्रिफलाचूर्णं पलार्धं गन्धकस्य तु।
लोहभस्म तु कर्षैकं सर्वं संचूर्ण्य मिश्रयेत्॥
कर्षार्द्धं मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेत्सर्वशूलनुत्।
वातविस्फोटकान्हन्ति सेवनात्तु त्रिमासतः॥
गताः केशाः पुनर्यान्ति गन्धकस्य रसायनम्॥

१ पल (५ तोले) त्रिफलाचूर्ण) आधा पल शुद्ध गन्धक चूर्ण और १ कर्ष (१। तोला) लोह भस्मको एकत्र मिलाकर खरल कर लीजिए।

इसे आधे कर्षकी मात्रानुसार शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूल और वातज विस्फोटक नष्ट हो जाते हैं। तीन मास पर्यन्त निरन्तर सेवन करनेसे नष्ट केश पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

(नोट—घी और शहद बराबर न होने चाहिएं। आधा कर्ष मात्रा दिन भरमें ३ बार करके खानी चाहिए, एकवारमें नहीं।)

(१५३३) गन्धकरसायनम् [२]

(आ. प्र.। अ. २; वृ. नि. र.। वा. व्या.; वै. र.। वाजी., वृ. यो. त.। त. ११२, यो.र.रसा.)

शुद्धो बलिर्गोपयसा त्रिवारं
ततश्चतुर्जातकगुडूचिकाद्भिः।
पथ्याक्षधात्र्यौषधभृङ्गनीरै-
र्भाव्योऽष्टवारं पृथगार्द्रकेण॥
सिद्धे सितां योजय तुल्यभागां
रसायनं गन्धकसंज्ञितं स्यात्।
धातुक्षयं मेहगणाग्निमांद्यं
शूलं तथा कोष्ठगतांश्च रोगान्॥
कुष्ठान्यथाष्टादशरोगसंघा-
न्निवारयत्येव च राजयोगम्।
कर्षोन्मिते सेवित एति मर्त्यो
वीर्यञ्च पुष्टिं बलमग्निदीप्तिम्॥

वमनैः रेचनैः पूर्वं देहशुद्धिं समाचरेत्।
लवणाम्लानि शाकानि द्विदलानि तथैव च॥
स्त्रियश्चारोहणं यानं सदा चैतानि वर्जयेत्॥

शुद्ध गन्धकको गोदुग्धकी ३ भावना तथा दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची, गिलोय, हैड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, भांगरा और अद्रकमेंसे प्रत्येकके रस या क्काथको ८–८ भावना देकर उसमें समान भाग मिश्री मिला लीजिए।

इस "गन्धक रसायन" को वमन विरेचन-द्वारा देहशुद्धि करके प्रतिदिन १। तोलेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे धातु क्षय, प्रमेह, अग्निमांद्य, शूल, उदररोग और अठारह प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं।

इसके सेवन कालमें लवण, अम्ल, शाक, सर्व प्रकारकी दालें, स्त्रीप्रसंग और सवारीका परित्याग करना चाहिए।

(व्यव. मा.=२माशा, प्रातःसायं, दूधके साथ।)

(१५३४) गन्धकरसायनम् [३]

(वृ. यो. त. । त. ११८)

गन्धं पलशतं ग्राह्यं सूक्ष्मचूर्णञ्च कारयेत् ॥२८
भाण्डगर्भे क्षीरपूर्णे तन्मुखे वस्त्रबन्धनम्।
गन्धं तस्योपरि क्षिप्त्वा ततो भाण्डमधोमुखम् ॥
तत्सन्धिबन्धनं कृत्वा तदूर्ध्वे वह्निदीपनम्।
यामार्धं पुटसंयुक्तं स्वाङ्गशीतलमाहरेत् ॥३०
तद् गन्धं चूर्णितं कृत्वा अजाक्षीरेण भावयेत्।
इक्षुदण्डरसश्चैव अमृतामधुगोक्षुरम् ॥३१॥
बाराही मधुकं कुष्ठं भृङ्गराजं हरिप्रिया।
एकैकस्वरसेनैव भावयेद्दश वासरम् ॥३२॥
घर्मयेद्भावयेन्नित्यममृतीकरणं यथा।
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं लवङ्गं नागकेशरम् ॥३३
त्रिफलां पद्मकं बीजं समांशञ्च विनिक्षिपेत्।
शर्करा मधुसंयुक्तं माषमात्रं च सेवयेत् ॥३४
शाल्यन्नं च सगोधूमं घृतं क्षीरं सशर्करम्।
सेवयेन्नित्यं कृष्णां च बलीपलितनाशनम् ॥३५
जरां तु नाशयेत्पुंसां षण्ढत्वं वह्निमान्द्यताम्।
कुष्ठानाञ्च दशाष्टानां वाताशीतिं निवारणम् ॥३६
विंशतिं च प्रमेहाणाम् मूत्रकृच्छ्राणि षोडश।
व्रणराजं गण्डमालां गुदकीलं भगन्दरम् ॥३७
गुल्मप्लीहविकारघ्नं रजोदोषं हलीमकम्।
स्तम्भनं वृष्यमायुष्यं सर्वामयनिवारणम् ॥३८
शुक्रमेहादिदोषाणां नाशनं परमं मतम्।
देहं सुवर्णवर्णाभं दिव्यत्वं च न संशयः॥३९॥
सर्वभूतहितं गोप्यं गन्धकाख्यं रसायनम् ॥

मिट्टीके बरतनमें दूध भरकर उसके मुखपर एक कपड़ा बांध दीजिए और उस पर १०० पल (६। सेर) गन्धकका महीन चूर्ण बिछाकर उसके ऊपर दूसरा मृत्तिकापात्र उल्टा ढककर दोनोंकी सन्धिको भली भांति बन्द कर दीजिए और एक गढेमें रखकर ऊपरवाली हांडी पर आधा पहरतक आग जलाइये। गढा इतना गहरा होना चाहिए कि जिसमें नीचेकी हांड़ी किनारो तक आ जाय और उसके चारों ओर स्थान ख़ाली न रहे।

हाण्डीके स्वांग शीतल हो जाने पर गन्धक को पीस लीजिए और फिर उसे बकरीके दूध, ईखके रस, गिलोयके रस, मधु, गोखरु, बाराही-कन्द, मुलैठी, कूठ, भांगरा और तुलसीके स्व .में पृथक् पृथक् १०–१० दिन तक भावना दीजिए। (प्रतिदिन रस डालकर धूपमें सुखाते रहिए।)

तत्पश्चात् उसमें समान भाग पीपल, पीपलामूल, लौंग, नागकेसर, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला) और कमलबीज (कमलगट्टे) का चूर्ण मिला लीजिए।

रसं वल्लमितं तत्र दत्त्वाऽङ्गुल्या विमर्दयेत् ।
तत्सर्वं भक्षयेत्पश्चाद्गोदुग्धं चानु संपिवेत् ॥
कामस्य दीप्तिं कुरुते क्षयपाण्डुविनाशनम् ।
ग्रहणीं नाशयेद्दुष्टां शूलार्तिश्वासकासकम् ॥
आमाजीर्णं प्रशमेल्लघुत्वं च प्रजायते ।
गन्धकस्य गुणान्वक्तुं शक्तः कः शम्भुना विना ॥

शुद्ध गन्धकके चूर्णमें १६ वां भाग त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण मिलाकर तैलमें घोटकर एक वालिश्त चौड़े कपड़े पर उसका लेप करके वत्ती वना लीजिए और फिर उसके ऊपर कच्चे सूतका डोरा लपेट दीजिए। अव इस वत्तीको चिमटेसे पकड़ कर जलाइये और उल्टी लटकाए रहिए। इस प्रकार जलानेसे उससे जो तैल टपके उसे कांच के वरतन मे इकट्ठा कर लीजिए।

इस तेलकी ३ वूंद पानके ऊपर डालकर उस पर २ रत्ती× शुद्ध पारद डालकर उगलीसे मर्दन करके खा लीजिए, और पश्चात् गोदुग्ध पीजिए।

इस प्रयोगसे कामशक्तिकी वृद्धि होती है। क्षय, पाण्डु, दुष्टग्रहणी, शूल, कास, श्वास और आमाजीर्णका नाश होता है तथा शरीर हल्का हो जाता है।

गन्धकके गुणोका वर्णन करनेमें शङ्करके अतिरिक्त अन्य कोई समर्थ नहीं हो सकता।

(१५२२) गन्धकदोषाः (भा. प्र. । खं. १)

अशुद्धो गन्धकः कुर्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् ।
हन्ति वीर्यवलं रूपं तस्माच्छुद्धः प्रयुज्यते ॥

क्योकि अशुद्ध गन्धक कुष्ट, पित्तरोग और भ्रम उत्पन्न करता तथा वीर्य, वल और रूपका नाश करता है अतएव शुद्ध गन्धकही प्रयुक्त किया जाता है।

(१५२३) गन्धकद्रुतिः (वं. से. । रसा.)

पलमिह गन्धकचूर्णं राजिकातःकर्पकलितमादाय
सिततरवसननिरुद्धं हविषा प्लुतशोषितं वह्नौ ॥
तद्द्रवमाज्ये मग्नं त्रिकटुकचूर्णैककर्पसंयुक्तम् ।
मिलितैकशाणमात्रं प्रातः खाद्यं नियतपर्णम् ॥
वर्णवलयुक्तमेतज्जनयति कुरुते देहसुखम् ।
सतताभ्यासवशादतिजनयति सुधाधामलावण्यम् ॥

५ तोले शुद्ध गन्धकके चूर्ण और १। तोला राइको पीसकर एक अच्छे सफ़ेद कपड़ेमें लपेटकर वत्ती वना लीजिए और इसे घीमें भिगोकर चिमटेसे पकड़कर जलाइये और उल्टी लटकाए रखिए, इससे जो घृत मिश्रित द्रुत (पतला) गन्धक निकले उसमें १। तोला त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण मिला लीजिए।

इसमेंसे प्रतिदिन ४ माशेकी मात्रानुसार पानमें डालकर निरन्तर सेवन करनेसे वल, वर्ण और सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

(व्यवहारिक मात्रा=५–६ वूंद।)

(१५२४) गन्धकपिष्टिरसः (रसें.मं.। अ.३)

गन्धकेन समायुक्तां कृत्वा सूतस्य पिष्टिकाम् ।
युक्त्या च ताम्रपात्रेण हिक्कां पञ्चविधाञ्जयेत् ॥

ताम्र पात्रमें समान भाग शुद्ध पारद और गन्धकको घोटकर कज्जलीके समान वना लीजिए।

इसके सेवनसे पांचों प्रकारकी हिक्का (हिचकी) नष्ट होती है।

× शुद्ध पारदके स्थानमें २ रत्ती रससिन्दूर डालना उचित प्रतीत होता है।

(मात्रा १—२ रत्ती, शहदमें मिलाकर चटाएं।)

(१५२५) गन्धकप्रयोगः [१]

(र. का. धे. । प्रमे. २९)

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा प्रमेहजित् ।
जयन्त्या वा जयायुक्तं हन्ति मेहं महाद्भुतम् ॥

शुद्ध गन्धक चूर्ण को (चार गुने) गुड़में मिलाकर जया या जयन्तीके रसके साथ सेवन करनेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है।

नोट—१। तोलेकी ४ मात्रा बनानी चाहियें।

(१५२६)गन्धकप्रयोगः[२](र.का.धे.।कु.४०)

गन्धकं तिलतैलेन निष्कमात्रं सदा पिबेत् ।
क्षीरशाल्यन्नभोजीस्यात्पामां हन्ति महाद्भुतम् ॥

दूधभातका आहार करते हुवे नित्य प्रति शुद्ध गन्धकके चूर्ण को तिलके तैलमें मिलाकर पीनेसे पामा (खुजली) अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

(मात्रा—गन्धक २—४ रत्ती, तैल ६ माशे। प्रातःसायं सेवन करें।)

(१५२७) गन्धकप्रयोगः [३]

(र. का. धे. । कु. ४०)

गन्धकार्धं पलं शुद्धं पीतं दुग्धेन सप्तशः ।
दुग्धान्नभोजिनो हन्ति कण्डूपामाविचर्चिकाः॥

आधा पल (२॥ तोले) शुद्ध गन्धकको दूधके साथ सेवन करने और दूधभातका आहार करनेसे सात दिनमें खुजली, खाज और विचर्चिका नष्ट हो जाती है।

(१५२८) गन्धकभेदाः (यो. र.)

चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः।
रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने ॥
व्रणादि लेपने श्वेतः श्रेष्ठः कृष्णसुदुर्लभः ॥

गन्धक ४ प्रकारका होता है—(१) लाल, (२) पीला, (३) सफेद और (४) काला।

लाल गन्धक हेम क्रियामें, पीला रसायनमें, और सफेद व्रणादि पर लेप करनेके लिए प्रयुक्त होता है और काला गन्धक प्राप्त होनाही दुर्लभ है।

(१५२९) गन्धकयोगः [१]

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयः पिबेत् ।
विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः पिटिका अपि ॥

समान भाग शुद्ध गन्धक और गुड़ मिलाकर नित्य प्रति दूधके साथ सेवन करनेसे २० प्रकारके प्रमेह और प्रमेह पिड़िका नष्ट होती है।

(१५३०) गन्धकयोगः[२] (र.प्र.सु.।अ.६)

संशुद्धगन्धकं चैव तैलेन सह पेषयेत् ।
अपामार्गक्षार तोयैस्तैलेन मरिचेन च ॥
विलिप्य सकलं देहं तिष्ठेत्सूर्यातपेषु च ।
भोजयेत्तक्रभक्तश्च तृतीये प्रहरे खलु ॥
वह्निना स्वेदयेद्रात्रौ प्रातरुत्थाय मर्दयेत् ।
महिषस्य पुरीषेण स्नायाच्छीतेन वारिणा ॥
गन्धतैलं ततोऽभ्यज्य पश्चात्कोष्णेन वारिणा ।
स्नानं कुर्यादुषस्येवं कण्डूः पामा च नश्यति ॥
दृष्टप्रत्यय योगोऽयं कथितोऽत्र मया खलु ।
नाशयेच्चिरकालोत्थः कुष्ठपामाविचर्चिकाः ॥

तेलमें पिसा हुआ शुद्ध गंधक खिलाएं और चिरचिटेके क्षारके पानीमें गंधक, तेल और स्याह मिर्चका चूर्ण मिलाकर उसे रोगीके समस्त शरीरमें मलकर धूपमें निठला दीजिए। तीसरे पहर तक्र भात खिलाइये और रात्रिको अग्नि तापनेके लिए आज्ञा दीजिए। फिर दूसरे दिन प्रातःकाल शरीर

को भैंसके गोवरसे रगड़कर शीतल जलसे स्नान कराइये । तत्पश्चात् शरीर पर गन्धतैल (अथवा गन्धक तैल) की मालिश कराके किञ्चिदुष्ण जलसे स्नान करा दीजिए।

इस प्रयोगसे पुरानी खुजली, पामा, कुष्ठ और विचर्चिका नष्ट होती है।

यह प्रयोग मेरा अपना (प्रयोग लेखकका) अनुभूत है।

(१५३१) गन्धकयोगः [३]

(वृं. मा.; ग. नि. । कुष्ठा.)

पिवति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तं पामनो यः पलार्धम् ।
त्रिदिनतदनुषिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्त्या कामयुक्तो मनुष्यः ॥

प्रतिदिन २॥ तोले शुद्ध गन्धक चूर्णको कटु तैलमें मिलाकर सूर्य किरणोसे भलीभांति तप्त करके पीने और दुग्धाहार करनेसे ३ दिनमें पामा नष्ट होकर शरीर स्वर्णसदृश कान्तिवान हो जाता है तथा काम वृद्धि होती है।

(व्यवहारिक मात्रा=१ माशेसे ३ माशे तक)

गन्धकरसपर्पटी (वं. से. । रसा.)

रसपर्पटी देखिये।

(१५३२) गन्धकरसायनम् [१]

(वृ. नि. र., वै. र. । शू. रो.)

पलैकं त्रिफलाचूर्णं पलार्धं गन्धकस्य तु ।
लोहभस्म तु कर्षैकं सर्वं संचूर्ण्य मिश्रयेत् ॥
कर्षार्द्धं मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेत्सर्वशूलनुत् ।
वातविस्फोटकान्हन्ति सेवनात्तु त्रिमासतः ॥
गताः केशाः पुनर्यान्ति गन्धकस्य रसायनम् ॥

१ पल (५ तोले) त्रिफलाचूर्ण) आधा पल शुद्ध गन्धक चूर्ण और १ कर्ष (१। तोला) लोह भस्मको एकत्र मिलाकर खरल कर लीजिए।

इसे आधे कर्षकी मात्रानुसार शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूल और वातज विस्फोटक नष्ट हो जाते हैं। तीन मास पर्यन्त निरन्तर सेवन करनेसे नष्ट केश पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

(नोट—घी और शहद बराबर न होने चाहिएं। आधा कर्ष मात्रा दिन भरमें ३ वार करके खानी चाहिए, एकवारमें नहीं।)

(१५३३) गन्धकरसायनम् [२]

(आ. प्र. । अ. २; वृ. नि. र. । वा. व्या.; वै. र. । वाजी., वृ. यो. त. । त. ११२, यो.र.रसा.)

शुद्धो वलिर्गोपयसा त्रिवारं
ततश्चतुर्जातकगुडूचिकाद्भिः ।
पथ्याक्षधात्र्यौषधभृङ्गनीरै-
र्भाव्योऽष्टवारं पृथगार्द्रकेण ॥
सिद्धे सितां योजय तुल्यभागां
रसायनं गन्धकसंज्ञितं स्यात् ।
धातुक्षयं मेहगणाग्निमांद्यं
शूलं तथा कोष्ठगतांश्च रोगान् ॥
कुष्ठान्यथाष्टादशरोगसंघा-
न्निवारयत्येव च राजयोगम् ।
कर्षोन्मिते सेवित एति मर्त्यो
वीर्यञ्च पुष्टिं वलमग्निदीप्तिम् ॥
वमनैः रेचनैः पूर्वं देहशुद्धिं समाचरेत् ।
लवणाम्लानि शाकानि द्विदलानि तथैव च ॥
स्त्रियश्चारोहणं यानं सदा चैतानि वर्जयेत् ॥

शुद्ध गन्धकको गोदुग्धकी ३ भावना तथा दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची, गिलोय, हैड़, बहेड़ा, आमला, सोठ, भांगरा और अद्रकमेंसे प्रत्येकके रस या क्वाथको ८-८ भावना देकर उसमें समान भाग मिश्री मिला लीजिए।

इस "गन्धक रसायन" को वमन विरेचन-द्वारा देहशुद्धि करके प्रतिदिन १। तोलेकी मात्रा-नुसार सेवन करनेसे धातु क्षय, प्रमेह, अग्निमांद्य, शूल, उदररोग और अठारह प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं।

इसके सेवन कालमें लवण, अम्ल, शाक, सर्व प्रकारकी दालें, स्त्रीप्रसंग और सवारीका परि-त्याग करना चाहिए।

(व्यव. मा.=२माशा, प्रातःसायं, दूधके साथ।)

(१९३४) गन्धकरसायनम् [३]

(वृ. यो. त. । त. ११८)

गन्धं पलशतं ग्राह्यं सूक्ष्मचूर्णश्च कारयेत् ॥२८
भाण्डगर्भे क्षीरपूर्णे तन्मुखे वस्त्रबन्धनम् ।
गन्धं तस्योपरि क्षिप्त्वा ततो भाण्डमधोमुखम् ॥
तत्सन्धिबन्धनं कृत्वा तदूर्ध्वं वह्निदीपनम् ।
यामार्धं पुटसंयुक्तं स्वाङ्गशीतलमाहरेत् ॥३०
तद् गन्धं चूर्णितं कृत्वा अजाक्षीरेण भावयेत् ।
इक्षुदण्डरसश्चैव अमृतामधुगोक्षुरम् ॥३१॥
बाराही मधुकं कुष्ठं भृङ्गराजं हरिप्रिया ।
एकैकस्वरसेनैव भावयेद्दश वासरम् ॥३२॥
घर्मयेद्भावयेन्नित्यममृतीकरणं यथा ।
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं लवङ्गं नागकेशरम् ॥३३
त्रिफलां पद्मकं बीजं समांशश्च विनिक्षिपेत् ।
शर्करा मधुसंयुक्तं माषमात्रं च सेवयेत् ॥३४
शाल्यन्नं च सगोधूमं घृतं क्षीरं सशर्करम् ।
सेवयेन्नित्यं कृष्णां च बलीपलितनाशनम् ॥३५
जरां तु नाशयेत्पुंसां षण्ढत्वं वह्निमान्द्यताम् ।
कुष्ठानाञ्च दशाष्टानां वाताशीतिं निवारणम् ॥३६
विंशतिं च प्रमेहाणाम् मूत्रकृच्छ्राणि षोडश ।
व्रणराजं गण्डमालां गुदकीलं भगन्दरम् ॥३७
गुल्मप्लीहविकारघ्नं रजोदोषं हलीमकम् ।
स्तम्भनं वृष्यमायुष्यं सर्वामयनिवारणम् ॥३८
शुक्रमेहादिदोषाणां नाशनं परमं मतम् ।
देहं सुवर्णवर्णाभं दिव्यत्वं च न संशयः॥३९॥
सर्वभूतहितं गोप्यं गन्धकाख्यं रसायनम् ॥

मिट्टीके बरतनमें दूध भरकर उसके मुखपर एक कपड़ा बांध दीजिए और उस पर १०० पल (६। सेर) गन्धकका महीन चूर्ण बिछाकर उसके ऊपर दूसरा मृत्तिकापात्र उल्टा ढककर दोनोंकी सन्धिको भली भांति बन्द कर दीजिए और एक गढ़ेमें रखकर ऊपरवाली हांडी पर आधा पहरतक आग जलाइये। गढा इतना गहरा होना चाहिए कि जिसमें नीचेकी हांड़ी किनारों तक आ जाय और उसके चारो ओर स्थान ख़ाली न रहे।

हाण्डीके स्वांग शीतल हो जाने पर गन्धक को पीस लीजिए और फिर उसे बकरीके दूध, ईखके रस, गिलोयके रस, मधु, गोखरु, बाराही-कन्द, मुलैठी, कूठ, भांगरा और तुलसीके स्व .में पृथक् पृथक् १०-१० दिन तक भावना दीजिए। (प्रतिदिन रस डालकर धूपमें सुखाते रहिए।)

तत्पश्चात् उसमें समान भाग पीपल, पीपलामूल, लौंग, नागकेसर, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला) और कमलबीज (कमलगट्टे) का चूर्ण मिला लीजिए।

इसमेंसे प्रतिदिन १ माशेकी मात्रानुसार मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करने तथा शालि चावल, गेहूं, घृत, दूध, खांड तथा पीपल युक्त आहार करनेसे वलिपलित, जरा (वृद्धत्व), नपुंसकता, अग्निमांद्य, अठारह प्रकारके कुष्ट, अस्सी प्रकारके वातरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, सोलह प्रकारके मूत्रकृच्छ्र, व्रण (घाव), गण्डमाला, गुदकील, भगन्दर, गुल्म, तिल्ली, रजोदोष और हलीमक रोग नष्ट होते है। यह रसायन स्तम्भन, वृष्य, आयुष्य और सर्वरोगनाशक है। विशेषतः शुक्र मेहको नष्ट करनेके लिए अत्युपयोगी है।

इस 'गन्धक रसायन' को सेवन करनेसे देह स्वर्णके समान दिव्य कान्तिमान् हो जाती है।

(१५३५) गन्धकरसायनम् [५] (वं.से.।रसा.)

गन्धकस्यार्द्धकर्षन्तु मरिचं शाणमात्रकम्।
असिताम्बरमष्टांशं शिलायां चूर्णितं शुभम् ॥३४
एतच्चूर्णत्रयं तैले तिलजे दिवसत्रयम्।
वर्तित्रयं समारभ्य घृते वा स्थापितं तथा ॥३५
तदुद्धृत्य क्षीरपात्रे दीपं प्रज्वाल्य बुद्धिमान्।
पातयेद्वर्त्तिसत्वं च तद्भवा रसरक्तिका ॥३६॥
पर्णत्रयं समारोप्य तद्द्रवाद्गुञ्जकद्वयम्।
संमूर्च्छ्य भक्षयेत्प्रातः क्षेत्रपालबलिं ततः ॥३७
दत्वा तु विधिना कृत्वा कामचारी भवेत्सदा।
न चात्र परिहारोऽस्ति विहाराय नृणां सदा ॥३८
वलीपलितनाशाय वह्नेर्बलविवर्धनम्।
हितमेतत्सदा प्रोक्तं रसायनगुणैषिणाम् ॥३९

शुद्ध गन्धक आधा कर्ष (७॥ माशे), स्याह मिर्च ४ माशे और शुद्ध कृष्णाभ्रक ८ कर्ष लेकर तीनोको पत्थर पर पीसकर महीन चूर्ण बनाकर ३ दिन तक तिलके तैलमें घोटिए पश्चात (कपड़े पर लेप करके या इसमें रुई मिलाकर) ३ वत्तियां बना लिजिए और उन्हें घीमें भिगोकर जलाकर चिमटेसे पकड़कर उल्टा लटकाइये, इस प्रकार उनसे जो द्रव (तैल) टपके उसे दुग्धपूर्ण पात्रमें संग्रह करते रहिए और अन्तमें दूधके ऊपरसे उतारकर शीशीमें भरकर सुरक्षित रखिए।

१ रत्ती यह तैल और २ रत्ती पानका रस एकत्र करके दोनोको (उंगलीसे) भलीभांति रगड़कर प्रतिदिन प्रातःकाल क्षेत्रपालके लिए बलि देनेके पश्चात् सेवन कीजिए।

यह तैल रसायन, वलिपलितनाशक और अग्निदीपक है। इसके सेवन कालमें किसी प्रकारके परहेज़की आवश्यक्ता नहीं है यथेच्छ आहार विहार किया जा सकता है।

(१५३६) गन्धकरसायनम् [६]
(वं. से. । रसा.)

शुद्धगन्धकपलान्यष्टौ मृततीक्ष्णपलद्वयम्।
सूर्यपाके त्रिसप्ताहं दत्वा कन्याद्रवं पचेत् ॥११७
कर्षैकं पातयेत्क्षीरे वर्षमेकं निरन्तरम्।
दिव्यदृष्टिर्भवेन्मर्त्यो जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥११८

आठ पल शुद्ध गन्धक और २ पल तीक्ष्ण लोहभस्मको सूर्यपाक विधिसे ३ सप्ताह तक घीकुमार [घृत कुमारी] के रसमें पकाइये (घीकुमारके रसमें भिगोकर २१ दिन तक धूपमें रखिए, जब रस कम हो जाय तो और डाल दिया कीजिए।)

इसे १ कर्ष (१। तोले) की मात्रानुसार दूधके

साथ १ वर्ष तक निरन्तर सेवन करनेसे दिव्यदृष्टि और दीर्घायु प्राप्त होती है।

(व्यवहारिक मात्रा=१॥ माशा)

(१५३७) गन्धकशुद्धिः

(यो.चि.; मिश्रा.। यो.त.;त.१७। वृ.यो.त.;त.४३)

दुग्धे घृते निम्बरसे भृङ्गराजरसेथवा।
गन्धकं शोधयेत्प्राज्ञो दोलायन्त्रेण वाससा।
सदुग्धभाण्डेऽपि पटस्थितोऽयं
शुद्धोभवेत्कूर्मपुटेन गन्धम्।
सदुग्धभाण्डस्य मुखेषु वस्त्रं
बद्ध्वा क्षिपेद्गन्धकसूक्ष्मखण्डान्॥
संमुद्रयित्वा समिता दिनात्तत्
मन्दाग्निना यामयुगं पचेच्च।

गन्धकके चूर्णको वस्त्रमें बांधकर दूध, घी, नीमके रस और भांगरेके रसमेंसे किसी एक द्रवमें दोलायन्त्र विधिसे पकानेसे वह शुद्ध हो जाता है।

एक बरतनमें दूध भरकर उसके मुखपर कपड़ा बांधकर उसपर गन्धकका चूर्ण फैला दीजिए और फिर उसके ऊपर एक दूसरा बरतन उल्टा ढककर दोनोंका जोड़ कपड़ मिट्टीसे भलीभांति बन्द करके एक गढ़ेमें रख दीजिए और ऊपरके बरतन पर २ प्रहर अग्नि जलाइये।

इस प्रकार गन्धक पिघल कर नीचे वाले पात्रमें चला जायगा, उसे निकालकर धोकर पीस लीजिए।

(१५३८) गन्धकशोधनम्(रसें.चि.म.।अ.५)

गन्धकस्य च पादांशं दत्वा च टङ्कणं पुनः।
मर्दयेन्मातुलुङ्गाद्वै रुबुतैलेन भावयेत्॥
चूर्णं पाषाणगं कृत्वा शनैर्गन्धं खरातपे॥

गन्धकके चूर्णमें चौथाई भाग सुहागा मिलाकर बिजौरे नींबूके रसमें घोटकर अरण्डकी तेलकी एक भावना दीजिए (अरण्डका तेल मिलाकर तेज़ धूपमें रख दीजिए।)

इस प्रकार गन्धक शुद्ध हो जाता है।

(१५३९) गन्धकशोधनविधिः

(भा. प्र.। प्र. खं.। यो. चि. म.। मिश्र.)

लौहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत्।
तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः॥
विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तदनुवस्त्रे विनिक्षिपेत्।
यथावस्त्राद्विनिसृत्य दुग्धमध्येऽखिलं पतेत्॥
एवं स गन्धकशुद्धःसर्वकर्मोचितो भवेत्॥

लौहपात्रमें घृत गर्म करके उसमें समान भाग गन्धकका चूर्ण डाल दीजिए और जब गन्धक पिघल जाय तो उसे एक कपड़ेसे दुग्धपूर्ण पात्रमें छान लीजिए। और फिर निकालकर गर्म जलसे धो डालिए।

इस क्रियासे गन्धक शुद्ध और समस्त कार्योंके लिए उपयुक्त हो जाता है।

(१५४०) गन्धकसत्वम् (र. का. धे.। शू.)

गन्धकस्य पलं चूर्णं बृहतीफलजद्रवैः।
आकाशवल्लीस्वरसैर्गोमूत्रेण च भावयेत्॥
षड्बिर्षीयश्यामदासपुत्रमूत्रेण च भावयेत्।
एकविंशतिवारांश्च प्रत्येकं शोषितं च तत्॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य वह्नियामाष्टकं भवेत्।
शीतलं गन्धजं सत्वं गृहणीयादद्भुतं नरः॥
यथारोगानुपानेन गुञ्जैका सर्वरोगजित्॥

शुद्ध गन्धकका चूर्ण १ पल (५ तोले) लेकर उसे बड़ी कटेली और आकाश बेलके स्वरस तथा

गोमूत्र और श्यामवर्ण ऊंटके ६ वर्ष अवस्थाके वच्चेके मूत्रकी २१-२१ भावना देकर सुखाकर आतशी शीशीमें भरकर ८ पहर तक वालुका यन्त्रमें पकाइये और स्वांगशीतल होनेपर औषधको निकालकर चूर्ण कर लीजिए। यही गन्धकसत्व है।

इसे अनुपान भेदसे १ रत्तीकी मात्रानुसार समस्त रोगोंमें देना चाहिए।

(१५४१) गन्धकस्य कूर्मपुटेन शोधनम्

(आ. वे. प्र. । अ० २)

साज्यभाण्डे पयःक्षिस्वा मुखं वस्त्रेण बन्धयेत्।
गन्धकं पृष्ठदेशेषु श्लक्ष्णचूर्णितमर्पयेत् ॥
छादयेत्पृथुदीर्घेण खर्परेणैव गन्धकम्।
सन्धिरोधःप्रकर्त्तव्यो भाण्डखर्परयोर्मृदा ॥
भाण्डं निक्षिप्य भूगर्त्ते किञ्चिद्रक्षेद्वहिर्मुखम्।
ज्वालयेत्खर्परस्योर्ध्वं जातवेदं वनोपलैः ॥
ततःक्षीरे द्रुतं गन्धं शीतं धौतं जलेन तु।
वस्त्रघृष्टं निजलं तु शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥

एक वरतनमें घृत और दूध भरकर उसके मुखपर वस्त्र बांध दीजिए और उसपर गन्धकका महीन चूर्ण विछाकर ऊपरसे एक बड़ा और मोटा खर्पर (ठीकरा-अथवा हांडी) ढककर नीचेवाले वरतन और इस खर्परकी सन्धिको गारे (चिकनी मिट्टी)से बन्द कर दीजिए। अब नीचेवाली हाण्डीको, कुछ मुख बाहर रखते हुए एक गढ़ेमें रख दें। ऊपरके खर्पर पर अरने उपलोंकी आग जलाइये।

इस क्रियासे गन्धक पिघलकर नीचे वाली हांडीमें चला जायगा, उसे निकालकर धोकर कपड़ेसे रगड़कर पानी शुष्क कर दीजिए। इस प्रकार गन्धक शुद्ध और समस्त कार्योचित हो जाता है।

(१५४२) गन्धकादिपोटली रसः

(र. र. स. । उ. खं. अ० १८)

गन्धं तालकं ताप्यं शिलाह्वं पिप्पलीकृते।
कषाये भावयेत्स्नुह्याः क्षीरे मूत्रे च सप्तशः ॥
निष्कार्धमस्याः पोटल्याःस्यादर्धं साज्यमाक्षिकम्
प्रयोज्यं सयकृत्प्लीह्नि पञ्चकोलपलाशिना ॥

शुद्ध गन्धक, हरताल भस्म, सोनामक्खी भस्म और मनसिल (शुद्ध) समान भाग लेकर एकत्र करके उसे पीपलके काथ, थोहरके दूध और गोमूत्रकी ७ भावना दीजिए।

इसमेंसे प्रतिदिन २-२ माशे औषध,२ माशे घृत और २ माशे शहदमें मिलाकर ढाककी छाल और पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ) के काथके साथ सेवन करनेसे यकृत और प्लीहा, (जिगर, तिल्ली) रोग नष्ट होते हैं।

(व्यवहारिक मात्रा=२-३ रत्ती)

(१५४३) गन्धकादियोगः

(र. सा. सं. । अश्म)

गन्धकं जीरकं क्षुद्राफलं टङ्कद्वयं सदा।
अश्मरीं शर्करां मूत्रकृच्छ्रं क्षपयति ध्रुवम् ॥

शुद्ध गन्धक, ज़ीरा और कटेलीका फल समान भाग लेकर नित्य प्रति २ टङ्क (८ माशे) की मात्रानुसार सेवन करनेसे पथरी, शर्करा (रेत) और मूत्रकृच्छ्रका अवश्य नाश होता है।

(अनुपान=वरनेकी छालका काथ।)

(१५४४) गन्धकादिरसः

(वृ. नि. र. । रक्तपित्त)

गन्धं सूतं माक्षिकं लोहचूर्णं
सर्वं घृष्टं त्रैफलेनोदकेन।
लौहे पात्रे गोपयसा च धृत्वा
रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै ॥

शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद, सोना मक्खी भस्म और लोहभस्म समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली कर लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियां मिलाकर सबको लोहेके खरलमें त्रिफलाके क्काथके साथ खरल कीजिए।

इसे रात्रिके समय गोदुग्धके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त रोग नष्ट होता है।

(मात्रा=२ रत्ती।)

(१५४५) गन्धपिष्टिः (बन्धनम्) [१]

(रसें. चि. म. । अ० ५)

शुद्धसूतपलैकन्तु कर्षैकं गन्धकस्य च।
स्विन्नखल्वे विनिःक्षिप्य देवदालीरसप्लुतम्।
मर्द्दयेच्च कराङ्गुल्या गन्धबद्धः प्रजायते ॥

तप्त खरलमें (खरलको तुषाग्नि पर रखकर उसमें) १ पल [५ तोले] शुद्ध पारा और १ कर्ष (१। तोला) शुद्ध गन्धकका चूर्ण तथा थोड़ासा देवदाली (बिन्दाल) का रस डालकर उंगलीसे मलनेसे गन्धपिष्टि बन जाती है।

(१५४६) गन्धपिष्टिः (बन्धनम्) [२]

(रसें. चि. म. । अ० ५)

भागा द्वादशसूतस्य द्वौ भागौ गन्धकस्य च।
मर्द्दयेद् घृतयोगेन गन्धबद्धः प्रजायते ॥

१२ भाग शुद्ध पारद और २ भाग शुद्ध गन्धक चूर्णको घृतके साथ घोटनेसे गन्धपिष्टिः बन जाती है।

(१५४७) गन्धलोहः

(रसें. चि. म. । अ० ९; वृ. यो. त. । त. ६१ आयु. प्र. । अ० २, र. चं. । रसा.)

गन्धं लौहं भस्म मध्वाज्ययुक्तं
सेव्यं वर्षं वारिणा त्रैफलेन।
शुक्ले केशे कालिमा दिव्यदृष्टिः
पुष्टि वीर्यं जायते दीर्घमायुः ॥५३॥

समान भाग शुद्ध गन्धक और लोहभस्मको एकत्र खरल करके (२–३ रत्तीकी मात्रानुसार) शहद और घृतमें मिलाकर १ वर्ष पर्यन्त त्रिफला क्काथके साथ सेवन करनेसे श्वेत केश काले हो जाते है एवं दिव्यदृष्टि, पुष्टि, वीर्य और दीर्घायु प्राप्त होती है।

(१५४८) गन्धामृतो रसः

(रसे. चि. म. । अ. ८, आ. प्र. । अ. १; भै. र. वाजी.; र.मं., र.रा.सुं.। रसाय., र.र.। रसा. उ.२)

भस्मसूतं द्विधा गन्धं क्षणं कन्यां विमर्द्दयेत्।
रुद्ध्वा लघुपुटे पच्यादुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥
निष्कमात्रं जरामृत्युं हन्ति गन्धामृतो रसः।
समूलं भृङ्गराजञ्च छायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वं तुल्या सिता भवेत्।
पलैकं भक्षयेच्चानु सेवनाच्च ज्वरापहः ॥

१ भाग पारद भस्म (रस सिन्दूर) और २ भाग शुद्ध गन्धकके चूर्णको थोड़ी देर घृतकुमारी (घीकुमार) के रसमे घोटकर उसका एक गोला बना लीजिए और दो शरावोंमें बन्द करके लघु

पुटमें फूंक दीजिए। जब स्वांग शीतल हो जाय तो निकालकर चूर्ण कर लीजिए।

इसे ४ मासेकी मात्रानुसार घी और शहदके साथ सेवन करनेसे जरा मृत्युका नाश होता है। छायामें शुष्क समूल भांगरेका चूर्ण और त्रिफला चूर्ण १-१ भाग और मिश्री २ भाग लेकर एकत्र मिलाकर रख लीजिए।

उपरोक्त गन्धामृत रस खानेके पश्चात् १ पल (५ तोले) यह चूर्ण खानेसे ज्वर नष्ट होता है।

(१५४९) गन्धाश्मगर्भरसः [१]

(र. र. स. । उ. ख. अ० २१)

गन्धं रसेनाष्टगुणं विमर्द्य
कृशानुतोयेन विपाचयेत।
मृद्वग्निना लोहमयेऽथ पात्रे
विषेण पश्चादथ सिद्धमेति॥२१॥
गन्धाश्मगर्भो हि रसोऽस्य सर्व-
स्पर्शप्रणुत्यै भज वल्लयुग्मम्।
सक्षीरमन्नं सघृतञ्च भोज्यं
वर्ज्यं च सर्वं परिवर्जनीयम्॥२२॥

८ भाग गन्धक और १ भाग पारदकी कज्जली करके उसे मन्दाग्नि पर लोहपात्रमें चीतेके क्वाथके साथ पकाइये, तत्पश्चात् उसमें ८ भाग शुद्ध मीठे तेलियेका क्वाथ मिलाकर पकाइये।

इसे प्रतिदिन ४ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करने और दूधभात खाने तथा अपथ्य पदार्थोंका परित्याग करनेसे स्पर्शवात रोग नष्ट होता है।

(१५५०) गन्धाश्मगर्भरसः [२]

(र. र. स. । उ खं. अ० २१)

गन्धकाष्टकभागेन रसं दत्त्वाऽथ पाचयेत्॥२४
मृद्वग्निना शीतमुभावुत्तार्योत्तार्य यत्नतः।
यावद्गन्धकरूपस्य पूर्वस्य ह्यन्यथा भवेत्॥२५
सप्तगुञ्जं ददीतास्य यावत्स्यादेकविंशतिः।
प्रत्यहं तु हरीतक्य गुञ्जा देयैकविंशतिः॥
सक्षीरं सघृतं चान्नं भोजयीत सशर्करम्।
निर्वाते चावतिष्ठेत कम्पस्पर्शापनुत्तये॥२८
गन्धाश्मगर्भसंज्ञोयं योगिभिः परिकीर्त्तितः॥

(कूर्म पुट द्वारा शुद्ध) गन्धक ८ भाग और पारा १ भाग लेकर दोनोको मन्दाग्नि पर पकाइये, जब गन्धक पिघल जाय तो उतार लीजिए और ठण्डा होनेपर पुन: पकाइये, इसी प्रकार जब तक गन्धकका रंग न बदल जाय बारबार पकाते रहिए, तत्पश्चात् घोटकर सुरक्षित रखिए।

इसे ७ रत्तीकी मात्रासे आरम्भ करके २१ रत्ती पर्यन्त २१ रत्ती हर्रके चूर्ण (और घृत) के साथ सेवन करनेसे कम्पवात तथा स्पर्शवातका नाश होता है।

इस गन्धाश्मरसका आविष्कार योगियोद्वारा हुवा है। इसके सेवन कालमें, दूध, घृत और शर्करा (खांड) युक्त आहार करना और निर्वात स्थानमें रहना चाहिए।

(प्र. वि.-पहिले दिन ७ रत्ती औषध खिलाएं और फिर प्रतिदिन १-१ रत्ती बढ़ाते जांय, २१ रत्ती मात्रा तक पहुंच जाने पर प्रतिदिन १-१ रत्ती मात्रा घटाकर सेवन कराएं और ७ रत्ती तक आ जायें, यदि इसके पश्चात् भी औषध सेवनकी आवश्यकता पड़े तो फिर इसी क्रमसे बढ़ाते हुवे सेवन कराएं।

(१५५१) गन्धाश्मपर्पटीरसः (र.का.धे.।ग्र.)

भृङ्गराजरसे चैव लोहपात्रेऽग्निना बलिम् ।
द्रावयित्वा विनिक्षिप्य पूरयित्वा च भाजने ॥
जयादलरसेनापि काकमाच्या रसेन वा ।
शृङ्गवेररसेनापि वर्धमानेन खल्वयेत् ॥१२१॥
शृङ्गवेररसेनापि काकमाच्या रसेन च ।
रसं गन्धद्वयं शुद्धं लोहपात्रे प्रियोत्तमे ॥१२२॥
एकीकृत्वैव तावच्च खल्वयेदितिसप्तधा ।
यावच्चनीलवर्णःस्यात्कोलाङ्गारेण पाचयेत् ॥
गोमयस्थालवाले च स्थापिते कदलीदले ।
ढालयेत्पाकवित्प्राज्ञस्ततस्तु प्राशयेन्नरः॥१२४॥
खादेदिमां सुखार्थाय पथ्यभुग्भिःप्रयुज्यते ।
गन्धाश्मपर्पटी चैषा सिद्धा लोकस्य सिद्धिदा॥
दुर्नाम ग्रहणीमामशूलं च ग्रहणीगदम् ।
कामलापाण्डुरोगश्च प्लीहगुल्मजलोदरम्॥१२६
भस्मकं चामवातं च कुष्ठानि च भृशं हरेत् ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं बलीपलितवर्जितः ॥१२७॥

गन्धकको लोहपात्रमें अग्निपर पिघलाकर भंगरेके रससे पूर्ण पात्रमें डाल दीजिए और ठण्डा होनेपर निकालकर पुनः पिघलाकर भांगके पत्तोके रसमें डालिए, इसी प्रकार मकोय और अद्रकके रसमें भी शुद्ध कीजिए । अब १ भाग शुद्ध पारद और २ भाग उक्त गन्धकको घोटकर लोह पात्रमें डालकर अद्रक और मकोयके रसकी ७-७ भावना दीजिए (रसमें भिगोकर धूपमें रख दीजिए, जब सूख जाय तो फिर नया रस डालिए इसी प्रकार दोनों ओषधियोका रस ७-७ बार डालकर सुखाइये । रस इतना डालना चाहिए कि ओषधिसे १ अंगुल ऊपर रहे) और इतना घोटिए कि घोटते घोटते नीलवर्ण हो जाय ।

अब एक लोहपात्रमें थोड़ा घी डालकर उसमें इस कज्जलीको वेरीके कोयलोकी आग पर पकाइये और जब पिघल जाय तो गायके गोबरको भूमिपर बिछाकर उसपर केलेका पत्ता बिछाकर उसके ऊपर इसे डाल दीजिए और उसके ऊपर दूसरा केलेका पत्ता रखकर गोबरसे दबा दीजिए और ठण्डा होने पर ऊपरका गोबर आदि हटाकर पर्पटी निकाल लीजिए ।

इस "गन्धाश्मपर्पटी" को पथ्य पालन पूर्वक सेवन करनेसे बवासीर, संग्रहणी, आमशूल, कामला, पाण्डु, प्लीह (तिल्ली), गुल्म, जलोदर, भस्मक, आमवात (गठिया) और कुष्ठ रोग नष्ट होता है, तथा मनुष्य बलिपलित रहित होकर १०० वर्ष पर्यन्त जीवित रह सकता है ।

(मात्रा=२-४ रत्ती तक । अनुपान=तक्र । विशेष सेवन विधि रस पर्पटीमें देखिए ।)

(१५५२) गरनाशन रसः

(र. चं.; यो. र. । विषा.)

शुद्धसूतं मृतं स्वर्णं संशुद्धं हेममाक्षिकम् ।
त्रयाणां गन्धकं तुल्यं मृद्यात्कन्याद्रवैर्दिनम् ॥
तच्छुष्कंससितक्षौद्रैर्माषैकं भक्षयेत्सदा ।
वह्निमूलं शृतं क्षीरैरनुस्याद्गरनाशनम् ॥

शुद्ध पारद, स्वर्ण भस्म और शुद्ध सोनामक्खी १-१ भाग तथा शुद्ध गन्धक ३ भाग लेकर सबको १ दिन घृतकुमारी (घी कुमार) के रसमें खरल कीजिए। जब घोटते घोटते सूख जाय तो रस तैयार समझिए ।

इसमेंसे १ माषा औषध मिश्री और शहदमें मिलाकर चीतेसे सिद्ध* दूधके साथ खानेसे गरविष (कृत्रिम विष अथवा उपविष)का नाश होता है।

(१५५३) गरुडरसः (र. का. धे. ज्वर.)

वीजं पलाशजं गुञ्जा निशा दन्तीफलं तथा।
क्षारद्वयं चातिविषा कन्दं चामरसंज्ञकम् ॥८३९
रसोनं टङ्कणं चूर्णं तुत्थैकं दरदं विषम्।
भागोत्तरमिदं कृत्वा गोमूत्रेण विभावितम् ॥
योजयेन्निम्बुकद्रावै ज्ञात्वा मलबलाबलम्।
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु सन्निपातान्महोत्कटान्॥
श्लेष्मणःसम्भवान्रोगांस्तथा वै सर्ववातजम्।
अमोघवीर्यमेनं चागदोऽयं गरुडोयथा ॥८४२

पलाशके वीज (ढकपन्ने), गुञ्जा (चौंटली), हल्दी, जमालगोटा, जवाखार, सज्जीखार, अतीस, चमारआलु, ल्हसन, सुहागेकी खील, शुद्ध चूना और शुद्ध नीलाथोथा १-१ भाग शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) २भाग और शुद्ध मीठा तेलिया ३भाग लेकर सबको गोमूत्रमें भलीभांति खरल कर लीजिए। वस रस तैयार है।

इसे दोष और वलाबलके अनुसार नींबूके रसके साथ सेवन करानेसे समस्त प्रकारके ज्वर, भयङ्कर सन्निपात, कफज और वातज रोग नष्ट होते हैं।

(१५५४) गर्भचिन्तामणिरसः [१]

(र. रा. सु.: र. सा. सं., र. र.। सूतिका.)

रसं तारं तथा लौहं प्रत्येकं कर्षमानतः।
कर्षत्रयं तथा चाभ्रं कर्पूरं वङ्गताम्रकम् ॥
जातीफलं तथा कोषं गोक्षुरञ्च शतावरी।
वलातिवलयोर्मूलं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥
सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः।
गर्भिण्या ज्वरदाहञ्च प्रदरं सूतिकाभयम् ॥

रस सिन्दूर और चांदी भस्म और लोह भस्म १-१ कर्ष (१। तोला), अभ्रक भस्म ३ कर्ष और कपूर, वंग भस्म, ताम्र भस्म, जायफल, जावित्री, गोखरु, शतावर तथा खरैंटी और कंघीकी जड़ १-१ कर्ष लेकर पानीमें घोटकर २-२ रत्तीभरकी गोलियां वना लीजिए।

इनके सेवनसे सन्निपात और विशेषतः स्त्रियोंका सन्निपात गर्भिणीका ज्वरदाह तथा प्रदर और सूतिका रोग (परसूत) नष्ट होता है।

(१५५५) गर्भचिन्तामणिरसः [२]

(र. रा. सु.; र. सा. सं.; र. र.। सूतिका.)

जातीफलं टङ्कणं च व्योषं दैत्येन्द्ररक्तकम्।
तच्चूर्णं समभागेन मर्दितं प्रहरद्वयम् ॥
जम्बीररसयोगेन वटीं कुर्याद्विचक्षणः।
गुञ्जाद्वयं प्रमाणन्तु खलु वैद्यः प्रयत्नतः॥
आर्द्रकस्य रसेनैव भावयेदुष्णवारिणा।
निहन्ति सर्वरोगञ्च भास्करस्तिमिरं यथा ॥

जायफल, सुहागेकी खील, सोंठ, मिर्च, पीपल और शुद्ध शिंगरफके समान भाग चूर्ण को २-२ पहर तक जम्बीरी नींबू और अदरखके रसमें घोट-कर २-२ रत्तीकी गोलियां वना लीजिए।

इन्हे उष्ण जलके साथ सेवन करानेसे गर्भिणीके समस्त रोग इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदयसे अन्धकार।

---

* चीता १ भाग, दूध ८ भाग, पानी ३२ भाग। दूध शेष रहने तक पकाकर छानलें।

(१५५६) गर्भचिन्तामणिरसः [बृहद्]

(र. रा. सुं, र. र; र. सा. सं । सूति.)

सूतं गन्धं तथा स्वर्णं लौहं रजतमाक्षिके ।
हरितालं बङ्गभस्माप्यभ्रकं समभागिकम् ॥
भावना खलु दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक् ।
ब्राह्मीवासाभृङ्गराजपर्पटीदशमूलकैः ॥
सप्तधा भावयेद्वैद्यो गुञ्जामानां वटीं चरेत् ।
गर्भचिन्तामणिरयं पूर्ववद्गुणकारकः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण भस्म, लोह भस्म, चांदी भस्म, सोनामक्खी भस्म, हरताल भस्म, बंग भस्म और अभ्रक भस्म बराबर बराबर लेकर सबको ब्राह्मी, बासा (अडूसा), भंगरा, पित्त-पापड़ा और दशमूलके रस (या क्वाथ) की पृथक् पृथक् ७-७ भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

यह बृहद्गर्भचिन्तामणि रस गर्भिणीके ज्वर, दाह, प्रदर और सूतिका रोगोको नष्ट करता है।

(१५५७) गर्भपालरसः (र. चं. । स्त्रीरो.)

हिङ्गुलं नागवङ्गौ च त्रिजातं च कटुत्रयम् ॥६३३
धान्यकं कृष्णजीरश्च चव्यं द्राक्षा सुरद्रुमः ।
कर्षमानं पृथक्सर्वं कर्षार्धं लोहभस्म च ॥६३४
सप्ताहं मर्दयेत्खल्वे विष्णुक्रान्तारसेन च ।
गुञ्जामात्रा च वटिका द्राक्षाक्वाथेन योजयेत् ॥
मासप्रथममारभ्य नवमासान्तमेव च ।
गर्भिणीरोगनाशार्थं गर्भपालरसः स्मृतः ॥२३६

शुद्ध हिंगुल, नागभस्म, बंगभस्म, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोठ, मिर्च, पीपल, धनियां, काला जीरा, चव्य, मुनक्का और देवदारु १-१ कर्ष (१। तोला) और लोहभस्म आधा कर्ष लेकर सबको सात दिन तक विष्णुक्रान्ता (कोयल) के रसमें घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इस "गर्भपाल" रसको गर्भिणीको गर्भके प्रथम माससे आरम्भ करके नव मास पर्यन्त सेवन करानेसे उसके समस्त रोग नष्ट होते हैं।

गर्भपीयूषवल्लीरसः (भै.र.।स्त्री.;धन्वं.। सूति.)

(गर्भचिन्तामणिरसः [बृहद्] अवलोकन कीजिए।)

(१५५८) गर्भविनोदरसः

(र. चं. । स्त्री. रो.; र. रा. सुं., र. सा. सं.; र. र. सूतिका: र. चि. । अ० ९)

त्रिभागं कटुकं देयं चतुर्भागं च हिङ्गुलम् ।
जातीकोषं लवङ्गं च प्रत्येकश्च त्रिकार्षिकम् ॥
सुवर्णमाक्षिकस्यापि पलार्धं प्रक्षिपेद्बुधः ।
जलेन मर्दयित्वाऽथ चणमात्रा वटीकृता ॥
निहन्ति गर्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल)का चूर्ण ३भाग (३ कर्ष), शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) ४ भाग;जावित्री और लौंग ३-३ कर्ष (३।। तोले) तथा सोना-मक्खी भस्म आधा पल (२।। तोले) लेकर सबको जलसे घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे गर्भिणीके रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार सूर्योदयसे अन्धकार।

(१५५९) गर्भविलासरसः

(र. चं. भै. र.; धन्वं. र. र., र. र. स.; र. का. धे. । सूतिका.; र. चिं. म. अ० ९)

रसगन्धं तुत्थश्च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम्[2] ।
त्रिभावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥

१ र. सा. सं. का सूतिकाविनोद भी यही है।
२ सौवीरमर्दितमिति रसकामधेनौ ।

गर्भिण्याःशूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम् ।
तुत्थस्थाने स्वर्णदेयं रसश्चिन्तामणिस्मृतः ॥

समान भाग शुद्ध पारा, गन्धक और शुद्ध नीला थोथा, लेकर तीनोको ३ दिन तक जम्बीरी नींबूके रसमें (रसकामधेनुके लेखानुसार काञ्जीमें) घोटकर ३ भावना त्रिकुटे (सोंठ, मिर्च, पीपल) के क्वाथकी दीजिए।

इसे ४ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करानेसे गर्भिणीका शूल, कब्ज और ज्वर तथा अजीर्ण (बदहज़मी) रोग नष्ट होता है।

यदि इसमें तुत्थके स्थानमें सोना डाला जाय तो इसीका नाम गर्भचिन्तामणि हो जाता है।

(१५६०) गलत्कुष्ठनाशनरसः

(यो. स. । समु. ७)

सूताभ्रगन्धायसशुल्वधारा
करञ्जबीजानि शिलाजतुश्च ।
फलत्रिकं गुग्गुलचित्रकौ च
सर्वं समांशं विषतिन्दुकञ्च ॥
क्षौद्रेण सार्धं सघृतं विमर्द्य
संस्थाप्य काचे दिनसप्तभाण्डे ।
वल्लप्रमाणं पयसासमेतं
खाद्यं गलत्कुष्ठविनाशनाय ॥
पथ्यं विरक्तं लवणेन भोज्यं
पयः सितातण्डुलगोधुमाश्च ।
वृन्ताकमाषाद्यहितं च वर्ज्यं
स्त्रीसेवनं कुष्ठविकारवर्द्धिः ॥

शुद्ध पारा, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, लोह-भस्म, ताम्रभस्म, गिलोय, करञ्जबीज (करञ्जवेकी गिरी), शिलाजीत, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), गूगल, चीता और शुद्ध कुचला (चुकला) समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए; तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर शहद और घीमें घोटकर सात दिन तक काचपात्र (मर्तबान या बरनी आदि)में रक्खा रहने दीजिए।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार दूधके साथ सेवन करनेसे गलत्कुष्ठ नष्ट होता है।

पथ्य—लवण रहित भात, गेहूं, दूध, मिश्री आदि।
अपथ्य—बैंगन, उर्द, स्त्री प्रसंगादि।

(१५६१) गलत्कुष्ठारि रसः

(रसे. चि. म. । अ. ९; भा. प्र.; र. चं., र. सा. सं.; र. रा. सुं. । कुष्ठ.)

रसो बलिस्ताम्रमयः पुरोग्नि-
शिलाजतुःस्याद्विषतिन्दुकोग्रे ।
सर्वं च तुल्यं गगनं करञ्ज
बीजं तथा भागचतुष्टयञ्च ॥
संमर्द्य गाढं मधुना घृतेन-
वल्लद्वयं चास्य निहन्त्यवश्यम् ।
कुष्ठं किलासमपि वातरक्तं
जलोदरं वाथ विबद्धमूलम् ॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलनासिकोऽपि
भवेत् प्रसादात् स्मरतुल्यमूर्त्तिः ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, लोह भस्म, शुद्ध गूगल, चीता, शिलाजीत, कुचला और वच १-१ भाग तथा अभ्रक भस्म और करञ्ज (करञ्जवे) की गिरी ४-४ भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना लीजिए पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर खूब खरल कीजिए।

इसे ४ रत्तीकी मात्रानुसार (प्रातःसायं २-२ रत्ती) घृत और शहदके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, किलास, वातरक्त और पुराना जलोदर अवश्य नष्ट हो जाता है; और यदि कर्ण, उंगली, नासिकादि भी गल गई हो तो वह सब पुनः पूर्ववत् होकर मनुष्य कामदेव सदृश रूपवान हो जाता है।

(१५६२) गिरिसिन्दूरगुणाः (र.प्र.सु.।अ.७)

रसबन्धकरं भेदि त्रिदोषशमनं तथा।
देहलोहकरं नेत्र्यं गिरिसिन्दूरमीरितम् ॥

'गिरिसिन्दूर' रसवन्धक (पारदको बांधनेवाला), भेदन, त्रिदोषनाशक, देहको लोहके समान दृढ़ करने वाला और नेत्रोके लिए हितकर है।

(१५६३) गिरिसिन्दूरोत्पत्तिः

(र. प्र. सु.। अ० ७)

महागिरौ शिलान्तःस्थो रक्तवर्णश्च्युतो रसः।
सूर्यातपेन संशुष्को गिरिसिन्दूरमीरितम् ॥

महान पर्वतोमें शिलाओंके भीतरसे एक प्रकारका लाल रस निकलकर सूर्य तापसे सूख जाता है; इसीका नाम 'गिरी सिन्दूर' है।

(१५६४) गुञ्जागर्भरसायनम्

(वृ. नि. र.; यो. र.; धन्वं.। ऊरुस्त.; रसें. चि. म.। अ० ९)

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम्।
गुञ्जाबीजं विषं निष्कं निम्बबीजं जया तथा ॥
प्रत्येकं निष्कमात्रन्तु माषं जेपालबीजकम्।
जातीजम्बीरधत्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥

१ षण्णिष्कमिदि पाठान्तरम्।
२ सममिति निष्कमिति च पाठभेदः।

मर्द्यं सर्वं वटीं कुर्यात् घृतैर्गुञ्जाद्वयं पिबेत्।
गुञ्जागर्भो रसो* नाम हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ॥
समण्डं दापयेत्पथ्यमुरुस्तंभप्रशान्तये ॥

शुद्ध पारद १ तो., शुद्ध गन्धक ४. तो., गुञ्जा (चौटली), शुद्ध मीठा तेलिया, नीमकी निबौली और भांग ४-४ माशे और जमालगोटा १ माशा लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए; तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर चमेली, बिजौरा, धतूरा और मकोयके रसमें १-१ दिन खरल करके गोलियां बना लीजिए।

इस "गुञ्जा गर्भ" रसको २ रत्तीकी मात्रानुसार घृतके साथ सेवन किया जाय तो उरुस्तम्भ रोग नष्ट हो जाता है।

गुञ्जाभद्ररसः (र. र.। वृ. रो.)

(गुञ्जागर्भ रस अवलोकन कीजिए।)

गुडादिमण्डूरम्

(चूर्ण प्रकरणमें देखिए)

गुडूचीलौहम्

(चूर्ण प्रकरणमें देखिए)

(१५६५) गुडूच्यादिमोदकः (वृ. नि. र.)

गुडूचीं खण्डशःकृत्वा कुट्टयित्वा सुमर्दयेत्।
वस्त्रेण विधृतं तोयं स्रावयेत्तच्छनैःशनैः ॥
शुद्धशङ्खनिभं चूर्णमेतैः संमिश्रयेद्भिषक्।
उशीरं बालकं पत्रं कुष्ठं धात्रीं च मौसलीम् ॥
एला हरेणुकं द्राक्षां कुङ्कुमं नागकेशरम्।
पद्मकन्दं च कर्पूरं चन्दनद्वयमिश्रितम् ॥
व्योषं च मधुकं लाजाऽश्वगन्धा शतावरी।
गोक्षुरं मर्कटाख्यं च जातीककोलचोरकम् ॥

* गुञ्जाभद्ररसो नामेति पाठान्तरम्।

गर्भिण्याःशूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम् ।
तुत्थस्थाने स्वर्णदेयं रसश्चिन्तामणिस्मृतः ॥

समान भाग शुद्ध पारा, गन्धक और शुद्ध नीला थोथा, लेकर तीनोको ३ दिन तक जम्बीरी नींबूके रसमें (रसकामधेनुके लेखानुसार काञ्जीमें) घोटकर ३ भावना त्रिकुटे (सोंठ, मिर्च, पीपल) के क्वाथकी दीजिए ।

इसे ४ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करानेसे गर्भिणीका शूल, कब्ज और ज्वर तथा अजीर्ण (बदहज़मी) रोग नष्ट होता है ।

यदि इसमें तुत्थके स्थानमें सोना डाला जाय तो इसीका नाम गर्भचिन्तामणि हो जाता है ।

(१५६०) गलत्कुष्ठनाशनरसः

(यो. र. । समु. ७)

सूताभ्रगन्धायसशुल्वधारा
करञ्जबीजानि शिलाजतुश्च ।
फलत्रिकं गुग्गुलचित्रकौ च
सर्वं समांशं विषतिन्दुकश्च ॥
क्षौद्रेण सार्धं सघृतं विमर्द्य
संस्थाप्य काचे दिनसप्तभाण्डे ।
बल्लप्रमाणं पयसासमेतं
खाद्यं गलत्कुष्ठविनाशनाय ॥
पथ्यं विरक्तं लवणेन भोज्यं
पयः सितातण्डुलगोधुमाश्च ।
वृन्ताकमाषाद्यहितं च वर्ज्यं
स्त्रीसेवनं कुष्ठविकारवद्भिः ॥

शुद्ध पारा, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, लोह-भस्म, ताम्रभस्म, गिलोय, करञ्जबीज (करञ्जवेकी गिरी), शिलाजीत, त्रिफला (हर्र, बहेडा, आमला), गूगल, चीता और शुद्ध कुचला (चुकला) समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए: तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर शहद और घीमें घोटकर सात दिन तक काचपात्र (मर्तबान या बरनी आदि)में रक्खा रहने दीजिए ।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार दूधके साथ सेवन करनेसे गलत्कुष्ठ नष्ट होता है ।

पथ्य—लवण रहित भात, गेहूं, दूध, मिश्री आदि ।
अपथ्य—बैंगन, उर्द, स्त्री प्रसंगादि ।

(१५६१) गलत्कुष्ठारि रसः

(रसे. चि. म. । अ. ९; भा. प्र.; र. चं., र. सा. सं.; र. रा. सुं. । कुष्ठ.)

रसो बलिस्ताम्रमयः पुरोग्नि-
शिलाजतुःस्याद्विषतिन्दुकोग्रे ।
सर्वं च तुल्यं गगनं करञ्ज
बीजं तथा भागचतुष्टयञ्च ॥
संमर्द्य गाढं मधुना घृतेन-
बल्लद्वयं चास्य निहन्त्यवश्यम् ।
कुष्ठं किलासमपि वातरक्तं
जलोदरं वाथ विबद्धमूलम् ॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलनासिकोऽपि
भवेत् प्रसादात् स्मरतुल्यमूर्त्तिः ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, लोह भस्म, शुद्ध गूगल, चीता, शिलाजीत, कुचला और वच १-१ भाग तथा अभ्रक भस्म और करञ्ज (करञ्जवे) की गिरी ४-४ भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बना लीजिए पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर खूब खरल कीजिए ।

इसे ४ रत्तीकी मात्रानुसार (प्रातःसायं २-२ रत्ती) घृत और शहदके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, किलास, वातरक्त और पुराना जलोदर अवश्य नष्ट हो जाता है; और यदि कर्ण, उंगली, नासिकादि भी गल गई हो तो वह सब पुनः पूर्ववत् होकर मनुष्य कामदेव सदृश रूपवान हो जाता है।

(१५६२) गिरिसिन्दूरगुणाः (र.प्र.सु.।अ.७)

रसबन्धकरं भेदि त्रिदोषशमनं तथा।
देहलोहकरं नेत्र्यं गिरिसिन्दूरमीरितम्॥

'गिरिसिन्दूर' रसवन्धक (पारदको बांधनेवाला), भेदन, त्रिदोषनाशक, देहको लोहके समान दृढ़ करने वाला और नेत्रोके लिए हितकर है।

(१५६३) गिरिसिन्दूरोत्पत्तिः

(र. प्र. सु.। अ० ७)

महागिरौ शिलान्तःस्थो रक्तवर्णश्च्युतो रसः।
सूर्यातपेन संशुष्को गिरिसिन्दूरमीरितम्॥

महान पर्वतोमें शिलाओके भीतरसे एक प्रकारका लाल रस निकलकर सूर्य तापसे सूख जाता है; इसीका नाम 'गिरी सिन्दूर' है।

(१५६४) गुञ्जागर्भरसायनम्

(वृ. नि. र., यो. र., धन्वं.। ऊरुस्त.; रसें. चि. म.। अ० ९)

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम्।
गुञ्जाबीजं विषं निष्कं निम्बबीजं जया तथा॥
प्रत्येकं निष्कमात्रन्तु माषं जेपालबीजकम्।
जातीजम्बीरधत्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम्॥

१ षण्णिष्कमिदि पाठान्तरम्।
२ सममिति निष्कमिति च पाठभेदः।

मर्द्यं सर्वं वटीं कुर्यात् घृतैर्गुञ्जाद्वयं पिबेत्।
गुञ्जागर्भो रसो नाम हिङ्गुसैन्धवसंयुतः॥
समण्डं दापयेत्पथ्यमुरुस्तंभप्रशान्तये॥

शुद्ध पारद १ तो., शुद्ध गन्धक ४ तो., गुञ्जा (चौटली), शुद्ध मीठा तेलिया, नीमकी निबौली और भांग ४-४ माशे और जमालगोटा १ माशा लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए; तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर चमेली, बिजौरा, धतूरा और मकोयके रसमें १-१ दिन खरल करके गोलियां बना लीजिए।

इस "गुञ्जा गर्भ" रसको २ रत्तीकी मात्रानुसार घृतके साथ सेवन किया जाय तो उरुस्तम्भ रोग नष्ट हो जाता है।

गुञ्जाभद्ररसः (र. र.। ह्व. रो.)

(गुञ्जागर्भ रस अवलोकन कीजिए।)

गुडादिमण्डूरम्

(चूर्ण प्रकरणमें देखिए)

गुडूचीलौहम्

(चूर्ण प्रकरणमें देखिए)

(१५६५) गुडूच्यादिमोदकः (वृ. नि. र.)

गुडूचीं खण्डशःकृत्वा कुट्टयित्वा सुमर्दयेत्।
वस्त्रेण विधृतं तोयं स्रावयेत्तच्छनैःशनैः॥
शुद्धशङ्खनिभं चूर्णमेतैः संमिश्रयेद्भिषक्।
उशीरं बालकं पत्रं कुष्ठं धात्रीं च मौसलीम्॥
एला हरेणुकं द्राक्षां कुङ्कुमं नागकेशरम्।
पद्मकन्दं च कर्पूरं चन्दनद्वयमिश्रितम्॥
व्योषं च मधुकं लाजाऽश्वगन्धा शतावरी।
गोक्षुरं मर्कटाख्यं च जातीकक्कोलचोरकम्॥

* गुञ्जाभद्ररसो नामेति पाठान्तरम्।

रसश्च वंगलोहैश्च संमिश्रं कारयेद्बुधः ।
एतानि समभागानि द्विगुणामृतशर्करा ॥
मत्स्यण्ड्याज्यमधुपेतं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ।
क्षयं च रक्तपित्तं च पाददाहमसृग्दरम् ॥
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं वातकुण्डलिकां तथा ।
निहन्याच्च प्रमेहांश्च सोमरोगं च दारुणम् ॥
रसायनमिवर्षीणाममृतं चामृतांधसाम् ॥

गिलोयके टुकड़े करके और कूटके उन्हें पानीमें खूब मलकर कपड़ेमें छान लीजिए और इस पानीको पात्रमें भरकर धूपमें रख दीजिए; जब पानी नितर जाय तो उसे धीरेधीरे उतार दीजिए। वरतनके पेदे (तली) में जो सफेद सत्व रह जाय उसे सुखाकर निकाल लीजिए।

यह सत्व, खस, नेत्रवाला, तेजपात, कूठ, आमला, मूसली, इलायची, रेणुका, मुनक्का, केशर, नागकेसर, पद्मकन्द (कमलकी जड़), कर्पूर, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), मुलैठी, धानकी खील, असगन्ध, शतावर, गोखरु, कौंचके वीज, जावित्री, कंकोल, चोरक (गन्धद्रव्य विशेष—गठिवन भेद) रससिन्दूर, वंग भस्म और लौह भस्म समान भाग तथा मिश्री सबसे दुगनी लेकर सबका महीन चूर्ण कर लीजिए।

इसे मिश्री, घी और शहदमें मिलाकर प्रातः काल सेवन करनेसे क्षय, रक्तपित्त, पैरोंकी जलन, रक्तप्रदर, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, वातकुण्डलिका, प्रमेह और भयङ्कर सोम रोगका नाश होता है।

गुडूच्यादि लौहम्

(चूर्ण प्रकरणमें देखिए)

(१५६६) गुणमहोदधिरसः

(र. चि. म. । स्तव. ११; भै. र. । कास.)

सूतकं गन्धकञ्चैव[1] विषं चापि वराङ्गकम् ।
मृतताम्रं वङ्गं च गगनं च समांशकम् ॥९५॥
पत्रं त्रिकटुकं मुस्तं विडङ्गं नागकेशरम् ।
रेणुकामलकञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥९६॥
एतानि द्विगुणानि स्युर्मर्दयित्वा प्रयत्नतः ।
भावना चात्र दातव्या गजपिप्पलिकाम्बुना ॥
मात्रा चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता ।
हन्ति कासं तथा श्वासं अर्शांसि च भगन्दरम् ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं कपालिकाम् ।
हरेत् संग्रहणीरोगं तथाष्टौ जठराणि च ॥९९॥
प्रमेहान्विंशतिञ्चैव ह्यश्मरीं च चतुर्विधाम् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातो नाम्ना गुणमहोदधिः ॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति—
न चातपे चाध्वनि मैथुने च ।
यथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे—
नरोभवेत्काञ्चनराशिगौरः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठातेलिया, दालचीनी, ताम्र भस्म, वंगभस्म और अभ्रक भस्म १-१ भाग तथा तेजपात, सोंठ, मिर्च, पीपल, मोथा, वायविडङ्ग, नागकेसर, रेणुका (संभालुके वीज) आमला और पीपलामूल २-२ भाग लेकर महीन चूर्ण करके गजपीपलके क्वाथमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे खांसी, श्वास, बवासीर, भगन्दर, हृदय और पसलीका शूल, कर्णरोग, कपालिका (दन्तरोग विशेष), संग्रहणी, आठ प्रकारके

[1] गन्धकं लौहमिति पाठान्तरम् ।

उदररोग, बीस प्रकारके प्रमेह और चार प्रकारका अश्मरी (पथरी) रोग नष्ट होता है; और शरीर काञ्चनसदृश तेजोमय हो जाता है।

इस त्रिलोक विख्यात गुणमहोदधि रसके सेवन कालमें किसी प्रकारके अन्न पान, धूप, मार्गगमन मैथुनादिसे परहेज़ करनेकी आवश्यकता नहीं है, यथेच्छ आहार विहार किया जा सकता है।

(१५६७) गुदजहररसः

(र. र. स.। उ. खं.। अ. १५)

गन्धं तारं तथा ताम्रं कृत्वा चैकत्र पिष्टिकाम्।
तत्समं चाभ्रकं तीक्ष्णं गन्धकात्पञ्चमांशकम्॥
विषञ्च षोडशांशेन द्वौ भागौ सूतकस्य च।
एकीकृत्य प्रयत्नेन जम्बीरद्रवमर्दितम्॥२४॥
भाजने मृण्मये स्थाप्य वराक्काथेन भावयेत्।
दशमूलशतावर्योः क्काथे पाच्यः क्रमेण हि॥
अथोत्तार्य प्रयत्नेन वटिकां कारयेद्बुधः।
गुञ्जात्रयप्रमाणेन हन्ति शूलं गुदाङ्कुरम्॥२६॥

शुद्ध गन्धक, चांदी भस्म और ताम्र भस्मको एकत्र घोटकर पिष्टी (पिट्टी) बना लीजिए; तत्पश्चात् इसमें समस्त ओषधियोंके बराबर अभ्रक भस्म और गन्धकका पांचवां भाग तीक्ष्ण लोह भस्म तथा १६ वां भाग शुद्ध मीठा तेलिया और २ भाग शुद्ध पारद डालकर जम्बीरी नींबूके रसमें अच्छी तरह खरल करके मिट्टीके बरतनमें डाल दीजिए और त्रिफलेके क्काथकी १ भावना देकर दशमूल और शतावरीके क्काथमें (१–१ पहर पृथक् पृथक्) पकाइये। जब गाढ़ा हो जाय तो उतारकर ३–३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे शूल और बवासीरके मस्से नष्ट होते हैं।

(१५६८) गुल्मकालानलो रसः (महा)

(र. रा. सुं.; र. सा. सं.। गुल्म.)

गन्धकं तालकं ताम्रं तथैव तीक्ष्णलौहकम्।
समांशं मर्दयेत् गाढं कन्यानीरेण यत्नतः॥
सम्पुटं कारयेत् पश्चात् सन्धिलेपं च कारयेत्।
ततो गजपुटं दत्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत्॥
द्विगुञ्जं भक्षयेद् गुल्मी शृङ्गबेरानुपानतः।
सर्वगुल्मं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध तबकी हरताल, ताम्रभस्म और तीक्ष्ण लोहभस्म समान भाग लेकर सबको घृतकुमारीके रसमें भली भांति घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लीजिए, और उसे मिट्टीके दो शरावोंमें बन्द करके ऊपरसे कपड़मिट्टी करके गजपुटमें फूंक दीजिए और स्वांगशीतल होने पर निकालकर काममें लाइये।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार अद्रकके रसके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारका गुल्मरोग अत्यन्त शीघ्र नष्ट होता है।

(१५६९) गुल्मकालानलो रसः

(र. रा. सुं.; धन्वं.; रसा. सं.; भै. र.। गुल्म. रसे. चि. म.। अ. ९)

सूतकं लोहकं ताम्रं तालकं गन्धकं समम्[1]।
तोलद्वयमितं भागं यवक्षारश्च तत्समम्॥
मुस्तकं मरिचं शुण्ठी पिप्पली गजपिप्पली।
हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेद्बुधः॥

---

१ पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्कणं सममिति पाठान्तरम्।

सर्वमेकीकृतं पात्रे क्रियन्ते भावनास्ततः ।
पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गपापचेलिकम् ॥
तत्पुनश्चूर्णयेत्पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम् ।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं तथा चैव त्रिदोषजम् ।
द्वंद्वजं श्लैष्मिकं हन्ति वातगुल्मं विशेषतः ॥
गुल्मकालानलो नाम सर्वगुल्मकुलान्तकृत् ॥

शुद्ध पारद, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध वरकी हरताल और शुद्ध गन्धक २-२ तोले तथा मोथा, स्याह मिर्च, सोंठ, पीपल, गजपीपल, हर्र, वच और कूठका चूर्ण १-१ तोला तथा यवक्षार १० तोले लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली वना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियां मिलाकर खरल कीजिए और फिर पित्तपापड़ा, मोथा, सोंठ, अपामार्ग और पाठा (पाठ) के क्वाथकी पृथक् पृथक् भावना देकर चूर्ण कर लीजिए ।

इसे ४ रत्तीकी मात्रानुसार हर्रके क्वाथके साथ सेवन करनेसे पित्तज, कफज, सन्निपातज और विशेषतः वातज गुल्मका नाश होता है ।

(१५७०) गुल्मकुठाररसः

(यो. र.; वृ. नि. र. । गुल्म.)

नागवङ्गाभ्रकं कान्तं समं ताम्रं समांशकम् ।
जम्बीरस्वरसैर्घृष्ट्वा वटी गुञ्जाप्रमाणिका ॥
मधुनाऽऽर्द्रकनीरेण क्षारयुग्मेन सेविता ।
अजीर्णमामं गुल्मं च हृत्पार्श्वोदरशूलके ॥
नाम्ना गुल्मकुठारोऽयं सर्वगुल्मान् व्यपोहति ।

नाग (सीसा) भस्म, वंग भस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलोह भस्म और ताम्र भस्म वरावर वरावर लेकर जम्वीरी नींवूके रसमें घोटकर रत्ती रत्ती भरकी गोलियां वना लीजिए ।

इस गुल्मकुठार रसको अद्रकके रस, शहद, जवाखार और सज्जीखारके साथ सेवन करनेसे आमाजीर्ण, गुल्म, हृच्छूल, पार्श्वशूल और उदरशूलका नाश होता है ।

(१५७१) गुल्मकुठारो रसः (वै.र.।गुल्म.)

पारदं टङ्कणं गन्धं त्रिफला व्योषतालकम् ।
विषं ताम्रं च जैपालं भृङ्गस्वरसमर्दितम् ॥
गुञ्जामात्रा वटी कार्या आर्द्रकस्य रसान्विता ।
गुल्मे कुठारकः प्रोक्तः सर्वगुल्मनिवारणः ॥

शुद्ध पारद, सुहागेकी खील) शुद्ध गन्धक, त्रिफला (हर्र, वहेड़ा, आमला), त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), शुद्ध हरताल, शुद्ध मीठा तेलिया, ताम्र भस्म और शुद्ध जमालगोटा समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली वना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर भांगरेके स्वरसमें खरल करके रत्ती रत्ती भरकी गोलियां वना लीजिए ।

इन्हें अद्रकके रसके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके गुल्म रोग नष्ट होते है ।

(१५७२) गुल्मगजारातीरसः¹

(र. का. धे.; वृ. नि. र. । गुल्म.)

सूतगन्धकणापथ्यातुत्थारग्वधकान्दढम् ।
मर्दयेद्वज्रिदुग्धेन माषार्द्धं खादयेत् दिनम् ॥

---

१ वृहद्योगतरंगिणी तरंग ८९ में कथित गुल्मारि रसका भी लगभग यही प्रयोग है, उसमें केवल तुत्थ नहीं है ।

गुल्मोदरगजारातिर्नाम्ना भैरवनिर्मितः ।
स्त्रीणां जलोदरं हन्ति पथ्यं शाल्योदनं दधिः॥
चिञ्चाफलं रसं चानुपानमस्मिन्प्रयोजयेत् ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पीपल, हर्र, शुद्ध नीलाथोथा और अमलतासका गूदा समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर थोहरके दूधमें अच्छी तरह घोटिए।

भैरवनिर्मित यह गुल्मगजाराती रस आधे माशेकी मात्रानुसार इमलीके फलके स्वरसके साथ सेवन किया जाय तो गुल्म और स्त्रियोका जलोदर नष्ट होता है।

पथ्य—शालि चावलका भात और दही।

(१५७३) गुल्मनाशनरसः

(र.चिं.म.।स्त.११,र.चं.।गु.,र.र.स.। खं.२ अ.१८)

गन्धकं रसतुल्यश्च द्वौ भागौ सैन्धवस्य च ।
त्रिभागं टङ्कणं प्रोक्तं चतुर्भागं च तुत्थकम्॥५८
पञ्चभागं वराटं स्यात्षड्भागं शङ्खकं तथा ।
वह्निमूलकषायेण चिरबिल्वरसेन च ॥५९॥
आर्द्रकस्य रसेनापि प्रत्येकेन पुटत्रयम् ।
तत्समं मरिचं चूर्णं शाणार्धं भक्षयेन्नरः ॥
पञ्चगुल्मं क्षयं श्वासं मन्दाग्निं चाशु नाशयेत्॥६०

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १—१ भाग, सेंधानमक २ भाग, सुहागेकी खील ३ भाग, नीलाथोथा ४ भाग, कौड़ी भस्म ५ भाग और शंखभस्म ६ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर चीतेकी जड़ और करञ्जके क्वाथ तथा अद्रकके रसकी पृथक् पृथक् ३—३ भावना देकर उसमें इस सबके बराबर स्याहमिर्च का चूर्ण मिला लीजिए।

इसे २ माशेकी मात्रानुसार (अद्रकके रस)के साथ सेवन करनेसे पांच प्रकारके गुल्म, क्षय, श्वास और अग्निमांद्यका अत्यन्त शीघ्र नाश हो जाता है।

(१५७४) गुल्ममदेभसिंहो रसः

(वृ. नि. र. । गु.)

रसगन्धवराटताम्रशङ्ख
विषवङ्गाभ्रककान्ततीक्ष्णमुण्डम् ।
अहिहिङ्गुलटङ्कणं समांशं
सकलं तत्त्रिगुणं पुराणकिट्टम् ॥
पशुमूत्रविशोधितं सुघृष्टा
त्रिफलाभृङ्गतथार्द्रकोत्थनीरैः ।
सुविशोष्य वरामृतालिवासा
स्वरसैरष्टगुणैः पुनर्नवोत्थैः ॥
पृथगग्निघृतं घनं विपाच्य
गुटिका गुञ्जयुता निजानुपानैः ।
ज्वरपाण्डुतृषास्रपैत्यगुल्म
क्षयकासस्वरमग्निमान्द्यमूर्छाः ॥
पवनादिषु दुस्तराष्टरोगान्
सकलान् पित्तहरं गदावृतश्च ।
बहुना किमसौ यथार्थनामा
सकलव्याधिहरो मदेभसिंहः ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कौड़ी भस्म, ताम्र भस्म, शंख भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, वंगभस्म, अभ्रक भस्म, कान्तलोह भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, मुण्डलोह भस्म, नागभस्म, शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) और सुहागेकी खील १—१ भाग तथा गोमूत्रमें

शुद्ध पुराना मण्डूर सबसे ३ गुना लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियां मिलाकर सबको त्रिफलेके क्वाथ एवं भांगरे और अद्रकके स्वरसमें पृथक् पृथक् घोटकर सुखाइये और फिर त्रिफला, गिलोय, भंगरा, वांसा और पुनर्नवाके आठ गुने रसमें पृथक् पृथक् अग्नि पर पकाकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें रोगानुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे ज्वर, पाण्डु, तृषा, रक्तपित्त, गुल्म, क्षय, खांसी, स्वरभंग, अग्निमांद्य, मूर्च्छा, वातादि अष्ठ महाव्याधि और पित्तविकार आदि समस्त रोगोका नाश होता है।

(१५७५) गुल्मवज्रिणी वटी

(र.रा.सुं.; र.सा.सं.; रसें.चि.म.; र.चं.।गुल्म.)

रसगन्धकताम्रञ्च कांस्यं टङ्कणतालकम् ।
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं मर्दयेदतियत्नतः ॥
तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये ।
निर्मिता नित्यनाथेन वटिका गुल्मवज्रिणी ॥
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलायकृदानाहनाशिनी ।
कामलापाण्डुरोगघ्नी ज्वरशूलविनाशिनी ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, कांसा भस्म, सुहागेकी खील और शुद्ध तबकी हरताल १-१ पल लेकर सबको भलीभांति खरल कर लीजिए।

श्रीनित्यनाथ विरचित गुल्मवज्रिणी नामक इन गोलियोंको अग्निबलोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे गुल्म, तिल्ली, अष्ठीला, यकृत्, आनाह (अफारा), कामला, पाण्डु, ज्वर और शूलका नाश होता है। (मात्रा=१-२ रत्ती)

(१५७६) गुल्मशार्दूलो रसः

(र. रा. सुं.; र. चि. म.; र. चं.; ध.; र. सा. सं. गुल्म.)

रसं गन्धं शुद्धलौहं गुग्गुलोः पिप्पलं पलम् ।
त्रिवृता पिप्पली शुण्ठी शठी धान्यकजीरकम् ॥
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं पलार्धं कानकं फलम् ।
संचूर्ण्य वटिका कार्या घृतेन वल्लमानतः ॥
वटीद्वयं भक्षयेच्चार्द्रकोष्णाम्बुपिबेदनु ।
हन्ति प्लीहयकृत्गुल्मकामलोदरशोथकम् ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं रौधिरन्तथा ।
गहनानन्दनाथोक्तरसोयं गुल्मनाशनः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध गूगल, पीपल वृक्षकी छाल, निसोत, पीपल, सोंठ, कचूर, धनियां और ज़ीरा एक एक पल (५ तोले) और धतूरेके बीज (शुद्ध) आधा पल लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर गोघृतमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

गहनानन्दनाथोक्त इस रसकी नित्य २ गोली खाकर पश्चात् अद्रकका उष्ण रस पीनेसे तिल्ली, जिगर, कामला, उदररोग, शोथ तथा वातज, पित्तज, कफज और रक्तज गुल्मका नाश होता है।

(१५७७) गुह्यरोगारि रसः

(र. चं., र. का. धे. । स्त्री.)

पारदगन्धकटङ्कानेकैकान् पद्मिनीकन्दम् ।
चतुरो भागान् खल्वे लिङ्गीद्रावेण मर्दितं त्रिदिनम्

मधुना भावितमीशः स्त्रीनृणां गुह्यजान् रोगान्।
वल्लचतुष्टयमानं युक्तो दुग्धेन वासरत्रितयात् ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और सुहागेकी खील १–१ भाग तथा पद्मिनी कन्द (कमलिनीकी जड़) ४ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य दोनों ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर सबको ३ दिन तक शिवलिङ्गीके रसमें खरल करके एक भावना शहदकी दीजिए।

इसे ३ दिन तक चार वल्ल (८ रत्ती) की मात्रानुसार दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्री पुरुषोंके गुह्य रोग नष्ट होते हैं।

(१५७८) गैरिकगुणाः (र.र.स.।पूर्वख. अ.३)

स्वादुस्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत्।
हिध्मावमिविषघ्नं च रक्तघ्नं स्वर्णगैरिकम् ॥
पाषाणगैरिकं चान्यत्पूर्वस्मादल्पकं गुणैः ॥

गेरु दो प्रकारका होता है, (१) स्वर्णगैरिक [सोनागेरु] और (२) पाषाणगैरिक।

स्वर्ण गैरिक मधुर, स्निग्ध, शीतल, नेत्रोंके लिए हितकारी और कषाय; तथा रक्तपित्त, हिचकी; वमन, विष और रक्तस्राव नाशक है। पाषाणगैरिक इससे अल्प गुणप्रद होता है।

(१५७९) गैरिकभेदाः (र.र.स.।पू.खं. अ.३)

पाषाणगैरिकं चैकं द्वितीयं स्वर्णगैरिकम्।
पाषाणगैरिकं प्रोक्तं कठिनं ताम्रवर्णकम् ॥
अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम् ॥

गेरु दो प्रकारका होता है, (१) पाषाण-गैरिक और (२) स्वर्ण गैरिक।

पाषाणगैरिक कठोर (सख्त) और तांबेके रंगका होता है तथा स्वर्ण गैरिक अत्यन्त लाल, स्निग्ध और कोमल तथा चिकना होता है।

(१५८०) गैरिकशोधनम्

(र. र. स.। पू. खं. अ. ३)

गैरिकं तु गवांदुग्धैर्भावितं शुद्धिमृच्छति।
गैरिकं सत्वरूपं हि नन्दिना परिकीर्त्तितम् ॥

गोदुग्धकी भावना देनेसे ही गेरु शुद्ध हो जाता है।

श्री नन्दीका कथन है कि गेरु सत्व रूप ही होता है (अत एव उसका सत्वपातन नहीं किया जाता।)

(१५८१) गोपीजलः

(र. रा. सुं.; रसें. चि.; र.सा.सं.; ध. ।गुल्म.)

जैपालाष्टौ द्विको गन्धं शुण्ठीमरिचचित्रकम्।
एकःसूतःससौभाग्यो गोपीजल इति स्मृतः ॥
शूलव्याध्याश्रयान् गुल्मान् कोष्ठादिदशपैत्तिकान्
भगन्दरादिहृद्रोगान्नाशयेदेष भक्षणात् ॥

शुद्ध जमालगोटा ८ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और सोंठ, मिर्च, चीता, पारा तथा सुहागेकी खील १–१ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर खरल कीजिए।

यह 'गोपीजल' शूल, गुल्म कोष्ठरोग, दश-पैत्तिक रोग, भगन्दर और हृद्रोग आदिका नाश करता है।

(मात्रा=१–२ रत्ती।)

गोमूत्रसिद्धमण्डूरम् (बं. से.; च. द.)

चूर्ण प्रकरणमें देखिए।

(१५८२) गोमेदगुणाः (र. प्र. सु.। अ. ९)

गोमेदकं पित्तहरं प्रदिष्टं
पाण्डुक्षयघ्नं कफनाशनञ्च।
संदीपनं पाचनमेव रुच्य-
मत्यन्तबुद्धिप्रविबोधनञ्च॥

गोमेद मणि पित्त, पाण्डु, क्षय और कफ नाशक तथा दीपन पाचन, रोचक और अत्यन्त बुद्धिवर्धक है।

(१५८३) गोमेदलक्षणम् (र.प्र.सु.। अ.७)

गोमेदकं रत्नवरं प्रदिष्टं
गोमेदवद्रागयुतं प्रवक्षेत।
सुस्वच्छगोमूत्रसमानवर्णं
गोमेदकं शुद्धमिहोच्यते खलु॥
दीप्तं स्निग्धं निर्दलं मसृणं वै
मूत्रच्छायं स्वच्छमेतत्समञ्च।
एभिर्लिङ्गैर्लक्षितं वै गरीयः
सर्वेषु कार्येषु नियोजनीयम्॥
विच्छायं वा चिप्परं निष्प्रभं च
रूक्षं चाल्पं चावृतं पाटलेन।
निर्भारं वा पीतकाचाभयुक्तं
गोमेदं चेदीदृशं नो वरिष्ठम्॥

गोमेद मणि एक श्रेष्ठ रत्न है जो गोमेदके समान लाल होता है। स्वच्छ गोमूत्रके समान वर्ण (रंग) वाली गोमेदमणि शुद्ध कही जाती है।

जो गोमेदमणि चमकीली, स्निग्ध, दल(परत) रहित, मसृण (स्पर्शमें चिकनी साफ), गोमूत्रसदृश रङ्गवाली, स्वच्छ और समान (जो टेढ़ी तिरछी न हो) होती है वह उत्तम और समस्त कार्योंके लिए उपयुक्त होती है।

धुंधली, चपटी, तेज (ज्योति) हीन, रूक्ष, हल्की और पीले काचके समान रंगवाली गोमेद-मणि निकृष्ट होती है।

(१५८४) गोरक्षवटी

(वृ. यो. त.। त. ८१; र. रा. सुं.; वै. र.; यो. र.; र. चं.। स्वरभेद०)

रसभस्मार्कलोहस्य भावितस्य त्रिसप्तधा।
क्षुद्राफलरसैर्मुद्गतुल्या कार्या वटी शुभा॥
मुखस्था हरते सर्वं स्वरभङ्गमसंशयम्।
गोरक्षनाथैर्गदिता स्वरभेदे कृपालुभिः॥

रससिन्दूर, ताम्र भस्म और लोहभस्म समान भाग लेकर कटेलीके फलके रसमें २१वार घोटकर मूंगके समान गोलियां बना लीजिए।

श्री गोरक्षनाथ कथित इस गोरक्षवटीको मुखमें रखनेसे स्वरभङ्ग (गला बैठना) रोग अवश्य नष्ट होता है।

(१५८५) गौडो रसः (र. र.। शू०)

शुद्धं सूतं मृतं तीक्ष्णं गन्धं भागसम्मितम्।
चूर्णं तयोर्भावयित्वा शतावर्या रसेन च॥
धात्र्या गुडूच्यास्त्रिदिनं खल्वे मर्द्य पुनःपुनः।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेद् घृतेन मधुना पयः॥
अनुपानं पिबेत्प्राज्ञः सर्वशूलनिवारणम्।
वातरोगान् पित्तरोगान् कफरोगान् सुदुस्तरान्॥
त्वग्दोषदेहकार्श्यञ्च दाहमुग्रं निवारयेत्।
गौडो रसः समुद्दिष्टो बलवर्णाग्निवर्द्धनः॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और तीक्ष्ण लोह भस्म १-१ तोले लेकर कज्जली करके लौहभस्म मिलाकर इस चूर्ण को शतावरी, आमला और

गिलोयके रसमें पृथक् पृथक् ३-३ दिन तक खरल कर लीजिए।

इसे ४ रत्तीकी मात्रानुसार शहद और घीमें मिलाकर प्रयोग करें। ऊपर दूध सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूल, भयङ्कर वात पित्त और कफजरोग, त्वग्दोष, शरीरकी कृशता और प्रबल दाह नष्ट होता है तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

(१५८६) गौरीपाषाणभेदाः

(आ. वे. प्र. । अ. १०)

गौरीपाषाणकः प्रोक्तो द्विविधः श्वेतपीतकः ।
श्वेतः शङ्खसदृक्पीतो दाडिमाभः प्रकीर्त्तितः॥४२
श्वेतः कृत्रिमकः प्रोक्तः पीतपर्वतसम्भवः ।
विषकृत्यकरौ तौ हि रसकर्मणि पूजितौ ॥४३॥

गौरीपाषाण (संखिया) दो प्रकारका होता है (१) श्वेत और (२) पीला। श्वेत गौरीपाषाण कृत्रिम और देखनेमें शङ्खके समान होता है तथा पीला पर्वतसे उत्पन्न होता है और रंगमें दाडिमके समान होता है।

यह दोनों ही विष हैं और रस कर्ममें प्रयुक्त होते हैं।

(१५८७) गौरीपाषाणशोधनम्

(आ. वे. प्र. । अ. ११)

कम्पिल्लश्चपलो गौरीपाषाणो नवसादरः ।
बह्निजारोऽथ सिन्दूरं साधारणरसाः स्मृताः ॥
साधारणरसाः सर्वे मातुलुङ्गार्द्रकाम्बुना ।
त्रिवारं भाविताः शुष्का भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥

कमीला, चपल, सङ्खिया, नौसादर, अम्बर और सिन्दूर उपरस (साधारण रस) कहलाते है।

समस्त उपरस बिजौरे नींबू और अदरकके रसमें ३ बार घोटकर सुखा लेनेसे शुद्ध हो जाते हैं।

(१५८८) ग्रहणिकामदवारणसिंहः

(वृ. नि. र.; र. रा. सु. । संग्रह)

सुरभिपारदहिङ्गुलचित्रकान्
गगनभ्रष्टसुटङ्कणजातिकान् ।
कनकबीजमथातिविषाकटु-
त्रयहरीतकिभस्मसुदीप्यकान् ॥
गरलबिल्वकलिङ्गकपित्थकान्
नलदमोचकदाडिमधातकीः ।
जलदशाल्मलिपिच्छयुतान्समान्
कनकसाम्यमफेनमिदं दृढम् ॥
कनकपत्ररसैः परिमर्दयेत्
मरिचमानवटी मधुसंयुता ।
विनिहरेद्ग्रहणीगदमुत्कटं
ज्वरयुतामसतीं च विषूचिकाम् ॥
अग्निमान्द्यमथ शूलविबन्धं
गुल्म शूलमथ पाण्डुममन्दम् ।
सरुधिराममतीव समुत्कटं
ग्रहणिकामदवारणकेसरी ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, हिंगुल, चीता, अभ्रकभस्म, सुहागेकी खील, जावित्री, शुद्ध धतूरेके बीज, अतीस, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), जङ्गी हैड़ (पीली हर्र) की भस्म, अजवायन, विष, बेलगिरी, इन्द्रजौं, कैथके फलका गूदा, खस, केलेका फूल, नागरमोथा, सेंभलका गोंद, धतूरा और अफीम। इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर धतूरेके पत्तोके रसमें खरल करके काली मिर्चके समान गोलियां बनाकर शहदके साथ सेवन

करनी चाहिये। इस "ग्रहणिकामदवारणसिंह" रससे ज्वरयुक्त दुश्चिकित्स्य संग्रहणी, दुष्ट विसूचिका, अग्निमांद्य, शूल, अनेक प्रकारके गुल्म, कठिन पाण्डुरोग और रक्तसंयुक्त आमातिसार नष्ट होता है।

(१५८९) ग्रहणीकपर्दपोटली (र.सा.सं.।ग्र.)

कपर्दतुल्यं रसकन्तु गन्धकं
लौहं मृतं टङ्कणञ्च तुल्यम्।
जयारसेनैकदिनं विमर्द्य
चूर्णेन संवेष्ट्य पुटेच्च भाण्डे ॥
ददीत तत्पोटलिकाभिधानं
वातप्रधानां ग्रहणीं निहन्ति ॥

कौड़ी भस्म, पारद, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म और सुहागेकी खील समान भाग लेकर एक दिन भांगके रसमें घोटकर टिकया बनाकर सुखा लीजिए। तत्पश्चात् उसे दो शरावोंमें चूनेके बीचमें रखकर सम्पुट करके गजपुटमें फूंक लीजिए।

(मात्रा=२-२ रत्ती। अनुपान=तक्र।

(१५९०) ग्रहणीकपाटको रसः

(यो. र.। ग्रह.)

शुद्धैः कर्कवराटकैर्गणनया
भल्लातकांस्तत्समान्।
प्रोतान् बब्बुलकण्टकैर्लघुपुटैः
पक्वाङ्घ्रिभागं रसम् ॥
लेलीतेन समं विचूर्ण्य जयया सप्तानुभाव्यं शिव-
प्रोक्तोऽयं ग्रहणीकपाटकरसस्त्रिवल्लकस्तौषधैः॥

भल्लातक (भिलावों) को बबूलके कांटोंसे जगह जगहसे बींध लीजिए और फिर उनके बराबर (संख्यामें) शुद्ध कौड़ी और गन्धक लेकर तीनोंको लघुपुटमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् उसमें चौथा भाग शुद्ध पारद और गन्धककी कज्जली मिलाकर भांगके रसकी सात भावना दीजिए।

इसे ३ वल्ल (६ रत्ती)की मात्रानुसार यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी रोग नष्ट होता है।

(१५९१) ग्रहणीकपाटपञ्चाननरसः

(र. का. धे.। ग्रह.)

पारदं गन्धकं भागं कपर्दं मरिचं तथा।
रसाद् द्विगुणमेकैकं चूर्णं कृत्वा तु मेलयेत् ॥
युक्त्या कृतस्तु ग्रहणीकपाटमुखपञ्चकः ॥

शुद्ध पारा तथा गन्धक १-१ भाग, कौड़ी भस्म और मिर्चका चूर्ण २-२ भाग लेकर भलीभांति खरल कर लीजिएं।

इसका नाम 'ग्रहणीकपाटपञ्चानन' रस है।

(१५९२) ग्रहणीकपाटरसः[१] (र.चं.।ग्रह.)

जातीफलं टङ्कणमभ्रकं च
धत्तूरबीजं समभागचूर्णम्।
भागद्वयं स्यादहिफेनकस्य
गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥
चणप्रमाणा वटिका विधेया
यत्नाद्विदध्याद् ग्रहणीगदेषु।
सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु
पक्वेष्वपक्वेषु गुदामयेषु ॥
रोगेषु दद्यादनुपानभेदै-
र्मधुप्रयुक्ता ग्रहणीगदेषु।
पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं
रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥

जायफल, सुहागेकी खील, अभ्रक भस्म, धतूरेके बीज १-१ भाग और अफीम २ भाग लेकर महीन चूर्ण करके कुकरौंधेके रसमें घोटकर चनेके समान गोलियां बना लीजिए।

यह गोलियां उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे साम ग्रहणी, रक्तग्रहणी, शूल, पक्व और अपक्व अतिसारका नाश होता है।

साधारणतः ग्रहणीमें शहदके साथ खिलानी चाहिएं।

पथ्य—दही, भात।

(१५९३) ग्रहणीकपाटरसः [२]

(र. प्र. सु.। अ. ८)

तारं स्वर्णं माक्षिकं शुद्धलोहं
भागं चैकं गन्धकं भागयुग्मम्।
शुद्धं सूतं मारितं तत्त्रिभागं
खल्वे सर्वं मर्दितं वासरैकम्॥
सर्वं योज्य हारिणे शृङ्गकेऽपि
लेप्यं मृत्स्ना वाससा वेष्टितं च।
वाराहाख्ये तत्पुटे गर्त्तमध्ये
आरण्यैर्वै गोमयैः पाचयेद्धि॥
उत्तार्यैनं स्वाङ्गशीतं प्रकुर्यात्
खल्वे धृत्वा मर्दयेत्तं सुवैद्यः।
पश्चादेनं रसेनाथ सम्यक्
भृङ्गाह्वया भावयेत्सप्तवारान्॥
चूर्णं दत्वा लोध्रमुस्तामदाह्व-
च्छिन्ना पाठा शक्रबीजोद्भवश्च।
कापित्थैर्वा स्वरसैः सुशृतैर्वा
भाव्यं सर्वं त्रीणि वाराणि सम्यक्॥
सम्यक् शुष्कं गालितं वस्त्रखण्डे
माषं चैकं लेहितं माक्षिकेण।
कृष्णाचूर्णैर्माषयुग्मैश्च युक्तं
हन्याच्चायं ग्रहणीं त्रिदोषजां वै॥

चांदी भस्म, सोना भस्म, सोना मक्खी भस्म और लोह भस्म एक एक भाग, गन्धक २ भाग, पारदभस्म (रससिन्दूर) ३ भाग, लेकर सबको १ दिन अच्छी तरह खरल करके हरिणके सींगमें भर दीजिए और उसके ऊपर कपड़मिट्टी करके अरने उपलोंमें वराहपुटमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् स्वाङ्ग शीतल होने पर निकालकर चूर्ण करके उसे भांगके स्वरसकी ७ भावना दीजिए और फिर उसमें लोध, मोथा, कस्तूरी, गिलोय, पाठा और इन्द्रजौंका चूर्ण एक एक भाग मिलाकर कैथके स्वरस या काथकी तीन भावना देकर सुखाकर कपड़ेसे छान लीजिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार २ मा. पीपलके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषज संग्रहणीका नाश होता है।

(१५९४) ग्रहणीकपाटरसः [३]

(र. सा. सं.। ग्रह.)

रसाभ्रगन्धान्क्रमवृद्धियुक्तान्
जङ्घारसेन त्रिदिनं विमर्द्य।
जयन्तिकाभृङ्गकलम्बिनीरै-
र्दिनं यवक्षारसटङ्कणश्च॥
क्षिप्त्वा तु गन्धस्य च तुल्यभागं
वातारितैलेन युतं पुटित्वा।
गुडूचिकाशाल्मलिकारसेन
जया रसेनापि विमर्द्य शाणम्॥

मरीचसार्द्धं मधुना समेतं
दद्दीत पथ्यं दधिभक्तकच्च ॥

शुद्ध पारद १ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग और शुद्ध गन्धक ३ भाग लेकर सबको ३ दिन तक काकजंघाके रसमें घोटकर १-१ दिन जयन्ती, भांगरा और नाड़ीशाकके रसमें घोटिये; तत्पश्चात् उसमें ३-३ भाग जवाखार और सुहागेकी खील मिलाकर अरण्डीके तैलमें घोटकर यथाविधि सम्पुट करके गजपुटमें फूंक दीजिए और फिर गिलोय, सेमल और भांगके रसमें पृथक् पृथक् खरल कर लीजिए।

इसे ४ माशेकी मात्रानुसार (२ तोला) शहद और (१ माशा) पीपलके चूर्णके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

पथ्य=दही भात।

(व्यवहारिक मात्रा=४ रत्ती।)

(१५९५) ग्रहणीकपाटरसः [४]

(र. रा. सुं.; र. का.; र. चं.। ग्र., यो. त.। त. २२; वृ. यो. त.। त. ६७)

शुद्धाहिफेनबलिसूतकपर्दभस्म
हालाहलोपणविशुद्धसुवर्णबीजैः।
अम्भोधिपङ्क्तिकरशैलधराष्टविंश-
त्यंशैर्विचूर्णिततमैर्ग्रहणीकपाटः॥
वल्लोऽस्य हन्ति मधुना सह जीरकेण
भुक्तोऽतिसारमपि संग्रहणीमुदग्रम्।
आमं विपाच्य सहसा जनयत्यवश्यं
वैश्वानरं जठरसार्त्तिनमार्त्तिभाजम्॥

शुद्ध अफीम ४ भाग, शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध पारा २ भाग, कौडी भस्म ७ भाग, वछनाग विष (शुद्ध) १ भाग, स्याह मिर्चे ८ भाग, शुद्ध धतूरेके बीज २० भाग लेकर महीन चूर्ण कर लीजिए।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार शहद और (३ माशे) जीरेके चूर्णके साथ सेवन करनेसे भयङ्कर अतिसार और ग्रहणी तथा आम नष्ट होकर अग्निदीप्त होती है।

(१५९६) ग्रहणीकपाटरसः [५]

(र. सा. सं.। ग्र.)

तुल्यं कान्तं रसं तालं माक्षिकं टङ्कणन्तथा।
सपादनिष्कं प्रत्येकं पञ्चनिष्कं वराटकम् ॥९०
द्विनिष्कं गन्धकं सर्वं पिष्ट्वा जम्बीरजैर्द्रवैः।
अर्धभारकरीषेण पुटितं भस्मशोभनम्॥
प्रदद्यादग्रहणीगुल्मक्षयकुष्ठप्रमेहके ॥९१॥

कान्तिसार लोह भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध हरताल, सोनामक्खी भस्म और सुहागा १।-१। निष्क (प्रत्येक ५ माशे) और कौड़ी भस्म ५ निष्क तथा शुद्ध गन्धक २ निष्क लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाकर अन्य समस्त ओषधियों का चूर्ण मिलाकर जम्बीरी नीम्बूके रसमें घोटकर टिकिया बना लीजिए और सम्पुटमें बन्द करके गजपुटको आधे भार (२॥ भार) उपलो (कण्डों) से भरकर उसके बीचमें उस पुटको रखकर अग्नि लगा दीजिए। स्वांग शीतल होने पर औषधको चूर्ण कर लीजिए।

इसे (८ रत्तीकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर) सेवन करनेसे ग्रहणी, गुल्म, क्षय, कुष्ट और प्रमेह रोग नष्ट होता है।

(१५९७)ग्रहणीकपाटरसः(वज्रकपाटरसः)
(र. चं.; र. सा. सं., यो. र.; र. रा. सुं. । ग्र.; र. मं. । अ० ६, रसें. चि. म. । अ० ९; र. का. धे.)

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकाः।
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान्॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत्।
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत्॥
बलारसैः सप्तबेलमपामार्गरसैस्त्रिधा।
लोध्रं प्रतिविषामुस्तधातकीन्द्रयवामृता॥
प्रत्येकमेतत्स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा।
माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा॥
हन्यात्सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि।
कपाटो ग्रहणीरोगे रसोयं वह्निदीपनः॥

चांदी भस्म, मुक्ता भस्म, स्वर्ण भस्म और लोह भस्म १-१ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग और शुद्ध पारद तीन भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके कैथके रसमें घोटिए और फिर उसे हरिनके सींगमें भरकर उसके ऊपर कपर मिट्टी करके मध्य पुटमें फूंक दीजिए और स्वांग शीतल होने पर कपरमिट्टीको अलग करके (सींग समेत) पीस लीजिए। तत्पश्चात् उसे खरैटीके रसकी ७ भावना और चिरचिटा, लोध, अतीस, मोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ और गिलोयके क्वाथकी ३-३ भावना देकर चूर्ण करके रख लीजिए।

यह "ग्रहणी कपाट" रस अग्निदीपक और सर्व प्रकारके अतिसार तथा संग्रहणी रोगनाशक है।

नोट-प्र. सं. १५९३ और इसमें बहुत थोड़ा अन्तर है। दोनो योग लगभग समानही है।

मात्रा=१ माशा। अनुपान शहद (२ तो०) और मिर्चका चूर्ण (१ माषा)।

व्यवहार=१-१ माशा औषध ३ बार खानी चाहिए।

(१५९८)[संग्रह]ग्रहणीकपाटरसः(बृहद्)
र. सा. सं.; र. रा. सुं.; र. चं.; भै. र. । ग्रह.; र. मं. । अ. ६)

मुक्तासुवर्णं रसगन्धटङ्क-
मभ्रं कपर्दी रसतुल्यभागः।
सर्वैस्समं शङ्खकचूर्णमिष्टं
खल्ले च भाव्योऽतिविषाद्रवेण॥
गोलञ्च कृत्वा मृदुकर्पटस्थं
सम्पाच्य भाण्डे दिवसार्धकञ्च।
सर्वाङ्गशीते रस एष भाव्यो
धुस्तूरवह्निमुसलीद्रवैश्च॥
लौहस्य पात्रे परिभावितश्च
सिद्धो भवेत्स ग्रहणीकपाटः।
वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तः
पित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः॥
कफोत्तरायां विजयारसेन
कटुत्रयेणाज्ययुतो ग्रहण्याम्।
क्षये ज्वरे चार्शसि पट्प्रकारे
भगन्दरे चारुचिपीनसे च॥
मेहे च कृच्छ्रे गतधातुवर्धने
गुञ्जाद्वयञ्चास्य महामयघ्नम्॥

मोती, सोना, पारा, गन्धक, सुहागा, अभ्रक भस्म और कौड़ी १-१ भाग और शंख ७ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए

तत्पश्चात् अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर और अतीसके क्वाथमें घोटकर गोला बना लीजिए, फिर उसे सम्पुटमें बन्द करके (वालुका यन्त्रमें) आधे दिनकी अग्नि दीजिए। स्वांग शीतल होनेपर औषधको निकालकर लोहपात्रमें डालकर एक एक भावना धतूरा, चीता और मूसलीके रसकी दीजिए। बस ग्रहणीकपाटरस तैयार है।

इसे वातप्रधान ग्रहणीमें मिर्चके चूर्ण और घीके साथ, पित्तज ग्रहणीमें शहद और पीपलके चूर्णके साथ तथा कफज संग्रहणीमें भांगके रस, त्रिकुटेके चूर्ण और घीके साथ सेवन कराना चाहिए।

इसके सेवनसे क्षय, ज्वर, ६ प्रकारकी बवासीर, भगन्दर, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षयादि रोगोंका नाश होता है।

मात्रा=२ रत्ती।

(१५९९) ग्रहणीकपाटो रसः [१]

(र. रा. सु.; र. चं. । ग्रह.)

श्वेतसर्जस्य शुद्धस्य गन्धकस्य रसस्य च।
शुभेऽह्नि पृथगादाय चूर्णं माषचतुष्टयम् ॥
एकीकृत्य शिलाखल्ले दद्यात्तेपान्तदा रसम्।
सूर्यावर्त्तस्य बिल्वस्य शृङ्गाटस्य च पत्रजम् ॥
प्रत्येकं पलमेकैकं दापयेद् ग्रहणीगदे।
दापयेत्सततो यत्नाद् दधिभक्तं समाचरेत् ॥
असंवृत्तगुदद्वारं कपाटमिव ढक्कयेत्।
अतश्च ग्रहणीरोगकपाटोऽयं रसस्मृतः ॥

सफेद राल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा ४-४ माशे लेकर घोटकर खरल कर लीजिए और फिर उसमें हुलहुल, बेलपत्र और सिंघाड़ेके पत्तोंका १-१ पल रस डालकर खूब खरल कीजिए।

इसे नित्य प्रति सेवन करनेसे प्रबल संग्रहणी रोग नष्ट होता है। पथ्य-दही भात।

(मात्रा=२-३ रत्ती)

(१६००) ग्रहणीकपाटो रसः [२]

(र. रा. सुं.; यो.र.। संग्र., र. र. स.। खं.२ अ.१६ वृ. यो. त.। त. ६७)

रसेन्द्रगन्धातिविषाभयाभ्र
क्षारद्वयं मोचरसं वचा च।
जैपालजम्बीररसेन घृष्टः
पिण्डीकृतः स्याद् ग्रहणीकपाटः ॥
अस्यार्धमासं मधुना प्रभाते
शम्बूकभस्माज्यमरीचयुक्तम्।
सर्वातिसारं ग्रहणीं ज्वरं च
शूलाग्निमान्द्यं च ह्यरोचकञ्च ॥
निहन्ति सद्यश्च तथामवातं
द्वित्रिप्रयोगेन रसोत्तमोयम् ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अतीस, हर्र, अभ्रक भस्म, जवाखार, सज्जीखार, मोचरस, वच और जमालगोटा (शुद्ध) समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर नींबूके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इसे प्रातःकाल आधे माशेकी मात्रानुसार शहद, शंखभस्म, घी और मिर्चके चूर्णके साथ सेवन करनेसे २-३ मात्रामेंही सर्व प्रकारके अतिसार, ग्रहणी, ज्वर, शूल, अग्निमांद्य, अरुचि और आमवात रोग नष्ट हो जाते हैं।

(१६०१) ग्रहणीकपाटो रसः [३]

(र. रा. सु., र. सा. सं. । ग्रह.)

गिरिजाभवबीजकज्जली
परिमर्द्यार्द्ररसेन शोषिता ।
कुटजस्य तु भस्मनापुनस्तु
द्विगुणेनाथ विमर्द्य परिमिश्रिता ॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यं सम्यग्गुञ्जाचतुष्टयम् ।
अजाक्षीरेण दातव्यं क्वाथेन कुटजस्य वा ॥
यूषं देयं मसूरस्य वारिभक्तञ्च शीतलम् ।
दध्नासह पुनर्देयं ग्रासादौ रक्तिकाद्वयम् ॥
वर्द्धयेद्दशपर्यन्तं ह्रासयेत्क्रमशस्तथा ।
निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशेषात् कुक्षिमार्दवम् ॥

शुद्ध पारा और गन्धक समान भाग लेकर कज्जली करके अद्रकके रसमें घोटकर सुखा लीजिए और फिर उसमें दोगुनी कुड़ेकी छालकी भस्म मिलाकर भली भांति खरल कर लीजिए।

इसे ४ रत्तीकी मात्रानुसार बकरीके दूध या कुड़ेकी छालके क्वाथके साथ सेवन करना चाहिए, अथवा प्रथमदिन भोजनके समय प्रथम ग्रासमें २ रत्ती औषध खाकर ऊपरके दही पिएं और फिर प्रतिदिन १–१ रत्ती मात्रा बढ़ाते हुवे १० रत्ती तक पहुंचने तक इसी प्रकार सेवन करते रहें और फिर प्रतिदिन १–१ रत्ती घटाकर सेवन करें। इसके सेवनसे सब प्रकारका ग्रहणीरोग नष्ट होता है।

(१६०२) ग्रहणीकपाटो रसः [४]

(र. रा. सुं. । ग्र.)

दरदं गन्धपाषाणं तुगाक्षीर्य्याहिफेनकम् ।
तथा वराटिकाभस्म सर्वं क्षीरेण मर्दयेत् ॥
रक्तिकायुग्मानेन छायाशुष्कां वटीं चरेत् ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति रक्तातीसारमुल्वणम् ॥

शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ), शुद्ध गन्धक, बंसलोचन, अफीम और कौड़ी भस्म समान भाग लेकर सबको दूधमें घोटकर २–२ रत्तीकी गोलियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

इनके सेवनसे अनेक प्रकारकी संग्रहणी और रक्तातिसार नष्ट होता है।

(१६०३) ग्रहणीकपाटो रसः [५]

(भै. र.; र. सा. सं.; र. र.; र. रा. सुं. । ग्रह.)

रसगन्धकयोश्चापि जातीफलवङ्गयोः ।
प्रत्येकं शानमानञ्च श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥
सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ।
शृङ्गाटकस्य पत्राणां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥
चण्डातपेन संशोष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ।
बिल्वपत्ररसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥
दध्ना च भोजनीयश्च ग्रहणीरोगनाशनः ।
पाण्डुरोगमतीसारं शोथं हन्ति तथा ज्वरम् ॥
ग्रहणीकपाटनामा रसः परमदुर्लभः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल और लौंग १–१ शाण (४ माशे) लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर खूब खरल कीजिए और फिर उसमें हुलहुल, बेलपत्र और सिंघाड़ेके पत्तोका ५–५ तोले स्वरस मिलाकर तेज़ धूपमें रख दीजिए और सूखनेपर गोलियां बना लीजिए।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार बेलपत्रके रसके साथ सेवन करने और दहीभात खानेसे ग्रहणीरोग नष्ट होता है।

यह गोलियां पाण्डु, अतिसार, शोथ और ज्वरका भी नाश करती है।

(१६०४) ग्रहणीकपाटो रसः [६]

(भै.र., र.सा.सं., र.रा.सुं.; धन्व. । ग्रह०)

टङ्कणक्षारगन्धाश्मरसं जातीफलन्तथा।
तथा[1] खदिरसारञ्च जीरकं श्वेतधूनकम्॥
कपिहस्तकबीजञ्च तथैव वकपुष्पकम्[2]।
एषां शाणं समादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥
विल्वपत्रककार्पासफलं शालिश्च दुग्धिका।
शालिश्च मूलं कुटजत्वचः कञ्चटपत्रजम्॥
सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक्।
रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद्दिवसत्रयम्॥
दधिमस्तु ततः पेयं पलमात्रप्रमाणतः।
अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धताञ्जयेत्॥
आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम्।
रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्यं नैवात्र युक्तितः॥

सुहागेकी खील, जवाखार, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, जायफल, खैरसार, जीरा, सफेद राल, कौंचके वीज और अगथियाके फूल बरावर बरावर लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर भलीभांति खरल कीजिए और उसे वेलपत्रके रस, कपासके क्वाथ, शालि शाकके क्वाथ, दूधी, शालि शाककी जड़, कुड़ेकी छाल और जलपीपलके पत्तोके रसकी एक एक भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां वना लीजिए।

इन गोलियोको ३ दिन तक १पल (५तोले) दधि मस्तुके साथ सेवन करनेसे सैंकड़ो औषधोंसे शान्त न होनेवाली प्रबल संग्रहणी भी नष्ट हो जाती है।

यह आम, शूल, ज्वर, खांसी, श्वास, शोथ और प्रवाहिकाका नाश करती है।

ग्रहणी रोगमें रक्तस्रावक पदार्थोसे परहेज़ करना चाहिए।

(१६०५) ग्रहणीकपाटो रसः [७]

(र. रा. सुं.; वै. र.; वृ. नि. र. । संग्रहणी)

पारदाद्द्विगुणो गन्धस्ताभ्यां तुल्यं कटुत्रिकम्।
अजाजीं टङ्कणं धान्यं हिङ्गुजीरयवानिका॥
प्रत्येकं द्विगुणं सूताद्रुचकञ्च चतुर्गुणम्।
सर्वेषाञ्च समा देया दग्धा शुभ्रवराटिका॥
सर्वं एकीकृतं चूर्णं माषमात्रमितं ततः।
तक्रेणालोड्य मतिमान् भक्षयेत्सततं नरः॥
ग्रहणीकपाटको ह्येष हितः स्याद् ग्रहणीगदे॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल) ३ भाग और जीरा, सुहागेकी खील, धनिया, हींग, काला जीरा तथा अजवायन २-२ भाग, काला नमक ४भाग और इन सबके समान कौड़ी भस्म लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली वना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर खरल कीजिए।

इसे नित्य प्रति तक्रमें मिलाकर सेवन करनेसे ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

(मात्रा=३-४ रत्ती।)

---

[1] विल्वं। [2] च मधूलिका। [3] तथा चोरकपुष्पकमिति पाठान्तराणि।

(१६०६) ग्रहणीगजकेसरी रसः [१]

(वृ. नि. र.; यो. र.; र. चं., वै. र. । संग्र.; वृ. यो. त. । त. ६७)

गन्धं पारदमभ्रकं च दरदं लोहञ्च जातीफलम् ।
बिल्वं मोचरसं विषं प्रतिविषं व्योषं तथा धातकी॥
भङ्गामप्यभयां कपित्थजलदौ दीप्यानलौ दाडिमम्
टङ्काद्भस्मकलिङ्गकान्कनकजं बीजं च यक्षेक्षणम्॥
एतत्तुर्यमफेनमेतदखिलं संमर्द्य संचूर्णयेत् ।
धत्तूरच्छदजै रसैःसुमतिमान्कुर्यान्मरीचाकृतिम्॥
दत्ता सा ग्रहणीगदं सरुधिरं सामं सशूलं चिरा-
तीसारं विनिहन्ति जूर्त्ति सहितां तीव्रां विशूचीमपि
साध्यासाध्यमपि स्वयं परिहरेदुक्तानुपानैरपि ।
नाम्ना तु ग्रहणीमतङ्गजमदध्वंसीभकण्ठीरवः ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, हिंगुल (शिंगरफ), लोह भस्म, जायफल, बेलगिरी, मोचरस, मीठा तेलिया (शुद्ध), अतीस, सोंठ, मिर्च, पीपल, धायके फूल, भांग, हर्र, कैथका गूदा, नागरमोथा, अजवायन, चीता, अनार, सुहागेकी खील, इन्द्रजौं, धतूरेके बीज (शुद्ध) और करञ्जकी गिरी समान भाग तथा अफीम इन सबसे चतुर्थांश लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर धतूरेके पत्र–स्वरसमें खरल करके गोल मिर्चके समान गोलियां बना लीजिए ।

इनके सेवनसे रक्त, शूल और आम संयुक्त ग्रहणी, पुराना अतिसार और पीड़ायुक्त भयङ्कर विसूचिका नष्ट होती है ।

१ भृष्टामप्येति पाठान्तरम् ।

(मात्रा=२ रत्ती । अनुपान=जायफलका पानी।)
नोट–वैद्य रहस्यमें इसका नाम "ग्रहणीकपाट" है ।

(१६०७) ग्रहणीगजकेसरी रसः [२]

(र. र स. । उ. खं. अ. १६)

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं तुल्यभागयोः ।
द्रावयित्वायसे पात्रे रसतुल्यं विनिक्षिपेत् ॥७१
चराचरभवं भस्म तत्र माक्षिकसम्भवम् ।
गन्धपाषाणसहितं पात्रे लोहमये क्षिपेत् ॥७२॥
तत्काष्ठेन विलोड्याथ निक्षिपेत्कदलीदले ।
स्वर्णं समांशकं कृत्वा रसेनार्धांशिकं क्षिपेत् ॥७३
चराचरभवं भस्म गन्धपाषाणसाधितम् ।
तत्काष्ठेन विलोड्याथ निक्षिपेत्कदलीदले ॥७४
तत आच्छाद्य संचूर्ण्य विधायाऽऽयसभाजने ।
अक्षमात्रं क्षिपेद्भस्म तत्र माक्षिकसम्भवम्॥७५
सम्यङ्निश्चन्द्रतां नीतं व्योमभस्मपलोन्मितम् ।
विषं विषा च गान्धारी मोचरसं सजीरकम् ॥७६
सर्वं समांशिकं कृत्वा रसे चार्धांशिकं क्षिपेत् ।
सर्वमेतन्मर्दयित्वा भावयेदतियत्नतः ॥७७॥
जयन्त्या च महाराष्ट्र्या गङ्गाकिन्याऽश्वगन्धया
पञ्चकोलकषायैश्च कुर्याच्चूर्णं ततःपरम् ॥७८॥
इति सिद्धो रसःसोऽयं ग्रहणीगजकेसरी ।
नामतो नन्दिना प्रोक्तः कर्मतश्च सुधासमः॥७९
वल्लेन प्रमितश्चायं रसः शुण्ठ्या घृताक्तया ।
सेवितो ग्रहणीं हन्ति सत्संग इव विग्रहम् ॥
पथ्यमत्र प्रदातव्यं स्वल्पाज्यं दधितक्रयुक् ।
हितं मितं च विशदं लघु ग्राहि रुचिप्रदम् ॥
पाचनो दीपनोऽत्यर्थमामघ्नो रुचिकारकः ।
तत्तदौषधयोगेन सर्वातीसारनाशनः ॥
वध्नात्यपि मलं शीघ्रं नाध्मानं कुरुते नृणाम्॥८३

शुद्ध पारा और गन्धक १-१ भाग लेकर कज्जली बना लीजिए और उसे लोहेकी कढाइमें डालकर अग्निपर पिघलाकर उसमें १-१ भाग कौड़ी भस्म, सोनामक्खी भस्म और शुद्ध गन्धक-चूर्ण डालकर लकड़ीसे भलीभांति मिलाकर केलेके पत्रपर ढाल कर पर्पटी बना लीजिए। तत्पश्चात् १-१ भाग पारा, गन्धक, सोनाभस्म और आधा भाग कौड़ी भस्मकी कज्जली बनाकर पुनः पिघला-कर उपरोक्त विधिसे पर्पटी बना लीजिए। अब इन दोनो पर्पटियोंको लोहेके खरलमें पीसकर १ कर्ष (१। तोला) सोनामक्खी भस्म और १ पल (५तो.) निश्चन्द्र अभ्रक भस्म और मीठा तेलिया, अतीस, कटेली, मोचरस और ज़ीरेका समभाग मिश्रित चूर्ण उपरोक्त समस्त औषधसे आधा मिलाकर खरल करके अरनी, जलपीपल, गुञ्जा, असगन्ध और पञ्चकोलके रसकी भावना देकर सुखाकर सुरक्षित रखिए।

श्री नन्दिकथित अमृतोपम इस ग्रहणी गज-केसरी रसको २ रत्तीकी मात्रानुसार घीमें भुनी हुई सोंठके चूर्णके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी रोग इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सत्संगसे विग्रह।

इसके सेवन कालमें स्वल्प घृतयुक्त दहीभात और तक्रका सेवन करना चाहिए तथा हितकारी, परिमित, विशद, लघु, ग्राही और रोचक पदार्थ खाने चाहिएं।

यह अत्यन्त पाचन, दीपन, आमनाशक, रुचिकारक और अनुपान भेदसे सर्व प्रकारके अतिसारोंका नाश करनेवाला है।

इसके सेवनसे मल अत्यन्त शीघ्र कठिन हो जाता है और अफारा भी नहीं होता।

(१६०८) ग्रहणीगजपञ्चाननरसः

(र. का. धे. । ग्रह०)

सूतःस्वीयचतुर्गुणेन बलिना युक्तःमहामण्डुकी।
ब्राह्मीकाञ्चनलाङ्गलीहरिवधूकासघ्नविम्बीद्रवैः ॥
पिष्ट्वा वासरयुग्ममेव पचितं तद्गोलकं वालुका।
यन्त्रे भाण्डगते तदौषधरसं दत्वा मुहुःशोषितम्॥
पश्चादल्पपुटं ददीत च कलांशं त्र्यूषणं टङ्कणम्।
देयं वल्लचतुष्टयञ्च सितया त्वग्दोषभृतक्रमीन् ॥
हित्वा वै सकलान् गदान् विजयते ग्रायः प्रयोगादयम्।
श्रीवृद्धार्चनपूर्वकं मुनिवरं कृत्वा भिषग्योजयेत् ॥
पथ्यभक्तसितासमूत्रयमलैर्दध्ना च देयं लघु।
क्षीणे मुद्गरसःसिता समुचिता काया च शान्ता क्रिया ॥
त्याज्यं पित्तलमात्रमत्र निखिलं मांसं च जीरं सदा।
त्याज्यं स्वस्थवतां विशुद्धवपुषां घस्त्रत्रयम् सेवितम् ॥
कान्ति काञ्चनसन्निभां किलबलं भीमस्य तुल्यं च तत्पुष्टिं।
वीर्यबलं नृणां वितनुते व्याधीभपञ्चाननः ॥

१ भाग शुद्ध पारद और ४ भाग शुद्ध गन्धककी कज्जली करके उसे महामण्डूकी, ब्राह्मी, धतूरा, कलिहारी, तुलसी, कसौंदी और कन्दूरीके रसमें २ दिन तक घोटकर गोला बना लीजिए और उसे वालुका यन्त्रमें पकाइये तथा पकते समय उसमें उपरोक्त ओषधियोंका रस डालते रहिए और

फिर एक लघु पुट देकर उसमें १६वां भाग सोठ, मिर्च, पीपल और सुहागेका चूर्ण मिलाइये।

इसे ४ वल्ल (८ रत्ती)की मात्रानुसार मिश्रीके साथ सेवन करनेसे त्वग्दोष, भूतबाधा, कृमि तथा प्रायः अन्य समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

इसे मुनिवर बुद्धदेवका पूजन करनेके पश्चात् सेवन कराना चाहिए। इसके सेवनसे स्वर्ण सदृश कान्ति और भीमके समान बल तथा वीर्यादि प्राप्त होता है।

पथ्य=भात, मिश्री, गोमूत्र, घृत, तैल, दही और लघु भोजन। औषध पच जानेपर मूंगका यूष और मिश्री तथा पित्तनाशक पदार्थ खिलाना चाहिएं।

अपथ्य—पित्तवर्द्धक पदार्थ, मांस और ज़ीरा।

(१६०९) ग्रहणीगजेन्द्रवटिका

(भै. र.; र. च; र. सा. सं., र. र.। ग्र. चि.)

रसगन्धकलोहानि शङ्खटङ्कणरामठम्।
शटीतालीसमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम्॥
धातक्यातिविषा शुण्ठी गृहधूमो हरीतकी।
भल्लातकं तेजपत्रं जातीफललवङ्गकम्॥
त्वगेलाबालकं बिल्वं मेथी शक्राशनस्य च।
रसैःसंमर्द्य वटिका रसवैद्येन कारिता॥
गहनानन्दनाथेन भाषितेयं रसायने।
ग्रहणीगजेन्द्रसंज्ञेयं श्रीमता लोकरक्षणे॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वरातिसारनाशिनी।
शूलगुल्माम्लपित्तांश्च कामलां च हलीमकम्॥
बलवर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषे।
कण्डूं कुष्ठं विसर्पञ्च गुदभ्रंशं कृमिञ्जयेत्॥
माषद्वयां वटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः।
वयोग्निबलमावीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, शंख-भस्म, सुहागेकी खील, हींग, कचूर, तालीसपत्र, नागरमोथा, धनिया, जीरा, सेंधानमक, धायके फूल, अतीस, सोठ, घरका धुवां, हर्र, शुद्ध भिलावा, तेजपात, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, नेत्रबाला, बेलगिरी और मेथी समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली कर लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर इन्द्रजौके क्वाथमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

श्री गहनानन्दनाथ कथित यह "ग्रहणी गजेन्द्र वटिका" २ माशे या अग्नि बलानुसार न्यूनाधिक मात्रानुसार बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे अनेक प्रकारका ग्रहणीरोग, ज्वरातिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, कण्डू (खाज), कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और कृमिका नाश होता है एवं बल, वर्ण, अग्नि और आयुकी वृद्धि होती है।

(१६१०) ग्रहणीवज्रकपाटरसः [१]

(र. सा. सं.। ग्र.)

सूतं गन्धं यवक्षारं जयन्त्युग्राभ्रटङ्कणम्।
जयन्तीभृङ्गजम्बीरद्रवैः पिष्ट्वा दिनत्रयम्॥
यामार्धं गोलकं स्वेद्यं मन्देन पावकेन च।
शीते जयारससमं शाल्मलीविजयाद्रवैः॥
भावयेत्सप्तधा वज्रकपाटःस्याद्रसोत्तमः।
माषद्वयं त्रयं वास्य मधुना ग्रहणीञ्जयेत्॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जवाखार, जयन्ती, वच, अभ्रक भस्म और सुहागेकी खील बराबर

बराबर लेकर प्रथम पारे गन्धकको घोटकर कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् उसे ३ दिन तक जयन्ती, भांगरा और जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर गोला बना लीजिए और उसे (पानोंमें लपेटकर) हांडीमें रखकर आधा पहर तक मन्दाग्निसे स्वेदित कीजिए और फिर स्वांगशीतल हो जाने पर निकाल कर जया, सेंभलकी जड़ और भांगके रसकी ७–७ भावना दीजिए।

यह "ग्रहणीवज्रकपाटरस" २–३ माशेकी मात्रानुसार शहदके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी रोगको नष्ट करता है।

(१६११) ग्रहणीवज्रकपाटरसः [२]

(र. का. धे. । ग्र.)

रसभस्माभ्रकं गन्धं टङ्कणविजया वचा ।
यवक्षारं समं सर्वं मर्दयेन्मार्कवद्रवैः ॥
जीरकस्य रसैर्मर्द्य दिनैकं तं च गोलकम् ।
शोषयित्वा पचेल्लोहपात्रे दण्डचतुष्टयम् ॥
शनैस्तु तं समांशेन क्षिप्त्वा मोचरसं नवम् ।
भावयेद्विजयाद्रावैःसप्तधा घर्मरक्षितम् ॥
माषद्वयमितां मात्रां लिहेन्माक्षिकसंयुताम् ।

शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, सुहागेकी खील, भांग, वच और जवाखार समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर जीरे और भांगरेके रसमें १ दिन घोटकर एक गोला बनाइये और उसे सुखाकर लोहपात्रमें रखकर २ घड़ी तक अग्निपर पकाइये। तत्पश्चात् उसमें उसके बराबर मोचरसका चूर्ण मिलाकर भांगके रसकी ७ भावना धूपमें दीजिए (रस डाल डालकर धूपमें सुखाइये।)

इसे २ माशेकी मात्रानुसार शहदमें खानेसे ग्रहणीरोग नष्ट होता है।

(१६१२) ग्रहणीशार्दूलचूर्णम् (रसः)

(भै. र. । ग्रहण्य०)

रसगन्धकलौहाभ्रं हिङ्गुर्लवणपञ्चकम् ।
हरिद्रे पाकलश्चैव वचामुस्तविडङ्गकम् ॥
त्रिकटुत्रिफलाचित्रमजमोदायमानिका ।
गजोपकुल्या क्षाराणि तथैव गृहधूमकम् ॥
एतेषां कार्षिकं चूर्णं विजयाचूर्णकं समम् ।
माषद्वयमिदं चूर्णं शालितण्डुलवारिणा ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय ग्रहणीगदनाशनम् ।
अग्निश्च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ॥
सर्वातीसारशमनं तृष्णाज्वरविनाशनम् ।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥
आमातिसारमखिलं विशेषाच्छ्वयथुं जयेत् ।
असाध्यां ग्रहणीं हन्ति पाण्डुप्लीहचिरज्वरान् ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, हींग, पांचो नमक (सेंधानमक, कालानमक, समुद्र नमक, खारी नमक, काच लवण), हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, वच, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हैड़, बहेड़ा, आमला, चीता, अजमोद, अजवायन, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा और घरका धुवां १–१ कर्ष; तथा भांगका चूर्ण इन सबके बराबर लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर खरल कीजिए।

इसे प्रातःकाल २ माशेकी मात्रानुसार चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी, तृष्णा, ज्वर और पक्वातिसार, आमातिसार, अनेक वर्ण संयुक्त तथा वेदनायुक्त अतिसार और विशेषतः सूजनका नाश होता है। यह असाध्य संग्रहणी पाण्डु और जीर्णज्वरको भी नष्ट करता है तथा अग्निको बडवानलके समान तीव्र कर देता है।

(१६१३) ग्रहणीशार्दूलरसः

(र. सा. सं.; र. चं. । ग्रह०)

रसगन्धकयोश्चापि कर्षमेकं सुशोधितम्।
द्वयोःकज्जलिकां कृत्वा हाटकं षोडशांशतः॥
लवङ्गं निम्बपत्रञ्च जातीकोषफले तथा।
एतेषां कर्षचूर्णेन सूक्ष्मैलां सहमेलयेत्।
मुक्तागृहेन संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत्॥
गुञ्जापञ्चप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः।
सूतिकां ग्रहणीरोगं हरत्येषःसुनिश्चितः॥
अर्शघ्नो दीपनश्चैव बलपुष्टिप्रसादनः।
कासश्वासातिसारघ्नो बलवीर्यकरःपरः॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगञ्चामशूलञ्च नाशयेत्।
संसारलोकरक्षार्थं पुरा रुद्रेणभाषितः॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १-१ कर्ष (१। तोला) लेकर दोनोको खरल करके कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें इसका सोलहवां भाग स्वर्ण भस्म और लौंग, नीमके पत्ते (शुष्क), जायफल, जावित्री और छोटी इलायचीका चूर्ण १-१ कर्ष मिलाकर मोतीकी सीपके जोड़ेमें बन्द करके ऊपरसे कपर मिट्टी कर दीजिए और उसे सम्पुटमें रखकर पुट लगा दीजिए। स्वांगशीतल होनेपर निकालकर चूर्ण करके रख लीजिए।

इसे प्रातःकाल पांच रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करनेसे सूतिकारोग और ग्रहणीरोग अवश्य नष्ट होता है तथा बवासीर, खांसी, श्वास, अतिसार, कष्टसाध्य संग्रहणी और आम शूलका नाश होता तथा बल वीर्य और अग्निकी वृद्धि होती है।

(१६१४) ग्रहणीहररसः

(र. र. स. । उ. ख. अ. १६)

रसाभ्रगन्धाः क्रमवृद्धभागाः
जयारसेन त्रिदिनं विमर्द्याः।
गद्याणकार्धं मधुना समेतं
ददीत पथ्यं दधिभक्तकञ्च॥

शुद्ध पारद १ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग और गन्धक ३ भाग लेकर कज्जली करके ३ दिन तक जयाके रसमें खरल कीजिए।

इसे ३ माशेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर सेवन करना और दहीभात खाना चाहिए।

('व्यवहारिक मात्रा=२-३ रत्ती।)

(१६१५) ग्रहण्यारिरसः (र.रा.सुं.। संग्र.)

शुद्धसूतं समं गन्धं सूतांशं मृतमभ्रकम्।
मर्दयेन्मातुलुङ्गाम्लैः शोष्यं पेष्यं च सप्तधा॥
त्र्यूषणं नीलिकामूलं धत्तूरस्य च बीजकम्।
एकैकं सूततुल्यं स्यात् सर्वं तद्विजयाद्रवैः॥
श्वेतापराजिताकन्यामत्स्याक्षीकाकमाचिका।
आर्द्रकःपर्पटोवह्निः कदल्या तालमूलिका॥
द्रवैर्दिनत्रयं भाव्यं माषमात्रं च भक्षयेत्।
ग्रहण्यारिरसो नाम असाध्यं साधयेद्ध्रुवम्॥
द्विपलं जीरकं क्वाथमनुपानं प्रदापयेत्।
श्वासज्वरामशूलास्रमतिसारं चिरन्तनम्॥
अरुचिं राजयक्ष्माणं मन्दाग्निं च विनाशयेत्॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म १-१ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके ७ वार बिजौरे नींबूके रसमें घोटिए। और फिर उसमें सोठ, मिर्च, पीपल, नीमकी जड़ और धतूरेके बीजोका चूर्ण १-१ भाग मिलाकर भांग, सफेद कोयल, घृतकुमारी, मत्स्याक्षी (मछेछी), मकोय, अद्रक, पित्तपापड़ा, चीना, केला और काली मूसलीके रसमें ३ दिन घोटकर सुखा लीजिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार १० तोले ज़ीरेके क्राथके साथ सेवन करनेसे असाध्य संग्रहणी भी अवश्य नष्ट हो जाती है और श्वास, ज्वर, आम, शूल, पुराना रक्तातिसार, अरुचि, राजयक्ष्मा और मन्दाग्निको आराम होता है।

इति गकारादि रसप्रकरणम्।

अथ गकारादिमिश्रप्रकरणम्।

(१६१६) गिरिकर्णिमूलयोगः (ग.नि.।अप.)

पुष्ये गृहीतं गिरिकर्णिकायाः
मूलं सिताया गलके निबद्धम्।
गव्येन लीढं यदि वा घृतेन
निहन्ति घोरामपचीं तदैव ॥

सफेद गिरिकर्णी (कोयल) की जड़को पुष्य नक्षत्रमें निकालकर गलेमें बांधनेसे अथवा गायके घीमें मिलाकर चाटनेसे भयङ्कर अपची रोग भी नष्ट हो जाता है।

(१६१७) गुञ्जादिमूलप्रयोगः

(रा. मा. । मुखरो०)

गुञ्जावराहकर्ण्योरन्यतरस्याःसमुद्धृतं मूलम्।
दन्तैश्चर्वितमार्त्ति दशनघुणोत्थां विनाशयति॥

चौंटली (गुञ्जा) अथवा असगंधकी जड़को चबानेसे दांतका कीड़ा नष्ट होता है।

(१६१८) गुञ्जादिवर्तिः (वृ. नि. र. । संग्र.)

गुञ्जाकूष्माण्डबीजञ्च सूरणेन च वर्त्तिकाम्।
लेपयेच्छायया शुष्कां गुदगाह्यर्शसाञ्जयेत् ॥

चौटली (गुञ्जा) और पेठेके बीज तथा ज़मीकन्द समान भाग लेकर (पानीमें पीसकर) वर्ति (वत्ती) बनाकर छायामें सुखाकर गुदामें रखनेसे अर्श (बवासीर) नष्ट होती है।

(१५१९) गुल्महरी वर्त्तिः (सु.सं.।उत्त.अ.४२)

वातवर्चोनिरोधे तु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः।
कृत्वा पायौ विधातव्या वर्तिका मरिचोत्तरा ॥

गुल्म रोगमें अपानवायु और मलावरोध होने पर समुद्र नमक, अद्रक, सरसों और स्याहमिर्चके चूर्ण की वर्तियां बनाकर गुदमार्गमें लगानी चाहिएं।

(प्र. वि.—सब चीजोके समान भाग चूर्ण को गुड़में मिलाकर वर्तियां बनानी चाहिएं और एक वर्ति (वत्ती) के निकल जाने पर दूसरी लगा देनी चाहिए।)

(१६२०) गोधूमादि पोलिका

(यो. र. । शोथा., ग. नि. । शो.)

गोधूमकणिकायुक्ता निर्गुण्डीपत्रचूर्णिका
पोलिका तिलतैलेन युक्ता शोथविनाशिनी।

गेहूंके आटे और संभालुके पत्तोके चूर्ण की पोलिका (पतली रोटी) बनाकर तिल तैलके साथ प्रयुक्त करनेसे शोथरोग नष्ट होता है।

(१६२१) गोधूमादि पूपलिका

(ग. नि. । वाजी.)

आसन्नक्षीरिणो ज्ञात्वा गोधूमान् शालिषष्टिकान्।
निष्पीड्य क्षीरं मधुकमृणालकपिकच्छुभिः ॥
विदार्याश्चैव चूर्णेन शर्करामधुसंयुताम् ।
घृते पूपलिकां पक्त्वा भक्षयित्वा पयःपिबेत् ॥
स्त्रीणां शतमसौ गत्वाकुलिङ्ग इव हृष्यति ।

जब गेहूं, शाली और षष्ठी (सट्टी) धान्योंमें दूध पड़ जाय तो उनको पीसकर दूध निकालकर उसमें मुलैठी, कमलनाल, कौंच, विदारीकन्द और असगंधका चूर्ण तथा खांड और शहद मिलाकर पूरियां बनवा लीजिए।

इनको खाकर उपरसे दूध पीनेसे मनुष्यमें सैकड़ों स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति आ जाती है।

(१६२२) गोमक्षिकाहरप्रयोगः

(यो. र. । कर्ण रो०)

दन्तेन चर्वयेन्मूलं नन्द्यावर्त्तपलाशयोः ।
तल्लालापूरिते कर्णे ध्रुवं गोमक्षिकां जयेत् ॥

तगर और पलाश (ढाक)की जड़को चबाकर कानमें लाला (थूक) डालनेसे गोमक्षिका (डांस-मच्छर) अवश्य निकल जाता है।

(१६२३) गोमयपिण्डादिस्वेदः

(ब. से. । अर्श.)

स्वेदो गोमयपिण्डेन सक्तुनामलकेन च ।
शतपुष्पेण वा कार्यो गुदजानां निवृत्तये ॥

गोबरकी पिण्डी, सत्तू, आमलेकी पिट्ठी, या सोयेकी पोटलीसे स्वेदन करने (सेकने) से बवासीरके मस्से नष्ट होते हैं।

(१६२४) ग्रहणीरोगे पथ्यादिः

(च. सं. । चि. अ. १८)

पलाशं चित्रकं चव्यं मातुलुङ्गहरीतकीम् ।
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं पाठां नागरधान्यकम् ॥
कार्षिकाण्युदकप्रस्थे पक्त्वा पादावशेषितम् ।
पानीयार्थं प्रयुञ्जीत यवागूं तैश्च साधिताम् ॥
शुष्कमूलकयूषेण कौलत्थेनाथवा पुनः ।
कट्वम्लक्षारतीक्ष्णेन लघून्यन्नानि चाप्नुयात् ॥
अम्लं चानु पिबेत्तक्रं तक्रारिष्टमथापि वा ।
मदिरां मध्वरिष्टान् वा निगदं शीधुमेव वा ॥

ढाककी छाल, चीता, चव, बिजौरा नींबू, हर्र, पीपल, पीपलामूल, पाठा, सोंठ और धनिया १-१ कर्ष (१।-१। तोला) लेकर १ प्रस्थ (८० तोले) पानीमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर छान लीजिए। ग्रहणी रोगमें पीनेके लिए यही पानी देना चाहिए।

ग्रहणी रोगमें सूखी मूलीके कषाय अथवा कुलथीके कषाय और अन्य कटु, अम्ल, क्षार तथा तीक्ष्ण पदार्थोंसे लघु अन्न बनाकर देने चाहिएं; और भोजनके बाद अम्ल तक्र, तक्रारिष्ट अथवा सीधु पिलाना चाहिए।

(१६२५) ग्रहण्यामाहारकल्पना [१]

(ग. नि. । ग्र. रो. ३)

कपित्थबिल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता ।
यवागूःपाचयत्यामं शकृत्संवर्तयत्यपि ॥

कैथ, बेलगिरी, चांगेरी (चूका—तिपतिया) तक्र और दाड़िमसे सिद्ध यवागू आमको पचाती और दस्तोंको रोकती है।

ग्रहण्यामाहारकल्पना [२]

लघुना पञ्चमूलेन पञ्चकोलेन पाठया ।
अन्नानि कल्पयेद्विद्वान् बिल्ववृक्षाम्लदाडिमैः ॥

ग्रहणीरोगमें लघुपञ्चमूल (शालपर्णी, प्रश्नपर्णी, कटेली, कटेला और गोखरु) अथवा पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ) या पाठा अथवा बेलगिरी, इमली और अनारसे सिद्ध आहार देना चाहिए।

ग्रहण्यामाहारकल्पना [३]

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहिलाघवात् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रदूषणम् ॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रूक्षत्वाच्च कफे हितम् ।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत् ॥

तक्र लघु होनेके कारण दीपन और ग्राही मधुरपाकी होनेके कारण पथ्य है और पित्तको कुपित नहीं करता। कषाय, उष्ण विकाशी और रूक्ष होनेके कारण कफमें हितकारक है। ताज़ा तक्र मधुर, अम्ल और स्निग्ध होनेके कारण वायु-नाशक और अविदाही है; अत एव तक्र ग्रहणी रोग की सब अवस्थाओं में प्रयुक्त किया जा सकता है।

इति गकारादि मिश्रप्रकरणम् ।





अथ घकारादि कषाय-प्रकरणम्।

(१६२६) घनचन्दनादि क्वाथः (भै.र.।ज्वरा.)

घनचन्दनपर्पटकं कटुकं
तु मृणालपटोलदलं सजलम्।
शृतशीतसितायुतपित्तहरम्
ज्वरछर्दितृषारुचिदाहहरम्॥

नागरमोथा, लाल चन्दन, पितपापड़ा,कुटकी, कमलनाल, पटोलपत्र और नेत्रबालाके काढे को ठण्डा करके मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर, छर्दि, तृषा, अरुचि और दाहका नाश होता है।

(१६२७) घनसप्तकषायः (यो.स.। समु.४)

घनो गुडूची कुटजः किरातो
विश्वौषधं बालकशुक्रकन्दजे।
एतैःकषायो विहितोतिसारं
सशोणितं सज्वरमाशु हन्यात्॥

नागरमोथा, गिलोय,कुड़ेकी छाल, चिरायता, सूंठ, नेत्रबाला और अतीसका क्वाथ पीनेसे रक्तातिसार और ज्वरातिसार अत्यन्त शीघ्र नष्ट होता है।

(१६२८) घनादि क्वाथः (वृ.नि.र.।ज्वर.)

घननिम्बमहौषधामृता
कटुवार्ताकिपटोलवत्सजैः।
विहितं मधुना युतं पिबेत्-
किल शीतज्वरशान्तये शृतम्॥

नागरमोथा, नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, सफेद कटेली, पटोलपत्र और इन्द्रजौका क्वाथ शहद डालकर पीनेसे शीतज्वर नष्ट होता है।

(१६२९) घृतदध्यादियोगः(यो.त.।त.७९)

घृतदधिमधुरपयोदधिमण्डै-
रुषसि कृतः करिकर्णपलाशः।
स्थगयति हि स्थिरतां स्थविराणाम्,
विदधाति वपुर्बलवत्ताम्॥१३॥

हस्तिकर्ण पलाश (ढाकका भेद) की छालको पीसकर रात्रिके समय घी, दही, मीठा दूध और दहीके मण्डमेंसे किसीमें मिलाकर रख दीजिए। इसे प्रातःकाल पीनेसे वृद्धावस्था रुकती और बलवृद्धि होती है।

(१६३०) घोषकस्वरसप्रयोगः (वं.से.।स्त्री.)

घोषकस्वरसःपीतो मस्तुना च समन्वितः।
योनिकन्दं निहन्त्याशु तन्नाडी चैव धूपतः॥३८८

कडवी तोरईके स्वरसमें मस्तु (द्विगुण जल मिश्रित तक्र) मिलाकर पीनेसे और कड़वी तोरीके डण्ठलकी धूनी देनेसे योनिकन्द रोग नष्ट होता है।

॥ इति घकारादिकषायप्रकरणम्॥

अथ घकारादि चूर्णप्रकरणम्।

(१६३१) घननादयोगः (यो. स.। समु. ५)

गव्येन दुग्धेन समं निपीतं-
क्षौद्रेण युक्तं घननादमूलम्।
बलां च कोलं गुडमिश्रमद्या-
द्रक्तप्रवाहं चिरजं निहन्ति॥

चौलाईकी जडके चूर्ण को शहदमें मिलाकर गोदुग्धके साथ पीने अथवा खरैटीकी जड़ और बेरको गुड़में मिलाकर खानेसे पुराना रक्तप्रवाह भी बन्द हो जाता है।

(१६३२) घनादिचूर्णम् [१] (वृं.मा.। बाल.)

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम्।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासश्वासवमीहरम्॥

नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकड़ासिंगीका समान भाग मिश्रीत चूर्ण शहदमें मिलाकर चटानेसे बच्चोंकी खांसी, श्वास, वमन और ज्वरातिसारका नाश होता है।

(१६३३) घनादिचूर्णम् [२] (वृ.नि.र.।बाल.)

घनशृङ्गीविषाणाश्च चूर्णं हन्ति समाक्षिकम्।
वोन्तिज्वरं तथा योगो मधुनातिविषारजः॥

नागरमोथा, काकड़ासिंगी और अतिविषा (अतीस) का समान भाग चूर्ण अथवा केवल अतीसका चूर्ण शहदमें मिलाकर चटानेसे बच्चोंकी वमन और ज्वरका नाश करता है।

(व्यः वि. = १-१ माशा चूर्ण दिनभरमें ३-४ बार चटाएं।)

(१६३४) घृतभर्जितहरीतकी (वं.से.।अर्शो.)

सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम्।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदनुलोमिनीम्॥६३॥

अर्श रोगमें वायुको अनुलोमन (यथोचित मार्गगामी) करनेके लिए घीमें भुनी हुई हर्रमें गुड़ और पीपलका चूर्ण अथवा निसोत और दन्तीमूलका चूर्ण (समान भाग) मिलाकर (उष्ण जलसे) सेवन करना चाहिए।

॥ इति घकारादिचूर्णप्रकरणम्॥

अथ घकारादि गुटिकाप्रकरणम्।

(१६३५) घनादिगुटिका

(वृ. नि. र.। कास.; वै. जी.। वि. २)

घनविश्वशिवागुडजा गुटिका
त्रिदिनं वदनाम्बुजमध्यधृता।
हरति श्वसनं कसनं ललने!
ललनेव हिमं हृदये निहिता॥

√नागरमोथा, सोंठ, हर्र और गुड़के चूर्णको एकत्र मिलाकर गोलियां बना लीजिए। इन्हें मुखमें रखकर चूसनेसे श्वास और खांसी नष्ट होती है।

घोडाचोलीगुटिका (रसः)

(“अश्वकञ्चुकी रस” अवलोकन कीजिये।)

॥ इति घकारादिगुटिकाप्रकरणम्॥

अथ घकारादि घृतप्रकरणम्।

(१६३६) घृत धोनेकी विधि

द्रुतहस्तेन संघृष्टं सजलं सर्पिष्पुनःपुनः।
धौतं वारसहस्रन्तु तदर्द्धं शतमेव वा॥
हिमवज्जायते शीतं त्वच्यं मेध्यं तथैव च।
एतल्लेपादिषु योज्यं दाहवीसर्पनाशनम्॥

घीमें शीतल पानी मिलाकर उसे हाथसे खूब मथकर पानी निकाल दीजिए और फिर नवीन जल डालकर यही क्रिया कीजिए। इस प्रकार १०००, ५०० या सौ बार धोनेसे घृत अत्यन्त शीतल हो जाता है और उसके लेपादिसे विसर्प तथा दाह आदि नष्ट होती है।

(१६३७) घृतपानम् (यो. चि. म.। अ. ७)

शुद्धगव्यं घृतं तप्तं मरिचैर्वा कणान्वितम्।
रसायनं सदा पेयं घृतपानं प्रशस्यते॥
रूक्षक्षतविषार्त्तानां वातपित्तविकारिणाम्।
हीनमेधास्मृतीनाञ्च घृतपानं प्रशस्यते॥

रूक्षता (खुश्की), घाव, विष और वातपित्त विकारकी शान्ति तथा मेधा और स्मृति (स्मरण शक्ति) की हीनताको दूर करनेके लिए शुद्ध गोघृत को गर्म करके उसमें स्याहमिर्च अथवा पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना हितकर है। इस प्रकार घृत-पान करनेसे रसायनके गुण भी प्राप्त होते है।

घृतमूर्च्छाविधिः

अकारादि घृतप्रकरणके आरम्भमें देखिये।

(१६३८) घृतसैन्धवयोगः(रा.मा.।विष.२८)

उष्णं घृतं सैन्धवचूर्णयुक्तं
निपीतमाशु प्रशमं करोति।
निश्वासकम्पश्रमवारिताप-
रुजां जयेद् वृश्चिकदंशजाताम्॥

गर्म घृतमें सेंधानमकका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, कम्पन (कपकपी), पसीना, दाह, पीड़ा और बिच्छूके काटेको तुरन्त आराम होता है।

॥ इति घकारादिघृतप्रकरणम्॥

अथ घकारादि धूम्रप्रकरणम्।

(१६३९) घृतादिधूमः

(भा. प्र.। खं. २ नासा.; यो. र.। नासा.)

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः।
धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नञ्च निर्दिशेत्॥

घी, गूगल और मोम समान भाग मिलाकर धूम्रपान करनेसे क्षवथु (छींकें आना) और भ्रंशथु रोग नष्ट होता है।

॥ इति घकारादिधूम्रप्रकरणम्॥

अथ घकारादि रसप्रकरणम्।

(१६४०) घनगर्भरसः (रसे. मं.। अ ३)

मनःशिलातालकमम्बरं घनं,
पीताम्बरं तीक्ष्णरजश्च कुञ्जरम्।
तापीरुहं कान्तरजो रसेन तत्
कुमारिवन्ध्यासुरदालिजेन॥१५२॥

घृष्टं मूषास्थं करिषानलेन,
पुटेन दग्धं दरभस्मभेति।
तद्भस्मसूतञ्च गुदामयेषु
भगन्दरे चापि हितं वदन्ति ॥१५३॥

शुद्ध मनसिल, शुद्ध हरताल, अम्बर, पीला अभ्रक (भस्म), तीक्ष्णलोह (भस्म), सीसा भस्म, सोनामक्खी (भस्म) और कान्तलोह (भस्म) समान भाग लेकर सबको घीकुमार, वांझ ककोडा और देवदाली (विडाल) के रसमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लीजिए और सम्पुटमें बन्द करके उपलोकी अग्निमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् इस भस्ममें समान भाग रससिन्दूर मिलाकर २ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करनेसे अर्शादि गुदरोग और भगन्दर रोग नष्ट होते हैं।

(१६४१) घनसङ्कोचनाम रसः (रसे.मं.।अ.३)

घनस्य पिष्टिका कार्या शुल्बस्य अथवा शुभा।
गन्धकान्तःस्थिता पाच्या सर्पिषा संयुतं यथा॥
पञ्चाङ्गं निम्बचूर्णस्य विडङ्गं चित्रकं तथा।
कटुत्रयं वचा मुस्ता व्याधिघातं तथैव च॥
समभागानि चैतानि पथ्या च त्रिगुणा भवेत्।
अजामूत्रेण सम्पिष्य गुटिकाःकारयेद्भिषक्॥
पञ्चगुञ्जाप्रमाणेन देयैका पित्तकुष्ठहा।
सबले द्वे प्रदातव्या क्षीणे चार्धा प्रदीयते॥
एकविंशद्दिनैरेव पित्तकुष्ठं विनाशयेत्॥

अभ्रक भस्म अथवा ताम्र भस्म और पारेको भलीभांति खरल करके पिष्टी (पिट्ठी) बनाकर उसमें थोड़ासा घृत मिलाकर गन्धकके बीचमें रखकर पकाइये और फिर उसमें नीमका पञ्चाङ्ग, बायबिड़ङ्ग, चीता, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), वच, मोथा और अमलतासका समान भाग चूर्ण तथा ३ गुना हर्रका चूर्ण मिलाकर बकरीके मूत्रमें पीस कर ५-५ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

साधारणतः १ गोली और बलवान पुरुषको दो, तथा निर्बलको आधी गोलीकी मात्रानुसार सेवन करानेसे २१ दिनमें पित्त कुष्ठका नाश हो जाता है।

॥ इति घकारादिरसप्रकरणम्॥



अथ घकारादिमिश्रप्रकरणम्।

(१६४२) घनसारादिवर्त्तिः (वं. से.। मूत्रा.)

घनसारस्य चूर्णेन वस्त्रवर्त्तिःकृताम्बुना।
गुण्डयित्वा ध्वजे क्षिप्तः मूत्ररोधं जहाति सा॥३१

कपूरको पानीके साथ पीसकर कपड़े पर लगाकर उसकी बत्ती बनाकर इन्द्रीके छिद्रमें रखनेसे मूत्रावरोध नष्ट होता है।

(१६४३) घृतावसेचनम् (धन्व.। व्रण.)

सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत्।
यष्टीमधुकयुक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा॥६५॥

शूलयुक्त तुरन्तके घावमें गर्म घीमें मुलैठीका चूर्ण मिलाकर लगाना चाहिए। (उस घीमें कपड़ा भिगोकर घावमें रख देना चाहिए।)

॥ इति घकारादिमिश्रप्रकरणम्॥





अथ चकारादिकषायप्रकरणम् ।

(१६४४) चणकयोगः (वृ. नि. र. । प्रमेह.)

द्विनिशात्रिफलाकल्कमातपे धारयेत्त्र्यहम् ।
मृद्भाण्डे दोलिकायन्त्रे चणकान्मुष्टिमात्रकान् ॥
अहोरात्रोषितान्खादेद्वर्धमानं दिने दिने ।
असाध्यं साधयेन्मेहं सिद्धयोगःउदाहृतः ॥

हल्दी, दारुहल्दी, हर्र, बहेड़ा और आमला समान भाग लेकर पानीके साथ पीसकर एक कपड़े की पोटलीमें बांधकर उसे दोलायन्त्र विधिसे जलसे भरे हुवे मिट्टीके पात्रमें लटका कर धूपमें रख दीजिए और रात्रिके समय उस जलमें एक मुट्ठी चने भिगो दीजिए फिर २४ घण्टे पश्चात् निकालकर रोगीको खिलाइये । इसी प्रकार प्रतिदिन १-१ मुट्ठी चने बढ़ाकर सेवन करनेसे असाध्य प्रमेह भी नष्ट हो जाता है । यह एक सिद्ध प्रयोग है ।

(१६४५) चणकरसायनम्

(र. र. स. । उ. ख. अ. २६)

रात्रौकान्तशरावकेसुचणकाभिन्नाजलैःस्वादुभिः
प्रातर्मुष्टिमिताःखलुप्रतिदिनं षण्मासमासेविताः।
हन्युःपित्तकफामयान्बहुविधं कुष्ठं प्रमेहांस्तथा ॥

प्रतिदिन रात्रिको चनेकी १ मुट्ठी (रोगीकी अपनी मुट्ठी) दाल कान्तलोहके पात्रमें मीठे जलमें (जल खारी न हो) भिगो दीजिए और प्रातःकाल उसे खाकर वह पानी भी पी लीजिए । इस प्रकार ६ मास तक सेवन करनेसे अनेक प्रकारके पित्तज और कफज रोग तथा कुष्ठ और प्रमेहरोग नष्ट होते है ।

(१६४६) चतुःषष्टिकक्वाथः

(यो. र., वृ. नि. र. । ज्वर.)

शृङ्गीरामठरामसेनरजनीरुक्रेणुकारोहिणी ।
रास्नैरण्डरसोनदारुरजनीराजद्रुराजीफलैः ॥
त्रायंतीत्रिवृताहुताशनलतानन्तामृतामुद्रिता ।
दन्तीतुम्बरुचित्रतण्डुलत्रुटित्वक्तिक्तनक्तंचरैः ॥
वासावत्सकबीजवासवसुराबल्यावरीवेल्लजम् ।
ब्राह्मीब्राह्मणयष्टिवारणकणाविश्वावयस्थावृषैः ॥
मूर्वामालविकासमूलमगधामुस्ताजमोदाद्वयैः ।
मिश्रेयागरुचन्दनेन्द्रचविकास्फोतावचाकट्फलैः॥
इत्येतैर्दशमूलयुङ्निगदितःक्वाथश्चतुषष्टिकः ।
शृङ्ग्यादिर्मदनागसिंहभिषजा सर्वामयोन्मूलने ॥
पुंसामष्टविधज्वरार्तिशमने वाताग्निसन्धुक्षणे ।
सर्वाङ्गे च समीरणद्विपघटे शार्दूलविक्रीडितम् ॥

काकड़ासिंगी, हींग, कायफल, हल्दी, कूठ, रेणुका, कुटकी, रास्ना, अरण्डमूल, ल्हसन, दारुहल्दी, अमलतासका गूदा, पटोल, त्रायमाणा (वनफशा), निसोत, चीता, लताकस्तूरी, अनन्तमूल, गिलोय, मुद्रिता, दन्तीमूल, तुम्बुरु, बायबिड़ङ्ग, छोटी इलायची, दालचीनी, चिरायता, गूगल, वासा, इन्द्रजौ, कालीमूंग, खरैटीकी जड़, शतावर, कालीमिर्च,

ब्राह्मी, भारङ्गी, गजपीपल, सोंठ, हर्र, अडूसा, मूर्वा, स्याह निसोत, पीपल, पीपलामूल, मोथा, अजवायन, अजमोद, सौंफ, अगर, चन्दन (लाल), कुड़ेकी छाल, चव, कोयल, वच, कायफल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेली, कटेला, गोखरु, बेलकी छाल, सोनापाठा (अरलु), खम्भारी (कुम्हार)पाढल और अरणी। इन चौंसठ ओषधियोंके योगका नाम 'चतुःषष्टिकक्वाथ वा शृंग्यादि क्वाथ है'।

यह आठ प्रकारके ज्वर और सर्वाङ्गगत वायुका नाश करता तथा अग्नि प्रदीप्त करता है।

(१६४७) चतुरम्लम् (भै. र.। परिशिष्ट.)

कोलदाडिमवृक्षाम्लैरम्लवेतसंयुतैः।
चतुरम्लन्तु पञ्चाम्लं मातुलुङ्गसमन्वितम्॥

खट्टा बेर, अनारदाना, तिंतड़ीक और अम्लवेतके योगका नाम चतुराम्ल तथा बीजौर नींबू सहित उपरोक्त चारों (कुल पांच) वस्तुओंका नाम पञ्चाम्ल है।

(१६४८) चतुर्दशाङ्गः

(र. र.; भा. प्र.; धन्व.; भै. र., वृं. मा.। ज्वर.; वृ. यो. त.। त. ५९)

६४८ संख्यक किरातादि क्वाथ देखिए।

(१६४९) चन्दनादिकल्कः [१]

(यो. र.। छर्दि.; वृ. यो. त.)

चन्दनञ्च मृणालञ्च बालकं नागरं वृषम्।
सतण्डुलोदकक्षौद्रःपीतःकल्को वमीर्जयेत्॥१॥

सफेद चन्दन, कमल नाल, नेत्रबाला, सोंठ और बांसा समान भाग पीसकर चावलोंके पानीमें मिलाकर शहद डालकर पीनेसे छर्दि नष्ट होती है।

(१६५०) चन्दनादिकल्कः [२]

(वृ. नि. र.। मसू.)

श्वेतचन्दनकल्केन हिलमोचोद्भवं द्रवम्।
पिबेन्मसूरिकारम्भे नैवं वा केवलं रसम्॥

मसूरिकाके आरम्भमें सफेद चन्दनको हुलहुलके रसमें पीसकर पीना अथवा केवल हुलहुलका रस पीना हितकारक है।

(१६५१) चन्दनादिकल्कः [३]

(च. सं.। चि. अ. २५)

चन्दनं पद्मकोशीरं पाटलि सिन्धुवारिका।
क्षीरशुक्ला नतं कुष्ठं शिरीषोदीच्यशारिवाः।
शेलुस्वरसपिष्टोऽयं लूतानां सार्वकार्मिकः॥

लाल चन्दन, पद्माख, खस, पाढल, संभालु, विदारीकन्द, तगर, कूठ, सिरसकी छाल, नेत्रबाला और सारिवाको ल्हिसौड़े (रींठ) के रसमें पीसकर पीने या लेप लगानेसे मकड़ीका विष नष्ट होता है।

(१६५२) चन्दनादिकल्कः[४] (वं.से.।स्त्री.)

चन्दनोशीरपतङ्गमधुकं नीलमुत्पलम्।
त्रपुसैर्वारुबीजानि धातकीकदलीफलम्॥
कोललाक्षावटारोहपद्मकं पद्मकेशरम्।
एतान्कल्कान्मधुयुतान्पाययेत्तण्डुलाम्बुना॥
त्र्यहात्प्रशमयेदेतद्योषितां पैत्तिकं रजः॥

सफेद चन्दन, खस, पतङ्ग, मुलैठी,नीलोफर, खीरे और ककड़ीके बीज, धायके फूल, केलेकी फली, बेर, लाख, बड़के अंकुर, पद्माक और कमलकेसरको पानीमें (पिट्ठीकी तरह) पीसकर शहदमें मिलाकर तण्डुलोदक (चावलोंके पानी) के साथ पिलानेसे स्त्रियोंका पित्तज रजोस्राव (प्रदर) तीन दिनमें ही नष्ट हो जाता है।

(१६५३) चन्दनादिक्वाथः [१] (पेया)

(बं. से. । रक्तपि०)

चन्दनोशीरलोध्राणां रसे तस्मिन् सनागरे ।
किराततिक्तकोशीरमुद्गानां तद्वदेव तु ॥

रक्तपित्त रोगमें लाल चन्दन, खस और लोधके क्राथ और सोठके कल्क अथवा चिरायता, खस और मूंगके क्राथसे सिद्ध पेया देनी चाहिए।

(१६५४) चन्दनादिक्वाथः [२]

(वा. भ. । चि. अ. २)

प्रसादश्चन्दनाम्भोजसेव्यं मृद्भृष्टलोष्टजः ।
सुशीतःससिताक्षौद्रः शोणितातिप्रवृत्तिजित् ॥

लाल चन्दन, खस और कमलके शीत कषायमें मिट्टीका ढेला (पिण्ड) खूब तपाकर बुझाकर ठण्डा होनेपर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है ।

(१६५५) चन्दनादिक्वाथः [३]

(वा. भ. । चि. अ. २)

चन्दनोशीरजलदो लाजामुद्गकणायवैः ।
बलाजले पर्युषितैःकषायो रक्तपित्तहा ॥

लाल चन्दन, खस, नागरमोथा, धानकीखील, मूंग, पीपल और इन्द्रजौ समान भाग मिश्रित २ तोले लेकर अधकुट्ट करके रात्रिके समय खरैटीके क्वाथमें भिगो दीजिए और प्रातःकाल छानकर पिला दीजिए; इससे रक्तपित्त नष्ट होता है ।

(१६५६) चन्दनादिक्वाथः [४]

(आ. वे. वि. । अ. ७७)

चन्दनं द्वितयं मूर्वा श्यामाद्वन्द्वं निशाद्वयम् ।
लाक्षा वांशी गैरिकश्च जीवन्ती मधुकं वरी ॥
वाजिगन्धा वचा कृष्णा काकोली जीवकर्षभौ ।
क्राथ एषां पिबेत्प्रातर्मस्तिष्कह्रासशान्तये ॥

प्रातःकाल सफेद चन्दन, लाल चन्दन, मूर्वा, निसोत, काला निसोत, हल्दी, दारुहल्दी, लाख, बंसलोचन, गेरु, जीवन्ती, मुलैठी, शतावरी, असगन्ध, बच, पीपल, काकोली, जीवक और ऋषभकका काथ पीनेसे मस्तिष्ककी निर्बलता नष्ट होती है ।

(१६५७) चन्दनादिक्वाथः [५]

(वं. से. । ज्वरा.)

शर्करामधुरो हन्ति कषायःपैत्तिकं ज्वरम् ।
चन्दनोशीरश्रीपर्णीपरूषकमधूकजः ॥

लाल चन्दन, खस, खम्भारीके फल, फालसेकी छाल और महुवेकी छाल (या फल)के काथको खांडसे मीठा करके पीनेसे पित्तज ज्वर नष्ट होता है।

(१६५८) चन्दनादिक्वाथः [६]

(आ. वे. वि. । अ. ६८)

चन्दने नलदं द्राक्षा गुडूची मधुकं स्फटी
धात्री च क्राथ एतेषां ओजो मेहोपशान्तिकृत्

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, खस, मुनक्का, गिलोय, मुलैठी, फटकरीकी खील और आमलेका क्वाथ पीनेसे ओजोमेह नष्ट होता है ।

(१६५९) चन्दनादिक्वाथः [७]

(यो. र.; भा. प्र.; वृ. नि. र. । मसू०)

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह ।
एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः ॥

लाल चन्दन, बासा, मोथा, गिलोय और मुनक्काका शीत कषाय शीतला ज्वरको शान्त करता है ।

१ 'गव्य शीतकषायस्तु' इति पाठभेदः ।

(१६६०) चन्दनादिक्वाथः [८]

(ग. नि. । ज्वर.)

चन्दनं धान्यकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ।
पञ्चाहसम्भवं हन्ति ज्वरं क्वाथो निषेवितः ॥

लाल चन्दन, धनियां, मोथा, गिलोय और सोंठका क्वाथ सेवन करनेसे ज्वर नष्ट होता है।

(१६६१) चन्दनादिक्वाथः [९]

(यो. र. । स्त्रीरो.)

चन्दनं सारिवा लोध्रं मृद्वीका शर्करान्वितम् ।
क्वाथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये ॥

लाल चन्दन, सारिवा, लोध और मुनक्काके क्वाथमें खाण्ड मिलाकर पीनेसे गर्भिणीका ज्वर नष्ट होता है।

(१६६२) चन्दनादिक्वाथः [१०]

(वृ. नि. र.; वं.से.; वृं.मा.; यो. र. । रक्तपित्त.)

चन्दनेन्द्रयवापाठाकटुकासुदुरालभा ।
गुडूची बालकं लोध्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥
कफान्वितं जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरापहम् ॥

लाल चन्दन, इन्द्रजौं, पाठा, कुटकी, धमासा, गिलोय, नेत्रवाला और लोधके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पीनेसे कफ मिश्रित रक्तपित्त, तृष्णा, खांसी और ज्वर नष्ट होता है।

(१६६३) चन्दनादिक्वाथः [११]

(वै. जी. । वि. १)

लोहितचन्दनपद्मकधान्य-
च्छिन्नरुहापिचुमन्दकषायः ।
पित्तकफज्वरदाहपिपासा
वान्तिविनाशहुताशकरःस्यात् ॥

लाल चन्दन, पद्माक, धनियॉं, गिलोय और नीमकी छालका क्वाथ पित्तकफज्वर, दाह, पिपासा और वमन नाशक तथा अग्निवर्द्धक है।

(१६६४) चन्दनादिक्वाथः [१२]

(वृ. नि. र.; वं. से. । ज्व.)

चन्दनं मधुकं द्राक्षां कटुकां सुदुरालभाम् ।
चन्दनादिर्गणः प्रोक्तो हन्याद्दाहज्वरारुचिः ॥

लाल चन्दन, मुलैठी, मुनक्का, कुटकी और धमासेका क्वाथ पीनेसे दाह, ज्वर और अरुचि नष्ट होती है।

(१६६५) चन्दनादिक्वाथः [१३]

(वृ. नि. र.; यो. र. । ज्वर.)

चन्दनोशीरधान्यं च वालकं पर्पटं तथा ।
मुस्ताशुण्ठी समायुक्तं मन्थरज्वरनाशनम् ॥

लाल चन्दन, खस, धनियॉं, नेत्रवाला, पित्तपापड़ा, नागरमोथा और सोंठका क्वाथ पीनेसे मन्थरज्वर (मोतीझारा) नष्ट होता है।

(१६६६) चन्दनादिः दार्व्यादिश्च क्वाथः

(वृ.नि.र.; वं.से.; वृं.मा.; यो.र.; वै.र.; ग.नि.।अर्श.)

चन्दनकिराततिक्तकधन्व-
यवासाः सनागराः क्वथिता ।
रक्तार्शसां प्रशमनाः
दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥

लाल चन्दन, चिरायता, कुटकी, धमासा और सोंठका क्वाथ और दारुहल्दीकी छाल, खस तथा नीमका क्वाथ; ये दोनो क्वाथ रक्तार्श (खूनी बवासीर) का नाश करते हैं।

(१६६७) चन्दनादिपाचनकषायः

(ग. नि. । ज्वरा. १)

चन्दनोत्पलह्रीवेरकटुकोशीरधान्यकम्।
बृहती नागरं मुस्तं वचा पर्पटकोऽमृता ॥
क्काथःसातिविषः पेयः पाचनो ज्वरनाशनः ॥

लाल चन्दन, नीलोफर, सुगन्धबाला, कुटकी, खस, धनियाँ, कटेली, सोंठ, मोथा, बच, पित्तपापड़ा, गिलोय और अतीसका क्वाथ पाचक तथा ज्वर-नाशक है।

(१६६८) चन्दनादिपानम्

(वृ. नि. र.; च. द. । छर्द्य०)

चन्दनं च मृणालं च वालकं नागरं वृषम्।
सतन्दुलोदकक्षौद्रैःपीतः कल्को वमिञ्जयेत् ॥

सफेद चन्दन, कमलनाल, नेत्रबाला, सोंठ और बांसेको पानीमें पीसकर चावलोके पानीमें घोलकर शहदसे मीठा करके पीनेसे वमन रुक जाती है।

(१६६९) चन्दनादिप्रयोगः

(च. स. । चि. अ. २५)

चन्दनं तगरं कुष्ठं हरिद्रे द्वे त्वगेव च ।
मनःशिला तमालश्च रसः कैशर एव च ॥
शार्दूलस्य नखश्चैव सुपिष्टं तण्डुलाम्बुना ।
हन्ति सर्वं विषाण्येव वज्रीवज्रमिवासुरान् ॥

लाल चन्दन, तगर, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, दालचीनी, मनसिल, तमालपत्र, केसरका रस और शेरका नाखून, बराबर बराबर लेकर चावलोंके पानीमें पीसकर प्रयोग करनेसे सब प्रकारके विष नष्ट होते हैं।

(१६७०) चन्द्रसूरक्वाथः

(वृ. नि. र.; भा. प्र.; बै. र. । हिक्का.)

चन्द्रसूरस्य बीजानि क्षिपेदष्टगुणे जले।
यदा मृदूनि गृह्णीयात् ततो वाससि गालयेत् ॥
हिक्कातिवेगकललस्तज्जलं पलमात्रया।
पिबेत्पुनः पुनश्चापि हिक्काशीघ्रं विनश्यति ॥

हालोंके बीजोको आठ गुने जलमें पका लीजिए और जब वह नरम हो जाय तो क्वाथको छानकर शीशीमें भरकर रख लीजिए।

इसे १ पल (५ तोले) की मात्रानुसार पुन: पुनः पिलानेसे अति प्रबल हिचकी भी शान्त हो जाती है।

(१६७१) चम्पकमूलकषायः (वै.म.र.।पट.६)

चम्पकशिफाकषायःपीतो निरुणद्धि मूत्रमवशगतम्
नीचतलपतितमम्भश्चतुरजनोत्पादितो यथा सेतुः

चम्पक (चम्पाफूल) की जड़का क्वाथ पीनेसे मूत्रातिसार (बहुमूत्र) रोग अवश्य नष्ट होता है।

(१६७२) चविकापल्लवयोगः (वै.म.पट.६)

पल्लवं चविकायाश्च श्वेतमूलाह्वसम्भवम्।
पल्लवं क्षीरिवृक्षस्य पिष्ट्वा तैलेन पाययेत् ॥

चवके पत्ते या श्वेत पुनर्नवाके पत्ते अथवा क्षीरी वृक्षो (पीपल, पिलखन, गूलर, वेत, बड) के पत्तोंको तेलमें पीसकर पीनेसे अतिसार नष्ट होता है।

(१६७३) चव्यादिक्वाथः [१]

(वृ. नि. र. । उदर.)

चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा।
क्काथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदरं जयेत् ॥

चव, चीता, सोठ और देवदारुको गोमूत्रमें पकाकर छानकर उसमें निसोतका चूर्ण मिलाकर पीनेसे जलोदरादि उदररोग नष्ट होते हैं।

(१६७४) चव्यादिक्वाथः [२]

(वं. से.; भा. प्र. । अति)

चव्यं सातिविषं कुष्ठं बालबिल्वं सनागरम् ।
वत्सकत्वक्फलं पथ्या छर्दिश्लेष्मातिसारनुत् ॥

चव्य, अतीस, कूठ, कच्ची बेलगिरी, सोठ, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौं और हर्रका क्वाथ पीनेसे वमन और कफातिसार नष्ट होता है ।

(१६७५) चव्यादिक्वाथः [३]

(च. सं. । चि. अ. ५)

चव्याग्निमन्थो त्रिफलासपाठा
मधुसम्प्रयुक्ता कफमेहं नाशयति ॥

चव, अग्निमन्थ (अरणी), त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला) और पाठा (जलजमनी) के क्वाथमें शहद मिलाकर पीनेसे कफज प्रमेह नष्ट होता है ।

(१६७६) चाङ्गेरीप्रयोगः (वं. से. । उन्मा.)

चाङ्गेरीरसकाञ्जिकगुडसमभागाःसुमथिताःक्रमशः
उन्मादरोगशमनाः पीता दिवसत्रयेणैव ॥

चाङ्गेरी (चूके) का रस, काञ्जी और गुड़ बराबर बराबर लेकर सबको भलीभांति मथकर तीन दिन पिलानेसेही उन्माद (पागलपन) नष्ट हो जाता है ।

(१६७७) चातुर्भद्रकम् (भै. र । परि.)

नागरातिविषामुस्तं त्रयमेतद्विमिश्रितम् ।
गुडूचीसंयुतं तच्च चातुर्भद्रकमुच्यते ॥

सोठ, अतीस, मोथा और गिलोय, इन चारो ओषधियोंके योगका नाम चातुर्भद्रक कषाय है ।

(यह कषाय कफाधिक कफपित्तज्वर, आम, संग्रहणी नाशक और दीपन पाचन है ।)

(१६७८) चातुर्भद्रकपञ्चमूलादिक्वाथः

(वृं. मा.; च. द.; ग. नि. । ज्वरा.)

पञ्चमूली किरातादिर्गणो योज्यस्त्रिदोषजे ।
पित्तोत्कटे च मधुना, कणया वा कफोत्कटे ॥

पित्तप्रधान सन्निपात ज्वरमें लघु पञ्चमूल (शालपर्णी, पृष्टपर्णी, कटेली, कटेला, गोखरु) और किरातादिगण (चिरायता, सोंठ, मोथा, गिलोय) के क्वाथमें शहद डालकर और कफप्रधान सन्निपात ज्वरमें बृहत्पञ्चमूल (बेलकी छाल, सोनापाठा [अरलू] की छाल, खम्भारी [कुम्हार] पाढल और अरनी) और किरातादिगणके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिला कर पिलाना चाहिए ।

(१६७९) चातुर्भद्रम् (र.र., भा.प्र. । ज्वरा.)

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ।
चातुर्भद्रमिदं ख्यातं वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥

चिरायता, मोथा, गिलोय और सोठके योगका नाम 'चातुर्भद्रम्' है । यह वातकफज ज्वरको नष्ट करता है ।

(१६८०) चिञ्चापत्रादिकल्कः (रा.मा. । क्षुद्र.)

चिञ्चादलेन सहितां रजनीं प्रपिष्य
ये शीतलेन सलिलेन सकृत्पिबन्ति ।
तेषां भवन्ति नहि शीतलिकाः शरीरे
कार्यत्विदं प्रथममेव तदुद्भवेऽपि ॥

इमलीके पत्ते और हल्दीको ठण्डे पानीमें पीसकर बार बार पीनेसे शीतला नही निकलती ।

शीतला निकल आने पर भी प्रारम्भमें यही योग पिलाना चाहिए ।

(१६८१) चित्रकमूलादियोगः (रा.मा. । अर्श.)

यश्चित्रकोत्थमथवा मुशलीसमुत्थ-
मादाय कृष्णचिरबिल्वसमुद्भवं वा।
गोमूत्रयुक्तमभिपिष्य पिबत्यभीक्ष्णम्
मूलं न तस्य गुदकीलकृताऽस्ति भीतिः॥

चीते, मूसली या कृष्ण करञ्जवेकी जड़को गोमूत्रके साथ पीसकर सेवन करनेसे बवासीरके मस्से नष्ट हो जाते है।

(१६८२) चित्रकादिक्वाथः [१]

(वा. भ.; वं. से.; वृ. नि. र., यो. र.; ग. नि.; वृं. मा. । शूला.; वृ. यो. त. । त. ९४)

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यजलैः शृतम्।
सहिङ्गुसैन्धवविडमामशूलहरं परम्॥

चीता, पीपलामूल, अरण्डकी जड़, सोठ, धनियॉ और सुगन्धबाला समान भाग लेकर क्वाथ करके उसमें हींग, सेधानमक और खारी नमक मिलाकर पीनेसे आमशूल नष्ट होता है।

(१६८३) चित्रकादिक्वाथः [२]

(वृ. नि. र.; वं. से.; यो. र.; ग. नि. । नेत्र.; वृ. यो. त. । त. १३१)

चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेदम्भः।
सघृतं निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हन्ति॥

चीतेकी जड़, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), पटोलपत्र और इन्द्रजौके क्वाथमें घृत मिलाकर रात्रिके समय पीना नेत्रोके लिए हितकर और विशेषतः तिमिररोगनाश है।

(१६८४) चित्रकादिक्वाथः [३]

(वृ. नि. र, यो. र.; वं. से.। अ. पि., वृ. यो. त. । त. १२२)

चित्रकैरण्डमूलानि यवाश्च सयवासकाः।
जलेन क्वथितं पित्तं कोष्ठदाहाम्लपित्तजित्॥

चीता, अरण्डकी जड़, इन्द्रजौं और जवासे का क्वाथ पित्त, कोष्ठदाह और अम्लपित्तका नाश करता है।

(१६८५) चित्रकादिक्वाथः [४]

(वृ. नि. र., वं. से.; अति०)

चित्रकातिविषामुस्तं बला बिल्वं सनागरम्।
वत्सकत्वक्फलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत्॥

चीता, अतीस, मोथा, खरैटी, बेलगिरी, सोंठ, कुड़े की छाल, इन्द्रजौं और हर्रका क्वाथ वात-कफज अतिसारका नाश करता है।

(१६८६) चित्रकादिक्वाथः [५]

(वृ. नि. र., वं. से. । अति.)

चित्रकं पिप्पलीमूलं वचा कटुकरोहिणी।
पाठा वत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम्॥
एतदामसमुत्थानमतिसारं सवेदनम्।
कफात्मकं सपित्तञ्च सवातं हन्ति वै ध्रुवम्॥

चीता, पीपलामूल, बच, कुटकी, पाठा, इन्द्रजौं, हर्र और सोंठका क्वाथ आमातिसार, वेदनायुक्त कफातिसार, पित्तातिसार और वातातिसारका अवश्य नाश करता है।

(१६८७) चित्रकादिप्रयोगः (सु.सं.।चि.अ.६)

चित्रकमूलं क्षारोदकसिद्धं वा पयः।

अर्शरोगमें चीतेकी जड़ और क्षारोदकसे सिद्ध दूध पिलाना भी हितकर है।

(१६८८) चोपचीनीप्रयोगः

(यो. चि. म. । मिश्रा. अ. ९)

चोपचीनीं समुत्क्वाथ्य त्रिशाणं पिवतःसदा।
सर्ववातव्यथा यान्ति पथ्यनिर्वातसेवितः॥
अथवा मधुना सार्द्धं सकणा लेहि वातकी।
अथवा शर्करायुक्तं चूर्णमस्याःसमीरजिम्॥

१ तोला चोपचीनीके क्वाथको नित्य प्रति सेवन करने अथवा चोपचीनी और पीपलके समभाग मिश्रित चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटने या चोपचीनीके चूर्णमें मिश्री मिलाकर सेवन करने और पथ्य पालनपूर्वक निर्वात स्थानमें रहनेसे समस्त वातजरोग नष्ट होते हैं।

॥ इति चकारादिकषायप्रकरणम्॥

अथ चकारादि चूर्णप्रकरणम्।

(१६८९) चणकाद्युद्धूलनम् (वृ.नि.र.। ज्वर.)

अथवा चणकाः भ्रष्टा यवानीचूर्णमिश्रिताः।
वचोषणारजोयुक्ता स्वेदसंशोषणा मताः॥

भुने हुवे चने, अजवायन, वच और स्याह मिर्च समान भाग लेकर पीसकर मालिश करनेसे अधिक पसीना आना रुक जाता है।

(१६९०) चतुःसमचूर्णम्

(वृं. मा., भै. र.; धन्वं.। शूला.)

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुःसमम्।
चूर्णं शूलं जयत्याशु सन्नष्टस्याग्नेश्च दीपनम्॥

अजवायन, सेंधानमक, हर्र और सोठका समान भाग चूर्ण (२-३ माशेकी मात्रानुसार उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे शूल नष्ट होता है और अग्नि दीप्त होती है।

(१६९१) चतुःसमप्रयोगः (वृं.मा.। अर्श.)

तिलभल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकम्।
दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहम्॥११॥

तिल, शुद्ध भिलावा, हर्र और गुड़ समान भाग मिलाकर सेवन करनेसे बवासीर, श्वास, खांसी, तिल्ली, पाण्डु और ज्वरका नाश होता है।

(१६९२) चतुर्दशाङ्गलौहः

(यो.र.। क्षय.; यो.त.। त.२७; वृ.यो.त.। त.७६)

रास्नाकर्पूरतालीसं भेकपर्णी शिलाजतुः।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता विडङ्गदहनाःसमाः॥
चतुर्दशायसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा।
लीढं कासं ज्वरं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च॥
बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्धनं दोषनाशनम्।

रास्ना, कपूर, तालीसपत्र, भेकपर्णी (मण्डूकपर्णी—ब्राह्मी भेद) शिलाजीत, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, मोथा, वायविडङ्ग और चीतेका चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध लोह चूर्ण (भस्म लेना उत्तम है) १४ भाग लेकर एकत्र खरल कीजिए।

इसे शहद और घीके साथ सेवन करनेसे खांसी, श्वास, ज्वर और राजयक्ष्माका नाश होता तथा बलवर्ण, अग्नि और पुष्टिकी वृद्धि होती है।

(लोहचूर्ण युक्तकी मात्रा=१ माशा। भस्म युक्तकी मात्रा ४ रत्ती। घी ६माशे, शहद २तो.।)

(१६९३) चन्दनचूर्णयोगः

(वृ. मा.; वं. से., ग. नि.। छर्दि.)

चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम् ।
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्दिस्तेन निवर्त्तते ॥

१ कर्ष (१। तोले) सफेद चन्दनको आमलेके रस और शहदमें मिलाकर पीनेसे वमन शान्त होती है।

(१६९४) चन्दनयोगः [१] (वृ.यो.त.।त.६४)

पीतं मधुसितायुक्तं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
रक्तातिसारजिद्रक्तपित्ततृद्दाहमोहनुत् ॥

सफेद चन्दनके चूर्णमे शहद और मिश्री मिलाकर चावलोके पानीके साथ पीनेसे रक्तातिसार पित्त, पिपासा, दाह और मोह नष्ट होता है।

(१६९५) चन्दनयोगः [२] (वै.म.र.।पटल११)

शीतपित्तशमनाय चन्दनं छिन्नरोहरसपेषितं तथा ।

शीत पित्त (पित्ती) की शान्तिके लिए सफेद चन्दनको गिलोयके रसमें पीसकर पीना चाहिए। (मात्रा=१॥–२ माशा)

(१६९६) चन्दनादिचूर्णम् [१]

(आ. वे. वि. । अ. ६८)

रक्ताङ्गबब्बूलरसः प्रियङ्गु
जम्ब्वाम्रबीजेन्द्रयवं यमानी ।
वन्या च सा मोचरसो गुडूची
लौहस्य भस्म सममेव सर्वम् ॥
मात्रैकमासप्रमिता विधेया
प्रोक्तं महेशेन च चन्दनादिः ।
चूर्णं प्रमेहान् सकलांश्च तूर्णम्
सपूयरक्तं लसिकाख्यमेहम् ॥
सोपद्रवं हन्ति तथाग्निमान्द्यं
तृष्णाज्वरारोचकरोगसंघान् ॥

लाल चन्दन, कीकरका गोद, फूलप्रियंगु, जामन और आमकी गुठली, इन्द्रजौ, अजवायन, अजमोद, मोचरस, गिलोय और लोहभस्म समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे पीप और रक्तयुक्त प्रमेह, लसिका प्रमेह तथा अन्य समस्त प्रकारके उपद्रवयुक्त प्रमेह और अग्निमांद्य, तृष्णा, ज्वर और अरुचिका नाश होता है।

(१६९७) चन्दनादिचूर्णम् [२]

(हा. सं. । स्था. ३ अ. ५१)

चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा पटोलं वनबालकम् ।
मधूकं मधुयष्टी च तथा लोहितचन्दनम् ॥
सारिवा जीरकं मुस्तं पद्मकश्च पुनर्नवा ।
क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तोद्भवे गदे ॥

सफेद चन्दन, खस, मजीठ, पटोलपत्र, नागरमोथा, नेत्रबाला, महुवेके फूल, मुलैठी, लाल चन्दन, सारिवा, जीरा, कैवर्तमुस्तक, पद्माक और पुनर्नवा समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए।

इसे खांड युक्त दूधके साथ सेवन करनेसे पित्तरोग शान्त होते है।

(१६९८) चन्दनादिचूर्णम् [३]

(भै. र. । स्त्री., ग. नि. । चूर्णा., वृं. मा., यो. र. । रक्तपित्त, यो. त. । त. २६; र. र. । प्रदर, वृ. यो. त. । त. ७५)

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम् ।
नागपुष्पश्च बिल्वश्च भद्रमुस्तश्च शर्करा ॥
ह्रीवेरश्चैव पाठा च कुटजस्य फलत्वचम् ।
शृङ्गवेरं सातिविषा धातकी च रसाञ्जनम् ॥

आम्रास्थि जम्बुसारास्थि तथा मोचरसोद्भवः।
नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमोद्भवम् ॥
चतुर्विंशतिमेतानि समभागानि कारयेत्।
तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥
चतुष्प्रकारं प्रदरं रक्तातीसारमुल्बणम्।
रक्तार्शांसि निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
अश्विन्योःसम्मतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥
(एतानि चूर्णानि समभागानि एकीकृत्य माषक-चतुष्टयं तण्डुलोदकेन मधुना च सह योजयेत्)

सफेद चन्दन, नल, लोध, खस, कमलकेसर, नागकेसर, वेलगिरी, नागरमोथा, खांड, नेत्रवाला, पाठा, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौं, सोंठ, अतीस, धायके फूल, रसौत, आम और जामनकी गुठलीकी मोगी (गिरी), मोचरस, नीलोफर, मजीठ, छोटी इलायची और अनारदाना समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए।

अश्विनीकुमार निर्मित इस चूर्णको ४माशेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर तण्डुलोदक (चावलो के पानी) के साथ पीनेसे चार प्रकारके प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श (खूनी बवासीर) और रक्तपित्त का अत्यन्त शीघ्र नाश होता है।

(१६९९) चन्दनादिचूर्णम् [४]

(भै. र. । शुक्र. मे.)

चन्दनं शाल्मलीपुष्पं त्रिजातं रजनीद्वयम्।
अनन्तां शारिवां मुस्तमुशीरं यष्टिकामले ॥
स्वर्णपत्रीं शुभां भार्ङ्गीं देवदारुहरीतकीम्।
सर्वाद्विगुणितं लौहञ्चैकत्र परिमर्दयेत् ॥
प्रमेहा विंशतिः श्वासःकासो जीर्णज्वरस्तथा।
प्राशनादस्य नश्यन्ति दुर्नामानि च कामला ॥

सफेद चन्दन, सेंभलके फूल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, सारिवा, नागरमोथा, खस, मुलैठी, आमला, सनाय, बंसलोचन, भारङ्गी, देवदारु और हर्रका चूर्ण समान भाग और समस्त ओषधियोंसे दो गुना शुद्ध लोहचूर्ण* लेकर एकत्र खरल कर लीजिए।

इसे (१ माशेकी मात्रानुसार शहदके साथ) चाटनेसे २० प्रकारके प्रमेह, श्वास, खांसी, जीर्ण ज्वर, बवासीर और कामलाका नाश होता है।

(१७००) चन्दनादिचूर्णम् [५]

(वृ. नि. र. । संग्र.)

चन्दनं पद्मकोशीरपाठामूर्वाकुटन्नटम्।
सौराष्ट्रयतिविषापत्रत्वगेलादेवदारु च ॥
मरिचं चूर्णयेत्तुल्यं मधुना लेहयेदनु।
अजाक्षीरं जलार्धेन क्वाथ्य दुग्धावशेषकम् ॥
पिबेत्पित्तहरं रात्रौ क्षीरिणाशाकमाचरेत्।
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं दुग्धैर्वाला च मण्डकम् ॥

ग्रहणी रोगकी शान्तिके लिए—

सफेद चन्दन, पद्माक, खस, पाठा, मूर्वा, नागरमोथा, सौराष्ट्री, अतीस, तेजपात, दालचीनी, इलायची, देवदार और स्याहमिर्च समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

बकरीके दूधमें आधा पानी मिलाकर पकाइये। जब पानी जल जाय तो दूधको ठण्डा कर लीजिए। उपरोक्त चूर्ण २—२ माशेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे यह दूध पीना चाहिए। और रात्रिके समय दूधीका शाक खाना चाहिए। एवं पथ्यमें दहीभात अथवा नेत्रवालाके

* लोहभस्म लेना उत्तम है।

काथसे पकाए हुवे दूधमें बना हुवा चावलोका मण्ड खाना चाहिए।

(१७०१) चन्दनादिचूर्णम् [६]

(यो. र., वृ. नि. र. । दाह.)

चन्दनोशीरकुष्ठाब्दधात्रीचोरकमुत्पलम् ।
मधुकं मधुपुष्पं च द्राक्षाखर्जूरकं तथा ॥
चूर्णीकृतं समसितं प्रातः शीताम्बुना पिबेत् ।
रक्तपित्तं तथा श्वासं पैत्यं गुल्मं समुद्धरेत् ॥
अङ्गदाहं शिरोदाहं शिरोविभ्रममेव च ।
कामलाश्च प्रमेहांश्च पित्तज्वरविनाशनम् ॥
चन्दनाद्यमिदं चूर्णं पूज्यपादेन भाषितम् ॥

सफेद चन्दन, खस, कूठ, नागरमोथा, आमला, चोरक, नीलोफर, मुलैठी, महुवेके फूल, मुनक्का और खजूरका चूर्ण १-१ भाग तथा मिश्री ११ भाग लेकर एकत्र मिला लीजिए।

इस "चन्दनादि चूर्ण" को प्रातःकाल शीतल जलके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त, श्वास, पित्तज गुल्म, अङ्गदाह, शिरोदाह, शिरका घूमना (चक्कर आना), कामला, प्रमेह और पित्तज्वरका नाश होता है।

(मात्रा=३-४ माशा)

(१७०२) चन्दनादिलौहम्

(भै. र., र. चं, र. रा. सं., र. र., र. रा. सुं. । ज्वरा.)

रक्तचन्दनह्रीवेरपाठोशीरकणाशिवा ।
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिसदेन समन्वितः ॥
लौहो निहन्ति विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्

लाल चन्दन, नेत्रबाला, पाठा, खस, पीपल, हर्र, सोठ, नीलोफर, आमला, नागरमोथा, चीता, बायबिड‍ङ्ग । सबका चूर्ण १-१ भाग और लोह भस्म सबके बराबर लेकर एकत्र खरल कर लीजिए।

इसके सेवनसे समस्त विषमज्वर नष्ट होते हैं।

(मात्रा=४ रत्ती । अनुपान=मधु ।)

(१७०३) चन्दनाद्यं चूर्णम्

(आ. वे. वि. । अ. ७९)

चन्दनं द्वितयं मूर्वा नीलिन्येलाद्वयं मुरा ।
कणाद्वयं त्रिवृद्द्राक्षा मांसी मधुकमुस्तकम् ॥
एतत्सर्वं चूर्णयित्वा डिम्बाधारगदापहम् ।
उष्णेन पयसा नारी पिबेन्नित्यं सुखार्थिनी ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, मूर्वा, नीलका पौदा, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, मुरामांसी (मुरमुकी), पीपल, गजपीपल, निसोत, मुनक्का, जटामांसी, मुलैठी और नागरमोथा समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए। इसे उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे गर्भाशयके रोग नष्ट होते है।

(मात्रा=३-४ माशे)

(१७०४) चन्द्रकलाचूर्णम् (वै. जी.। वि. २)

तुल्यांशं सकलं किरातकटुकामुस्तेन्द्रजत्र्यूपणम्।
भागश्चन्द्रकलामित कुटजतो भागद्वयं चित्रकात्॥
चूर्णं चन्द्रकलाभिधं गुडपयोयुक्तं च पाण्डुज्वरा-
तीसारारुचिकामलाग्रहणिकागुल्मप्रमेहापहम् ॥

चिरायता, कुटकी, मोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, मिर्च और पीपल १-१ भाग, कुड़ेकी छाल १६ भाग और चीता २ भाग लेकर महीन चूर्ण कर लीजिए।

इस 'चन्द्रकला' नामक चूर्णको गुड़युक्त दूधके साथ (२-३ माशेकी मात्रानुसार) सेवन

करनेसे पाण्डु, ज्वर, अतिसार, अरुचि, कामला, संग्रहणी, गुल्म और प्रमेहका नाश होता है ।

(१७०५) चन्द्रोदयोऽगदः (व से. । विष.)

चन्दनञ्च शिलाकुष्ठत्वक्पत्रैलाब्दसर्षपाः ।
मांसीपद्मकवत्साऽऽह्वकुसुरसीभवरोचना ॥
स्पृक्काहिङ्ग्वम्बुलामज्जशतपुष्पाप्रियङ्गवः ।
पिष्ट्वा सर्वविषोन्मन्था नाम्ना चन्द्रोदयोऽगदः ॥

सफेद चन्दन, मनसिल, कूठ, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागरमोथा, सरसों, वालछड़, पद्माक, इन्द्रजौ, केशर, गोरोचन, स्पृक्का, हींग, सुगन्धवाला, लामज्जकतृण (खस भेद—अभावमें खस), सोया और फूल प्रियंगु समान भाग लेकर पीस लीजिए ।

यह 'चन्द्रोदयागद' समस्त विषोका नाश करता है ।

(१७०६) चम्पकादिचूर्णम् (यो.त. । त.२५)

चम्पकं चन्दनं वारि पर्पटोशीरपद्मकम् ।
मञ्जिष्ठातिविषा मोचा वासेन्द्रयवपिप्पली ॥
केसरं धातकी पाठा मुस्ता शुण्ठी च विल्वजम् ।
उत्पलं दाडिमीबीजं जम्बूबीजं त्वचामयम् ॥
एला च चन्दनं रक्तं माषचूर्णं रसाञ्जनम् ।
तालीसञ्च समांशानि शर्करा च चतुर्गुणा ॥
हारिद्रके पाण्डुरोगे प्रमेहे रक्तपित्तके ।
कासे श्वासे च हिक्कायां मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे ॥

चम्पाके फूल, सफेद चन्दन, नेत्रवाला, पित्त-पापडा, खस, पद्माक, मजीठ, अतीस, मोचरस, वासा, इन्द्रजौ, पीपल, नागकेसर, धायके फूल, पाठा (जलजमनी), मोथा, सोंठ, वेलगिरी, नीलोफर, अनारदाना, जामनकी गुठली, दालचीनी, कूठ, इलायची, लालचन्दन, उर्द, रसौत और तालीस-पत्रका चूर्ण समान भाग तथा मिश्री सबसे चार गुनी लेकर एकत्र कर लीजिए ।

इसे (१ तोलेकी मात्रानुसार) हारिद्रक, पाण्डु रोग, प्रमेह, रक्तपित्त, खासी, श्वास, हिचकी और भयङ्कर मूत्रकृच्छ्रमें (उचित अनुपानके साथ) प्रयुक्त करना चाहिए ।

(१७०७) चव्यादिचूर्णम् [१]

(र. सा. सं., वं. से.; भै.र.; वै.र.; वृं.मा, च.द. । स्वर भं, ग. नि. । चूर्ण., वृ. यो. । त. ८१)

चव्याम्लवेतसकटुकत्रयतिन्तडीक-
तालीशजीरकतुगादहनैः समांशैः ।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तम्;
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥

चव, अम्लवेत, सोठ, मिर्च, पीपल, तिन्तिडीक, तालीसपत्र, जीरा, वंसलोचन, चीता, दालचीनी, इलायची और तेजपातके समान भाग मिश्रित चूर्ण को सबके वरावर गुड़में मिला लीजिए ।

इसे (३—४ माशेकी मात्रानुसार गर्म जलके साथ) सेवन करनेसे स्वरभंग (गला वैठना), पीनस, कफ और अरुचिका नाश होता है ।

(१७०८) चव्यादिचूर्णम् [२]

(वृ.नि.र., यो.र., वृं.मा., ग नि., च.द. । मदात्य.)

चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु पूरकं विश्वभेषजम् ।
चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम् ॥

चव, सौंचल (काला नमक), हींग, विजौरे नींवूका गूदा और सोठके समान भाग चूर्ण को शरावमें मिलाकर पीनेसे पानात्यय (मद्यविकार) की पीड़ा नष्ट होती है ।

(१७०९) चव्यादिचूर्णम् [३]

(वृ. नि. र.; वं. से., यो. र. । मेदरो.)

सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलः ।
मधुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥

(जौके) सत्तूमें चव, जीरा, सोठ, मिर्च, पीपल, हींग, सौचल (काला नमक) और चीतेका चूर्ण डालकर शहदमें मिलाकर पीनेसे मेद (चरबी) घटती और अग्नि दीप्त होती है।

(१७१०) चव्यादिचूर्णम् [४] (वृ नि.र.।संग्र.)

चूर्णं चव्यकचित्रश्रीविश्वभेषजनिर्मितम् ।
तक्रेण सहितं हन्ति ग्रहणीं दुःखकारिणीम् ॥

चव, चीता, बेलगिरी, और सोठके समान भाग मिश्रित चूर्णको (१॥-२ माशेकी मात्रानुसार) तक्रके साथ सेवन करनेसे दुःखदायक संग्रहणी नष्ट होती है।

(१७११) चव्यादिचूर्णम् [५] (वं.से ।रा य.)

चव्यव्योषविडङ्गानि चूर्णं कृत्वा लिहेन्नरः ।
सर्पिर्मधुभ्यां मुच्येत क्षयरोगान्न संशयः ॥

चव, सोठ, मिर्च, पीपल और बायबिड़ङ्गके चूर्णको शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे क्षयरोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

(मात्रा=३-४ माशे ।)

(१७१२) चातुर्जातम् (भै र. । परिशि)

चातुर्जातं समाख्यातं त्वगेलापत्रकेशरैः ।
तदेव त्रिसुगन्धिः स्यात्त्रिजातकमकेशरम् ॥×

दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसरके योगका नाम 'चातुर्जात' है। और नागकेसर रहित अन्य तीन औषधियोंके समूहको 'त्रिगन्ध' या 'त्रिजात' कहते हैं।

× चातुर्जातमदं वर्ण्यं वह्निकृच्च विपापहम्। (रा. नि. । व. २२) चातुर्जातक शरीरके रंगको सुधारने वाला, अग्निवर्द्धक और विषनाशक है।

(१७१३) चातुर्जातादिसम्भारकः

(ग. नि. । बाल.)

चातुर्जातकतालीसकुष्ठं त्रिकटुकं तथा ।
चविका पिप्पलीमूलं तवक्षीरं च जीरकम् ॥
अश्वगन्धा च सम्भारं चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत्।
चूर्णाद्द्विगुणितं खण्डं सर्पिषा लेहयेच्छिशुम् ॥
अजीर्णश्वासकासघ्नं बालानामङ्गवर्धनम् ।
सर्वरोगहरं श्रेष्ठं बलपुष्टिकरं मतम् ॥

दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, तालीसपत्र, कूठ, सोठ, मिर्च, पीपल, चव्य, पीपलामूल, बंसलोचन, जीरा और असगन्धका चूर्ण समान भाग तथा समस्त चूर्णसे २ गुनी मिश्री लेकर एकत्र कर लीजिए।

इसे घीमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे उनके अजीर्ण, श्वास, खांसी आदि रोग नष्ट होते और बल, पुष्टि तथा शरीरकी वृद्धि होती है।

चातुर्भद्रिका

(आयु. वि । अ. ८, भा. प्र. । वा. रो)

१६३२ संख्यक, प्रयोग देखिए।

(१७१४) चिञ्चादिचूर्णम्

चिञ्चापलसमायुक्तं गृहधूमं पलार्धकम् ।
पुराणाज्येन सप्ताहं लीढ्वा चाखुविषं हरेत् ॥

१ पल (५ तोले) इमली और आधा पल घरका धुंवा एकत्र मिलाकर पुराने घीके साथ सात दिन तक सेवन करनेसे चूहेका विष नष्ट होता है।

(१७१५) चिञ्चावीजयोगः (वै.म.र.।पट.६)

चिञ्चावीजत्वचं सैन्धवं दीप्यकस्तथा।
पिवेदामेन तक्रेण सोऽतिसारं जयेत्क्षणात्॥

इमलीके वीज (चियें), दालचीनी, सेंधानमक और अजवायनके समान भाग मिश्रित चूर्ण को (३-४ माशेकी मात्रानुसार) तक्रके साथ सेवन करनेसे अतिसार अत्यन्त शीघ्र नष्ट होता है।

(१७१६) चिञ्चावीजादिचूर्णम्

(वृ. नि. र.। मसूरि.)

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यक्।
चिञ्चोत्थवीजसहितां रजनीं पिवन्ति॥
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे।
पीढाकरा जगति शीतलिकाविकारा॥

इमलीके वीज (चियें) और हल्दीके चूर्ण को शीतल जलके साथ सेवन करनेसे शीतला (माता) नहीं निकलती।

(१७१७) चित्रकचूर्णयोगः (वृ.नि.र.।रक्तपि)

जयेन्नासाश्रितं रक्तं लीढं वा क्षौद्रपावकम्॥

चीतेके चूर्ण को शहदमें मिलाकर चाटनेसे नकसीर (नाकसे रक्तस्राव होना) वन्द होती है।

(१७१८) चित्रकप्रयोगाः

(वा. भ.। उत्त. स्था.। अ. ३९)

छायाशुष्कं ततो मूलं मासं चूर्णीकृतं लिहन्।
सर्पिषा मधुसर्पिर्भ्यां पिवन्वा पयसा यतिः॥
अम्भसा वा हितान्नाशी शतं जीवति नीरुजः।
मेधावी वलवान्कान्तो वपुष्मान्दीप्तपावकः॥
तैलेन लीढो मासेन वातान्हन्ति सुदुस्तरान्।
मूत्रेण श्वित्रकुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान्॥

चीतेकी जड़को छायामें सुखाकर महीन चूर्ण करके घी अथवा घी और शहद या दूध अथवा जलके साथ एक मास पर्यन्त सेवन करने और ब्रह्मचर्य तथा पथ्य पालन करनेसे मनुष्यको रोग रहित १०० वर्षकी आयु प्राप्त होती है तथा मेधा, वल, कान्ति और अग्निकी वृद्धि होती है।

चीतेकी जड़के चूर्णको १ मास पर्यन्त तैलके साथ सेवन करनेसे समस्त भयङ्कर वातरोग, गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे सफेद कोढ और तक्रके साथ सेवन करनेसे अर्श (ववासीर) नष्ट होती है।

(१७१९) चित्रकादि क्षारः (ग.नि.। उदर.)

चित्रकः पिप्पली चैव सैन्धवं लवणं वचा।
घृतं चेति समांशानि कटाहे संवृतं दहेत्॥
पिवेत्क्षीरेण तं क्षारं मद्येनोष्णोदकेन वा।
प्लीहानमर्शःशूलानि गुल्मं चैव प्रणाशयेत्॥

चीता, पीपल, सेंधानमक, वच और घी समान भाग लेकर (अधकुटा करके एकत्र मिलाकर) एक कढावमें भरकर भस्म कर लीजिए। *

इस क्षारको दूध, मद्य या उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे तिल्ली, ववासीर, शूल और गुल्मका नाश होता है। (मात्रा=१ माशा)

---

* उपरोक्त समस्त वस्तुओंको कढ़ावमें डालकर उसके ऊपर दूसरा कढ़ाव या अन्य पात्र ढककर भट्टीपर चढ़ा दीजिये और जव समस्त चूर्ण जल जाय तो अग्नि जलानि वन्द कर दीजिए। तत्पश्चात् स्वांग शीतल होने पर निकालकर वोतलोंमें भरकर मजवूत कार्क लगाकर रखिए कि जिससे नमीका प्रभाव न पड़े।

(१७२०) चित्रकादिचूर्णम् [१]

(भा. प्र. । म. ख. आम.)

चित्रकेन्द्रयवापाठाकटुकातिविषाभयाः ।
आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना ॥४५

चीता, इन्द्रजौं, पाठा, कुटकी, अतीस और हैड़के चूर्ण को मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे आमाशयगत वायुका नाश होता है।

चित्रकादिचूर्णम् [२] (र. र. । शू.)

रसप्रकरणमें देखिए।

(१७२१) चित्रकादिचूर्णम् [३]

(ग. नि., यो. र. । अति०)

चित्रकं पिप्पलीमूलं वचा कटुरोहिणी ।
पाठा वत्सकबीजानि हरीतकी महौषधम् ॥
एतदामसमुत्थानमतिसारं सवेदनम् ।
कफात्मकं सपित्तं च वर्चो बध्नाति वै ध्रुवम् ॥

चीता, पीपलामूल, बच, कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, हर्र और सोठके चूर्ण को (गर्म पानीके साथ १॥–२ माशेकी मात्रानुसार) सेवन करनेसे वेदनायुक्त आमातिसार, कफातिसार और पित्तातिसारका नाश होता तथा मल बंध जाता है।

(१७२२) चित्रकादिचूर्णम् [४]

(यो. र.., वं. से. । आमवा., वृ. यो. त. । त. १६)

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषामृताः ।
देवदारु वचा मुस्ता नागरातिविषाभयाः ॥
पिबेदुष्णाम्बुना नित्यं चूर्णमाममरुत्प्रणुत् ॥

चीता, कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय, देवदारु, बच, मोथा, सोठ, अतीस और हर्रके सम भाग मिश्रित चूर्ण को (२–३ माशेकी मात्रानुसार) गर्म जलके साथ सेवन करनेसे आमवात रोग नष्ट होता है।

नोट—अतीस २ भाग और अन्य सब पदार्थ १–१ भाग लेने चाहिएं। अथवा आधे आधे श्लोकद्वारा कथित (६–६ ओषधियोके) दो प्रयोग भी हो सकते है।

(१७२३) चित्रकादिचूर्णम् [५]

(वृ. नि. र. । कास.)

चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली ।
एतच्चूर्णं समं युक्तं मधुना श्लेष्मकासनुत् ॥

चीता, पीपलामूल, पीपल और गजपीपलके चूर्ण को (१॥–२ माशेकी मात्रानुसार) शहदमें मिलाकर चाटनेसे कफज खांसी नष्ट होती हैं।

(१७२४) चित्रकादिचूर्णम् [६]

(वृं. मा., यो. र । ग्रह.)

चित्रकं हपुषा हिङ्गु दद्याद्वा तक्रसंयुतम् ।
पञ्चकोलकयुक्तं वा तक्रेणैव प्रदापयेत् ॥

संग्रहणीकी शान्तिके लिए चीता, हाऊबेर और हींगके चूर्ण को अथवा पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोठ) सहित इनके चूर्ण को तक्रके साथ पिलाना भी हितकर है।

(१७२५) चित्रकादिचूर्णम् [७] (र.र.।शू.)

शुद्धलोहमलाच्चूर्णं पट्पलं पञ्चकार्षिकम् ।
हरीतक्याःकठिन्याश्च रसगन्धकयोःपृथक् ॥
अर्धकर्षं ततःकर्षं चित्रकं नागरं कणा ।
सूक्ष्मैला तेजपत्रञ्च वाट्यालं भद्रमुस्तकम् ॥
यवानीधान्यकं धूपं बिभीतक्यामलक्यपि ।
विडङ्गं शङ्खनाभिश्च अर्जुनाशनयोस्त्वचः ॥

अपामार्गभवं मूलं सर्वमेकीकृतं शुभम् ।
पीठोपरि पदं न्यस्य अस्तये घृतभाजने ॥
भुक्तोपरि च तच्चूर्णं कर्षं कर्षार्द्धमाचरेत् ।
तप्तोदकानुपानञ्च ताम्बूलं भक्षयेत्ततः ॥
ततो भूमौ पदं दत्वा भूमेः किञ्चिद्यथा सुखम् ।
प्रत्यहं भक्षयेद्भक्त्या वह्निसन्दीपनं परम् ॥
शूलमष्टविधं हन्ति विशेषात्परिणामजम् ।
अन्नद्रवं कृतं शूलं यकृत्प्लीहकृतञ्च यत् ॥
शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्ति तत्परम् ।
कामलापाण्डुरोगघ्नं हलीमकविनाशनम् ॥
मानवानां कृपाहेतोर्देवदेवेन निर्मितम् ।
चित्रकाद्यमिदं चूर्णं सर्वशूलान्तकं मतम् ॥ †

शुद्ध मण्डूरका चूर्ण ६ पल (३० तोले) हर्रका चूर्ण ५ कर्ष (६। तोले), खिरिया मिट्टी ५ कर्ष, पारा आधा कर्ष, गन्धक आधा कर्ष, चीता, सोंठ, पीपल, छोटी इलायची, तेजपात, खरैंटी, नागरमोथा, अजवायन, धनियां, राल, बहेड़ा, आमला, वायविड़ङ्ग, शंखकी नाभि, अर्जुनकी छाल, असन (पीतशाल) की छाल और चिरचिटेकी जड़ का चूर्ण १-१ कर्ष लेकर एकत्र खरल करके घृतके चिकने पात्रमें भरकर रख दीजिए।

इसे १ कर्ष या आधे कर्षकी मात्रानुसार उष्ण जलके साथ भोजनके पश्चात् खाकर पान खा लिया कीजिए। इसके सेवनसे अग्निवृद्धि होती और आठ प्रकारके शूल, विशेषतः परिणाम शूल, अन्नद्रव शूल, यकृत् शूल और प्लीह शूल नष्ट होता है। शूलके लिए इससे उत्तम अन्य औषध नहीं है।

यह कामला, पाण्डु और हलीमक रोगको भी नष्ट करता है।

† नोट-यह अन्तिम श्लोक किसी अन्य प्रयोगका प्रतीत होता है और लेखककी भूलसे यहां लिखा गया है, एवं इसी कारण इस योगका नाम भी "चित्रकादि" रखना पड़ा है।

(१७२६) चित्रकाद्यं चूर्णम् (ग.नि.।चूर्णा.)

चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली ।
हिङ्गु पुष्करमूलञ्च दाडिमं कृष्णजीरकम् ॥
विडङ्गधान्यहपुषाशताह्वाहिङ्गुपत्रिकाः ।
चव्याम्लवेतसाजाजीवस्तगन्धाशठी वचाः ॥
तुम्बरूण्यजमोदा च यवानी रुचकं तथा ।
समभागानि सर्वाणि सर्वैस्तुल्यं तु नागरम् ॥
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा मातुलुङ्गेन भावयेत् ।
ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥
जयेत्सर्वाङ्गजं शूलं कोष्ठगं कुक्षिगं तथा ॥
अर्शोजठरगुल्मघ्नं दीपनीयं विशेषतः ।
चित्रकाद्यमिदं चूर्णमामवातहरं परम् ॥

चीता, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, हींग, पोखरमूल, अनारदाना, कालाजीरा, वायविडङ्ग, धनिया, हाऊबेर, सोया, हिंगुपत्री, चव, अमलवेत, जीरा, अजवायन, कचूर, वच, तुम्बुरु (नैपाली धनिया), अजमोद, अजवायन और कालानमक समान भाग तथा सबके बराबर सोंठ लेकर महीन चूर्ण करके बिजौरे नींबूके रसमें घोटकर सुखा लीजिए।

इसे १ कर्ष (१। तोले) की मात्रानुसार उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे, सर्वाङ्गशूल, उदर शूल पसलीकाशूल, बवासीर, उदररोग (प्लीहादि) गुल्म और आमवातका नाश होता है।

यह 'चित्रकादि चूर्ण' अत्यन्त अग्निदीपक है।

(१७२७) चित्राङ्ग्यादि चूर्णम्

(ग. नि. । ज्वरा. १)

चित्राङ्गी सिंहवदनस्ताम्रमूली महौषधम् ।
पयोधरशिवं काली चूर्णमुष्णाम्बुसंयुतम् ॥
प्रपीतं विषमं हन्ति जठरानलदीपनम् ॥

मजीठ, बासा, धमासा, सोठ, नागरमोथा, आमला और कलौंजीके समान भाग मिश्रित चूर्ण को (२ माशेकी मात्रानुसार) उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे विषमज्वर नष्ट होता और अग्नि प्रदीप्त होती है।

(१७२८) चिन्तामणि चूर्णम् (वै.जी.।वि.३)

रास्नाबलापद्मकदेवदारु
फलत्रिकत्र्यूषणवेल्लचूर्णम् ।
चिन्तामणि क्षौद्रघृतोपपन्नं
श्वासं च कासं च निराकरोति ॥

रास्ना, खरैंटी, पद्माक, देवदारु, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोठ, मिर्च, पीपल और बायबिडङ्ग का समान भाग चूर्ण एकत्र कर लीजिए।

इस 'चिन्तामणि' नामक चूर्णको शहद और घीके साथ (१॥ माशेकी मात्रानुसार) सेवन करने से श्वास और खांसीका नाश होता है।

(१७२९) चिरविल्वाद्यं चूर्णम् (ग.नि.।अर्श.)

चिरविल्वाग्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारलु ।
तक्रेण पिबतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ॥

करञ्जवा, चीता, सेंधानमक, सोठ, इन्द्रजौ और अरलु (श्योनाक—सोनापाठा) के समान भाग मिश्रित चूर्ण को (३ माशेकी मात्रानुसार) तक्रके साथ सेवन करनेसे बवासीरके मस्से नष्ट हो जाते हैं।

(१७३०) चूर्णरत्नम् (रसे. चिं. । अ. ८)

वृष्यगणचूर्णतुल्यं पुटपक्वं घनं सिताद्विगुणा ।
वृष्यात्परमतिवृष्यं रसायनं चूर्णरत्नमिदम् ॥
शतावरीविदारीगोक्षुरक्षुरकबलातिबलाः इति वृष्यगणः। अत्र गन्धमूर्च्छितरसमभ्रात् पादिकं ददति दाक्षिणात्याः । अनुपेयं दुग्धादिः ।

शतावर, विदारीकन्द, गोखरु, तालमखाना, खरैंटीके बीज (बीजबन्द), कंघीकी जड़। इनका चूर्ण १–१ भाग और अभ्रक भस्म इन सबके बराबर तथा इस सबसे दोगुनी मिश्री एकत्र मिलाकर खरल कर लीजिए।

यह चूर्ण अत्यन्त वृष्य और रसायन है। दक्षिण देशवासी वैद्य इसमें अभ्रकसे चौथाई पारे और गन्धककी कज्जली भी डालते हैं।

(मात्रा—१ माशा प्रातः; १ माशा सायंकाल। अनुपान—दूध)

(१७३१) चूर्णागदः (ग नि. । विष० ३)

सोशीरनिम्बं तगरं च कुष्ठं
मुस्तं सताप्यं कुटजं सरोध्रम् ।
त्वक्सप्तपर्णस्य च चूर्णमेत–
द्योगं नवाङ्गं मधुना च सार्धम् ॥
कृष्णायसे काञ्चनराजते वा
पीतं विषाणां शमनं त्रयाणाम् ।
चूर्णागदो वारण एष सिद्धो
हन्ता विषाणां सचराचराणाम् ॥

खस, नीमकी छाल, तगर, कूठ, नागरमोथा, सोनामक्खी भस्म, इन्द्रजौ, लोध और सप्तपर्ण

(सतौने) की छाल बराबर बराबर लेकर चूर्ण कर लीजिए ।

इस "चूर्णागद" को कृष्ण लोह, सोने या चांदीके पात्रमें शहदमें मिलाकर पिलानेसे स्थावर, जंगम और कृत्रिम (तीनों प्रकारके) विष नष्ट हो जाते हैं ।

(१७३२) चोपचीनीयोगः

(न. मृ. । त. ८; भा. प्र. ख. २ । फिरंग.)

चोपचीनीभवं चूर्णं शाणमानं समाक्षिकम् ।
फिरङ्गव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत् ।
लवणं यदि वा त्यक्तुं न शक्नोति यदा जनः ।
सैन्धवं स हि भुञ्जीत मधुरं परमं हितम् ॥

४ माशेकी मात्रानुसार चोपचीनीका चूर्ण शहदमें मिलाकर सेवन करने और लवण रहित मधुर रसयुक्त पदार्थ (गेहूं इत्यादि) खानेसे फिरंग रोग (आतशक)का नाश होता है ।

यदि लवण रहित भोजन न किया जा सके तो सैंधव नमकका उपयोग करना चाहिए ।

(१७३३) चोपचिन्यादिचूर्णम्

(यो. र.; वृ. नि. र. । उपदं.)

कुडवं चोपचिन्याश्च शर्करायाःपलं तथा ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवपुष्पकम् ॥
आकल्लं क्षुरकं शुण्ठी जन्तुघ्नं च वराङ्गकम् ।
पृथक्कोलमितं ग्राह्यमेतच्चूर्णीकृतं शुभम् ॥
सर्वमेकत्र संयोज्यं कर्षार्धं प्रतिवासरम् ।
भक्षयेन्मधुसर्पिभ्यां युक्तं पथ्यं समाचरेत् ॥
शाल्योदनं तथा यूपस्तुवरीणां घृतं मधु ।
गोधूमः सैन्धवं शिग्रुबिम्बीकोशातकीफलम् ॥
आर्द्रकं जलमन्दोष्णं हितमत्र प्रकीर्त्तितम् ।
पञ्चोपदंशरोगाणाम् प्रमेहाणां तथैव च ॥
व्रणानां वातरोगाणां कुष्ठानाञ्च विनाशनम् ॥

चोपचीनीका चूर्ण २० तोले, खांड ५ तो. पीपल, पीपलामूल, मरिच, लौंग, अकरकरा, तालमखाना, सोंठ, वायविडङ्ग और दालचीनीका चूर्ण १-१ कोल (१ तोला लेकर सबको एकत्र कर लीजिए ।

इसे प्रतिदिन ६ माशेकी मात्रानुसार शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे पांच प्रकारका उपदंश (आतशक), प्रमेह, व्रण, वातव्याधि और कुष्ठ रोगका नाश होता है ।

पथ्य—शाली चावल, अरहरकी दाल, घी, शहद, गेहूं, सैंधानमक, संहजना, कंदूरी, तुरई, अदरक और मन्दोष्ण जल ।

(व्यवहारिक मात्रा=२ माशेसे ४ माशेतक)

॥ इति चकारादिचूर्णप्रकरणम् ॥

अथ चकारादि गुटिकाप्रकरणम् ।

(१७३४) चतुःसमा गुटिका

(बं. से., यो. र.; भा. प्र. खं. २; र. रा. सुं.। अति., वृं. मा. । कासा.)

अभया नागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम् ।
चतुःसमेयं गुटिका त्रिदोषघ्नी प्रकीर्त्तिता ॥
आमातिसारमानाहं विविधाश्च विषूचिकाम् ।
कृमीनरोचकं हन्याद्दीपयत्याशु चानलम् ॥

हर्र, सोठ और नागरमोथेका चूर्ण तथा [पुराना] गुड़ समान भाग एकत्र मिलाकर गोलियां बना लीजिए ।

यह चतुस्समा गुटिका त्रिदोषज अतिसार, अफारा, अनेक प्रकारकी विसूचिका (हैज़ा), कृमि और अरुचिनाशक तथा अग्निवर्द्धक है ।

(१७३५) चतुस्समो मोदकः

(वं. से., वृं. मा. । अर्श.; हा. सं. । स्था.३ अ.११; यो. त. । त. २३; वृ. यो. त. । त. ६९)

सनागराऽरुष्करवृद्धदारकम्
गुडेन यो मोदकमत्युदारकम् ।
अशेष दुर्नामकरोगदारकम्
करोति वृद्धिं सहसैव दारकम् ॥

सोठ और विधारेका चूर्ण तथा शुद्ध भिलावा और पुराना गुड़ समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर मोदक बना लीजिए ।

यह मोदक अर्शनाशक और बलवर्द्धक है ।

(मात्रा—३ माशेसे १ तोले तक ।)

'चन्द्रकलावटी' रस प्रकरणमें देखिए ।

(१७३६) चन्द्रप्रभागुटिका [१]

(र. रा. सुं. । मेह, र. र. स. । उ. खं. अ. १७ हा. सं. । स्था. ३, अ. ५८)

एलाजातिफलं मधूकयुगलं सारस्तथा खादिरः।
कर्पूरामलकीजटा बहुसुता घोण्टाम्लसारस्तथा॥
कासीसं भवसारदाडिमफलं सर्वं च सम्मीलितम् ।
प्रत्येकं दधिदुग्धलाङ्गलिरसैर्युक्तं समं कल्कितम्॥
रसेन भावितं तस्य गुटिका च प्रकल्पिता ।
जयेच्चन्द्रप्रभानाम तीव्रान् मेहादिकान् गदान् ॥

इलायची, जायफल, मुलैठी, महुवा, खैरसार, कपूर, आमलेके वृक्षकी जड़की छाल, शतावर, बेर, अम्लवेत, कसीस, गूगल और अनारदाना समान भाग लेकर चूर्ण करके सबको दही, दूध और कलिहारीके रसकी एक एक भावना देकर गोलियां बना लीजिए ।

यह चन्द्रप्रभा गुटिका भयङ्कर प्रमेहका नाश करती है ।

(१७३७) चन्द्रप्रभागुटिका [२]

(ग. नि. गुटि. ४)

कीटघ्नेभकणाग्निमागधिजटामुस्ताशठीताप्यकम्
भूनिम्बत्रिफलासुराह्वचविकाव्योषं वचा धान्यकम् ॥
रात्रीयुग्मविषात्रिवृच्त्रिलवणं क्षारत्रिजातान्वितम्
लोहात्तत्र सिता चतुष्पलयुतं स्याद्दशिकायाः पलम् ॥
हन्त्यर्शांसि षडेव गुल्मजयं शोषं क्षयं कामलाम्।
नाडीमर्मगदाश्मलोदररुजो दीर्घज्वरान्विद्रधीन्॥

यक्ष्माणं सभगन्दरं कफमरुत्पित्तोद्भवं पाण्डुताम्।
तं तं व्याधिसमूहशुक्रविकृतीन्ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदान्
मेहांश्शुक्रविनाशमश्मरिरुजस्त्वन्यांश्च-
देहस्थितान् ।
व्याधीन्हन्ति दृढाननेन विधिना चन्द्रप्रभा सेविता
मन्दाग्नेः परमं प्रदीपनमियं कुर्याज्जरां जर्जराम्।
स्वेच्छाहारविधौ च पानविषये शीतातपे मैथुने ॥
युक्तं नास्ति विरोधितं च सततं प्रोक्ता
पुरा ब्राह्मणा।

वायविडङ्ग, गजपीपल, चीता, पीपलामूल, मोथा, कचूर, सोनामक्खी भस्म, चिरायता, हर्र, वहेड़ा, आमला, देवदार, चव, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, धनिया, हल्दी, दारुहल्दी, अतीस, निसोत, सेधा नमक, काला नमक, खारी नमक, यवक्षार, दालचीनी, इलायची, तेजपात, लोहभस्म और मिश्री ४-४ पल तथा अगर एक पल लेकर महीन चूर्ण करके (पानीमें घोटकर) गोलियां वना लीजिए।

इनके सेवनसे ६ प्रकारकी ववासीर, भयङ्कर गुल्म, शोप, क्षय, कामला, मर्मगतनाड़ी व्रण (नासूर), जलोदर, जीर्णज्वर, विद्रधि, भगन्दर, राजयक्ष्मा, कफज-पित्तज और वातज पाण्डुरोग, शुक्र विकार, ग्रन्थि, अर्वुद, श्लीपद, प्रमेह, शुक्र-क्षय, अश्मरी इत्यादि अनेक रोगोका नाश होकर अग्निदीप्त होती है।

इसके सेवन कालमें खानपान, धूप आतप, मैथुनादि किसी वातके परहेजकी आवश्यकता नहीं है।

(१७३८) चन्द्रप्रभागुटिका [३]

(भा. प्र., वं. से. । वा. र.; र. का. धे., र. चं.; भै. र., धन्वं. । अर्श.; रसे. चि. म. । अ. ९)

क्रिमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यभूनिम्बाः
मागधीमूलं मुस्तशटीवचाधातुमाक्षिकश्चैव ॥
लवणक्षारनिशायुक्तुस्तु-
म्बरुगजकणासहातिविषाः ।
कर्षांशिकान्येव समानि कुर्या-
त्पलाष्टकं चाश्मजतु प्रदद्यात् ॥
निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमा
न्पलद्वयं लौहरजस्तथैव ।
सिता चतुष्कं पलमत्र वा स्या-
न्निकुम्भकुम्भात्रिसुगन्धयुक्तम् ॥
पृथक्पलं चूर्णमथावपेच्च
चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया ।
ज्वरातिसारग्रहणीविकारां-
श्चार्शांसि निर्णाशतये पडेव ॥
भगन्दरान्कामलपाण्डुरोगा-
न्निर्नष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ।
हन्त्यामयान्पित्तकफानिलोत्था-
न्नाडीगते मर्मगते व्रणे च ॥
क्षतक्षये गृध्रसियक्ष्मरोगे
मेहे गजाख्ये प्रवले प्रयोज्या।
शुक्रक्षये चाश्मरीमूत्रकृच्छ्रे
शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये च ॥

---

१ वोलमिति पाठभेद । २ सटीति पाठान्तरम्। ३ लाङ्गलीरसैस्तुम्बस्य मुद्गस्य चेति पाठन्तरम्।

शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रसादं
प्राप्ता गुटी चन्द्रमसा प्रशस्ता ।
न पानभोज्ये परिहारवादो
न शीतवातातपमैथुनेषु ॥
भक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या
तक्रानुपानादपि मस्तुपानम् ।
शुक्रदोषान्निहन्त्यष्टौ प्रमेहांश्चापि विंशतिम् ।
वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥

वायबिडङ्ग, चीता, सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, देवदारु, चव, चिरायता, पीपलामूल, मोथा, कचूर, बच, सोनामक्खी भस्म, सेधानमक, यवक्षार, हल्दी, दारुहल्दी, कुस्तुम्बरु (नैपाली धनिया), गजपीपल, रास्ना और अतीस १-१ कर्ष (१। तो.), शुद्ध शिलाजीत ८ पल (४० तोले), शुद्ध गूगल २ पल, लोहभस्म २ पल, मिश्री ४ पल, निसोत, शुद्ध जमालगोटा, दालचीनी, इलायची और तेजपात १-१ पल (५ तोले) लेकर (प्रथम शिलाजीत, लोह और गूगलको एकत्र करके) उन रोगोंको हरनेवाली [कि जिनमें प्रयुक्त करना हो] ओषधियोके क्वाथकी अनेक भावनाएं दीजिए तत्पश्चात् अन्य समस्त ओषधियोका महीन चूर्ण मिलाकर, (त्रिफला क्वाथमें) घोटकर गोलियां बना लीजिए ।

यह 'चन्द्रप्रभा गुटिका' ज्वरातिसार, ग्रहणी विकार, ६ प्रकारकी अर्श, भगन्दर, कामला, पाण्डु, वात-पित्त-कफज अनेक रोग, नाड़ीव्रण, मर्मस्थान का व्रण, क्षत, क्षय, गृध्रसी, राजयक्ष्मा, हस्तिमेह, शुक्रक्षय, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रस्राव, और उदर रोगोका नाश करती है ।

इसे भोजनके प्रारम्भमें तक्र या मस्तुके साथ सेवन करना चाहिए। इसके सेवनकालमें किसी प्रकारके परहेज़की आवश्यकता नहीं है ।

इसके नित्य सेवन करनेसे २० प्रकारके प्रमेह, शुक्रदोष और वलि (शरीरकी झुर्रियां) पलित (बालोका सफेद होना) रोग नष्ट होकर वृद्ध भी तरुणके समान हो जाता है ।

(मात्रा=१॥-२ माशे । साधारण अनुपान मिश्रीयुक्त दूध । अथवा जिस रोगमें व्यवहृत करनी हो उसको नष्ट करनेवाली ओषधिके क्वाथके साथ खाएं ।)

(१७३९) चन्द्रप्रभावटी [१]

शा. सं. । म. ख. अ. ७; नपुं. मृ. । त. ७; भै. र., वै. र. । प्रमे. चि., वृ. यो. त. । त. १०३)

चन्द्रप्रभा वचा मुस्तं भूनिम्बामृतदारुकम् ।
हरिद्रातिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥
धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली ।
व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥
एतानि शाणमात्राणि प्रत्येकं कारयेद्बुधः ।
त्रिवृद्दन्तीपत्रकश्च त्वगेला वंशरोचना ॥
प्रत्येकं कर्षमात्राणि कुर्यादेतानि बुद्धिमान् ।
द्विकर्षं हतलौहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत् ॥
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः ।
एभिरेकत्र संक्षुण्णैः कर्त्तव्या गुटिका शुभा ॥
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोग प्रणाशिनी ।
प्रमेहान्विंशतिं कृच्छ्रं मूत्राघातं तथाश्मरीम् ॥
विबन्धानाहशूलानि मेहनग्रन्थिमर्बुदम् ।
अण्डवृद्धिं तथा पाण्डुं कामलां च हलीमकम् ॥

अन्त्रवृद्धिं कटीशूलं श्वासं कासं विचर्चिकाम् ।
कुष्ठान्यर्शांसि कण्डूं च प्लीहोदरभगन्दरम् ॥
दन्तरोगं नेत्ररोगं स्त्रीणामार्त्तवजां रुजाम् ।
पुंसान्शुक्रगतान् दोषान्मन्दाग्निमरुचिं तथा ॥
वायुं पित्तं कफं हन्याद्बल्या वृष्या रसायनी ।
चन्द्रप्रभायां कर्पस्तु चतुःशाणो विधीयते ॥

कचूर (मतान्तरमें बावची), वच, मोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चीता, धनियाँ, हर्र, बहेड़ा, आमला, चव, वायविडङ्ग, गजपीपल, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोनामक्खी भस्म, यवक्षार, सज्जीखार, सेंधानमक, कालानमक और समुद्रनमक ३।।।-३।।। माशे तथा निसोत, दन्तीमूल, तेजपात, दारचीनी, इलायची और वंसलोचन १-१ कर्ष (१५ माशे) एवं लोहभस्म २ कर्ष, मिश्री ४ कर्ष, शिलाजीत ८ कर्ष और गूगल ८ कर्ष लेकर सबका महीन चूर्ण करके गोलियां बना लीजिए।×

यह 'चन्द्रप्रभा गुटिका' बीस प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, मलावरोध, अफारा, शूल, मेहनग्रन्थि (मूत्रग्रन्थि), अर्बुद (रसौली), अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कटिशूल, श्वास, खांसी, विचर्चिका, कुष्ठ, अर्श (बवासीर), खुजली, तिल्ली, भगन्दर, दन्तरोग, नेत्ररोग, स्त्रियोंकी आर्तव पीड़ा, पुरुषोंके शुक्रविकार, मन्दाग्नि, अरुचि, वात, पित्त और कफनाशक तथा बल्या, वृष्या और रसायनी है।

× नोट—१-भैषज्य रत्नावलीमें कचूरसे लेकर चीते तककी समस्त औषधें १-१ कर्ष लिखी हैं शेष प्रयोग समान है। २ वृ.यो.त में त्रिफलेके अतिरिक्त शेष प्रयोग समान है।

मात्रा=१।।-२ माशा। अनुपान=मिश्रीयुक्त दूध अथवा जिस रोगमें सेवन करनी हो उसको नष्ट करनेवाला कोई क्वाथ।

नोट—'चन्द्रप्रभा' शब्दसे प्रायः वैद्य 'कचूर' ही ग्रहण करते हैं परन्तु मेरी सम्मतिमें कपूर लेना अधिक उत्तम है।

चन्द्रप्रभावटी [२] (र. का. धे. । कुष्ठ.)

रस प्रकरणमें देखिए।

चन्द्रप्रभावटी [३] (र.रा.सु.; र.सा.सं. इत्यादि)

रस प्रकरणमें देखिए।

चन्द्रप्रभावटिका (र.र.स.। उ.खं. अ.२०)

रस प्रकरणमें देखिए।

(१७४०) चपलामण्डूरम्

(ग. नि., च. द.; र. का. धे. । शूला.)

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
चपला[१]नागरक्षारपिप्पलीमूलचित्रकम् ॥
संचूर्ण्य निक्षिपेत्तस्मिन् पलांशं सान्द्रतां गते ।
गुटिकां कल्पयेत्तेन पक्तिशूलनिवारिणीम् ॥

आठ पल लोहकिट्ट (मण्डूर) को ८ गुने गोमूत्रमें पकाइये और गाढा हो जाने पर उसमें १-१ पल पीपल, सोंठ, जवाखार, पीपलामूल और चीतेका चूर्ण मिला दीजिए और गोलियां बनाकर रख लीजिए।

इनके सेवनसे पक्ति शूल (परिणाम शूल) नष्ट होता है।

(मात्रा=१ माशेसे ३ माशे तक।)

(१७४१) चिञ्चाक्षारादिशङ्खवटी

(यो. र. । गुल्म; वृ. नि. र.)

१. चविकेति पाठान्तरम्।

चिञ्चाक्षारं स्नुहीक्षारमर्कक्षारं पलं पलम् ।
द्विपलं शङ्खजं भस्म रामठञ्च पलार्धकम् ॥
लवणानि च सर्वाणि पलमात्राणि योजयेत् ।
क्षारद्वयं पलार्धञ्च सर्वमेकत्र योजयेत् ॥
जम्बीरकरसैर्मर्द्यमनलस्य दिनत्रयम् ।
भृङ्गराजस्य निर्गुण्ड्या मुण्ड्याश्चैव पृथग्द्रवैः ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव प्रत्येकं दिनमर्दितम् ।
बदरीबीजमात्रांस्तु वटिकान्कारयेद्भिषक् ॥
एकैकं भक्षयेत्प्रातः पञ्चगुल्मान्व्यपोहति ।
सर्वं शूलं निहन्त्याशु अजीर्णं च विषूचिकाम् ॥
मन्दाग्निं नाशयेच्छीघ्रं पथ्यं तैलाम्लवर्जितम् ।
चिञ्चाशङ्खवटी नाम ग्रहणीरोगहृत्परा ॥

इमलीका खार, स्नुही (सेहंड–थोहर) का क्षार और अर्कक्षार १–१ पल, शंख भस्म २ पल, हींग आधा पल, पांचो नमक (सेंधा नमक, काला नमक, समन्द्र नमक, भट्ठी नमक, काच नमक) १–१ पल, यवक्षार और सज्जीखार आधा आधा पल लेकर सबको एकत्र करके ३–३ दिन तक जम्बीरी नींबूके रस और चीतेके क्काथमें तथा १–१ दिन भांगरा, संभालु, मुण्डी और अद्रकके रसमें पृथक् पृथक घोटकर बेरकी गुठलीके बराबर (१॥ माशेकी) गोलियां बना लीजिए ।

यह 'चिञ्चाशङ्खवटी' पांच प्रकारके गुल्म, हर प्रकारका शूल, अजीर्ण, विसूचिका और अग्निमांधका नाश करती है ।

से. वि.—प्रातः सायं १–१ गोली (गर्म पानीसे) खानी चाहिए ।

(१७४२) चित्रकगुटिका (ग.नि.।गुटिका.४)

चित्रकस्य पलं दत्वा पलं चार्धं त्रिवृत्तथा ।
कणाकर्षो गुडस्याष्टौ पलानि समुपाहरेत् ॥
विंशतिश्च हरीतक्यो गुटिका दश कारयेत् ।
दशमे दशमे चाह्नि त्वेकैकां भक्षयेत्सुधी ॥
मण्डलानि च कण्डूश्च अर्शांसि ग्रहणीं जयेत् ॥

चीता १ पल (५ तो०), निसोत आधा पल, पीपल १ कर्ष (१। तोला), गुड़ ८ पल और हर्र २० पल लेकर समस्त ओषधियोंका महीन चूर्ण करके गुड़में मिलाकर सबकी १० गोलियां बना लीजिए ।

हर दसवें दिन १ गोली (गर्म जलके साथ) खानेसे मण्डल कुष्ठ, खुजली, बवासीर और ग्रहणी रोग नष्ट होता है ।

(१७४३) चित्रकादिगुटिका

(च. सं. । चि. अ. १९; भै. र.; यो. र.; वृं. मा.; च. द., वं. से.; भा. प्र. । ग्रहणी; ग. नि. गुटि. ४; वृ. यो. त. । त. ६७, यो. त. । त. २२, शा. ध.)

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
व्योषं हिङ्ग्वजमोदाञ्च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥
गुटिकामातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा ।
कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥
सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च ।
सामुद्रेण समं पञ्चलवणान्यत्र योजयेत् ॥

चीता, पीपलामूल, सज्जीखार, सेंधा नमक, काला नमक, खारी नमक, समन्द्र नमक, सोरा,

१ शारङ्गधरसंहितामें यही प्रयोग चूर्णाधिकारमें वर्णित है । उसमें क्षार और लवण १–१ भाग तथा अन्य ओषधे २–२ भाग हैं ।

सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोद, हींग और चवके समान भाग चूर्णको विजौरे नींबू या अनारके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

यह गोलियां आम पाचक और अग्निदीपक है। (मात्रा=३-४ माशे। गर्म पानीसे।)

(१७४४) चित्रकादिगुटी- (वृ.यो.त.त.१३०)

कटुत्रिकं चित्रकतिन्तिडीकं
तालीसपत्रं चविकाम्लसंज्ञम्।
विचूर्णितं जीरकचूर्णयुक्तं
एलात्वचा तत्सुरभीकृतञ्च ॥
मिश्रं पुराणेन गुडेन दद्या-
त्पीनसानां परिपाचनार्थम् ॥३४

सोठ, मिर्च, पीपल, चीता, तिन्तिड़ीक, तालीसपत्र, चव, जीरा और अम्लवेतका चूर्ण १-१ भाग लेकर ९ भाग पुराने गुडकी चाशनीमें मिलाकर और उसमें सुगन्धिके लिए थोडा थोड़ा इलायची और दालचीनीका चूर्ण मिलाकर मोदक बना लीजिए।

ये मोदक पीनस रोगीको पाचनार्थ सेवन कराने चाहियें।

(मात्रा=१ तोला। अनुपान=उष्ण जल)

(१७४५) चित्रकादिमोदकः

(हा. सं.। स्था. ३ अ. ७)

चित्रकं त्रिवृतां दन्तीं विडङ्गं कटुकत्रयम्।
समं चूर्णं गुडेनाथ कारयेन्मोदकान् सुधीः ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पश्चादुष्णोदकं पिबेत्।
परिणामोद्भवं शूलं हन्ति शूलं नरस्य च ॥

चीता, निसोत दन्तीमूल, वायविडङ्ग, सोठ, मिर्च और पीपलका समान भाग चूर्ण सबके बराबर गुड़की चाशनीमें मिलाकर मोदक बना लीजिए।

इन्हें (१ तोलेकी मात्रानुसार) प्रातःकाल उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे परिणाम शूल नष्ट होता है।

(१७४६) चित्रकादिवटकः (वृ.नि.र.। शूल.)

चित्रकं लवणं पाठा व्योषं लवणपञ्चकम्।
अजाजीं धान्यकं हिंस्रा दीप्यकं ग्रन्थिकं तथा॥
एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
जम्बीरस्य रसेनैव वटकान्कारयेद्बुधः ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च आमशूलमरोचकम्।
अशीतिं वातजान् रोगान् नाशयेच्च तत्क्षणात् ॥

चीता, सेंधानमक, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधा नमक, सैाचल (कालानमक), खारीनमक, कचलोना (काच नमक), समन्दर नमक, ज़ीरा, धनिया, कटेली, अजवायन और पीपलामूलका चूर्ण समान भाग लेकर सबको जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें (३-४ माशेकी मात्रानुसार गर्म पानीके साथ) सेवन करनेसे हृच्छूल, पसलीका दर्द, आम शूल अरूचि और अस्सी प्रकारके वातज रोग नष्ट होते हैं।

चिन्तामणिगुटिका (र. का. धे.। ज्व.)

रस प्रकरणमें देखिए।

चिन्तामणिरसगुटिका (यो. चि.)

रस प्रकरणमें देखिए।

चिन्तामणिवटिका (र. का. धे.)

रस प्रकरणमें देखिए।

चूलिकावटी (भै. र.। उद.)

रस प्रकरणमें देखिए।

(१७४७) चतुःसममण्डूरम्

(भै. र.; धन्वं. । शूल.)

सद्यो लोहमलाज्यमाक्षिकसिता भागाः समाः मानतः
पात्रे ताम्रमये दिनान्तमथितं संस्थापयेदातपे ।
पश्चात्तद्घनतां प्रणीय रजनीमेकं बहिःस्थापयेत्
पात्रे ताम्रमये निधेयमथवा पात्रे हविर्भाविते ॥
पश्चान्माषचतुष्टयं प्रतिदिनं जग्ध्वा जलं शीतलं
पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्दभोज्यैर्नरैः॥
जेतुं शूलहुताशमान्द्यकसनश्वासाम्लपित्तज्वरो-
न्मादापस्मृतिमेहसर्वजठराजीर्णादिसर्वारुजः ॥

शुद्ध मण्डूर, घी, शहद और मिश्री समान भाग लेकर १ दिन तांबेके पात्रमें घोटकर धूपमें रख दीजिए, जब गाढा हो जाय तो उसे १ रात ओसमें रखिए। पश्चात् उसे तांबेके या घृतसे चिकने किए हुए मिट्टीके पात्रमें भरकर रख दीजिए।

इसे भोजनके आदि, मध्य और अन्तमें ४ माशेकी मात्रानुसार शीतल जलके साथ सेवन करनेसे शूल, अग्निमांद्य, खांसी, श्वास, अम्लपित्त, ज्वर, उन्माद, अपस्मार (मिर्गी), प्रमेह,समस्त उदर विकार और अजीर्णादि समस्त रोग नष्ट होते है।

इसके सेवन कालमें भोजन स्वच्छन्दतापूर्वक कर सकते हैं; किसी प्रकारके परहेज़की आवश्यकता नहीं है।

॥ इति चकारादिगुटिकाप्रकरणम् ॥

अथ चकारादि लेहप्रकरणम्।

(१७४८) चतुरंगावलेहः (भा.प्र.।ख.२ज्वर.)

खिन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षयासह मेलयेत्।
विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥
तेनास्य शाम्यति श्वासःकासो मूर्च्छाऽरुचिस्तथा

आमलोको उबालकर पीसकर उनमें समान भाग मुनक्का और सोठका चूर्ण मिलाकर शहदके साथ चाटनेसे स्वास, खांसी, मूर्च्छा और अरुचि नष्ट होती है।

(१७४९) चन्दनाद्यवलेहः

(हा. सं. । स्था. ३, अ. २१; वृ. नि. र.)

चन्दनं तगरं कुष्ठं यष्टी त्रिगन्धवासकम्।
मञ्जिष्ठाभीरुमृद्वीकापाठाश्यामाप्रियङ्गुभिः ॥
स्वयंगुप्ता पीलुपर्णि विषा रास्ना गवादनी ।
काकोल्यौ जीरकं मेदे पुष्करं घनवालकम् ॥
विदारी चांशुमती च त्रिवृद्दन्ती विडङ्गकम् ।
पद्मकश्चैन्द्रवृक्षश्च तथाश्वगन्धचित्रकम् ॥
धान्यकं पञ्चजीराणि तथा तालीसपत्रकम् ।
खदिरस्य च निर्यासरुजाकालीयकं तथा ॥
तिन्तडीकश्च वृक्षाम्लं त्रिफला काश्मरीफलम्।
कङ्कोलश्च जातिफलं तथा च नागकेसरम् ॥
परूषं च सखर्जूरं समं चैकत्र मर्दयेत् ।
भावितं पुनरेवं च मधुना सघृतेन च ॥

लेहोऽयं च सदा शस्तश्चापस्मारेऽतिदारुणे।
उन्मादे कामलारोगे पाण्डुरोगे हलीमके॥
राजयक्ष्मे रक्तपित्ते पित्तातिसारपीडिते।
रक्तातिसारे शोफे च शिरोरोगे सदाज्वरे॥
तमकभ्रमके छर्दिदाहे च समदात्यये।
अश्मर्यां च प्रमेहेषु कासे श्वासे च पीनसे॥
एतेषां च प्रयोक्तव्यः सर्वरोगनिवारणः।
वन्ध्यानाञ्च प्रयोक्तव्यो वृद्धानाञ्च विशेषतः॥
बालानाञ्च हितश्चैव शृणु चात्र प्रमाणकम्।
उत्तमे कर्षमात्रं च पादहीनन्तु मध्यमे॥
दद्यात् क्षीरयुतं स्त्रीणां बालानां क्षीरसंयुतम्।
एवं प्रयोजितो योगो महाकल्पो गुणाधिकः॥
बलवान् गुणवांश्चैव भवतीह फलप्रदः।
नरकुञ्जरवाहानामुपयुक्तो हितो मतः॥
चन्दनाद्यो महायोगः कृष्णात्रेयेण पूजितः॥

सफेद चन्दन, तगर, कूठ, मुलैठी,दारचीनी, तेजपात, इलायची, वासा, मजीठ, शतावर,मुनक्का, पाठा, कालानिसोत, फूलप्रियंगु, कौंचके बीज, पीलुपर्णी(मूर्वा), अतीस, रास्ना, इन्द्रायन, काकोली, क्षीरकाकोली, जीरा, मेदा (बहमन सफेद), महामेदा (बहमन सुर्ख), पोखरमूल, मोथा, नेत्रबाला, विदारीकन्द, शालपर्णी, निसोत, दन्तीमूल, बायबिडङ्ग, पद्माख, देवदारु, अमलतास, चीता, धनियां, पांच प्रकारका जीरा, तालीसपत्र, खैरका गोंद, कूठ, अगर, तिन्तडीक, इमली, हर्र, बहेड़ा, आमला, खम्भारीके फल, कङ्कोल, जायफल, नागकेसर, फालसा और खजूर समान भाग लेकर महीन चूर्ण कर लीजिए और उसे बिजौरेके रसकी सात भावना देकर उसमें सबके बराबर मिश्री मिलाकर वासेके रसकी सात भावना दीजिए।

इसे शहद और घीमें मिलाकर चाटनेसे भयङ्कर अपस्मार (मिरगी), उन्माद (पागलपन), कामला, पाण्डु, हलीमक, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, पित्तातिसार, शोफ, रक्तातिसार, शिरोरोग, सदा बना रहने वाला ज्वर, तमक श्वास, भ्रम, छर्दि, दाह, मदात्यय (मद्यविकार), पथरी, प्रमेह, खांसी, श्वास और पीनस रोग नष्ट होता है।

यह वन्ध्या स्त्री, बालक और विशेषतः वृद्धों के लिए हितकर है। इसकी उत्तम (पूर्ण) मात्रा १ कर्ष (१। तोला) और मध्यम मात्रा पौन कर्ष है।

यह कृष्णात्रेय कल्पित चन्दनाद्यवलेह स्त्रियो और बच्चोंको दूधके साथ खिलानेसे बलवृद्धि होती है।

(१७५०) चन्दनावलेहः (१)

(ग. नि. । परि. लेहा.)

मातुलुङ्गरसप्रस्थं प्रस्थार्धं दाडिमाद्रसः।
तत्तुल्यं नारिकेलाम्बु शर्करा कुडवद्वयम्॥
पाकं कृत्वा यथा न्यायं सिद्धशीते समावपेत्।
चन्दनं च तुगाक्षीरीं धान्यकं सारिवां तथा॥
कङ्कोलकमुशीरं च कुङ्कुमं शतपुत्रिकाम्।
सत्वं गुडूच्याश्च तथा कर्षमानं पृथक् पृथक्॥
एषोऽवलेहो हृद्रोगं भ्रमं मूर्च्छां वमिं तथा।
दाहञ्च सुमहाघोरं शमयेन्नात्र संशयः॥

बिजौरे नींबूका रस १ प्रस्थ (८० तोले), अनारका रस और नारियलका पानी (हरे नारि-

१ छोटा और बड़ा सफेद तथा स्याह जीरा और वनजीरा।

यलको तोडनेसे जो पानी निकलता है वह) आधा आधा प्रस्थ तथा मिश्री आधा प्रस्थ लेकर एकत्र मिलाकर पकाइये। जब अवलेहके समान गाढा हो जाय तो ठण्डा करके उसमें १-१ कर्ष (१।-१। तोला) सफेद चन्दन, वंसलोचन, धनिया, सारिवा, कङ्कोल, खस केसर और शतावरका चूर्ण तथा गिलोयका सत मिला दीजिए।

इस अवलेहके सेवनसे हृद्रोग, भ्रम, मूर्च्छा, वमन और भयङ्कर दाहका अवश्य नाश होता है।

(मात्रा=१-१॥ तोला।)

(१७५१) चन्दनावलेहः (२)

(र. र. स. । उ. खं. अ. २१)

एलायाश्च तुला ग्राह्या जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागाऽवशिष्टं तु शर्करार्धतुलां क्षिपेत्।
शतावर्या विदार्याश्च गोक्षीरं चाढकं पृथक्।
लेहवत्साधिते तस्मिन्द्राक्षा मधुकपिप्पली॥
त्रिजातकं च खर्जूरं चन्दनद्वयसारिवा।
मुस्तापद्मकह्रीवेरधात्रीचोत्पलचोरकम्॥
एतेषां पलमादाय क्षिपेत्क्षीर्याश्चतुष्पलम्।
क्षौद्रप्रस्थेन संयुक्तं लेहयेत्प्रातरुत्थितः॥
पित्तोन्मादविकारेषु शिरोभ्रमणमूर्छिते।
हस्तपादाङ्गदाहे च पित्तरक्तोत्तरावृत्तौ॥
छर्दिकासक्षये पाण्डौ चन्द्रवच्चन्द्रभाषितम्॥

१०० पल (५०० तोले) इलायचीको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें पकाइये और आठवां भाग शेष रहनेपर छानकर उसमें ५० पल खांड और १-१ आढक (४-४ सेर) शतावरीका रस, विदारीकन्दका रस और गायका दूध मिलाकर पुनः पकाकर अवलेहके समान गाढा कर लीजिए। और फिर उसमें मुनक्का, मुलैठी, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, खजूर, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, सारिवा, मोथा, पद्माक, नेत्रबाला, आमला, नीलोफर और चोरकका १-१ पल चूर्ण तथा बंसलोचनका चूर्ण ४ पल (२० तोले) और १ सेर शहद मिला लीजिए।

इसे प्रातःकाल सेवन करनेसे पित्तोन्माद, शिरोभ्रमण (चक्कर आना), मूर्च्छा, हाथपैर और शरीरकी दाह, रक्तपित्त, वमन, (पित्तज) खांसी, क्षय और पाण्डुरोग नष्ट होता है।

श्रीचन्द्र कथित यह चन्दनावलेह चन्द्रके समान शान्तिदायक है।

(मात्रा=१ तोलेसे २॥ तोले तक)

(१७५२) चव्यादिलौहम्

(र. र. । धन्वं.; र. का. धे. । अर्श.)

चव्याः पलाष्टकं देयं खदिरं चार्द्धमेव च।
चित्रकस्य पलं पञ्च तालमूली च तत्समा॥
त्रिफला प्रस्थसंयुक्ता जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागावशेषेण कषायमवतारयेत्॥
आज्यात्पलाष्टकं देयं रुक्मलौहस्य षोडश।
पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारयेत्॥
त्रिवृद्दन्ती विडंगानि पथ्या चामलकानि च।
शुण्ठी त्रिभीतकी कृष्णा एषां देयं पलार्द्धकम्॥
शर्करामधुचत्वारि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
दुर्नामकुष्ठश्वयथुपाण्डुप्लीहोदरापहम्॥
हृच्छूले गुदशूले च परिणामकृते हितम्।
बलवर्णकरं वृष्यमग्निसन्दीपनं परम्॥
करीरकाञ्जिकं चैव काकमाचीं विवर्जयेत्॥

चव ८ पल (४० तोले); खैर सार ४ पल; चीता ५ पल, ताड़की जड़ ५ पल और त्रिफला १ प्रस्थ (१६ पल) लेकर, कूटकर १ द्रोण (१६ प्रस्थ) जलमें पकाइये। जब आठवां भाग पानी शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए। अब इसमें ८ पल घी और १६ पल शुद्ध रुक्म लोहका चूर्ण मिलाकर तांबेके पात्रमें पकाइये, जब गाढा हो जाय तो उतारकर ठण्डा करके उसके निसोत, दन्तीमूल, वायविड़ङ्ग, हर्र,आमला, सोंठ, वहेड़ा और पीपलका चूर्ण आधा आधा पल और खांड तथा शहद ४-४ पल मिलाकर घृतसे चिकने किए हुवे पात्रमें भरकर सुरक्षित रखिए।

इसके सेवनसे बवासीर, कुष्ठ, शोथ, पाण्डु, तिल्ली, हृच्छूल, गुदशूल और परिणामशूल नष्ट होता तथा बल, वर्ण, अग्नि और वीर्यकी वृद्धि होती है।

इसके सेवन कालमें करीर,काञ्जी और मकोय से परहेज़ करना चाहिए।

चातुर्भद्रावलेहिका

(वं.से., भा.प्र.; भै.र.; च.द.; ग.नि.। ज्वर.; वृ. यो. त.। त ५९)

[७७९ संख्यक प्रयोग देखिए।]

(१७५३) चातुर्भद्रावलेहः

(भा. प्र.। ख. २ ज्वरा.)

पिप्पलीत्रिफला चापि समभागाञ्ज्वरीलिहन्।
मधुना सर्पिषा चापि कासी श्वासी सुखी भवेत्॥

पीपल, हर्र, बहेड़ा और आमलेके समान भाग चूर्णको (३से ६ मासेकी मात्रानुसार) शहद और घीमें मिलाकर चाटनेसे ज्वर, खांसी और श्वास नष्ट होता है।

चित्रकगुडः (वं.से.;वृ.मा.अजीर्ण; ग.नि.।लेहा.)

चित्रक हरीतकी सं. १७५५ देखिए। उसमें और इसमें केवल इतना भेद है कि इसमें आमलेका रस नहीं पड़ता तथा यवक्षार ४ तो. और अन्य प्रक्षेप द्रव्य १-१ पल पड़ते हैं।

ग. नि. में यही प्रयोग चित्रावलेहके नामसे लिखा है।

(१७५४) चित्रकलेहः (वं.से.उदर.;ग.नि.लेहा.)

चित्रकस्य शतं दद्यात्तत्तुल्यो ग्रन्थिको मतः।
पञ्चाशद्दशमूलस्य शेषान् पञ्चपलान् पृथक्॥
बलां भार्ङ्गीं शठीं पाठां पौष्करं मूलमेव च।
चतुर्द्रोणेऽम्भसां पक्त्वा द्रोणशेषे तथैव च॥
पचेद्गुडशतं दत्वा लेहवत्साधु साधयेत्।
चतुष्पलं तु पिप्पल्यास्तुगाक्षीर्याःपलद्वयम्॥
त्रिजाताच्च पलं चैकं मरिचस्य पलं तथा।
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा दर्व्या सम्यग्विघट्टयेत्॥
पलमात्रं ततः खादेत्प्लीहगुल्मोदरार्शसाम्।
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं शीतार्तिं चाम्लपित्तकम्॥
भारद्वाजेन कथितो लेहश्चित्रकसंज्ञकः॥

चीता और पीपलामूल १००-१०० पल (प्रत्येक ६। सेर), दशमूल ५० पल और खरैंटी, भारंगी, कचूर, पाठा और पोखरमूल ५-५ पल लेकर अधकुट करके सबको ४ द्रोण (६४ सेर) पानीमें पकाइये। जब १ द्रोण जल शेष रह जाय तो उसे छानकर उसमें १०० पल (६। सेर) गुड़ मिलाकर पुनः पकाइये और अवलेह तैयार हो जाने पर उसमें ४ पल (२० तोले) पीपलका

चूर्ण, २ पल बंसलोचनका चूर्ण और १-१ पल दारचीनी, तेजपात, इलायची तथा मरिचका महीन चूर्ण डालकर करछलीसे खूब घोटिए।

महर्षि भारद्वाज कल्पित यह चित्रक लेह प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अर्श, भयङ्कर यक्ष्मा, शीत और अम्लपित्तका नाश करता है।

मात्रा=१ पल (५ तोले)।

(व्यवहारिक मात्रा=१ तोला। अनुपान=उष्ण जल।)

(१७५५) चित्रकहरीतकी

(यो. र.; भै.र.; वृं.मा.; च.द.; धन्वं.। नासा. यो. त.। त. ७२, ग. नि.। ले.)

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम्।
शतं शतं रसं दत्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात्॥
शतं पचेद्घनीभूते पलद्वादशकं क्षिपेत्।
व्योषत्रिजातयोः क्षारात्पलार्धमपरेऽह्नि॥
प्रस्थार्द्धं मधुनो दत्वा यथाग्न्यद्यादयन्त्रणः।
वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं कृमीन्॥
गुल्मोदावर्तदुर्नामश्वासान् हन्ति सुदारुणान्।

चीता और दशमूलका काथ तथा आमले और गिलोयका रस (अथवा काथ) १००-१०० पल (६। सेर प्रत्येक) गुड़ १०० पल और हर्रका चूर्ण ४ सेर (३२० तो०) लेकर एकत्र मिलाकर पकाइये और गाढा हो जाने पर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायचीका चूर्ण १२ पल (प्रत्येकका चूर्ण २ पल=१० तोले) और यवक्षार आधा पल मिला दीजिए तथा दूसरे दिन आधा प्रस्थ (४० तो०) शहद मिलाकर रखिए।

इसे अग्नि बलानुसार सेवन करनेसे क्षय, खांसी, दुस्तरपीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त बवासीर और भयङ्कर श्वासका नाश तथा अग्निवृद्धि होती है।

नोट—यो. र. क. और यो. त. के मतानुसार दशमूलके स्थानमें पञ्चमूल लेना चाहिए और चारो चीजोंको ४ द्रोण पानीमें पकाकर १ द्रोण शेष रखना चाहिए। तथा शुण्ठ्यादि ६ द्रव्य ६ पल मिलाने चाहिएं।

(१७५६) चित्रकादिभल्लातकावलेहः

(वं. से.। अर्श.)

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकश्चविकामृता।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरकाः॥
एषां चतुष्पलान् भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत्।
भल्लातकसहस्रे द्वे छित्वा तत्रैव दापयेत्॥
तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्भिषक।
तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम्॥
त्र्यूषणं त्रिफला वह्नि सैन्धवं विडमौद्भिदम्।
सौवर्चलं विडङ्गानि पलिकांशानि कल्पयेत्॥
कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च।
सूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत्॥
सिद्धशीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम्।
प्रातर्भोजनकाले वा ततः खादेद्यथा बलम्॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं पाण्डुरोगमरोचकम्।
कृमिगुल्माश्मरीमेहशूलाश्चाशु व्यपोहति॥
करोति शुक्रोपचयं वलीपलितनाशनम्।
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम्॥

चीता, हर्र, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, पीपलामूल, चव, गिलोय, गजपीपल, चिरचिटा,

सफेद फूलकी सहदेवी और तुलसी ४-४ पल (२०-२० तोले) लेकर अधकुट करके १ द्रोण (३२ सेर) पानीमें पकाइये, और पकने समय उसमें २ हजार टोपी उतरे हुए भिलावे डाल दीजिए। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर उसमें ५० पल (३ सेर १० तोले) शुद्ध तीक्ष्ण लोहचूर्ण मिलाकर पुनः पकाइये और गाढा होनेपर उसमें आध सेर घी और सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, चीता, सेंधा नमक, खारी नमक, उद्भिज नमक, सौंचल (काला नमक) और वायविडङ्गका चूर्ण १-१ पल (५ तोले) तथा ४-४ पल विधारे और तालमूली (ताल वृक्षकी मूसली) का चूर्ण और ८ पल ज़िमींकन्दका चूर्ण मिलाकर ठण्डा करके उसमें आधा सेर शहद मिलाकर चिकने पात्रमें भरकर रख दीजिए।

इसे अग्नि बलानुसार, प्रातःकाल अथवा भोजनके समय सेवन करनेसे अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, अरुचि, कृमि, गुल्म, पथरी, प्रमेह, शूल और वलि पलितका नाश होकर शुक्र वृद्धि होती है।

(मात्रा=१ तोला। अनुपान=दूध)

(१७५७) चित्रकादिलौहम्

(भै. र. । प्ली.; धन्वं. । उदर रो.)

चित्रकं नागरं वासा गुडूची शालपर्णिका।
तालपुष्पमपामार्गो माणकं कार्षिकत्रयम् ॥
लौहमभ्रकणाताम्रं क्षारको लवणानि च।
पृथक्कर्षांशमेतेषां चूर्णमेकत्र चिक्कणम्।
चतुष्प्रस्थे गवां मूत्रे पचेन्मन्देन वह्निना।
सिद्धशीतं समुद्धृत्य माक्षिकं द्विपलं क्षिपेत् ॥
चित्रकादिरयं लौहो गुल्मप्लीहोदरामयम्।
यकृतं ग्रहणीं हन्ति शोथं मन्दानलं ज्वरम् ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च गुदभ्रंशं प्रवाहिकाम् ॥

चीता, सोंठ, वासा, गिलोय, शालपर्णी, तालवृक्षके फूल, अपामार्ग (चिरचिटा) और मानकन्दका चूर्ण ३-३ कर्ष (३॥ तोले), लोहभस्म, अभ्रकभस्म, पीपलका चूर्ण, ताम्र भस्म, जवाखार, सेंधा नमक, खारी नमक, काला नमक, सांभर नमक और काच नमक १-१ पल (१। तोला) लेकर घोटकर खूब महीन चूर्ण कर लीजिए।

तत्पश्चात् इसे ४ प्रस्थ (४ सेर) गोमूत्रमें मन्दाग्नि पर पकाइये, जब गाढा हो जाय तो उतार लीजिए और ठण्डा होने पर उसमें २ पल (१० तोले) शहद मिलाकर सुरक्षित रखिए।

यह चित्रकादि लौह गुल्म, तिल्ली, उदररोग, जिगर, ग्रहणी, अग्निमांद्य, ज्वर, कामला, पाण्डु, गुदभ्रंश और पेचिशका नाश करता है।

(१७५८) चित्रकाद्यवलेहः

(च. सं. । चि. स्था. अ. २२; वृ. नि. र. कास.)

चित्रकं पिप्पलीमूलं व्योषं हिङ्गु दुरालभाम्।
शठी पुष्करमूलञ्च श्रेयसी सुरसां वचाम् ॥
भार्गीं छिन्नरुहां रास्नां शृङ्गीं द्राक्षाञ्च कार्षिकान्
कल्कानर्धतुलाक्वाथे निदिग्ध्याः पलविंशतिम् ॥
दत्वा मत्स्यण्डिकायाश्च घृताच्च कुडवं पचेत्।
सिद्धं शीतं पृथक्क्षौद्रपिप्पलीकुडवान्वितम् ॥
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याश्चूर्णितं तत्र दापयेत्।
लेहयेत्कासहृद्रोगश्वासगुल्मनिवारणम् ॥

१ (५० पल कटेलीको २०० पल पानीमें पकाकर ५० पल शेष रहा हुवा क्वाथ)

चीता, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, धमासा, कचूर, पोखरमूल, फ, सौतुलसी, बच, भारङ्गी, गिलोय, रास्ना, काकड़ासिंगी और मुनक्काका कल्क १-१ कर्ष (१।-१। तोला), कटेलीका क्वाथ ५० पल (३ सेर १० तोले) और खांड २० पल तथा २० तोले घी एकत्र मिलाकर पकावें और जब अवलेहके समान गाढा हो जाय तो ठण्डा करके उसमें २०-२० तोले शहद, पीपलका तथा वंसलोचनका चूर्ण मिलाएं।

इसके सेवनसे खांसी, श्वास, गुल्म और हृद्रोग नष्ट होता है।

(मात्रा=१ तोलेसे २॥ तोले तक)

(१७५९) चित्रकावलेहः

(ग. नि. । लेहा., वा. भ.)

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धम् ।
साध्यं यावत्पाददलस्थमथेदम् ॥
अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि ।
क्वाथ्य भूयःसान्द्रतया समवेतम् ॥
त्रिकटुकमिशिपथ्याकुष्ठमुस्तावराङ्ग-
कृमिरिपुदहनैलाचूर्णकीर्णोऽवलेहः ॥
जयति गुदजकुष्ठप्लीहगुल्मोदराणि ।
प्रबलयति हुताशं शश्वदभ्यस्यमानः ॥

५० पल (२५० तोले) चीतेकी जडको १ द्रोण (३२ सेर) पानीमें पकाकर ८ सेर पानी शेष रहने पर छान लीजिए। तत्पश्चात् उसमें ८ पल (४० तोले) पुराना गुड मिलाकर पुनः पकाइये और गाढा हो जाने पर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, सौंफ, हर्र, कूठ, मोथा, दालचीनी, बायविड़ङ्ग, चीता और इलायचीका १-१ पल चूर्ण मिला दीजिए।

इसे निरन्तर सेवन करनेसे बवासीर, कुष्ठ, तिल्ली, गुल्म और उदररोग नष्ट होते तथा अग्नि-दीप्त होती है।

(१७६०) चोपचीनीपाकः

(यो. र. । उपदंश.; वृ. नि. र.)

चोपचिन्युद्भवं चूर्णं बलद्वादशमेव च ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं नागरं त्वचम् ॥
आकल्लकं लवङ्गं च प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
शर्करा समचूर्णं च पाचयेत्सर्वमेकतः ॥
मोदकं कारयेत्तत्तु कर्षं कर्षं प्रमाणतः ।
सायं प्रातर्निषेव्यस्तु पथ्यं पूर्वोक्तचूर्णवत् ॥
उपदंशे व्रणे कुष्ठे वातरोगे भगन्दरे ।
धातुक्षयकृते कासे प्रतिश्याये च यक्ष्मणि ॥
सर्वान्रोगान्निहन्त्याशु ततः पुष्टिकरो भवेत् ॥

चोपचीनीका चूर्ण १२ पल (६० तोले) पीपल, पीपलामूल, मिर्च, सोंठ, दालचीनी, अकरकरा और लौंगका चूर्ण १-१ कर्ष (१।-१। तोला) तथा इन सबके बराबर खांड लेकर चाशनी बनाकर उसमें समस्त चूर्ण मिलाकर १-१ कर्षके मोदक बना लीजिए।

इन्हे प्रातः सायं (चोपचीनीके क्वाथ या उष्ण जलके साथ) सेवन करनेसे उपदंश (आतशक), व्रण (घाव), कुष्ठ, वातव्याधि, भगन्दर, धातुक्षयसे उत्पन्न खांसी, जुकाम और यक्ष्माका नाश होकर शरीर पुष्ट होता है।

१. फुटनोट पृष्ठ १६८ पर है।

पथ्य—शाली चावलोंका भात, अरहरकी दाल, घी, शहद, गेहूं, सेंधानमक, संहजनेकी फली, कन्दूरीका शाक, तोरी, अदरक और मन्दोष्ण जल।

(१७६१) च्यवनप्राशावलेहः

(च. सं. । चि. स्था. अ. १)

बिल्वाग्निमन्थौ श्योनाकःकाश्मरी पाटलिर्बला।
पर्ण्यश्चतस्रःपिप्पल्यःश्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥६१
शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु।
अभया चामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शटी ॥६२
मुस्तं पुनर्नवा मेदा एला चन्दनमुत्पलम्।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥६३
एषां पलोन्मितान्भागान् शतान्यामलकस्य च।
पञ्च दद्यात्तदैकत्र जलद्रोणे विपाचयेत् ॥६४॥
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम्।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥६५॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्वा चार्धतुलां भिषक्।
मत्स्यण्डिकायाः पूतायाःलेहवत्साधु साधयेत् ॥
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते समावपेत्।
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पली द्विपलं तथा ॥६७
पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात्।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥६८॥
कासश्वासहरश्चैष विशेषेणोपदिश्यते।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां चाङ्गवर्धनः ॥६९॥
स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम्।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपकर्षति ॥७०
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्न भोजनम्।
अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥७१
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व-
मायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम्।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं-
वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥७२॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्-
लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात्।
जराकृतं रूपमपास्य सर्वं
बिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥७३॥

बेलकी छाल, अरणी, श्योनाक (अरलू) की छाल, खम्भारी (कुम्हार) की छाल, पाढलकी छाल, खरैटी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, गोखरु, कटेली, कटेला, काकडासिंगी, भुई आमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोखरमूल, अगर, हर्र, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, मोथा, पुनर्नवा (बिसखपरा), मेदा, इलायचीके बीज, सफेद चन्दन, कमलपुष्प, विदारीकन्द, बांसेकी जड़, काकोली और काकनासा १-१ पल (५-५ तोले), आमले ५०० नग, लेकर सब चीज़ोंको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें पकाइये और पकते समय उसमें आमलोंको कपड़ेमें बांधकर डाल दीजिए। जब ४ सेर पानी शेष रहे तो क्वाथको छान लीजिए और आमलोंकी गुठली अलग करके मथकर खद्दरके कपड़ेमें छान लीजिए। तत्पश्चात् आमलेकी इस पिट्ठीके दो भाग करके १ भागको ६ पल (३० तोले) घीमें और दूसरे भागको ६पल तिलके तैलमें भून लीजिए तत्पश्चात् यह दोनों पिट्ठियां, उपरोक्त क्वाथ और ५० पल स्वच्छ मिश्री एकत्र मिलाकर (कलईदार तांबेकी कढाईमें) मन्दाग्नि पर पकाकर अवलेहके समान गाढा कर

लीजिए और फिर उसमें ४ पल बंसलोचन, २ पल पीपल और १-१ पल दालचीनी, इलायची, तेजपात तथा नागकेसरका चूर्ण मिला दीजिए, और बिल्कुल शीतल हो जानेपर ६ पल शहद मिलाइये, बस-**च्यवनप्राश** तैयार है।*

यह रसायन (जरा, व्याधिनाशक), ज़खमी, क्षीण और वृद्ध पुरुषोंके शरीरकी वृद्धि करनेवाला, एवं स्वरक्षय (गला बैठना), उरोरोग, हृद्रोग, वातरक्त, तृषा, मूत्राशय और शुक्राशय गत रोग नाशक तथा स्मरणशक्ति, मेधा, कान्ति, निरोगता, आयु और समस्त इन्द्रियोंका बल बढ़ानेवाला तथा अग्निवर्द्धक और वायुको अनुलोमन करनेवाला है।

इसका सेवन करनेसे अत्यन्त वृद्ध च्यवनऋषि तरुण हो गए थे।

* चिकित्सा कलिकामें क्वाथ्य द्रव्योंमें मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, अगर, हर्र, पुनर्नवा और काकनासाके स्थानमें क्षीरकाकोली, महामेदा, वृद्धि और त्रिफला लिखा है।

बृद्योगतरङ्गिणीमें क्वाथ्य द्रव्योंमें जीवन्ती, अगर, ऋद्धि, ऋषभक, काकोली और मेदा कम हैं।

इसे कुटिप्रावेशिक रसायन प्रयोगके विधानानुसार सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य तरुण हो जाते है।

इसे ऐसी मात्रानुसार सेवन करना चाहिए कि जिससे क्षुधा कम न हो जाय।

टिप्पणी—ऋद्धिके अभावमें खरैंटी, जीवकके अभावमें गिलोय, ऋषभकके अभावमें बंसलोचन और मेदाके अभावमें विदारीकन्द लेना चाहिए। काकोली न मिले तो शतावर डालनी चाहिए। काकनासाकी जगह अनेक वैद्य 'काकजंघा' डालते है, क्योंकि यह क्षय नाशक है। मिश्री ५ सेर डालनेसे अधिक स्वादिष्ट बनता है।

आमले ५०० नग न लेकर ५०० तो० (६। सेर) लिए जांय तो ठीक है क्योंकि सब आमले बराबर वजनके नहीं होते।

च्यवनप्राशकी साधारण मात्रा २ माशेसे १ तोले तक है।

॥ इति चकारादिलेहप्रकरणम् ॥

अथ चकारादि घृतप्रकरणम्।

(१७६२) चतुष्कुवलयघृतम् (वं.से.।रसा.)

यत्कन्दनालदलकेसरवद्विपक्वं
नीलोत्पलस्य तदपि प्रथितं द्वितीयम्।
सर्पिश्चतुष्कुवलयं सहिरण्यपात्रे
मेध्यं गवामपि भवेत्किमु मानुषाणाम्॥

नीलोत्पलका कन्द, नीलोत्पलकी नाल, नीलोत्पलके पत्र और नीलोत्पलकी केसरसे गोघृत सिद्ध करके स्वर्ण पात्रमें रख लीजिए। यह घृत अत्यन्त मेध्य है।

(१७६३) चन्दनादि घृतम्

(वं. से.; वृ. नि. र.; र. र. । ज्वर.)

चन्दनं चित्रकं सिंही वत्सकं मुस्तनागरे।
कटुकां त्रायमाणा च धात्र्युशीरे द्विशारिवे॥
द्रव्यार्द्धपलमात्राणि सौम्यवारेषु संहरेत्।
क्षीराढकसमायुक्तं सर्पिषोऽर्द्धतुलां पचेत्॥
चातुर्थिकं हरेत्पीतमुन्मादं विषमज्वरम्।
त्र्याहिकं श्वासकासौ च सर्वापस्मारमेव च॥

सफेद चन्दन, चीता, कटेली, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सोंठ, कुटकी, त्रायमाणा, आमला, खस, दोनो प्रकारकी सारिवा। प्रत्येक आधा आधा पल (२॥ तोले), दूध ४ सेर, घी आधी तुला (२ सेर १० तोले) [तथा २ तुला पानी] लेकर उपरोक्त औषधोंके कल्कके साथ घृत सिद्ध कर लीजिए।

यह घृत चौथिया, तिजारी और विषमज्वर तथा उन्माद, खांसी, श्वास और हर प्रकारके अपस्मार (मिरगी)का नाश करता है।

(१७६४) चन्दनाद्यं घृतम्

(वं.से.; वृ.नि.र.; च.सं.।चि.स्था.।ग्रह., वा.भ.। चि.स्था.अ.१०, वृ.यो.त.। त.६७)

चन्दनं पद्मकोशीरं पाठां मूर्वां कुटन्नटम्।
षड्ग्रन्थां सारिवाऽऽस्फोता सप्तपर्णाटरूषकम्॥
पटोलोदुम्बराश्वत्थः वटप्लक्षकपित्थकान्।
कटुकां रोहिणीं मुस्तं निम्बञ्च द्विपलांशकम्॥
द्रोणेऽपां साधयेत्पादशेषे प्रस्थं घृतं पचेत्।
किराततिक्तेन्द्रयववीरामागधिकोत्पलैः॥
कल्कैरक्षसमैः पेयं तत्पित्तग्रहणीगदे॥

सफेद चन्दन, पद्माख, खस, पाठा, मूर्वा, मोथा, वच, सारिवा, कोयल, सतोना, वासा, पटोलपत्र, गूलरकी छाल, पीपलवृक्षकी छाल, बडकी छाल, पिलखनकी छाल, कैथकी छाल, कुटकी, मोथा और नीमकी छाल २–२ पल (१०–१० तोले) लेकर १ द्रोण (३२ सेर) पानीमें पकाइये और चौथाई भाग पानी शेष रहने पर छान लीजिए। इस क्वाथ और १–१ कर्ष (१।–१। तो०) चिरायता, इन्द्रजौं, भुई आमला, पीपल और नीलोत्पके कल्कसे १ प्रस्थ घी सिद्ध कर लीजिए।

इसे सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीका नाश होता है।

(१७६५) चव्यादिघृतम् [१]

(हा. सं. । स्था. ३, अ. ११)

चव्यपाठात्रिकटुसगजामूलकुस्तुम्बरूणाम्
बिल्वाजाजी रजनि सुरसा पथ्यया सैन्धवञ्च।
पिष्ट्वा चैतत् समगविघृतं पाचयेत्सुप्रयुक्तम्
पानाभ्यङ्गे हरति गुदजान् वातरोगाश्मरीश्च॥

चव, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, कुस्तुम्बरु, बेलकी छाल, जीरा, हल्दी, तुलसी, हैड़ और सेंधानमकके कल्क (तथा चार गुने पानी) के साथ गायका घी पका लीजिए।

इसे पिलाने और मालिश करानेसे बवासीरके मस्से, वातरोग और पथरीरोगका नाश होता है।

(विधि—गोघृत ५२ तो., कल्क द्रव्य प्रत्येक १ तो., पानी २०८ तो.।)

मात्रा—१ तो० से १॥ तोले तक, गर्म दूधके साथ।

१ मुस्तकञ्च सनागरम्। २ काकोली ३ द्व्याहिकम् } इति पाठान्तराणि।

(१७६६) चव्यादि घृतम् [२]

(वा. भ. । चि. स्था. अ. २)

चविका त्रिफला भार्ङ्गी दशमूलैः सचित्रकैः
कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले ।
शृतैर्नागरदुःस्पर्शपिप्पलीशठिपौष्करैः
पिष्टैःकर्कटशृङ्ग्या च समैःसर्पिर्विपाचयेत् ॥
सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णितौ क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च
दत्वा युक्त्या पिबेन्मात्रां क्षयकासनिपीडितः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—चव, हर्र, बहेडा, आमला, भारंगी, दशमूल, चीता, कुलथी, पीपलामूल, पाठा, बेर और जौं ।

कल्क द्रव्य—सोंठ, धमासा, पीपल, कचूर, पोखरमूल और काकडासिंगी ।

विधिः—क्वाथ्य द्रव्योंके क्वाथ और कल्क द्रव्योंके कल्कके साथ घी पकाकर उसमें जवाखार, सज्जीखार और पांचों नमकका महीन चूर्ण मिला दीजिए ।

इसे यथोचित मात्रानुसार पीनेसे क्षयकासका नाश होता है ।

(१७६७) चव्याद्यं घृतम्

(वं.से.। अर्श., वृ.नि.र.। संग्र.; ग.नि.। घृता.; च.द., वृं.मा.।अर्शा.; च.सं.।चि.स्था.अ.८)

चव्यं त्रिकटुकं पाठा क्षारं कुस्तुम्बुरूणि च,
यवानी पिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ।
चित्रकं बिल्वमभयां च पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्,
सकृद्वातानुलोम्यार्थं जले दध्नि चतुर्गुणे ॥
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम्,
गुदवङ्क्षणशूलञ्च घृतमेतद् व्यपोहति ॥

चव, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाठा, जवाखार, कुस्तुम्बरु (नैपाली धनियां), अजवायन, पीपलामूल, बिड़नमक, सेंधानमक, चीता, बेलकी छाल, हैड़ । इनके कल्क और घीसे चार गुने दही तथा पानी के साथ घृत सिद्ध कर लीजिए ।

यह घृत मल और वातानुलोमन, प्रवाहिका (पेचिश), गुदभ्रंश (कांच निकलना), मूत्रकृच्छ्र, मूत्रातिसार, गुदशूल और वंक्षणशूलका नाश करने वाला है ।

(१७६८) चाङ्गेरीघृतम् [१] (ग.नि.।घृता.१)

पिप्पली नागरं पाठा यवानी विश्वभेषजम्;
भागांस्त्रिपलिकान् कृत्वा कषायमुपकल्पयेत् ।
भार्गी च पिप्पलीमूलं व्योषं चव्यं सचित्रकम्;
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥
एतैः पलार्धकैर्द्रव्यैः कृत्वा कल्कं विपाचयेत्;
पलानि सर्पिषस्तस्मिन् चत्वारिंशत्समावपेत् ।
मृद्वग्निना ततः साध्यं सिद्धं सर्पिर्निधापयेत्;
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं गुल्महृद्रोगनाशनम् ।
शोफप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम्;
कासहिक्कारुचिश्वासस्रदनं सर्वगुल्मनुत् ॥

पीपल, सोंठ, पाठा, अजवायन, सोंठ, प्रत्येक ३ पल (१५ तो०) लेकर चार गुने पानीमें पका कर चौथाई पानी शेष रहने पर छान लीजिए । इस क्वाथ और भारङ्गी, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, चीता, गोखरु, धनियां, बेलकी छाल, पाठा और अजवायनमेंसे प्रत्येक आधा आधा पल (२॥ तोले) लेकर इनके कल्कके साथ ४० पल (२॥ सेर) घी मन्दाग्नि पर पका लीजिए ।

यह घृत ग्रहणी, अर्श (बवासीर), गुल्म, हृद्रोग, सूजन, तिल्ली, उदररोग, आनाह (अफारा), मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि, श्वास और हर प्रकारके गुल्मका नाश करता है।

(१७६९) चाङ्गेरीघृतम् [२]

(ग.नि.। घृता.१; भै.र.; हृं मा। धन्व., र.र.; च.द.। ग्रह.; शा. सं. म ख.। अ. ९)

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली;
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठायमानिका।
चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचयेत्;
चतुर्गुणेन दध्ना च तद्घृतं कफवातनुत्॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्;
गुदभ्रंशार्त्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति॥
(दधिसाहचर्याचाङ्गेरी स्वरसश्चतुर्गुणम्)

सोठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरु, पीपल, धनियाँ, वेलकी छाल, पाठा, अजवायन; इनके कल्क और घीसे चार गुने चाङ्गेरी (चूका-तिपतिया) के स्वरस तथा चार गुने दही (और चार गुने जल) के साथ घृत पका लीजिए।

यह घृत कफ, वायु, ववासीर, ग्रहणी, मूत्र-कृच्छ्र, प्रवाहिका (पेचिश), गुदभ्रंश (कांच निकलना) और अफारेको नष्ट करता है।

(१७७०) चाङ्गेरीघृतम् [३] (वं.से.।बालरो.)

अजाक्षीरसमं सर्पिश्चाङ्गेरीस्वरसाढके;
समङ्गा धातकी लोध्रं कपित्थोत्पल सैन्धवैः।
सव्योपकुष्ठबिल्वाब्दैः पिष्टैः प्रस्थोन्मितं घृतम्॥
पचेद्ग्रहण्यतीसारान्हन्ति पथ्यभुजः शिशोः॥

घी १ प्रस्थ (१ सेर), बकरीका दूध १ प्रस्थ, चांगेरी (चूका)का स्वरस ४ सेर (पानी ४ सेर)।

कल्क द्रव्य—मजीठ, धायके फूल, लोध, कैथ, नीलोफर, सेंधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, कूठ, वेलगिरी, नागरमोथा प्रत्येक २० माशे।

यथा विधि घृत पका लीजिए।

यह घृत बचोंको खिलाने और पथ्यपालन करनेसे उनका अतीसार और ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

(१७७१) चाङ्गेरीघृतम् [४]

(ग. नि.; भै. र.; च. द.। क्षु. रो.; वृ. यो. त. त. १२७; वं. से., च. सं.। चि.अति.)

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम्।
घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशे रुजापहम्॥

चाङ्गेरी (चूका) के स्वरस, वेरके क्वाथ और दही तथा जवाखार और सोठके कल्कसे सिद्धघृत पीनेसे कांच निकलनेकी पीड़ा शान्त होती है।

(वंगसेनमें इस घृतको शूलयुक्त अतिसार नाशक लिखा है।)

(१७७२) चाङ्गेरीघृतम् [५] (वं. से.। ग्रह.)

चाङ्गेरीस्वरसे दद्याद् घृतप्रस्थं चतुर्गुणम्;
अजाक्षीरस्य च प्रस्थं पचेत्सर्पिरिहौषधैः।
व्योषबिल्वकपित्थानि समङ्गा धातकी घनम्;
अजाज्यतिविषा मोचा धान्यकोत्पलबालकम्॥
बलायवानिकाग्निश्च पाठाग्रन्थिकदाडिमम्,
अक्षप्रमाणैरेतैस्तु सर्पिः सिद्धं महागुणम्।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं शूलगुल्मज्वरापहम्,
कफवातारुचिहरं बलवर्णाग्नि वर्धनम्॥
कृमिदोषगुदभ्रंशयकृत्प्लीहामयापहम्,
सर्वातिसारशमनं ग्रहणीदीपनं परम्॥

१ यवक्षारसमायुतमिति र. र।

चाङ्गेरी (चूका—तिपतिया) का स्वरस ४सेर, घी १ सेर, बकरीका दूध १ सेर (और पानी ४ सेर) तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, कच्ची बेल, कैथ, मजीठ, धायके फूल, मोथा, जीरा, अतीस, मोचरस, धनियां, नीलोफर, नेत्रबाला, खरैटी, अजवायन, चीता, पाठा, पीपलामूल और अनारदानेका कल्क १—१ कर्ष (१।—१। तोला) लेकर यथाविधि घृत पका लीजिए।

यह अत्यन्त गुणशाली घृत ग्रहणी, बवासीर, शूल, गुल्म, ज्वर, कफ, वायु और अरुचिनाशक तथा बल, वर्ण और जठराग्नि वर्द्धक है। इसके अतिरिक्त कृमिरोग, गुदभ्रंश (कांच निकलना), तिल्ली और जिगरके रोग तथा सर्व प्रकारके अतिसारोंका नाश करता और अग्निको दीप्त करता है।

(१७७३) चाङ्गेरीघृतम् [बृहद्]

(वं. से. । ग्रहण्या.)

पिप्पली नागरं पाठा श्वदंष्ट्रा च पृथक् पृथक् ।
भागांस्त्रिपलिकान्दत्वा कषायमुपकल्पयेत् ॥
गण्डारी पिप्पलीमूलं व्योषं चव्यकचित्रकम् ।
पिष्ट्वा कल्कं क्षिपेत्क्वाथे द्रव्यैरर्धपलैःपृथक् ॥
पलानि सर्पिषश्चात्र चत्वारिंशत्प्रदापयेत् ।
चाङ्गेरीस्वरसं तुल्यं सर्पिषा दधि षड्गुणम् ॥
मृद्वग्निना साधयेत्तत्सर्पिःसिद्धं निधापयेत् ।
तदाहारे विधातव्यं पाने च यौगिकैर्बुधैः ॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं गुल्महृद्रोगनाशनम् ।
शोथप्लीहोदरानर्शो मूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥
कासहिकारुचिश्वाससदनं पार्श्वशूलनुत् ।
बलपुष्टिवर्णकरमग्निसन्दीपनं परम् ॥

पीपल, सोंठ, पाठा और गोखरु ३—३ पल (१५—१५ तोले) लेकर १६ गुने (१९२ पल) पानीमें पका लीजिए, जब ४८ पल (३ सेर) पानी शेष रह जाय तो उतार कर छान लीजिए और उसमें कचनार, पीपलामूल, त्रिकुटा, चव और चीतेका कल्क आधा आधा पल (२॥—२॥ तोले) और ४० पल घी, ४० पल चाङ्गेरी (चूका—तिपतिया)का स्वरस और २४० पल दही मिलाकर मन्दाग्नि पर पका लीजिए।

इसे यथोचित अनुपानके साथ पिलाने और भोजनमें खिलानेसे ग्रहणी, बवासीर, गुल्म, हृद्रोग, शोथ, तिल्ली, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खांसी, हिचकी, श्वास और पसलीके दर्दका नाश होता है। यह घृत बल पुष्टि और सौन्दर्य वर्द्धक तथा अग्निदीपक है।×

(१७७४) चित्रकघृतम् [१]

(च. द., वृ. नि. र. । संग्र.)

चित्रकक्वाथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं शृतं हविः ।
गुल्मशोथोदरप्लीहशूलार्शोघ्नं प्रदीपनम् ॥

चीतेके क्वाथ और कल्कसे पकाया हुवा घृत ग्रहणीरोग, गुल्म, शोथ, उदररोग, तिल्ली, शूल और बवासीर नाशक तथा अग्निदीपक है।

(१७७५) चित्रकघृतम् [२]

(भै. र.; च. द. । प्लीहा.; ग. नि. । घृता.; र.र. । यकृत्., वृं. मा.; वं. से. । उदर.; यो.र. । यकृ.; वृ. यो. त. । त. १०५)

× बृहन्निघण्टुरत्नाकरके मतानुसार इसमें घृत क्वाथके समान और दही घृतसे ९ गुनी पड़नी चाहिए।

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतं प्रस्थं विपाचयेत्।
आरनालं तद्द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥
पञ्चकोलकतालीशक्षारैः लवणसंयुतैः।
द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचं तत्र दापयेत् ॥
प्लीहगुल्मोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान्।
वस्तिहृत्पार्श्वकटयुरु शूलोदावर्त्तपीनसान् ॥
हन्यात्पीतं तदर्शोघ्नं शोथघ्नं वह्निदीपनम्।
बलवर्णकरश्चापि भस्मकं च नियच्छति ॥

चीतेका काथ १ तुला (१०० पल—६। सेर) घी १ सेर, काञ्जी २ सेर, दहीका पानी ४ सेर और पिप्पली, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ, तालीशपत्र, जवाखार, सेंधानमक, जीरा, हल्दी, दारुहल्दी और मिर्चका कल्क (प्रत्येक १॥ तो) लेकर यथाविधि घृत पका लीजिए।

यह घृत तिल्ली, गुल्म, उदररोग, अफारा, पाण्डु, अरुचि, ज्वर, वस्तिशूल, हृदयशूल, पसलीशूल, कटिशूल, उरुशूल, उदावर्त, पीनस, बवासीर, शोथ और भस्मक रोगनाशक तथा बलवर्णवर्द्धक और अग्निदीपक है।

इसे पिलाना और भोजनमें खिलाना चाहिए।

(१७७६) चित्रकपिप्पलीघृतम्

(भै. र. । प्ली.; वं. से. । उदररो.)

पिप्पली चित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत्
घृतं चतुर्गुणं क्षीरं यकृत्प्लीहोदरापहम् ॥

पीपलामूल और चीतेकी जड़के कल्क तथा चार गुने दूधके साथ पकाया हुवा घी तिल्ली और जिगरके रोगोंका नाश करता है।

(१७७७) चित्रकादिघृतम् [१]

(यो. र., ग. नि., वृं. मा., च. द. । मूत्राघा., यो. त. । त. ४९: वृ. यो. त. । त. १०१)

चित्रकं सारिवा चैव बला काला च सारिवा।
द्राक्षा विशाला पिप्पल्यस्तथा च त्रिफला भवेत्॥
तथैव मधुकं दद्यादामलकानि च।
घृताढकं पचेदेतैःकल्कैरक्षसमन्वितैः ॥
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत्।
शीतं परिस्रुतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥
तुगाक्षीर्या च तत्सर्वं मतिमान्परिमिश्रयेत्।
ततो मितं पिबेत्काले यथा दोषं यथाबलम् ॥
मूत्रग्रन्थिं मूत्रसादमुष्णवातमसृग्दरम्।
विड्विघातं निहन्त्येतद्वस्तिकुण्डलिमप्यलम् ॥
सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात्।
असृग्दोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च ॥
प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चित्रकाद्यं सदा बुधैः ॥

चीता, श्वेत सारिवा, खरैंटी, तगर, कृष्ण सारिवा, मुनक्का, इन्द्रायणकी जड़, पीपल, त्रिफला, मुलैठी और आमलोका १—१ कर्ष कल्क और १ द्रोण (१६ सेर) दूध तथा १ द्रोण जलके साथ ४ सेर घृत पका लीजिए, जब घृत मात्र शेष रह जाय तो छानकर उसमें १ प्रस्थ (१ सेर) मिश्री और १ प्रस्थ बंसलोचन मिला दीजिए।

इसे यथाकाल, दोष बलानुकूल-मात्रामें पीनेसे मूत्रग्रन्थि, मूत्रावरोध, सोजाक, रक्त प्रदर और अतिसारका नाश होता है। इस घृतको वस्तिकुण्डली, रक्तप्रदर, योनिरोग और मूत्ररोगोंमें भी देना चाहिए।

इसके सेवनसे स्त्रियोंको गर्भधारणकी शक्ति प्राप्त होती है।

(१७७८) चित्रकादिघृतम् [२]

(च. सं. । चि. स्था. अ. २८)

चित्रकं नागरं रास्नां पौष्करं पिप्पलीं शटीम्।
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरं परम् ॥

चीता, सोंठ, रास्ना, पोखरमूल, पीपल और कचूरके कल्क (तथा चार गुने जल) से सिद्ध घृत वातरोगोंका नाश करता है।

(१७७९) चित्रकादिघृतम् [३]

(ग. नि. । उदरा.)

चित्रको हिङ्गु च समं त्रिवृद्द्व्यंशा च सातला।
चतुर्गुणानि दन्त्याह्वनिचुलानि च तैर्घृतम् ॥
सिद्धं कफोदरे तद्वच्चूर्णं वा चित्रकादिकम्।

चीता १ भाग, हींग १ भाग, निसोत २ भाग, सातला २ भाग, दन्तीमूल ४ भाग और हिज्जल ४ भाग लेकर इनके कल्क (और चार गुने पानी) के साथ घृत पका लीजिए।

यह घृत अथवा उक्त औषधोका चूर्ण कफज उदर रोगका नाश करता है।

(१७८०) चित्रकादिघृतम् [४]

(च. सं. । चि. स्था. अ. १७, वं. से. । धन्वं, वृं. मा. । शोथ., ग. नि. । घृत.)

सचित्रकं धान्ययवान्यजाजी[1]
सौवर्चलं[2] **त्र्यूषणवेतसाम्लम्।**
बिल्वात्फलं दाडिमयावशूकौ
सपिप्पलीमूलमथोऽपि चव्यम् ॥
पिष्ट्वाक्षमात्राणि जलाढकेन
पक्त्वा घृतप्रस्थमथो विदध्यात्।
अर्शांसि गुल्मश्वयथुञ्च दुःखम्
तद्धन्ति वह्निं च करोति दीप्तिम् ॥

चीता, धनियां, जीरा, अजवायन, सौचल, त्रिकुटा, अमलबेत, बेलगिरी, अनारदाना, जवाखार, पीपलामूल और चव प्रत्येक १-१ कर्ष (१।-१। तोला) और १ आढक (४ सेर) पानीके साथ १ प्रस्थ [१ सेर] घृत पका लीजिए।

यह घृत बवासीर, गुल्म और शोथ नाशक तथा अग्निदीपक है।

(१७८१) चित्रकाद्यं घृतम्

(वं.से.; यो.र.। गुल्म.; सु.सं.। उ. त. अ.४२)

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाचव्यदाडिमैः।
दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहपुषाधान्यकैःसमैः ॥
दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम्।
तत्पिबेद्वातगुल्माग्निदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥

चीता, त्रिकुटा, सेंधा नमक, कलौंजी, चव, अनारदाना, अजवायन, पीपलामूल, जीरा, हाऊबेर और धनियाँ। इनके कल्क तथा दही, काञ्जी और बेरीकी जड़के स्वरसके साथ पकाया हुवा घृत पीनेसे गुल्म, मन्दाग्नि, अफारा और शूल नष्ट होता है।

(१७८२) चित्रकोत्थितं घृतम्

(वं. से.; च.द.। शो., च.सं.। चि.स्था. अ.८)

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते
दध्यागतं साधु विमथ्यते च।
तज्जं घृतं चित्रकमूलगर्भम्
तक्रेण सिद्धं श्वयथुघ्नमग्र्यम् ॥

१ यवानिपाठेति पाठान्तरम्।
२ सदीप्यकेतिम् पाठान्तर।

अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहां-
श्चैतन्निहन्त्यग्निबलप्रदश्च।
तक्रेण वाऽद्यात् सघृतेन तेन
भोज्यानि सिद्धामथवा यवागुम्॥

एक बड़ेमें चीतेको पीसकर लेप कर दीजिए और उसमें दूध भरकर जमा लीजिए, जब दही जम जाय तो उसे मथकर घृत निकाल लीजिए।

इस घृतको चार गुने तक्र और चतुर्थांश चीतेकी जड़के कल्कसे सिद्ध कर लीजिए।

यह घृत शोथ, बवासीर, अतिसार, वायु, गुल्म और प्रमेहका नाश तथा अग्नि प्रदीप्त करता है।

उपरोक्त दहीके घृतयुक्त तक्रसे यवागु इत्यादि आहार पदार्थ बनाकर खिलानेसे भी लाभ होता है।

(१७८३) चैतसघृतम् [१]

(वं.से.: च.द.; यो.र.।उन्माद; वृ.यो.त.।त.८८)

पञ्चमूल्या च काश्मर्यो रास्नैरण्डत्रिवृद्बला।
मूर्वा शतावरी चेति क्वाथैर्द्विपालिकैरिमैः॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन चैतसं नाम तद्घृतम्।
सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमुच्यते॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेली, कटेला, गोखरु, खम्भारीकी छाल, रास्ना, अरण्डमूल, निसोत, खरैंटी, मूर्वा और शतावरी। प्रत्येक औषध २-२ पल (१०-१० तोले) लेकर १६ गुने पानीमें पकाकर चौथा भाग शेष रहने पर उस क्वाथ और कल्याण घृतोक्त (इन्द्रायण, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलवा, शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद और कृष्ण सारिवा, फूलप्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मजीठ, दन्ती, अनार, केसर, तालीसपत्र, बड़ी कटेली, चमेलीके ताजे फूल, बायविडङ्ग, पृश्निपर्णी, कूठ, सफेद चन्दन और पद्माकके) कल्कके साथ घृत पका लीजिए।

यह "चैतसघृत" समस्त मानसिक विकारो (उन्मादादि)को नष्ट करनेके लिए अत्युत्तम है।

इसमें क्वाथसे चौथा भाग घृत और घृतसे चतुर्थांश कल्क लेना चाहिए।

(मात्रा=६ माशेसे १ तोले तक। अनुपान=गर्म दूध या गर्म जल।)

(१७८४) चैतसघृतम् [२]

(वं. से. । उन्माद.; ग. नि. । परि. घृता.)

श्यामा मधुरसा रास्ना देवदारु शतावरी।
श्वदंष्ट्रा दशमूलञ्च तैर्युक्त्या क्वाथकल्कितैः॥
साधितश्चैतसं नाम घृतं चेतोविकारनुत्।
उन्मादमदमूर्च्छायां ज्वरापस्मारभेषजम्॥

काला निसोत, मूर्वा, रास्ना, देवदारु, शतावर, गोखरु और दशमूलके क्वाथ तथा कल्कसे सिद्ध घृत चित्तविकार, उन्माद, मद, मूर्च्छा, ज्वर और मिरगीका नाश करता है।

॥ इति चकारादिघृतप्रकरणम्॥

अथ चकारादि तैलप्रकरणम् ।

(१७८५) चक्रमर्दादिसिन्दूरतैलम्
(वं.से.; भा.प्र.; म.ख.।गण्ड.; वृ.यो.त.।त.१०८)

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत् ।
केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥
पक्त्वा शेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् ।
एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥

पवांड़की जड़के कल्क और भांगरेके स्वरससे मन्दाग्नि पर कटु तैल पकाकर उसमें पाकके अन्तमें सिन्दूर डालकर उतार लीजिए ।

यह तैल भयङ्कर गण्डमालाको अत्यन्त शीघ्र नष्ट करता है । (पवांडकी जड़ १० तो., तैल ४० तो०, भांगरेका रस २ सेर, सिन्दूर १० तो.)

(१७८६) चणकादि तैलम् (र.का.धे.।विसर्प.)

प्रस्थैकं चणकानाञ्च भल्लातञ्च चतुर्गुणम् ।
तैलं पातालयन्त्रेण पातयेत्पाचयेत्पुनः ॥

१ प्रस्थ चने (भीगे हुवे) और ४ प्रस्थ भिलावोंको एकत्र मिलाकर (अधकुटा करके) पाताल यन्त्रसे तैल निकाल लीजिए और फिर उसे पुनः (चने और भिलावेके कल्क तथा चार गुने पानीके साथ) पका लीजिए ।

इसकी मालिशसे विसर्प कुष्ठ नष्ट होता है ।

(१७८७) चतुष्पर्णतैलम् (वं. से. । कर्ण.)

आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च ।
एभिः सुसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशान्तये ॥

आमके पत्ते, जामनके पत्ते, मुलैठीके पत्ते और बड़के पत्ते समान भाग लेकर उनके कल्कसे तैल पका लीजिए । इसे कानमें डालनेसे पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है ।

(सरसोंका तैल १ सेर, प्रत्येक वृक्षके पत्ते १ छटांक=५ तो.—पानी ४ सेर एकत्र मिलाकर पकाएं ।)

(१७८८) चतुष्पल्लवतैलम् (वं.से.। कर्ण.)

वरुणाह्वकपित्थाम्रजम्बूपल्लवसाधितम् ।
पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसोऽथवा ॥८८॥

बरना, कैथ, आम और जामनके पत्तोंको पीसकर चार गुने तैलमें, तैलसे १६ गुने पानीके साथ पकाकर उस तैलको कानमें डालनेसे पूतिकर्ण नामक कर्णरोग नष्ट होता है ।

पूतिकर्ण रोग चमेलीके पत्तोंके रससे भी नष्ट हो जाता है ।

(१७८९) चन्दनबलालाक्षादि तैलम्
(वृ. नि. र.; यो. र. । ज्वर.)

चन्दनञ्च बलामूलं लाक्षा लामज्जकं तथा ।
पृथक् पृथक् प्रस्थमात्रं द्रोणे च सलिले पचेत् ॥
चतुर्भागावशेषेऽस्मिंस्तैलं प्रस्थद्वयं क्षिपेत् ।
चन्दनोशीरमधुकशताह्वाः कटुरोहिणी ॥
देवदारुनिशाकुष्ठमञ्जिष्ठागुरुवालकम् ।
अश्वगन्धा बला दार्वी मूर्वामुस्तासमूलकाः ॥
एला त्वङ्नागकुसुमं रास्ना लाक्षा सगन्धिका ।
चम्पकं पीतसारञ्च सारिवा रोचकद्वयम् ॥
कल्कैरेतैःसमायुक्तं क्षीराढकसमन्वितम् ।
तैलमभ्यञ्जने श्रेष्ठं सप्तधातुविवर्धनम् ॥
कासश्वासक्षयहरं सर्वच्छर्दिनिवारणम् ।
असृग्दरं रक्तपित्तं हन्ति पित्तकफामयम् ॥

कान्तिकृद्दाहशमनं कण्डूविस्फोटकनाशनम्।
शिरोरोगं नेत्रदाहमङ्गदाहं च नाशयेत् ॥
वातामयहतानाञ्च क्षीणानां क्षीणरेतसाम्।
बालमध्यमवृद्धानां शस्यते शोफकामलाम् ॥
पाण्डुरोगे विशेषेण सर्वज्वरविनाशनम् ॥

चन्दन, खरैंटीकी जड़, लाख और लामजक (खसभेद) १-१ प्रस्थ (१ सेर) लेकर १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें पका लीजिए, जब चौथा भाग पानी शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए और इस क्वाथ तथा निम्न लिखित कल्क और १ आढक (४ सेर) दूधके साथ २ सेर तैल सिद्ध कर लीजिए।

कल्क द्रव्य-सफेद चन्दन, खस, मुलैठी, सोया, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूठ, मजीठ, अगर, नेत्रवाला, असगन्ध, खरैंटी, दारुहल्दी, मूर्वा, मोथा, मूली, इलायची, दालचीनी, नागकेसर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पक, शिलारस, सारिवा, विड़-लवण (खारीनमक) और सेंधानमक। सब चीजें समान भाग मिलाकर आधा सेर लें।

इसकी मालिश करनेसे सप्त धातुओ (रस, रक्त, मांसादि) की वृद्धि होती है।

यह तैल खांसी, श्वास, क्षय, छर्दि, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, पित्त कफ रोग, दाह, कण्डू, विस्फोटक, शिरोरोग, नेत्रदाह, शरीरकी दाह, सूजन, कामला और विशेषकर पाण्डुरोग तथा ज्वरका नाश करता है। यह बालक, वृद्ध, युवा, क्षीणवीर्य पुरुष, निर्बल और वात व्याधिसे व्यथित रोगियोंके लिए अत्यन्त हितकारी है।

(१७९०) चन्दनादि तैलम् [१] (महा)

(भा. प्र., उ. खं.। वाजी.; भै. र.। ध्वजभङ्ग; न. अ.। त. २, यो. र.। वाजी.)

द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम्।
पतङ्गमथ कालीयागुरुकृष्णागुरूणि च ॥
देवद्रुमःससरलःपद्मकं[१] क्रमुकोऽपि च।
कर्पूरो मृगनाभिश्च लताकस्तूरिकापि च ॥
सिल्हकःकुङ्कुमं नव्यं जातीफलकमेव च।
जातीपत्रं लवङ्गश्च सूक्ष्मैला महती च सा ॥
कङ्कोलफलकं स्पृक्का पत्रकं नागकेशरम्।
वालकश्च तथोशीरं मांसी दारुसिताऽपि वा ॥
कृतकर्पूरकश्चापि[२] शैलेयं भद्रमुस्तकम्।
रेणुका च प्रियङ्गुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥
लाक्षा नखश्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा।
ग्रन्थिपर्णश्च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥
एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैःपचेत्।
तैलं प्रस्थमितं सम्यगेतत्पात्रे शुभे क्षिपेत् ॥
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोपि सः।
युवा भवति शुक्राढ्यःस्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥
वन्ध्यापि लभते गर्भं वृद्धोऽपि तरुणायते।
अपुत्र पुत्रं प्राप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥
चन्दनादिमहातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम्।
दाहं प्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं कण्डूं विनाशयेत् ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पतंग, काला चन्दन, अगर, देवदार, सरल (चीडका बुरादा), पद्माख, सुपारी, कपूर, कस्तूरी, लता कस्तूरी, (मुश्कदाना), सिल्हक [शिलारस], नवीन केसर,

---

१ त्वक्च पद्मकमिति पाठभेद.।
२ मुराकर्पूरकश्चापीति पाठान्तरम्।

जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कङ्कोलका फल, स्पृक्का, तेजपात, नागकेसर (बरास), नेत्रबाला, खस, जटामांसी, दारचीनी, शुद्ध कपूर, छरीला, नागरमोथा, रेणुका, फूल प्रियंगु, श्रीवास, गूगल, लाख, नख, राल, धायके फूल, ग्रन्थिपर्ण (गठीवन), मजीठ, तगर और मोम। प्रत्येक ४—४ माशे (वर्तमान तोलसे ५—५ माशे) लेकर सबको अधकुटा करके उसमें १ सेर तिलका तैल और ४ सेर पानी मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं; जब पानी जल जाय तो तैलको छानकर बोतलोंमें भरकर रख दीजिए।

इसकी मालिशसे अस्सी वर्षका वृद्ध पुरुष भी तरुणके समान वीर्यवान और युवति—प्रिय हो जाता है तथा वन्ध्या स्त्री और पुत्रहीन पुरुषोंमें पुत्रोत्पादनकी शक्ति उत्पन्न होती है।

यह महा चन्दनादि तैल रक्तपित्त, क्षय,ज्वर, दाह, पसीना, दुर्गन्धि, कुष्ठ और खुजली नाशक है तथा इसको व्यवहारमें लेनेवाले व्यक्ति १०० वर्ष तक जीवित रहते हैं।

(१७९१) चन्दनादि तैलम् [२]

(वृ. नि. र.। वा. व्या., यो. चि. म.। तैला.)

चन्दनं पद्मकं कुष्ठमुशीरं देवदारु च।
नागकेसरपत्रैलात्वङ्मांसी तगरं जलम् ॥
जातिफलं घोटफलं कुङ्कुमं जातिपत्रिका।
नखं कुन्दरु कस्तूरी चण्डा शैलेयमार्द्रकम् ॥
पतङ्गं पुष्करं मुस्ता रक्तचन्दनसारिवा।
सठीकर्पूरमञ्जिष्ठालाक्षायष्टिप्रियङ्गुभिः ॥
शतपुष्पा वरी मूर्वा अश्वगन्धा महौषधम्।
पद्मकेशरश्रीवेष्ठरसागुरुहरेणुभिः ॥
स्पृक्का लवङ्गं कक्कोलं द्रव्यैरेभिर्द्विकार्षिकैः।
दशमूलकषायस्य षड्भागा पयस्तथा ॥
यवलोककुलित्थानां बलामूलस्य चैकतः।
निःक्वाथ्य क्वाथो भागश्च तैलस्य च चतुर्दश ॥
ततःपक्वं विजानीयात् क्षिप्रं तदवतारयेत्।
शुभे पात्रे विनिक्षिप्यमौषधैः ससुगन्धिभिः॥
प्रतिवासं ततः कार्यमेषां संयोजने विधिः।
प्रायोऽयं सुकुमारीणामीश्वराणां सुखात्मनाम् ॥
स्त्रीणां स्त्रीवृन्दगर्भाणामलक्ष्मीकलिनाशनम्।
अशीति वातजान्रोगान्वातरक्तं विशेषतः ॥
सूतिकाबालमर्मास्थिहतक्षीणेषु पूजितम्।
जीर्णज्वरं सदाहं वा शीतं वा विषमज्वरम् ॥
शोषापस्मारकुष्ठघ्नं वन्ध्यायां च सुखप्रदम्।
व्याधितानां हितार्थाय ये तु कण्डूति पीडिताः॥
विशेषाद्रूक्षदेहानां श्वित्रिणाश्च विशेषतः।
सर्वकालप्रयोगेण कान्तिलावण्यपुष्टिदम् ॥
विनिर्मितमिदं तैलमात्रेयेण महर्षिणा।
न चास्मात्सहसा रोगः प्रभवत्यूर्ध्वजत्रुजः ॥
अस्य प्रयोगात्तैलस्य जरा न लभते नरम्।
चन्दनाद्यमिदं तैलं लोकानां च हितं मतम् ॥

कल्क द्रव्य—सफेद चन्दन, पद्माक, कूठ, खस, देवदार, नागकेसर, तेजपात, इलायची, दारचीनी, जटामांसी, तगर, नेत्रवाला, जायफल, वेर, केसर, जावित्री, नख, कुन्दरु, कस्तूरी, चोरपुष्पी, शिलाजीत, अद्रक, पतङ्ग, पोखरमूल, मोथा, लाल चन्दन, सारिवा, कचूर, कपूर, मजीठ, लाख, मुलैठी, फूलप्रियंगु, सोया, शतावर, मूर्वा, असगन्ध, सोंठ, कमलकेसर, श्रीवेष्ट (धूप सरल), अगर, रेणुका, स्पृक्का, लौङ्ग और कङ्कोल प्रत्येक २॥ तोला।

तिलका तेल ५ सेर, दशमूलका काढ़ा ३० सेर, दूध ३० सेर, कुलथी, वेर, जौं और खरैंटीकी जड़का काथ ७० सेर (सव वस्तुएं समान भाग मिली हुई ७० सेर लेकर चार गुने पानीमें पकाकर चौथाई शेष रहने पर छना हुआ काथ लेना चाहिए।)

सव वस्तुओको एकत्र मिलाकर पकाएं। जव पानी जलकर तैल मात्र शेष रह जाय तो उतारकर छान लें। और उसमें सर्व गन्धकी औषधें मिलाकर स्वच्छ और उत्तम (कांचके) पात्रमें भरकर रखदें।

इसके उपयोगसे सुकुमारी, धनवती और ऐशआराममें रहने वाली तथा गर्भवती स्त्रियोंकी सौन्दर्य वृद्धि होती है।

यह तैल ८० प्रकारके वातरोग, विशेषत. वातरक्त और सूतिकारोग, वालरोग, मर्माघात, अस्थि भङ्ग और क्षीणतामें अत्यन्त उपयोगी है। यह जीर्णज्वर, दाहयुक्त और शीतयुक्त ज्वर, विषमज्वर. शोष, अपस्मार और कुष्टरोग नाशक तथा वन्ध्या स्त्री, रोगग्रस्त, खुजली रोगसे पीड़ित, विशेषत. रूक्षदेह और श्वेत कुष्ठके रोगियोके लिए अत्यन्त हितकारक है।

इसे सदैव व्यवहारमें लानेसे कान्ति, लावण्य, और पुष्टिकी वृद्धि होती है।

महर्षि आत्रेय निर्मित इस चन्दनादि तैलके उपयोगसे गलेसे ऊपरके किसी रोगके सहसा आक्रमणका भय नहीं रहता और वृद्धावस्था नहीं आती।

(१७९२) चन्दनादि तैलम् [३]

(हा. सं.। स्था. ३ अ. ९; वृ. नि. र.। पाण्डु)

चन्दनं सरलं दारु यष्ट्येला वालकं सठी।
नलशैलेयकं स्पृक्का पद्मकं वनकेसरम्॥
कङ्कोलकं सुरामांसी सैरेयं द्विहरीतकी।
रेणुकात्वक् कुङ्कुमं च सारिवा तिक्तकागुरुः॥
नलिका च तथा द्राक्षा कषायं सुपरिस्रुतम्।
तैलमस्तुतया[१] लाक्षारसेन समभागिकम्॥
मन्दाग्निना पचेत्तैलं सिद्धं पाने च वस्तिषु।
नस्ये चाभ्यञ्जने चैव योजयेत्तं भिषग्वरः॥
हन्ति पाण्डुं क्षयं कासं ग्रहघ्नं वलवर्णकृत्।
मन्दज्वरमपस्मारं कुष्ठपामाहरं पुनः॥
करोति वलपुष्ट्योजो मेधाप्रज्ञायुवर्धनम्।
रूपसौभाग्यदं प्रोक्तं सर्वभूतयशस्करम्॥

सफेद चन्दन, चीरका वुरादा, देवादारू, मुलैठी, इलायची, नेत्रवाला, कचूर, तालीसपत्र, शिलाजीत, स्पृक्का, पद्माक, वनकेसर, कङ्कोल, सुरामांसी, कटसरैया, छोटी हर्र, वड़ी हर्र, रेणुका (संभालूके वीज), दारचीनी, केसर, सारिवा, कुटकी, अगर, नलिका और मुनक्का समान भाग लेकर चार गुने पानीमे पकाइये और चौथा भाग शेष रहने पर छान लीजिए और इस क्वाथमें इसका चौथाई तैल तथा उसके वरावर कच्ची लाखका काथ (चार गुने पानीमें पकाकर चौथा भाग शेष रहा हुवा) मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये, जव तैल मात्र शेष रह जाय तो छान लीजिए। इसे रोगीको पिलाना और वस्ति, नस्य तथा अभ्यङ्गद्वारा प्रयुक्त कराना चाहिए।

१ तैलमस्तु तथा लाजेति पाठान्तरम्।

यह तैल पाण्डु, क्षय, खांसी, ग्रहदोष, मन्द ज्वर, अपस्मार, कुष्ठ और पामा नाशक तथा बल-वर्द्धक, वर्णसंस्कारक, एवं बल, पुष्टि, ओज, मेधा, आयु, प्रज्ञा और सौन्दर्यवर्द्धक है ।

(१७९३) चन्दनादि तैलम् [४]

(वं. से. । ज्वरा.)

चन्दनोत्पलकाश्मर्यमधुकागुरुकल्ककः ।
सिद्धं तैलं विधातव्यं वस्तौ सर्वज्वरापहम् ॥

सफेद चन्दन, कमल, खम्भारीके फल,मुलैठी और अगरके कल्क तथा ४ गुने पानीके साथ सिद्ध किए हुवे तैलकी बस्ति लेनेसे समस्त प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ।

(विधि—तिल तैल १ सेर, जल ४ सेर और चन्दनादि प्रत्येक द्रव्य ४ तोले)

(१७९४) चन्दनादि तैलम् [५]

(च. द.; वृं. मा., भै. र.; धन्वं., र. र.। क्षुद्ररो., आ. वे. वि.। अ. ८१, वृ. यो. त.। त. १२७)

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
कान्ता वटावरोहश्च गुडूची विसमेव च ॥
लोहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च ।
मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥
शिरस्युत्पतिताः केशा जायन्ते घनकुञ्चिताः ।
दृढमूलाश्च स्निग्धाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः ॥
नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम् ॥

सफेद चन्दन, मुलैठी, मूर्वा, हर्र, बहेड़ा, आमला, नीलोफर, रेणुका, बडके अंकुर, गिलोय, कमलनाल, लोहेका बुरादा, जटामांसी और दोनों प्रकारकी सारिवा । इनके कल्क और भांगरेके स्व-रससे मन्दाग्नि पर तैल पका लीजिए ।

इसकी नसवार लेनेसे शिरके बालोंका गिरना बन्द होकर बाल घने और चिकने, भौंरेके समान काले तथा दृढ हो जाते है । एवं अकालमें बाल सफेद हो गए हो तो पुन: काले हो जाते हैं ।

विधिः—तिल तैल १ सेर, भांगरेका रस ४ सेर, कल्क द्रव्य समान भाग मिश्रित पाव सेर ।

(१७९५) चन्दनादि तैलम् [६]

(सु. सं. । चि. स्था. अ. २ । सद्यव्रण.)

चन्दनं कर्कटाख्या च सहेमांस्याह्वयामृते ।
हरेणवो मृणालश्च त्रिफला पद्मकोत्पलम् ॥
त्रयोदशाङ्गं त्रिवृतमेदद्वा पयसान्वितम् ।
तैलं विपक्वं सेकार्थे हितं तु व्रणरोपणे ॥

सफेद चन्दन, काकडासिंगी, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी), गिलोय, रेणुका, कमलनाल, हर्र, बहेड़ा, आमला, पद्माक और निसोतके कल्क तथा दूधसे सिद्ध तैल लगानेसे घाव भर जाता है ।

(कल्क द्रव्य [चन्दनादि] समान भाग मिश्रित २० तोले, तैल ८० तो , दूध ४ शेर)

(१७९६) चन्दनादियमकः

(वृ. मा., ग. नि.; र. र.; च. द., वं. से. । व्रण; यो. र. । भग्न.; वृ. यो. त. । त. ११४)

चन्दनं वटशुङ्गाश्च मञ्जिष्ठा मधुकन्तथा ।
प्रपौण्डरीकं दूर्वा च पतङ्गं धातकी तथा ॥
एतैस्तैलं विपक्तव्यं सर्पिष्क्षीरसमायुतम् ।
अग्निदग्धव्रणे श्रेष्ठं तत्क्षणाद्रोपणं परम् ॥

चन्दन, बड़के अङ्कुर, मजीठ, मुलैठी, पुण्डरिया, दूर्वा (दूबडा), पतङ्गकी लकड़ी और धायके फूल । इनके कल्क और दूधके साथ तैल तथा घृत मिलाकर पका लीजिए ।

यह यमक (घृत तैल) अग्निदग्ध व्रणकों अत्यन्त शीघ्र भर देता है।

(विधि —तिल तैल आधा सेर, गोघृत आधा सेर, दूध ४ सेर, कल्क द्रव्य समान भाग मिश्रित पावसेर।)

(१७९७) चन्दनादिरोपणतैलम्

(सु. सं.। चि. स्था. अ. २। सचोत्र.)

चन्दनं पद्मकं लोध्रमुत्पलानि प्रियङ्गवः।
हरिद्रा मधुकं चैव पयः स्यादत्र चाष्टमम्॥
तैलमेभिर्विपक्वन्तु प्रधानं व्रणरोपणम्॥

सफेद चन्दन, पद्माक, लोध, नीलोफर (कमलपुष्प भेद), फूलप्रियंगु, हल्दी, मुलैठी और दूधके साथ सिद्ध किया हुवा तैल व्रणरोपण (घाव भरने) में अत्यन्त उत्तम गुण करता है।

(तैल सेर १, चन्दनादि पदार्थोंका कल्क पाव सेर, दूध सेर ४)

(१७९८) चन्दनाद्यं तैलम् [१]

(यो. र., वं. से. वृं. मा.; वै. क. द्रु. स्कं. २; र. र. च. द.। राजय; वृ. यो. त.। त. ६७: वृ नि. र.। उन्मा.; यो. त.। त. २७ यो. चि.। तैला.)

चन्दनाम्बु नखं वाप्यं यष्टी शैलेयपद्मकम्।
मञ्जिष्ठा सरलं दारु कट्फलं पूतिकेशरम्॥
पत्रैले च मुरामांसी कङ्कोलं वनिताम्बुदम्।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम्॥
त्वग्रेणुनलिका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम्।
लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत्॥
अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम्।
आयुःपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्॥
विशेषात् क्षयरोगघ्नं रक्तपित्तहरं परम्॥

सफेद चन्दन, नेत्रबाला, नख, कूठ, मुलैठी, भूरि छरीला, पद्माख, मजीठ, धूप सरल, देवदारु, कायफल, खट्टासी (जुन्दवेदस्तर), तेजपात, इलायची, मुरामांसी (मुरमुकी), कङ्कोल, फूल प्रियंगु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, कृष्ण सारिवा, श्वेत सारिवा, कुटकी, लौंग, अगर, केसर, दालचीनी, रेणुका (संभालुके बीज) और नलिका। इनके कल्क और चार गुने मस्तु [दो गुना पानी मिलाकर बनाये हुवे तक्र] तथा समान भाग लाखके क्वाथ के साथ तैल सिद्ध कर लीजिए।

यह तैल ग्रहदोष, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, अलक्ष्मी (कान्तिकी हीनता) और विशेषकर क्षयरोग तथा रक्तपित्त नाशक एवं बलवर्ण आयु और पुष्टिवर्द्धक है।

(१७९९) चन्दनाद्यं तैलम् [२] (भै र.। कासा.)

चन्दनागुरुतालीशमञ्जिष्ठानखपद्मकम्।
मुस्तकञ्च शटी लाक्षा हरिद्रा रक्तचन्दनम्॥
एषां प्रतिपलैश्चूर्णैस्तैलार्द्धपात्रकं पचेत्।
भार्गी वासा कण्टकारी वाट्यालकगुडूचिका॥
एषां शतपले क्वाथे समभागे जडीकृते।
पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं राजयक्ष्मविनाशनम्॥
कासघ्नं गरदोषघ्नं बलवर्णाग्निवर्धनम्।
पापालक्ष्मीप्रशमनं ग्रहदोषविनाशनम्॥
आदौ कल्कं प्रदातव्यं गन्धद्रव्यं ततःपरम्।
तैलमुत्तार्य दातव्यं शिह्लकं कुङ्कुमं नखम्॥
गन्धचन्दनकर्पूरमेलाबीजं लवङ्गकम्॥१॥

सफेद चन्दन, अगर, तालीसपत्र, मजीठ, नख, पद्माख, नागरमोथा, कचूर, लाख, हल्दी, लाल चन्दन। प्रत्येकका चूर्ण १—१ पल(५तोले), तैल २ सेर (१६० तोले), भारङ्गी, बासा, कटेली, पीले फूलकी खरैटी और गिलोयका क्वाथ १०० पल [६। सेर]। +

तैलको अग्निपर चढाकर, गर्म हो जाने पर उपरोक्त वस्तुओंका कल्क डाल दीजिए और फिर क्वाथ डालकर पकाइये, जब पानी जल जाय तो तेलको छानकर उसमें शिलारस, केसर, नख,पीला चन्दन, कपूर छोटी इलायचीके बीज और लौङ्ग आदि गन्ध द्रव्य मिला देने चाहिएं।

यह तैल राजयक्ष्मा, खांसी, विष, कुष्ठ, कान्तिहीनता और ग्रहदोष नाशक तथा बलवर्ण और अग्निवर्द्धक है।

(१८००) चन्दनाद्यं तैलम् [३]

(धन्वं., च.द.; वृं.मा., भै.र.; यो.र., वं.से ; र र., भा.प्र.खं.,२। गलग., वृ.यो.त.।त.१०८)

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी।
एभिस्तैलं भृतं पीतं समूलमपचीं जयेत् ॥

सफेद चन्दन, हर्र, लाख, वच और कुटकी के कल्क तथा क्वाथसे सिद्ध तैल पीनेसे अपची (कण्ठमाला भेद) समूल नष्ट हो जाती है।

(विधि—तिल तैल १ सेर। क्वाथ ४ सेर, कल्क पाव सेर (प्रत्येक वस्तु ४ तोले)

+ हरेक वस्तु २०—२० पल लेकर कूट-कर पृथक् पृथक् एक द्रोण (१६ सेर) पानीमें पकाएं और ६। सेर शेष रहने पर छान लें।

(१८०१) चन्दनाद्यं तैलम् [४]

(च. स.। चि. अ. ३ ज्वर.)

अथ चन्दनाद्यं तैलमुपदेक्ष्यामः—चन्दनशैलेयभद्राश्रयकालानुसार्यकालीयकपद्मापद्मकोशीरसारिवामधुकप्रपौण्डरीकनागपुष्पोदीच्यवन्यपद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रविसमृणालशालूकशैवालकशेरुकानन्ताकुशकाशेक्षुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतसवानीरगुन्द्राककुभाशनाश्वकर्णस्यन्दनवातपोथशालतालधवतिनिशखदिरकदरकदम्बकाश्मर्यफलसर्जप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधधातकीदूर्वोत्कटकशृङ्गाटकमञ्जिष्ठाज्योतिष्मतीपुष्करबीजक्रौञ्चादनवदरीकोविदारकदली—संवर्त्तकारिष्टशतपर्वाश्वेतकुम्भिकाशतावरीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणीरोहिणीशीतपाक्योदनपाकीकालाबलापयस्याविदारीजीवकर्षभकक्षुद्रसहामेदामहामेदामधुरर्ष्यप्रोक्तातृणशून्यमोचरसाटरुषकवकुलकुटजपटोलनिम्बशाल्मलीनारिकेलखर्जूरमृद्वीकाप्रियालप्रियङ्गुधन्वनात्मगुप्तामधुकानामन्येषां च शीतवीर्याणां यथालाभमौषधानांकषायं कारयेत्; तेन कषायेण द्विगुणितपयसा तेषामेव च कल्के कषायार्धमात्रं मृद्वग्निना साधयेत्तैलं। एतत्तैलं सद्योदाहज्वरमपनयति।

लाल चन्दन, छरीला, सफेद चन्दन, कृष्ण चन्दन, मजीठ (अथवा गुलाब पुष्प), पद्माख, खस, सारिवा, मुलैठी, प्रपौण्डरीक (पुण्डरिया), नागकेसर, नेत्रवाला, मोथा, कमल, उत्पल, नलिन, कुमुद, सौगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, मृणाल,विस

(कमलनाल), पद्मकन्द (कमलकी जड़), शैवाल (सिरवाल), कसेरु, अनन्तमूल, कुश, कांस, ईख, दाभ, शर (शरकण्डा), नल, शालीमूल, जामनकी छाल, वेत, बांस, जलवेत, गुन्द्रा (गोदनीकी छाल), अर्जुनकी छाल, अशन (पीतशाल), अश्वकर्ण (पलाश भेद), स्यन्दन (सांदन वृक्षकी छाल), पलाश (ढाक) की छाल, सालकी छाल [अथवा गोंद], ताल, धव (धावड़ी), तुनका सार, खैरसार, कदर (खैरभेद) का सार, कदम्बकी छाल, खम्भारी के फल, राल, पिलखन और बड़की छाल, अम्बाडा वृक्षकी छाल (अथवा सिरसकी छाल), गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, वड़की छाल, धायके फूल, दूर्वा (दूब घास), ईखकी जड़, सिंघाडा, मजीठ, ज्योतिष्मती, कमलगट्टे, मृणाल, बेरकी छाल, कचनार, केला, मोथा, नीमकी छाल, श्वेत दूब, श्वेत पाटल, शतावर, खम्भारी, मुण्डी, महामुण्डी, कुटकी, काकोली, नीले फूलकी कटशैरया, नीलका पौदा, खरैंटी, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, मेदा, महामेदा, शतावर, मल्लिका, मोचरस, वासा, मौलसिरी, कुड़ेकी छाल, पटोलपत्र, नीम, सेंभलकी छाल, नारयलकी गिरि, खजूर, मुनक्का, प्रियाल (चिरौंजी), फूल प्रियंगु, धामन, कौंच और मुलैठी तथा अन्य जो शीतवीर्य ओषधियां प्राप्त हो सकें -वह सब लेकर सबको चार गुने पानीमें पकाएं और चौथाई पानी शेष रहने पर क्वाथको छान लें। फिर यह क्वाथ और उपरोक्त ओषधियोंका कल्क तथा कषायसे आधा तिल तैल और दूने गोदुग्धको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं, जब समस्त पानी जल जाय तो तैलको छान लें।

यह तैल दाह ज्वरको तुरन्त शान्त कर देता है।

(१८०२) **चित्रकतैलम्** (र. का. धे. । कुष्ठ.)

मनःशिलार्कसेहुण्डपयो नीलीरसो भवेत्।
गन्धकं हरितालञ्च कासीसं हयमारकम्॥
चित्रकं तुत्थकं मुस्तं मरिचं रजनीद्वयम्।
त्रिफला भृङ्गराजश्च विडङ्गं दहनस्तथा॥
नीलोत्पलं च कन्दं च लोहचूर्णं च वाकुची-
बीजं शेफालिकाबीजं विषं क्षारत्रयम् समम्॥
गिरिकन्या देवदाली च तैलं ज्वालामुखीरसः।
प्रपुन्नाटरसं दत्वा तप्तं घर्मे तनौ क्षिपेत्॥
घर्मस्थेयं द्वियामान्तं चित्रनाशे तदुत्तमम्।
शनैःशनैःखरे घर्मे चित्रं कृष्णं भविष्यति॥
निपतन्ति तिला देहे पुरा रक्तास्तिलास्ततः।
यदि वर्षसहस्रस्य भवेच्छ्वित्रं न संशयः॥
मण्डलानि प्रणश्यन्ति तथा सिध्मानि नाशयेत्।
कण्डूनि सहसा हन्यात्परिसर्पं च दारुणम्॥
अपि मर्कटिकां हन्याद्विशेषं तानि हन्ति च।
न काञ्चनं काञ्चनकान्तिमेति
न कामदेवो रुचिमादधाति।
न कुंकुमं तस्य निहन्ति रूपं
तत्तैलसंसेवितमुत्तमाङ्गम्॥

मनसिल, आकका दूध, सेहुण्ड (सेंड) का दूध, नीलके पौदेका स्वरस, गन्धक, हरताल, कसीस, कनेरकी जड़की छाल, चीता, नीलाथोथा, मोथा, स्याहमिर्च, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, भंगरा, बायबिडङ्ग, भिलावा, नीलोफर (नीलकमल),

कमलकन्द, लोहका चूर्ण, बावची, काले संभालुके बीज, मीठा तेलिया (मीठा विष), सुहागा, यवक्षार, सज्जीक्षार, मल्लिका (मोगरेका फूल), देवदाली (बिंडाल), सरसोका तेल, कलिहारीका स्वरस और पवांड़का रस लेकर सबको एकत्र मिलाकर धूपमें रख दीजिए, जब औषधोका रस सूख जाय तो तैलको छान लीजिए।

इस तैलको श्वेत कुष्ठके स्थान पर मलकर २ पहर तक धूपमें बैठे रहना चाहिए। इस प्रकार तेज़ धूपमें बैठनेसे धीरे धीरे सफेद कुष्ठ नष्ट होकर वह स्थान स्याह हो जाता है।

प्रथम कुष्ठ स्थान सुर्ख़ हो जाता है और फिर स्याह हो जाता है। इस तैलसे सहस्र वर्षका पुराना श्वेत कुष्ठ भी निस्सन्देह नष्ट हो जाता है। इसके सिवाय यह तैल मण्डल, सिध्म, खुजली, भयङ्कर विसर्प और विशेषतः मर्कटीको एकदम नष्ट कर देता है।

यदि इस तैलको चेहरे और मस्तकमें लगाया जाय तो चेहरा स्वर्णसे उज्ज्वल, कामदेवसे भी अधिक सुन्दर और केसरसे अधिक कान्तिमान हो जाता है।

(१८०३) चित्रकमूलतैलम् (वृ.नि.र.।विष.)

अथवा चित्रकमूलचूर्णं तैले विपाच्य मस्तके क्षुरेणप्रच्छित्य शिरसि ब्रह्मरन्ध्रे मर्दनं कृत्वा आखुविषं नश्यति।

चीतेकी जड़के चूर्णसे सिद्ध तैलको शिरमें, ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर नश्तरसे त्वचाको छीलकर मलनेसे चूहेका विष नष्ट होता है।

(१८०४) चित्रकादि तैलम् [१]

(र. र., च. द.; धन्वं. । नासा.)

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्ज-बीजलवणकैः गोमूत्रयुक्तं सिद्धं तैलं नासार्शसां हितम् परम्।

चीता, चव, अजवायन, कटेली, करञ्जवेकी गिरि और सेंधानमकके कल्क और गोमूत्रसे सिद्ध तैल नासार्शका नाश करता है।

(१८०५) चित्रकादि तैलम् [२]

(वृ. मा.; बं. से.; र. र. । क्षु. रो.)

चित्रकं दन्तिनीमूलं कोशातकी समन्वितम्।
कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशशत्रुविनाशनम्॥

चीता, दन्तीमूल और कड़वी तूम्बीसे सिद्ध तैल लगानेसे जुवो (यूका) का नाश होता है।

(चित्रकादि प्रत्येक वस्तु ५ तो., तैल ६० तो., पानी २४० तो.)

(१८०६) चित्रकाद्यं तैलम् [१]

(ग. नि. । तैला. २, सु. सं. । चि. अ. स्था. अ. ८; यो. त. । त. ६१)

चित्रकार्कत्रिवृत्पाठामलयूहयमारकान्।
सुधां वचां लाङ्गलिकां सप्तपर्णं सुवर्चिकाम्॥
ज्योतिष्मतीम् च संभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत्।
एतदभ्यञ्जनं तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे॥
शोधनं रोपणञ्चैव सवर्णकरणं तथा॥

चीता, अर्क (आक), निसोत, पाठा, बावची, कनेर, सेहुंड [सेंड], वच, कलिहारी, सप्तपर्ण (सतौनाकी छाल), सज्जीखार और मालकंगनी समान भाग लेकर इनके कल्कसे तैल पका लीजिए।

यह तैल वार वार भगन्दर पर लगानेसे भगन्दरका घाव शुद्ध होकर भर जाता है और त्वचा का रंग पूर्ववत् हो जाता है।

(कल्ककी सब चीजे समान भाग मिली हुई पावसेर, तैल १ सेर, पानी ४ सेर मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं।)

(१८०७) चित्रकाद्यं तैलम् [२]

(ग. नि. । अजीर्णा. ५)

चित्रकं तिलपिण्याकं कुष्ठं भल्लातकानि च।
द्वौ क्षारौ सैन्धवं चैभिस्तैलं शुक्ते विपाचयेत्।
एतेनोन्मर्दनं कार्यं प्रदेहश्चैव शस्यते।
अतिप्रवृद्धं शूलं च भक्षणादेव नाशयेत्॥

चीतेकी जड़की छाल, तिलकी खल, कूठ, भिलावा, सज्जीखार, जवाखार और सेंधा नमक। इनके कल्क और शुक्त (काञ्जीभेद)के साथ पकाये हुवे तैलकी मालिश करने और प्रदेह लगानेसे हैजेका अत्यन्त प्रवृद्ध शूल भी नष्ट हो जाता है।

(कल्क द्रव्य समान भाग मिश्रित ऽ।, काञ्जी ऽ ४, तैल ऽ १)।

(१८०८) चित्रकाद्यं तैलम् [३]

(ग. नि. । तैला. ५)

चित्रकं मदनं पीलु शृङ्गवेरं शुकाननाम्।
स्रोतोजं सैन्धवं दन्ती हरितालं मनःशिलाम्॥
तालीसं करवीरस्य मूलं लाङ्गलिकां वचाम्।
भद्रकं क्षीरिकाश्चैव स्वर्णक्षीरीं च पेषयेत्॥
स्नुगर्कक्षीरकुडवौ पाच्यमाने प्रदापयेत्।
मूत्रे चतुर्गुणे तैलं पक्वमर्शोहरं भवेत्॥
क्षारकर्मकरं ह्येतदभ्यङ्गात्तैलमुत्तमम्॥

चीतेकी छाल, मैनफल, पीलु, अदरक, शुकनासा, सौवीराञ्जन, सेंधानमक, दन्तीमूल, हरताल, मनसिल, तालीसपत्र, कनेरकी जड़, कलिहारीकी जड़की छाल, वच, नागरमोथा, खिरनी वृक्षकी छाल और स्वर्णक्षीरी [सत्यानाशी]। इनके कल्क और सेहुंड (सेंड) तथा आकके १–१ कुडव (२०–२० तोले) दूध तथा ४ गुने गोमूत्रके साथ तैल पका लीजिए। यह तैल अर्श को नष्ट करनेके लिए अत्युत्तम है, तथा इसकी मालिशसेही क्षारकर्म भी सिद्ध हो जाता है।

(कल्क द्रव्य समान भाग मिश्रित ऽ।, तैल ऽ १, सेहुंडका दूध और आकका दूध हरेक ऽ।, गोमूत्र ऽ ४)

(१८०९) चुक्रादि तैलम् [१]

(च. द.; यो. र. । विषूची.)

कुष्ठसैन्धवयोःकल्कं चुक्रं तैलसमन्वितम्।
विषूच्यां मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम्॥

कूठ और सेंधानमकके कल्क तथा चुक्र(सिर्के)से सिद्ध तैलको मन्दोष्ण करके मालिश करनेसे विशूचिकामें होनेवाली हाथ पैरोकी एंठन जाती रहती है।

(१८१०) चुक्रादि तैलम् [२]

(यो. र.।विषूची., वै. र.। अग्निमा., यो. त.।त.२०; वृ. यो. त. । त. ७१)

पलं चुक्रं कुष्ठं पिचुयुगमितं सैन्धवकणे।
तदर्धं प्रत्येकं करतलमितं जातिफलकम्॥
कटोस्तैलं पक्वं कुडवमितमग्नावधिश्रृतम्।
तदेतच्चुक्राद्यं शमयति विषूचीं च सगदम्॥

सिर्का ५ तोले, कूठ २॥ तोले, सेंधानमक १। तो. पीपल १। तो. और जायफल १। तो.। इनके कल्कसे १ कुडवा (२० तोले) कड़वा तैल पका लीजिए।

यह तैल उपद्रवयुक्त विषूचिका का नाश करता है।

नोट—पाकके समय १ सेर पानी भी डालना चाहिए।

॥ इति चकारादि तैलप्रकरणम् ॥

अथ चकाराद्यासवारिष्टप्रकरणम्।

(१८११) चन्दनासवः [१] (भै.र.। प्रमेह.)

चन्दनं बालकं मुस्तं गम्भारीं नीलमुत्पलम्।
प्रियङ्गु पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां रक्तचन्दनम्॥
पाठां किराततिक्तञ्च न्यग्रोधं पिप्पलं शटीम्।
पर्पटं मधुकं रास्नां पटोलं काञ्चनारकम्॥
आम्रत्वचं मोचरसं प्रत्येकं पलमात्रकम्।
धातकीं षोडशपला द्राक्षायाःपलविंशतिम्॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा शर्करायास्तुलां तथा।
गुडस्यार्द्धतुलाञ्चापि मासं भाण्डे निधापयेत्॥
चन्दनासव इत्येष शुक्रमेहविनाशनः।
बलपुष्टिकरो हृद्यो वह्निसन्दीपनः परः॥
अभिष्यन्द्यतितीक्ष्णञ्च पानान्नं वह्निसूर्ययोः।
सन्तापं स्त्रीप्रसक्तिश्च वेगरोधं प्रजागरम्॥
क्रोधं शोकं दिवानिद्रां लङ्घनञ्चातिचिन्तनम्।
अत्यालस्यमसत्सङ्गं शुक्रमेहे विवर्जयेत्॥
सुपाच्यं शुक्रकृच्चान्नं सत्संसक्तिश्च सत्कथा।
शान्तिं ग्रन्थस्याध्ययनं हितान्यत्रेशचिन्तनम्॥

सफेद चन्दन, नेत्रवाला, नागरमोथा, खम्भारी (कुम्हाड़)के फल, नीलकमल, फूल प्रियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ, लालचन्दन, पाठा, चिरायता, कुटकी, बडकी छाल, पीपल वृक्षकी छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलैठी, रास्ना, पटोलपत्र, कचनारकी छाल, आमकी छाल और मोचरस प्रत्येक १–१ पल (५ तोले), धायके फूल १६ पल, मुनक्का २० पल, खांड १०० पल और गुड़ ५० पल लेकर सबको कूटकर २ द्रोण (३२ सेर) पानीमें मिलाकर मिट्टीके पात्रमें भरकर उसके मुखको कपरमिट्टीसे बन्द करके उष्ण स्थानमें रख दीजिए और एक मास पश्चात् निकालकर छान लीजिए।

यह 'चन्दनासव' शुक्रमेह नाशक, बलकारक, पौष्टिक, हृद्य और अत्यन्त अग्निवर्द्धक है।

अपथ्य—शुक्रमेह रोगमें अभिष्यन्दि और तीक्ष्ण अन्नपान, (दही, लाल मिर्च, सुरादि), धूप, अग्निसे तापना, स्त्रीप्रसग, मलमूत्रादि वेगोका रोकना, जागरण, क्रोध, शोक, दिनको सोना, लङ्घन, अत्यन्त चिन्ता, अत्यालस्य और असत्सङ्गका परित्याग करना चाहिए।

पथ्य—शीघ्र पचनेवाला (लघु) और शुक्रवर्द्धक

अन्न पान, सत्संग, सत्कथा श्रवण, शान्ति, स्वाध्याय और इश्वराधना हितकारक है।

(१८१२) चन्दनासवः [२] (आ.वे.वि.।अ.६८)

चन्दने सरलं देवदारु दारुनिशा निशा।
त्रिवृत् चित्रकमूलश्चागुरु धात्री सुरप्रियम्॥
शतमूल्याश्मभिद् वासात्वचश्च सारिवाद्वयम्।
लक्ष्मणायास्तथा मूलं बाबरीवरुणत्वचौ॥
प्रत्येकं पलिकं ज्ञेयं द्राक्षायाः पलविंशकम्।
धातकीं पोडशपलां तुलामानां सितां तथा॥
माक्षिकार्द्धपलं सर्वं जलद्रोणद्वये क्षिपेत्।
मासमेकं भाण्डमध्ये सपिधाने निधापयेत्॥
चन्दनासव इत्येप रोगानीकनिकृन्तनः।
शुक्रदोपं रजोदोपं मूत्रदोपं सुदारुणम्॥
निहन्ति विविधान्मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं तथा।
चतस्रश्चाश्मरींस्तद्वन्मूत्राघातांस्त्रयोदशः॥
अन्त्रवृद्धिं पाण्डुरोगं कामलाञ्च हलीमकम्।
कासं श्वासं तथा कुष्ठमग्निमान्द्यमरोचकम्॥
औपसर्गिकमेहांश्च नाशयेदविकल्पतः।
भापितः श्रीमहेशेन लोकानां हितकारिणा॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, चीड वृक्षका बुरादा, देवदारुका बुरादा, दारुहल्दी, निसोत, चीतेकी जड़, अगर, आमला, अगस्ति पुष्प (अगथियाके फूल, शतावर, पाषाण भेद (पखानभेद), बांसकी जड़की छाल, दोनो प्रकारकी सारिवा, लक्ष्मणाकी जड, बबूल और बरनेकी छाल प्रत्येक १–१ पल (५–५ तोले), मुनक्का २० पल, धायके फूल १६ पल, खांड १०० पल और सोनामक्खीभस्म आधा पल लेकर सबको कूटकर २ द्रोण (३२सेर) पानीमें मिलाकर मिट्टीके पात्रमें भर कर मुख पर शराव ढककर कपर मिट्टी कर दीजिए। और १ मास पश्चात् निकालकर छान लीजिए।

श्री महेश द्वारा कल्पित यह "चन्दनासव" शुक्रदोष, रजोदोष, भयङ्कर मूत्रविकार, अनेक प्रकारके प्रमेह, आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्र, चार प्रकारकी अश्मरी, १३ प्रकारके मूत्राघात, अन्त्रवृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, खांसी, श्वास, कुष्ट, अग्निमांच, अरुचि और सोजाकका नाश करता है।

(१८१३) चविकासवः

(ग. नि. । आस.; यो. र. । अजी.)

चविकायास्तुलार्द्धन्तु तदर्धं चित्रकस्य च।
वाष्पिका पुष्करं मूलं पड्ग्रन्था हपुषा शठी॥
पटोलमूलत्रिफलायवानीकुटजत्वचः।
विशाला धान्यकं रास्ना दन्ती दशपलोन्मिता॥
कृमिघ्नमुस्तमञ्जिष्ठा देवदारु कटुत्रिकम्।
भागान्पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्॥
द्रोणशेषे रसे पूते देयं गुडशतत्रयम्।
धातक्या विंशतिपलं चातुर्जातं पलाष्टकम्॥
लवङ्गव्योपकङ्कोलं पलिकानि प्रकल्पयेत्।
निदध्यान्मासमेकं तु घृतभाण्डे सुसंस्कृते॥
चतुष्पलां पिबेन्मात्रां प्रातः पीतं नियच्छति।
सर्वगुल्मविकारांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम्॥
प्रतिश्यायं क्षयं कासमष्ठीलां वातशोणितम्।
उदराण्यन्त्रवृद्धिं च चविकाख्यो महासवः॥

चव्य ५० पल, चीता २५ पल, कालाजीरा, पोखरमूल, बच, हाऊबेर, कचूर, पटोलकी जड, हर्र, बहेडा, आमला, अजवायन, कुड़ेकी छाल, इन्द्रायन, धनियां, रास्ना और दन्तीमूल १०–१०

पल तथा बायबिडङ्ग, मोथा, मजीठ, देवदारु,सोठ, मिर्च और पीपल ५–५ पल (२५–२५ तोले) लेकर कूटकर ८ द्रोण (१२८ सेर) पानीमें पकाइये। जब १ द्रोण जल शेष रह जाय तो छानकर उसमें ३०० पल गुड़, २० पल धायके फूल, २–२ पल तेजपात, इलायची, दालचीनी और नागकेसर तथा १–१ पल (५–५ तोले) लौङ्ग, सोठ, मिर्च, पीपल और कङ्कोलका चूर्ण मिलाकर घृतसे चिकने किये हुवे स्वच्छ मिट्टीके पात्रमें भरकर इसके मुखको कपरमिट्टीसे भलीभांति बन्द करके रख दीजिए और एक मास पश्चात् निकाल कर छान लीजिए।

इसे प्रतिदिन प्रातःकाल ४पलकी मात्रानुसार सेवन करनेसे समस्त प्रकारके गुल्म, २० प्रकारके प्रमेह, जुकाम, खांसी, क्षय, अष्ठीला, वातरक्त, उदरविकार और अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है।

(व्यवहारिक मात्रा=१। तोलेसे २॥ तोलेतक समान भाग पानीमें मिलाकर।)

(१८१४) चित्रकाद्योऽरिष्टः (ग.नि.।ग्रह.)

चित्रकत्रिफलापाठाचव्यानां ग्रन्थिकस्य च।
विडङ्गदेवकाष्ठस्य भागान्कुर्याचतुष्पलान् ॥
कुष्ठभल्लातकैल्वालुवचानां मरिचस्य च।
पिप्पलीकटुकेन्द्राह्वामुस्तानां स्युस्त्रयस्त्रयः॥
पक्त्वाऽवशेषिताष्टांशे रसे तस्मिन्हृते पुनः।
पूते दद्यान्मधुप्रस्थं गुडस्यार्धतुलामपि ॥
पञ्चकोलं समरिचं त्रिफलां च पलार्धकम्।
संचूर्ण्य दद्यात्पत्रैलात्वङ्नागानां तथा पलम्॥
मासार्धं घृतकुम्भेऽयं जातोऽरिष्टःप्रयोजितः।
चित्रकाद्य इति ख्यातो ग्रहणीदोषहा परम्॥
पाण्डुरोगोदरप्लीहगुल्मशोफार्शसां मतः।
रोचनो दीपनश्चाग्नेः स्रोतसां च विशोधनः॥

चीता, हर्र, बहेडा, आमला, पाठा (जलजमनी), चव्य, पीपलामूल, बायबिडङ्ग और देवदारु ४–४ पल; कूठ, भिलावा, एलवा, वच, मिर्च, पीपल, कुटकी, इन्द्रायन और मोथा ३–३ पल (१५–१५ तोले) लेकर कूटकर (८ गुने पानीमें) पकाकर आठवां भाग शेष रहनेपर छान लीजिए। तत्पश्चात् उसमें १ प्रस्थ (८० तोले) शहद, ५० पल गुड़ और आधा आधा पल पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोठ, मिर्च, हर्र, बहेड़ा और आमले का चूर्ण तथा १–१ पल (५–५ तोले) दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसरका चूर्ण मिलाकर घृतसे चिकने मटकेमें भरकर उसके मुखपर शराव ढककर कपरमिट्टी कर दीजिए और १५ दिन पश्चात् निकालकर छान लीजिए।

यह 'चित्रकाद्यरिष्ट' ग्रहणी, पाण्डु, उदररोग, तिल्ली, गुल्म, सूजन और बवासीर नाशक तथा रोचक, अग्निदीपक और स्रोतशोधक है।

(मात्रा=१। से २॥ तोले तक)

(१८१५) चुक्रसन्धानम् [बृहद्]

(ग. नि.। आस ; भै. र.। ग्रह.; वं. से.। अजी.)

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुपजलात्प्रस्थत्रयं चाम्लतः॥
प्रस्थार्धं दधितोऽथ मूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिका
मान्यौ शोधितशृङ्गवेरशकलाद्द्वे सिन्धुजातात्पले।
द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निःक्षिप्य भाण्डे दृढे॥
स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं
त्रीन्वासरान्वासयेत्।
ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे॥

षट् शीते ऽष्टदिनान्यतः परमिदं विस्राव्य संचूर्णितैः।
चातुर्जातपलैस्सुसंहितमिदं शुक्तं च चुक्रं ततः॥
हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान्।
दुर्नामानिलशूलगुल्मजठरान्हत्वाऽनलं दीपयेत्॥

चावलोंका पानी १ प्रस्थ (१ सेर), काञ्जी ३ प्रस्थ, खट्टी दही आधा प्रस्थ, मूली आठ पल (आधा सेर), गुड़ आधासेर, अद्रक १ सेर, सेंधा-नमक २ पल (१० तो०), पीपल, मिर्च और हल्दी २-२ पल। सबको चूर्ण करके मिट्टीके चिकने पात्रमें भरकर मुख बन्द करके अनाजके ढेरमें दबा दीजिए और ग्रीष्मऋतुमें ३ दिन पश्चात्, प्रावृट् ऋतुमें चार दिन पश्चात्, वर्षा और वसन्त ऋतुमें ६ दिन पश्चात् तथा शीत-कालमें ८ दिन पश्चात् निकालकर छानकर उसमें १-१ पल दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसरका चूर्ण मिला दीजिए।

इसका नाम शुक्त और चुक्र है। यह वातज, कफज और आम जनित अनेक रोगोंका नाश करता है। इसके सेवनसे बवासीर, वायु, शूल, गुल्म और उदर रोग नष्ट होते तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

(मात्रा=१ तोलेसे २ तोले तक)

(१८१६) चुक्रसन्धानम् (स्वल्प)

(वं. से. । अजीर्ण.; भै. र. । ग्रह.)

गुडक्षौद्रारणालानि समस्तूनि यथोत्तरम्।
शंसन्ति द्विगुणान्भागान्सम्यक् चुक्रस्य सिद्धये॥
यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम्।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते॥

गुड़ १ भाग, शहद २भाग, काञ्जी ४भाग, मस्तु ८ भाग लेकर शुद्ध मृत्पात्रमें भरकर मुखपर कपरमिट्टी करके अनाजके ढेरमें दबा दीजिए और तीन दिन पश्चात् निकालकर छान लीजिए। इसका नाम शुक्त और चुक्र है।

॥ इति चकाराद्यासवारिष्टप्रकरणम् ॥

अथ चकारादि लेपप्रकरणम्।

(१८१७) चक्रमर्दादिलेपः [१]

(र. सा. सं. । कु.; रसे. चि. म. । अ. ९)

चक्रमर्दस्य बीजञ्च दुग्धे पिष्ट्वा विमर्दयेत्।
गन्धर्वतैलसंयुक्तं मर्दनात्सर्वकुष्ठजित्॥

पंवाडके बीजोंको दूधमें पीसकर अरण्डके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं।

(१८१८) चक्रमर्दादिलेपः [२] (वं.से.।कु.)

चक्रमर्दकबीजानि जीरकञ्च समांशकम्।
स्तोकं सुदर्शनामूलं दद्रुकुष्ठविनाशनम्॥

पंवाडके बीज और जीरा समान भाग तथा थोड़ीसी सुदर्शन (सुख दर्शन) की जड एकत्र पीसकर लेप करनेसे दाद नष्ट होता है।

(१८१९) चक्रमर्दादिलेपः [३] (वं.से.।कु.)

चक्रमर्दकबीजञ्च मूलकाम्बुप्रपेषितम् ।
दद्रूघ्नं लेपनं कुर्याच्छिग्रुमूलत्वचोऽथवा ।

पंवाड़के बीज अथवा सहञ्जनेकी जड़की छालको मूलीके रसमें पीसकर लेप करनेसे दाद नष्ट होता है।

(१८२०) चक्रमर्दादिलेपः [४]

(ग. नि., वृ. मा. । कुष्ठ.)

चक्राह्वबीजं स्नुकक्षीरभावितं मूत्रसंयुतम् ।
रवितप्तं सकिण्वं च लेपनं किटिभापहम् ॥

पंवाड़के बीजोको थोहर (सेंड) के दूधकी भावना देकर गोमूत्रमें पीसकर धूपमें गर्म करके और समान भाग किण्व (शरावकी गाद) में मिलाकर लेप करनेसे किटिभ रोग (कुष्ठ भेद) नष्ट होता है।

(१८२१) चण्ड्यादिलेपः (रा. मा. । शि.)

चण्डीमुरानतविषाणदलैर्हरिद्रा
मुस्तान्वितैःशिरसि यः कुरुते प्रलेपम् ।
तस्योत्तमाङ्गमपहाय भजन्ति दूरं
केशद्रुहः सपदि दारुणकादिरोगाः ॥

शिवलिङ्गी, मुरामांसी (मुरमुकी), तगर, कूठ, तेजपात, हल्दी और नागरमोथेको पीसकर शिरमें लेप करनेसे केशोको नष्ट करनेवाले दारुणादि रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

(१८२२) चतुरङ्गुलपर्णादिलेपः

(ग. नि.; वृं. मा. । कु.)

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरङ्गुलस्य
तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः ।
तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठान्-
मुद्वर्त्तयेदश्वरिपुच्छदैश्च ॥

रोगीके शरीरको तैलकी मालिश करानेके पश्चात् आमलतास, मकोय या कनेरके पत्तोको तक्रमें पीसकर मालिश करनेसे कुष्ठ रोग नष्ट होता है।

(१८२३) चन्दनादिप्रलेपः (वं.से.। विष.)

चन्दनं पद्मकं कुष्ठं नतं चोशीरपाटले ।
निर्गुण्डी शारिवा शैलुः लूताविषहरोऽगदः ॥

लाल चन्दन, पद्माक, कूठ, तगर, खस, पाढलकी छाल, संभालु, सारिवा और ल्हिसौड़े (रीठे) की छाल समान भाग लेकर (पानी, घी या सिरसकी छालके रसमें) पीसकर लेप करनेसे मकड़ीका विष नष्ट होता है।

(१८२४) चन्दनादिलेपः [१]

(वृ. नि. र.; वं. से.; यो. र.; ग. नि.; वृं. मा.। शिरो.; शा. ध. । अ. ११)

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्यात्सृतैर्वा परिषेचनम् ॥

पित्तज शिरोरोगमें लाल चन्दन, खस, मुलैठी, खरैंटी, नखी और नीलोत्पल (नीलोफर) को दूधमें पीसकर लेप करना चाहिए और इनके जलकी धारा शिरपर डालनी चाहिए।

(१८२५) चन्दनादिलेपः [२]

(भा. प्र., खं. २, वृ. नि. र., वं. से., यो. र.; वृ. मा., ग. नि.। विस्फो.; यो.त.।त.६६)

चन्दनं नागपुष्पञ्च तण्डुलीयकशारिवा ।
शिरीषवल्कलं पत्रं लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥

१ जातीति पाठान्तरम्।

लाल चन्दन, नागकेसर, चौलाइकी जड, सारिवा, सिरसकी छाल और सिरसके पत्तोको पीसकर लेप करनेसे विस्फोटककी दाह शान्त होती है।

(१८२६) चन्दनादिलेपः [३]

(वृ. नि. र., वृं. मा.। वृद्ध्य.; यो.त.। त.५६)

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम्।
क्षीरपिष्टः प्रलेपः स्यात्पित्तवृद्धिरुजापहः॥

लाल चन्दन, मुलैठी, कमलपुष्प, खस और नीलोफरको दूधमें पीसकर लेप करनेसे पित्तज अण्डवृद्धि नष्ट होती है।

(१८२७) चन्दनादिलेपः [४]

(वृ. नि. र., यो. र.; ग. नि.। तृष्णा; यो. त.। त. ३४)

अरुणचन्दनचन्दनवालकै-
र्नलदपद्मकतुल्यकृतांशकैः।
शिरसि लेपनमाचरतां नृणां
तृडुपयात्युपशान्तिमसंशयम्॥

लाल चन्दन, सफेद चन्दन, नेत्रवाला, खस और पद्माक समान भाग लेकर पीसकर शिरपर लेप करनेसे पिपासा अवश्य शान्त हो जाती है।

(१८२८) चन्दनादिलेपः [५]

(वृ. नि. र.; वं. से.। नेत्र.)

चन्दनं मधुकं लोध्रं जातिपत्राणि गैरिकम्।
प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोदाभिष्यन्दनाशनः॥

लाल चन्दन, मुलैठी, लोध, चमेलीके पत्ते और गेरु समान भाग लेकर (पानी या इमलीके रसमें) पीसकर आंखोके पेवटों पर लेप करनेसे नेत्रोकी दाह, तोद [सुई चुभनेकी सी पीडा] और अभिष्यन्द (आंखें आ जाना) रोग नष्ट होता है।

(१८२९) चन्दनादिलेपः [६] (वं.से.।शिरो.)

भद्रश्रियं पुण्डरीकं मधुकं नीलमुत्पलम्।
पद्मकं वेतसं दूर्वा लामज्जकमथापि वा॥
दार्वीहरिद्रा मञ्जिष्ठा फेनिलोशीरमेव च।
एतदालेपनं कुर्याच्छङ्खस्य प्रशान्तये॥

सफेद चन्दन, कमलपुष्प, मुलैठी, नीलोफर, पद्माक, अम्लवेत, दूर्वा (दूबड़ा घास), लामज्जक (खसभेद), दारुहल्दी, मजीठ, रीठा और खस समान भाग लेकर पीसकर लेप करनेसे शङ्खकरोग नष्ट होता है।

(१८३०) चन्दनादिलेपः [७] (वं.से.।दाह.)

श्लक्ष्णसूक्ष्मकृतो लेपश्चन्दनस्यापि दाहनुत्।
त्वग्जातस्योष्मणो रोधाच्छीतकृत्त्वमथागुरु॥

चन्दनको अत्यन्त महीन पीसकर लेप करनेसे दाह शान्त होती है। अगरको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे भी वह शान्त हो जाती है, क्योकि इसके लेपसे त्वचामें उत्पन्न होने वाली उष्णता रुक जाती है।

(१८३१) चन्दनादिलेपः [८]

(वा. भ. उ. स्था.। अ. ३२)

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठा कुष्ठरोध्रप्रियङ्गवः।
वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदा॥१०

लाल चन्दन, मजीठ, कूठ, लोध, फूलप्रियंगु, वड़के अंकुर और मसूरको पानीमें पीसकर लेप लगानेसे व्यङ्ग (चहेरेकी झांई-स्याही) नष्ट होकर मुखकी कान्ति बढती है।

(१८३२) चन्दनादिलेपः [९]
(च. स. चि. स्था. अ. ४)

भद्रश्रियं लोहितचन्दनञ्च
प्रपुण्डरीकं कमलोत्पलञ्च ।
उशीरवाणीरजलं मृणालं
सहस्रवीर्या तृणशून्यमृद्धिः ॥
मूलानि पुष्पाणि च वारिजानाम्
प्रलेपनं पुष्करिणीमृदश्च ।
उदुम्बराश्वत्थमधूकरोधाः
कषायवृक्षाःशिशिराश्च सर्वे ॥
प्रदेहकल्के परिषेचनेन
तथावगाहे घृततैलसिद्धौ ।
रक्तस्य पित्तस्य च शान्तिमिच्छन्
भद्रश्रियादीनि भिषक् प्रयुञ्ज्यात् ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, प्रपौण्डरीक (पुण्डरिया), कमलपुष्प, नीलोफर, खस, बेत, नेत्रबाला, कमलनाल, शतावर, केतकीका फूल और ऋद्धिः तथा जलमें उत्पन्न होने वाले पौदोंके पुष्प और मूल, पुष्करणी (कमलपुष्प वाले तालाव) की मिट्टी, गूलर, पीपल, महुवा, लोध और कषाय (कसैले) वृक्षोकी छाल और अन्य शीतल औषधोका लेप लगाने, उनके शीतल क्वाथकी धार देने, कल्क सेवन करने और उनके शीतल क्वाथमें अवगाहन (डुबकी लगाकर स्नान) करने एवं इनके कल्क और क्वाथसे सिद्ध घृत या तैलको प्रयुक्त करनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है ।

(१८३३) चन्दनादिलेपः [१०]
(ग. नि. । शिरो.)

चन्दनद्वयसंयुक्तैः कुष्ठवालककेसरैः ।
क्षीराज्ययोजितैर्लेपः क्षिप्रं पित्तं शिरोर्तिनुत् ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, कूठ, नेत्रबाला और केसरके समान भाग मिश्रित चूर्ण को दूध और घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तज शिरशूल नष्ट होता है ।

(१८३४) चन्दनादिलेपः[११] (यो.र.।स्त्री.)

चन्दनं मधुकोशीरं नागपुष्पं तिलास्तथा ।
अजशृङ्गी च मञ्जिष्ठा रविमूलं पुनर्नवा ।
श्रेष्ठःशोफहरो लेपो गर्भिणीनां विशेषतः ॥

लाल चन्दन, मुलैठी, खस, नागकेसर, तिल, मेढासिंगी, मजीठ, आककी जड़की छाल और पुनर्नवा, समान भाग लेकर (पानीमें) पीसकर लेप करनेसे सूजन नष्ट होती है ।

यह प्रयोग गर्भिणीकी सूजनको नष्ट करनेके लिए विशेष उपयोगी है ।

(१८३५) चन्द्रशूरादिलेपः (यो त.। त.६३)

चन्द्रशूराख्यबीजानि प्रपुन्नाटस्य तानि च ।
कङ्कत्या अपि बीजानि समांशत्रितयं क्षिपेत् ॥
सर्वद्विगुणतक्रेण सूक्ष्मं सम्पिष्य साधयेत् ।
दिनत्रयं ततो वन्यगोमयेन प्रघर्षयेत् ॥
तं कल्कं लेपयेत्पश्चाद्दद्रुर्गच्छति निश्चितम् ॥

हालो, पवाडके वीज और कंगही (अतिवला) के वीज समान भाग लेकर महीन चूर्ण करके उसे दोगुने तक्रमें मिलाकर ३ दिन तक खरल कराइये।

दादको अरने उपलेसे रगड़ कर यह लेप लगानेसे वह अवश्य नष्ट हो जाता है ।

(१८३६) चिञ्चापत्ररसप्रयोगः
(वै. म. र. । प. ११)

दद्रौ गुडं प्रलिम्पेत्तस्याः कृमयो विनश्यन्ति।
चिञ्चापत्ररसम्ना कण्डूतिनाशमन्विच्छन् ॥

दादपर गुड़का लेप करनेसे उसके कृमि नष्ट हो जाते हैं और इमलीके पत्तोका रस लगानेसे खाज नष्ट होती है।

(१८३७) चिञ्चास्वरसलेपः (वै.म.र.।पट.१६)

चिञ्चापत्रस्वरसं पयसा योज्य घर्षितं कंसे।
लिप्तं वहिर्नयनयोःशमयति रागाश्रुतोदसरम्भान्॥

इमलीके पत्तोके रसमें समान भाग दूध मिला कर कांसेके पात्रमें उंगलीसे अच्छी तरह घिसकर आंखोंके वाहर लेप करनेसे आंखोंकी सुर्खी, सूजन, अश्रुपात और पीडा नष्ट होती हैं।

(१८३८) चित्रकादिलेपः [१]

(च. सं.। चि. अ. ५)

चित्रकमेलाविम्बीं वृषकत्रिवृदर्कनागरकम्।
चूर्णीकृतमष्टाहं भावयितव्यम्पलाशस्य॥
क्षारेण गवां मूत्रस्रुतेन तेनास्य मण्डलान्याशु।
भिद्यन्ते च विनश्यन्ति च लिप्तान्यर्काभितप्तानि॥

चीता, इलायची, कन्दूरी, वासा, निसोत, आककी जड़की छाल और सोठको महीन पीस लीजिए, तत्पश्चात् ढाककी राखको चार गुने गोमूत्रमें मिलाकर मोटे कपड़ेसे २१ वार क्षार वनानेकी विधिके अनुसार चुवाकर उसमें उक्त समस्त वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर ८ दिन पर्यन्त अच्छी तरह घोटिए।

इसका लेप करके धूपमें वैठनेसे मण्डल नष्ट हो जाते हैं।

(१८३९) चित्रकादिलेपः [२]

(वृं. मा.; वृ. नि. र.। श्ली.)

हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवदारु च।
सिद्धार्थं शिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः॥

श्लीपद रोगमें चीतेकी जड़ और देवदारुको अथवा सरसों और सहञ्जनेकी छालको गोमूत्रमें पीसकर मन्दोष्ण लेप करना हितकारक है।

(१८४०) चित्रकादिलेपः [३]

(वृ. नि. र.। त्व. दो.)

मण्डलानि च घृष्ट्वाथ चित्रकेन प्रलेपयेत्।
ततो वातारिवीजैश्च लेपो मण्डलकुष्ठनुत्॥

मण्डल (चकतो)को (अरने उपलेसे) घिसकर उनपर चीतेका लेप कर दीजिए और जव वह सूख जाय तो उसे उतारकर अरण्डीके वीजोका लेप कर दीजिए। इससे वह नष्ट हो जाते हैं।

(१८४१) चिरविल्वादिलेपः (शा.सं.अ.११)

चिरविल्वोग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः।
कपोतकङ्कगृध्राणां मलं लेपेन दारणम्॥८३॥

करञ्जकी गिरी, भिलावा, दन्ती, चीता, कनेर की जड़ तथा कवूतर, कव्वे और गीधकी वीटको पीसकर लेप करनेसे व्रण फूट जाता है।

(१८४२) चुञ्चूफललेपः (ग. नि.। नाडीव्र.)

पिष्टं चुञ्चूफलं लेपान्नाडीव्रणहरं परम्॥

चुञ्चुके फलोको पीसकर लेप करनेसे नाड़ी व्रण (नासूर) नष्ट होता है।

॥ इति चकारादिलेपप्रकरणम्॥

अथ चकारादि धूपप्रकरणम् ।

(१८४३) चातुर्थिकज्वरे धूपः

(रा. मा. । अपस्मा.)

कृष्णाम्बरग्रथितगुग्गुलघूकपक्षै-
र्मिश्रीकृतो हरति तत्क्षणमेव धूपः ।
चातुर्थिकज्वरमनल्पदिनोपगूढ
सर्वाङ्गमप्यहिमरश्मिरिवान्धकारम् ॥

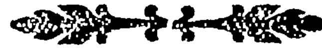
गूगल और उल्लूके पंखको काले कपड़ेमें बांधकर धूनी देनेसे पुराना चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है।

(१८४४) चिञ्चादिवर्तिधूपः (वै.म.र.।पट.३)

चिञ्चात्वगेका द्वि निशा त्रि सर्जैकपुनर्नवा ।
नव जातिदला वर्त्तिःकासजिद् बाह्यधूपिता ॥

इमलीकी छाल १ भाग, हल्दी २ भाग, राल ३ भाग, पुनर्नवा १ भाग और चमेलीके पत्ते ९ भाग लेकर कूटकर वत्ती बनाकर उसे जलाकर (नासिकाके पास) धूनी देनेसे खांसी नष्ट हो जाती है।

॥ इति चकारादि धूपप्रकरणम् ॥



अथ चकारादि धूम्रप्रकरणम् ।

(१८४५) चातुर्जातधूम्रपानम्

(भा. प्र. । म. ख. । नासा.)

प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वगन्धसमायुतम् ।
चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम् ॥

सर्वगन्ध (चातुर्जातक, कपूर, कङ्कोल, अगर, केसर, लौङ्ग) अथवा चातुर्जातक (दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर) का धूम्रपान करने या काले जीरेका चूर्ण सूंघनेसे प्रतिश्याय (जुकाम) नष्ट होता है।

॥ इति चकारादिधूम्रप्रकरणम् ॥



अथ चकाराद्यञ्जनप्रकरणम् ।

(१८४६) चतुर्दशाङ्गीवर्तिः (ग.नि.।नेत्र.)

मधुकरसाञ्जनताम्रत्रिकटुविडङ्गपुण्डरीकाणि ।
सलवणतुत्थत्रिफलारोध्राणि नभोऽम्बुपिष्टानि ॥
वर्त्तिश्चतुर्दशाङ्गी नयनामयनाशिनी शिलास्तम्भे
लिखिता हिताय जगतस्तिमिरापहा विशेषेण ॥

मुलैठी, रसौत, ताम्र भस्म, सोठ, मिर्च, पीपल, बायविडङ्ग, कमल, सेंधानमक, नीलाथोथा, हर्र, बहेडा, आमला और लोध् समान भाग लेकर महीन चूर्ण करके आकाशजलमें पीसकर वत्तियां वना लीजिए।

यह नेत्र रोग और विशेषतः तिमिर नाशक 'चतुर्दशाङ्गवर्ति 'शिलास्तंभ पर लिखी हुई मिली है।

(१८४७) चन्दनाञ्जनम् (वं.से.। नेत्र.)

सलिलमकरन्दसर्पिस्तैलैः प्रत्येकमस्तु सप्ताहम्।
विनिहन्ति तिमिरमचिरादञ्जनतश्चन्दनं रक्तम्॥

लाल चन्दनको पानी, शहद, घी या तैलमें घिसकर अञ्जन लगानेसे सात दिनमें तिमिर रोग नष्ट हो जाता है।

(१८४८) चन्दनादिचूर्णाञ्जनम्

(वृ. मा., व. से.। नेत्र.)

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम्।
क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम्[१]॥

सफेद चन्दन १ भाग, सेंधानमक २ भाग, हर्र ३ भाग और ढाकका गोंद ४ भाग लेकर महीन चूर्ण कर लीजिए।

इसे आंखमें लगानेसे शुक्र और अर्मादि नेत्र विकार नष्ट होते हैं।

(१८४९) चन्दनादिवर्ति [१]

(सु. सं.। उ. त. अ. १२)

चन्दनं कुमुदं पत्रं शिलाजतु सकुङ्कुमम्।
अयस्ताम्ररजस्तुत्थं निम्बनिर्यासमञ्जनम्॥
त्रपुकांस्यमलं चापि पिष्ट्वा पुष्परसेन तु।
विपुलायाः कृतावर्त्यःपूजिताश्चाञ्जने सदा॥
स्यादञ्जनं घृतं क्षौद्रं सिरोत्पातस्य भेषजम्॥

सफेद चन्दन, कमलपुष्प, तेजपात, शिलाजीत, केशर, लोह चूर्ण, ताम्र चूर्ण, नीला थोथा, नीमका सार,सुरमा,शुद्ध सीसा,कांसीका मैल। सबको महीन पीसकर शहदमें मिलाकर वत्तियां बना लीजिए। इनको अथवा शहद और घीको आंखमें आंजनेसे शिरोत्पात रोग नष्ट होता है।

[१] मधुनाञ्जनयोगाः स्युस्चत्वारः शुक्रनाशना इति पाठान्तरम्।

(१८५०) चन्दनादिवर्तिः [२]

(र. र.; भै. र.; वं. से.; धन्वं.; वृं. मा.।नेत्ररो.)

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः।
पिष्टैरियं कृतावर्त्तिरशेषतिमिरापहा॥

सफेद चन्दन, हर्र, बहेड़ा, आमला, सुपारी और ढाकके गोंदको महीन पीसकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें आंखोमें आंजनेसे हर प्रकारका तिमिर रोग नष्ट होता है।

(१८५१) चन्दनाद्यञ्जनम्

(वं. से.; र. र.; वृं. मा., ग. नि.; यो. र.; वृ. नि. र.। नेत्र., वृ. यो. त.। त. १३१)

चन्दनं गैरिकं लाक्षा मालतीकलिका समाः।
व्रणशुक्रहरावर्त्तिः शोणितस्य प्रणाशिनी॥

सफेद चन्दन, गेरु, लाख और चमेलीकी कली समान भाग लेकर पानीसे महीन पीसकर वत्तियां बना लीजिए।

इन्हें पानीमें घिसकर आंखोमें आंजनेसे व्रण शुक्र नष्ट होता है।

नोट—इसीका नाम "चातुर्भद्रिकावर्ति" है।

(१८५२) चन्दनाद्या वर्तिः (रा.मा.।नेत्र.)

अरुणचन्दनमागधिकानिशाः
करकबीजयुता गगनाम्भसा।
समभिपेष्य कृता नयनामयान्
हरति वर्त्तिरुदीर्णतरानपि॥

लाल चन्दन, पीपल, हल्दी और नाटा करञ्ज के बीजोके समान भाग चूर्ण को आकाश जल (भूमिसे ऊपरही स्वच्छतापूर्वक ग्रहण किये हुवे वर्षाजल)में पीसकर बत्तियां बना लीजिए।

इसे आंखमें आंजनेसे आंखोमें भयङ्कर रोग भी नष्ट हो जाते है।

(१८५३) चन्द्रकलावर्त्तिः

(वृं. यो. त. । त. १३१, यो. त. । त. ७१)

मुक्ताभस्मसिताभ्रपौररसक
स्रोतोञ्जनैणाण्डजा ।
तुत्थाम्भोभवशङ्खनाभि-
चपलाभृङ्गोत्तमामज्जभिः ॥
वर्त्तिश्चन्द्रकला निहन्ति
तिमिरं चित्रं किमत्र स्फुटम् ।
कण्डूमण्डलकाचशुक्र
तिमिराम्भःस्रावपिल्लादिनुत् ॥

मोतीकी भस्म, मिश्री, अभ्रकभस्म, गूगल, शुद्ध खपरिया, श्वेत सुरमा, कस्तूरी, नीलाथोथा, समुद्रफेन, शङ्खनाभि, पीपल, भांगरा और हर्र, बहेडे तथा आमलेकी मज्जा (गुठलीकी गिरी) का चूर्ण समान भाग लेकर जलसे पीसकर वर्तियां बना लीजिए।

यह "चन्द्रकलावर्ति" तिमिर, खुजली, मण्डल, काच, शुक्र, जलस्राव और पिल्लादि नेत्र रोगोको नष्ट करती है।

(१८५४) चन्द्रप्रभागुटी (ग. नि. । नेत्र)

त्रिफला सैन्धवं लौहं चूर्णं त्रिकटुकं समम् ।
छागलीपयसा पक्कं छायाशुष्कं च तद्गुटी ॥
दुग्धघृष्टा भृता नेत्रे पुष्पहृत्काञ्जिकेन सा ।
तिमिरं मधुना हन्ति पटलं च शिवाम्भसा ॥
निशान्ध्यं कामलां हन्ति काकमाचीरसप्लुता ।
रम्भाम्भसा च श्वयथुं गुटी चन्द्रप्रभाभिधा ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, सेधानमक, लोहचूर्ण, सोंठ, मिर्च और पीपल। इन सबका समान भाग चूर्ण लेकर बकरीके दूधमें पकाकर वत्तियां वनाकर छायामें सुखा लीजिए।

इन्हें दूधमें घिसकर आंखमें लगानेसे फूला, काञ्जिमें घिसकर लगानेसे तिमिर, शहदमें घिसकर लगानेसे पटल, हर्रके रसके साथ घिसकर लगानेसे रतौन्धा, मकोयके रसमें घिसकर लगानेसे कामला और केलेके रसमें घिसकर लगानेसे सूजन नष्ट होती है।

(१८५५) चन्द्रप्रभावर्त्तिः [१]

(च. द.; ग. नि., वृं. मा.; धन्वं., र. र.।नेत्र.)

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका ।
विभीतकस्य मध्यन्तु शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥
एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ।
छायाशुष्कां कृतां वर्त्तिः नेत्रेषु च प्रयोजयेत् ॥
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम् ।
अधिमांसं मलश्चैव यश्च रात्रौ न पश्यति ॥
वर्त्तिश्चन्द्रप्रभानाम जातान्ध्यमपि शोधयेत् ॥

सुरमा, सहञ्जनेके बीज, पीपल, मुलैठी, बहेड़े की मज्जा (गुठलीके भीतरकी गिरी), शंखकी नाभि और मनसिल समान भाग लेकर महीन चूर्ण करके बकरीके दूधमें घोटकर वत्तियां बना लीजिए और छायामें सुखाकर काममें लाइये।

इस 'चन्द्रप्रभावर्ति' को (पानीमें घिसकर) आंखमें आंजनेसे नेत्रार्बुद, पटल, काच, तिमिर, लाल रेखाएं, अधिमांस और नक्तान्ध्य (रतौन्धे) का नाश होता है।

(१८५६) चन्द्रप्रभावर्त्तिः [२]

(यो. र.; भा. प्र. ख. २ । नेत्र.)

रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च।
विडङ्गं भद्रमुस्तं च सप्तमी त्वभया स्मृता॥
अजामूत्रेण संपिष्य छायायां शोषयेद्वटीम्।
वारिणा तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टकम्॥
मधुना पटलं हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम्।
एषा चन्द्रप्रभावर्त्तिः स्वयं रुद्रेण निर्मिता॥

हल्दी, नीमके पत्ते, पीपल, मिर्च, वायविडङ्ग, नागरमोथा और हर्रके समान भाग एकत्र मिश्रित चूर्णको बकरीके मूत्रमें पीसकर वत्तियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

इन्हें पानीमें पीसकर आंखमें आंजनेसे तिमिर, गोमूत्रमें पीसकर आंजनेसे पिष्टक, शहदके साथ आंजनेसे पटल और स्त्रीके दूधमें घिसकर आंजनेसे फूला नष्ट होता है।

(१८५७) चन्द्रोदयावर्त्तिः

(च. द.; भै. र.; वृं. मा.; वं. से.; र. र.। ग. नि.; भा. प्र. म. ख.। नेत्र.; यो. त.। त. ५१)

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च।
विभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला॥
सर्वमेतत्समं कृत्वा गव्यक्षीरेण पेषयेत्।
नाशयेत्तिमिरं कण्डूपटलान्यर्बुदानि च॥
अपि त्रिवार्षिकं शुक्रं मासेनैकेन नाशयेत्।
अधिकानि च मांसानि रात्र्यान्ध्यत्वमेव च॥

हर्र, वच, कूठ, पीपल, काली मिर्च, बहेड़ेकी मज्जा (गुठलीके भीतरकी गिरी), शंखनाभि और मनसिलका समान भाग चूर्ण लेकर गोदुग्धमें पीसकर वत्तियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

इन्हें (पानीमें घिसकर) आंखमें आंजनेसे तिमिर, खुजली, पटलरोग, अर्बुद, अधिमांस और नक्तान्ध्य (रतौन्धे) का नाश होता है। इनके उपयोगसे ३ वर्षका पुराना शुक्र (फूला) १ मास मेंही नष्ट हो जाता है।

(१८५८) चन्द्रोदयावर्त्तिः (लघु)

(ग. नि.; यो. र.; वृ. नि. र.। नेत्र.)

रसाञ्जनं सशैलेयं कुङ्कुमं समनःशिलाम्।
शङ्खं सश्वेतमरिचं शर्करा चात्र सप्तमी॥
एषा चन्द्रोदया नाम वर्त्तिर्वैदेहनिर्मिता।
हन्यात्पिल्लं च कण्डूं च तिमिरं चापि सेविता॥

रसौत, भूरी छरीला, केसर, मनसिल, शंख, सफेद मिर्च (सहजनेके बीज) और मिश्री। समान भाग लेकर पानीसे महीन पीसकर वत्तियां बना लीजिए।

यह वैदेह निर्मित 'चन्द्रोदय वर्ति.' आंखोंके पिल्ल, खुजली और तिमिर रोगका नाश करती है। (पानीसे घिसकर आंखमें लगानी चाहिए।)

चातुर्भद्रिकावर्त्तिः (ग. नि.। नेत्र.)

चन्दनाद्यञ्जनम् देखिए।

(१८५९) चिञ्चाद्यञ्जनम् (च. द.। ने रो.)

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले चौदुम्बरे भाजने।
मूलं तत्र निघृष्टसैन्धवयुतं गौञ्ज्यं विशोष्यातपे॥
तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्राञ्जने शस्यते।
काचार्मार्जुनपिच्चिटे तिमिरे स्रावञ्च निवर्त्तयेत्॥

गूलरकी लकड़ीके स्वच्छ पात्रमें इमलीके पत्तोंका रस भरकर उसमें गुञ्जा (चौटली) की जड़ और सेंधानमकका महीन चूर्ण मिलाकर धूपमें रख दीजिए और सूख जानेपर उसमें श्वेताञ्जनका चूर्ण समान भाग मिलाकर खूब खरल कीजिए।

इसे आंखमें आंजनेसे काच, अर्म, अर्जुन, पिच्चिट, तिमिर और जलस्रावका नाश होता है।

(१८६०) चूर्णाञ्जनम् [१] (वं. से. । नेत्र.)

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिला।
मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम्॥
एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च।
पिच्चटे मधुना योज्यमर्बुदे मस्तुना तथा॥

शङ्ख चूर्ण ४ भाग, मनसिल २ भाग, स्याह मिर्चका चूर्ण १ भाग और सेंधानमक आधा भाग लेकर महीन चूर्ण कर लीजिए।

यह चूर्णाञ्जन शुक्र और तिमिर रोगके लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इसे नेत्र पिच्चट रोगमें शहदमें मिलाकर और नेत्रार्बुद रोगमें मस्तुके साथ लगाना चाहिए।

(१८६१) चूर्णाञ्जनम् [२] (र. र. । नेत्र.)

टङ्कणं रसकं पिष्ट्वा जम्बीरैः कांस्यभाजने।
पक्ष्मरोगहरं कण्डूं रक्तस्रावञ्च नाशयेत्॥४९॥

सुहागेकी खील और शुद्ध खपरियाको जम्बीरी नींबूके रसमें कांसीके पात्रमें घोटकर लगानेसे पक्ष्म (पलकके) रोग, खुजली और रक्तस्रावका नाश होता है।

(१८६२) चूर्णाञ्जनम् [३]

(च. सं. चि. स्था.; वं. से. नेत्र.)

शाणार्द्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः।
शाणार्द्धं सैन्धवाच्छाणात्सौवीरस्य जलेन च॥
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम्।
काचकण्डूककफार्त्तानां मलानाञ्च विशोधनम्॥

काली मिर्च आधी शाण, पीपल २ शाण, समुद्रझाग २ शाण, सैंधव आधा शाण और सौवीराञ्जन १ शाण (५ माशे) लेकर महीन चूर्ण करके चित्रा नक्षत्रमें पानीके साथ खूब खरल करके अञ्जन वना लीजिए।

यह "चूर्णाञ्जन" नेत्रोंके काच, खुजली, कफरोग और मलको दूर करता है।

॥ इति चकाराद्यञ्जनप्रकरणम्॥

अथ चकारादि कल्पप्रकरणम्।

(१८६३) चतुरङ्गुलकल्पः [१]

(च. सं. । क. स्था. अ. ८)

ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्त्तादिरोगिषु।
राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरशीतलः।
बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे।
योज्यो मृद्वनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरङ्गुल॥

अमलतास—ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त और उदावर्तादि रोगोमें अत्यन्त हितकारक, मृदु, मधुर और शीतल है।

यतः अमलतास मृदु और विकार रहित है अतएव बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और सुकुमार व्यक्तियोंके लिए प्रयुक्त करना उत्तम है।

[२]

फलकाले फलं तस्य ग्राह्यं परिणतञ्च यत्।
एषां गुणवतां भारं सिकतासु निधापयेत्॥
सप्तरात्रात् समुद्धृत्य शोषयेदातपे भिषक्।
ततो मज्जानसमुद्धृत्य शुचौ भाण्डे निधापयेत्॥
द्राक्षारसयुतो देयो दाहोदावर्त्तपीडिते।
चतुर्वर्षसुखे बाले यावद्द्वादशवार्षिके॥
चतुरङ्गुलमज्ज्ञस्तु प्रसृतं वाथवाञ्जलिम्।

अमलतासके फलनेका मौसम आने पर वजनी, उत्तम और पक्की फलियां तुड़वाकर रेतमें दववा दीजिए फिर उन्हें सात दिन पश्चात् निकलवाकर धूपमें सुखवाकर भीतरका गूदा निकालकर स्वच्छ पात्रमें भरकर रख दीजिए।

दाह और उदावर्त की शान्तिके लिए अमलतासके गूदेको मुनक्का (या अंगूर) के रसके साथ देना चाहिए।

चार वर्षकी अवस्थासे लेकर १२ वर्षकी अवस्था पर्यन्त अमलतासका गूदा २ पल (१० तोले) अथवा ४ पलकी मात्रानुसार देना चाहिए।

[३]

सुरामण्डेन संयुक्तमथवा कोलशीधुना॥
दधिमण्डेन वा युक्तं रसेनामलकस्य वा।
कृत्वा शीतकषायं तं पिवेत् सौविरकेण वा॥
त्रिवृन्मज्ज्ञस्तथा कल्कं तत्कषायेण वा पिवेत्।
तथा विल्वकषायेण लवणक्षौद्रसंयुतम्॥
कषायेणाथ वा तस्य त्रिवृच्चूर्णं गुडान्वितम्।
साधयित्वा शनैर्लेहं लेहयेन्मात्रया नरम्॥
चतुरङ्गुलसिद्धाद्धि क्षीराद्यदुदियाद्घृतम्।
मज्ज्ञःकल्केन धात्रीणां रसे तत्साधितं पिवेत्॥
तदेव दशमूलस्य कुलत्थानां यवस्य च।
कषाये साधितं कल्कैःसर्पिःश्यामादिभिःपिवेत्॥
दन्तीक्वाथेऽञ्जलिमज्ज्ञः शम्पाकस्य गुडस्य च।
कृत्वा मासार्धमासस्थमरिष्टं पाययेत च॥
यस्य यत्पानमन्नञ्च हृद्यं स्वाद्वपि वा कटु।
लवणं वा भवेत्तेन युक्तं दद्याद्विरेचनम्॥

अमलतासके गूदेको सुरामण्ड, कोलसीधु, दधिमण्ड या आमलेके रसके साथ सेवन करना चाहिए। अथवा सौवीर सुराके साथ उसका शीतकषाय करके पीना चाहिए। अथवा निसोतके कल्क को अमलतासके क्वाथके साथ देना चाहिए या वेलके क्वाथमें अमलतासका गूदा, सेंधानमक और शहद मिलाकर पिलाना चाहिए। या अमलतासके क्वाथमें गुड़ मिलाकर अवलेह बनाकर उसमें निसोतका चूर्ण मिलाकर यथोचित मात्रानुसार सेवन कराना चाहिए।

१ भाग अमलतासका गूदा, ८ भाग दूध और ३२ भाग पानी एकत्र मिलाकर पकाइये, जब केवल दूध शेष रह जाय तो उसका दही जमाकर घृत निकाल लीजिए और इस घृतको पुनः अमलतासके कल्क और आमलेके रसके साथ पका लीजिए अथवा इस घृतको दशमूल, कुलथी और जौ के क्वाथ तथा श्यामादिगणके कल्क से

---

१ सम्प्रति २-३ तोले मात्रा पर्याप्त है।

१ तीन प्रकारका निसोत, दन्ती, शङ्खाहोली, लोध, कमीला, पटोलपत्र, सुपारी, कृष्णदन्ती, इन्द्रायन, अमलतास, दोनों प्रकारके करञ्ज, गिलोय, सातला, विधारा, सेहुंड और स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी)।

पकाकर सेवन कराइये।

दन्तीके क्वाथमें १-१ अञ्जलि अमलतासका गूदा और गुड़ मिलाकर मिट्टीके पात्रमें भरकर उसके मुखको कपरमिट्टीसे बन्द करके रख दीजिए और १ मास या १५ दिन पश्चात् निकालकर काममें लाइये।

रोगीको मधुर, कटु या लवण जो आहार हृद्य हो उसीके साथ अमलतास खिलाकर विरेचन कराना चाहिए।

(१८६४) चित्रककल्पः (ग. नि.। कल्पा.)

आषाढे कार्त्तिके वाऽपि मासे मार्गशिरे भिषक्।
पुण्ययोगे च संप्राप्ते चित्रकं संप्रयोजयेत् ॥
चित्रकःकटुकस्तिक्तपाके चोष्णःप्रकीर्त्तितः।
कटुकत्वात्कफं हन्ति तिक्तत्वात्पित्तनाशनः ॥
औष्ण्याद्धन्त्यनिलं चापि चित्रकःसर्वरोगहा।
तैलसर्पिःपयोयूषसकृद्रससमन्वितः ॥
पेयया वाऽपि पातव्यःसर्वरोगेषु चित्रकः।
पिबेत्पथ्याशनो मासं बिडालपदसंमितम् ॥
तेन पीतेन कोष्ठस्थान् हन्ति चान्तर्गतान् गदान्
मेधावर्णस्वरकरः सर्पिषा सह योजितः ॥
तक्रमस्तुयुतो दद्रुकिटिभानिलनाशनः।
श्वित्री गोमूत्रसंयुक्तं नियतः क्षीरभोजनः ॥

चीतेका प्रयोग आषाढ़, कार्तिक अथवा मार्गशीर्ष (अघन) मासमें करना चाहिए।

चीता कटु, पाकमें तिक्त और उष्ण वीर्य है।

यह कटु होनेके कारण कफनाशक, तिक्त होनेसे पित्तनाशक और उष्ण वीर्य होनेके कारण बात नाशक है, अतएव इसके सेवनसे (वातज, पित्तज और कफज) समस्त रोग नष्ट हो सकते हैं।

चित्रकको तैल, घी, दूध, यूष, गोबरका रस या पेयाके साथ सेवन कराना चाहिये।

चीतेके चूर्णको १ कर्ष (१। तोले)की मात्रानुसार १ मास तक पथ्यपालनपूर्वक सेवन करनेसे कोष्ठगत समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

चीतेको घीके साथ सेवन करनेसे बुद्धिकी वृद्धि होती है तथा स्वर और वर्ण (शरीरका रंग) सुन्दर हो जाता है। एवं तक्र अथवा मस्तु (द्विगुण जल मिश्रित तक्र) के साथ सेवन करनेसे दाद, किटिभ और वायुरोग नष्ट होते है।

श्वेतकुष्ठीको चीतेका चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करना चाहिये और दुग्धाहार पर रहना चाहिये।

॥ इति चकारादि कल्पप्रकरणम् ॥

अथ चकारादि रसप्रकरणम्।

(१८६५) चक्ररसः (भै. र.; र. रा. सुं.।ज्वर.)

शम्भोःकण्ठविभूषणं समरिचं तालं तथा पारदम्।
देवीबीजयुतं सुशोधितमिदं जैपालबीजोत्तमम् ॥
दन्तीमूलयुतं समागधिफलं सर्वं समांशं नयेत्।
तत्सर्वं परिमर्द्य चार्द्रकरसैः गुञ्जाप्रमाणं रसम् ॥
दद्यात्घोरतरे त्रयोदशविधे दोषे च चक्राह्वयम्।
तन्द्रादाहसमन्विते च तृषया सम्पीडिते मानवे ॥

शुद्ध मीठा तेलिया, स्याह मिर्च, हरताल, पारद, गन्धक, शुद्ध जमालगोटा, दन्तीमूल और पीपलका चूर्ण समान भाग लेकर अद्रकके रसमें

घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां वना लीजिये।

इसे घोरतर १३ प्रकारके सन्निपातोंमें तथा तन्द्रा, दाह और तृषायुक्त सन्निपातमें उचित अनुपानके साथ सेवन कराना चाहिये।

(१८६६) चक्राख्यरसः (र. सा. सं. । अर्श.)

मृतसूताभ्रवैक्रान्तं ताम्रं कांस्यं समं समम्।
सर्वतुल्येन गन्धेन दिनं भल्लातकैर्द्रवैः॥
मर्दयेद्यत्नतः पश्चाद्वटीं कुर्याद्द्विगुञ्जिकाम्।
भक्षणाद् गुदजान्हन्ति द्वन्द्वजान्सर्वजानपि॥

पारद भस्म (अभावमें रस सिन्दूर), अभ्रक भस्म, वैक्रान्तभस्म, ताम्रभस्म और कांसीभस्म एक एक भाग तथा सवके समान शुद्ध गन्धक लेकर सवको एक दिन पर्यंत भिलावेके क्राथमें घोटकर दो दो रत्तीकी गोलियां वना लीजिये।

इनके सेवनसे द्विदोषज और सन्निपातज ववासीर नष्ट होती है।

(१८६७) चक्रिकावन्धरसः

(र. चं.; र. र. स. । स्त्रीचि.)

गन्धकःपलमात्रश्च पृथगक्षौ शिलालकौ।
त्रिदिनं मर्दयित्वाऽथ विदध्यात्कज्जलीं शुभाम्॥
विषाणाकारमूषायां कज्जलीं निक्षिपेत्ततः।
द्विपलस्य च ताम्रस्य तन्मुखे चक्रिकां न्यसेत्॥
सन्निरुध्यातियत्नेन सन्धिवन्धे विशोषिते।
ततःकरिपुटार्धेन पाकं सम्यक् प्रकल्पयेत्॥
स्वतःशीतं समुद्धृत्य चक्रिकां परिचूर्णयेत्।
स्थापयेत्कूपिकामध्ये वस्त्रेण परिगालितम्॥
रसोऽयं चक्रिकावन्धस्तत्तद्रोगहरौषधैः।
दातव्यःशूलरोगेषु मूले गुल्मे भगन्दरे॥
ग्रहण्यामग्निमान्द्ये च विद्रधौ जठरामये।
नागोदरे तथैवोपविष्टके जलकूर्मके॥
स्कन्देनामन्दकृपया त्रैलोक्यत्राणहेतवे।
चक्रिकावन्धनामाऽयं प्रसूत स्त्रीगदापहः॥

गन्धक १ पल (५ तोले), मनसिल और हरताल २॥-२॥ तोला लेकर ३ दिन तक घोट कर कज्जली वना लीजिये। अव इस कज्जलीको सींगके आकारकी मूषामें भरकर उसके मुखपर २ पल (१० तोले) शुद्ध ताम्रका ढक्कन लगाकर सन्धिको गुड़ और चूनेसे अच्छी तरह वन्द कर दीजिये और उस पर कपड़मिट्टी करके सुखा लीजिये, एवं उसे अर्द्ध गजपुटमें फूंक दीजिये। स्वांगशीतल होने पर ताम्र चक्रिका (तांवे के ढक्कन) को पीसकर कपड़ेसे छानकर शीशीमें भरकर रख लीजिये।

इसे शूल, गुल्म, अर्श, भगन्दर, संग्रहणी, अग्निमांद्य, विद्रधि, उदररोग, नागोदर (गर्भ सम्बन्धी रोग विशेष), उपविष्टक (गर्भजन्य रोग विशेष) और जलकूर्म रोगमें, इन रोगोंको नाश करनेवाले अनुपानोंके साथ देना चाहिए।

(मात्रा=१-२ रत्ती। साधारण अनुपान= शहद और अद्रकका रस। ववासीरमें त्रिफला काथके साथ और भगन्दरमें मञ्जिष्ठादि काथके साथ देना चाहिए।)

(१८६८) चक्रिका रसः

(र. रा. सुं.; भै. र. । ज्वरा.)

रसं गन्धं विषं चैव धुस्तूरं मरिचं तथा।
शोधितं च तथा तालं माक्षिकञ्च समांशकम्॥

दन्तीक्वाथेन सम्भाव्य गुञ्जामात्रा तु चक्रिका।
साध्यासाध्यान्निहन्त्याशु सन्निपातास्त्रयोदश ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध धतूरेके बीज, स्याह मिर्च, शुद्ध हरताल और सोनामक्खी (भस्म) समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिये पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर दन्तीमूलके क्वाथमें घोटकर १–१ गुञ्जा (रत्ती) की चक्रिका (टिकया) बना लीजिए।

यह रस साध्य और असाध्य हर प्रकारके सन्निपातोंका नाश करता है।

(मात्रा=१ रत्ती। अनुपान=अद्रकका रस और शहद।)

(१८६९) चक्रेश्वरो रसः [१] (र.र.। अर्श.)

मृतसूतस्य चत्वारि पञ्च गन्धकटङ्कणम्।
त्रिदिनं मर्दयेत्सर्वं द्रवैः श्वेतपुनर्नवैः ॥
मूषायां गोलकं तन्तु क्षिप्त्वा ताम्रस्य चक्रिके।
रसगन्धसमे रुद्धा चान्धमूषापुटे पचेत् ॥
चक्रिकां चूर्णयेत्पश्चादभयाभृङ्गजैर्द्रवैः।
दिनैकं भावयेत्तस्मिन् सिद्धश्चक्रेश्वरो रसः॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं जयेद्वातार्शसां क्षणात्।
सिन्धूत्थं मागधीं वह्निं शुण्ठीं तक्रैःपिबेदनु ॥
भोजनं स्निग्धमुष्णञ्च मर्दनञ्च प्रशस्यते।
सञ्जाते ह्यतिविष्टम्भे स्नुहीक्षीरेण भावयेद् ॥
मरिचान्सततं युक्तान्निशायाञ्च प्रयोजयेत्।
विडङ्गं त्रिफला व्योषं त्रिवृन्मूषिकपर्णिका ॥
कम्पिल्लं नलिनीचूर्णं तुल्यं क्षौद्रेण संलिहेत्।
गुडेन सितया वाथ वातरोगाणि वै जयेत् ॥

पारद भस्म (रस सिन्दूर) ४ भाग, गन्धक और सुहागेकी खील ५–५ भाग। सबको ३ दिन तक सफेद पुनर्नवा (सांठी)के रसमें घोटकर गोला बना लीजिये और उसे अन्धमूषामें रखकर उसके मुखको रससिन्दूर और गन्धकके बराबर (९ भाग) तांबेकी चक्रिका [ढक्कन] से बन्द करके उसके जोड़को शहद और चूनेसे अच्छी तरह बन्द करके उसपर ३–४ कपर मिट्टी करके सुखाकर गजपुटमें पकाइये। अथवा गोलेको ९ भाग ताम्रके बने हुवे मूषामें बन्द करके उसे मिट्टीके अन्धमूषामें बन्द करके पुट दीजिए। तत्पश्चात् उसे ताम्र सहित पीसकर १–१ दिन हर्र और भांगरेके रसमें घोटिये।

इसे प्रतिदिन २ रत्तीकी मात्रानुसार खा कर ऊपरसे सेंधानमक, पीपल, चीता और सोंठका चूर्ण मिला हुवा तक्र पीनेसे वातज बवासीर नष्ट होती है।

इस औषधके सेवन कालमें स्निग्ध (चिकना) और उष्ण भोजन तथा शरीर पर तैल मर्दन करना हितकारक है।

यदि अत्यधिक विष्टम्भ (कब्ज़) हो जाय तो स्याह मिर्चोंको थोहर (सेहुंड, सेंड) के दूधमें भिगोकर सुखा लीजिए और रात्रिको (१–२ मिर्च) रोगीको खिला दिया कीजिए।

इसके उपर बायविडङ्ग, त्रिफला, सोंठ, मिर्च, पीपल, निसोत, मूषापर्णी, कबीला और नीलोफरका चूर्ण समान भाग मिलाकर (२–३ माशेकी मात्रानुसार) शहद, मिश्री या गुड़के साथ खिलानेसे वातज रोग नष्ट होते है।

नोट—अन्तिम पैरेका यह अर्थ करना भी उचित प्रतीत होता है कि विष्टम्भके लिए वायविडङ्गादिका चूर्ण शहद, मिश्री अथवा गुडमें मिलाकर खाना चाहिए।

(१८७०) चक्रेश्वरो रसः[२] (र. र.। श्ली.)

ताम्रं गन्धं समं सूतं शुद्धं मर्द्यं दिनत्रयम्।
मेघनादनागवल्लीपाठापुनर्नवाद्रवैः॥
गोमूत्रैर्मर्दयेद्गाढं चक्रयन्त्रे दिनं पचेत्।
माषैकं भक्षयेदेतच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम्॥
खदिरं पद्मकाष्ठञ्च मधुकञ्चाष्टमापकम्।
गवां मूत्रैःसमं पिष्ट्वा पिबेच्छ्लीपदशान्तये॥
गर्त्तादधो भवेद्वह्निर्मध्यगर्त्ताद्रसं कुरु।
चक्रयन्त्रमिदं सिद्धं बाह्यगर्त्ताद्बृहत्पुटम्॥

शुद्ध ताम्र, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद समान भाग लेकर सबको ३-३ दिन तक लाल चौलाईकी जड़, पान (नागरवेल), पाठा और पुनर्नवा (सांठी) के रस तथा गोमूत्रमें खूब अच्छी तरह घोटकर गोला बनाइये और उसे सम्पुटमें वन्द करके १ दिन 'चक्रयन्त्र' में पकाइये। (स्वांगशीतल होने पर निकाल कर पीस कर रख लीजिए।)

इसे १ माशेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे भयङ्कर श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है।

अनुपानमें खैरसार, पद्माख और मुलैठीका समभाग मिश्रित ८ माशे चूर्ण गोमूत्रके साथ पीना चाहिए।

चक्रयन्त्र विधिः—गजपुटके समान एक गढ़ा खोदकर उसके भीतर एक और गढ़ा कोई एक हाथ गहरा और इतना चौड़ा कि जिसमें सम्पुट आजाय खोदिये अब इस बीचवाले गढ़ेमें थोड़ी गहराईपर लोहेकी जाली बिठला दीजिये।

जालीके नीचेके भागमें अग्नि भर दीजिये और जाली पर पुट रखकर उसके ऊपर बालू डालकर बीचवाले गढेको भर दीजिए और फिर बड़े गढेमें उपले भरकर आग लगा दीजिए।

(१८७१) चण्डभास्करो रसः

(वृ. यो. त. । त. १०५)

हरबीजामृतं गन्धं प्रत्येकं निष्कमेव च।
टङ्कणं दशनिष्कन्तु जैपालं विंशतिस्तथा॥
सर्वं खल्वे विनिक्षिप्य निर्गुण्डीरसमर्दितम्।
मुद्गप्रमाणवटिकान्गुडमिश्रन्तु भक्षयेत्॥
पाण्डुशोफोदरार्शश्च गुल्मप्लीहयकृत्कृमीन्।
पुराणज्वरमेहांश्च मूत्रकृच्छ्राश्मरीव्रणान्॥
सर्वव्याधींश्च हरति रसोऽयं चण्डभास्करः॥

पारद, गन्धक और मीठा तेलिया १-१ निष्क (५-५ माशे), सुहागेकी खील १० निष्क और जमाल गोटा २० निष्क लेकर सबको खरलमें डालकर संभालूके रसमें घोटकर मूंगके बराबर गोलियां बना लीजिये।

इनमेंसे १-१ गोली गुड़में मिलाकर खिलानेसे पाण्डु, सूजन, उदररोग, बवासीर, गुल्म, तिल्ली, जिगर, कृमि, पुराना ज्वर, मेह, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, व्रण (घाव) आदि अनेक रोगोका नाश होता है।

(यह रस विरेचक है। बालक, वृद्ध, गर्भिणी और निर्बलको न देना चाहिये।)

(१८७२) चण्डभैरवः (भै.र.; धन्वं.।अपस्मा.)

मृतसूतार्कलौहञ्च तालं गन्धं मनःशिला ।
रसाञ्जनञ्च तुल्यांशं गोमूत्रेणापि मर्दयेत् ॥
तं गोलं द्विगुणं गन्धं लौहपात्रे क्षणं पचेत् ।
पञ्चगुञ्जामितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥
हिङ्गुसौवर्चलं कुष्ठं गवां मूत्रेण सर्पिषा ।
कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसेऽस्मिंश्चण्डभैरवे ॥

पारदभस्म [अभावमें रससिन्दूर], ताम्रभस्म, हरताल, गन्धक, मनसिल और रसौत बराबर बराबर लेकर गोमूत्रमें घोटकर गोला बना लीजिए और उसके ऊपर नीचे उससे दो गुना गन्धक रखकर लोहेके पात्रमें थोड़ी देर तक (गन्धक जल जाने तक) पकाइये ।

इसे ५ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करनेसे अपस्मार [मिर्गी] रोग नष्ट होता है ।

अनुपान—हींग, सौंचल (काला नमक) और कूठका समभाग मिश्रित एक कर्ष (१। तोला) चूर्ण गोमूत्रमें मिलाकर उसमें घृत डालकर रस खानेके पश्चात् पीना चाहिए ।

(१८७३) चण्डभैरवो रसः [१]
(र. र. । उन्मा.)

हेमपादं मृतं सूतं निष्कं खल्वे विमर्दयेत् ।
शोभाञ्जनं विषं तुल्यं मर्द्यञ्च त्रिशूलीद्रवैः॥
देवदाल्याद्रवैश्चाह्नि तद्गोलं पाचयेद्दिनम् ।
गन्धकोत्थेन तैलेन तत उद्धृत्य चूर्णयेत् ॥
वल्लैकं भक्षयेन्नित्यं पिबेद् ब्राह्मीघृतं ह्यनु ।
सर्वभूतग्रहं हन्ति रसोऽयं चण्डभैरवः ॥

स्वर्ण भस्म ४ निष्क (२० माशे), रस सिन्दूर (पारद भस्म) १ निष्क, सहञ्जनेके बीज और मीठा तेलिया ५-५ निष्क लेकर १ दिन गोखरु और देवदाली (विन्दाल) के रसमें घोटकर गोला बना लीजिए । इस गोलेको १ दिन गन्धक के तैलमें पकाकर चूर्ण कर लीजिए ।

इस 'चण्ड भैरव' रसको २-३ रत्तीकी मात्रानुसार "ब्राह्मीघृत" के साथ सेवन करनेसे सर्व भूत ग्रह नष्ट होते है ।

(१८७४) चण्डभैरवो रसः [२]
(र. का. धे. । कु.)

द्विपलं सूतकं शुद्धं पलमङ्कोलबीजकम् ।
चत्वारःकान्तभस्मोत्थाःशुद्धगन्धात्पलानिदश ॥
मृताभ्रं सूततुल्यं स्यात् त्रिफलं कृष्णजीरकम् ।
सर्वं भृङ्गद्रवैर्मर्द्यं दशाहं खल्वके दृढम् ॥
तिलतैलन्तु सर्वांशं तैलांशम् भृङ्गजद्रवम् ।
सर्वं मृद्वग्निना पाच्यं पिण्डितं स्निग्धभाण्डके ॥
सप्ताहं धान्यराशिस्थं समुद्धृत्य विनिक्षिपेत् ।
तुल्यं कृष्णाङ्कुलीबीजं तिलपिण्याकसंयुतम् ॥
भक्षयेन्निष्कमात्रन्तु रसोऽयं चण्डभैरवः ।
वाकुचीबीजपञ्चाङ्गं त्रिफलातुल्यचूर्णकम् ॥
मध्वाज्याभ्यां लिहेत्कर्षमनु स्यात्सर्वकुष्ठनुत् ।

शुद्ध पारा २ पल (१० तोले), अङ्कोलके बीज १ पल, कान्तलोह भस्म ४ पल, शुद्ध गंधक १० पल, अभ्रक भस्म २ पल, त्रिफला २ पल, और काला ज़ीरा २ पल लेकर सबको १० दिम तक भांगरेके रसमें अच्छी तरह घुटवाइये ।

तत्पश्चात् सब औषधोंके बराबर तिलका तेल और उतनाही भांगरेका रस उसमें मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये । जब कठिन हो जाय तो उसका

गोला बनाकर किसी चिकने पात्रमें बन्द करके अनाजके ढेरमें दवा दीजिए। फिर सात दिन पश्चात् उसमें उसके बराबर अङ्कोलके बीज तथा तिलकी खल मिला लीजिए।

इसे प्रतिदिन १ निष्क (५ माशे) मात्रानुसार सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठरोग नष्ट होते हैं।

अनुपान—बावचीके बीज या पञ्चाङ्ग और त्रिफला बराबर बराबर लेकर चूर्ण करके औषध खानेके बाद १ कर्ष (१। तोला) की मात्रानुसार शहदमें मिलाकर चाटना चाहिए।

(१८७५) चण्डरुद्ररसः (र. का. धे. । कु.)

सर्पाक्षी वेतसो नीली पलाशं काकमाचिका ।
मुनिपत्रद्रवैस्तेषां द्वित्राणां वा द्रवैर्दिनम् ॥
मर्दयेत्सूतकं गाढं मृत्पात्रे तैर्द्रवैः पचेत् ।
करीषाग्नौ दिवारात्रं स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥
एतत्तुल्यं शुद्धगन्धं मर्द्यं वाकुचिकाद्रवैः ।
तद्वीजोत्थकषायैर्वा दिनान्ते च वटीकृतम् ॥
चण्डरुद्रो रसो नाम्ना निष्कार्धं चर्चिकापहम् ।
द्विनिशा खदिरं निम्बमहिपाठाऽमृता कटु ॥
देवदाली इन्द्रयवं तुल्यं गोमूत्रपेषितम् ।
अनुपाने प्रलेपे च हन्ति कुष्ठं विचर्चिकाम् ॥

सर्पाक्षी, वेत, नील, पलाश (ढाक) की छाल, काकमाची (मकोय) और अगस्तिके पत्ते। इन सबके अथवा इनमेंसे २-३ वस्तुओंके रसमें १ दिन पारदको खरल कीजिए, तत्पश्चात् इन्हीं ओषधियोंके रसमें उस पारदको मिट्टीके बरतनमें १ दिनरात उपलोंकी अग्नि पर पकाइये। पश्चात् स्वांगशीतल होने पर निकाल कर उसमें समान भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर बावचीके स्वरस या उसके बीजोंके क्वाथमें एक दिन घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इसे आधा निष्क (२॥ माशेकी) मात्रानुसार सेवन करनेसे विचर्चिकाका नाश होता है।

अनुपान—हल्दी, दारु हल्दी, खैर सार, नीमकी छाल, नागकेशर, पाठा, गिलोय, कुटकी, देवदाली [विन्दाल] और इन्द्रयव (इन्दरजौं) समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर उपरोक्त 'चण्डरुद्र' रस खानेके पश्चात् पीना चाहिये। इन्ही बीजोंका कुष्ठ और विचर्चिका पर लेप भी करना चाहिए।

(व्यवहारिक मात्रा=२-३ रत्ती।)

(१८७६) चण्डसंग्रहगदैककपाटरसः

(र. र. स. । उ. खं. अ. ११; र. रा. सुं. । ग्र.)

हिङ्गुलस्थितमहेश्वरबीजं
पातयन्त्रविधिना हरणीयम् ।
गन्धटङ्कणं मृताभ्रकं तुल्यं
कोकिलाक्षमथ चाऽऽयसखल्वे ॥
मर्दनीयमभिधारणयुक्ते
धूमहीनदहनोपरि संस्थे ।
यावदेष जलशोषणदक्षो
जीरकार्द्रकयुतेन स वल्लः ॥
संग्रहज्वरमतिसृतिगुल्मा-
नर्शसां च विनिहन्ति समूहम् ।
वासुदेवकथितो रसराज-
श्चण्डसंग्रहगदैककपाटः ॥

ऊर्ध्व पातन यन्त्र द्वारा निकला हुवा हिंगुल का पारद, शुद्ध गन्धक, सुहागेकी खील, अभ्रक भस्म और तालमखाना समान भाग लेकर सबको

लोहेके खरलमें डालकर उसे धूम्ररहित अग्नि पर रखकर खरल कीजिए। जब खरल इतना तप्त हो जाय कि उसमें पानी डालनेसे वह सूख जाय तो स्वांगशीतल होने पर औषधको निकाल लीजिए। इसे १ वाल [२—३ रत्ती] की मात्रानुसार जीरेके चूर्ण और अद्रकके रसके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी, ज्वर, अतिसार, गुल्म और बवासीरका नाश होता है।

(१८७७) चण्डाग्निरसः (यो. त.। त. २४)

शुण्ठीपारदगन्धकामृतपटुश्रीपुष्पसटङ्कणम्।
द्विर्द्विःशंखकपर्दकौ वसुगणं कृष्णोषणं सद्रसात्॥
जम्बीरस्य परिस्रुतं दृढतरं सम्मर्द्य शुन्या प्लवैः।
सिद्धे वल्लमितोऽग्निदीप्तिकृदयं चण्डाग्निनामा रसः॥

सोंठ, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सेंधानमक, लौङ्ग और सुहागा १—१ भाग, शङ्ख और कौड़ी भस्म २—२ भाग, तथा पीपल और स्याह मिर्च ८—८ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिये, तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर एक एक भावना जम्बीरी नींबूके रस और अगस्तिके रसकी देकर १—१ वल्ल [२ या ३ रत्ती] की गोलियां बना लीजिए।

यह 'चण्डाग्नि रस' अग्निको दीप्त करता है।

[अनुपान—अद्रकका रस या उष्ण जल।]

(१८७८) चण्डेश्वरो रसः

(भै. र., र. रा. सुं.; वै क. द्रु.। ज्वरा.)

रसं गन्धं विषं ताम्रं मर्दयेदेकयामकम्।
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेत्सप्तवारकम्॥
निर्गुण्ड्याःस्वरसे पश्चान्मर्दयेत् सप्तवारकम्।
गुञ्जैकार्द्ररसेनैव दत्तो हन्ति ज्वरं क्षणात्॥
वातजं पित्तजं श्लेष्मद्विदोषजमपि क्षणात्।
सुशीतलजले स्नानं तृषार्थे क्षीरभोजनम्॥
आम्रञ्च पनसञ्चैव चन्दनागुरुलेपनम्।
एतत्समो रसो नास्ति वैद्यानां हृदयङ्गमः॥
एष चण्डेश्वरो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत्॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया और ताम्र भस्म, समान भाग लेकर १ पहर तक अच्छी तरह खरल कराइये। पश्चात् उसे अद्रक और संभालूके स्वरसकी पृथक् पृथक् सात सात भावना देकर सुरक्षित रखिए।

इसे १ रत्तीकी मात्रानुसार अद्रकके रसके साथ देनेसे तत्क्षण ज्वर नष्ट हो जाता है। यह रस वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज आदि समस्त ज्वरका नाश करता है।

इसके सेवनसे यदि ताप हो तो शीतल जलसे स्नान करना चाहिए। प्यासमें दूध पीना चाहिए और आम तथा कटहलके फल खाने और चन्दन तथा अगरका शरीरपर लेप करना चाहिए।

(१८७९) चतुर्भुजरसः

(र. सा. सं., र. चं.; धन्वं.; र.रा.सुं.। उन्मा.)

मृतसूतस्य भागौ द्वौ भागैकंहेम भस्मकम्।
शिला कस्तूरिका तालं प्रत्येकं हेमतुल्यकम्॥
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यया मर्दयेद्दिनम्।
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यगर्भे दिनत्रयम्॥
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत्।
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुमर्दितम्॥

तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम्।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे विशेषतः।
वातपित्तसमुत्थांश्च कफजान्नाशयेद्ध्रुवम् ॥
सर्वौषधिप्रयोगैर्ये व्याधयो न प्रसाधिताः।
कर्मभिः पञ्चभिश्चैव मन्त्रौषधिप्रयोगतः ॥
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
"चतुर्भुजरसो" नाम महेशेन प्रकाशितः ॥

पारद भस्म (अभावमें रस सिन्दूर) २ भाग, तथा स्वर्ण भस्म, मनसिल, कस्तूरी और हरताल भस्म १-१ भाग लेकर सबको घृतकुमारीके रसमें १ दिन घोटकर गोला बनाकर उसे अरण्डके पत्तोमें लपेट कर अनाजके ढेरमें दबा दीजिए और तीन दिन पश्चात् निकालकर चूर्ण कर लीजिए।

इसे अग्निबलोचित मात्रानुसार त्रिफलेके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे, वलि (चेहरे आदिकी झुर्रियां), पलित (बाल सफेद होना), अपस्मार [मिर्गी], ज्वर, खांसी, शोष, अग्निमांद्य, क्षय और विशेषतः हाथ, शिर तथा शरीरका कांपना आदि रोग नष्ट होते हैं।

जो वातज, पित्तज, या कफज रोग अन्य सब औषधो, पञ्च कर्म, या मन्त्रादिसे भी शान्त नहीं होते वह सब इससे अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

इस "चतुर्भुज" रसका अविष्कार श्रीमहेशने किया है।

(१८८०) चतुर्मुखो रसः [१]

(र. सा. सं., र. रा. सुं.; र. चं. । मुख.)

मृतं सूतं मृतं स्वर्णं द्वाभ्यां तुल्यां मनःशिलाम्।
विमर्दयेच्च तैलेन चातसीसम्भवेन च ॥
तद्गोलं वस्त्रतो बद्ध्वा लेपयेच्च समन्ततः।
अतसीफलकल्केन दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत् ॥
उद्धृत्य धारयेद्वक्त्रे जिह्वादन्तास्यरोगनुत् ॥

पारद भस्म (अभावमें रससिन्दूर) और स्वर्ण भस्म १-१ भाग तथा शुद्ध मनसिल २ भाग लेकर सबको अलसीके तेलमें घोटकर गोला बना लीजिए और उसे कपड़ेमें लपेटकर उसके ऊपर अलसीका कल्क लपेट कर उसे ३ दिन तक दोला यन्त्र विधिसे अलसीके तैलमें पकाइये। पश्चात् स्वांगशीतल होने पर औषधको निकालकर पीसकर गोलियां बना लीजिए।

इन गोलियोंको मुंहमें रखनेसे जिह्वा, दांत और मुखरोगोंका नाश होता है।

(१८८१) चतुर्मुखो रसः [२]

[चिन्तामणि चतुर्मुखः]

(र. चिं. म.। स्त. ११; भै. र.; र. चं.; र.सा. सं.; धन्वं.; र. रा. सुं.। वातव्या.; रसें. चि. म.। अ.८; र. का. धे.; आ. वे. प्र. अ.१)

रसगन्धकलौहाभ्रं समं सूतांघ्रि[१] हेम च।
सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम् ॥
त्रिफलातुलसीब्राह्मीरसैश्चानु मर्दयेत्[×]।
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत्।
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम् ॥
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम्।
क्षयमेकादशविधं पाण्डुरोगं प्रमेहकम् ॥

---

१ सूतांशमिति रसकामधेनौ।

× किसी किसी ग्रन्थमें "त्रिफला...मर्दयेत्" इस श्लोकार्द्धका अभाव है।

कासं शूलञ्च मन्दाग्निं हिकाञ्चैवाम्लपित्तकम् ।
व्रणान्सर्वानाढ्यवातं विसर्पं विद्रधिं तथा ॥
अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान् ।
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥
पौष्टिकं धन्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारणम् ।
चतुर्मुखेन देवेन कृष्णात्रेयस्य सूचितम् ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रक भस्म ४—४ भाग तथा स्वर्ण भस्म १ भाग लेकर कज्जली बनाकर उसे १—१ दिन घृतकुमारी के रस तथा त्रिफला—क्वाथ और तुलसी एवं ब्राह्मी के रसमें घोटकर गोला बना लीजिए। इस गोले को अरण्डके पत्तोमें लपेटकर अनाजके ढेरमें दबा दीजिए और ३ दिन पश्चात् निकाल कर चूर्ण करके समस्त रोगोमें व्यवहार कीजिए।

इसे त्रिफला चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे वली [शरीरकी झुर्रियां], पलित (बाल सफेद हो जाना), ग्यारह प्रकारके क्षय, पाण्डु, प्रमेह, खांसी, शूल, मन्दाग्नि, हिचकी, अम्लपित्त, सर्व प्रकारके व्रण, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि,अपस्मार, उन्माद, सब तरहकी बवासीर, त्वग् रोग आदि नष्ट होते हैं।

यह पौष्टिक, आयुवर्द्धक और स्त्रियोंके लिए सन्तानदाता है।

नोट—भैषज्य रत्नावलीमें कथित चिन्तामणि चतुर्मुखरस भी लगभग इसके समान ही है परन्तु उसमें रससिन्दूर १ भाग, लौह तथा अभ्रक आधा आधा भाग और स्वर्ण ¼ भाग है तथा गन्धक नहीं है।

(१८८२) चतुर्मूर्तिरसः (यो. र. । ग्रह.)

सूतकं गन्धकं लौहं विषं चित्रकपत्रकम् ।
विदारी रेणुका मुस्ता एला ग्रन्थिककेशरम् ॥
फलं त्रयं त्रिकटुकं शुल्वभस्म तथैव च ।
एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दातव्यं मधुना सह ।
अतिसारे क्षये कासे प्रमेहे विषमज्वरे ॥
नानानुपानैर्दातव्यश्चतुर्मूर्ती रसोत्तमः ॥

पारा, गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, चीता, तेजपात, विदारीकन्द, रेणुका, मोथा, इलायची, पीपलामूल, नागकेशर (अथवा केशर), हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और ताम्र भस्म समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् भस्म और अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर खरल करके रखिए।

इसे संग्रहणी और पाण्डुरोगमें शहदके साथ तथा अतिसार, क्षय, कास (खांसी), प्रमेह और विषम ज्वरमें रोगोचित अनुपानोके साथ व्यवहार करना चाहिए।

(मात्रा—आधेसे १ माशे तक)

(१८८३) चतुःसमलौहम्

(भै. र.; वं. से., र.चं., र.सा.सं., धन्वं., र.रा.सुं.; र. र., यो. र., र. का. धे.; वृ. नि. र. । शूल; रसें. चि. म.। अ. ९; वृ. यो. त.। त.९५)

अभ्रं गन्धं रसं लौहं प्रत्येकं संस्कृतम् पलम् ।
सर्वमेतत्समाहृत्य यत्नतः कुशलो भिषक् ॥
आज्ये पलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके ।
पक्त्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥

विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च।
पिष्ट्वा पलोन्मितानेतांस्तथा संमिश्रतान्नयेत् ॥
तत्तु पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः।
आत्मनःशोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥
घृतेन मधुना सार्धं भक्षयेन्माषकावधि।
क्रमेण वर्द्धयेत्तच्च समाहितमनाःसदा ॥
अनुपानञ्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा।
रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत् ॥
हृच्छूलपार्श्वशूलञ्चाप्यामवातं कटिग्रहम्।
गुल्मशूलं शिरःशूलं यकृत्प्लीहानमेव च ॥
अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च योगेनानेन साधयेत् ॥

अभ्रक भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म १-१ पल (५-५ तोले) लेकर कज्जली करके उसे १२ पल घृत और ६० पल दूधमें पकाकर (गाढा होने पर) उसमें निम्न लिखित ओषधियोका मोटे कपड़ेसे छना हुवा महीन चूर्ण अच्छी तरह मिला दीजिए—वायविडङ्ग, हर्र,बहेड़ा, आमला, चीता और त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) प्रत्येकका चूर्ण १ पल (५ तोले)।

इसे घी और शहदमें मिलाकर १ माशेकी मात्रासे आरम्भ करके सेवन करना चाहिए। औषध खानेके पश्चात् दूध, नारयलका पानी और अन्य पदार्थ जो रसायन विरुद्ध न हो सेवन करने चाहिएं।

इसके सेवनसे हृदयका शूल, पसली शूल, यकृत् का शूल, प्लीहा, (तिल्ली)का शूल, आमवात, कमरका बेकार हो जाना, गुल्मकी पीड़ा, शिरशूल, अग्निमाद्य, क्षय, कुष्ठ, खांसी, श्वास, विचर्चिका, पथरी और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है।

(१८८४) चतुःसुधारसः

(र. र. स.। उ. खं. अ. २१; र. रा. सुं.। वात.)

समभागे शुभे हेम्नि निर्व्यूढं ताप्यमुत्तमम्।
शतधा शतधा रौप्ये शुल्वे च शतवारकम् ॥
इत्थं सिद्धमिदं बीजं पृथगक्षप्रमाणतः।
समावर्त्य तदेकत्र रसे पञ्चपलात्मके ॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण जारयेदतियत्नतः।
तप्ते खल्वे रसं दत्वा बीजं निष्कमितं तथा ॥
मर्दयेदतियत्नेन भवेद्यावद्दिनत्रयम्।
पूर्वोक्तकच्छपे यन्त्रे वक्ष्यमाणविडान्विते ॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण बीजमेवमशेषतः।
चलिकासीसकव्योमकांक्षी सौवर्चलैः समैः ॥
चक्राङ्गीरससंसिक्तैः शतधा विडमत्र तत्।
एवं जारितसूतेन पलमात्रेण तावता ॥
गन्धकेन च कर्त्तव्या सुस्निग्धा वरकज्जली।
लोहपात्रे घृतोपेतां द्रावयेत्तान्तु कज्जलीम् ॥
तुल्यसत्वाभ्रभसितं क्षिप्त्वा संमिश्र्य सर्वशः।
रम्भापत्रे विनिक्षिप्य कुर्यात्पर्पटिकां शुभाम् ॥
विचूर्ण्य पर्पटीं सम्यग्वैक्रान्तस्त्रिंशदंशतः।
निक्षिप्य हिङ्गुतोयेन शतधा परिभावितम् ॥
निरुध्य मल्लमूषायां स्वेदयेदतियत्नतः।
पुनः संचूर्ण्य यत्नेन करण्डे विनिवेशयेत् ॥
हन्यात्सर्वमरुद्गदान्क्षयगदं पाण्डुं च नष्टाग्निताम्।
निर्वीर्यत्वमरोचकं त्वजरणं शूलञ्च गुल्मादिकम् ॥
अष्टौ चैव महागदानतितरां व्याधिं सशोपं क्षणा-
द्भुक्तो मुद्गमितश्चतुःसुधारसःस्वस्थोचितोभूभुजाम् ॥

मूलकं वर्जयेदस्मिन् रसे नान्यत्तु किञ्चनः।
त्रिबारमेकवारेण बुभुक्षां जनयेद्ध्रुवम्॥

[१] शुद्ध स्वर्णमें समान भाग स्वर्णमाक्षिक मिलाकर, मूषामें वन्द करके तीव्राग्निमें धमाइये, जब स्वर्णमाक्षिक शेष न रहे तो मूषाके ठण्डा हो जाने पर स्वर्ण को निकाल कर उसमें उतनी ही स्वर्णमाक्षिक फिर मिलाकर, मूषामें वन्द करके स्वर्ण माक्षिक अशेष होने तक तीव्राग्निमें धमाइये, इसी प्रकार स्वर्णमें १०० बार स्वर्ण माक्षिक जीर्ण करनेसे "स्वर्ण वीज" तैयार हो जाता है, उसे निकाल कर सुरक्षित रखिए।

[२] इसी प्रकार चांदीमें समान भाग स्वर्ण माक्षिक १०० वार जीर्ण करके "रौप्य बीज" और वैसेही ताम्रमें स्वर्णमाक्षिक १०० बार जीर्ण करके ताम्रबीज तैयार कर लीजिए।

[३] उपरोक्त तीनों वीजोको १-१ कर्ष (१।-१। तोला) लेकर एकत्र खरल कर लीजिए।

[४] गन्धक, कसीस, अभ्रक, सौराष्ट्री और सौवर्चल (सञ्चल) नमक बराबर बराबर लेकर एकत्र करके उसे कुटकीके काथकी १०० भावनाएं दीजिए।

[५] अब एक लोहेके खरलको निर्धूम अग्नि पर रखकर उसमें ५ पल (२५ तोले) पारा और १ निष्क [३॥। माशे] उपरोक्त (नं. ३ में कथित) धातुवीजोंके मिश्रणको डालकर तीन दिन तक घोटिए और फिर इसमें समान भाग उपरोक्त नं.४ में कथित मिश्रण मिलाकर अच्छी तरह घोटिए। जब पारद और वह गन्धकादिका मिश्रण भलीभांति मिल जाय तो इस सबको कच्छप* यन्त्रमें भरकर धातु बीजका जारण कीजिए और फिर पारदको निकालकर उसमें वही [नं. ३ में कथित] धातुवीजोका मिश्रण १ निष्क मिलाकर ३ दिन तक लोहेके खरलमें अग्निके ऊपर घोटिए तत्पश्चात् उसमें समान भाग नं. ४ का मिश्रण मिलाकर भलीभांति घोटकर कच्छप यन्त्रमें जारण कीजिए।

इस प्रकार १२ बार यही क्रिया करनेसे समस्त धातु बीज पारदमें जीर्ण होकर "जारित पारद" तैयार हो जायगा।

अब यह जारितपारद १ पल [५ तोले] और शुद्ध गन्धक १ पल लेकर खूब चिक्कण कज्जली तैयार कीजिए। फिर एक लोहेकी कढाईमें घी चुपड़कर उसमें यह कज्जली डालकर मन्दाग्नि पर पिघलाइये और उसमें २ पल अभ्रक सत्वकी भस्म मिलाकर यथाविधि †पर्पटी बना लीजिए।

---

* एक बड़े बरतनमें पानी भरकर उसमें मिट्टीका अच्छा बड़ा कुण्डा रखिए। पानी इस कुण्डेके किनारों तक रहना चाहिए। अब धातु वीज मिश्रित पारदको एक मूषामें वन्द करके मूषाको सुखाकर उसे उपरोक्त कुण्डेमें रखिए और उस पर एक लोहेकी कटोरी ढककर जोड़को अच्छी तरह वन्द कर दीजिए। इसके बाद मूषाके चारों ओर खैरके कोयले भरकर सिलगा दीजिए। (इसीका नाम कच्छप यन्त्र है।)

† साफ जमीन पर गायका गोवर ४-५ अंगुल मोटा फैलाकर उस पर केलेका पत्ता फैला दीजिए और फिर उस पर पिघली हुई कज्जली डालकर उसके ऊपर दूसरा पत्ता रख कर उसे गोवरसे दवा दीजिय। जरा देर बाद

अब इस पर्पटीको पीस कर इसमें तीसवां भाग वैक्रान्त भस्म मिलाकर उसे हींगके पानीकी १०० भावनाएं दीजिए। और फिर उसे मल्ल मूषामें बन्द करके स्वेदन कीजिए और स्वांगशीतल होनेपर निकालकर पीसकर शीशीमें भर लीजिए। इसका नाम "चतुःसुधा" रस है।

इसके सेवनसे वायुके समस्त रोग, क्षय,पाण्डु, अग्निमांद्य, वीर्यहीनता, अरुचि, बदहजमी, शूल, गुल्म, आठों महा व्याधियां और शोष रोग नष्ट होता है। इसे मूंगके बराबर मात्रानुसार सेवन करनेसे राजाओंका स्वास्थ्य स्थिर रहता है।

इसकी एक मात्रा सेवन करनेसे ३ वार भूख लगती है।

इसके सेवन कालमें केवल मूली न खानी चाहिए, अन्य किसी प्रकारके परहेजकी आवश्यक्ता नहीं है।

(१८८५) चन्द्रकलारसः

(वृ. नि. र.। मूत्रकृ.-दा.; र.र.स.। उ. खं. अ.१३; यो. र.। दाह; र. चं.। र. पि.; र.रा.सु.। दाह)

प्रत्येकं तोलमादाय सूतं ताम्रं तथाभ्रकम्।
द्विगुणं गन्धकञ्चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम्॥

मुस्तादाडिमदूर्वोत्थैः केतकीस्तनजद्रवैः।
सहदेव्या कुमार्याश्च पर्पटस्यापि वारिणा॥
रामशीतलिकातोयैः शतावर्यारसेन च।
भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक्॥
तिक्ता गुडूचिकासत्वं पर्पटोशीरमाधवी।
श्रीखण्ड सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम्॥
द्राक्षादिकषायेण सप्तधा परिभावयेत्।
ततो धान्याश्रयं कृत्वा वट्यः कार्याश्चणोपमाः॥
अयं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्त्तितः।
सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः॥
अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाक्षमः।
ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते॥
कुरुते नाग्निमान्द्यं च महातापज्वरं हरेत्।
भ्रमं मूर्छां हरत्याशु स्त्रीणां रक्तं महास्रुतिम्॥
ऊर्ध्वाधोरक्तपित्तं च रक्तवांतिं विशेषतः।
मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः॥

शुद्ध पारा, ताम्र भस्म और अभ्रक भस्म १-१ तोला, शुद्ध गन्धक २ तो. लेकर सबकी कज्जली बनाकर उसे १-१ दिन मोथा, दाड़िम, दूर्वा, केतकीकी कली, सहदेवी, घृतकुमारी, पित्त-पापड़ा, रामशीतला (महाराष्ट्र देशमें 'आरामशीली' नामसे प्रसिद्ध सुगन्धित शाक) और शतावरके रसमें पृथक् पृथक् १-१ दिन घोट कर उसमें कुटकी, गिलोयका सत, पित्तपापड़ा, खस, माधवी लता, सफेद चन्दन और सारिवाका समान भाग मिश्रित चूर्ण सबके बराबर मिलाकर द्राक्षादि गणे

गोवरको हटा दीजिए, तो पर्पटी तैयार मिलेगी। अथवा थोड़े कड़े गोवरको केलेके पत्तेमें लपेट कर गोल वेलन सा बना लीजिए और उससे उस पिघली हुई कज्जलीको फुरतीके साथ रोटी वेलनेकी भांति वेल दीजिए।

रस रत्न समुच्चयमें इस प्रथम श्लोकके स्थानमें निम्न पाठ है—

प्रत्येकं तोलमानेन सूतकं ताम्रभस्मकम्।
दिनानि त्रीणि गुटिकां कृत्वा चाग्नौ विनिक्षिपेत्॥
ततःशुष्कं समादाय पुनरेव च मर्द्दयेत्।
समस्तैः समगन्धैश्च कृत्वा कज्जलिकाञ्च तैः॥

१ मागधीति रसरत्न समुच्चये। २ शृङ्गाटकमिति पाठान्तरम्। ३ द्राक्षाफलेतिपाठान्तरम्
४ द्राक्षादिगण-द्राक्षा, दाडिम, केला, ताडका फल, बेलगिरी, जामन, आम।

की औषधोंके क्वाथकी सात भावनाएं दीजिए। और उसका गोला बनाकर (पत्तोंमें लपेटकर) अनाजके ढेरमें दबा दीजिए।

फिर [सात दिन पश्चात्] निकालक पीसकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

यह "चन्द्रकला" रस समस्त पित्तज और वात-पित्तजरोगोंका नाश करता है। तथा आन्तरिक और बाह्य दाह शान्त करता है। ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ, अषाढ) और शहद् ऋतु (आश्विन,कार्तिक) में विशेष उपयोगी है।

यह रस घोर सन्ताप, ज्वर, भ्रम, मूर्च्छा, स्त्रियोंको अधिक रक्तस्राव होना, ऊर्ध्व रक्तपित्त, आधो रक्तपित्त, विशेषतः रक्तकी वमन और समस्त प्रकारके मूत्रकृच्छ्रोंका नाश करता है।

इसके सेवनसे अग्निमांद्य नहीं होता।

(मात्रा=१ से ४ गोली तक पित्त पापड़ेके रस या शरबत नीलोफरके साथ खाएं।)

(१८८६) चन्द्रकलावटी (रसः)

(वृ. नि. र.; यो. र. । प्रमे., यो. चि. म. । गुटिका.; र. का. धे.)

एला सकर्पूरशिलां सधात्री
जातीफलं गोक्षुरशाल्मली च।
सूतेन्द्रवङ्गायसभस्म सर्व-
मेतत्समानं परिभावयेच्च॥
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायै-
र्निष्कार्धमाना मधुना ततश्च।
बद्धा वटी चन्द्रकलेति संज्ञा
सर्वप्रमेहेषु नियोजयेत्ताम्॥

१ सिता। २ केसर।

इलायची, कपूर, मनसिल (पक्षान्तरमें मिश्री) आमला, जायफल, गोखरु, सेंभलकी छाल, रस-सिन्दूर, बङ्गभस्म और लोहभस्म बराबर बराबर लेकर महीन चूर्ण करके गिलोय और सेंभलकी छालके क्वाथमें घोटकर शहदके साथ २-२ माषे की गोलियां बना लीजिए। इन्हें सर्व प्रकारके प्रमेह रोगोंमें सेवन कराना चाहिए।

(१८८७) चन्द्रकान्तरसः [१]

(र. सा. सं.; र. का. धे.। कुष्ठ; रसें.चि.म.। अ.९)

पलत्रयं मृतं ताम्रं सूतमेकं द्वि गन्धकम्।
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकञ्च पलं पलम्॥
निर्गुण्ड्याश्चार्द्रकद्रावैर्वह्निद्रावैर्विमर्दयेत्।
दिनैकं तद्विशोष्याथ तुषाग्नौ स्वेदयेद्दिनम्॥
समुद्धृत्य विचूर्ण्याथ वागुजीतैलमर्दितम्।
त्रिदिनं भावयेत्तेन निष्कैकं भक्षयेत्सदा॥
चन्द्रकान्तिरसो नाम्ना कुष्ठं हन्ति न संशयः।
तैलं करञ्जबीजोत्थं वह्निसैन्धवगन्धकैः॥
अनुपानं प्रकर्तव्यं कल्कं वा वागुजीभवम्॥

ताम्रभस्म ३ पलं (१५ तो.), पारा १ पल, गन्धक २ पल, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा और आमला १-१ पल लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए फिर अन्य पदार्थों का महीन चूर्ण मिलाकर १-१ दिन संभालू,अद्रक और चीतेके क्वाथमें घोटकर सुखाइये फिर उसे मूषामें बन्द करके १ दिन तुषाग्निमें स्वेदित कीजिए तत्पश्चात् मूषामेंसे औषधको निकाल कर ३ दिन तक बावचीके तैलमें घोटकर रखिए।

इस "चन्द्रकान्त" रसको १ निष्क [५ माशेकी] मात्रानुसार सेवन करनेसे कुष्ट अवश्य नष्ट होता है।

इस रसको चीता, सेधा और गन्धकके चूर्ण अथवा बावचीके कल्क युक्त करञ्जबीजके तैलके साथ सेवन करना चाहिए।

(व्यवहारिक मात्रा=४-६ रत्ती)

(१८८८) चन्द्रकान्तरसः [२]

(र. सा. सं.; र. रा. सुं; र. चं. । शिरो.)

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं ताम्रं गन्धं समं समम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्य भक्षयेन्माषमात्रकम्॥
मधुना मर्दितं सेव्यं लोहपात्रे दिने दिने।
सप्ताहात्सूर्यावर्त्तादीञ्छिरोरोगान्विनाशयेत्॥

पारद भस्म [अभावमें रस सिन्दूर], अभ्रक भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, ताम्र भस्म और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर सबको १ दिन स्नुही (सेहुंड-सेंड) के दूधमें घोटिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार लोहपात्रमें शहद में मिलाकर सेवन करनेसे १ सप्ताहमें सूर्यावर्तादि शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं।

(व्यवहारिक मात्रा=२ रत्ती)

(१८८९) चन्द्रप्रभारसः

(भै. र. । क्षु.; आ. वे. वि. । अ. ८१)

चन्द्रप्रभां तुगाक्षीरीं सैन्धवञ्च शिलाजतु।
कौशिकञ्चाक्षमानन्तु हेमारं रौप्यमभ्रकम्॥
माक्षिकं शाणमात्रञ्च मधुना परिमर्दयेत्।
ततो द्विवल्लमानेन वटिकाःपरिकल्पयेत्॥
अनुपानविशेषेण योजितोऽयं महारसः।
सर्वान् क्षुद्रगदान् हन्ति प्रमेहानपि दुस्तरान्॥
वातव्याधीनशेषांश्च पित्तजान् कफसम्भवान्।
चिरप्रणष्टमग्निञ्च दीपयेज्जनयेद् बलम्॥

कचूर (अथवा बावची), वंसलोचन, सेंधा-नमक, शिलाजीत और शुद्ध गूगल, एक एक कर्ष (१।-१। तोला) और स्वर्ण भस्म, पीतल भस्म, चांदी भस्म तथा अभ्रक भस्म एवं स्वर्ण माक्षिक भस्म १-१ शाण (५ माशे) लेकर शहदमें घोट कर २-२ वल्ल (४-६) रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें पृथक् पृथक् रोगोचित अनुपानोंके साथ सेवन करानेसे समस्त क्षुद्ररोग, प्रमेह, वातव्याधि, कफज और पित्तज रोग नष्ट होते और बहुत समयकी नष्ट अग्नि दीप्त होती है।

(१८९०) चन्द्रप्रभावटी [१] (र.का.धे.।कुष्ठ.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं निम्बुमयूरयोः।
द्राभ्यां दृढं सगोमूत्रैर्दिनैकं वाकुचीद्रवैः॥
मुस्तापिण्डे विनिक्षिप्य तं रुध्वा भूधरे पचेत्।
पक्वोद्धतन्तु तच्चूर्णं चूर्णाच्छतगुणं क्षिपेत्॥
चूर्णितं वाकुचीबीजं गोमूत्रैर्मर्दयेद्दिनम्।
द्विनिष्कां वटिकां खादेच्छ्वित्रकुष्ठविनाशिनीम्॥
ख्याता 'चन्द्रप्रभा' ह्येषा कुर्यात्तक्रेण भोजनम्।
काष्ठोदुम्बरिकामूलं जलैर्घृष्टं पिबेदनु॥

शुद्ध पारा १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करके उसे नींबूके रस, चिरचिटे और बावचीके क्वाथ तथा घोमूत्रमें एक एक दिन भलीभांति घोटकर नागरमोथेकी लुगदीमें रखकर भूधर पुटमें पकाइये; तत्पश्चात् उसमें इससे १०० गुना बावचीका चूर्ण मिलाकर १दिन

गोमूत्रमें घोटकर २–२ निष्क (१० माशे) की गोलियां बना लीजिए।

इसके सेवनसे श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है।

से. वि.—गोली खाकर ऊपरसे काकोदुम्बर (कठूमर–गूलरभेद) की छालको पानीमें घिसकर पिएं और तक्रयुक्त आहार खाएं।

(१८९१) चन्द्रप्रभावटी[२] (र.का.धे.।कुष्ठ)

शुद्धसूताग्निमरिचं सूतात्त्रिगुणगन्धकम्।
काकोदुम्बरिकाक्षीरैर्वाकुच्या वा कषायकैः॥
दिनं मर्द्यं वटीं कुर्यादक्षमात्रां मधुप्लुताम्।
खादेच्चन्द्रप्रभामेषां पामां हन्ति महाद्भुतम्॥

शुद्ध पारद, चीता और मिर्च १–१ भाग तथा गन्धक ३ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और अन्य औषधियोका चूर्ण मिलाकर १ दिन काकोदुम्बर (कठूमर–गूलरभेद) के दूध या बाबचीके क्वाथमें घोटकर १–१ कर्ष (१। तोले) की गोलियां बना लीजिए। प्रतिदिन १–१ गोली शहदमें मिलाकर खानेसे पामा (खुजली भेद) अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाती है।

(व्यवहारिक मात्रा=१–१ माशा।)

(१८९२) चन्द्रप्रभावटी [३]

(र. रा. सुं., र. चं.; र. का. धे., यो. र.। अति.; वृ. यो. त.। त. ६५, र. मं.। अ. ६)

मृतं सूतं मृतं चाभ्रं मृतं स्वर्णं समं समम्।
तुल्यं च खादिरं सारं तथा मोचरसं क्षिपेत्॥
द्रवे शाल्मलिमूलोत्थैर्मर्दयेत्प्रहरद्वयम्।
चणकाभा वटीखादेन्निष्कैकं जीरकैःसहः॥
त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं नाशयेद्ध्रुवम्॥

पारद भस्म (अभावमें रस सिन्दूर), अभ्रक भस्म और स्वर्ण भस्म १–१ भाग तथा खैरसार (कत्था) और मोचरसका चूर्ण ३–३ भाग लेकर सबको २ पहर तक सेभलकी जड़के रसमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

१ निष्क (५ माशे) जीरेके चूर्णके साथ प्रतिदिन १–१ गोली [शहदमें मिलाकर] खानेसे त्रिदोषज ज्वरातिसार नष्ट होता है।

(१८९३) चन्द्रप्रभा वटी [४]

(र. रा. सुं.; धन्वं.; र. सा. सं.। प्रमे.; रसें. चि. म.। अ. ९)

मृतसूताभ्रकं लोहं नागं वङ्गं समं समम्।
एलाबीजं लवङ्गञ्च जातीकोषफलन्तथा॥
मधूकं मधुयष्टिश्च धात्री दाडिमशर्करा।
कर्पूरं खादिरं सारं शताह्वा कण्टकारिका॥
अम्लवेतसकं तुल्यं दिनैकं लाङ्गलीद्रवैः।
भावयेन्मेषदुग्धेन नागवल्ल्या रसैर्दिनम्॥
वटिका बदरास्थ्याभा कार्या चन्द्रप्रभा परा।
भक्षयेद्वटिकामेकां सर्वमेहकुलान्तिकाम्॥
धात्रीपटोलपत्रं वा कषायं वाऽमृतायुतम्।
सक्षौद्रं भक्षयेच्चानु सर्वमेहप्रशान्तये॥

पारद भस्म (अभावमें रस सिन्दूर), अभ्रक भस्म, लोह भस्म, सीसा भस्म, बङ्गभस्म, इलायची के बीज, लौङ्ग, जावित्री, जायफल, महुवा, मुलैठी, आमला, अनारदाना, मिश्री, कपूर, खैरसार, सौंफ, कटैली और अम्लवेतका चूर्ण समान भाग लेकर सबको लाङ्गकी (कलिहारी) के रस, भेड़के दूध और पानके रसमें १–१ दिन पर्यन्त घोट कर बेरकी गुठलीके समान गोलियां बना लीजिए।

प्रतिदिन आमलेके रस, पटोलपत्रके क्वाथ अथवा गिलोयके क्वाथमें शहद मिलाकर उसके साथ १-१ गोली सेवन करनेसे सब प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं।

(१८९४) चन्द्ररुद्रो रसः (र. रा. सुं.। कुष्ठ)

एकवीरा शंखपुष्पी गोजिह्वा हरिणी खुरी।
विष्णुक्रान्ता कण्टकारी जीवन्ति क्षीरी सारिवा॥
मेघनादो देवदारू ब्राह्मी वीरा तु दन्तिका।

सं. १८७५ 'चण्डरुद्र' रसमें पारेको जिन चीजोंमें घोटनेके लिए लिखा है यदि उनके अतिरिक्त निम्न ओषधियोंमें भी घोटा जाय तो उसी रसका नाम "चन्द्ररुद्र" रस हो जाता है।

बांझ ककोड़ा, शङ्खपुष्पी, गोजिया शाक, हरिनखुरी, विष्णुक्रान्ता, कटेली, जीवन्ति, क्षीरकाकोली, सारिवा, चौलाई, देवदारु, ब्राह्मी, शतावर और दन्तीमूल।

(१८९५) चन्द्रशेखरो रसः (र.का.धे.।कुष्ठ.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं सर्पाक्षी शङ्खपुष्पिका।
गोजिह्वा क्षीरिणी नीली पलाशश्च रुदन्तिका॥
मुनिर्निम्बः काकमाची विष्णुक्रान्ता च मुस्तकम्।
सर्वं सम्मर्दयेद्द्राव्रैर्दिनैकं तप्तखल्वके॥
पर्पटीरसवत्पाच्यं गन्धं ताप्यं क्षिपेत्पुनः।
प्रत्येकं पर्पटीतुल्यं सहदेवी विदारिका॥
हस्तीकन्दामृतामुण्डीद्रवैस्तं मर्दयेद्दिनम्।
कषाये दशमूलस्य पुटेन्तुल्येन पिण्डितम्॥
समूलपत्रशाखाश्च देवदालीं विचूर्णिताम्।
त्रिफलां वाकुचीबीजं पञ्चाङ्गोत्तरवारुणीम्॥
छायाशुष्कं समं चूर्णं पुंमूत्रेण पिबेत्सदा।
शतारुष्के गलत्कुष्ठे ह्यनुपानं सुखावहम्॥

१ भाग शुद्ध पारा और दो भाग शुद्ध गन्धककी कज्जली करके उसे सर्पाक्षी, शङ्खपुष्पी, गोजिया, खिरनी, नीलका पौदा, ढाककी छाल, रुदन्ति (रुद्रवन्ती), अगस्ति, नीम, मकोय, कोयल और मोथेके स्वरस वा क्वाथमें १-१ दिन तप्त खल्वमें घोटें। अर्थात् लोहखरल तुषाग्नि पर रखकर उसमें कज्जली डालकर इनके रसोंके साथ पृथक् पृथक् घोटें। इसके पश्चात् लोहेकी कड़ाइमें ज़रासा घी लगाकर उसे आगपर रखकर उसमें इस कज्जलीको पिघलावें और पिघल जाने पर पर्पटी बनावें और उसमें शुद्ध गन्धकका चूर्ण और सोनामक्खी भस्म प्रत्येक पर्पटीके बराबर मिलाकर उसे सहदेवी, विदारीकन्द, हस्तीकन्द, गिलोय और मुण्डीके स्वरस तथा दशमूलके क्वाथमें एक दिन घोटकर गोलियां बना लीजिए और फिर वन्दालका पञ्चाङ्ग और इन्द्रायणका पञ्चाङ्ग छायामें सुखाकर चूर्ण करके वह चूर्ण तथा त्रिफला और बावचीका चूर्ण समान भाग मिलाकर रक्खे।

उपरोक्त गोलियां खा कर ऊपरसे मनुष्य के मूत्रके साथ यह चूर्ण खानेसे शतारुष्क और गलत्कुष्ठ नष्ट होता है।

(मात्रा-रसकी मात्रा २ रत्ती, चूर्णकी १॥ माशा।)

(१८९६) चन्द्रसुधा रसः (रसा. सा.)

स्वर्णसिन्दूरताम्राभ्रवङ्गलोहमाक्षिकाः।
भसितास्तुल्यमानास्ते भीमसेनेन्दुमर्दिताः॥१
मुस्तकपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः।
भावितास्त्रिस्ततः कृष्णद्राक्षैलायष्टिमाक्षिकैः॥२

ससितैरवलीढास्ते रक्तिकाद्वयमात्रकाः।
घोरां तृष्णां ज्वरं दाहं मूर्च्छां हिक्कां वमिं तमिम्
हन्याच्चन्द्रसुधाऽरोचं भुक्तये लाजलेपिका ॥३॥

स्वर्णसिन्दूर, ताम्रभस्म, वज्राऽभ्रकभस्म, बङ्ग-भस्म, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, भीमसेनी कपूर। ये सब एक एक तोला लेकर मर्दन करे; नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लाल चन्दन, नेत्र-बाला, सोंठ। इनके क्वाथकी तीन भावना दे। बाद, भुनी हुई पीपल, मुनक्का, दाख (काली दाख), इलायचीके बीज, मुलैठी, इनको समान भाग लेकर कूट छानकर चूर्ण बना ले। इस चूर्णमेंसे १ तोला लेकर और १ तो० शहद और मिश्री भी मिलाकर दो रत्ती चन्द्रसुधा रसमेंसे लेकर चाटे। इसके चाटनेसे बड़ी उग्र पिपासा, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, हिचकी, वमन, ग्लानि, अरुचि नष्ट हो जाती हैं। भोजनमें धानकी खीलोंका पतला दलिया खाय। जो मीठे पर रुचि हो तो मिश्री डालकर बनावे, या नमकीन बनावे ॥३॥

(रसायनसारसे उद्धृत)

(१८९७) चन्द्रसूर्यरसः [चन्द्रसूर्योदयः]
(र. र. स.। अ. १२)

तुत्थेन तुल्यः शिवजश्च गन्धो
जम्बीरनीरेण विमर्दनीयः।
दिनत्रयं मेलय तेन तुल्यं
व्योषं ततः सिद्ध्यति चन्द्रसूर्यः ॥
वह्नो विजेतुं विषमावलम्बं
दलेन देयो भुजगाख्यवल्ल्याः।
दुग्धं हितं स्यादिह शृङ्गवेरं
रसेन शैत्येषु निषेवणीयः ॥
तक्रं सगर्भा ज्वरशूलयोस्तु
द्राक्षाम्बुना पथ्यमनन्तरोक्तम्।
रोधं वशायाः सलिलेन, शूलम्
जम्बीरनीरेण, वरा-जलेन ॥
अपस्मृतावत्र नियोजनीय-
मभ्यञ्जनं निम्बपयोभवाभ्याम्।
घृतौदनं स्यादिह भोजनाय
जम्बीरनीरेण निहन्ति गुल्मम् ॥
हिंग्वम्लिकानिम्बुरसेन देयं
प्लीहोदरे स्यादिह तक्रभक्तः।
स्तम्भार्थमस्मिन्ससितं पयः स्याद्
गुडो नियोज्यो वमनप्रशान्त्यै ॥
(अशीतिर्यस्य वर्षाणि वसुवर्षाणि यस्य वा।
विषौषधं न दातव्यं दत्तं चेद्दोषकारकम् ॥)

शुद्ध नीला थोथा, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धकको ३ दिन पर्यन्त जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर उसमें उस सबके बराबर सोठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण मिलाइये। इसका नाम "चन्द्र सूर्य रस" है।

इसे विषमज्वरमें नागरवेलके पानके साथ देना चाहिए और आहारमें दूध पिलाना चाहिए।

शीतको दूर करनेके लिए अदरकके रसके साथ खिलाना और तक्र देना चाहिए।

सगर्भा स्त्रीके ज्वर और शूलमें द्राक्षा (दाख-मुनक्का) के रसके साथ देना और तक्र पिलाना चाहिए।

मलावरोध (कब्ज़) में त्रिफलाके क्वाथके साथ और शूलमें जम्बीरी नींबूके रसके साथ देना

चाहिए। अपस्मार (मिरगी)में भी त्रिफलाके क्वाथके साथ देना चाहिए और पथ्यमें घृतयुक्त भात देना चाहिए तथा शरीर पर नीमके पत्तोका कल्क और घी मिलाकर मालिश करनी चाहिए।

इसे जम्बीरी नींबूके साथ सेवन करनेसे गुल्म नष्ट होता है। तिल्ली रोगमें नींबूके रसमें हींग और इमलीके रसको मिलाकर उसके साथ सेवन कराना तथा तक्र भातका आहार कराना चाहिए।

स्तम्भनके लिए मिश्री युक्त दूधके साथ और वमनको रोकनेके लिए गुडमिश्रीत दूधके साथ देना चाहिए।

(८० वर्षसे अधिक और ८ वर्षसे कम अवस्थाके रोगीको विषमिश्रित औषध देना हानिकारक होता है।)

(१८९८) चन्द्रसूर्यात्मको रसः

(भै.र., र.सा.सं.; धन्व; र.रा.सु। पाण्डु कामला)

सूतकं गन्धकं लोहमभ्रकञ्च पलं पलम्।
शङ्खटङ्कवराटञ्च प्रत्येकार्द्धपलं हरेत्॥
गोक्षुरबीजचूर्णञ्च पलैकं तत्र दीयते।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं वाष्पयन्त्रे विभावयेत्॥
पटोलं पर्पटं भार्गी विदारी शतपुष्पिका।
कुण्डली दण्डिनी वासा काकमाचीन्द्रवारुणी॥
वर्षाभूःकेशराजश्च शालिञ्च द्रोणपुष्पिका।
प्रत्येकार्द्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं कुरु॥
चतुर्दशवटी खादेच्छागीदुग्धानुपानतः।
गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्यात्मको रसः॥
हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगञ्च कामलाम्।
जीर्णज्वरं सविषमं रक्तपित्तमरोचकम्॥
शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन्।
शोथं मन्दानलं कासं श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमिम्॥
भगन्दरोपदंशौ च दद्रूकण्डूव्रणापचीः।
दाहं तृष्णामूरुस्तम्भमामवातं कटीग्रहम्॥
युक्त्या मण्डेन मद्येन मुद्गयूषेण वारिणा।
गुडूचीत्रिफलावासाक्काथनीरेण वा क्वचित्॥

पारा, गन्धक, लोह भस्म और अभ्रक भस्म १-१ पल (५-५ तोले), तथा शंखभस्म, सुहागे की खील और कौड़ी भस्म आधा आधा पल और गोखरुके बीजो (फलो) का चूर्ण १ पल लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनवा लीजिए, तत्पश्चात् अन्य औषधें मिलाकर घुटवाइये और फिर एक पात्रमें पानी भरकर उसके मुखपर कपड़ा बांधकर उसे अग्निपर चढा दीजिए और उपरोक्त रसको कपड़ेकी पोटलीमें बांधकर उक्त पात्रके मुखपर बंधे हुवे कपड़े पर रखकर थोड़ी देर स्वेदित कीजिए। फिर इसमें पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, भारङ्गी, विदारीकन्द, सौंफ, गिलोय, ब्रह्मदण्डी, वासा, मकोय, इन्द्रायन, पुनर्नवा (सांठी), भांगरा, शालिञ्च शाक और गूमाका आधा आधा पल रस डालकर घुटवाकर सबकी १४ गोलिया बनवा लीजिये।

यह श्री गहनानन्द नाथ कथित "चन्द्रसूर्यात्मक" रस है।

इसे बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे हलीमक, पाण्डु रोग, कामला, जीर्णज्वर, रक्तपित्त, अरुचि, शूल, तिल्ली, अफारा, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधी, शोथ, अग्निमांद्य, खांसी, श्वास, हिचकी,

वमन, भ्रम, भगन्दर, उपदंश, दाद, खुजली, व्रण (घाव), अपची [गण्डमाला भेद], दाह, तृष्णा, ऊरुस्तम्भ, आमवात और कटीग्रह (कमरका रह जाना) रोग नष्ट होते हैं।

इसे मण्ड, मद्य, मूंगके यूष, पानी, गिलोय, त्रिफला और बांसेके क्वाथ या स्वरसादिमेंसे व्याधिके अनुकूल अनुपानके साथ सेवन कराना चाहिये।

(व्यवहारिक मात्रा=५–६ रत्ती)

(१८९९) चन्द्राननो रसः

र. सा. सं., र. रा. सुं; र. का. धे., र. चं.। कुष्ठ, रसे. चि.। अ. ९)

सूतव्योमाग्रयस्तुल्यास्त्रिभागो गन्धकस्य च।
काठोदुम्बरिकाक्षीरैः सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥
माषमात्रां गुटीं कृत्वा कुष्ठरोगे प्रयोजयेत्।
देहशुद्धिं पुरा कृत्वा सर्वकुष्ठानि नाशयेत् ॥
एष चन्द्राननो नाम साक्षाच्छ्रीभैरवोदितः॥

पारा, अभ्रक भस्म, चीतेकी छालका चूर्ण, १–१ भाग तथा गन्धक ३ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बनाएं और फिर सबको काठोदुम्बर (कठूमर) के दूधमें अच्छी तरह घोटकर १–१ माशेकी गोलियां बना लीजिए।

श्री भैरव कथित इस "चन्द्रानन" रसको शरीर शुद्धिके पश्चात् समस्त कुष्ठ रोगोमें सेवन कराना चाहिए।

(**अनुपान**—बावचीका क्वाथ)

नोट—र.का.धे. की चन्द्रप्रभावटी नं.१८९१ और यह रस लगभग समान ही हैं। उसमें अभ्रक के स्थानमें मरिच पड़ती है।

(१९००) चन्द्रामृत रसः (र.र., र.का.धे.।रा.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं सूततुल्यञ्च सैन्धवम्।
शमीश्वेतादलद्रावैर्मर्दितं गोलकीकृतम् ॥
नागवल्लीदलैर्वेष्ट्यं पाच्यं पातालयन्त्रके (१)
दिनान्ते ऊर्ध्वलग्नं तं ग्राह्यं भक्ष्यं त्रिगुञ्जकम् ॥
पर्णखण्डेन संयुक्तं मासैकाद्राजयक्ष्मनुत्।
रसश्चन्द्रामृतो नाम ह्यनुपानं मृगाङ्कवत् ॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २भाग और सेंधानमक १ भाग लेकर कज्जली करके शमी और श्वेता (कोयल) के पत्तोंके रसमें घोटकर गोला बना लीजिए, और उस गोलेको नागरवेलके पानो में लपेट कर १ दिन पाताल यन्त्रमें पकाइये और फिर स्वांग शीतल हो जाने पर रसको निकाल लीजिए।

इसे ३ रत्तीकी मात्रानुसार पानके साथ सेवन करनेसे १ मासमें राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है।

इस रसके अनुपान मृगाङ्कवत् है।

नोट—मूल पाठमें "ऊर्ध्वलग्नं तं ग्राह्यं" अर्थात् ऊपर लगे हुवे रसको ग्रहण करे, यह लिखा है परन्तु पाताल यन्त्रमें पकानेसे रस ऊपर नहीं लग सकता इस लिए या तो पातालयन्त्रकी जगह बालुका यन्त्र होना चाहिए अथवा 'ऊर्ध्व लग्नं' की जगह "स्वांगशीतं" होना चाहिए।

(१९०१) चन्द्रामृतवटी

(र. रा. सुं.; भै. र.; र. र.। यक्ष्मा.)

त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम्।
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीक्षीरेण गोलयेत् ॥

१ सममिति पाठभेदः।

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं कार्षिकं शुभम् ।
टङ्कणस्य पलं दत्वा मरिचस्य पलार्द्धकम् ॥
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥
एकैकां वटिकां खादेत् रक्तोत्पलरसप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थरसेन वा ॥
पिप्पल्या मधुना वापि शृङ्गवेररसेन वा ।
हन्ति पञ्चविधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ॥
वातश्लेष्मोद्भवं दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं तथा ।
वातिकं पैत्तिकश्चैव नानादोषसमुद्भवम् ॥
रक्तनिष्ठीवनञ्चापि ज्वरश्वाससमन्वितम् ।
तृष्णां दाहं भ्रमं हन्ति जठराग्निप्रदीपिनी ॥
बलवर्णकरी ह्येषा प्लीहगुल्मोदरापहा ।
आनाहकृमिहृत्पाण्डुजीर्णज्वरविनाशिनी ॥
इयं चन्द्रामृता नाम चन्द्रनाथेन निर्मिता ।
वासागुडूचीभार्गी च मुस्तकं कण्टकारिका ॥
सेवनान्ते प्रकर्त्तव्या गुटिका वीर्यधारिणी ॥

त्रिकटु (सोठ, मिर्च, पीपल) हर्र, बहेड़ा, आमला, चव, धनियां, जीरा, सेधानमक, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म १।-१। तोला, सुहागेकी खील ५ तोले और मिर्च २॥ तोले ले कर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर बकरी के दूधमें घोटकर ९-९ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

श्री चन्द्रनाथ निर्मित ये "चन्द्रामृतवटी" वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, वातज और पित्तज खांसीको तथा ज्वर और श्वासयुक्त खांसी एवं जिस खांसीमें खून आता हो उसे नष्ट करती हैं।

इनके सेवनसे तृष्णा, दाह, भ्रम, तिल्ली, गुल्म, अफारा, कृमि, पाण्डु और जीर्णज्वरका नाश होता तथा जठराग्नि और बल वर्ण की वृद्धि होती है।

अनुपान—नीलकमलका रस, लालकमलका रस, कुलथीका क्वाथ, पीपलका क्वाथ, अदरकका रस और शहदमेंसे किसी एक वस्तुके साथ खा कर ऊपरसे बासा, गिलोय, भारंगी, मोथा और कटेलीका क्वाथ पीना चाहिए।

नोट—सोंठ, मिर्च और पीपल तीनोका चूर्ण समान भाग मिलाकर १ तोला लेना चाहिए।

(१९०२) चन्द्रामृतलौहम्

(र. सा. सं; र. रा. सु.; धन्व.। कास.)

त्रिकटु त्रिफला धान्यं चव्यं जीरकसैन्धवम् ।
दिव्यौषधिहतस्यापि तत्तुल्यमयसो रजः ॥
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥
एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनैव कुलत्थस्वरसेन च ॥
निहन्ति विविधं कासं दोषत्रयसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकश्चैव गरदोषसमुद्भवम् ॥
सरक्तमथनीरक्तं ज्वरश्वाससमन्वितम् ।
भ्रमदाहतृट्शूलघ्नं रुच्यं वह्निप्रदीपनम् ॥
बलवर्णकरं वृष्यं जीर्णज्वरविनाशनम् ।
इदं चन्द्रामृतं लौहं चन्द्रनाथेन निर्मितम् ॥

त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, धनियां, चव, जीरा और सेंधानमकका चूर्ण १-१ भाग तथा मनसिलसे भस्म किया हुवा लोह सबके बराबर लेकर सबको एकत्र खरल करके ९-९ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

प्रातःकाल १-१ गोली लाल कमल या नीलकमलके रस अथवा कुलथीके रसके साथ सेवन करनेसे वातज, पित्तज, विषजन्य, रक्तयुक्त, नीरक्त और त्रिदोषज आदि अनेक प्रकारकी खांसी, श्वास, ज्वर, भ्रम, दाह, तृष्णा, शूल और जीर्ण ज्वरका नाश होता है। तथा रुचि, जठराग्नि और बलवर्ण की वृद्धि होती है।

नोट—त्रिकुटेकी तीनों चीजें समान भाग मिलाकर एक भाग लेनी चाहिएं।

(१९०३) चन्द्रांशु रसः (र.चं., भै.र.।स्त्रीरो.)

रसमभ्रमयो वङ्गं गन्धकं कन्यकाम्बुना।
मर्दयित्वा वटिं कुर्याद् गुञ्जाद्वयप्रमाणतः॥
जीरकाथेन पीतोऽयं रसश्चन्द्रांशुसंज्ञकः।
जरायुदोषानखिलान् योनिशूलं सुदारुणम्॥
योनिकण्डुं स्मरोन्मादं योनिविक्षेपणं तथा।
निराकरोति संतापं चन्द्रांशुर्देहिनां यथा॥

पारद, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, बङ्गभस्म और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर घीकुमारके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इसे जीरेके क्काथके साथ सेवन करनेसे जरायुदोष, योनिशूल, योनिकी खाज, योनिविक्षेप और स्मरोन्माद रोग नष्ट होता है।

(१९०४) चन्द्रोदयो रसः [१]

(र. रा. सुं. । ज्व.; र. र. स. । अ. १२)

रसगन्धौ तथा वङ्गमभ्रकं समभागतः।
मेलयित्वाऽथ वङ्गेन सूतं विमर्दयेत्॥
तत्रैकीकृत्य गन्धाभ्रे पेष्य जम्बीरवारिणा।
सामान्यं पुटमादद्यात्सप्तधा साधितं रसम्॥
कुमार्या चित्रकेणापि भावयित्वाथ सप्तधा।
गुडेन जीरकेणापि ज्वरे जीर्णे प्रयोजयेत्॥
कासे श्वासे कुमार्याऽथ त्रिफलाक्काथयोगतः।
उन्मादं च धनुर्वातममृताक्काथसंयुतः॥
इत्येवं रोगतापघ्नो रसश्चन्द्रोदयाभिधः॥

पारा, गन्धक, वङ्ग और अभ्रकभस्म समान भाग लेकर प्रथम वङ्गको गलाकर उसमें पारा मिलाकर घोट लीजिए तत्पश्चात् उसमें गन्धक और अभ्रक मिलाकर घोटिए और कज्जली हो जाने पर उसे नींबूके रसमें घोटकर टिकिया बना लीजिए और सम्पुटमें बन्द करके साधारण पुटमें फूंक दीजिए। इसी प्रकार नींबूके रसमें घोटकर सात पुट दीजिए। तत्पश्चात् उसे घीकुमार और चीतेके रसकी पृथक् पृथक् सात-सात भावनाएं दीजिए।

इसे ज़ीरेके चूर्ण और गुड़के साथ मिलाकर सेवन करनेसे जीर्णज्वर, तथा कुमारी (घृतकुमार) के रसके साथ देनेसे खांसी और श्वास नष्ट होता है। त्रिफलाके क्काथके साथ देनेसे उन्माद और गिलोयके क्काथके साथ देनेसे धनुर्वातका नाश होता है।

इसका नाम "चन्द्रोदय रस" है।

(मात्रा=२-३ रत्ती)

नोट—१९०५ क्रमाङ्क प्रथमावृत्तिमें लुप्त है, पुस्तकका क्रम यथावत् रखनेके लिए और एक पाठ-क्रममें अन्य औषधिके प्रवेशसे क्रम भंग होनेके भयसे ऐसेही चलने दिया है।

(१९०६) चन्द्रोदयो रसः [२]

(वृ. नि. र.। प्रमे.)

अभ्रकं गन्धकं सूतं वङ्गभस्म समांशकम्।
एलां शिलाजतुं चैव रम्भासारेण मर्दयेत्॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्यात् कामलापित्तनाशनः॥

अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, वङ्ग-भस्म, छोटी इलायचीका चूर्ण और शिलाजीत बराबर बराबर लेकर प्रथम पारे और गन्धकेकी कज्जली बना लीजिए, फिर अन्य औषधें मिलाकर केलेके अर्कमें घोटिए।

इसके सेवनसे २० प्रकारके प्रमेह, कामला और पित्तका नाश होता है।

(मात्रा—३-४ रत्ती। अनुपान—शहद और घी)

(१९०७)चन्द्रोदयो रसः[३](र.रा सुं.।अ.२)

ततस्तस्माद्विनिष्कास्य पारदं तोलयेद्भिषक्।
तत्तुल्यं गन्धकं दत्वा कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः॥
द्रोणाम्बुकणयोर्नीरै मर्दयेच्च दिनद्वयम्।
संशोष्य वालुकायन्त्रे यामानष्टौ ततः पचेत्॥
मन्दमग्निं ततः कुर्यादाद्ये यामचतुष्टये।
ततो द्वितीये यत्नेन तीव्राग्निं प्रयोजयेत्॥
ततः कूप्यां समुद्धृत्य पारदस्यास्य चक्रिकाम्।
तत्पृष्ठलग्नं गन्धं च दूरीकृत्य विचक्षणैः॥
पुनस्तयोरसैरेनं मर्दयेदेकवासरम्।
चतुर्यामं पचेदग्नौ तेन जीर्यति गन्धकः॥
याममेकं परित्यज्य यामेषु त्रिषु बुद्धिमान्।
प्रतियामार्द्धकं कूप्यां क्षिप्त्वा दीर्घं तृणं दृढम्॥
गन्धस्य तेन कर्त्तव्यो जीर्णाजीर्णस्य निर्णयः।
जीर्णे गन्धे विदग्धं स्यादजीर्णे गन्धकान्वितम्॥
जीर्णगन्धं रसं ज्ञात्वा तोलयेत्कुशलो भिषक्।
ततो गन्धं चतुर्थांशं दत्त्वा सूतं विमर्दयेत्॥
पूर्वोक्तयोरसैर्मर्द्य चतुर्यामं च पाचयेत्।
स्वाङ्गशीतलमुत्तार्य विषं कर्षमितं क्षिपेत्॥
दृढं विमर्दयेत्सूतं तयोरेव रसैर्दिनम्।
मन्दाग्निना पचेत्पश्चाच्चतुर्याममतन्द्रितः॥
निर्मुक्तगन्धकस्तर्हि जायते ऽसौ रसेश्वरः।
अन्ते तुलितसूतेन तुल्यमानो यदा भवेत्॥
तदा सिद्धः परिज्ञेयो रसश्चन्द्रोदयो बुधैः।
सद्योऽजीर्णविपाचनो ऽग्निजननो विड्बन्धतद्भ्रान्तिनुत्।
मूत्रस्रावमपाकरोति मदन प्रोद्बोधकर्त्ता रतौ॥
मूर्च्छां हन्ति सहिक्कपु मधुयुतो वल्यःप्रभादार्ढ्यकृत्।
शैत्यं स्वेदहरः प्रमेहमथनश्चन्द्रोदयाख्यो रसः॥
कासे श्वासे फिरंगाख्ये रोगे च परमो हितः।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तामरुचिं च नियच्छति॥

शुद्ध पारा और गन्धक बराबर बराबर लेकर कज्जली बना लीजिये, फिर उसे २ दिन तक द्रोण पुष्पी (गोमा) के रस और पीपलके क्वाथमें घोटिए। तत्पश्चात् उसे सुखाकर कपरमिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर वालुका यन्त्रमें रखकर प्रथम ४ पहर तक मन्दाग्नि और फिर ४ पहर तक तीव्राग्नि दीजिए। इसके पश्चात् शीशीके स्वांग शीतल

होजाने पर उसे तोड़कर भीतरसे शीशीके मुंहमें लगे हुवे रसकी चक्रिकाको निकाल लीजिए और उसके ऊपर जो गन्धक लगी हो उसे खुर्च कर अलग कर दीजिए। अब इसे फिर द्रोणपुष्पी और पीपलके रसमें १ दिन घोटकर उपरोक्त विधिसे ४ पहर तक बालुका यन्त्रमें पकाइए।

बालुका यन्त्रको अग्नि पर चढानेके १ पहर पश्चात् आधे आधे पहरमें शीशीमें एक लम्बा और कडा तिनका (बांसकी सींख आदि) डालकर देखते रहिए। यदि सींख बल उठे तो समझ लीजिए कि गन्धक जीर्ण हो चुका है और अगर सींख को गन्धक लग जाए तो समझिए कि अभी गन्धक जीर्ण नहीं हुवा। इस प्रकार परीक्षा करनेसे जब गन्धकके जीर्ण हो जानेका निश्चय हो जाय तो अग्नि देना बन्द कर दीजिए और शीशीके स्वांग शीतल हो जाने पर उसको तोडकर औषध निकाल लीजिए।

अब इसमें इसका चौथा भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली बनाइये और उसे १ दिन पीपलके क्वाथ तथा द्रोणपुष्पीके रसमें घोटकर बालुका यन्त्रमें उपरोक्त विधिसे ४ पहरकी अग्नि दीजिए और स्वांगशीतल होनेपर शीशीमेंसे औषध निकाल कर उसमें १ कर्ष (प्रतिपल औषधमें १ कर्ष) शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) मिलाकर उपरोक्त दोनो चीजोके रसमें खूब अच्छी तरह घोटकर ४ पहर तक उपरोक्त विधिसे बालुकायन्त्र द्वारा मन्दाग्निपर पाक कीजिए।

इस क्रियासे गन्धक भलीभांति जीर्ण हो जाता है। जब इस प्रकार जारणसे गन्धकका वज़न घट कर केवल पारदका वजनही शेष रह जाय तो चन्द्रोदय रसको सिद्ध समझना चाहिए।

यह "चन्द्रोदय रस" आमको तुरन्त पचाता, अग्निवृद्धि करता, तथा कब्ज, तृष्णा, वमन और मूत्रातिसारको रोकता और कामदेवको उत्तेजित करता है।

इसे शहदके साथ सेवन करानेसे मूर्च्छा और हिचकी नष्ट होती है। यह बलदायक, पुष्टिकारक और कान्तिवर्द्धक तथा शीत, स्वेद और प्रमेह नाशक है। खांसी, श्वास और फिरंग रोगमें अत्यन्त हितकारी है। सैकड़ों वैद्योंसे त्यक्त अरुचि इसके सेवनसे अवश्य नष्ट हो जाती है।

(१९०८) चन्द्रोदयो रसः [४]

(वृ. यो. त.। त. १४७, यो. त.। त. ८०; र. मं.। अ. ९; र. सा. सं., यो. र.; र. चं.; धन्वं., र. र.; र. र. प्र.; र. रा. सु.; वै. र.; भै. र.। वाजीक., र. चिं. म.। अ ८; यो चि म। अ. ७)

पलं मृदु स्वर्णदलं रसेन्द्रं;
पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य।
शोणैश्च कार्पासभवैःप्रसूनैः;
सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः॥
तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे;
मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयञ्च।
पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रै;
ततो रसं पल्लवरागरम्यम्॥
निगृह्य चैतस्य पलं पलानि;
चत्वारि कर्पूररजस्तथैव।
जातीफलं सोपणमिन्द्रपुष्पं;
कस्तूरिकाया इह शाण एकः॥

चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य माषो;
भुक्तोऽहिवल्लिदलमध्यवर्ती।
मदोन्मदानां प्रमदाशतानां;
गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यवश्यम् ॥
माषान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्य-
मानन्ददायीन्यपराणि चात्र ॥
वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयस्तम्भनः।
समस्तगदखण्डनःप्रचुरयोगपञ्चाननः ॥
गृहेषु रसराड्वं वसति यस्य चन्द्रोदयः।
स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्वल्लभः ॥
रतिकाले रतान्ते वा पुनःसेव्यो रसोत्तमः।
अभ्यासात्साधक स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः॥
मानहानिं करोत्येष प्रमदानां तु निश्चितम्।
स्थावरं जङ्गमविषं विषमं विषवारि च ॥
न विकाराय भवति साधकेन्द्रस्य वत्सरात्।
मृत्युञ्जयो यथाऽभ्यासान्मृत्युं जयति देहिनाम्॥
तथाऽयं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥
(दाक्षिणात्या शोणकार्पासद्रवमेव गृह्णन्ति, पाश्चात्यास्तत्पुष्पेणैव यावदार्द्रत्वं मर्दयन्ति। उभयञ्चैव निष्पत्तेरदोषः शास्त्रान्तरेऽस्य-मकरध्वजो नाम।)

सोनेके कण्टकवेधी पत्र (वर्क) १ पल [५ तोले] शुद्ध पारद ८ पल, शुद्ध गन्धक १६ पल लेकर प्रथम सोनेके वर्क पारदमें डालकर घोटिए जब वह उसमें मिल जाएं तो गन्धक मिलाकर कज्जली बनाइये और उसे १-१ दिन लाल कपासके फूलोंके रस और घृतकुमारीके रसमें घोट-कर सुखाकर कपरमिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर* वालुकायन्त्र विधिसे यथाक्रम मृदु, मध्यम और तीव्र अग्नि पर ३ दिन तक पकाइये। फिर स्वांग शीतल हो जानेपर शीशीको तोड़कर उसकी गरदनमें और चारों ओर लगे हुवे अत्यन्त रक्त-वर्ण रसको निकाल लीजिए।

१ 'वल्लो' इति पाठान्तरम्।

१ पल (५ तोले) यह रस, ४ पल कपूर और जायफल, मिर्च और लौङ्गका चूर्ण तथा कस्तूरी ५-५ माशा लेकर भली भांति एकत्र घोटिए। इसीका नाम "चन्द्रोदय" है। किसी किसी ग्रन्थमें इसका नाम "मकरध्वज" भी लिखा है।

इसे १ माशे (या २-३ रत्ती) की मात्रा-नुसार पानमें रखकर खानेसे मनुष्यमें सैकड़ों मदोन्मत्त प्रमदाओंके गर्व को नष्ट करनेकी शक्ति आ जाती है।

इसके सेवनसे वली (शरीरकी झुर्रियां), पलित [बालोका सफेद होना] आदि रोगोका नाश होता और आयु वृद्धि होती है।

जो इस रसको सेवन करते है वह रति समयमें बहुतसी स्त्रियोको प्रसन्न कर सकते हैं। इसे रतिकालमें या समागमके अन्तमें सेवन करनेसे शक्तिका ह्रास नहीं होता और नित्य प्रति सेवन करते रहनेसे सैंकड़ो स्त्रियोके साथ रमण करनेकी शक्ति प्राप्त होती है।

* जिस शीशीमें १ सेर कज्जली समा सके उसमें पाव सेर भरनी चाहिए, अधिक भरनेसे शीशीके फूटनेका भय रहता है।

चन्द्रोदयको एक वर्ष तक नित्य सेवन करने से शरीरमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि फिर उस पर स्थावर और जङ्गम विष, और विषैले जलका प्रभाव नहीं होता।

नोट १—दक्षिण देश वासी वैद्य इसे लाल कपासके फूलोके रसमें घोटकर बनाते है और पश्चिम प्रान्तवासी वैद्य लाल कपासके फूल डाल-कर ही पतला होने तक घोटते है। इन दोनोंही विधियोमें कोई दोष नहीं है।

नोट २—जब तक शीशीमेंसे पीले रङ्गका धुंवा निकलता रहे, तब तक उसका मुंह बन्द न करना चाहिए, जब धुवां निकलना लगभग बन्द हो जाय तब शीशीके मुंहमें खिड़िया मिट्टी या मुलतानी मिट्टी आदिका डाट लगा देना चाहिए। शीशीको यन्त्रसे निकाल कर उसके ऊपरकी कपर मिट्टीको चाकूसे खुरच कर उसे भीगे कपड़ेसे पोंछ कर साफ करना चाहिए और फिर उसे जिस स्थानसे तोड़ना हो उस जगह मिट्टीके तेल (घास-लेट) मे भीगा हुवा डोरा बांधकर उसमें आग लगा देनी चाहिए जब डोरा जल जाय तो शीशीको भीगे कपड़ेसे पोंछ दीजिए, वह वहींसे टूट जायगी, इस प्रकार शीशी तोडनेसे औषधमें कांचके टुकड़े मिलनेका भय नहीं रहता।

शीशीके गलेमें चन्द्रोदयकी गुली (पिण्ड) लगी हुई मिलती है तथा शीशीकी दीवारोमें भी थोड़ा बहुत चन्द्रोदय जमा रहता है, उस सबको सावधानीपूर्वक छुड़ा लेना चाहिए। शीशीकी तलीमें थोडीसी सफेद रङ्गकी राखसी मिलती है, यह सोनेकी कच्ची भस्म होती है, इसे विधिपूर्वक पुट देनेसे स्वर्ण भस्म बन जाती है, अथवा सुहागे आदिके साथ मूषामें रखकर तीव्राग्नि देनेसे पुन: सोना जी उठता है। यदि पूरी सावधानी रक्खी जाय तो प्राय: सबका सब सोना निकल आता है।

चन्द्रोदयके पिण्डके ऊपर पीले रंगकी गन्धक जमी हुई हो तो उसे चाकूसे खुरच कर अलग रखना चाहिए और दम, खांसी, रक्तविकार तथा मस्तक शूलादिमें व्यवहृत करना चाहिए।

यदि शीशीकी तलीमें अधपकी कज्जली रह जाय तो उसे लाल कपास और वड़के अंकुरोंके रसमें घोटकर सुखाकर आतशी शीशीमें भरकर पुनः बालुका यन्त्रमें उपरोक्त विधिसे पकाना चाहिए।)

(१९०९) चपलबद्धरसः (रसे. मं.। अ. ४)

लाङ्गलीकरवीरश्च चित्रकं गिरिकर्णिका।
स्त्रीस्तन्यं टङ्कसौवीरं मूषालेपं तु कारयेत्॥
चपलाद् द्विगुणं सूतं सूताद् द्विगुणकाञ्चनम्।
नष्टपिष्टं तु तत्कृत्वा अन्धमूषागतं धमेत्॥
तत्रस्थं च रसेन्द्रं च खोटं भवति शोभनम्।
नागं शतांशतो विद्धं गुञ्जावर्णं तु जायते॥
तेन नागशतांशेन विद्धं शुल्वारुणं भवेत्।
तेन शुल्वशतांशेन तारं विद्धश्च काञ्चनम्॥
यथा लोहे तथा देहे नान्यथा जायते क्वचित्॥

१ भाग चपल, २ भाग पारद और ४भाग स्वर्ण को एकत्र घोटकर पिट्ठीसी बना लीजिए। तत्पश्चात् लाङ्गली (कलिहारी), करवीर (कनेर), चीता, कोयल, सुहागा और सौवीराञ्जनको स्त्रीके दूधमे पीसकर एक अन्धमूषाके भीतर उसका लेप

करके उसमें उपरोक्त पिट्टीको बन्द करके (तीव्राग्निमें) धमाइये।

इस क्रियासे खोटबद्ध (अग्नि स्थायी) पारद तैयार हो जाता है।

इसका १ भाग १०० भाग सीसेमें (पिघला कर) मिलानेसे सीसा गुञ्जाके समान लाल हो जाता है, और १०० भाग तांबेको पिघला कर उसमें १ भाग यह सीसा मिलानेसे तांबेका रङ्ग लाल हो जाता है और यह तांबा सौ गुनी चांदीको सोना बना सकता है।

इस खोटबद्ध रसका प्रभाव शरीरपर भी ऐसा ही उत्तम होता है जैसा कि स्वर्णादि धातुओं पर।

(१९१०) चपललक्षणगुणाः

(आ. वे. प्र. । अ. १२)

चत्वारश्चपला सिताऽसितहरिच्छोणा प्रभेदैःपुन-
र्मोघौ शोणितशोणकज्जलनिभौ लाक्षावदाशुद्रवात्॥
शेषौ तु द्रवतश्चिरेण सुभगौ तौ शुध्यतःसप्तधा।
कर्कोट्यार्द्रकजम्भलस्य सलिले संस्वेदितौ वा प्लुतौ
प्राथम्याद्रसबन्धिनौ तदुपरि स्यातां तु योगानुगौ
वृष्यौ दोषहरौ बुधैर्निगदितौ माक्षीकभूम्युद्भवौ॥
चतुर्धा चपलः प्रोक्तः कृष्णोऽरुणो हरित्।
वङ्गवत्प्लवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्त्तितः॥
चपल स्फटिकच्छायःषडस्री स्निग्धको गुरुः।
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः॥
अयं तूपरसे कैश्चित्पठितोऽन्यै रसेषु च।
विषोपविषधान्याम्लैर्मर्दितश्चपलस्ततः॥
अन्धमूषागतो ध्मातःसत्वं मुञ्चति कार्यकृत्॥

चपल वर्णभेदसे चार प्रकारका होता है [१] सफेद, [२] काला, [३] हरित् और [४] लाल।

इनमेंसे काले और लालकाले रंगके चपल शीघ्र पिघलने वाले होनेके कारण निष्फल होते हैं। शेष दोनो प्रकारके देरमें पिघलते हैं इस लिए वह उत्तम होते हैं।

उत्तम प्रकारके चपलोंको ककोड़ा, अदरख और जम्बीरी नींबूके रसमें (दोलायन्त्र विधिसे) स्वेदन करने या तपा तपाकर इनमेंसे हरेकमें ७-७ बार बुझानेसे शुद्ध हो जाते हैं।

प्रथम दो प्रकारके (सफेद और काले) चपल पारदके बांधनेमें उपयोगी होते है और दूसरे दोनो प्रकारके अनेक प्रयोगोंमें उपयुक्त होते हैं।

चपल (सोनामक्खीकी कानसे निकलने वाली धातु है) वृष्य और दोषनाशक है।

चूंकि यह धातु वङ्गके समान शीघ्र (चपलता से) पिघल जाती है इसी लिए इसको चपल कहते हैं।

चपल स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल, षट-पहलू या तीनपहलू वाला, चिकना और भारी होता है। यह तीनो दोषोंका नाश करता है, अत्यन्त वृष्य और पारदको बांधनेमें उपयोगी है।

किन्ही आचार्योंने चपलकी गणना उपरसोंमें और किन्हींने रसोंमें की है।

चपलको विष, उपविष और कांजीके साथ घोटकर अन्धमूषामें बन्द करके धमानेसे उसका सत्व निकल आता है।

(१९११) चर्मकुठाररसः (र. का. धे. । कु.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मृतं तीक्ष्णं रसाञ्जनम्।
गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं रसस्यार्द्धं द्विपञ्चकम्॥

कणाधात्रीविडङ्गश्च सितजीरकसंयुतम् ।
गन्धकेन समा शुण्ठी सर्वं भृङ्गाम्बुमर्दितम् ॥
तिलपर्ण्यतिमुण्डीनां स्वरसैर्भावयेत् त्र्यहम् ।
क्षिप्त्वा स्निग्धे पुटे पक्कं पिण्डितं चणकोपमम् ॥
रसश्चर्मकुठारोऽयं भक्षितश्चर्मकुष्ठनुत् ॥२४२॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक, तीक्ष्ण लोहभस्म, रसौत और ताम्रभस्म २-२ भाग तथा दशमूल, पीपल, आमला, बायबिड़ङ्ग और सफेद ज़ीरा आधा आधा भाग और सोंठ २ भाग लेकर सबको ३-३ दिन तक भांगरे और मुण्डीके रस तथा चन्दनके क्काथमें घोटिए तत्पश्चात् उसे चिकनी मिट्टीसे निर्मित सम्पुटमें बन्द करके एक पुट दीजिए और फिर पीसकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इसके सेवनसे 'चर्मकुष्ठ' रोग नष्ट होता है।

(१९१२) चर्मभेदीरसः

(र. का. धे , र. रा. सु. । कु.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं सूतांशं मृतशुल्वकम् ।
सूतपादं विषं चूर्ण्यं पचेद्यावद् द्रुतं भवेत् ॥
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते पातयेत्कदलीदले ।
अभावाद्वा पुटे स्निग्धे ह्यादाय भावयेत् त्र्यहम् ॥
वाकुच्युत्थेन तैलेन निष्कपादं प्रभक्षयेत् ।
त्रिफला वाकुचीबीजं खदिरं राजवृक्षकम् ॥
मूलचूर्णं घृतं क्षौद्रं कर्षैकमनुपाययेत् ।
चर्मभेदी रसो नाम मण्डलाच्चर्मकुष्ठनुत् ॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, ताम्रभस्म १ भाग और चौथाई भाग शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) लेकर कज्जली बनाइये तत्पश्चात् उसे घृतसे चिकने किए हुवे लोहपात्रमें मन्दाग्नि पर पिघलाकर केलेके पत्ते पर ढालकर विधिवत् पर्पटी बना लीजिए[१]। और फिर उसे ३ दिन तक बाबचीके तैलमें घोट लीजिए।

यदि केला न मिल सके तो किसी अन्य वृक्षके चिकने और चौड़े पत्ते पर ढालकर पर्पटी बनानी चाहिए।

इसमेंसे प्रतिदिन १ माषा दवा खाकर ऊपर से त्रिफला, बाबची, खैरसार और अमलतासकी जडका चूर्ण १ कर्ष (१। तो.) लेकर शहद और घीमें मिलाकर पीना चाहिए।

इसके सेवनसे ४० दिनमें चर्मकुष्ठ नष्ट हो जाता है।

(व्यवहारिक मात्रा=२-३ रत्ती)

(१९१३) चर्मान्तको रसः

(र. का. धे.; र. रा. सु. । कुष्ठ.)

शुद्धसूतं विषं गन्धं कुमाक्षीकं शिलाजतु ।
शुल्वं तीक्ष्णं मृतं लोहं तुल्यं घर्मे दिनत्रयम् ॥
काकमाच्या देवदाल्याः कर्कोट्याश्च द्रवैर्दिनम् ।
अन्धयित्वा पुटेच्चाह्नि त्रिरात्रं वा तुषाग्निना ॥
आदाय भावयेच्चाह्नि तैले वाकुचिसम्भवे ।
निष्कार्द्धं चर्मकुष्ठघ्नं खादेच्चर्मान्तकं रसम् ॥
खदिरं वाकुचीबीजं मध्वाज्यं च लिहेदनु ।

शुद्ध पारद, शुद्ध विष (मीठा तेलिया), शुद्ध गन्धक, सोनामक्खी भस्म, शुद्ध शिलाजीत, ताम्रभस्म और तीक्ष्ण लोह भस्म, समान भाग लेकर

१ पर्पटी बनानेकी विधि "रस पर्पटी" में देखिए।

मकोय, देवदाली (बिन्दाल) और ककोड़ेके रसकी एक एक भावना दीजिए (इनका रस डालकर एक एक दिन धूपमें सुखाइये।)

फिर इसे अन्ध मूषामें यन्द करके ३ दिन तक तुषाग्निमें पकाइये और फिर एक दिन बावची के तैलमें घोटकर रखिए।

इसमेंसे प्रतिदिन आधा निष्क [२॥ माशे] खाकर ऊपरसे खैरसार और बावचीके चूर्णको घृत तथा शहदमें मिलाकर चाटनेसे "चर्मकुष्ठ" नष्ट होता है।

(व्यवहारिक मात्रा=२-४ रत्ती)

(१९१४) चातुर्थिकगजाङ्कुशरसः

(र. र. स.। उ. खं. अ. १२, र. रा. सुं.। ज्वर.)

स्याद्रसेन समायुक्तो गन्धकः सुमनोहरः।
हितावली त्रिगुणिता निर्गुण्डीरसमर्दितः॥
सप्तवाराणि तद्योज्यमार्द्रकस्वरसेन तु।
सन्ततादिज्वरं हन्याचातुर्थिकगजाङ्कुशः॥

पारा और गन्धक १-१ भाग तथा हियावली ३ भाग लेकर सबको निर्गुण्डीके रसकी सात भावना दीजिए।

इसे अदरकके स्वरसके साथ देनेसे सन्तत, सतत, तिजारी, चातुर्थिक आदि ज्वर नष्ट होते हैं।

(मात्रा=६-७ रत्ती। प्रात सायं या ज्वर आनेके ३ घण्टे पहिले।)

(१९१५) चातुर्थिकनिवारणरसः

(र. र. स., र. रा सुं.। ज्व)

त्रिभागं तालकं विद्यादेकभागन्तु पारदम्।
तदर्धं गन्धकञ्चैव तदर्धन्तु मनःशिला॥
कारवल्लीदलरसैर्मर्दयेत्प्रहरत्रयम्।
पाचितो वालुकायन्त्रे चातुर्थिकनिवारणः॥

शुद्ध हरताल ३ भाग, पारद १ भाग, गन्धक आधा भाग, और चौथाई भाग मनसिल लेकर सबको ३ पहर करेलेके पत्तोंके रसमें घोटकर सम्पुटमें वन्द करके या शीशीमें भर कर ३ पहर तक वालुका यन्त्रमें पकाइये।

इसके सेवन करनेसे चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर नष्ट होता है। [मात्रा=२-३ रत्ती। अदरकके रसके साथ।]

(१९१६) चातुर्थिकारि रसः [१]

(वृ. यो. त.। त. ६०)

दरदः पारदश्चैव सितमल्लश्च तालकः।
समभागानि सर्वाणि गुन्द्रानीरेण मर्दयेत्॥
मुद्गमात्रां वटीं कृत्वा सितया शीतवारिणा।
गिलेच्चातुर्थिके योज्य सद्य खिच्चडिकाघृतम्॥
भक्षयेत्रिदिनं रोगी ज्वरशाम्यति निश्चितम्॥

शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध पारद, शुद्ध संखिया (सफेद) और शुद्ध हरताल समान भाग लेकर सबको मोथेके रसमें घोटकर मूंगके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें मिश्रीमें मिलाकर ठण्डे पानीके साथ निगलनेके बाद तुरन्त घृत युक्त (मूंगकी) खिचड़ी खानेसे ३ दिनमें चातुर्थिक ज्वर अवश्य नष्ट हो जाता है।

(मात्रा=१ गोली- ज्वर आने के ३-४ घंटे पूर्व।)

(१९१७) चातुर्थिकारि रसः [२]

(र. का. धे. । ज्वर.)

पलद्वयं तालकस्योन्मत्ताद्भिर्मर्दयेत् त्रिधा ।
वटभस्मार्मणे चूर्णमध्ये निक्षिप्य गोलकम् ॥
शरावेण विमुद्र्याथ वह्नियामाष्टकं भवेत् ।
तद् गुञ्जा खण्डसंयुक्ता दुग्धभक्ताशनेन च ॥
चातुर्थिकारिरपरो वमनावमनेन च ॥

२ पल (१० तोले) शुद्ध हरतालको धतूरेके रसकी ३ भावना देकर गोला बना लीजिए और उसे सुखाकर १६ सेर बड़की राखके बीचमें (मिट्टी के हण्डेमें चूनेके बीचमें रखकर उसके मुखको शरावसे ढककर सन्धीको अच्छी तरह बन्द कर दीजिए, और सुखाकर आठ पहरकी अग्नि दीजिए। फिर स्वांग शीतल होने पर गोलेको निकाल कर पीस लीजिए।

इसे १ रत्तीकी मात्रानुसार खांडमें मिलाकर सेवन करने और दूध भात खानेसे चातुर्थिक ज्वर नष्ट हो जाता है।

(१९१८) चातुर्थिकारि रसः [३]

(र. सा. सं.; र. चं.; र. रा. सुं. । ज्वर.)

हरितालं शिलां तुत्थं शङ्खचूर्णञ्च गन्धकम् ।
समांशं मर्दयेत्प्राज्ञःकुमारीरसभावितम् ॥
शरावसम्पुटे कृत्वा पश्चाद्गजपुटे पचेत् ।
कुमारिकारसेनैव वल्लमात्रा वटीकृता ॥
दत्वा शीतज्वरं हन्ति चातुर्थिकं विशेषतः ।
मरिचघृतयोगेन तक्रं पीत्वा चरेद्वटीम् ॥
एतया रमणं भूत्वा ज्वरस्तस्माद्विनश्यति ॥

शुद्ध हरताल, शुद्ध मनसिल, शुद्ध तूतिया, शङ्खका चूर्ण और गन्धक समान भाग लेकर घीकुमारके रसमें घोटकर टिकिया बना लीजिए और उन्हें सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए, तत्पश्चात् उसे घीकुमारके रसमें घोटकर १-१ वल्ल (२-३ रत्ती) की गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे शीतज्वर और विशेषकर चातुर्थिक (चौथिया) ज्वरका नाश होता है।

इन्हें स्याह मिर्च और घृतयुक्त तक्रके साथ सेवन करना चाहिए।

(१९१९) चातुर्थिकारि रसः [४] (भै. र. । ज्वर.)

रसगन्धकलौहाभ्रहरितालं समांशिकम् ।
रसार्द्धप्रमितं हेमं सर्वं खल्लोदरे क्षिपेत् ॥
कृष्णधुस्तूरपयसा मुनिपुष्परसेन च ।
भावयित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥
चम्पकद्रवयोगेन सेवितोऽयं रसेश्वरः ।
चातुर्थिकादीन् निखिलान् निहन्याद्विषमज्वरान्
(त्र्याहिकारिश्चातुर्थिकारिश्च रसो ज्वरविरतौ प्रयोज्य इति वृद्धवैद्याः ।)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और हरिताल १-१ भाग, और आधा भाग स्वर्ण भस्म लेकर कज्जली बना लीजिए फिर उसे काले धतूरेके रस और अगस्तिके फूलोके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलिया बना लीजिए।

इन्हें चम्पकके रसके साथ देनेसे चातुर्थिक (चौथिया) आदि समस्त विषमज्वर नष्ट होते है।

वृद्ध वैद्योका मत है कि चातुर्थिकारि और त्र्याहिकारिरस उस समय देने चाहिएं जब ज्वर चढ़ा हुवा न हो।

(१९२०) चित्रविभाण्डको रसः

(भै. र.; धन्वं. । भगन्द.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम्।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ताम्रं तेन प्रलेपयेत्॥
द्वयोः समं भस्मपूर्णपात्रे रुद्ध्वा विपाचयेत्।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत्॥
जम्बीरस्य रसैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटे पचेत्।
गुञ्जैकं मधुनाज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम्॥
मुसली लशुनं चाम्लं चारनालयुतं पिबेत्।
कर्त्तव्यो मधुराहारो दिवास्वप्नं च मैथुनम्॥
वर्जयेत् शीतलाहारं रसे चित्रविभाण्डके॥

शुद्ध पारद १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली बनाइये और उसे ३ दिन तक घी कुमारके रसमें घोटकर ३ भाग शुद्ध ताम्रके पत्र पर लेप कर दीजिए फिर उस पत्रको राखसे भरी हुई हाण्डीके बीचमें दबाकर २ पहर तक पकाइये, तत्पश्चात् स्वांग शीतल होने पर निकालकर नीबूके रसमें घोटकर टिकिया बनाकर सम्पुटमें बन्द करके गज पुट दीजिए। इसी प्रकार नीबूके रसमें सात पुट देकर पीसकर सुरक्षित रखिए।

इसमेंसे प्रतिदिन १ रत्ती दवा शहद और घीमें मिलाकर खानेके बाद ऊपरसे काञ्जीके साथ मूसली और ल्हसन पीसकर पीना चाहिए।

इसके सेवनसे भगन्दर रोग नष्ट होता है।

इसके सेवन कालमें मधुराहार करना चाहिए और दिनमें सोना, मैथुन करना तथा शीतल खान पानसे परहेज करना चाहिए।

(१९२१) चित्राम्बर रसः

(र. मं.। अ. ६, र. रा. सुं; र. का. धे.। संग्र.)

शुद्धसूतं मृतं चाभ्रं गन्धकं मर्दयेत्समम्।
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते यामं मृद्वग्निना पचेत्॥
चालयेल्लोहदण्डेन ह्यवतार्य विभावयेत्।
त्रिदिनं जीरकैःक्वाथैर्माषैकं भक्षयेन्नरः॥
रसश्चित्राम्बरो नाम ग्रहणीं रक्तसंयुताम्।
शमयेदनुपानेन आमशूलं प्रवाहिकाम्॥

शुद्ध पारा, अभ्रक भस्म और गन्धक समान भाग लेकर कज्जली बना कर उसे घृतसे चिकने किए हुवे लोहपात्रमे १ पहर तक मन्दाग्नि पर पकाइये। पकाते समय लोहेकी डण्डी आदिसे चलाते रहना चाहिए। इसके पश्चात् उसे ३ दिन तक जीरेके क्वाथमें घोटिए।

इस "चित्राम्बर रस" को १ माशेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे रक्तयुक्त संग्रहणी, आमशूल और प्रवाहिका [पेचिश] का नाश होता है।

(व्यवहारिक मात्रा=२—४ रत्ती। अनुपान= जीरे या कुड़ेकी छालका काढ़ा।)

चिन्तामणिचतुर्मुख रसः

(भै. र. धन्व । वा. व्या.)

चतुर्मुखरस सं. १८८१ देखिए।

(१९२२) चिन्तामणिरसगुटिका:

(यो. चि. म.। गुटिका अ.)

सूतं गन्धकटङ्कणं समरिचं शुण्ठी विषं पिप्पली
स्वर्जीक्षारफलान्वितश्च लवणं पञ्चाभ्रकं
जीरकम् ॥
यवक्षारसमं समांशकमिदं खल्वे शनैः शोषयेत्
स्यान्निम्बूकभुजङ्गमार्द्रकरसैः शुद्धेष चिन्तामणिः॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागेकी खील, मिर्च, सोंठ, शुद्ध मीठा तेलिया, पीपल, सज्जीखार [सोडा], त्रिफला, पांचों नमक (सेंधानमक, कालानमक, समुद्र नमक, खारी नमक और काचलवण —कचलौना—), अभ्रक भस्म, जीरा और जवाखार समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर नींबू, पान और अद्रकके रसकी सात सात भावना दीजिए।

(यह आमज्वर और सन्निपातमें प्रयुक्त होता है। मात्रा=१ रत्ती। अनुपान—शहद और अदरकका रस।)

(१९२३) चिन्तामणिरसशुद्धी

[शुद्ध चिन्तामणिः] (यो. चि.। गुटि.)

व्योषं गन्धं रसेन्द्रं विषमपि
लवणं नागवङ्गं तथाभ्रम्।
सारं त्रिक्षारयुक्तं गजकण-
चविकासाग्निकं जीरके द्वे ॥
पथ्या वा चूर्णमेतत्प्रबल
रसयुतं नागवल्लीकरीरम्।
निम्बूकार्द्रै रसादिप्रबल
रसयुतं शुद्धचिन्तामणिःरसः ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सेंधा नमक, सीसा भस्म, वङ्ग (रांग) भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, सज्जीखार, जवाखार, सुहागेकी खील, गजपीपल, चव, चीता, स्याहजीरा, सफेद ज़ीरा और हर्रका समान भाग चूर्ण लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर नागरवेलके पान, करीर, नींबू और अद्रकके रसमें भली भांति घोट कर सुखा लीजिए।

प्रमेह तथा ज्वरमें १—२ रत्तीकी मात्रानुसार शहदके साथ खिलाएं।

(१९२४) चिन्तामणिरसः [१]

(र. सा. सं.; र. रा. सुं.; धन्वं.; भै. र.। ज्वर.)

रसविषगन्धकटङ्कणताम्रयवक्षारकं व्योषम्।
दन्तीफलत्रयश्च क्षौद्रं दत्त्वा शतं वारान् ॥
सम्मर्द्य रक्तिमिता वटिकाःकार्या भिषग्भिःप्राज्ञैः
शुण्ठीपिष्टेन सममेकां द्वे वाऽथवा तिस्रः ॥
सम्प्राश्य नारिकेलीजलमनुपेयं प्रयुञ्जीत।
भेदानन्तरमेव प्रक्षालितभक्ततक्रमुपयोज्यम् ॥
शेषात्सैन्धवजीरं तक्रं भक्तं प्रयोक्तव्यम्।
प्रशमयति सन्निपातज्वरं तथा जीर्णं विषमश्च ॥
प्लीहानश्चाध्मानं कासं श्वासश्च वह्निमान्द्यम्।
चिन्तामणिरसोऽयं किल नियतं भैरवेण निर्दिष्टः॥

शुद्ध पारा, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध गन्धक, सुहागेकी खील, ताम्रभस्म, जवाखार, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), शुद्ध जमालगोटा और हर्र, बहेड़ा, आमला। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर, प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य ओषधियोका महीन चूर्ण मिलाकर

१०० बार शहदमें खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-२ या ३ गोली सोंठके कल्क (पिट्ठी) के साथ खाकर ऊपरसे नारयलका पानी पीना चाहिए।

यदि रोगीको दस्त आ जाएं तब तो इस दवाके बाद चावलोंका धुला हुवा (मांड निकाल कर साफ़ किया हुवा) भात और तक्र खाना चाहिए, अन्यथा तक्रमें सेंधानमक और ज़ीरा मिलाकर इसके साथ भात खाना चाहिए।

इसके सेवनसे सन्निपात, जीर्णज्वर, विषमज्वर, तिल्ली, अफारा, खांसी, श्वास और अग्निमांद्यका नाश होता है।

नोट—औषध बनाते समय शहद इतना लेना चाहिए कि जिसमें सब औषधे मिलाकर गोलियां बन सकें, और उसे एकदम न मिलाकर थोड़ा थोड़ा डालकर घोटते हुवे १०० बारमें मिलाना चाहिए।

(१९२५) चिन्तामणिरसः [२]

(र. सा. सं.; र. का. धे. । ज्वरा.)

रसं गन्धं विषं लौहं धूर्त्तबीजन्तु तत्समम्।
द्वौ भागौ ताम्रवह्न्योश्च व्योषचूर्णञ्च तत्समम्॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम्।
अस्यानुपानेन वटी ज्वरे देया प्रयत्नतः॥
गुञ्जाद्वयां वटीं खादेत्सद्यो ज्वरं व्यपोहति।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थिकविपर्ययम्।
असाध्यञ्चापि साध्यञ्च ज्वरञ्चैवातिदुस्तरम्॥
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च आध्मानेऽनिलसम्भवे।
अतिसारे छर्दिते च अरोचकनिपीडिते॥
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरं व्यपोहति॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया (वछनाग), लौहभस्म और धतूरेके बीज १-१ भाग तथा २-२ भाग ताम्रभस्म और चीतेका चूर्ण, एवं ४ भाग त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य औषधियां मिलाकर जम्बीरी नींबू और अदरकके रसमें खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए। इनमेंसे १-१ गोली जम्बीरी नींबूके गूदे और अदरकके रसके साथ सेवन करनेसे वातज, पित्तज, कफज और सन्निपात ज्वरका नाश होता है। यह गोलियां रोज़ाना, तिजारी और चातुर्थिक विपर्यय इत्यादि अत्यन्त दुःसाध्य ज्वरोंका भी नाश कर देती हैं। इसके सिवाय यह अग्निमांद्य, अजीर्ण, वातज आध्मान, अतिसार, वमन और अरुचिमें भी हितकारी है।

(१९२६) चिन्तामणिरसः [३]

(र. सा. सं.; धन्व.: र. चं.। वातव्या.)

कर्षैकं रससिन्दूरं तत्समं मृतमभ्रकम्।
तदर्धं मृतलौहञ्च स्वर्णशाणं क्षिपेद्बुधः॥
कन्यारसेन सम्मर्द्य गुञ्जामानां वटीश्चरेत्।
अनुपानादिकं दद्याद्बुध्वा दोषबलाबलम्॥
हन्ति श्लेष्मान्वितं वातं केवलं पित्तसंयुतम्।
हृल्लासमरुचिं दाहं वान्तिं भ्रान्तिं शिरोग्रहम्॥

प्रमेहं कर्णनादञ्च ज्वरं गद्गदमूकताम् ।
वाधिर्य्यं गर्भिणीरोगमश्मरीं सूतिकामयम् ॥
प्रदरं सोमरोगञ्च यक्ष्माणं ज्वरमेव च ।
बलवर्णाग्निदः सम्यक् कान्तिपुष्टिप्रसाधकः ॥
चिन्तामणिरसश्चायं चिन्तामणिरिवापरः ॥

रस सिन्दूर १ कर्ष (१। तोला), अभ्रक भस्म १ कर्ष, लोह भस्म आधा कर्ष और स्वर्ण भस्म १ शाण (३।।। माशे) लेकर सबको घी-कुमारके रसमें घोटकर १—१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हे दोप और रोगी तथा रोगके बलाबलका विचार करके उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे वात, पित्तयुक्तवात और कफयुक्त वातका नाश होता है।

यह रस हृल्लास (जी मचलाना), अरुचि, दाह, वमन, भ्रम, शिरोग्रह, प्रमेह, कर्णनाद (कानोमें शब्द होते रहना), ज्वर, गद्गदता, गूंगा-पन, बहिरापन, गर्भिणीके रोग, पथरी, प्रसूतरोग, प्रदर, सोमरोग और राजयक्ष्माका नाश करता है, एवं बल, वर्ण, अग्नि, कान्ति और पुष्टिकी वृद्धि करता है।

यह चिन्तामणि रस चिन्तामणि रत्नके समान ही मूल्यवान औषध है।

नोट—यह रस लगभग चतुर्मुख रस सं. १८८१ के समानही है।

(१९२७) चिन्तामणिरसः [४]

(भै. र. हृद्रोग)

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं लौहं वङ्गं शिलाजतु ।
समं समं गृहीत्वा च स्वर्णं सूताङ्घ्रिसम्मितम् ॥
स्वर्णस्य द्विगुणं रौप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
चित्रकस्य द्रवेणापि भृङ्गराजाम्भसा ततः ॥
पार्थस्याथ कषायेण सप्तकृत्वो विभावयेत् ।
ततो गुञ्जामिताः कुर्याद्वटीश्छायाप्रशोषिताः ॥
एकैकां दापयेदासां गोधूमक्काथवारिणा ।
हृद्रोगान्निखिलान्हन्ति व्याधीन्फुप्फुसजानपि॥
प्रमेहान् विंशतिं श्वासान् कासानपि सुदुस्तरान्
बलपुष्टिकरो हृद्यो रसश्चिन्तामणिः स्मृतः ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, बङ्ग भस्म और शिलाजीत १—१ भाग, चांदी भस्म आधा भाग और स्वर्ण भस्म चौथाई भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धकको एकत्र घोटकर कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य औषधें मिलाकर चीतेके काथ, भांगरेके स्वरस और अर्जुनके क्काथकी पृथक् पृथक् सात सात भावना देकर १—१ रत्तीकी गोलियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

इन्हे गेहूंके क्काथके साथ सेवन करनेसे समस्त हृद्रोग फुप्फुस रोग, बीस प्रकारके प्रमेह, भयङ्कर श्वास और खांसीका नाश तथा बल पुष्टिकी वृद्धि होती है।

(१९२८) चिन्तामणिरसः [५]

(र. सा. सं. । ज्वर)

हाटकं रजतं ताम्रं मुक्ता गन्धकपारदौ ।
त्रिकटु कुनटी चैव कस्तूरी च पृथक् पृथक् ॥
जलेन वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
चिन्तामणिरसो ह्येष ज्वराद्यानां निकृन्तनः ॥

स्वर्ण भस्म, चांदी भस्म, ताम्र भस्म, मोती, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च

और पीपल), तथा मनसिल और कस्तूरी बराबर बराबर लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, और फिर अन्य ओषधियोका महीन चूर्ण मिलाकर पानीसे घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनाइये।

इसके सेवनसे ८ प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(१९२९) चिन्तामणिरसः [६]

(भै. र.; र. रा. सुं.; र. का. धे.। ज्वर.; यो. त.। त. २०, वृ.यो.त.। त. ५९, रसें. चि.। अ.९)

सूतं गन्धकमभ्रकं समलवं सूतार्धभागं विषम्।
तत्त्र्यंशं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम्॥
पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिजनितैर्निक्षिप्य खाते पुटम्।
दत्त्वा कुक्कुटसंज्ञकं सहदलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत्॥
भागार्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतम्।
गुञ्जानागरसिन्धुचित्रकयुतो सर्वज्वरान्नाशयेत्॥
शूलं च ग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविताम्।
तापे सेचनकारिणां गदवतां सूतस्य चिन्तामणेः
अयमेव रसो देयो मृतकल्पे गदान्तरे।
सन्निपाते तथा वाते त्रिदोषे विषमज्वरे॥
अग्निमान्द्ये ग्रहण्याश्च शूले वातिसृतौ पुनः।
शोथे दुर्नाम्नि चाध्माने वाते सामे नवज्वरे॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्म १-१ भाग, शुद्ध मीठा तेलिया आधा भाग तथा शुद्ध जमालगोटा १॥ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधें मिलाकर नींबूके रसमें घोटकर गोला बनाइये और उसे सुखाकर नागरवेलके पानमें लपेटकर सम्पुटमें बन्द करके कुक्कुट पुटमे फूंक दीजिए। पश्चात् स्वांगशीतल होने पर निकालकर पानो समेत पीसकर उसमें आधा आधा भाग शुद्ध जमालगोटा और शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर एकत्र घोटकर रखिए।

इसे १ रत्तीकी मात्रानुसार सोंठ, सेंधानमक और चीतेके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करनेसे समस्त प्रकारके ज्वर, शूल, संग्रहणी और उदर विकार नष्ट होते है।

इस रसको मृत्युके समान भयङ्कर सन्निपात, वायु, विषमज्वर, अग्निमांद्य, ग्रहणी, शूल, अतिसार, शोथ, बवासीर, अफारा, आमवात [गठिया] और नवीन ज्वर इत्यादि अन्य रोगोमें भी व्यवहार करना हितकारी है।

इसके सेवनसे यदि ताप अधिक हो तो शीतल जलकी धार (शिरपर) डालनी चाहिए। (अथवा कांजीमें भीगी हुई चादर उढानी चाहिये।)

पथ्य—दही भात।

(अनुपान—शहद। या रोगोचित अन्य क्राथादि।)

(१९३०) चिन्तामणिरसः [७]

(र. सा. सं.। ज्व.)

तालकं शुल्वकं चूर्णं शिखिग्रीवं समांशिकम्।
संपिष्य कारयेत्सर्वं चक्रिकासन्निभं शुभम्॥
शरावपिहितं रात्रौ पचेद्गजपुटेन तु।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य भक्षयेन्माषमात्रकम्॥
शर्करासहितं सेव्यं सर्वज्वरहरं परम्॥

शुद्ध हरिताल, ताम्रभस्म, वे बुझा चूना और शुद्ध नीला थोथा समान भाग लेकर पीसकर टिकिया बनाइये और उन्हें सम्पुटमें बन्द करके

रात्रिके समय गजपुटमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् स्वांग शीतल होनेपर निकालकर पीसकर सुरक्षित रखिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। (व्यवहारिक मात्रा=२ रत्ती। ज्वर आनेसे ३-४ घण्टे पहिले दे।)

(१९३१) चिन्तामणिरसः [८]

(र. सा. सं.। ज्वराति.)

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं गन्धकं प्रतिकार्षिकम्।
चूर्णयेद्द्विपकर्षार्द्धं विषार्द्धं तिन्तडीफलम्॥
मर्दयेत्खल्लमध्ये तु चाम्लेन गोलकीकृतम्।
गर्भं षडङ्गुलं कुर्यात्सर्वतो वर्त्तुलं शुभम्॥
नागवल्ल्याः क्षिपेत्पत्रमादौ पात्रे च गोलकम्।
आच्छाद्य तच्च पात्रेण रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सपत्रञ्च विशेषतः।
कर्षार्द्धं मरिचं दत्वा कर्षार्द्धं तिन्तडीफलम्॥
गुञ्जामितां वटीं कुर्याच्चिन्तामणिरसो महान्।
अतिसारे त्रिदोषोत्थे संग्रहग्रहणीगदे।
अनुपानं विधातव्यं यथादोषानुसारतः॥

शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक १-१ कर्ष [१। तोला], शुद्ध मीठा तेलिया आधा कर्ष, और तिन्तिडीकका चूर्ण चौथाई कर्ष लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाइये तत्पश्चात् अन्य ओषधियां मिलाकर नींबूके रसमें घोटकर गोला बनाइये। फिर छ अंगुल गहरे गोल पात्रमें नागरवेलके पान बिछाकर वह गोला रखिए और उसे पानोसे ढककर पात्रका मुख बन्द करके उसपर ३-४ कपरमिट्टी करके सम्पुट बनाकर गजपुटमें फूंक दीजिए। जब सम्पुट स्वांगशीतल हो जाय तो उसमेंसे औषधको निकालकर उसमें आधा आधा कर्ष स्याह मिर्च और तिन्तड़ीकका चूर्ण मिलाकर उन पानों समेत पीसकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इसे दोषानुकूल अनुपानके साथ त्रिदोषज अतिसार और संग्रहणीमें देना चाहिए।

(१९३२) चिन्तामणिरसः [९]

(यो.र.; र.रा. सु.। यक्ष्मा., वै.क.द्रु। स्क. २)

रसेन्द्रवैक्रान्तकरौप्यताम्रं
सलोहमुक्ताफलगन्धहेम।
त्रिर्भावितं चाऽऽर्द्रकभृङ्गवह्नि-
रसैरजागोपयसा तथैव॥
अर्शःक्षयं कासमरोचकञ्च
जीर्णज्वरं पाण्डुमपि प्रमेहान्।
गुञ्जाप्रमाणं मधुमागधीभ्याम्
लीढं निहन्याद्विषमं च वातम्।
चिन्तामणिरिति ख्यातः
पार्वत्या निर्मितः स्वयम्॥

शुद्ध पारा, वैक्रान्त भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, लोह भस्म, मोती भस्म, शुद्ध गन्धक और स्वर्ण भस्म प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बनाइये, फिर अन्य औषधें मिलाकर अद्रकके स्वरस, भांगरेके रस, चीतेके क्वाथ तथा गाय और बकरीके दूधकी ३-३ भावनाएं दीजिए।

पार्वती निर्मित इस 'चिन्तामणि रस'को १ रत्तीकी मात्रानुसार शहद और पीपलके चूर्णके साथ सेवन करनेसे ववासीर, क्षय, खांसी, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डु, प्रमेह, विषमज्वर और वायुका नाश होता है।

(१९३३) चिन्तामणिरसः [१०]

(र. र. स। उ. खं. अ. १८)

सूतेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य
कोरण्टनिम्बूत्थरसैर्दिनं तत्।
चिञ्चोद्भवक्षाररसेन चैकं
दिनञ्च गोलं रविसम्पुटस्थम्॥
लिप्त्वा मृदा शुष्कमतीव कृत्वा
साम्रुद्रयन्त्रेण पुटं ददीत।
उद्धृत्य शीतं रसपादभागं
प्रक्षिप्य गन्धं विपचेन्मनाक् च॥
विषं च दत्वा रसपादभागं
लोहस्य पात्रेऽथ कृशानुतोयैः।
रसस्तु चिन्तामणिरेष उक्तो
वातारितैलेन समाक्षिकेण॥
वल्लेन मानं प्रददीत चाम्लं
तैलं च शीतं परिवर्जयेच्च।
आध्मानगुल्मौ च विबन्धशूले
तूनीप्रतूत्न्यौ विलयं प्रयान्ति॥

शुद्ध पारा १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर कज्जली बनाकर उसे पिया वांसा (काला वांसा)के रस, नींबूके स्वरस और इमलीके खारके पानीमें १-१ दिन घोटकर गोला बनाकर सुखाकर उसे तांबेके सम्पुटमें बन्द करके उसके ऊपर कपर मिट्टी करके अच्छी तरह सुखा लीजिए और उसे लवण यन्त्रमें (२ पहर तक) पकाइये, पश्चात् सम्पुटके स्वांग शीतल हो जाने पर उसमेंसे औषध को निकालकर उसमें पारेसे चौथाई गन्धक और शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर ज़रा देर मन्दाग्नि पर लोहपात्रमें पकाइये। और फिर (एक दिन) चीतेके काथमें घोटिए।

इसे १ वल्ल (२-३ रत्ती) की मात्रानुसार अरण्डीके तेल और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे गुल्म, तूनी, प्रतूनी और आध्मान रोगका नाश होता है।

अपथ्य—खट्टे पदार्थ, तेल और ठण्डी चीजें।

(१९३४) चिन्तामणिरसः [११] (र. चं। ज्व.)

रसभागो भवेदेको गन्धश्च द्विगुणं भवेत्।
टङ्कणस्य त्रयो भागाःशृङ्गवेरं चतुर्गुणम्॥
मरीचं पञ्चभागञ्च षड्भागा च हरीतकी।
जैपालं सप्तभागं स्यात् सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥
भृङ्गराजरसेनैव खल्वे निक्षिप्य मर्दयेत्।
चणप्रमाणा वटिका गुडेन सह भक्षयेत्॥
उष्णं सेकादिकं कुर्यादुष्णं वारिपिबेन्मुहुः।
आमान्तं रेचनं कुर्यादजीर्णज्वरनाशनम्॥
जलोदरं कामलाञ्च शोफशूलविनाशनम्।
रसश्चिन्तामणिःख्यातःशूलपाण्डूदरं हरेत्॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सुहागेकी खील ३ भाग, सोंठका चूर्ण ४ भाग, मिर्चका चूर्ण ५ भाग, हरंका चूर्ण ६ भाग और शुद्ध जमालगोटा ७ भाग लेकर महीन चूर्ण करके भांगरेके रसमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

(प्रातःकाल) एक गोली गुडके साथ खाकर ऊपरसे बारबार उष्ण पानी पीना और पेट पर सेक करनी चाहिए। इससे विरेचन होकर आम निकल जाती है और अजीर्ण, ज्वर, जलोदर, कामला, सूजन, शूल, पाण्डु और उदर रोगोका नाश होता है।

(१९३५) चिन्तामणिरसः [१२]

(र. का. धे., भै. र.; वै. र. र. चं.; र.सा.सं.; र. रा. सुं. । ज्वर, र. मं. । अ. ६; रसे. चि. म. । अ. ९)

रसं गन्धं मृतं शुल्वं मृतमभ्रं फलत्रिकम्।
त्र्यूषणं बीजजैपालं खल्वे विमर्दयेत् ॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद्वस्त्रगालितम्।
चिन्तामणिरसो ह्येष त्वजीर्णे शस्यते सदा ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलेषु शस्यते।
गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा देयमार्द्रकवारिणा ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल) और शुद्ध जमालगोटा समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए। फिर अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर द्रोणपुष्पी [गूमा] के रसमें घोटकर सुखाकर कपड़ेमें छान लीजिए।

इसे १ या २ रत्तीकी मात्रानुसार अद्रकके रसके साथ सेवन करनेसे अजीर्ण, आठ प्रकारके ज्वर, समस्त प्रकारके शूल और आम रोग नष्ट होते है।

(१९३६) चिन्तामणिवटिका (र.का.धे.।ज्वर.)

लवङ्गं चित्रकं शुण्ठी जैपालं च चतुःसमम्।
टङ्कणं च प्रदातव्यं वृद्धदारु च कार्षिकम् ॥
सूतश्च गन्धगरलमरिचं मेलयेत्समम्।
दन्तीद्रवैः प्रकर्त्तव्यं भावना त्रितयं तथा ॥
माषमात्रा प्रकर्त्तव्या वटिका ज्वरनाशिनी।
वटी त्रयश्च पूर्वाह्णे शीतं तोयं पिबेदनु ॥
जीर्णज्वरप्रशमनी पथ्यादेव नियच्छति ॥

लौङ्ग, चीता, सोंठ, शुद्ध जमालगोटा, सुहागे की खील, विधारा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया और स्याह मिर्चका चूर्ण बराबर बराबर लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिला कर दन्तीके क्वाथकी तीन भावना देकर १-१ माशेकी गोलियां बना लीजिए।

प्रातःकाल शीतल जलके साथ ३ गोली खाने और पथ्य पालन करनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है।

(व्यवहारिक मात्रा=४-६ रत्ती)

(१९३७) चुम्बकः (आ. वे. प्र. । अ. ८)

स तु पाषाणजातिः उक्तश्च—

कान्तलोहाश्मभेदाः स्युश्चुम्बकभ्रामकादयः।
चुम्बकःकान्तपाषाणोऽयस्कान्तो लोहकर्षकः॥

अथ गुणाः—

चुम्बको लेखनः शीतो मेदोविषजरापहः।
कण्डूपाण्डूदरक्लैब्यमोहमूर्च्छादिरोगहृत् ॥

अथास्य शोधनमुपयोगश्च—

सौभाञ्जनरसे साम्लवर्गे दोलागतो दिनम्।
पाचितःशुध्यते कान्तपाषाणःपारदोपकृत् ॥

'चुम्बक' एक प्रकारका पत्थर होता है, जैसा कि कहा गया है कि "कान्तलोह, चुम्बक और भ्रामक आदि पाषाण भेद हैं। चुम्बक, कान्त-पाषाण, अयस्कान्त और लोहकर्षक, यह सब एक ही पदार्थके नाम हैं।"

गुण—चुम्बक लेखन, शीतल, मेद, विष और जरानाशक, तथा खुजली, पाण्डु, उदररोग, क्षीणता, मोह और मूर्च्छानाशक है।

शोधन—चुम्बक पत्थरको १ दिन दोला-यन्त्र विधिसे अम्लवर्ग (अम्लवेत, जम्बीरी नींबू, बिजौरा नींबू, चूका, नारंगी, तिन्तडीक, इमलीका फल, कागजी नींबू, दाड़िम और करोंदा) युक्त सहंजनेके रसमें पकानेसे वह शुद्ध हो जाता है।

कान्त पाषाण [चुम्बक] पारदकी शक्तिको बढ़ाता है।

(१९३८) चूडामणिरसः [१]

(र. चं., र. सा सं. । ज्वर.)

मृतं सूतं प्रवालश्च स्वर्णं तारं च वङ्गकम्।
शुल्वं मुक्तां तीक्ष्णमभ्रं सर्वमेकत्र योजयेत् ॥
जलेन पिष्ट्वा वटिका कार्या वल्लप्रमाणतः।
धातुस्थं सन्निपातोत्थं ज्वरं विषमसम्भवम् ॥
कामशोकसमुद्भूतं त्रिदोषजनितं तथा।
कासं श्वासश्च विविधं शूलं सर्वाङ्गसम्भवम् ॥
शिरोरोगं कर्णशूलं दन्तशूलं गलग्रहम्।
वातपित्तसमुद्भूतं ग्रहणीं सर्वसम्भवाम् ॥
आमवातं कटीशूलमग्निमान्द्यं विषूचिकाम्।
अर्शांसि कामलां मेहं मूत्रकृच्छ्रादिकञ्च यत् ॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान्।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिकीर्त्तितः ॥

पारद भस्म (रस सिन्दूर), मूंगा भस्म, स्वर्ण भस्म, चांदी भस्म, वङ्ग भस्म, ताम्र भस्म, मोती भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म और अभ्रक भस्म समान भाग लेकर पानीसे घोटकर २—२ या ३—३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

श्री शिवोक्त यह चूडामणि रस धातुगतज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, काम और शोकजनित ज्वर, खांसी, श्वास, सर्वाङ्गमें उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके शूल, शिरोरोग, कर्ण शूल, दन्त शूल, गलग्रह, वातपित्तज तथा सन्निपातज संग्रहणी, आमवात, कटिशूल, अग्निमांद्य, विषूचिका, बवासीर, कामला, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि समस्त रोगोंको अत्यन्त शीघ्र नष्ट करता है।

(१९३९) चूडामणिरसः [२] (भै. र. । यक्ष्मा.)

द्विनिष्कं रससिन्दूरं तदर्द्धं हेमजारितम्।
निष्कद्वयं गन्धकञ्च मर्दयेच्चित्रकद्रवैः ॥
कुमारिकाद्रवैर्यामं छागदुग्धे त्रियामकम्।
मुक्ताविद्रुमवङ्गानां निष्कं निष्कं विमिश्रयेत् ॥
गोलकं पूरयेद्भाण्डे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ भक्षयेद्रक्तिका द्वयम् ॥
मधुना क्षयरोगघ्नं वातपित्तसमुद्भवम्।
अजाघृतञ्चानु पिबेच्छर्करामधुसंयुतम् ॥

रस सिन्दूर २ निष्क, स्वर्ण भस्म १ निष्क (५ माशे) और शुद्ध गन्धक २ निष्क। सबको १ पहर तक चीतेके क्वाथ और घृतकुमारीके रसमें तथा ३ पहर पर्यन्त बकरीके दूधमें घोटकर उसमें १—१ निष्क मोती भस्म, मूंगा भस्म और वङ्ग भस्म मिलाकर गोला बना लीजिए और उसे

सम्पुटमें बन्द करके गटजपुकी अग्नि दीजिए। स्वांगशीतल होनेपर निकालकर चूर्ण कर लीजिए।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार शहदमें खिलाकर ऊपरसे मिश्री और शहदयुक्त बकरीका घी पिलाने से वातपित्तज क्षयरोग नष्ट होता है।

(१९४०) चूडामणिरसः [३] [बृहद्]

(र. सा. सं. । ज्वर)

कस्तूरिकाविद्रुमरौप्यलौहं
तालं हिरण्यं रसभस्म दद्यात्।
सुवर्णसिन्दूरलवङ्गमुक्ता
चोचं घनं माक्षिकराजपट्टम्॥
गोक्षूरजातीफलजातिकोषं
मरिचकर्पूरकतुत्थकञ्च।
प्रगृह्य सर्वं हि समं प्रयत्ना-
दथाश्वगन्धां द्विगुणं हि वैद्यः॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकंमुनिसंख्यया।
निर्गुण्डीफञ्जिकावासारविमूलं त्रिकण्टकैः॥
तद्वीर्यं कथयिष्यामि वातिकं पैत्तिकं ज्वरम्।
कफोद्भवं द्विदोषोत्थं त्रिदोषजनितन्तथा॥
सन्ततं सततं हन्ति तृतीयकचतुर्थकौ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च विषमं भूतसम्भवम्॥
नाशयेदचिरादेव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिभाषितः॥

कस्तूरी, मूंगा भस्म, चांदी भस्म, लौह भस्म, हरिताल भस्म, सोना भस्म, रस सिन्दूर, स्वर्ण सिन्दूर, लौङ्ग, मोती, दारचीनी, अभ्रक भस्म, सोना मक्खी भस्म, गजपट्ट भस्म, गोखरु, जायफल, जावित्री, स्याह मिर्च, कपूर, तूतिया [शुद्ध या भस्म] सब एक एक भाग और असगन्धका चूर्ण २ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके संभालूके रस, भारङ्गीके क्काथ, बासेकी जड़के रस, आककी जड़के रस और गोखरुके रसकी अलग अलग सात सात भावना दीजिए।

श्री शिवकथित यह "चूडामणि" रस वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, सन्निपातज, सन्तत, सतत, इकतरा, तिजारी, चौथिया, विषमज्वर और भूताभिषङ्ग ज्वरका अत्यन्त शीघ्र नाश करता है।

(मात्रा—२ रत्ती। उचित अनुपानसे दें।)

(१९४१) चूलिकावटी (भै. र. । उदरा.)

रसो गन्धो विषं तालं त्रिकटु त्रिफला तथा।
टङ्कनं समभागञ्च जयपालश्चतुर्गुणम्।
भृङ्गराजरसेनाथ केशराजरसेन वा।
मधुना वटिका कार्या गुञ्जाद्वयमिता शुभा॥
चूलिकाख्या वटी ख्याता शोथोदरविनाशिनी।
कामलां पाण्डुरोगञ्च आमवातं हलीमकम्॥
हन्याद्भगन्दरं कुष्ठं प्लीहानं गुल्ममेव च॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध हरताल, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेडा, आमला और सुहागेकी खील १—१ भाग तथा शुद्ध जमाल गोटा सबसे चार गुना लेकर महीन चूर्ण करके, काले या सफैद भांगरेके रसमें घोटकर, शहदमें मिलाकर २—२ रत्तीकी गोलियां बना लिजिए।

यह 'चूलिकावटी' शोथोदर, कामला, पाण्डु, आमवात, हलीमक, भगन्दर, कुष्ठ, तिल्ली और गुल्म नाशक है।

(मात्रा १ गोली। अनुपान शीतल जल। यह तीव्र रेचक है।)

(१९४२) **चैतन्यभैरवो रसः**

(र. का. धे.। ज्वर; र. सं. क.। उ. ४)

सूतं गन्धं शिलां तालं मर्द्यं निम्बुकजैर्द्रवैः।
लिप्त्वा तेनार्कपत्राणि यन्त्रे भस्माह्वये क्षिपेत्॥
यामे द्वे[1] ज्वालयेदग्निं स्वांगशीतं समुद्धरेत्।
विषोषणे तुरीयांशेन कृत्वा वल्लमिता गुटी॥
देवदालीरसैर्बद्ध्वा रसोऽयं भैरवाभिधः।
दत्त्वार्द्रकरसैः सर्वं सन्निपातविघातकृत्॥
भूमौ गतं विसंज्ञं च शीतार्तं तन्द्रितं नरम्।
तत्क्षणं बोधयेद् दाहे कुर्याच्छीतोपचारकान्॥

पारा, गन्धक, मनसिल और हरताल समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, पश्चात् उसमें अन्य औषधें मिलाकर नींबूके रसमें अच्छी तरह घोटिए और सबके बराबर ताम्रके बारीक पत्रो पर उसका लेप करके उन्हें कपड़मिट्टी की हुई एक हांडीमें रखिए और उनके ऊपर शराव ढककर सन्धिको गुड़चूनेसे बन्द कर दीजिए, इसके पश्चात् उस हाण्डी में कपड़छन की हुई राख अच्छी तरह दाब दाबकर भरिए और उसके मुहपर शराव ढककर उस पर कपरमिट्टी कर दीजिए। जब कपड़मिट्टी सूख जाय तो हाण्डीको चूल्हेपर चढ़ाकर २ पहर (मतान्तरसे ८ पहर) की अग्नि दीजिए। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल हो जाने पर उसके भीतरसे औषधको निकालकर उसमें उससे चौथाभाग शुद्ध मीठातेलिया और स्याह मिर्चका चूर्ण मिलाकर देवदालीके रसमें घोटकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें अदरकके रसके साथ देनेसे समस्त प्रकारके सन्निपात और शीत नष्ट होते हैं, तथा रोगी मूर्च्छित होकर भूमिमें गिर गया हो तो उसकी भी मूर्च्छा जाती रहती है; एवं तन्द्रा नष्ट होती है।

यदि इसके सेवनसे दाह हो तो शीतलोपचार करना चाहिए।

(१९४३) **चैतन्योदयरसः** (आ.वे.वि.।५६अ.)

हेमाभ्रं मौक्तिकं सूतं गन्धकं जतुकायसी।
तुगाक्षीरं शशाङ्कञ्च भावयित्वा वराम्भसा॥
रक्तिमाना वटीःकृत्वाच्छायायां परिशोषयेत्।
शतावर्य्यम्भसा शान्त्यै तत्वोन्मादस्य पाययेत्॥

स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, मोती भस्म, पारद, गन्धक, शिलाजीत, लोहभस्म, वंसलोचन और कपूर। समान भाग लेकर त्रिफलेके काथमें घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

इन्हें शतावरीके रसके साथ देनेसे "तत्वोन्माद" नष्ट होता है।

इति चकारादिरसप्रकरणम्।

[1] "यामाष्टौ" पाठभेद.। अन्य ग्रन्थोंमें आठ पहर पकाना लिखा है।

अथ चकारादिमिश्रप्रकरणम् ।

(१९४४) चित्रकतक्रम्

(ग. नि. । अर्श ४, यो. र. । अर्श.)

त्वचं चित्रमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भे प्रलेपयेत् ।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ॥

चीतेकी जड़की छालको पीसकर घड़ेके भीतर लेप करके उसमें जमाया हुवा दही अथवा उस दहीका तक्र पीनेसे बवासीरका नाश होता है ।

(१९४५) चोपचीनीवाष्पः (वृ.यो.त.त.९१)

द्विपोत्थरास्नाशकलाम्रयुग्म-
मम्भस्तुलायां पच पादहीने ।
जलेऽथ संस्वेद्य रोगिणं तद्
वाष्पैरिदं विल्वयुगं च पाययेत् ॥
कुटीप्रवेशस्य विधिं समाचरे-
च्छौचान्नपानेषु भजेत्तदम्भः ।
गोधूमभक्ष्याज्यमधूनि शाली-
नद्यादनप्रावृतदेह एव ॥
चतुर्दशाहान्निरुजो बलत्वे,
सप्ताहमेनश्च विधिं निषेवेत् ।
जलोद्धृतं तं शकलौघमद्या-
च्चूर्णीकृतं कर्षमितं घृतेन ॥
अल्पान्नमश्नल्लवणादि योग-
मम्लं त्यजेन्मासचतुष्टयश्च ॥
व्यायामवर्जी बलवान्हियावता
तावद्भवेन्मारुतयोगजुष्टः ॥
अशेषवातोद्भवरोगसंघ-
वातास्रलिङ्गव्रणकुष्ठकार्श्यम् ।
जयेच्च धातून्विदधातिवृद्धा
न्विशेषतः सन्धिरुजं ग्रहश्च ॥

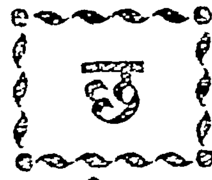
रास्ना और चोपचीनीके टुकडे २-२ पल लेकर १०० पल (६। सेर) पानीमें बरतनका मुंह बन्द करके पकाइये, जब चौथाई पानी जल जाय तो उसमें से २ पल (१० तो०) पानी रोगीको पिलाइये और रोगीको बिना बिस्तर बिछी चारपाई पर नंगा लिटाकर उसे कपड़ेसे अच्छी तरह ढांक दीजिए, कपड़ा चारपाईके चारों ओर भूमितक लटकता रहना चाहिए। अब उस काथको तंगमुहवाले तीन बरतनोमें करके एक एक बरतन रोगीकी कमर, गरदन और पैरोके नीचे रख दीजिए। और ध्यान रखिए कि रोगीको हवा न लगने पाये। जब अच्छी तरह पसीना आ जाय और भाप निकलनी बन्द हो जाय तो पसीना पोछ डालिए।

काथमें जो चोपचीनी और रास्ना रह जाय उसे सुखाकर चूर्ण करके रखिए और प्रतिदिन रोगीको १ तोला चूर्ण घीमें मिलाकर खिला दिया कीजिए।

शौच और अन्न पानादिमें भी उपरोक्त विधि से बने हुवे काथका ही प्रयोग करना चाहिए। पथ्यमें शाली चावल, गेहूं, घी और शहद इत्यादि का सेवन करना और कुटिप्रावेशिक समस्त विधिका पालन करना तथा हवासे बचना चाहिए।

इस प्रकार १४ दिन इस विधिका पालन करनेसे वायुके समस्त रोग, वातरक्त, घाव, कुष्ठ, कृशता, और विशेषत: गठिया का नाश होता तथा वृद्धोमें धातुवृद्धि होती है। रोग नष्ट होनेके पश्चात् भी सात दिन तक उपरोक्त चिकित्सा और करनी चाहिए। एवं ४ मास तक अल्पान्न भोजन, लवण और खटाईसे परहेज करना चाहिए और जब तक बल न आ जाए व्यायाम न करना चाहिए।

॥ इति चकारादि मिश्रप्रकरणम् ॥



अथ छकारादिकषायप्रकरणम्।

(१९४६) छर्दिनिग्रहणो कषायदशकः

(च. सं. । सू स्था. अ. ४)

जम्ब्वाम्रपल्लवमातुलुङ्गाम्लबदरदाडिम-यवयष्टिकोशीरमृल्लाजा इति दशेमानि छर्दि-निग्रहणानि भवन्ति ॥२८॥

जामनके पत्ते, आमके पत्ते, बिजौरा नीबू, बेर, दाडिम, जौ, मुलैठी, खस, मिट्टी (पीली मिट्टी) और धानकी खील। यह दश औषधियां वमन (उल्टी-कै) को रोकने वाली हैं।

(१९४७) छिन्नादिकषायः

(वं. से.; वृं. मा.; ग. नि., च. द. । प्रमे.)

छिन्नावह्निकषायं वा पाठाकुटजरामठम्।
तिक्ता कुष्ठश्च सञ्चूर्ण्य सर्पिमेही पिबेन्नरः॥

गिलोय और चीतेका क्वाथ अथवा पाठा, इन्द्रजौ, हींग, कुटकी और कूठके समान भाग मिश्रित चूर्णको पीनेसे सर्पिमेहको आराम होता है।

(१९४८) छिन्नादिकषायः

(वै. जी. । वि. १, वृ. नि. र. । ज्वर.)

अहो किमर्थं बहुभिर्कषायैः
पराशराद्यैर्मुनिभिःप्रदिष्टैः।
छिन्नाशिवापर्पटतोयदानात्-
पित्तज्वरः किं न सरीसरीति॥

अहो! पाराशरादि मुनिकथित अन्य कषायो की क्या आवश्यकता है? केवल गिलोय, सोठ और पित्तपापड़ाका क्वाथ ही क्या पितज्वरको शान्त करनेके लिए पर्याप्त नही है?

(१९४९) छिन्नादिकषायः (वृ. मा. । अम्ल.)

छिन्नाखदिरयष्ट्याह्वदार्व्यम्भो वा मधुद्रवम्।

(अम्लपित्तकी शान्तिके लिए) गिलोय, खैर, मुलेठी और दारुहल्दीका क्वाथ शहद डालकर पिलाना चाहिए।

(१९५०) छिन्नादिक्वाथः

(भा. प्र. । म. खं. । विस्फो.)

छिन्नापटोलभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः।
खदिराब्दयुतैःक्वाथो हन्ति विस्फोटकज्वरम्॥

गिलोय, पटोलपत्र, चिरायता, वासा, नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, खैर और मोथेका क्वाथ विस्फोटक ज्वरका नाश करता है।

(१९५१) छिन्नादिक्वाथः (वैद्यामृत अलं. ३)

छिन्नाकिराতत्रिफलात्रियामा-
तिक्ताकषायो गुडसम्प्रयुक्तः।
शिरःशिरोर्द्धश्रवणाक्षिदन्त-
भ्रूशंखशूलानि निहन्ति सद्यः॥५१॥

गिलोय, चिरायता, हर्र, बहेडा, आमला, हल्दी, और कुटकीके क्वाथमें गुड मिलाकर पीनेसे शिरशूल, आधाशीशी, कर्णशूल, नेत्रोंकी पीड़ा, दांतका दर्द, भौं और कनपटीका दर्द शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

(१९५२) छिन्नादिक्वाथः (वृ.नि.र.। ज्वर.)

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तःक्काथश्छिन्नोद्भवोद्भवः ।
जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलकृतोऽथवा ॥

गिलोय अथवा पंचमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे जीर्णज्वर और कफका नाश होता है ।

(१९५३) छिन्नादिपाचनम् (वृ.नि.र.। ज्व.)

छिन्नरुहापिचुमन्दकधान्यं
विश्वनिशाजनितश्च कषायः ।
पाचनकं गुडमिश्रितमेव
पित्तभवे ज्वर एव हि पेयम् ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धनियाँ, सोंठ, और हल्दी के काथमें गुड मिलाकर पित्तज्वरमें पीनेसे दोषोंका परिपाक हो जाता है ।

(१९५४) छिन्नोद्भवादिकषायः [१]

(वै. जी. । वि. १)

छिन्नोद्भवाम्भोधरधन्वयासैः
किराततिक्ताम्बुदरेणुयासैः ।
विश्वावृषाम्भोधरधन्वयासैः
क्काथो मरुत्पित्तकफज्वरेषु ॥

वातज ज्वरमें गिलोय, नागरमोथा और धमासेका काथ; पित्तज्वरमें चिरायता, मोथा, रेणुका, और धमासेका काथ, तथा कफज्वरमें सोंठ, वांसा मोथा और धमासेका काथ पीना चाहिए ।

(१९५५) छिन्नोद्भवादिकषायः [२]

(यो. स. । समु. ४)

छिन्नोद्भवाम्बुधरभेषजभङ्गुराभिः
क्काथीकृतश्च सलिलं ग्रहणीगदघ्नम् ।

गिलोय, मोथा, सोंठ और अतीसका काथ पीनेसे ग्रहणी रोग नष्ट होता है ।

(१९५६) छिन्नोद्भवादिकषायः [३]

(वं. से. । अम्ल. पि.)

छिन्नोद्भवा निम्बपटोलपत्रं
फलत्रिकं सुक्वथितं सुशीतम् ।
क्षौद्रान्वितं पित्तमनेकरूपम्
सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥

गिलोय, नीमकी छाल, पटोलपत्र, हर्र, बहेड़ा और आमला । इनके काथको ठण्डा करके उसमें शहद मिलाकर पीनेसे अनेक प्रकारके पित्तरोग और दारुण अम्लपित्तका नाश होता है ।

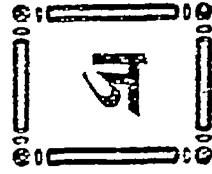
(१९५७) छिन्नोद्भवादिकाथः

(यो. स. । समु. ३)

छिन्नोद्भवाम्बुधरकण्टकिनीकलिङ्ग-
पाठाम्बुवैद्यजननीविहितकषायः ।
पीत प्रभातसमये हरति त्रिदोषं
सञ्जातकर्णकरुजं ज्वरमग्निसादम् ॥

गिलोय, मोथा, कटेली, इन्द्रजौ, पाठा, सुगन्धबाला और वासेका काथ प्रातःकाल पीनेसे कर्णक सन्निपातज्वर और अग्निमांद्यका नाश होता है ।

॥ इति छकारादिकषायप्रकरणम् ॥



अथ जकारादि कषायप्रकरणम्।

(१९६२) जपाकुसुमप्रयोगः (यो. र. । स्त्री.)

आरनालपरिपेषितं त्र्यहं
या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी।
सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी
सा दधाति न हि गर्भमङ्गना॥

जो स्त्री ऋतुकालमें तीन दिन तक जपा(जवा) के फूलोको कांजीमें पीसकर ५ तोले गुड़में मिलाकर खाती है उसको गर्भ नहीं रहता।

(१९६३) जपादियोगः (यो. स. । स. ५)

मूलं जपायाः कुसुमेन युक्तं
संकाथ्य यत्नात्पिबति प्रभाते।
यस्या अपत्यं न दधाति पुष्टिं
गर्भस्थितं वातकफादिदोषैः॥

यदि वात कफादि दोषोके कारण गर्भस्थित बालककी पुष्टि न होती हो तो जपा (जवा) की जड़ और फूलोको पकाकर प्रात काल पीना चाहिए।

(१९६४) जम्बूपल्लवादिक्वाथः[१]

(वृ. यो. त. । त. ८५; वं. से.; वृ नि. र.; वृ. मा. । छर्दि, भा. प्र. खं. २ । छर्दि)

जम्ब्वाम्रपल्लवभृतं क्षौद्रं दत्त्वा सुशीतलं तोयम्।
लाजैरवचूर्ण्य पिबेच्छर्द्यतिसारे परं सिद्धम्॥

छर्दि (वमन) और अतिसार (दस्तों)के लिए जामन और आमके पत्तोके काथको ठण्डा करके उसमें शहद और धानकी खीलोका चूर्ण मिलाकर पीना अत्यन्त गुणकारी है।

(१९६५) जम्बूपल्लवादिक्वाथः [२]

(ग. नि. । छर्दि.)

जम्ब्वाम्रपल्लवोशीरवटाश्वत्थावरोहजः।
क्वाथःशीतो मधुयुतःपीतच्छर्दिनिवारणः॥६०॥

जामन और आमके पत्ते, खस, वड़ और पीपलवृक्षके अङ्कुरो के काथको ठण्डा करके शहद मिलाकर पीनेसे छर्दि (वमन) नष्ट हो जाती है।

(१९६६) जम्ब्वादिक्वाथः (वं. से. । ग्रह.)

जम्बूदाडिमशृङ्गाटपाठाकञ्चटपल्लवैः।
पक्कं पर्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम्॥
हन्ति सर्वानतीसारान्ग्रहणीमतिदुस्तराम्।

जामनके पत्ते, अनारके पत्ते, सिंघाड़ेके पत्ते, पाठा और जल चौलाईके पत्ते समान भाग लेकर कूटकर रातको पानीमें पकाकर छानकर उसमें बेलगिरि भिगोकर ढककर रख दीजिए। प्रात:काल उसमें गुड़ और सोठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे समस्त प्रकारके अतिसारो और भयङ्कर संग्रहणी का नाश होता है।

(१९६७) जम्ब्वादिशीतकषायः

(च. द.; वृ. मा. । छर्दि.)

जम्ब्वाम्रपल्लवगवेधुकधान्यसेव्य-
ह्रीवेरवारिमधुना पिबतोऽल्पमल्पम्।
छर्दिःप्रयाति शमनं त्रिसुगन्धियुक्ता
लीढा निहन्ति मधुना च दुरालभा वा॥

जामन और आमके पत्ते, गरहेडुवा, धनियां, खस, और नेत्रबाला समान भाग मिलाकर २ तोले लेकर कूटकर रातको ३२ तोले पानीमें मिट्टीके बरतनमें भिगो दीजिए। प्रातःकाल छानकर उसमें शहद मिलाकर थोड़ा थोड़ा पीनेसे अथवा दालचीनी, इलायची तेजपात और धमासेके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे छर्दि (वमन) का नाश होता है।

(१९६८) जम्ब्वादिस्वरसः [१] (वै.म.।प.६)

जम्बूक्षीरीवृक्षारलुककुभकरञ्जपल्लवस्वरसम्।
लकुचफलस्वरसं पलं छागं पयःपलमपि
प्रगे पीत्वा॥
जयति सरक्तश्लेष्मं प्रवाहणं गुदेषु जातञ्च॥

जामन, क्षीरीवृक्ष (बड़, पीपल, गूलर आदि), अरलु, अर्जुन और करञ्जके पत्तो तथा बढहलके फलोंका स्वरस १ पल (५ तोले) और बकरीका दूध ५ तोले मिलाकर प्रातःकाल पीनेसे रक्त और कफयुक्त अतिसारका नाश होता है।

(१९६९) जम्ब्वादिस्वरसः [२]

(भा. प्र.। म. खं. अति.; ग. नि.। अति.; शा. सं. खं. २। अ. १)

जम्ब्वाम्रामलकीनान्तु कुट्टयेत्पल्लवान्नवान्।
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत्॥
तत्पीतं मधुना युक्तं रक्तातिसारनाशनम्॥

जामन, आम और आमले के नए पत्तो (कोपलों) को कूटकर रस निकालकर उसे बकरीके दूधमें मिलाकर और शहदसे मीठा करके पीनेसे रक्तातिसारका नाश होता है। (मात्रा—स्वरस ५ तोले, दूध ५ तो०)[1]

(१९७०) जयादिक्वाथः (यो. र.। उपदं)

जयाजात्यश्वमारार्कशम्पाकानां दलैः पृथक्।
कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत्॥

जया, चमेली, कनेर, आक और अमलतास में से किसी एकके पत्तोंके क्वाथसे धोनेसे लिंगव्रण (आतशकका घाव) नष्ट होता है।

(१९७१) जलकुम्भीक्षारयोगः

(ग. नि.। ग्रन्थ्य., वृं. मा.; यो. र.। गल.)

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम्।
पिबेत्कोद्रवतक्राशी गलगण्डोपशान्तये॥

जल कुम्भीकी राखको गोमूत्रमें पकाकर छान कर पीने और कोदों तथा तक्रका आहार करनेसे गलगण्ड रोग नष्ट होता है।

(१९७२) जलत्रिकयोगः (यो. समु.। ४)

जलं सरोध्रं सहशृङ्गवेर-
मजापयोभिः सहितं क्वथित्वा।
पिबेदतीसारगदे सशूले
पित्तोद्भवे दाहसमन्विते च॥

नेत्रबाला, लोध और अदरखको बकरीके दूध मे पकाकर पीनेसे दाह और शूलयुक्त पित्तज अतिसारका नाश होता है। (प्रत्येक औषध १ तोला, दूध २४ तो. पानी १६ तो. एकत्र मिलाकर पानी जल जाने तक पकाएं।)

(१९७३) जलधरादिक्वाथः (वृ नि.र.।सन्नि.)

जलधरदशमूलं वारिशुण्ठीसमेतम्
मलयजकृतमालं वासकं पर्पटञ्च।

१ शार्ङ्गधर और योगरत्नाकरमें इस प्रयोगके अनुपानमें घी भी लिखा है।

समधरणघृतांश क्वाथ एष प्रभाते
शमयति समुदीर्णं पीतमात्र प्रलापम् ॥

नागरमोथा, दशमूल, सुगन्धवाला, सोठ, सफेद चन्दन, अमलतास, वासा और पित्तपापडा समान भाग मिलाकर दो तोले लेकर आध सेर पानीमें पकाकर छानकर उसमें ७॥ माशे घी मिलाकर प्रात काल पिलानेसे प्रबल प्रलाप भी तुरन्त शान्त हो जाता है।

(१९७४) जलवेतसादियोगः (वं.से.।विष)

जलवेतसवृक्षस्य मूलं कुष्ठं पचेज्जले।
स क्वाथःशीतलः पेयः परश्च विषनाशनः॥

जलवेतस वृक्षकी जड़ और कूठको पानीमें पकाकर छानकर ठण्डा करके पीनेसे विषका नाश होता है।

(१९७५) जलशैवालयोगः (वै.म.। प.११)

जलशैवालमादाय कण्डूक्लेदान्विते तनौ।
परिपेष्य जलं सिञ्चेत्तत्तस्य परमौषधम् ॥

पानीमें उत्पन्न होनेवाली शैवाल (सिरवाल) को पीसकर पानीमें मिलाकर उस पानीसे खुजली वाले अङ्गको धोना चाहिए। खुजली और क्लेद (चिपचिपाहट) के लिए यह अत्युत्तम औषध है।

(१९७६) जातीपत्ररसादियोगः

(ग. नि.,बृ. नि. र.। छर्दि.)

जातीपत्ररसं कृष्णा मरिचं शर्करान्वितम्।
एतानि मधुयुक्तानि हन्युश्छर्दिं चिरोद्भवाम् ॥

चमेलीके पत्तोंका रस, पीपल और मिर्चका चूर्ण तथा खांड़को एकत्र करके शहदमें मिलाकर चाटनेसे पुरानी छर्दि नष्ट होती है।

(१९७७) जातीपत्रादिक्वाथः [१]

(वं. से., यो. र.; बृ. नि. र.; वृं. मा; भा. प्र.। मुख.; वै. जी.। वि. ४; यो. त.। त. ६९)

जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषे मुखपाकनुत् ॥

चमेलीके पत्ते, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी और त्रिफलाके क्वाथको ठण्डा करके शहद मिलाकर उसके कुल्ले (गरारे) करनेसे मुख-पाक [मुंहके छाले और घाव] नष्ट होता है।

(१९७८) जातीपत्रादिक्वाथः [२]

(वं. से., र. र.। मसू.)

जातीपत्रसमञ्जिष्ठा दार्वीपूगफलं शमी।
धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ॥
मुखव्रणे कण्ठरोगे गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥

चमेलीके पत्ते, मजीठ, दारुहल्दी, सुपारी, शमी (छोकरा)की छाल, आमला और मुलैठीके क्वाथमें शहद डालकर कुल्ले करानेसे मुखव्रण(मुंहके घाव) और कण्ठरोगोमें अत्यन्त लाभ पहुंचता है।

(१९७९) जातीप्रवालरसादियोगः

(यो. र.। उप.)

जातीप्रवालस्वरसं पलार्धं
धेनोर्घृतं सर्जरसेन युक्तम्।
पिबेत्प्रगे पञ्चविधोपदंशे
क्षारादृते गोधूमसर्पिपथ्यम् ॥

चमेलीके पत्तोका स्वरस आधा पल (२॥ तोले) निकालकर उसमें गायका घी और राल मिलाकर प्रात'काल पीनेसे पांच प्रकारका उपदंश (आतशक) नष्ट हो जाता है।

(राल ३ माशे, घी १ तो.)

पथ्य—गेहूं की रोटी और घी। नमकसे परहेज़ करना चाहिए।

(१९८०) जात्यादिक्वाथः (वा.भ.।चि.अ.१)

जात्यामलकमुस्तानि तद्वद्धन्वयवासकम्।
बद्धविट् कटुकाद्राक्षात्रायन्तींत्रिफलागुडान्॥

यदि ज्वरमें कब्ज़ [मलावरोध] हो तो चमेली के पत्ते, आमला, नागरमोथा, धमासा, कुटकी, द्राक्षा (मुनक्का), त्रायमाणा और त्रिफलाके क्काथमें गुड़ मिलाकर पीना चाहिए।

नोट—यही प्रयोग चरकमें भी लिखा है परन्तु उसमें कुटकी, द्राक्षा, त्रायमाणा और त्रिफला नहीं है।

(१९८१) जीवकपुत्रकबीजप्रयोगः
(वं. से.। स्त्री.)

जीवकपुत्रकबीजं क्षीरेण पिबेत्सपत्रमूलञ्च।
दारकनष्टा वनिता जनयति दीर्घायुषं पुत्रम्॥

जिस स्त्रीके बच्चे जीवित न रहते हों उसे जीवक पुत्र (जिया पोता) के बीज, पत्र और मूलको दूधमें पीसकर पिलानेसे वह दीर्घायु पुत्र-उत्पन्न करती है।

(१९८२) जीवनीयकषायदशकः
(च. सं.। सू. अ. ४)

जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गमाषपर्ण्यौ जीवन्ती मधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्ति।

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलैठी। इन दश औषधियोंके गणको "जीवनीय कषाय दशक" कहते है। ये ओषधियां जीवनी शक्तिकी वृद्धि करती हैं।

(१९८३) जीवनीयक्षीरम् (ग.नि.। अरोच.)

जीवनीयोपसिद्धं वा पिबेत् क्षीरं सशर्करम्।
शीतं माक्षिकसंयुक्तं पैत्तिकस्वरबोधनम्॥

जीवनीय[1] गणकी ओषधियां समान भाग मिली हुई ५ तोले, दूध ४० तोले और पानी १६० तोले। एकत्र मिलाकर पकाएं। सब पानी जल जाने पर छान लें। इसे ठण्डा करके मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे पित्तज स्वरभंग रोग नष्ट होता है।

(१९८४) ज्योतिष्मतीपत्रयोगः
(यो. र.। स्त्री.; भा. प्र.। म. खं. स्त्री.)

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं राजिको[2] ग्रासनं त्र्यहम्।
शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद्ध्रुवम्॥

ज्योतिष्मती (मालकंगनी) के पत्र, राई, बच और असनावृक्षकी छालको ठण्डे पानीमें पीसकर तीन दिन तक पिलानेसे स्त्रियोको रजोस्राव [मासिक धर्म] अवश्य होने लगता है।

(१९८५) ज्वरहरो कषायदशकः
(च सं.। सू. अ. ४)

सारिवाशर्करापाठामञ्जिष्ठाद्राक्षापीलुपरूषकाभयामलकविभीतकानीति दशेमानि ज्वरहराणि भवन्ति।

सारिवा, मिश्री, पाठा, मजीठ, मुनक्का, पीलु, फालसा, हर्र, आमला और बहेडा। यह दश चीजे ज्वरनाशक है।

॥ इति जकारादिकषायप्रकरणम्॥

---

१ 'जीवनीय गण' प्रयोग सं. १९८२ देखिए। २—स्वर्जिकोग्रासनमिति पाठान्तरम्। किसी किसी ग्रन्थमे राईकी जगह सज्जी भी लिखी है।

अथ जकारादि चूर्णप्रकरणम्।

(१९८६) जठराग्निवर्धनचूर्णम्

(यो. स. । स. ४)

कुटजत्वग्विषावासान्यग्रोधत्वग्लवङ्गकाः।
सूक्ष्मचूर्णीकृतं सर्वं जठराग्निविवर्धनम् ॥

कुड़ेकी छाल, अतीस, बांसे और बड़की छाल और लौङ्ग समान भाग लेकर महीन चूर्ण करके रख लीजिए।

इसके सेवनसे जठराग्निकी वृद्धि होती है।

(मात्रा=१॥-२ माशे। अनुपान=गर्म जल)

(१९८७) जम्बूकपुष्पादियोगः

(वं. से. । बा. रो.)

जम्बूकतिन्दुकानाञ्च पुष्पाणि च फलानि च।
घृतेन मधुना लीढ्वा मुच्यते हिक्कया शिशुः॥

जामन[1] और तिन्दुक (तेंदु) के फूलों और फलोंके चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंकी हिचकी नष्ट होती है।

(१९८८) जम्बूदलाद्युद्वर्त्तनम् (यो. र.)

जम्बूदलार्जुनतरुप्रसवैः सकुष्ठै-
रुद्वर्त्तनम् प्रकुरुते प्रति वासरं यः।
प्रस्वेदबिन्दुकणिकानिकरानुषङ्गाद्-
दुर्गन्धिता वपुषि तस्य पदं न धत्ते ॥

प्रतिदिन जामनके पत्ते, अर्जुन (काहू) के फूल और कूठके चूर्णका उबटन करनेसे अधिक पसीना और दुर्गन्ध नष्ट होती है।

१ जम्बूक शब्द प्रायः जामनके लिए व्यवहृत नहीं होता, जम्बूकका वास्तविक अर्थ तो लोध है परन्तु यहां 'जम्बू'के स्थानमें 'जम्बूक' प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है।

(१९८९) जम्ब्वादिचूर्णम् (वृ.नि.र.। अति.)

जम्बूचूतफलस्यास्थिद्राक्षा पथ्या च पिप्पली।
खर्जूरं शाल्मलीछल्ली उदुम्बरं सवल्कलम् ॥
एतच्चूर्णं समं श्लक्ष्णं मधुना सह भक्षितम्।
रक्तपित्तोद्भवं शीघ्रं हन्त्यतीसारमुल्बणम् ॥

जामन और आमके फलोंकी गिरी (गुठलीके भीतरका गूदा), द्राक्षा [मुनक्का], हर्र, पीपल, खजूर, सेंभलकी छाल, गूलरके फल और छाल। समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त सम्बन्धी अतिसार शीघ्र नष्ट होता है।

(मात्रा २-३ माशे)

(१९९०) जम्ब्वादियोगत्रयः

(वृं. मा.; वं. से. । छर्दि.)

सजाम्बवं वा बदरस्य चूर्णं
मुस्तायुतां कर्कटकस्य शृङ्गीम्।
दुरालभाम्वा मधुसम्प्रयुक्तां
लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम् ॥

जामनकी गुठली या वेरकी गुठलीके भीतरके गूदेका चूर्ण अथवा मोथे और काकड़ासिंगीका चूर्ण या धमासेका चूर्ण शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे कफ और वमन (उल्टी) का नाश होता है।

(१९९१) जयाखण्डचूर्णम् (यो.र.।अतिसा.)

जयाखण्डं साखरूंडं जीरकं दधिमिश्रितम्।
आमातिसाररक्तञ्च हन्ति वेगेन कौतुकम् ॥

भांग, खांड, साखरुण्ड (वृक्ष विशेष, जिससे कपड़ोंके लिए रंग बनाया जाता है) और ज़ीरा समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए।

इसे दहीमें मिलाकर खिलाया जाय तो आमातीसार और रक्तातिसारमें आश्चर्यजनक लाभ होता है।

(१९९२) जयापत्रयोगः

(ग. नि., भा. प्र.। म. खं. नासा.)

पुटपक्कं जयापत्रं सिन्धुतैलसमन्वितम्।
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥

भांगके पत्तोको पुटपाक विधिसे पकाकर* चूर्ण करके उसमें सेधानमक और तेल मिलाकर खानेसे समस्त प्रकारके प्रतिश्याय (जुकाम) नष्ट होते है। यह प्रतिश्यायकी परमौषध है।

(१९९३) जरणादिचूर्णम् [१]

(वृ. नि.; यो. र.। अजी०)

जरणरुचकशुण्ठीपिप्पलीतीक्ष्णबेल्लम्।
सलवणमजमोदाहिङ्गुपथ्येति कर्षम् ॥
पृथगथ पलमात्रा स्यात्त्रिवृच्चूर्णमेषाम्।
जननमुदरवह्नेः पाचनं रोचनञ्च ॥

जीरा, कालानमक, सोंठ, पीपल, स्याहमिर्च, बायबिड़ङ्ग, सेधानमक, अजमोद, हींग और हर्र एक एक कर्ष (१। तोला) और निसोत १ पल (५ तोले) लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसके सेवनसे रुचि और अग्निकी वृद्धि होती है।

(मात्रा=१–१॥ माशा। अनुपान=उष्णजल)

* भांगके गीले पत्तोंको पीसकर बड या पीपलके पत्तोंमें लपेटकर डोरेसे बांधकर उस पर १ अंगुल मोटा मिट्टीका लेप करके आगमें दवा दीजिए। जब मिट्टीका रङ्ग लाल हो जाय तो ठण्डा करके भांगको निकाल लीजिए।

(१९९४) जरणादिचूर्णम् [२]

(वृ. नि. र.; यो. र.। मुख.; वृ. यो. त.। त.१२८)

जरणलवणपथ्याशाल्मलीकण्टकानाम्
अनुदिनमनुघृष्टं दन्तमूलेषु चूर्णम्।
व्रणदरणरुगस्रस्रावचाश्चल्यशोथा–
नपनयति विवस्वानन्धकारानिवाशु ॥

जीरा, सेंधानमक, हर्र और सेंभलके कांटे समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए। इसे प्रतिदिन (मञ्जनकी भांति) मसूढो पर मलनेसे मसूढोके घाव, दर्द, रक्तस्राव, सूजन और दांतोका हिलना शीघ्र बन्द हो जाता है।

(१९९५) जातीपत्रादिचूर्णम्

(यो. र.; र. र.। मुख, यो. चि. म.; ग. नि.। चूर्ण.; यो.त.। त. ६९, वृ.यो.त.। त. १२८)

जातीपत्रपुनर्नवागजकणाकोरण्टकुष्ठवचा;
शुण्ठीदीप्यहरीतकीतिलसमं श्लक्ष्णं भृशं चूर्णयेत्।
तच्चूर्णं वदने धृतं विजयते दौर्गन्ध्यं दन्तव्यथाम्।
चाश्चल्यत्वमतिव्रणश्वयथुरुक्कण्डूक्रिमिव्यापदः॥

चमेलीके पत्ते, पुनर्नवा (बिसखपरा–साठी) की जड़, गजपीपल, पियावासा, कूठ, बच, सोठ, अजवायन, हर्र और तिल समान भाग लेकर खूब महीन चूर्ण कर लीजिए।

इस चूर्णको मुखमें रखनेसे (दांतोपर मलनेसे) दुर्गन्धि, दांतोकी पीडा, दांतोंका हिलना, मसूढ़ोंकी सूजन, दर्द, खुजली, दांतोके कीड़े और घाव नष्ट होते है।

१ तिलकणेति पाठभेदः।
२ पुष्पमिति पाठान्तरम्।

(१९९६) जातीफलादिचूर्णम्

(वृ. नि. र.; वै. र.। संग्र.; वृ. यो. त.। त. ६७)

जातीफलाग्निहिमवेल्लतिलेन्दुजीर-
वांशीत्रिकत्रयमनक्षमितं नतं च ।
तालीसदेवकुसुमे अपि चूर्णमेषां
द्विशर्करं च समभङ्गमिदं ग्रहण्याम् ॥

जायफल, चीता, चन्दन, वायविडङ्ग, तिल, कपूर, ज़ीरा, वंसलोचन, त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिमद (मोथा, वायविडङ्ग, चीता), तगर, तालीसपत्र और लौंगका चूर्ण १-१ कर्ष, भांग इस सब चूर्णके वरावर और सवसे दो गुनी मिश्री एकत्र मिलाकर महीन चूर्ण वना लीजिए।

इसके सेवनसे ग्रहणीरोग नष्ट होता है ।

(मात्रा=१-१॥ माशा । अनुपान=तक्र)

(१९९७) जातीफलादिपुटपाकः

(यो. र.; वृ. नि. र.। अति०)

जातीफलं सर्पफेनं टङ्कं गन्धक जीरके ।
एतानि समभागानि वालदाडिमवीजकैः ॥
पेषयेत्तेन कल्केन पूरयेद्दाडिमीफलम् ।
अङ्गारे तच्च गोधूमचूर्णनाऽऽलेपयेद्दृढम् ॥
अतिसारे स्तम्भनं स्यात्परं दीपनपाचनम् ॥

जायफल, अफीम, सुहागा, गन्धक (शुद्ध आमलासार) और ज़ीरा तथा कच्चे अनारके वीज समान भाग लेकर पानीमें पीसकर पिट्ठीसी वना लीजिए और एक अनारको भीतरसे खाली करके उसमें उस पिट्ठीको भरकर और उसका मुह वन्द करके उसके ऊपर चारो तरफ गेहूंका भीगा हुवा आटा लपेट दीजिए। इसे अङ्गारों (भूवल) में दवा दीजिए, जव आटेका रङ्ग सुर्ख़ हो जाय तो अनारको ठण्डा करके उसके भीतरसे औषध निकाल कर पीस लीजिए।

यह अतिसारको रोकता, आमको पचाता और और अग्निको दीप्त करता है ।

(१९९८) जातीफलादियोगः

(वृ. नि. र. । अति.)

जातीफलं नागरसर्जकेनौ
खर्जूरफलभिन्नमिदं च नित्यम् ।
योऽयं द्विनिष्कं च करीपजाता-
दरण्यजाद्भस्म समं च सर्वैः ॥
निष्कार्धमात्रं भिषजा प्रयोज्यं
द्वि वारमेतच्छुभतन्दुलोदकैः ।
जीर्णातिसारे रुधिरामयुक्ते
हितः सशूले वहुवेगयुक्ते ॥

जायफल, सोंठ, राल और खजूरके फल (छुहारा) २-२ निष्क तथा अरने (अरण्य) उपलों की राख सवके समान लेकर महीन चूर्ण वना लीजिए।

इसे प्रतिदिन २॥ माशेकी मात्रानुसार चावलों के धोवनके साथ २ वार (प्रातःसायम्) सेवन करनेसे जीर्णातिसार, रक्तातिसार और अति वेगवान शूलयुक्त अतिसारका नाश होता है ।

(१९९९) जातीफलाद्यं चूर्णम्

(ग. नि. । परि. चूर्णा.; भै. र. । ग्रह.; व. से.; वै. क. द्रु.; भा. प्र. । क्षय)

जातीफलं विडङ्गञ्च चित्रकस्तगरस्तिलाः ।
तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गं चोपकुञ्चिका ॥

१ तयेति पाठभेदः ।

कर्पूरं चाभया धात्री मरिचं पिप्पली शुभा।
एषामक्षसमान् भागान् चातुर्जातकसंयुतान् ॥
पलानि त्रीणि भृङ्गायाः शर्करा समयोजिता।
एतच्चूर्णं तु मधुना कर्षार्धं लेहयेत्तथा ॥
जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ॥
वातश्लेष्मोद्भवांश्चान्यान् प्रतिश्यायमरोचकम्॥
एताःसर्वा रुजो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

जायफल, वायबिडङ्ग, चीता, तगर, तिल, तालीसपत्र, सफेद चन्दन, सोंठ, लौङ्ग, कलौंजी, कपूर, हर्र, आमला, स्याहमिर्च, पीपल, बंसलोचन, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर १–१ कर्ष (१।–१। तोला) दारचीनी ३ पल (१५ तोले) और मिश्री सबके बराबर मिलाकर महीन चूर्ण बना लीजिए।

इसे प्रतिदिन आधे कर्षकी मात्रानुसार शहद में मिलाकर चाटनेसे खांसी, क्षय, श्वास, ग्रहणी, अग्निमांद्य तथा वातकफज अन्य रोग और जुकाम तथा अरुचिका शीघ्रही नाश हो जाता है।

(२०००) जीरकयोगः (वृ. नि. र.। ज्वर.)

जीरकं गुडसंयुक्तं विषमज्वरनाशनम्।
अग्निमान्द्यं जयेच्छीतं वातरोगहरं परम् ॥

—जीरेके चूर्णको गुड़में मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर, अग्निमांद्य, शीत और बातज रोगोका नाश होता है।

(मात्रा=३ माशे)

(२००१) जीरकादिचूर्णम् [१]

(यो. र.। तृष्णा. छर्दि.)

जीरकुस्तुम्बरी द्राक्षा चन्दनोत्पलशीतलम्।
शीतलेन समं दद्यात् तृष्णां हन्त्यतिशीतलम् ॥

जीरा, कुस्तुम्बुरु (नैपाली धनियां), द्राक्षा [मुनक्का], सफेद चन्दन, नीलकमल और कपूर समान भाग लेकर चूर्ण करके शीतल जलके साथ सेवन करनेसे तृष्णा शान्त हो जाती है।

(२००२) जीरकादिचूर्णम् [२]

(वृ. नि. र., यो. र.। तृष्णा.)

सजीरधान्यार्द्रकशृङ्गवेर–
सौवर्चलान्यर्धपरिप्लुतानि।
मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति
पीतानि सद्यः समयन्ति तृष्णाम् ॥

जीरा, धनिया, अद्रक, सोंठ और कालानमक समान भाग लेकर चूर्ण करके (१ से ३ माशेकी मात्रानुसार) दो गुने, उत्तम हृदयके लिए हितकारी और सुगन्धित मद्यमें मिलाकर पीनेसे तृष्णा तुरन्त शान्त हो जाती है।

(२००३) जीरकादिचूर्णम् [३]

(वृ. नि. र., यो. र.। ज्वर.)

जीरकं लशुनं व्योषं पाठा पिष्टोष्णवारिणा।
शीतज्वरस्यागमने पिबेद्गुडयुतेन च।

जीरा, ल्हसन, सोंठ, मिर्च, पीपल और पाठा समान भाग लेकर चूर्ण करके गुडमें मिलाकर शीत ज्वर आनेके पूर्व गर्म पानीके साथ खानेसे ज्वर रुक जाता है।

जीरकादिचूर्णम् [४] (भै. र.। ग्रह.)

रस प्रकरणमें देखिए।

(२००४) जीर्णचेलीभस्मप्रयोगः

(वैद्य. म. र.। पं० १)

जीर्णचेलभसितं पिबेद्वधूः–
पुष्पजातरुधिरेण पीडिता।

तक्रतैलतरुणोष्णवारिभिः-
प्राप्तपुष्पसुभगा भविष्यति।

पुराने (लेकिन साफ) रेशमी कपड़ेकी भस्म को तक्र, तैल या अच्छे गर्म पानीके साथ फांकनेसे स्त्रियोंकी रजःस्राव (मासिक धर्म) सम्बन्धी पीड़ा नष्ट होती है और रजोस्राव खुलकर होता है।

(२००५) जीवकादिचूर्णम् (यो.र.।उरःक्षत)

शर्करामधुसंयुक्तं जीवकर्षभकौ मधु।
लिह्यात्क्षीरानुपानानि रक्तक्षीणतरःकृशः॥

जीवक, ऋषभक और मुलैठीके चूर्णको मिश्री और शहदमें मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तकी क्षीणताके कारण उत्पन्न होनेवाली कृशता [दुवलापन] नष्ट होती है।

जीवनीयगणः (यो.त।त.१८, यो.र.; वा.भ.)

जीवनीयकषायदशक अवलोकन कीजिए।

(२००६) जीवन्त्याद्यं चूर्णम् [१]

(वं. से., ग. नि.। राजय.)

जीवन्तीं शतवीर्यां च विकसां सपुनर्नवाम्।
अश्वगन्धामपामार्गं तर्कारीं मधुकं वलाम्॥[1]
विदारीं सर्षपान् कुष्ठं तण्डुलीयातसीफलम्।
माषांस्तिलान् सकिण्वं च सर्वमेकत्र चूर्णयेत्॥[2]
यवचूर्णं च द्विगुणं दध्ना युक्तं समाक्षिकम्।
एतदुत्सादनं कार्यं पुष्टिवर्णवलप्रदम्॥

जीवन्ती, शतावर, मजीठ, पुनर्नवा (सांठी, विसखपरा), असगन्ध, अपामार्ग (चिरचिटा), जयन्ती [जया], मुलैठी, खरैटी, विदारीकन्द, सरसो, कूठ, चौलाई, अलसीके वीज, उर्द, तिल और तिलकी खल समान भाग तथा जौ सबसे दो गुने लेकर चूर्ण वना लीजिए। इसे दही और शहदमें मिलाकर शरीरपर मालिश करनेसे वल, पुष्टि और सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

१ अश्वगन्धाऽभयाभार्गीति पाठान्तरम्।
२ किण्वञ्चेति पाठान्तरम्।

(२००७) जीवन्त्याद्यं चूर्णम् [२]

(वं. से.। कासा.; ग. नि.। चूर्ण.)

जीवन्तीं मधुकं पाठां त्वक्क्षीरीं त्रिफलां शटीम्।
मुस्तैला पिप्पलीं द्राक्षां द्वौ वृहत्यौ विभीतकम्॥
शारिवां पौष्करं मूलं कर्कटाख्यां रसाञ्जनम्॥
पुनर्नवां लोहरजस्त्रायमाणां यवानिकाम्।
भार्गीतामलकीवृद्धिर्विडङ्गं धन्वयासकम्।
क्षारचित्रकचव्याम्लवेतसव्योषदारु च॥
चूर्णं कृत्वा समांशानि लेहयेन्मधुसर्पिषा।
चूर्णं पाणितलं कृत्वा पञ्चकासान्व्यपोहति॥

जीवन्ती, मुलैठी, पाठा, वंसलोचन, हर्र, वहेड़ा, आमला, कचूर, मोथा, इलायची, पीपल, मुनक्का, छोटी कटैली, वड़ी कटैली, वहेड़ा, सारिवा, पोखरमूल, काकड़ासिंगी, रसौत, पुनर्नवा (विसखपरा), लोह चूर्ण (अथवा भस्म), त्रायमाणा, अजवायन, भारङ्गी, भुंई आमला, वृद्धि, वायविडङ्ग, धमासा, जवाखार, चीता, चव, अम्लवेत, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और देवदारका चूर्ण समान भाग मिलाकर एकत्र खरल कर लीजिए।

इसे १ कर्ष (१। तोले)की मात्रानुसार शहद (२ तो.) और घी [६ माशे] में मिलाकर चाटनेसे पांच प्रकारकी खांसी नष्ट होती है।

ज्वरनागमयूरचूर्णम्

रसप्रकरणमें देखिए।

ज्वरभैरवचूर्णम्

रसप्रकरणमें देखिए।

(२००८) ज्वालामुखचूर्णम् (वृ.नि.र.।संग्र.)

शक्राशनं सप्तपलं सितायाः
पलत्रयं छिन्नरुहाशताह्वा;
तथैव मूलं गिरिकर्णिकायाः
पलं पलं वै कथितं त्रयाणाम्।
सर्वं तु चूर्णवरं भृङ्गराज-
द्रवेण चालोड्य पुनःपुनस्तु;
घर्मेषु संशोष्य व सप्तवारं
नित्यं लिहेत्कर्षप्रमाणकं तत्॥
वितुल्यसर्पिःमधुभिःसमेतं
स्निग्धाम्लमुद्गहितभोजनश्च;
करोति वह्निं ग्रहणीश्च हन्यात्-
सामातिसारानसृजोविकारान्।
कुष्ठामवातं पिडकान् विसर्पं
ज्वालामुखं नाम हितं नराणाम्;
व्याधीन्समस्तानपि हन्ति शीघ्रं
यानन्त्रभूताजठरोद्भवांश्च॥

इन्द्रजौ सात पल, मिश्री ३ पल, गिलोय, सोया, कोयलकी जड़ १-१ पल लेकर चूर्ण कर लीजिए फिर उसमें भांगरेका रस डालकर घोटिए और धूपमें सुखाइये, इसी प्रकार भांगरेके रसकी सात भावना दीजिए।

इसे असमान मात्रामें मिले हुवे घृत और शहदके साथ मिलाकर १ कर्ष (१। तो०) की मात्रानुसार सेवन करनेसे अग्निमांद्य, ग्रहणी, आमातिसार, रक्तविकार, कुष्ठ, आमवात, विसर्प, पिड़िका, अन्त्रके रोग और उदररोग शान्त होते हैं।

(२००९) ज्वालामुखीचूर्णम्

(वं. से. । अजी.; ग. नि. । चू.)

हिङ्ग्वम्लवेतसकटुत्रिकचित्रकेभ्यः।
सक्षारपौष्करफलत्रिकदाडिमेभ्यः॥
कार्यःपृथग्गुडपलान्यवकुटथ चूर्णो।
ज्वालामुखोयमनलस्य करोति दीप्तिम्॥

हींग (घीमें भुना हुवा), अम्लवेत, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), चीता, यवक्षार, पोखरमूल, हर्र, बहेड़ा, आमला, अनारदाना और गुड़ १-१ पल [५ तोले] लेकर चूर्ण बना लीजिए।

यह "ज्वाला मुखी" चूर्ण अग्निकी वृद्धि करता है।

(मात्रा=२-३ माशे। गर्म पानी या अदरकके रसके साथ खाएं।)

इति जकारादिचूर्णप्रकरणम्

अथ जकारादि गुटिकाप्रकरणम्।

(२०१०) जयन्तीवटी [१]

(र. सा. सं. । ज्वर; र. चं. । रसा.)

विषं पाठाश्वगन्धा च वचा तालीशपत्रकम्।
मरिचं पिप्पली निम्बमजामूत्रेण तुल्यकम्।
वटिका पूर्ववत्कार्या जयन्ती योगवाहिका॥

प्रयोगविधिः—

जयन्ती च जया वाथ क्षीरैः पित्तज्वरापहा।
मुद्गामलकयूपेण पथ्यं देयं घृतं विना॥
जयन्ती वा जया वाथ सक्षौद्रमरिचान्विता।
सन्निपातज्वरं हन्ति रसश्चानन्द भैरवः॥

जयन्ती वा जया वाथ विषमज्वरनुद्घृतैः।
सर्वज्वरं मधुव्योषैः गवां मूत्रेण शीतकम् ॥
चन्दनस्य कषायेण रक्तपित्तज्वरापहा।
जयन्ती वा जया वाथ माक्षिकेण च कासजिद्॥
जयन्ती वा जया क्षीरैः पाण्डुशोथविनाशनी।
जयन्ती वा जया वाथ तण्डुलोदक पानतः॥
अश्मरीं हन्ति नो चित्रं मूत्रकृच्छ्रन्तु दारुणम्।
जयन्तीं वा जयां वाऽथ गोमूत्रेण युतां पिवेत्॥
हन्त्याशु काकणं कुष्ठं सुलेपेन च तद्द्रुतम्।
द्वि निष्कं केतकीमूलं पिष्ट्वा तोयेन पाययेत् ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ मेहं हन्ति सुराह्वयम्।
जयन्ती वा जया वाऽथ मधुना मेहजिद्भवेत् ॥
लोध्रमुस्ताभयातुल्यं कट्फलञ्च जलैःसह।
क्वाथयित्वा पिवेचाशु मधुना सर्वमेहजिद् ॥
जयन्तीं वा जयां वाथ गुडैः कोष्णजलैः पिवेत्।
त्रिदोषोत्थं हरेद्गुल्म रसश्चानन्दभैरवः ॥
जयन्ती वा जया हन्ति शुण्ठ्या सर्वं भगन्दरम्
जयन्ती वा जया वाऽथ तक्रेण ग्रहणीप्रणुत् ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ रसश्चानन्दभैरवः।
रक्तपित्ते त्रिदोषोत्थे शीततोयेन पाययेत् ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ घृष्ट्वा स्तन्येन चाञ्जयेत्
स्रावणं सर्वदोषोत्थं मांसवृद्धिश्च नाशयेत् ॥

शुद्ध वछनाग विष (मीठा तेलिया), पाठा, असगन्ध, वच, तालीसपत्र, स्याहमिर्च, पीपल और नीमकी छाल प्रत्येकका समान भाग चूर्ण मिलाकर, मिश्रणको बकरीके मूत्रमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए। यह 'जयन्ती वटिका' योगवाही है, अर्थात् जिस प्रकारके अनुपानके साथ सेवन की जाती है वैसा ही गुण करती है।

जयन्ती अथवा जयावटीको दूधके साथ देने से पित्तज्वरका नाश होता है। पथ्य=मूंगकी दालके यूष और आमलेके रसके साथ घृत रहित देना चाहिए।

जयन्तीवटी, जया वटी या आनन्द भैरवरस को स्याह मिर्चके चूर्ण और शहदके साथ देनेसे सन्निपात ज्वरका नाश होता है।

जयन्ती या जयावटीको विषमज्वरमें घृतके साथ, समस्त प्रकारके ज्वरोंमें त्रिकुटाका चूर्ण और शहदके साथ, शीतज्वरमें गोमूत्रके साथ, ज्वरयुक्त रक्तपित्तमें चन्दनके काढ़ेके साथ, खांसीमें शहदके साथ, पाण्डु और शोथमें दूधके साथ तथा पथरी और भयङ्कर मूत्रकृच्छ्रमें चावलोके पानीके साथ, सेवन कराना चाहिए। काकण कुष्ठमें जया या जयन्ती वटीको गोमूत्रमें पीसकर पिलाना और लेप करना चाहिए। ८ माशे केतकीकी जड़को पानीमें पीसकर उसके साथ जया वा जयन्तीवटी खिलानेसे सुरामेह नष्ट होता है।

शहदके साथ दवा (जयन्तीवटी) खिलाकर ऊपरसे लोध, मोथा, हर्र और कायफलके क्वाथमें शहद डालकर पिलानेसे समस्त प्रमेह नष्ट होते है। जया या जयन्ती वटी अथवा आनन्द भैरवरसको गुड़ और मन्दोष्ण जलके साथ देनेसे त्रिदोषज गुल्म नष्ट होता है। भगन्दरमें सोंठके साथ, ग्रहणीमें छाछके साथ, और त्रिदोषज रक्तपित्तमें शीतल जलके साथ सेवन कराना चाहिए।

जया अथवा जयन्ती वटीको स्त्रीदुग्धमें घिस-कर आंखमें आंजनेसे सर्वदोषज स्राव और मांस वृद्धि नष्ट होती है।

(२०११) जयन्तीवटी [२]

(र. र. स. । उ. ख. अ. २९)

वचाश्वगन्धामरिचोपकुल्या
तालीसमुस्तापिचुमन्दपाठाः ।
विषं च तेषां वटिका जयन्त्यः
फले प्रयोगे च जयासमाना ॥

बच, असगन्ध, मरिच, दन्तीमूल, तालीशपत्र, मोथा, नीमकी छाल, पाठा और शुद्ध वत्सनाभ (मीठा तेलिया)का चूर्ण समान भाग लेकर (पानीमें पीसकर १–१ माशेकी) गोलियां बना लीजिए।

फल और प्रयोगमें जयाके समान है।

जयवटिका (रसा. सा. । ज्व.)
रसप्रकरणमें देखिए।

जयागुटिका(र.सा.सं.;र.रा.सुं.;र.चं.।कास.)
रसप्रकरणमें देखिए।

(२०१२) जयागुटी (र.र.स.। उ.खं.। अ.२९)

वासामृताखदिरनिम्बविडङ्गपथ्या–
क्काथे विषत्रिकटु चित्रकलोहतिक्ताः ।
आवाप्य माषतुलिता वटिका प्रणीता
क्षौद्रान्विता क्षपयति क्षयकुष्ठजातम् ॥

बासा, गिलोय, खैरसार, नीमकी छाल, बायबिड़ङ्ग और हर्रके काथमें शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया), सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, लोहभस्म और कुटकीका समान भाग चूर्ण मिलाकर १–१ माशेकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें शहदके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके क्षय और कुष्ठरोग नष्ट होते है।

[बछनागादि प्रत्येक वस्तुका चूर्ण १ तोला। काथ २८ तोले। अच्छी तरह घोटकर गोलियां बनाएं।]

(२०१३) जयादिवटी (आ.वे.वि.। अ.७९)

मूलं रक्तोत्पलभवं विजयासारमेव च ।
अपामार्गस्य मूलञ्च कन्यासारं समं समम् ॥
मर्दयित्वा वटी कुर्यात् रक्तिद्वयमिताः शुभाः॥
सेवनादाशु नश्यन्ति वेदनाः कटिसम्भवाः ॥
जरायुशूलं बाधाश्च तथा कष्टरजांसि च ।
जयादिवटिका नाम महादेवेन भाषिता ॥

लाल कमलकी जड़, विजयासार (भांगका सत–घन[1]), अपामार्ग (चिरचिटे) की जड़, और एलवा [मुसब्बर] समान भाग लेकर खूब बारीक पीसकर पानीके साथ घोटकर २–२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे कमरका दर्द, जरायुशूल, वन्ध्यत्व [बांझपना] और कष्ट रज (मासिकधर्मके समय कष्ट होना) का नाश होता है।

(२०१४) जयावटी

(र. स. क.। वि. ५; र. चं. । रसा.; र. सा. सं. । ज्वर; रसे. चि.। अ. ८; आयु. वे. प्र.। अ. १)

विषं त्रिकटुकं मुस्तं हरिद्रा निम्बपत्रकम् ।
विडङ्गमष्टमं चूर्णं छागमूत्रैःसमं समम् ॥
चणकाभा वटी कार्या स्याज्जया योगवाहिका ॥

शुद्ध वत्सनाभ (मीठा तेलिया), त्रिकुटा(सोंठ, मिर्च, पीपल), नागरमोथा, हल्दी, नीमके पत्ते और बायबिड़ङ्गका चूर्ण समान भाग लेकर बकरी

१–भांगको १६ गुने पानीमें पकाएं, चौथा भाग शेष रहने पर छानकर उस काढ़ेको पुनः पकाकर गाढ़ा करले। यही 'विजयासार' है।

के मूत्रमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए। यह "जयावटी" योगवाही है। अर्थात् जिस प्रकारके अनुपानके साथ दी जाती है वैसा ही गुण करती है।

(अनुपानादि "जयन्तीवटी"में देखिए।)

(२०१५) जातीफलादिवटी [१]

(वृ. नि. र., वै. र. । अति.)

जातीफलं च खर्जूरमहिफेनं तथैव च ।
समभागानि सर्वाणि नागवल्लीरसेन च ।
वल्लमात्रा वटी कार्या देया तक्रानुपानतः ।
अतिसारं जयेद्घोरं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥

जायफल, खजूर (छुहारा) और अफीम समान भाग लेकर पानके रसमें घोटकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें तक्रके साथ सेवन करनेसे भयङ्कर अतिसार भी नष्ट हो जाता है।

(२०१६) जातीफलादिवटी [२]

(यो. त. । त. ८०; वृ. यो. त. । त. १४७)

जातीफलं टङ्कमितमहिफेनं च टङ्कम् ।
अजमोदा चैकटङ्का चन्द्रसं चैकटङ्ककम् ॥
सितोपला त्रिटङ्का स्यात्पञ्चटङ्को गुडो मतः ।
बुद्ध्या सम्मेल्य वटिकाः कार्याद्वादश तुल्यशः॥
तत्रैकां भक्षयेद्धीमान्शुक्रं स्तम्भयति ध्रुवम् ॥

जायफल १ टङ्क (४ मापे), अफीम १ टङ्क, अजमोद १ टङ्क, कपूर १ टङ्क, वंसलोचन ३ टङ्क और गुड़ ५ टङ्क लेकर सबका महीन चूर्ण करके गुड़में मिलाकर सबकी १२ गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली खानेसे वीर्य स्तम्भन होता है।

(२०१७) जातीफलादिवटी [३]

(यो. त. । त. ८०; वृ. यो. त. । त. १४७)

जातीफलार्क करहाटलवङ्गशुण्ठी
कङ्कोलकेसरकणा हरिचन्दनञ्च ।
एतत्समानमहिफेनमचन्द्रमभ्रं
सर्वैः समं न सहते रति विन्दुपातम् ॥
सर्वैःसमांशा खलु शर्करा तु
देया भिषग्भिरखिलार्थविद्भिः ।
घृतेन सार्द्धं मधुना च सार्कं
कृत्वा वटीं टङ्कमितां च दद्यात् ।

जायफल, अर्क (आक) की जड़, अकरकरा, लौङ्ग, सोठ, कङ्कोल, केसर, पीपल और मलयागिरि चन्दनका चूर्ण १-१ भाग। अफीम ९ भाग, निश्चन्द्र अभ्रक १८ भाग और खांड ३६ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर महीन करके शहदके साथ १-१ टङ्क (४-४ माशे) की गोलियां बना लीजिए।

इन्हें शहद और घीके साथ सेवन करनेसे वीर्यस्तम्भन होता है।

जातीफलाद्या वटिका

(र. सा. सं.; भै. र.; र. र. । ग्रह)

रसप्रकरणमें देखिए।

(२०१८) जात्यादिगुटिका (ग.नि.।मुखरो.)

जातीकर्पूरपूगानि कङ्कोलकफलानि च ।
इत्येषां गुटिका कार्या मुखसौभाग्यवर्धिनी ॥
दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्वातात्वामयेषु च ॥

जावित्री, कपूर, सुपारी (चिकनी) और कङ्कोल। समान भाग लेकर पानीमें पीसकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें मुंहमें रखनेसे मुंहकी दुर्गन्ध, तथा दन्त, होठ, मुख, जिह्वा और तालुके रोग नष्ट होकर मुंहमें सुगन्धि आने लगती है।

(२०१९) जीरकादिमोदकः [१]

(यो. र.; भा. प्र. । म. ख. स्त्री.)

जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी सुरभिर्वचा ।
वासकः सैन्धवश्चापि यवक्षारो यवानिका ॥
एषां चूर्णं घृते किञ्चिद्भृष्ट्वा खण्डेन मोदकम् ।
कृत्वा खादेद्यथावह्नि योनिरोगात्प्रमुच्यते ॥

काला ज़ीरा, सफेद जीरा, पीपल, कलौंजी, कणगूगल, बच, वासा, सेंधानमक, जवाखार और अजवायनका चूर्ण समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर सबको थोड़ेसे घीमें भूनकर (सबके बराबर) खांडकी चाशनीमें मिलाकर मोदक बना लीजिए।

इन्हें यथोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे योनिरोग नष्ट होते हैं।

(साधारण मात्रा १ तोला। अनुपान दूध।)

(२०२०) जीरकादिमोदकः [२] (भै. र. ।ग्रह)

श्लक्ष्णचूर्णीकृतं जीरं पलाष्टकमितं शुभम् ।
तदर्धविजयाबीजं भर्जितं वस्त्रपूतकम् ॥
अयश्चूर्णं तथा वङ्गमभ्रकं कर्षमानतः ।
मधूरिकं च तालीशं जातीकोषफले तथा ॥
धान्यकं त्रिफला चैव चातुर्जातलवङ्गकम् ।
शैलेयं चन्दने द्वे च मांसी द्राक्षा शटी तथा ॥
टङ्कनं कुन्दुरुर्यष्टि तुगा कङ्कोलवालकम् ।
गाङ्गेरुस्त्रिकटुश्चैव धातकी बिल्वमर्जुनम् ॥
शतपुष्पा देवदारु कर्पूरं सप्रियङ्गुकम् ।
जीरकं शाल्मलश्चैव कटुका पद्मनालके ॥
एषां कर्षसमं चूर्णं गृह्णीयात्कुशलो भिषक् ।
शर्करामधुनाज्येन मोदकश्च विनिर्मितम् ॥
खादेत्कर्षसमन्तस्य प्रत्यहम्प्रातरुत्थितः ।
शीततोयानुपानेन सर्वग्रहणिकां जयेत् ॥
आमदोषावृते पित्ते वह्निमान्द्ये तथैव च ।
रक्तातिसारेऽतीसारे प्रयोज्यं विषमज्वरे ॥
सशब्दं घोरं गम्भीरम् हन्ति सद्यो न संशयः ।
अम्लपित्तकृतं दोषमुदरं सर्वरूपिणम् ॥
सर्वातीसारशमनं संग्रहग्रहणीं जयेत् ।
एकजं द्वन्द्वजं चैव दोषत्रयकृतं तथा ॥
विकारं कोष्ठजश्चैव हन्ति शूलमरोचकम् ।
भाषितं वृष्णिनाथेन जन्तूनां हितकारणम् ॥

ज़ीरेका महीन चूर्ण ८ पल (४० तोले), भांगके भुने हुवे बीजोका कपड़छन चूर्ण ४ पल, लोहभस्म १। तोला, बङ्ग भस्म १। तोला, अभ्रक भस्म १। तोला, ईखकी जड़, तालीसपत्र, जावित्री, जायफल, धनिया, हर्र, बहेड़ा, आमला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौङ्ग, भूरिछरीला, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, जटामांसी, मुनक्का, कचूर, सुहागेकी खील, कुन्दरु गोंद, मुलैठी, वंसलोचन, कङ्कोल, सुगन्धबाला, गङ्गेरनकी छाल, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), धायके फूल, बेलगिरी, अर्जुनकी छाल, सौंफ, देवदारका बुरादा, कपूर, फूल प्रियंगु, जीरा, सेंभलका गोंद, कुटकी और कमलनालका चूर्ण १।-१। तोला लेकर सबको जरा

घीमें भून लीजिए और फिर मिश्रीकी चाशनीमें मिला दीजिए। जब ठण्डी हो जाय तो उसमें शहद मिलाकर १।-१। तोले के मोदक बना लीजिए।

प्रतिदिन प्रातःकाल शीतल जलके साथ १-१ मोदक खानेसे सर्व प्रकारके ग्रहणी रोग, आमाच्छादित पित्तरोग, अग्निमांद्य, अतिसार, रक्तातिसार, विषमज्वर, पेटमें अत्यधिक गुड़गुड़ाट शब्द होना, अम्लपित्त, एक दोषज, द्विदोषज और सन्निपातज उदररोग, शूल और अरुचिका नाश होता है।

इस औषधका आविष्कार श्री महादेव महोदयने संसारके कल्याणके लिए किया है। (इस प्रयोगमें मिश्री समस्त चूर्णके बराबर लेनी चाहिए।)

जीरकादिमोदकः [बृहद्] (भै. र. । ग्र.)

बृहज्जीरकादि मोदक देखिए।

(२०२१) जीरकाद्या गुटिका (ग.नि.।गुटिका)

जीरकभागद्वितयमेको भागस्तथैव मरिचस्य।
द्वौ भागौ सिन्धूत्थाद्धिङ्गोर्भागश्चतुर्थांशः॥
कार्या गुडेन वटिकाऽजीर्णालसकौ विषूचिकाध्मानौ।
हन्ति सुखोदकपीताऽनुलोमिनी मूढवातस्य॥

ज़ीरा २ भाग, काली मिर्च १ भाग, सेंधानमक २ भाग, और भुनी हुई हींग ¼ चौथाई भाग। सब चीजोंके महीन चूर्णको (समान भाग) गुड़में मिलाकर (६-६ माशेकी) गोलियां बना लीजिए।

इन्हे सुखोदक (कुछ गर्म) पानीके साथ सेवन करनेसे अजीर्ण, अलसक, विसूचिका और अफारा नष्ट होता है, तथा अपानवायु खुलता है।

(२०२२) जीरकाद्यो मोदकः [१]

(भै. र. । स्त्री.)

जीरकस्य पलान्यष्टौ शुण्ठी धान्यं पलत्रयम्॥
शतपुष्पा यमानी च कृष्णजीरं पलं पलम्॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं पलम्।
घृतस्यापि पलान्यष्टौ शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥
व्योषं त्रिजातकञ्चैव विडङ्गं चव्यचित्रकम्।
मुस्तकञ्च लवङ्गञ्च पलांशं संप्रकल्पयेत्॥
मन्देन वह्निना पक्त्वा मोदकं कारयेद्भिषक्।
सर्वयोषिद्विकाराणाम् नाशनं वह्निदीपनम्।
सूतिकारोगशमनं विशेषाद्ग्रहणीहरम्॥

जीरेका चूर्ण ८ पल (४० तोले), सोंठ और धनियेंका चूर्ण ३-३ पल, सोया (अथवा सौंफ), अजवायन और काले ज़ीरेका चूर्ण १-१ पल (५-५ तोले), दूध ३२ पल (२ सेर) और खांड ५० पल तथा घी ८ पल लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्निपर पकाइये। जब चाशनी आ जाय तो उसमें त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), दालचीनी, तेजपात, वायविडङ्ग, चव, चीता, मोथा और लौंगका १-१ पल [५-५ तोले] चूर्ण मिलाकर मोदक बना लीजिए।

इन्हें सेवन करनेसे समस्त स्त्रीरोग, विशेषतः सूतिका रोग और संग्रहणी नष्ट होती तथा अग्नि दीप्त होती है।

(मात्रा १ तोला। अनुपान गर्म दूध या जल।)

(२०२३) जीवकाद्यो मोदकः [२]

(च. चि. । कासा.)

जीवकाद्यैर्मधुरकैः फलैश्चाभिषुकादिभिः।
कल्कैस्त्रिकार्षिके सिद्धे पूते शेषे च सर्पिषि ॥
शर्करापिप्पलीचूर्णस्त्वक्क्षीर्या मरिचस्य च।
शृङ्गाटकस्य चावाप्यक्षौद्रगर्भान् पलोन्मितान्॥
गुडान् गोधूमचूर्णेन कृत्वा खादेद्धिताशनः।
शुक्रासृग्दोषशोषेषु कासे क्षीणक्षतेषु च ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलैठी और पिस्ता, बदाम, इत्यादि फलोंकी गिरी ३–३ कर्ष [प्रत्येक ३॥। तोले] लेकर पीसकर उसके साथ ४ गुना घृत पकाएं। पाकके समय घृतसे ४ गुना पानी भी अवश्य डालना चाहिए। जब समस्त पानी जल जाय तो घृतको छानलें। तत्पश्चात् उसमें मिश्री, पीपल, बंसलोचन, स्याह-मिर्च और सिंघाडेका चूर्ण (सब समान भाग मिश्रित) घृतका चतुर्थांश मिलाएं और फिर इस समस्त मिश्रणके बराबर घृतमें भुना हुवा गेहूंका आटा और गुड़ मिलाकर थोड़ा शहद डालकर १–१ पल [५–५ तोले]के लड्डू बना लीजिए।

इन्हें पथ्य पालनपूर्वक शुक्र दोष, रजोविकार, शोष, खांसी और क्षत क्षीणादिमें सेवन करना चाहिए।

(२०२४) जैपालवटी

(वै. र.; र. रा. सुं.; भा. प्र. । ज्वर.)

शुद्धजैपालटङ्कन्तु कट्वी टङ्कद्वयोन्मिताम्।
गैरिकं टङ्कमेकन्तु कन्यानीरेण मर्दयेत् ॥
कलायसदृशी कार्या वटिका तां च भक्षयेत्।
शीतलेन जलेनैषा वटी जीर्णज्वरापहा ॥

शुद्ध जमालगोटा १ टङ्क (५ माशे), कुटकी २ टङ्क और गेरु एक टङ्क। सबके महीन चूर्णको घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रसमें घोटकर मटरके समान गोलियां बना लीजिए।

इन्हें शीतल जलके साथ सेवन करनेसे जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

(ज्वरघ्नीवटी)

रसप्रकरणमें देखिए।

(२०२५) ज्योतिष्मतीगुटिका

(वैद्यामृत । वि. १८)

तेजोह्वा प्रस्थमेकं पयसि
गजगुणे पाकयुक्त्या विपाच्यम्।
व्योषं पथ्यां शताह्वां कृमिरिपु-
मनलं ग्रन्थिकं चाजमोदम् ॥
उग्रा कुष्ठाश्वगन्धौ सुरतरु-
ममृतं पालिकानि प्रदद्यात्।
सर्वान्वातान्वटीयं घृतमधु-
सहिता नास्तिभावान्करोति ॥

१ सेर मालकंगनीको ८ सेर पानीमें पकाइये जब १ सेर पानी शेष रहे तो उसे छानकर उसमें १–१ पल (५–५ तोले) त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, सोया, वायविडङ्ग, चीता, पीपलामूल, अजमोद, वच, कूठ, असगन्ध, देवदारु और शुद्ध बछनागका चूर्ण मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हे घी और शहदके साथ सेवन करनेसे समस्त वातरोग नष्ट होते है।

(नोट—यदि १ सेर पानी अधिक मालूम हो तो उसे पकाकर गाढा करके चूर्ण मिलाना चाहिए। मात्रा=१ माशा।)

(२०२६) ज्वरनाशिनी गुटिका

(र. स. क. । उला. ५)

एल्वालुकाभयाबोलमिन्द्रागुग्गुलसंयुता।
स्नुहीक्षीरेण गुटिका शोधनी ज्वरनाशिनी ॥

एलवा, हर्र, बोल (बीजाबोल—मुरमुकी गोंद), इन्द्रायणकी जड़ और गूगल समान भाग लेकर चूर्ण करके सबको स्नुही (थोहर—सेंड) के दूधमें एकत्र खरल करके (चनेके बराबर) गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे विरेचन होकर ज्वर नष्ट हो जाता है।

[मात्रा=१–२ गोली। अनुपान ठण्डा पानी।]

॥ इति जकारादिगुटिकाप्रकरणम् ॥

अथ जकाराद्यवलेहप्रकरणम्।

(२०२७) जम्बूत्वचाद्योऽवलेहः

(हा. स. । स्था. ३, अ. ३)

जम्बूत्वचं वत्सकवल्कलञ्च
निकाथ्य नूनं सलिले समीरणम्।
चतुर्विभागेश्वपि शेषितेषु
उत्तार्य वस्त्रेष्वथ गालयेच्च ॥
पुनःकटाहे विपचेच्च सम्यक्
दर्वीप्रलेपः स्वरसन्तु यावत्।
उत्तार्य शीते मधुना विमिश्र
लीढं हरेदप्यतिसारमुग्रम् ॥
आमं सपित्तं कुणपं जलाभं पूयसन्निभम्।
नाशयेत्पीतमात्रेण तमःसूर्योदये तथा ॥

जामन और कुडेकी छाल समान भाग लेकर चार गुने पानीमें पकाइये; जब चौथा भाग शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए। इस काथको पुन पकाकर गाढा कर लीजिए। जब अवलेह तैयार हो जाय (करछलीको चिपकने लगे) तो उतारकर ठण्डा कर लीजिए। इसमें शहद मिलाकर चाटनेसे भयङ्कर अतिसार भी नष्ट हो जाता है।

यह अवलेह आमातिसार और पानी तथा राध (पीप) के समान एवं मुरदेकी सी गन्धवाले अतिसारमें भी तुरन्त लाभ पहुंचाता है।

(मात्रा=१ तोला)

(२०२८) जातिपत्रादिलेहः

(ग. नि. । मुख.; रा. मा. । मुख.)

जातीपत्रं* कणा लाजा मातुलुङ्गदलं मधु।
एला लेहे भवेन्नादः किन्नरस्वरतोऽधिकः ॥

जावित्री, पीपल, धानकी खील, विजौरे नींबूके पत्ते और इलायची समान भाग लेकर पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे स्वर अत्यन्त मधुर हो जाता है।

* बृहन्निघण्टुरत्नाकरमें जातीपत्रके स्थानमें जातीफल पाठ है।

(२०२९) जातीरसावलेहः

(वृ. नि. र. । तृष्णा, वृं. मा. । छर्दि.)

जात्या रसःकपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः ।
क्षौद्रेण युक्तःशमयेल्लेहोयं छर्दिमुल्वणाम् ॥

चमेलीके पत्ते और कैथका स्वरस और पीपल तथा मरिचका चूर्ण एवं शहदको एकत्र मिलाकर चाटनेसे छर्दि नष्ट होती है ।

(२०३०) जीरकखण्डः (यो. चि.। अ. ७)

जीरकं भागमेकं स्यात्खण्डस्तद्द्विगुणस्मृतः ।
चतुर्गुणं घृतं तप्तं सर्वं सम्मील्य मुद्रयेत् ॥
गोधूमपुञ्जमध्ये च चतुर्दशदिनान् स्थितम् ।
माघमासे कृतं चैतत् भक्षितं चक्षुषोर्हितम् ॥

ज़ीरेका चूर्ण १ भाग, खांड २ भाग और तपाया हुवा घी ४ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर मिट्टी या पत्थरके स्वच्छ और चिकने बरतनमें भरकर उसके मुखपर शराव ढककर कपरौटी कर दीजिए। इसे अनाजके ढेरमें दवा दीजिए और १४ दिन पश्चात् निकालकर काममें लाइये ।

यह प्रयोग आंखोके लिए हितकारी है। इसे माघ मासमें सेवन कराना चाहिए ।

(मात्रा=१ तोला । अनुपान=गर्म दूध ।)

(२०३१) जीरकावलेहः

(वृ. नि. र., यो. र.; वै. र.। स्त्री.; यो. त.। त. ७४; वृ. यो. त. । त. १३५)

जीरकं प्रस्थमेकं तु क्षीरं ह्याढकमेव च ।[१]
प्रस्थार्धं लोध्रघृतयोः पचेन्मन्देन वह्निना ॥
लेहीभूतेथ शीतेऽत्र सिताप्रस्थं विनिक्षिपेत् ।
चातुर्जातं कृष्णविश्वमजाजीमुस्तबालकम् ॥
दाडिमं रसजं धान्यं रजनी पटवासकम् ॥
वंशजं च तवक्षीरी प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥
जीरकस्यावलेहोऽयं प्रमेहप्रदरापहः ।
ज्वराबल्यरुचिश्वासतृष्णादाहक्षयापहः ॥

ज़ीरा १ प्रस्थ [८० तोले], दूध ४ प्रस्थ, घी आधा प्रस्थ, लोधका चूर्ण आधा प्रस्थ। सबको मन्दाग्नि पर पकाकर गाढ़ा कर लीजिए। तत्पश्चात् उसे ठण्डा करके उसमें १ प्रस्थ मिश्री और २॥–२॥ तोले दालचीनी, तेजपात,इलायची, नागकेसर, पीपल, सोंठ, ज़ीरा, मोथा, सुगन्धबाला, अनारदाना, रसौत, धनियां, हल्दी, कपूर, वंसलोचन और गधशटीका चूर्ण मिला दीजिए । यह 'जीरकावलेह' प्रमेह, प्रदर, ज्वर, निर्बलता,अरुचि, श्वास, तृष्णा, दाह और क्षयका नाश करता है ।

(मात्रा=१ तोला । अनुपान=दूध)

॥ इति जकाराद्यवलेहप्रकरणम् ॥

अथ जकारादि घृतप्रकरणम् ।

(२०३२) जात्यादिघृतम्

(वृ. नि. र., यो. र.; भै. र; वं. से., वै. र; वृ. मा.; च. द.; शा. सं, धन्व., र.र.। व्र.रो., यो. त.। त. ६०, वृ. यो. त.। त. १११)

जातीपत्रपटोलनिम्बकटुकादार्वीनिशासारिवा-
मञ्जिष्ठाभयतुत्थसिक्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितैः
सर्पिःसिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताःस्राविणी
गम्भीराःसरुजी व्रणाः सगतिकाःशुध्यन्ति रोहन्ति च ॥

१ द्व्याढकमिति पाठान्तरम् ।

चमेलीके पत्ते, पटोल, नीमके पत्ते, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी. सारिवा, मजीठ, खस, नीला-थोथा, मोम, मुलैठी और करञ्जवेके बीजोंके कल्कके साथ घृत पका लीजिए। अथवा इन समस्त चीज़ोंको (मोमके अतिरिक्त) खूब महीन पीसकर और मोमको पिघलाकर घीमें मिला लीजिए। यदि पकाना हो तो प्रत्येक वस्तु १।-१। तोला, गायका घी ६५ तो.; और पानी २६० तोले लेना चाहिए।

इसको मरहमकी भांति लगानेसे मर्मस्थानोंके घाव, पीपयुक्त घाव, तथा गहरे, पीड़ायुक्त और जिनका मुख छोटा हो वह घाव एवं नासूर शुद्ध होकर भर जाते हैं। *

(२०३३) जात्यादिघृतम् [१]

(हा. सं. । स्था. ३ अ. ४८)

जातीकरञ्जपिचुमन्दपटोलपत्रै-
र्यष्टीमधुश्च रजनी कटुरोहिणी च।
मञ्जिष्ठकोत्पलमुशीरकरञ्जबीजम्
स्यात्सारिवा त्रिवृन्मागधिका समांशा॥
पक्वं घृतं च हितमेव व्रणे प्रशस्तं
नाडीगते च सरुजे च सशोणिते च।
लूताविसर्पमपि हन्ति गभीरके च
दग्धव्रणं सकठिनन्त्वपि रोहयन्ति॥

चमेलीके पत्ते, करञ्जवेके पत्ते, नीमके पत्ते, पटोलपत्र, मुलैठी, हल्दी, कुटकी, मजीठ, नीलोफर, खस, करञ्जकी गिरी, सारिवा, निसोत और पीपल का कल्क १-१ तोला, गायका घी ५६ तोले और पानी २२४ तोले। सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये। जब सब पानी जल जाय तो उतारकर छान लीजिए।

यह घृत नाड़ीव्रण (नासूर), पीड़ायुक्त व्रण, और जिससे रक्त निकलता हो उस व्रणको तथा मकड़ीका फलना, अग्निसे जलना और कठिन तथा गहरे व्रण (घाव) को नष्ट करता है।

नोट-इस प्रयोगमें और प्रयोग सं. २०३२ में केवल इतना ही अन्तर है कि उसमें करञ्जपत्र, नीलोफर और निसोत नहीं है तथा दारु हल्दी, नीलाथोथा और मोम अधिक है।

(२०३४) जात्यादिघृतम् [२] (रा.मा.।स्त्री.)

संयोजितंपह्लवपञ्चकेनजातीप्रसूनैर्मधुकान्वितैश्च।
सूर्यांशुतप्तंघृतमङ्गनानामभ्यङ्गतोहन्तिवराङ्गगन्धम्॥

आम, जामन, कैथ, बिजौरा और बेलके पत्ते मुलैठी तथा चमेलीके फूल समान भाग लेकर खूब महीन पीसकर चार गुने गोघृतमें मिलाकर धूपमें रख दीजिए।

[१० दिन पश्चात् शीशी या मर्तबानमें भरकर रख लीजिए।]

इसकी मालिश से योनिकी दुर्गन्ध नष्ट होती है।

(२०३५) जीमूतकादिघृतम् (ग.नि.।ग्रन्थ्य.)

जीमूतकैः कोषवतीफलैश्च
दन्तीद्रवन्तीत्रिवृतासु चैव।
सर्पि कृतं हन्त्यपचीं प्रवृद्धां
द्विधा प्रवृत्तं तदुदारवीर्यम्॥

* रसरत्नसमुच्चयमें इस प्रयोगमें मोमके स्थानमें तेजपात लिखा है। तथा कुटकी, हल्दी और दारुहल्दी नहीं है।

जीमूत (देवदाली फल), कड़वी तूंबी, दन्ती, द्रवन्ती और निसोतके कल्क तथा काथसे पकाया हुवा घृत लगाने और खानेसे प्रवृद्ध अपची (गण्डमाला भेद) का नाश होता है।

(घृत पकानेके लिए कल्कसे चार गुना घी और घीसे चार गुना काथ लेना चाहिये।)

(२०३६) जीरकघृतम् [१] (वं. से.। अजी.)

द्वे जीरके चित्रकं चव्यं यवानी नागरं तथा।
पलिकानि च तत्सर्वं पञ्चैव लवणानि च ॥
आरनालाढकं दत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
एतदग्निविवृद्ध्यर्थमर्शसां नाशनं परम् ॥

काला जीरा, सफेद ज़ीरा, चीता, चव्य, अजवायन, सोंठ, काला नमक, सेधा नमक, कांच लवण (कचलौना), खारी नमक और सामुद्र लवणका कल्क एक एक पल (५ तोले), काञ्जी ४ सेर तथा घी १ सेर लेकर एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये और घृत मात्र शेष रहने पर छान लीजिए।

इसके सेवनसे अग्निकी वृद्धि और अर्शका नाश होता है।

(मात्रा=१ तोला। अनुपान=गर्म पानी या दूध।)

(२०३७) जीरकघृतम् [२] (भै.र.;च.द.।व्रण)

जीरकैपक्वं पश्चात् सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हरति
घृतमभ्यङ्गात्पावकदग्धजदुःखं क्षणार्द्धेन।

८० तोले ज़ीरेको ३२० तोले पानीमें पकाइये जब ८० तोले पानी रह जाय तो छानकर उसमें जीरेका ५ तोले कल्क और २० तोले गोघृत मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये। जब घृत मात्र शेष रह जाय तो छानकर उसमें १।-१। तोला मोम और राल मिला लीजिए।

इसे लगानेसे अग्निसे जले हुवे घावकी पीड़ा तत्काल शान्त हो जाती है।

(मोमको पिघलाकर और रालको पीसकर मिलाना चाहिए।)

नोट—राजमार्तण्डमें इसी प्रयोगमें मोमके स्थानमें मैनफल लिखा है।

(२०३८) जीरकाद्यं घृतम्

(यो. र.; वृं. मा., च. द.; वृ. नि. र.। अम्ल.)

पिष्ट्वाजाजीं सधान्यैकं घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं जयेत् ॥

ज़ीरे और धनियेंके कल्कके साथ पकाया हुवा घी सेवन करनेसे कफपित्तज अरुचि, मन्दाग्नि और वमनका नाश होता है। मात्रा १ से २ तोले तक। अनुपान=गर्म पानी।

(ज़ीरा ५ तोले, धनियां ५ तोले, पानी १६० तोले, घी ४० तोले) एकत्र मिलाकर पकाएं।

(२०३९) जीवनीयघृतम् (सु.सं.। चि.अ.५)

जीवनीयप्रतीवापं सर्पिःपयसा पाचयित्वाऽभ्यञ्जयेत् ॥

जीवनीयगणके कल्क और दूधके साथ पकाए हुवे घृतकी मालिशसे वातरक्त रोग नष्ट होता है।

---

१ जीवकेति पाठान्तरम्।

२ समधुकमिति पाठभेदः। धनियेंकी जगह किसी किसी ग्रन्थमें मुलैठी भी लिखी है। ३ पित्ताम्लकहरमिति पाठान्तरम्। ४ जीवनीयगण जकारादि काथ प्रकरणमें देखिए।

(कल्कके समस्त द्रव्य समान मात्रामें मिले और पानीके साथ पिसे हुवे १ भाग, घी ४ भाग दूध १६ भाग। मिलाकर पकाएं।)

(२०४०) जीवन्तीयमकः (वं. से.। वाजी.)

जीवन्त्यतिबलामेदाकाकोलीद्वयजीरकैः।
समभागीकृतैःकृष्णाकाकनासारसायनैः॥
स्वयंगुप्ताशठीशृङ्गीजीवकशारिवाद्वयैः।
सहाचरवराविश्वापिप्पलीमूलभर्जनैः॥
पिष्टैस्तैलं घृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेन च।
दत्तमनुवासनैर्ज्ञेय शुक्राग्निबलवर्धनम्॥
बृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहरं परम्।
नस्यैःपानैश्चसंयुक्तमूर्ध्वजत्रुगदापहम्॥

जीवन्ती, अतिबला (कंघ), मेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ज़ीरा, पीपल, काकनासा, गिलोय, कौंचके बीज, कचूर, काकड़ासींगी, जीवक, श्वेत-सारिवा, कृष्ण सारिवा, पिया बांसा, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोठ और पीपलामूलका कल्क (पिट्ठी) समान भाग, और सबसे दो दो गुना घी तथा तैल, एवं तैलसे १६ गुना गायका दूध लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये। जब समस्त दूध जल जाय तो छान लीजिए।

इसे स्नेहवस्तिद्वारा प्रयुक्त करनेसे बल, वीर्य और जठराग्निकी वृद्धि होती है। वातपित्त, गुल्म और अफारा नष्ट होता है तथा इसे पीने और इसकी नस्य देनेसे समस्त ऊर्ध्वजत्रुगत (गलेसे ऊपरके) रोग नष्ट होते हैं।

(२०४१) जीवन्त्यादिकं घृतम्

(वृ. नि. र.। क्षय.)

जीवन्तिकावत्सकयष्टिकानां
सपौष्करं गोक्षुरकं बले द्वे।
नीलोत्पलं तामलकी यवासं
सत्रायमाणा मगधा च कुष्ठम्॥
द्राक्षामलक्या रसप्रस्थमेकं
प्रस्थद्वयं छागलकं पयश्च।
प्रस्थं तु दध्नो विपचेद् घृतं वै
पाने प्रशस्तं च तथैव भोज्ये॥
नस्ये च बस्तावपि योजयेत् तत्
विनाशमेत्याशु च राजयक्ष्मा।
हलीमककामलपाण्डुरोगो
मूर्च्छा भ्रमःकम्पशिरोऽर्तिशूलम्॥
मेहाश्मरी वा गुदकीलकुष्ठं
शिरोगतो नाशमुपैति रोगः।
नस्यप्रदानेन प्रयोजितेन
पानेन पाण्डवामयराजयक्ष्मा॥
नाशं शमं यान्ति हलीमको वा
वस्तिप्रदानेन गुदोद्भवश्च।
रोगो विनाशं समुपैति पुंसां
विसर्पविस्फोटकप्रोक्षणेन॥

जीवन्ति, कुड़ेकी छाल, मुलैठी, पोखरमूल, गोखरु, बला (खरैटी), अतिबला (कंघी), नीलोत्पल (नीलोफर), भुई आमला, जवासा, त्रायमाणी, पीपल, कूठ, मुनक्का (द्राक्षा) और आमला। समान भाग मिलाकर १ प्रस्थ [८० तोले] लें और सबको कूटकर ४ प्रस्थ पानीमें पकाएं। जब १ प्रस्थ पानी शेष रहे तो छानले। तत्पश्चात् यह क्वाथ, २ प्रस्थ बकरीका दूध, १ प्रस्थ दही और १ प्रस्थ घृतको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं।

जब केवल घृत शेष रह जाय तो उतारकर छान लें।

इसे पिलाने, भोजनके साथ खिलाने, और नस्य तथा बस्तिद्वारा प्रयुक्त करनेसे राजयक्ष्मारोग नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त यह हलीमक, कामला, पाण्डु, मूर्च्छा, भ्रम, कम्प, शिरःशूल, प्रमेह, अश्मरी और बवासीरका नाश करता है।

इसे शिरोरोगमें नस्य द्वारा प्रयुक्त करना चाहिए, राजयक्ष्मा और पाण्डुरोगमें पिलाना चाहिए, बवासीरमें इसकी वस्ति देनी चाहिए और विसर्प विस्फोटकादि त्वग्रोगोमें इसकी मालिश करनी चाहिए।

नोट—जीवन्तीसे लेकर कूठ तककी औषधे क्काथमें न डालकर उनका कल्क भी डाला जा सकता है। कल्कके लिए सब चीजे समान भाग मिलाकर २० तोले लेनी चाहिएं और फिर आमले तथा मुनक्केका रस या क्काथ १-१ प्रस्थ (८० तोले) लेना चाहिए।

(२०४२) जीवन्त्याद्यं घृतम् [१]

(ग. नि. । प. घृता. ७; च. सं. । चि. क्षय.; यो. त. । त. ७१; यो. र., च. द.; भै. र.; वं. से.; वृं. मा. । राजयक्ष्मा)

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च।
शटीं पुष्करमूलञ्च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम्।
पिप्पलीं च समां पिष्ट्वा घृतमेभिर्विपाचयेत् ॥
एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम्।
रूपमेकादशविधं सर्पिरग्रयं व्यपोहति ॥

जीवन्ती, मुलैठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पोखरमूल, कटेली, गोखरु, खरैंटी, नीलोत्पल(नीलोफर), भुई आमला, त्रायमाणा, धमासा और पीपल समान भाग लेकर पानीसे पीसलें और इन सबसे चार गुना घी तथा घीसे चार गुना इन्हीका क्काथ लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाएं।

इसके सेवनसे एकादशरूप और कष्ट साध्य राजयक्ष्मा भी नष्ट हो जाता है।

(२०४३) जीवन्त्याद्यं घृतम् [२]

(ग. नि. । घृता.; वा. भ. उ. । अ. १३)

तुलां पचेद्धि जीवन्त्या द्रोणेऽपां पादशेषितः।
दत्त्वा चतुर्गुणं[१] क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
प्रपौण्डरीककाकोलीपिप्पलीरोध्रसैन्धवैः।
शताह्वामधुकद्राक्षासितादारुफलत्रयैः ॥
कार्षिकैर्निशि तत्पीतं तिमिरापहं परम् ॥

१ तुला [६। सेर] जीवन्तीको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें पकाएं। जब चार सेर पानी शेष रहे तो छानलें। तत्पश्चात् यह क्काथ, ४ सेर दूध और प्रपौण्डरीक (पुण्डरिया), ककोली, पीपल, लोध, सेधा, सोया (या सौंफ), मुलैठी, मुनक्का (द्राक्षा), मिश्री, देवदारु, हर्र, बहेड़ा और आमलेका १-१ कर्ष [१।-१। तोला] कल्क तथा १ सेर घृतको एकत्र मिलाकर पकावें। क्काथ और दूध जल जाने पर घृतको छानलें।

इसे रात्रिके समय सेवन करनेसे तिमिर रोग नष्ट होता है।

(२०४४) जीवनाद्यो यमकः (वं.से.।वस्ति.)

जीवन्तीं मदनं मेदां श्रावणीं मधुकं बलाम्।
जीवकर्षभकौ कृष्णां काकनासां शतावरीम् ॥

१ द्विगुणमिति पाठान्तरम्।

स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शटीं वचाम्
पिष्ट्वा तैलं घृतं क्षीरे साधयेत्तु चतुर्गुणे
बृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्द्धनम्
मूत्ररेतो रजोदोषान् हरेत्तदनुवासनात्

जीवन्ती, भैनफल, मेदा, गोरख मुण्डी, मुलैठी, खरैंटी, जीवक, ऋषभक, पीपल, काकनासा, शतावर, कौंचके बीज, क्षीर काकोली, काकड़ासिंगी, कचूर और वच। सब चीजें समान भाग लेकर पीसलें। इनका कल्क ऽ। एक पाव, घी ऽ।। सेर, तैल ऽ।। सेर और दूध ४ सेर एकत्र मिलाकर पकाएं। दूध जल जाने पर स्नेहको छानलें। इसकी अनुवासन बस्ति देनेसे बल वीर्य और जठराग्निकी वृद्धि तथा वातपित्त, मूत्र, वीर्य और रजोदोष नष्ट होते हैं।

इति जकारादिघृतप्रकरणम् ॥

अथ जकारादि तैलप्रकरणम्।

(२०४५) जम्ब्वादि तैलम् [१]

(वा. भ. । उ. स्था. अ. १८)

जम्ब्वाम्रपल्लवबलायष्टीरोध्रतिलोत्पलैः।
सधान्याम्लैःसमञ्जिष्ठैःसकदम्बैःससारिवैः ॥
सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं विसर्पोक्तघृतानि च ॥

जामनके पत्ते, आमके पत्ते, खरैंटी, मुलैठी, लोध, तिल, नीलोत्पल (नीलोफर), काञ्जी, मजीठ, कदम्बकी छाल और सारिवा। काञ्जीके अतिरिक्त समस्त चीजे २-२ तोले लेकर पानीके साथ पीस ले, फिर ८० तोले तिलका तैल और ३२० तोले (४ सेर) काञ्जीको एकत्र मिलाकर उसमें उपरोक्त पिसी हुई ओषधियां डालकर मन्दाग्नि पर पकाएं। जब समस्त काञ्जी जल जाय तो उतारकर छान लें।

इस तैलकी मालिशसे परिपोट नामक कर्ण व्याधि (कानकी पालीकी सूजन) नष्ट होती है।

इस रोगमें विसर्प-रोग नाशक घृत भी लाभ पहुंचाते हैं।

(२०४६) जम्ब्वादि तैलम् [२] (यो. र. । कर्ण.)

आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च।
एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं हरेत् ॥

आम, जामन, मुलैठी और बड़के पत्तोके कल्क तथा क्राथसे सिद्ध तैल पूतिकर्ण रोगका नाश करता है।

(प्रत्येक वृक्षके पत्ते २०-२० तोले लेकर ४ सेर पानीमें पकाएं और १ सेर पानी रहने पर छान लें। कल्कके लिए प्रत्येक प्रकारके पत्र १।-१। तोला लें और २० तोले तैल पकाएं।)

(२०४७) जम्ब्वाद्यं तैलम् [१]

(च. द.; भै. र.; वृं. मा.; र. र., वं. से. । कर्ण.)

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं
कपित्थकार्पासफलं च सार्द्रम्।
कृत्वा रसं तं मधुना विमिश्रं
स्रावापहं सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥
एतैःशृतं निम्बकरञ्जतैलम्
ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥

जामन और आमके कोमल पत्तोको कूटकर और कैथ तथा कपासके फल एवं अद्रकको पानीके साथ पीसकर पृथक् पृथक् बराबर बराबर रस निकाल लीजिए। इन सब रसोंको एकत्र मिलाकर उसमें सबसे चौथाई शहद मिला लीजिए। इस मिश्रणको कानमें डालनेसे कान बहना बन्द होता है।

अथवा इन सब चीजोके कल्क और चार गुने पानीके साथ नीम, करञ्ज या सरसोंका तैल पकाकर कानमें डालनेसे भी कर्णस्राव बन्द हो जाता है।

(२०४८) जम्ब्वाद्यं तैलम् [२]

(भा. प्र. । म. खं.; वं. से. । उपदंश)

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च।
नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च॥
एला चातिविषाम्रास्थि मधुकश्च प्रियङ्गवः।
लाक्षा कालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताह्वया॥
एतान्येकीकृतान्येव बस्तमूत्रेण पेषयेत्।
अक्षमात्रैरिमैर्द्रव्यैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥
सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं विपाचयेत्।
उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्त्तितम्॥

जामन, बेत, आमला, करञ्ज, कमल और उत्पल (नीलोफर)के पत्र, इलायची, अतीस, आमकी गुठली, मुलैठी, फूल प्रियंगु, लाख, अगर, लोध, सफेद चन्दन और निसोत। एक एक कर्ष (१।-१। तोला) लेकर सबको बकरेके मूत्रमें पीस लीजिए, फिर इन्हें १ सेर तैल और ४ सेर पानीमें एकत्र मिलाकर पानी जलने तक पकाइये। तत्पश्चात् छान लीजिए।

इस तैलको लगानेसे सर्व प्रकारके व्रण[घाव] और विशेषतः उपदंश (आतशक) के घाव नष्ट होते है।

(२०४९) जयपालतैलम् (र. चिं.। स्त. १०)

वीजानि जयपालस्य समाहृत्य नवानि च।
कूपिकायन्त्रयोगेन तैलं निःसार्य नीयते॥
पातालयन्त्रयोगेनाऽथवा क्वाथ्यगृह्यते।
कदुष्णवारिणा पश्चात्क्षणं स्थित्वा निपीयते॥
उष्णस्थाने स्थितः स्वच्छे बहुताम्बूलभक्षणम्।
कुरुते सारयेदेतत्सुवेगेन न संशयः॥
अथवेदं च गृह्णीयात् तैलबिन्दुचतुष्टयम्।
निराकुलं सुखं कुर्यात्तथा सारयति ध्रुवम्॥

कूपिका यन्त्र द्वारा अथवा पाताल यन्त्र द्वारा जमालगोटेके नवीन बीजोंका तैल निकाल लीजिए, अथवा उनकी गिरी निकालकर उसे पानीमें पकाइये और पानी पर जो तैल नितर आए उसको किसी पक्षीके पर आदिसे सावधानीपूर्वक उठा लीजिए। ध्यान रखना चाहिए कि कहीं आंखको न लग जाए।

इस तैलकी चार बूंदे मन्दोष्ण (कुछ गर्म) पानीमें डालकर पीने और फिर गर्म स्थानमें बैठने तथा बारबार पान खानेसे वेगपूर्वक विरेचन होकर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है।

(२०५०) जातिपत्रादि तैलम्

(वं. से.; वृ. नि. र.; वृं. मा.। कर्ण.; वृ. यो. त.। त. १२९)

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित्।

चमेलीके पत्तोंके रसमें उससे चौथाई तैल मिलाकर पकाएं।

इस तैलको कानमें डालनेसे 'पूतिकर्ण' रोग नष्ट होता है ।

(२०५१) जात्यादि तैलम् [१] (ग.नि.।तैला.)

नवपत्राङ्कुरजाती द्वे हरिद्रे शतावरी ।
जीवकर्षभकौ रास्ना सरलं देवदारु च ॥
मुस्तातालीसमञ्जिष्ठापाठावरुणचित्रकाः ।
कुब्जं सर्वसुगन्धं च मधुकं द्वे च सारिवे ॥
अनन्ताऽऽमलकं मूर्वा मधुकं करवीरकम् ॥
देवपुष्पं शिरीषस्य मूलं स्योनाकमेव च ॥
चव्यं लाक्षा पयस्या च कल्कीकृत्याक्षसम्मितान्
पक्त्वा चाथ कषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥
एतदभ्यञ्जनाद्धन्यात्सन्निपातात्मकं ज्वरम् ।
तैलं जात्यादिकं नाम वातपित्तकफापहम् ॥

चमेलीके नवीन पत्ते, हल्दी, दारु हल्दी, शतावर, जीवक, ऋषभक, रास्ना, चीरका बुरादा, देवदारुका बुरादा, मोथा, तालीसपत्र, मजीठ, पाठा, वरुणछाल, चीतामूल, चिरचिटा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, कपूर, कंकोल, अगर, केशर, लौङ्ग, मुलैठी, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, अनन्तमूल, आमला, मूर्वा, मुलैठी, कनेरकी छाल, लौङ्ग, सिरसकी जड़की छाल, श्योनाक [अरलू] की छाल, चव, लाख, क्षीरकाकोली प्रत्येक १–१ कर्ष (१।–१। तोला) लेकर पानीके साथ पीस लें, तथा इन्हीं चीज़ोंको कूटकर १६ सेर पानीमें पकाएं और ४ सेर पानी शेष रहने पर छान लें । तत्पश्चात् उपरोक्त पिसी हुई ओषधियां, यह काथ और १ सेर तेल एकत्र मिलाकर पकावें । जब सब पानी (काथ) जल जाय तो उतारकर छान लें ।

इस तैलकी मालिशसे सन्निपात ज्वरका नाश होता है । (जिन ओषधियोंके नाम दो बार आए हैं वह दोगुनी लेनी चाहिएं ।)

(२०५२) जात्यादि तैलम् [२]

(यो. र.; वं. से.; भा. प्र.; वृ. नि. र. । मुख.)

कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः ।
मञ्जिष्ठालोध्रखदिरयष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥
तैलं यत्साधितं तच्च हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥

चमेलीके पत्ते, मैनफल, कटैली, छोटे गोखरु, मजीठ, लोध, खैर और मुलैठीके क्वाथके साथ पकाया हुवा तैल लगानेसे दांतोका नाडीव्रण (नासूर) नष्ट होता है ।

(प्रत्येक वस्तु १० तोले । पानी ८ सेर । शेष २ सेर, तैल ऽ ॥)

(२०५३) जात्यादि तैलम् [३]

(यो. र.; र. का. धे ; वं. से.। व्र.; शा. सं.। ख. २ अ. ९, भा. प्र. म. खं., वृ. यो. त.। त. ११२)

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः ।
सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम् ।
तुत्थकं सारिवा बीजं नक्तमालस्य च क्षिपेत् ॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वातैलं विपाचयेत् ।
विषव्रणसमुत्पत्तौ स्फोटेषु च कच्छुषु ॥
कण्डूविसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा ।
सद्यःशस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धक्षतेषु च ॥
नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसावघर्षणे ।
म्रक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, पटोलपत्र, करञ्ज के पत्ते, मोम, मुलैठी, कूठ, हल्दी, दारु हल्दी,

कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध, हर्र, नीलोत्पल (नीलोफर, नीलाथोथा, सारिवा और करञ्जके बीज़ समान भाग लेकर पानीमें पीस लें, फिर उस पिट्ठी (कल्क)को सबसे चार गुने तैलमें मिलाकर उसमें तैलसे चार गुना पानी मिलाकर पकाएं।

जब सब पानी जल जाय तो तैलको छानलें। इस तैलके लगानेसे विष, घाव, विस्फोटक, कच्छु, खुजली, विसर्प, विषैले कीड़ेका दंश, शस्त्रादिसे हुवा तुरन्तका घाव, अग्निसे जलनेसे या कील आदि घुस जानेसे उत्पन्न घाव, तथा नख और दन्तका घाव और रगड़ इत्यादिको शीघ्र आराम हो जाता है।

नोट—यह प्रयोग लगभग "जात्यादि घृत" सं. २०३२ के समान ही है।

(२०५४) जात्यादि तैलम् [४] (ग.नि.।उपदं.)

जातीपत्रं निशा दुग्धी विशाला मधुयष्टिका।
पक्वमेभिर्युतं तैलमेतल्लेपो नृरोगहा ॥

चमेलीके पत्ते, हल्दी, दूधी, इन्द्रायणकी जड़ और मुलैठी। प्रत्येक ४-४ तोले लेकर पानीके साथ पीस ले। तत्पश्चात् यह कल्क (पिट्ठी), १ सेर तैल और इन्ही चीज़ोका ४ सेर क्वाथ एकत्र मिलाकर पकाएं। जब सब पानी जल जाय तो तैलको छान ले।

इस तैलको लगानेसे उपदंश (आतशक) रोग नष्ट होता है।

(२०५५) जात्यादि तैलम् [५] (भै.र.।उपदं.)

जातीपल्लवतोयेन शङ्खपुष्पीरसेन च।
बकुलत्वक्कषायेण पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥
गायत्रीमाम्रबीजञ्च त्रिफलां कटुकत्रयम्।
चव्यं नीलोत्पलं कुष्ठं मधुकं रजनीद्वयम् ॥
मुस्तकं बालकं लोध्रं सिन्दूरं स्वर्णगैरिकम्।
कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र वटरोहमयोऽपि च ॥
जात्याद्याख्यमिदं तैलं निखिलान्मुखजान्गदान्
भगन्दरोपदंशौ च व्रणं दुष्टं निहन्ति च ॥

चमेलीके पत्तोका स्वरस १ सेर, शंखपुष्पी (शंखाहोली) का स्वरस या क्वाथ १ सेर, मौलसिरीकी छालका क्वाथ १ सेर, तथा खैर सार, आमकी गुठली, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, नीलोत्पल (नीलोफर), कूठ, मुलैठी, हल्दी, दारुहल्दी, मोथा, सुगन्धबाला, लोध, बड़के अंकुर, सिन्दूर और सोनागेरु। प्रत्येकका चूर्ण ९-९ माशे लेकर पानीमें पीस लें। तत्पश्चात् उपरोक्त रसों और इन सब चीजोंको ३ पाव (3/4 सेर) तिलके तैलमें मिलाकर पकाएं। जब समस्त क्वाथ जल जाय तो छान लें। इसे लगानेसे समस्त मुखरोग, भगन्दर, उपदंश और दुष्ट व्रण (घाव) नष्ट होते है।

(२०५६) जात्यादि तैलम् [६]
(वृ. नि. र.। क्षु. रो.)

जातीकरञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम्।
तैलमभ्यञ्जनाद्धन्ति इन्द्रलुप्तं न संशयः ॥

चमेलीके पत्ते, करञ्जके पत्ते, वरुण (वरने)की छाल, कनेरकी छाल और चीतामूल ४-४ तोले लेकर पानीमें पीस लें। तत्पश्चात् यह कल्क (पिसी हुई औषधें), १ सेर तैल और ४ सेर पानीको एकत्र मिलाकर पकाएं। जब सब पानी जल जाए तो तैलको छानकर रख ले।

इसकी मालिशसे इन्द्रलुप्त (गंज) रोग अवश्य नष्ट होता है।

जात्यादि तैलम् [७] (धन्वं.। व्रण.)

जात्यादिघृतम् सं. २०३२ देखिए।

(२०५७) जीरकतैलम्

(यो.र.। कु.; ग.नि.। तैल., वृ.यो.त। त.१२०)

जीरकस्य पलं पिष्ट्वा सिन्दूरार्द्धपलन्तथा।
कटुतैलं पचेदाभ्यां सद्य पामाहरं परम् ॥
वृद्धवैद्योपदेशेन पाच्यं तैलं पलाष्टकम् ॥

जीरा ५ तोले और सिन्दूर २॥ तोले लेकर दोनोको पीसलें तत्पश्चात् ८ पल (४० तोले) कड़वा तैल और २ सेर पानी एकत्र मिलाकर उसमें यह दोनो चीज़े डालकर पकाएं। जब सब पानी जल जाए तो तैलको छानकर रख लीजिए।

इसकी मालिशसे तर खुजली अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

अन्य विधि-तैलको खूब गरम करके उसमें ज़रा ज़रा सा उक्त चीज़ोंका चूर्ण डालकर जलाएं। जब सब चूर्ण जल जाए तो तैलको छान ले।

(२०५८) जीवकाद्यं तैलम्

(ग. नि.; वं. से.; वृ. मा.। शिरो.)

जीवकर्षभकद्राक्षासितायष्टीबलोत्पलैः।
तैलं नस्यं पयः पक्वं वातपित्ते शिरोगदे ॥

जीवक, ऋषभक, मुनक्का, मिश्री, मुलैठी, खरैंटी और नीलोत्पल (नीलोफर)। समान भाग लेकर पानीमें पीस लें। फिर इस कल्कसे ४ गुना तैल और १६ गुना दूध लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाएं।

इस तैलकी नस्य लेनेसे वातपित्तज शिरोरोग नष्ट होते हैं।

(२०५९) जीवनीयो यमकः (वं.से.।अपस्मा.)

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः।
क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम् ॥

१ सेर तैल और १ सेर घृतको एकत्र मिलाकर उसमें १ द्रोण (१६ सेर) दूध और १-१ पल (५-५ तोले) जीवनीय[1]गणकी प्रत्येक ओषधिका कल्क मिलाकर पकाइये। जब सब दूध जल जाय तो स्नेह (घृत तैल) को छानकर रख लीजिए।

इसको सेवन करनेसे अपस्माररोग नष्ट होता है। (इसे पान, मर्दन और वस्ति तथा नस्य द्वारा प्रयुक्त किया जा सकता है। पीनेके लिए मात्रा-१ तोला। अनुपान गर्म दूध।)

(२०६०) जीवन्त्याद्यो यमकः (ग.नि.।तै.)

जीवन्ती मञ्जिष्ठा दार्वी कम्पिल्लकः पयस्तुत्थम्
एष घृततैलपाकः सिद्धः सर्जरससंयुक्तः ॥
देयःसमधुच्छिष्टो विपादिका तेन शाम्यतेऽभ्यक्ता
चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मं शाम्यत्यलसकं च ॥

जीवन्ती, मजीठ, दारुहल्दी, कबीला (कमीला) और नीला थोथा ४-४ तोले, घी ४० तोले, तैल ४० तोले और दूध ४ सेर लेकर एकत्र मिलाकर पकाएं; जब सब दूध जल जाए तो छान लें। और फिर उसमें ४-४ तोले रालका चूर्ण और मोम मिला लें।

---

१ जीवनीयगण जकारादि कषाय प्रकरणमें देखिए।

इसकी मालिश करनेसे विपादिका (बिवाई) चर्मकुष्ठ, किटिभ, सिध्म और अलसक (खारवों) का नाश होता है।

(२०६१) ज्योतिष्मतीतैलम्

(यो र.; वं. से.। उदर.; ग.नि.।कुष्ठा.; वृ.यो.त.। त. १२०; वा. भ.। चि. स्था. कु.)

मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिश्रुतम्।
सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गाच्छ्वित्रनाशनम्॥

अपामार्ग (चिरचिटे) के क्षारके पानीमें सात बार पकाया हुवा माल कंगनीका तैल लगानेसे श्वित्र (सफेद कुष्ठ) नष्ट होता है।

(विधि—अपामार्ग की राखको १६ गुने पानीमें घोलकर मोटे घने कपड़ेमें २१ बार टपका लीजिए। तत्पश्चात् १ सेर तेलमें ४ सेर यह जल मिलाकर पकाइये, जब पानी जल जाय तो ४ सेर पानी और डाल दीजिए, इसी प्रकार सात बार पानी डालकर पकाइये।

इस तैलमें झाग अधिक आते है इस लिए बड़े पात्रमें और मन्दाग्नि पर पकाना चाहिए।

(२०६२) ज्योतिष्मतीतैलप्रयोगः [१]

(यो. चि.। चूर्णा.)

ज्योतिष्मत्यास्तैलमेकं पिबेच्च
गुञ्जावृद्ध्या कर्षमात्रन्तु यावत्।
सौरे पर्वण्यम्बुमध्ये प्रविष्टः
प्रज्ञामूर्तिर्जायतेऽसौ कवीन्द्रः॥

१ रत्ती मात्रासे आरम्भ करके प्रतिदिन १-१ रत्ती बढ़ाकर १ कर्ष (१। तोले) की मात्रा तक पहुंचने तक ज्योतिष्मती (माल कंगनीका) तैल पीनेसे बुद्धि अत्यन्त तीव्र हो जाती है।

तेल पीनेके पश्चात् थोड़े समय तक नदी या तालाबके भीतर छातीसे ऊंचे पानीमें बैठना चाहिए।

(२०६३) ज्योतिष्मतीतैलप्रयोगः [२]

(यो. त.। त. ५२)

ज्योतिष्मत्याःपिबेत्तैलं पयसा च विरेचनम्।
सर्वेभ्यो जठरेभ्यस्तु शीघ्रं मुच्येत मानवः॥

दूधमें मिलाकर मालकंगनीका तैल पीनेसे विरेचन होकर समस्त उदररोग नष्ट हो जाते है।

॥ इति जकारादितैल प्रकरणम्॥

अथ जकाराद्यरिष्टप्रकरणम्।

(२०६४) जीरकाद्योऽरिष्टः (भै. र.। स्त्री.)

जीरकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
द्रोणशेषे क्षिपेत्तत्र तुलत्रयमितं गुडम्॥
धातकीं षोडशपलां शुण्ठीञ्च द्विपलोन्मिताम्।
जातीफलं मुस्तकञ्च चातुर्जातं यवानिकाम्॥
कक्कोलं देवपुष्पञ्च पलमानेन निक्षिपेत्।
मासं संस्थाप्य भाण्डे च मृत्तिकापरिनिर्मिते॥
ततःकल्कान् विनिहृत्य पाययेत् कर्षमात्रया।
अरिष्टो जीरकाद्योऽयं निहन्यात्सूतिकामयान्॥
ग्रहणीमतिसारञ्च तथा वह्नेश्च वैकृतिम्॥

२ तुला (१२॥ सेर) जीरेको कूटकर ४ द्रोण [६४ सेर] जलमें पकाएं, जब १ द्रोण पानी शेष रहे तो उसमें ३ तुला गुड़, १६ पल (१ सेर) धायके फूलोंका चूर्ण, २ पल सोठका चूर्ण, तथा

१-१ पल [५-५ तोले] जायफल, मोथा, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची, अजवायन, कङ्कोल और लौङ्गका चूर्ण मिलाकर मिट्टीके स्वच्छ और घृतसे चिकने किए हुवे पात्रमें भरकर, उसके मुखको शरावसे ढककर उस पर कपड़मिट्टी करके रख दीजिए; और एक मास पश्चात् छानकर वोतलोमें भर दीजिए।

यह 'जीरकाद्यरिष्ट' सूतिका रोग, संग्रहणी, अतिसार और जठराग्नि विकारोंको नष्ट करता है।

मात्रा=१ कर्ष (१। तोला)।

॥ इति जकाराद्यरिष्टप्रकरणम् ॥

अथ जकारादि लेपप्रकरणम्।

(२०६५) जपाकुसुमलेपः (रा.मा.। शिरो.)

कृष्णगवीमूत्रयुतैः पिष्टैरालेपितैर्जपाकुसुमैः।
शतमखलुप्तं नश्यति भवन्ति केशाश्च तत्र घनाः

जवाके फूलोंको काली गायके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे इन्द्र लुप्त रोग (गंज) नष्ट होकर उस स्थान पर घने बाल निकल आते है।

(२०६६) जम्ब्वाम्रपल्लवादिलेपः

(वा. भ. उत्त.। अ. ३२)

जम्ब्वाम्रपल्लवा मस्तु हरिद्रे द्वे नवो गुडः।
लेपःसवर्णकृत्पिष्टस्स्वरसेन च तिन्दुकम् ॥

जामन और आमके पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, और नवीन गुड़ समान भाग लेकर दहीके पानीमें पीसकर लेप करनेसे अथवा तेन्दुको उसीके रसमें पीसकर लेप करनेसे व्रगादिके कारण विकृत् हुवा त्वचाका रङ्ग पूर्ववत् हो जाता है।

(२०६७) जलकुम्भीभस्मलेपः(वं.से.।गल.)

रक्षोघ्नतैलयुक्तेन जलकुम्भिकभस्मना।
लेपनं गलगण्डस्य चिरोत्थस्यापि शस्यते ॥

जलकुम्भीकी भस्मको मिलावेके तैलमें मिलाकर लेप करनेसे पुराने गलगण्डको भी आराम हो जाता है।

(२०६८) जलादिलेपः (च.सं.।चि स्था.कु.)

जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचन्दनं मृणालानि।
भागोत्तराणि सिद्धं प्रलेपनं पित्तकफकुष्ठे ॥

सुगन्धवाला १ भाग, कूठ २ भाग, लोहचूर्ण ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, तेजपात ५ भाग, मोथा ६ भाग, लाल चन्दन ७ भाग और कमलनाल ८ भाग लेकर पानीमें महीन पीसकर लेप करनेसे पित्तकफज कुष्ठ नष्ट होता है।

(२०६९) जातीपत्रादिलेपः (ग.नि.। मुख.)

जातीपत्राणि जातेश्च फलं सम्पिष्य वारिणा।
तस्य लेपे कृते याति मुखे दुर्व्यङ्गलाञ्छनम् ॥

जावित्री और जायफलको पानीमें पीसकर लेप करनेसे मुखकी झांई और श्यामता नष्ट होती है।

(२०७०) जातीपुष्पादिलेपः (वं.से.। व्र.)

उच्छूनमृदुमांसानां व्रणानामवसादनम्।
जातिपुष्पं मनोह्वा च स्नुहीकासीसचित्रकैः ॥

चमेलीके फूल, मनसिल, स्नुही (थोहर) का दूध, कासीस और चीतेकी जड़। समान भाग लेकर पानीमें पीसकर लेप करनेसे मृदु और उन्नत मांसवाले घावोंका ऊपरको उठा हुवा मांस दव जाता है।

(२०७१) जातीफलादिलेपः [१]

(यो. र. । उपदं.)

जातीफलविडङ्गानि रसकं देवपुष्पकम् ।
समभागानि सर्वाणि नवनीतेन मर्दयेत् ॥
स्फोटानामुपदंशानां व्रणशोधनरोपणः ॥

जायफल, बायबिड़ङ्ग, रसकपूर[१] और लौङ्गका समान भाग चूर्ण लेकर नवनीत (नोनीघृत) में घोटकर लेप करनेसे उपदंश (आतशक) के घाव शुद्ध होकर भर जाते है ।

नोट—रसकपूरकी मात्रा कम होनी चाहिए, जो कि श्लोकमें समान भाग मिश्रणका आदेश है परन्तु इसकी उग्रता और गुणोका विचार करनेसे मात्रा समान न होकर बहुत न्यून अर्थात् अन्य द्रव्योंसे १६ वां भाग हो तो लाभ अधिक होगा।

(२०७२) जातीफलादिलेपः [२]

(वृ. नि. र. । क्षुद्र)

जातीफलं चन्दनञ्च मरिचं सहपेषितम् ।
मुखे लेपेन हन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥

जायफल, लाल चन्दन और स्याह मिरच । समान भाग लेकर पानीमें पीसकर लेप करनेसे यौवनपिड़िका (मुहासो) का नाश होता है।

(२०७३) जीरकादिलेपः [१]

(वा. भ. । उत्त. अ. ३२)

द्वे जीरके कृष्णतिलाः सर्षपा पयसा सह ।
पिष्ट्वा कुर्वन्ति वक्त्रेन्दुमपास्तव्यङ्गलाञ्छनम् ॥

सफेद ज़ीरा, स्याह ज़ीरा, काले तिल और सरसों समान भाग लेकर दूधमें पीसकर लेप करनेसे मुखमण्डलके व्यङ्ग (झांई) और धब्बे दूर होते है ।

(२०७४) जीरकादिलेपः [२] (वं.से.।विष.)

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ।
सुखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां प्रलेपो मधुना सहः ॥

ज़ीरा और सेधानमकका समान भाग चूर्ण घृत और शहदमें मिलाकर मन्दोष्ण लेप करनेसे वृश्चिकदंश (बिच्छूके डंक)की पीड़ा शान्त होती है।

(२०७५) जीवन्त्यादिलेपः[१](वं.से.।मुख.)

जीवन्तिकल्कं पयसा समांशं
तैलं विपक्त्वा मधुना विमिश्रम् ।
ओष्ठास्ययोःसर्जरसाष्टभागं
व्रणं निहन्यात्सकृदेव लेपात् ॥

जीवन्तीके कल्क और दूधके साथ पके हुवे तैलमें शहद और आठवां भाग रालका चूर्ण मिला कर लेप करनेसे ओष्ठ और मुखके घाव शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं ।

(२०७६) जीवन्त्यादिलेपः [२]

(ग. नि.; रा. मा. । मुख.; यो. त. । त.६९)

जीवन्तिकामदनतुत्थकचित्रवल्ली ।
मेदा[१]युतं कलमशालिसमन्वितम्वा ।
दुग्धं शृतं शमयति स्फुटितोपसर्ग-
मालेपनादधरसंश्रयमाशु हन्यात् ॥

जीवन्ती, मैनफल, नीला थोथा, बड़ी इन्द्रायन, मेदा और कलमी धान मिलाकर पकाया

---

१ रसकका शुद्धार्थ तो खपरिया होता है, परन्तु यहां रसकपूर ही अभीष्ट प्रतीत होता है क्योंकि उपदंशके व्रणोंके लिए रसकपूर एक प्रसिद्ध और अनुपम वस्तु है ।

१ दार्वीति पाठान्तरम् ।

हुवा दूध लगानेसे ओष्ठो (होठो) के घाव शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

(२०७७) जैपालपत्रलेपः

(वृ. नि. र.। गण्डमाला.)

पिष्ट्वा जैपालपत्राणि स्वरसेन कृता वटी।
छायाशुष्का ततो लेपाद्गण्डमाला विनश्यति॥

जैपाल (जमालगोटे) के पत्तोको उन्हींके स्वरसमें पीसकर गोलियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

इनका लेप करनेसे गण्डमालाका नाश होता है।

(२०७८) जैपाललेपः [१] (रसं.चिं.। अ.९)

तुल्यं जैपालबीजञ्च निम्बुतोयेन मर्दयेत्।
तल्लेपादधिमांसानि विशीर्यन्ति न संशयः॥

जमालगोटेकी गिरीको समान भाग नींबूके रसमें पीसकर लेप करनेसे अधिमांस नष्ट होता है।

(२०७९) जैपाललेपः [२] (वृ नि.र.। विष.)

पानीयपिष्टजैपालकल्कलेपेन सर्वथा।
विषं वृश्चिकविद्धस्य भस्मीभवति तत्क्षणात्॥

जमालगोटेकी गिरीको पानीमें पीसकर लेप करनेसे वृश्चिक दंश (विच्छूके डंक) की पीड़ा तुरन्त शान्त हो जाती है।

(२०८०) ज्योतिष्कबीजलेपः

(वृ. नि. र.; यो. र.। अर्श.)

ज्योतिष्कबीजकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः॥

मालकंगनीके बीजोको पानीमें पीसकर मस्सो पर लेप करनेसे रक्तार्श (खूनी बवासीर) नष्ट होती है।

(२०८१) ज्योतिष्मत्यादिलेपः

(वं. से.। भगन्द.)

ज्योतिष्मतीलाङ्गली च श्यामादन्ती त्रिवृत्तिलाः
कुष्ठं शताह्वा गोलोमी मूर्वा शोधनमिष्यते॥

मालकंगनी, कलिहारी, काला निसोत, दन्ती, सफेद निसोत, तिल, कूठ, सोया, वच और मूर्वा। समान भाग लेकर पीसकर लेप करनेसे भगन्दरका घाव शुद्ध होता है।

॥ इति जकारादिलेपप्रकरणम्॥

अथ जकारादि धूपप्रकरणम्।

(२०८२) जम्ब्वादि धूपः (वं. से.)

जम्बूधातकिपर्णैस्तद्भवकल्कैश्च धूपितो योनिः।
त्यजति समस्तविकारं जन्मान्तरसञ्चितञ्चापि॥

जामन और धायके पत्तोंको पीसकर योनिको उसकी धूप (धूनी) देनेसे पुराने विकार भी नष्ट हो जाते हैं।

॥ इति जकारादिधूपप्रकरणम्॥



अथ जकारादि धूम्रप्रकरणम् ।

(२०८३) जात्यादिधूम्रः[१] (रा.मा.।पीन.)

जातीवृषाङ्कोलजटां सपत्र-
मादाय तद्वन्महिषाक्षभागम् ।
दत्त्वा ततो नागबला सुयुग्मं
कासप्रशान्त्यै विदधीत धूमम् ॥

चमेली, बासा और अङ्कोलकी जड़ तथा पत्ते और भैसिया गूगल १–१ भाग तथा नागबला २ भाग। सबको मिलाकर कूटकर चिलममें रखकर या अन्य विधिसे धूम्रपान करनेसे खांसी नष्ट होती है।

(२०८४) जात्यादिधूम्रः[२] (यो.र.।कास.)

जातीपत्रशिलारालैर्योजयेद् गुग्गुलुं समम् ।
अजामूत्रेण सम्पिष्टो धूमः कासहरः परः ॥

चमेलीके पत्ते, मनसिल, राल और गूगल। समान भाग लेकर बकरीके मूत्रमें पीसकर चिलममें रखकर या अन्य किसी प्रकारसे उसका धूम्रपान करनेसे खांसी नष्ट होती है।

(२०८५) जात्यादिधूम्रः [३] (यो.र.।कास.)

जातीजटाकिसलयैर्बदरीदलैश्च
जाता मसूरकफलैः समनःशिलैश्च ।
स्याद्धूमवर्तिरिह गुग्गुलुना समेतैः
कासच्छिदे बदरिकाग्निविदह्यमानैः ॥

चमेलीकी जड़, चमेलीके पत्ते, बेरीके पत्ते, मसूर और मनसिल तथा गूगल समान भाग लेकर बत्ती बनावें और उसे बेरीके कोयलोंकी अग्निपर जलाकर धूम्रपान करें। इससे खांसी नष्ट होती है।

॥ इति जकारादि धूम्रप्रकरणम् ॥

अथ जकाराद्यञ्जनप्रकरणम् ।

(२०८६) जङ्घास्थिवर्त्तिः (ग. नि. । नेत्र.)

गोजङ्घां मानुषीञ्चैव षण्मासान् क्लेदयेज्जले ।
जात्यन्धोऽप्यनया वर्त्या त्वचिरेण प्रपश्यति ॥

गाय और मनुष्यकी जङ्घाकी हड्डीको ६ मास तक पानीमें भिगोए रक्खे, जब वे कोमल हो जाय तो पीसकर वर्ति (बत्ती) बना लीजिए। इसे पानीमें घिसकर आंखमें आंजनेसे जन्मका अन्धा भी देखने लगता है। (यह तिमिर रोगके लिए उपयोगी है।)

(२०८७) जातिपत्ररसाञ्जनम् (वं.से.।नेत्र.)

जातीपत्ररसक्षौद्रनिशाह्वयरसाञ्जनैः।
नक्तान्ध्यमञ्जनंहन्यात्कृष्णाया गोमयान्वितम् ॥

चमेलीके पत्तोका रस, शहद, हल्दी, रसौत और काली गायका गोबर समान भाग लेकर, चूर्ण योग्य ओषधियोका कपड़छन महीन चूर्ण करके सबको एकत्र मिलाकर खरल करें।

इसे आंखमें आंजनेसे नक्तान्ध्य (रतौंधा) नष्ट होता है।

(नोट—गोवर शुष्क लेना चाहिए अथवा ताजे गोबरका रस लेना चाहिए।)

(२०८८) जातिपुष्पादिगुटिका (ग.नि.।नेत्र.)

प्रत्यग्रजातिपुष्पाणि यावको रक्तचन्दनम् ।
गुटिका हन्ति काचान्ध्यं तिमिरं पटलं तथा ॥

चमेलीकी कलियां, जवाखार और लालचन्दन का महीन चूर्ण समान भाग लेकर पानीके साथ पीसकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें पानीमें पत्थर पर घिसकर आंखमें आंजनेसे काच, तिमिर और पटल नामक नेत्ररोग नष्ट होते है।

(२०८९) जातीपुष्पाद्यञ्जनम् [१]
(यो. र. । नेत्र.)

जातीपुष्पं प्रवालञ्च मरिचं कटुका वचा ।
सैन्धवं वस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमञ्जनम् ॥

चमेलीके फूल और कोंपल, स्याह मिर्चका चूर्ण, कुटकीका चूर्ण, वचका चूर्ण और सेंधानमक का चूर्ण समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें घोटे।

इसे आंखमें लगानेसे तन्द्राका नाश होता है।

(२०९०) जातीपुष्पाद्यञ्जनम् [२]
(ग. नि. । नेत्र.)

जात्याः पुष्पं सैन्धवं शृङ्गवेरं
कृष्णाबीजं कीटशत्रोश्च सारम् ।
एतत्पिष्ट्वा नेत्रपाकेऽञ्जनार्थं
क्षौद्रोपेतं निर्विशङ्कैः प्रयोज्यम् ॥

चमेलीके फूल, सेंधानमक, सोंठ, पीपलके बीज[1], वायविडङ्गका सत[2]; समान भाग लेकर महीन पीसकर खरल करके सुरमा बना लीजिए।

इसे नेत्रपाक (आंख दुखने)में शहदमें मिलाकर लगानेसे अवश्य आराम होता है।

(२०९१) जात्यादिवर्त्तिः (वं. से. । नेत्र.)

सुमनः क्षारकं शङ्खं त्रिफलां मधुकं बलाम् ।
पित्तरक्तापहा वर्त्तिः पिष्ट्वा दिव्येन वारिणा ॥

चमेलीके फूल, जवाखार, शङ्ख, हर्र, बहेड़ा, आमला, मुलैठी और खरैटीका समान भाग चूर्ण लेकर आकाशजल (भूमिसे ऊपर ही इकट्ठा किया हुवा वर्षाजल) में पीसकर वर्तियां [बत्तियां] बना लीजिए।

इन्हें आकाशजलमें घिसकर आंखमें आंजनेसे पित्तज और रक्तज नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

(२०९२) जात्याद्याश्च्योतनम् (वं.से.।नेत्र.)

जात्या प्रवालं मधुकं ससर्पि-
र्भृष्टं सुखोष्णाम्बुसुशीतरश्मिः ।
आश्च्योतनं शुक्रहरं प्रदिष्टं
शुक्रापहं स्त्रीपयसा महार्हम् ॥

चमेलीकी कोंपल और मुलैठीके चूर्णको घीमें भूनकर मन्दोष्ण जलमें मिलाकर (छानकर) उसमें ज़रासा कर्पूर घिस लीजिए। इसकी बूंदें आंखमें टपकानेसे शुक्र [फूला] नष्ट होता है।

सफेद चन्दनको स्त्रीके दूधमें घिसकर आंखमें डालनेसे भी फूला जाता रहता है।

(२०९३) जैपालाञ्जनम् (वै. र. । विष.)

एकनिम्बूफले सप्तजैपालास्थि क्षितेद्बुधः ।
सप्तमेह्नि समुद्धृत्यातपे शुष्कीकृतं तथा ॥

१ पीपलको रात्रिके समय दूधमें भिगो दीजिए, प्रातःकाल हाथोंसे मलिए तो उसके बीज (छोटे छोटे दाने) निकल आएंगे।

२ वायविडङ्गको कूटकर १६ गुने पानीमें पकाइये और चौथा भाग पानी शेष रहने पर छानकर फिर पकाइये जब गाढा हो जाय तो उतारकर सुखा लीजिए। यही वायविडङ्गका सत है।

पुनर्निम्बूफलेऽन्यस्मिन्प्रकारेणैवमुत्क्षिपेत् ।
सप्तवारानतः सिद्धं पुंसो लालाभिरञ्जनम् ॥
क्रियेयं सर्पदष्टस्य मूर्च्छार्त्तस्य प्रबोधनम् ।
भवेत्सत्यमिदं प्रोक्तं योगिनो लब्धमौषधम् ॥

एक कागज़ी नींबूमें छिद्र करके उसके भीतर जमालगोटेकी सात गिरी भर दीजिए और सातवे दिन निकालकर धूपमें सुखा लीजिए। फिर उन्हें दूसरे नींबूमें भरकर रख दीजिए और सातवें दिन निकालकर सुखा लीजिए। यही क्रिया सात बार करके जमाल गोटेकी गिरीको सुखाकर सुरक्षित रखिए।

इसे मनुष्यकी लाला (थूक) में घिसकर आंखोंमें आंजनेसे सांपके काटनेसे उत्पन्न हुई मूर्च्छा नष्ट होती है।

यह प्रयोग एक योगिसे प्राप्त हुवा है और सत्य है।

(२०९४) ज्वरनाशकाञ्जनम् [१]

(र. सा. सं. । परि.)

रसगन्धं शिलातुत्थं तालकं मृतटङ्कणम् ।
नवसादरं कर्षैकमर्कदुग्धेन मर्दयेत् ॥
चुल्लिकायामथारोप्य पचेद्यामचतुर्दश: ।
स्वाङ्गशीतलमादाय खल्ले तं कज्जलीकृतम् ॥
अञ्जनं वामनेत्रस्य दक्षिणे कौतुकं भवेत् ।
दक्षिणे चाञ्जनश्चैव आरोग्यं भवति क्षणात् ॥

पारा, गन्धक, मनसिल, नीलाथोथा, हरताल, सुहागेकी खील और नौसादर समान भाग लेकर चूर्ण करके आकके दूधमें घोटें और फिर उसकी टिकिया बनाकर सम्पुटमें बन्द करके चूल्हे पर चढ़ाकर १४ पहर तक पकाएं। तत्पश्चात् स्वांग शीतल होनेपर औषधको निकालकर घोटकर कज्जली कर लें।

इसे बांये नेत्रमें आंजनेसे दहिने अङ्गका ज्वर नष्ट हो जाता है, फिर दहिने नेत्रमें आंजनेसे बांये अङ्गका ज्वर भी उतरकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

(२०९५) ज्वरनाशकाञ्जनम् [२]

(र. सा. सं. । परि.)

व्योषश्च त्रिफला सूतं लोहं वङ्गश्च ताम्रकम् ।
पुत्रमातृपयश्चैव कारयेद्वटिकां बुधै ॥
दुग्धेन चाञ्जनं कृत्वा एकाङ्गज्वरनाशनम् ।
द्वितीये चाञ्जनं कृत्वा सर्वाङ्गज्वरनाशनम् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा और आमलेका चूर्ण, पारा, लोहभस्म, बङ्गभस्म और ताम्रभस्म। सब चीज़ें समान भाग लेकर पुत्रवती स्त्रीके दूधमें पीसकर गोलियां बना लीजिए।

एक गोलीको स्त्रीके दूधमें घिसकर बांई आंखमें आंजनेसे दहिने अङ्गका और दहिनी आंखमें आंजनेसे बांये अङ्गका ज्वर नष्ट हो जाता है।

(प्रथम प्रत्येक काष्टादि ओषधिको अत्यन्त महीन पीसना चाहिए फिर भस्मोके साथ पारेको खरल करके सब चीजोको एकत्र मिलाकर दूधके साथ घोटना चाहिए।)

(२०९६) ज्वरनाशकाञ्जनम् [३]

(र. सा. सं. । परि.)

ऊर्णाया नाभिजालेन वर्ति कृत्वा प्रयत्नतः ।
ज्वालयेत्तिलतैलेन कज्जलं ग्रहरेच्छनैः ॥
अञ्जयेन्नेत्रयुगलं द्व्याहिकं तु ज्वरं जयेत् ॥

मकड़ीके जालेकी वत्ती वनाकर उसे तिलके

तैलमें भिगोकर जलाइये और उसकी स्याही को इकट्ठा कर लीजिए।

इसे दोनों आंखोमें आंजनेसे तिजारी ज्वर नष्ट होता है। (मिट्टीके दीपकमें तैल भरकर उसमें उपरोक्त बत्ती डालकर जलाइये और इस दीपकके दोनो ओर दीपकसे १ बालिश्त ऊंची दो ईंटें रखकर उन ईंटोपर मिट्टीका एक कच्चा (विनापका) शराव रख दीजिए। इस शराव पर जो स्याही जमे उसे छुडा लीजिए।)

इति जकाराद्यञ्जनप्रकरणम्।

अथ जकारादिनस्यप्रकरणम्।

(२०९७) जपापुष्परसनस्यम्

(र. र. र.। उप. ५)

जपा पुष्परसं क्षौद्रं कर्षैकं नस्यमाचरेत्।
सप्ताहाद्रञ्जयेत्केशान् सर्वनस्येष्वयं विधिः॥

जवाके फूलोका रस और शहद समान भाग मिलाकर प्रतिदिन १ तोलेकी नस्य लेनेसे सात दिनमें सफेद बाल काले हो जाते हैं।

(२०९८) जालिनीफलादिनस्यम्

(वृ. नि. र.। कामला.)

जालिनीफलमाध्मानं नस्यं वा तण्डुलाम्भसा।
जालिनीफलमध्यस्थं श्यामासर्षपनस्यतः॥

बिंडाल डोढेको सुखाकर चूर्ण करके उसे नलकीद्वारा नाकमें फूंकनेसे, या उस चूर्ण को चावलोके पानीमें पीसकर नस्य लेनेसे अथवा उसके गूदेके साथ निसोत और सरसो मिलाकर चूर्ण करके नस्य लेनेसे कामला रोग नष्ट होता है।

(२०९९) जिङ्गिन्यादि नस्यम्

(वं. से.। वातव्या.)

परमौषधमपबाहुकमन्यास्तम्भोर्ध्वजत्रुगतरोगे।
शीतलजलेननावनमुपशमने जिङ्गिनी च पुरः॥

शीतल जलके साथ पीसकर जिंगनीके गोंद और गूलरकी नस्य देनेसे अपबाहुक और मन्यास्तम्भादि ऊर्ध्वजत्रुगत वातव्याधियां नष्ट होती हैं।

(२१००) ज्योतिष्मतीतैलनस्यम्

(वं. से.। ज्वरा.)

ज्योतिष्मत्यास्तथा तैलं मूलं पिण्डारकस्य च।
तन्द्राविनाशनं श्रेष्ठं नस्यकर्मणि योजितम्॥

पिण्डाराकी जडको ज्योतिष्मती (मालकंगनी) के तैलमें घिसकर नस्य देनेसे ज्वरमें होनेवाली तन्द्राका नाश होता है।

(२१०१) ज्वरनाशकनस्यम् (र.सा.सं.।परि)

शुद्धतुत्थं पलैकञ्च भावयेज्जालिनीरसैः।
सप्तविंशतिवारांश्च निम्बनीरे तथैव च॥
शुष्कनस्यं प्रदातव्यं सर्वज्वरविनाशनम्।
यस्मिन्नासापुटे दत्तं ह्यर्धांगज्वरनाशनम्॥

शुद्ध नीले थोथेको बिंडाल और नीमके स्वरसकी २७-२७ भावना देकर सुखाकर रख लीजिए।

नाकके जिस छुर (छिद्र) में इसकी नस्य दी जाती है उसी ओरके आधे शरीरका ज्वर नष्ट हो जाता है।

॥ इति जकारादि नस्यप्रकरणम्॥

अथ जकारादि रसप्रकरणम् ।

(२१०२) जन्तुघ्नी गुटिका [रसः]

(र. र. स.। उ. खं. अ. २०)

सूतगन्धौ समौ ताभ्यां मण्डूरं सप्तमांशतः ।
विधायकज्जलीमाखुकर्ण्या सम्मर्दयेद् द्व्यहम् ॥
ततो मण्डूरमानेन क्षुद्रदीप्यं विनिक्षिपेत् ।
आरुष्करकषायेण दिनमेकं विमर्दयेत् ॥
ब्रह्मवीजं समुद्रस्य फलं जातीफलन्तथा ।
विषतिन्दुकवीजञ्च ताप्यं सर्वं समांशकम् ॥
विडङ्गं सममेतैश्च सूक्ष्मचूर्णं प्रकल्पयेत् ।
रसतुल्यं हि तच्चूर्णं रसेन सह मेलयेत् ॥
वासा च निम्बत्वग्वंशो वेल्लव्योषाम्बुदं तथा ।
एषां क्वाथेन सप्ताहं त्र्यहं मूर्वार्द्रयोः रसे ॥
भावयित्वा चणप्रायाःकर्त्तव्याःवटिकाःशुभाः ।
अश्वनिम्बादिजक्वाथे प्रदत्तैका वटी शुभा ॥
पातयेज्जठराज्जन्तून्सर्वदेहगदान्हरेत् ।
कुष्ठं जन्तून्निहन्त्याशु द्वित्रिवारप्रयोगतः ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १—१ भाग, मण्डूर भस्म दोनोका सातवां भाग। तीनोको घोटकर कज्जली बना लीजिए और फिर दो दिन तक मूषाकर्णीके रसमें घोटिए। तत्पश्चात् मण्डूरके समान छोटी अजवायनका चूर्ण मिलाकर एक दिन भिलावेके क्वाथमें घोटिए। इसके पश्चात् पलाश (ढाक)-के वीज, समुद्रफल, जायफल, कुचला और सोनामक्खी भस्म। इनका चूर्ण १—१ भाग तथा बायविड़ङ्गका चूर्ण इन सवके वरावर लेकर सबको एकत्र मिलाइये और उपरोक्त कज्जलीमें इस चूर्णमेसे पारेके समान मिलाकर बांसेके स्वरस, नीमकी छालके रस, बांसके रस, बायविडङ्गके क्वाथ तथा सोठ, मिर्च, पीपल और मोथेके क्वाथमें सात सात दिन और मूर्वा तथा अद्रकके रसमें ३—३ दिन घोटकर चनेके बरावर गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १—१ गोली अश्वगन्धादि या निम्बादि गणके क्वाथके साथ सेवन करनेसे २—३ बारमेंही उदरसे समस्त कृमि निकलकर कुष्ठ और अन्यरोग शीघ्रही शान्त हो जाते है।

(२१०३) जयमङ्गलो रसः [१]

(धन्व.; र. रा. सुं.; भै. र.। ज्वर.)

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं टङ्कणन्तथा ।
ताम्रं वङ्गं माक्षिकञ्च सैन्धवं मरिचन्तथा ॥
समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम् ।
तदर्द्धं कान्तलोहञ्च रौप्यभस्मापि तत्समम् ॥
एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत् कनकद्रवैः ।
शेफालीदलजैश्चापि दशमूलीरसेन च ॥
किराततिक्तकक्वाथैस्त्रिवारं भावयेत्सुधीः ।
भावयित्वा ततःकार्या गुञ्जाद्वयमिता वटी ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम् ।
जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम् ॥
ज्वरानष्टविधान्हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान्विषमज्वरान् ॥
मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जागतं तथा ।
अन्तर्गतं महाघोरं वहिःस्थं च विशेषतः ॥

नाना दोषोद्भवश्चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा।
निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्री शिवशासनात्॥
जयमङ्गलनामायं रसः श्री शिवनिर्मितः।
बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिबर्हणः॥

हिंगुलसे निकला हुवा पारा, शुद्ध आमलासार गन्धक, सुहागेकी खील, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, सोनामक्खी भस्म, सेंधानमक और काली मिर्चका चूर्ण १-१ भाग, स्वर्ण भस्म १६ भाग तथा कान्तलोह भस्म और रौप्य (चांदी) भस्म ८-८ भाग। सबको एकत्र घोटकर धतूरेके रस, हार सिंगारके पत्तोंके रस, दशमूलके क्वाथ और चिरायतेके क्वाथकी ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लीजिए।

इसे ज़ीरेके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे महा भयङ्कर जीर्णज्वर, बहुत पुराना ज्वर, तथा साध्य, असाध्य, एकदोषज, द्विदोषज, विषम, मांसगत, मेदोगत, अस्थिगत, मज्जागत और शुक्रगत तथा अन्त स्थादि समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते है। तथा अन्य समस्त रोग भी नष्ट होकर बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है।

नोट—प्रथम पारे और गन्धककी पृथक् कज्जली करके अन्य औषधें मिलानी चाहिए।

(२१०४) जयमङ्गलो रसः [२]

(रसे. चिं. म.। अ. ९; र. सा. सं., र. रा. सुं., र. का. धे.। ज्वर.)

सूतभस्माभ्रकं तारं मुण्डतीक्ष्णालमाक्षिकम्।
वह्निटङ्कणकं व्योषं समं सम्मर्दयेद्दिनम्॥
पाठानिर्गुण्डिकापष्ठीबिल्वमूलकषायकैः।
ततो मूषागतं रुद्ध्वा विपचेद्भूधरे पुटे॥
माषैकं दशमूलस्य कषायेण प्रयोजयेत्।
अञ्जनेनाथवा नस्यात् सन्निपातं जयेज्ज्वरम्॥

पारेकी भस्म (अभावमें रस सिन्दूर), अभ्रक भस्म, चांदीभस्म, मुण्डलोहभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, हरताल, सोनामक्खी भस्म, चीतेका चूर्ण, सुहागे की खील, तथा त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च और पीपल) का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एक दिन पाठा, संभालु, मुलैठी और बेलकी छालके क्वाथमें घोटकर गोला बनाकर मूषामें बन्द करके भूधरपुटमें पकाइये।

इसे १ मापेकी मात्रानुसार दशमूलके क्वाथके साथ खिलानेसे अथवा इसकी नस्य देने या रोगी की आंखमें इसका अञ्जन लगानेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है।

(२१०५) जयमङ्गलो रसः [३]

(रसे. मं.। ज्वर.)

तालं ताप्यजगन्धकञ्च विमलं
कान्ताऽऽरतीक्ष्णाभ्रकम्।
मण्डूरं कुलिशं सुराऽऽयसघनं
चैभिःसमं सूतकम्॥
वन्ध्याकन्दससिन्धुवारमधुकं
शृङ्गीविषं टङ्कणम्।
बोलं चित्रकलाङ्गली समरिचं
विश्वोपकुल्याविषा॥
एभिःसर्वसमांशकैस्सुविधिना
बध्वा द्विगुञ्जावटी।
माधूकेन रसेन दोषनिचये
नस्ये प्रपाने हिता॥

कृत्वा नेत्रयुगेऽञ्जनं च विधिना
तत्सन्निपातं जये-।
द्वैद्यैस्त्यक्तमचेतनं च विषमं
तापं हि सर्वोत्थितम् ॥

शुद्ध हरताल, सोनामक्खी भस्म, गंधक, विमल (रौप्यमाक्षिक) भस्म, कान्त लोह भस्म, पीतल भस्म, तीक्ष्णलोह भस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म, हीरा भस्म, स्वर्ण भस्म और बङ्गभस्म १-१ भाग तथा पारा १२ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् उसमें उपरोक्त सब औषधें तथा बांझ ककोड़ेकी जड़, संभालूके पत्ते, मुलैठी, शुद्ध बछनाग, सुहागेकी खील, बीजाबोल (मुरसुकी), चीतामूल, कलिहारीकी जड़, कृष्णमरिच, सोंठ, पीपल और अतीसका समभाग मिश्रित चूर्ण उपरोक्त समस्त औषधोके बराबर मिलाकर महुवेके फूलोंके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इसे खिलाने अथवा इसकी नस्य देने या अञ्जन करनेसे वैद्योसे त्यक्त, अचेतन सन्निपात रोगी और विषव्याप्त व्यक्तिको शीघ्र ही चेत हो जाता है। तथा यह विषमज्वरोंको भी शीघ्र नष्ट कर देता है।

(२१०६) जयरसः (वै. र. । ज्वर.)

रसं गन्धं च दरदं जैपालं क्रमवर्द्धितम् ।
दन्तीरसेन सम्पिष्य वटी गुञ्जामिता कृता ॥
प्रभाते सितया सार्धमशिता शीतवारिणा ।
एकेन दिवसेनैव शीतज्वरमपोहति ॥

(भावप्रकाश तथा बृहद्योगतरंगिणी इत्यादिमें इसको ज्वरघ्नीगुटिका नामसे लिखा है।)

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध हिंगुल ३ भाग, और शुद्ध जमालगोटा चार भाग। प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करके अन्य सब चीजें मिलाकर दन्तीमूलके रसमें घोट-कर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

प्रातःकाल १ गोली मिश्रीमें मिलाकर ठण्डे पानीके साथ सेवन करनेसे शीतज्वर एकही दिनमें नष्ट हो जाता है।

(२१०७) जयवटिका (रसायन सार । ज्वर.)

सूते शिलातालशिवारजांसी;
समानि सर्वार्धमिते प्रमर्द्य ।
ताम्रस्य भस्मापि समस्ततुल्यं;
मन्दारदुग्धेन रसेन वापि ॥ १ ॥
व्याघ्रीगुडूचीत्रिफलाग्निचव्य-
क्काथेन संमर्द्य विधाय गोलम् ।
संशोष्य दद्याद् दशमृत्पटानां;
योगान् पचेत् कुक्कुटनामधेये ॥ २ ॥
विषं कणां भर्जितटङ्कणश्च;
वेल्लं समस्तार्धमथापि शुद्धम् ।
जैपालचूर्णश्च तदर्धमेव
निम्बूकनीरेण च मर्दयेत ॥ ३ ॥
आर्द्राम्बुना चापि वटीर्विधाय
मुद्गप्रमाणा ज्वरि शर्महेतोः ।
श्वासेषु कासेषु च वह्निमान्द्ये;
चाऽर्शःसु पाण्डौ च भगन्दरेषु ॥ ४ ॥
वहूपकुर्युर्वटिका मलानां;
संशोधने तु प्रवरा मताःस्युः ।
योग्यानुपानेन समस्तरोगान्
जयन्ति शीघ्रश्च नयन्ति शर्म ॥ ५ ॥

जयवटी—ज्वरादिकों पर

अर्थ—१ तोला शुद्ध मनसिल, १ तोला शुद्ध हरिताल, १ तोला शुद्ध गन्धक, १॥ तोला पारा, सबको मर्दन करके कज्जली करलें। फिर उसमें ४॥ तो. ताम्रभस्म (कपड़छन की हुई) डालकर मन्दार [आक] के दूधके साथ (यदि दूध नहीं मिले तो मन्दारके पत्तोंके स्वरसके साथ) और कटेरी (भट कटैया) गुरुच, त्रिफला, चित्रक, चव्य, इनके काथके साथ दो दिन मर्दन करके गोला बनाले फिर सुखाकर दश कपड़मट्टी उस गोलाके ऊपर करदे, परन्तु यह स्मरण रहे कि जब गोलेके ऊपर कपड़मिट्टी करने लगें तब गोलेको पहिले मन्दारके पत्तोंसे ढक दें, नहीं तो गोलेके मट्टी लग जानेसे दवा खराब हो जावेगी। जब कपड़-मट्टी सूख जाय तब कुक्कुटपुटमें फूंकदे। स्वाङ्ग-शीतल होने पर उस दवाईको तोल कर देखें। यदि सात तोले दवाई होवे तो ११ माशे वछ-नाभ विष, ११ माशे पीपल, ११ माशे भुना हुवा चौकिया सुहागा, ११ माशे कालीमिर्च, इन सबका कपड़छन चूर्ण करके और ३॥ तोले शुद्ध जमालगोटेका चूर्ण, उस सात तोले दवामें मिला-कर निम्बूके रसके साथ घोटकर एक भावना दें। फिर आदाके रसके साथ घोटकर मूंगकी बराबर गोलियां बना लें। १ गोली सायङ्काल, १ गोली प्रातःकाल, बताशेमें रखकर या मधुके साथ देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं, कफज्वर और वातज्वरमें विशेष उपकारक है। और श्वास, कास, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग और भगन्दर इन रोगोंमें इनका उपकार प्रत्यक्ष देखा गया है और कोष्ठकी मलशुद्धि करनेके लिये भी ये गोलियां एक ही चीज़ है। इनके खानेसे दो तीन दस्त खुलासा हो जाते हैं ज्वर तत्काल उतर जाता है और योग्य अनुपानसे सभी रोगोंमें फायदा करने वाली चीज है।

(रसायन सारसे उद्धृत)

(२१०८) जयसुन्दरो रसः

(र. चं.। धी.; र. र. स.। अ. २२ खं. । २)

सुवर्णं रजतं ताम्रं ताप्यसत्वं च वैक्रतम्।
एकैकं निष्कमानेन संशुद्धं परिमारितम्॥
एतच्चतुर्गुणं सूतं सूताद्द्विगुणगन्धकम्।
मर्दयेल्लक्ष्मणातोयैर्बन्धुजीवरसैरपि॥
काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा ताम्रपत्रं मुखे न्यसेत्।
विलिम्पेदभितः कूपीमङ्गुलोत्सेधया मृदा॥
विशोष्य च पुटं दद्याद् भूमौ निक्षिप्य कूपिकाम्
गजाख्यपुटपर्याप्तैः शाणकर्षमितोत्पलैः॥
स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ भावयेल्लक्ष्मणाद्रवैः।
सप्तवारं विशोष्याथ करण्डान्तर्विनिक्षिपेत्॥
अश्वगन्धारजोयुक्तस्ताम्रगोक्षुरसंयुतः।
सेवितो गुञ्जया तुल्य सितया च रसोत्तमः॥
मासत्रयप्रयोगेण वन्ध्या भवति पुत्रिणी। *

---

* किसी किसी ग्रन्थमें निम्नलिखित पाठ अधिक मिलता है—

पुत्रिण्याःस्नानशुद्धाया रजःकौशिकचक्षुषी।
गव्याज्येन च संसाध्य तत्तदानीं हि भोजयेत्॥
ऋतावृताविदं देयं यावन्मासत्रयं भवेत्।
रसेन्द्र-कथित-सोऽयं चम्पकारण्यवासिभिः॥
पूर्णामृताख्ययोगीन्द्रैर्नामतो जयसुन्दर।
सेविते ऽस्मिन् रसे स्त्रीणां न भवेत्सूतिकागदः।
भवेत्पुत्रश्च दीर्घायु-पण्डितो भाग्यमण्डितः॥

स्वर्ण भस्म, चांदी भस्म, ताम्र भस्म, स्वर्ण माक्षिक सत्वकी भस्म और वैक्रान्त भस्म १–१ टङ्क (५–५ माशे) तथा पारद २० टङ्क और गन्धक ४० टङ्क लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधें मिलाकर सबको लक्ष्मणा और दुपहरियाके फूलोंके रसमें घोटकर (सुखाकर) १ अंगुल मोटी कपड-मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर उसके मुखको तांवेके पत्रसे बन्द कर दीजिए। तत्पश्चात् पृथ्वीमें एक गढ़ा खोदकर उसमें वह शीशी रखकर (शीशी ऊपर थोड़ा रेत चढाकर) गजपुट लगा दीजिए। पुटमें जो उपले लगाए जांय वह ४ माशेसे १ तोले तक वज़नी हों, इससे अधिक भारी न होने चाहियें। जब अग्नि शान्त होकर शीशी स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसमेंसे औषध निकाल-कर उसे लक्ष्मणाके रसकी सात भावना देकर सुखाकर शीशीमें भर लीजिए।

इसे ३ मास तक प्रतिदिन १ रत्तीकी मात्रा-नुसार असगन्ध और गोखरुके चूर्ण, मिश्री तथा ताम्रभस्ममें मिलाकर सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्रीके भी पुत्र उत्पन्न होता है।

[प्र. वि.–ताम्र भस्म १ रत्ती तथा असगन्धादि १–१ माशा लेना चाहिए।]

(२१०९) जयागुटिका

(र. सा. सं., र. रा. सुं., र. चं.। कास)

सूतकं गन्धकं लौहं विषं वत्सकमेव च।
विडङ्गं केशरं मुस्तमेला ग्रन्थिकरेणुकम्॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं जैपालवीजकम्।
एतानि समभागानि द्विगुणो गुड उच्यते॥
तिन्तडीवीजमानेन प्रातःकाले च भक्षयेत्।
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम्॥
अजीर्णं ग्रहणीरोगं शूलं पाण्ड्वामयन्तथा।
अपाने हृदये शूले वातरोगे गलग्रहे॥
अरुचावतिसारे च सूतिकातङ्कपीडिते।
'जयाख्या' निर्मिता ह्येषा भक्षणीया सुरैरपि॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, मीठा तेलिया (शुद्ध वत्सनाभ विष), कुडेकी छाल, वाय-बिड़ङ्ग, नागकेशर, मोथा, इलायची, पीपलामूल, रेणुका (संभालुके बीज), सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, चीता और शुद्ध जमाल गोटा १–१ भाग और सबसे दो गुना गुड़ लेकर, समस्त चीज़ोका चूर्ण करके गुड़में मिलाकर इमलीके बीजके समान गोलियां बना लीजिए।

यदि यह 'जया' नामक वटी प्रातःकाल सेवन की जाय तो खांसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, ग्रहणी, शूल, पाण्डु, अपानवायु का रुकना, हृदयशूल, वातव्याधि, गलग्रह, अरुचि, अतिसार और सूतिका रोगका नाश होता है।

(२११०) जरामरणहरो रसः (रसें.म.। रसा.)

ताम्रवर्णश्च वैक्रान्तं हिङ्गुलेन समन्वितम्।
मर्दितश्चाम्लवर्गेण हेमाद्यैर्भस्मकारकैः॥
तद्भस्मना युतं सूतं वन्धमायाति नान्यथा।
तेनैव स्पर्शमात्रेण सर्वलोहानि विध्यति॥
वैक्रान्तस्य पलं ह्येकं हेम्नःस्याच्च पलन्तथा।
पारदस्य पले द्वे तु खल्वे संस्थापयेद्बुधः॥
वालरण्डारजोमूत्रे मर्दयेच्च विचक्षणः।
अथवा द्वे महौषध्यौ कटुतुम्बीन्द्रवारुणी॥

भूधात्रीमधुजीवन्त्यौ व्याघ्री चोत्पलसारिवा।
अञ्जनी चेक्षुरासिद्धे सर्पाक्षी शरपुङ्खिका॥
नाड़ताड़नके चापि द्विश्रृङ्ग्यौ चेन्द्रवारुणी।
युगले च यथालाभं स्त्रीमूत्रे पेषयेद्बुधः॥
नष्टपिष्टश्च शुष्कश्च अन्धमूषास्थितं कुरु।
करीषतुषाग्निना भूमौ मृदुस्वेदेन स्वेदयेत्॥
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा शोभनं भस्म जायते।
द्विरक्तिकाप्रमाणेन[1] भक्षयेन्मधुसर्पिषा॥
त्रिकटुत्रिफलायुक्तं ज्ञात्वा चाग्निबलाबलम्।
सर्वं तद् भक्षयेद्यावदजरामरतां व्रजेत्॥

ताम्र वर्णका (तामड़े रङ्गका) वैक्रान्त और हिंगुल समान भाग लेकर दोनोको घोटकर स्वर्णादि धातुओंके मारक अम्ल वर्गमें सम्पुट करके पुट दीजिए। और इसी प्रकार अनेक पुट देकर वैक्रान्त भस्म बना लीजिए।

इस भस्मको पारेमें मिलानेसे वह बंध जाता है और उस बद्ध पारदके स्पर्शसे समस्त धातुओंका वेध होता है।

यह वैक्रान्त भस्म १ पल [५ तोले], स्वर्ण भस्म १ पल और पारद २ पल लेकर सबको खरलमें डालकर बालरण्डाके रज और मूत्रके साथ मर्दन करें फिर कड़वी तूंबी, इन्द्रायन, भुईआमला, मीठी जीवन्ती, कटेली, सारिवा, अञ्जनी (काली कपास), इक्षुग, सिद्धा (ऋद्धि), सरफुका, सर्पाक्षी, नाई, ताड़न, काकड़ाश्रृङ्गी, मेढाश्रृङ्गी, छोटी और बड़ी इन्द्रायनकी जड। इनमेंसे जितनी औषधें मिल सकें उन सबको समान भाग लेकर स्त्रीके मूत्रमें घोटकर चूर्ण करें। यह चूर्ण उपरोक्त स्वर्णादि समस्त औषधोके बराबर लेकर उनमें मिलाकर घोटे। जब वह नष्ट पिष्ट अर्थात् चूर्ण हो जाय तो सुखाकर अन्धमूषामें बन्द कर दीजिए। फिर भूमिमें एक गढ़ा खोदकर उसमें यह मूषा रखकर उसे एक दिन या ३ दिन तक मृदु तुषाग्निमें स्वेदित कीजिए। इस प्रकार अत्युत्तम भस्म तैयार हो जायगी।

इसे सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा और आमलेके चूर्ण तथा घी और शहदके साथ अग्निबलोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे मनुष्य अजर और अमर हो जाता है।

[1] रक्तिकार्द्धप्रमाणेनेति पाठान्तरम्।

(२१११) जराहररसः (र.र.स.।उ.खं.अ.१६)

रसगन्धकमध्वाज्यं शिलाजत्वम्लवेतसम्।
द्विमाषप्रमितं वेगान्मासमात्राज्जरां जयेत्॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध शिलाजीत और अम्लवेतका चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए; तत्पश्चात् अन्य औषधें मिलाकर घोटिए। इसे २ माशेकी मात्रानुसार शहद और घीमें मिलाकर एक मास तक सेवन करनेसे जरा [वृद्धावस्था] दूर हो जाती है।

(प्र. वि.—व्यवहारिक मात्रा ४ रत्ती। घी ६ माषे। शहद २ तोले)

(२११२) जलजामृतरसः

(यो. र.। प्र.; वृ. नि. र.। प्र.)

तवक्षीरं शिलाधातुवङ्गकुण्डलिसत्त्वकम्।
मेहारिबीजसंयुक्तं विदारीजीवनीरसैः॥
भावयेत्त्रिवारन्तु सितोपलसमन्वितम्।
जलजामृतविख्यातो रसोऽयं मेहकृच्छ्रनुत्॥

बंसलोचन, शुद्ध मनसिल, बङ्गभस्म, सत-गिलोय और बकायनके बीज समान भाग लेकर सबको बिदारीकन्द और काकोलीके स्वरस या क्वाथकी ३-३ भावना देकर चूर्ण कर लीजिए। फिर इसमें समान भाग मिश्री मिलाकर सुरक्षित रखिए।

इसके सेवनसे प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होते हैं।

(मात्रा=३ माशे। अनुपान गोखरुका क्वाथ या दूध)

(२११३) जलोदरारिरसः [१]

(र. का. धे.। उदर.; र. सा. सं.; र. चं.; र. मं.; यो. र.; र. रा. सुं.। उदर.; वृ. यो. त.। त. १०५; र. चि. म.। अ. ९)

पिप्पलीमारितं ताम्रं काञ्चनीचूर्णसंयुतम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालकं तथा॥
निष्कं खादेद्विरेकोऽयं सत्यं हन्ति जलोदरम्।
रेचनानान्तु सर्वेषां दध्यन्नं स्तम्भने हितम्॥
आमान्ते च प्रदातव्यमन्यथा मुद्गयूषकम्।
जलोदरारि नामायं रसःसर्वत्र पूजितः॥

पीपल, ताम्रभस्म और हल्दीका चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध जमालगोटा सबके बराबर लेकर सबको १ दिन थोहर (सेंहुड) के दूधमें घोटकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे ४ माशेकी मात्रानुसार खिलानेसे विरेचन होकर जलोदर नष्ट हो जाता है।

यदि दस्त बन्द करनेकी आवश्यकता हो तो दही भात खिलाना चाहिए अन्यथा आम निकल जानेके पश्चात् मूंगका यूष और भात खिलाना चाहिए।

(४ माशे मात्रा अधिक है अतएव साधारणतः २-३ रत्तीकी मात्रानुसार देना चाहिए। अनुपान=शीतल जल)

(२११४) जलोदरारिरसः [२]

(भै.र.; धन्व., र.र.।उदर., वृ.यो.त ।त.१०५)

रसेन गन्धं द्विगुणं शिला च
निशा च वीजं जयपालकस्य।
फलत्रयं त्र्यूषणकञ्च चित्रं
सर्वं विचूर्ण्यापि विभावयेच्च॥
दन्तीस्नुहीभृङ्गरसे पृथक् च
सम्भाव्य संशोष्य च सप्तवारान्।
वयो बलं वीक्ष्य तथा ददीत
जाते विरेके च ददीत पथ्यम्॥
अल्पं सतक्रं शिशिरानुशायि
जाते बले तत्पुनरेव दद्यात्।
तक्रेण रोगःसमुपैति शान्तिं
सिद्धो रसो नाम जलोदरारिः॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक, मनसिल, हल्दी, जमालगोटेके शुद्ध बीज, हर्र, बहेड़ा,आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), और चीतेका चूर्ण २-२ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर दन्तीमूल, थोहर (सेहुंड) और भंगरेके रसकी सात सात भावनाएं देकर सुखा लीजिए।

इसे आयु और बलोचित मात्रानुसार देनेसे जलोदर रोग नष्ट होता है।

१ मरिचं ताम्रमिति पाठान्तरम्।

इससे विरेचन होनेके बाद अल्प तक्रयुक्त भात इत्यादि पथ्य देना चाहिए। और शीतल स्थानमें रहना चाहिए।

एक बार विरेचन देनेके पश्चात् बल आ जाने पर पुनः यही औषध देकर विरेचन कराना चाहिए।

इस पर तक्र सेवन करनेसे जलोदर रोग नष्ट होता है।

(२११५) जातीफलरसः

(र. सा. सं.। ग्र., र. चं.। अति.; र. रा. सुं.। ग्र.)

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं जातीफलं समम् ।
कुटजस्य फलञ्चैव धूर्त्तबीजानि टङ्कणम् ॥
व्योषं मुस्ताभया चैव चूतबीजं तथैव च ।
बिल्वकं सर्जबीजञ्च दाडिमीफलवल्कलम् ॥
एतानि समभागानि निक्षिपेत् खल्लमध्यतः ।
विजयास्वरसेनैव मर्दयेच्छ्लक्ष्णचूर्णितम् ॥
गुञ्जाफलप्रमाणान्तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
एकां कुटजमूलत्वक्कषायेण प्रयोजयेत् ॥
आमातिसारं हरते कुरुते वह्निदीपनम् ।
मधुना बिल्वशुण्ठेन रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥
शुण्ठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ ।
जातिफलरसो ह्येष ग्रहणीगदनाशनः ॥

शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, रस सिन्दूर, शुद्ध गन्धक, जायफल, इन्द्रजौं, धतूरेके बीज (शुद्ध), सुहागेकी खील, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, नागरमोथा, आमकी गुठलीका गर्भ, बेलगिरी, रालके बीज और अनारके फलका छिलका। सब चीज़ समान भाग लेकर चूर्ण योग्य औषधियोंका कपड़छन चूर्ण कर लीजिए। फिर पारे गन्धककी कज्जली बनाकर उसमें अन्य समस्त औषधियां मिलाकर भांगके स्वरसमें घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली कुड़ेकी जड़की छालके साथ देनेसे आमातिसार नष्ट होता है और अग्नि दीप्त होती है। तथा [३ माशे] बेलगिरीके चूर्णके साथ मिलाकर शहदके साथ चाटनेसे रक्तज ग्रहणी नष्ट होती है। सोंठ और धनियेके चूर्णके साथ देनेसे अतिसार नष्ट होता है।

(२११६) जातीफलादिग्रहणीकपाटरसः

(र. सा. सं. । ग्र.)

जातीफलं टङ्कणमभ्रकञ्च
धुस्तूरबीजं समभागचूर्णम् ।
भागद्वयं स्यादहिफेनकस्य
गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥
चणप्रमाणा वटिका विधेया
यत्नाद्विदध्याद् ग्रहणीगदेषु ।
सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु
पक्वेष्वपक्वेषु गुदामयेषु ॥
रोगेषु दद्यादनुपानभेदै-
र्मधुप्रयुक्ता ग्रहणीगदेषु ।
पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं
रसोत्तमोयं ग्रहणीकपाटः ॥

जायफल, सुहागेकी खील, अभ्रक भस्म और धतूरेके बीज १-१ भाग, तथा अफीम २ भाग लेकर सबको गन्धप्रसारिणीके पत्तोंके रसमें घोट-कर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इसे विविध अनुपानोंके साथ सामग्रहणी, पक्वग्रहणी, रक्तग्रहणी, शूल सहित ग्रहणी तथा अतिसारादि रोगोंमें प्रयुक्त करना चाहिए। साधारणतः संग्रहणीमें शहदके साथ देना चाहिए। पथ्य—दही भात।

(२११७) जातीफलादिवटी(र.सा.सं.।अर्श.)

जातीफलं लवङ्गञ्च पिप्पली सैन्धवन्तथा।
शुण्ठी धुस्तूरबीजञ्च दरदं टङ्कणन्तथा॥
समं सर्वं विचूर्ण्याथ जम्भाम्भसा विमर्दयेत्।
जातीफलवटिकेयमर्शोऽग्निमान्द्यनाशिनी॥

जायफल, लौङ्ग, पीपल, सेंधानमक, सोठ, धतूरेके बीज, हिंगुल और सुहागेकी खील। सबका समान भाग चूर्ण लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे बवासीर और अग्निमांद्य रोग नष्ट होते हैं।

(मात्रा=२—३ रत्ती। अनुपान=तक्र।)

(२११८) जातीफलाद्या वटिका

(र. सा. सं.; भै. र. व ; र. र.। ग्रह.)

अभ्रस्य सूतस्य[1] च गन्धकस्य;
प्रत्येकशो माषचतुष्टयञ्च।
विधाय शुद्धोपलपात्रमध्ये;
सुकज्जलीं वैद्यवरःप्रयत्नात्॥
जातीफलं शाल्मलीवेष्टमुस्तं;
सटङ्कणं सातिविषं सजीरम्।
प्रत्येकमेषां मरिचस्य शाण;
प्रमाणमेकं विषमाषकञ्च॥

विचूर्ण्य सर्वाण्यवलोड्य पश्चात्;
विभावयेत्पत्ररसैरसीषाम्[2]।
इन्द्राणिकेन्द्राशनकञ्च जम्बू[3],
जयन्तिका डाडिमकेशराजौ॥
अविद्धकर्णापि च भृङ्गराजो;
विभाव्य सम्यग्वटिका विधेया।
कोलास्थिमानाथ बहुप्रकारं,
सामं निहन्यादनिलान् गदांश्च॥
कुर्याद्विशेषादनलप्रवृद्धिं,
कासञ्च पञ्चात्मकमम्लपित्तम्।
इयं निहन्याद् ग्रहणीमसाध्यां,
मर्त्यस्य जीर्णग्रहणीं प्रवृद्धाम्॥
असारकत्वं त्वतिसारमुग्रं;
श्वासं तथा पाण्डुमरोचकञ्च।
चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं;
जयेद्भृशं योगशतैरसाध्याम्॥
अनेकसम्भावित मर्त्यलोका,
नानाविधव्याधिपयोधिनौका॥

अभ्रक भस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ४—४ मापे लेकर पत्थरके खरलमें महीन कज्जली बना लीजिए। तत्पश्चात् उसमें ४—४ माशे जायफल, सेंभलकी छाल, मोथा, सुहागा, अतीस, जीरा और स्याह मिर्चका चूर्ण तथा १ माषा शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) मिलाकर खूब खरल कीजिए। इसके बाद उसमें इन्द्रायन, भांग,

१ विशुद्धसूतस्येति पाठान्तरम्।

२ रसैरसोन्मान्मितैरसालवंशो च भद्रोत्कटकञ्चेति पाठाधिक्यम् कतिपयेषु ग्रन्थेषु।

३ "वशाम्रभद्रोत्कटा नामिन्द्रानिकेन्द्राशकसजम्बु" इति पाठान्तरम्।

जामन, जयन्ति, अनार, भांगरा, पाठा और काले भांगरेके पत्तोके रसकी एक एक भावना देकर जंगली बेरकी गुठली के बराबर गोलियां बना लीजिए।

ये गोलियां अनेक प्रकारके आमरोग और वातज रोगोंका नाश करती हैं। विशेपतः अग्नि-दीपक हैं। पांच प्रकारकी खांसी, अम्लपित्त, असाध्य (कष्ट साध्य) और जीर्ण संग्रहणी, भयङ्कर अतिसार, श्वास, पाण्डु, अरुचि और कोष्टविकारोंका नाश करती है। जो रोग अन्य सैकड़ो ओपधियोसे भी नष्ट नहीं होते वे इनके सेवनसे नष्ट हो जाते है।

(२११९) जीरकादिचूर्णम् [रसः]

(भै. र. । ग्र.)

जीरकं टङ्कनं मुस्तं पाठा विल्वं सधान्यकम्।
वालकं शतपुष्पा च दाडिमं कुटजं तथा ॥
समङ्गा धातकीपुष्पं व्योषश्चैव त्रिजातकम्।
मोचरसःकलिङ्गश्च व्योम गन्धकपारदौ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि च।
एतत्प्राशितमात्रेण ग्रहणीं दुस्तरां जयेत् ॥
अतिसारं निहन्त्याशु सामं नानाविधं तथा।
कामलां पाण्डुरोगश्च मन्दाग्निश्च विशेपतः ॥
जीरकाद्यमिदं चूर्णमगस्त्येन प्रकाशितम् ॥

जीरा, सुहागा, मोथा, पाठा, वेलगिरी, धनियां, सुगन्धबाला, सोया, अनारदाना, कुड़ेकी छाल, मजीठ, धायके फूल, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), दालचीनी, तेजपात, इलायची, मोचरस, इन्द्रजौ, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक और पारद समान भाग तथा जायफल सबके बराबर लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य ओपधियोंका चूर्ण मिलाकर रखिए।

अगस्त्य मुनि प्रणीत इस "जीरकादि चूर्ण" को सेवन करनेसे भयङ्कर संग्रहणी, आमातिसार और अन्य अनेक प्रकारके अतिसार, पाण्डु, कामला और विशेपतः अग्निमान्द्य रोग अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते है।

(२१२०) जीरकादिरसः (यो र. । छ.)

अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षौद्रैःसकटुत्रिकैः।
एतैःसार्धं सूतभस्म सद्यो वान्तिं विनाशयेत् ॥

जीरा, धनियां, हर्र, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च और पीपल) तथा पारदभस्म (अभावमें रससिन्दूर) समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे शहदके साथ चाटनेसे वमन तुरन्त रुक जाती है।

(मात्रा—१॥ माशा।)

(२१२१) जीर्णज्वराङ्कुशरसः

(यो. र.; वृ. नि. र.; र. चं. । ज्वर.)

मृतसूताभ्रनागार्ककान्तं वैक्रान्तमेव च।
हिङ्गुलं टङ्कणं गन्धं विषं कुष्ठं समांशकम् ॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता भृङ्गनिर्गुण्डिकाद्रवैः।
भावयेत्त्रिदिनं चैव मापमात्रानुपानतः ॥
जीर्णज्वरे क्षये कासे दोपे मन्दानलेपु च।
पाण्डुं हलीमकं गुल्ममुदरं चार्दितं जयेत् ॥
ग्रहणीमूलरोगांश्च त्वरोचकमनेकधा।
कान्तिं तेजो वलं पुष्टिं वीर्यं वुद्धिं विवर्धयेत् ॥
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो जीर्णज्वराङ्कुशः ॥

पारद भस्म (अभावमें रस सिन्दूर), अभ्रक भस्म, सीसाभस्म, ताम्र भस्म, कान्तलोह भस्म, वैक्रान्त भस्म, हिंगुल, सुहागेकी खील, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बछनाग और कूठ। सब चीजें समान भाग लेकर ३-३ दिन तक त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, भंगरा और संभालुके रसमें घोटकर सुखाकर सुरक्षित रखिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार यथोचित अनुपानके साथ देनेसे जीर्णज्वर, क्षय, अग्निमांद्य,खांसी, पाण्डु, हलीमक, गुल्म, उदररोग, अर्दित (लकवा), ग्रहणी, बवासीर और अनेक प्रकारकी अरुचि नष्ट होती तथा कान्ति, तेज, बल और वीर्यकी वृद्धि होकर शरीर पुष्ट हो जाता है।

(व्यवहारिक मात्रा=२-३ रत्ती)

(२१२२) जीर्णज्वरारिरसः [१]

(र. का. धे. । ज्वर.)

एको भागो रसद्भागद्वयं शोधितगन्धकात्।
विषस्य च त्रयो भागाश्चतुर्भागा हिमावती॥
जैपालजा पञ्चभागा निम्बूकद्रवमर्दिताः।
कृमिघ्नप्रतिमा वट्यः कार्याः सर्वज्वरच्छिदः॥
शृङ्गवेरेण दातव्या वटिकैका दिने दिने।
जीर्णज्वरे तथाऽजीर्णे समे वा विषमे तथा॥
सर्वज्वरं निहन्त्याशु दावानलमिवाम्बुदः॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध बछनाग विष ३ भाग, स्वर्ण क्षीरी (सत्यानाशीकी जड़-चोक) ४ भाग और शुद्ध जमालगोटा ५ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर नींबूके रसमें घोटकर बायबिड्ङ्गके दानेके समान गोलियां बना लीजिए।

प्रतिदिन एक एक गोली अदरकके रसके साथ देनेसे जीर्णज्वर, आमज्वर, विषमज्वर इत्यादि इस प्रकार नष्ट हो जाते है जैसे वृष्टिसे दावानल।

(नोट-यह तीव्र रेचकौषध है इस लिए गर्भिणी और बालकोंको नहीं देनी चाहिये।

(२१२३) जीर्णज्वरारिरसः [२]

(र. र. स.। उ. ख. अ. १२; र. रा. सुं.। ज्वर.)

नागं वङ्गं रसं ताम्रं गन्धकं टङ्कणन्तथा।
सूतं विषं च नेपालं हरितालं समं तथा॥
वटक्षीरेण सम्मर्द्य सर्वं कुर्यात्तु गोलकम्।
तं गोलकम् भाण्डमध्ये पाचयेद्दीपवह्निना॥
ततःसंशीतलं कृत्वा भृङ्गराजेन मर्दयेत्।
आर्द्रकस्य रसेनापि मर्दयेच्च पुनःपुनः॥
चणप्रमाणवटिका रसेऽऽर्द्रस्य दायपेत्।
गुञ्जाद्वयप्रयोगेण ज्वरं जीर्णं हरत्येसौ॥

सीसा भस्म, बंग भस्म, खपरिया भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, शुद्ध पारा, शुद्ध बछनाग, शुद्ध जमाल गोटा और शुद्ध हरताल (अथवा हरताल भस्म) समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर बड़के दूधमें घोटकर सबका एक गोला बना लीजिए और उसे सुखाकर एक हांडीमें रखकर उसका मुख बन्द कर दीजिए। इस हांडीको चूल्हेपर चढ़ाकर नीचे (४ पहर तक) दीपकके समान मन्दाग्नि जलाइये। तत्पश्चात् हांडीके स्वांग शीतल होने पर उस

गोलेको निकालकर भंगरे और अदरकके रसमें ३-३ वार घोटकर चनेके वरावर (२ रत्तीकी) गोलियां वना लीजिए। इनमेंसे १-१ गोली अद्रकके रसके साथ खिलानेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है।

(२१२४) जीवननामारसः

(र. र. स. । उ. ख. अ. १६)

रसगन्धौ सिन्धुकणाटङ्कण—
मभयाग्निहियावलीकतकफलम्।
क्रमशोत्तरभागविचूर्णितया।
बृहतीरससंयुतभावनया॥
आर्द्रकहिङ्गुपुनर्नवपूति—
च्छिन्नरसैःक्रमशो भावनया।
तत्र कलांशविषं च विमिश्रं
तद्रसमापसमानवटी या॥
सर्वमजीर्णकफमारुतपाण्डु
शोफहलीमककामलशूलम्।
नाशयते ह्युदराग्निकरोऽयं
दीपनःजीवननाम रसेन्द्रः॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सेंधा नमक ३ भाग, पीपल ४ भाग, सुहागेकी खील ५ भाग, हर्र ६ भाग, चीता ७ भाग, हियावली ८ भाग और निर्मलीके फल ९ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली वनाकर पश्चात् अन्य ओषधियोंका महीन चूर्ण मिलाकर कटेली, अद्रक, हींग, पुनर्नवा, खट्टासी [जुन्दवेदस्तर] और गिलोयके रसकी पृथक् पृथक् १-१ भावना देकर, उसमें समस्त औषधका १६ वां भाग शुद्ध वछनागका चूर्ण मिलाकर उड़दके समान गोलियां वनाएं।

इनके सेवनसे सर्व प्रकारका अजीर्ण, वातकफज पाण्डु, शोथ, हलीमक, कामला और शूलका नाश होता तथा अग्नि दीप्त होती है।

नोट—हींग और जुन्दवेदस्तरको ३२ गुने पानीमें घोटकर उससे भावना देनी चाहिए।

(२१२५) जीवनानन्दाभ्रम्

(भै. र.; र. रा. सु. । ज्व.)

वज्राभ्रं मारितं कृत्वा कर्षयुग्मं विचूर्णितम्।
जीरं कनकवीजञ्च कर्षं वासारसेन च॥
कण्टकारिरसेनैव धात्रीमुस्तरसेन च।
गुडूच्याश्चस्वरसेनैव पलांशेन पृथक् पृथक्॥
मर्दयित्वा वटीकार्या गुञ्जामात्रा प्रयोजिता।
विषमाख्याञ्ज्वरान्सर्वान् प्लीहानंयकृतंत्वमिम्॥
रक्तपित्तं वातरक्तं ग्रहणीश्वासकासकौ।
अरुचिं शूलहृल्लासावर्शांसि च विनाशयेत्॥
जीवनानन्दनामेदमभ्रं वृष्यं वलप्रदम्।
रसायनमिदं श्रेष्ठमग्निसंदीपनं परम्॥

वज्राभ्रककी भस्म २ कर्ष (२॥ तोले) तथा जीरे और धतूरेके वीजोंका चूर्ण १-१ कर्ष लेकर सबको वासा, कटेली, आमला, मोथा और गिलोयके १-१ पल [५-५ तोले] रसमें घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां वना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली यथोचित अनुपानके साथ खिलानेसे विषम ज्वर, तिल्ली, जिगर, वमन, रक्तपित्त, वातरक्त, ग्रहणी, श्वास, खांसी, अरुचि, शूल, हृल्लास (उबकाई) और बवासीरका नाश होता है।

यह रस वृष्य (वीर्यवर्द्धक) वलदायक, रसायन और अग्निदीपक है।

(२१२६) जैपालगुणशोधने

(यो. र., यो. त. । त. १७, बृ. यो. त.। त. ४३; शा. धं. । खं. २ अ. १२)

जैपालोस्ति गुरुस्तिक्तो वान्तिकृज्ज्वरकुष्ठनुत्।
उष्ण सरो व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः॥
जैपालं रहितं त्वगङ्कुररसज्ञाभिर्मले माहिषे।
निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम्
लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसन्निभम्।
निम्बूकाम्बुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत्॥

अथवा

जैपालं निस्तुषं कृत्वा दुग्धे दोलायुतं पचेत्।
अन्तर्जिह्वां परित्यज्य युञ्ज्याच्च रसकर्मणि॥

जमालगोटा–गुरु, तिक्त, वमनकारक, ज्वर तथा कुष्ठनाशक, उष्ण, सर (रेचक), व्रण [घाव], कफ खुजली कृमि और विषनाशक है।

जमालगोटेके ऊपरका छिलका और भीतरकी जीभ (पत्ता) अलग करके पोटलीमें बांधकर भैसके गोबरमें दबा दीजिए और तीन दिन पश्चात् निकालकर गर्म पानीसे धोकर, खरलमें पीसकर मिट्टीके कोरे खरपर (अथवा घड़ेकी तलीपर) लेप कर दीजिए जब सब तेल खरपर सोखले और वह चूर्णके समान हो जाय तो उतारकर उसे नींबूके रसकी अनेक भावनाएं दीजिए। इस प्रकार जैपाल शुद्ध और अधिक गुणवान हो जाता है।

अथवा

जमालगोटेका ऊपरका छिलका अलग करके उसे पोटलीमें बांधकर दोलायन्त्र विधिसे (१ पहर तक) दूधमें पकाइये और फिर उसके भीतरका पत्ता अलग करके काममें लाइये।

(२१२७) जैपालरसः (र.र.स।उ.खं.अ.१९)

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालश्च गुग्गुलुम्।
समांशमाज्यसंयुक्तां गुटिकां कारयेन्मिताम्॥
एकैकां खादयेद्वैद्य शोफपाण्डुपनुत्तये॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, शुद्ध जमालगोटा और शुद्ध गूगल समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए फिर अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर सबको घीमें घोटकर (२–२ रत्तीकी) गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे प्रतिदिन १–१ गोली खानेसे शोथ और पाण्डुरोग नष्ट होता है।

(अनुपान–गोमूत्र या त्रिफला क्वाथ)

(२१२८) जैपालशोधनम् (र.सा.सं.।पू.खं.)

निस्तुषं जयपालश्च द्विधा कृत्वा विचक्षणः।
एतद्बीजस्य मध्यन्तु पत्रवत्परिवर्जयेत्॥
अष्टमांशेन चूर्णेन टङ्कणस्य च मेलयेत्।
त्रिरात्रं गोमये क्षिप्त्वा पाच्यं दुग्धेन सप्लुतम्॥
एवं वै शुद्धिमायाति जैपालममृतोपमम्॥

जमालगोटोको छील कर उनके बीचसे पत्तेके समान जीभको निकाल डालिए और फिर उनमें आठवां भाग सुहागेका चूर्ण मिलाकर पोटली बनाकर गोबरमें दबा दीजिए। ३ दिन पश्चात् इस पोटलीको निकालकर (धोकर, १ पहर तक) दोलायन्त्र विधिसे दूधमें पकाइये।

इस प्रकार जमालगोटे शुद्ध होकर अमृतोपम गुणकारी हो जाते है।

(२१२९) ज्योतिष्पुञ्जो रसः

(र. रा. सुं.। कु.; र. का. धे.। कु.)

मृतसूताभ्रकं तुल्यं मर्द्यं विल्वरसैर्दिनम् ।
नीलिन्याज्ये रसोप्येवमयःपात्रे विमर्दयेत् ॥
कंगुणीनिम्बकार्पासैस्तैलेनापि च मर्दयेत् ।
माषं भजेत्तथा लेप्यं चर्मकुष्ठहरं परम् ॥
ज्योतिष्पुञ्जो रसो नाम सर्वकुष्ठकुलान्तकृत् ॥
निम्बं खदिरमङ्कोलं राजवृक्षस्य मूलकम् ॥
कषायं पाययेच्चानु चर्मकुष्ठविनाशकृत् ॥

पारद भस्म और अभ्रक भस्म समान भाग लेकर दोनोको लोहेके खरलमें १-१ दिन वेलपत्र के रस, नीलके रस, घी, मालकंगुनी, नीम और कपासके तैल (कपासके वीजोंके तैल) में घोटकर १-१ माशेकी गोलियां वना लीजिए।

नित्य प्रति १-१ गोली नीमकी छाल, खैरसार, अङ्कोल और अमलतासकी जडके काथके साथ खाने अथवा पीसकर लगानेसे चर्मकुष्ठका नाश होता है।

(२१३०) ज्वरकालकेतुरसः

(भै. र.; र. रा. सुं.। ज्व.)

रसं विषं गन्धकताम्रकञ्च
मनःशिलारुष्करतालकञ्च ।
विमर्द्य वज्रीपयसा समांशं
गजाह्वयं तत्र पुटं विदध्यात् ।
द्विगुञ्जमस्यैव मधुप्रयुक्तं
ज्वरं निहन्त्यष्टविधं महोग्रम् ।
पुरा भवान्यै कथितो भवेन
नृणां हिताय ज्वरकालकेतुः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वछनाग, ताम्र भस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध भिलावा, शुद्ध हरताल सव चीजें समान भाग लेकर थोहर (सैंड) के दूधमें घोटकर गोला वना लीजिए; और उसे सुखाकर सम्पुटमें वन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। स्वांग शीतल होने पर गोलेको निकालकर पीसकर रख लीजिए। इसमेंसे २ रत्ती दवा शहदके साथ देनेसे आठों प्रकारके भयङ्कर ज्वर नष्ट होते है।

(२१३१) ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररसः

(भै. र.; र. रा. सुं. । ज्वरा.)

मूर्छितं रसकर्षैकं तदर्द्धं जारिताभ्रकम् ।
तारं ताप्यञ्च रसजं रसकं ताम्रकं तथा ॥
मौक्तिकं विद्रुमं लौहं गिरिजं गैरिकं शिला ।
गन्धकं हेमसारञ्च पलार्द्धञ्च पृथक् पृथक् ॥
क्षीरिणीसुरवल्ली च शोथघ्नी गणिकारिका ।
झिण्टीमल्लीज्योत्स्निका च सतिक्ता तु सुदर्शना॥
अग्निजिह्वा पूतितैला शूर्पपर्णी प्रसारिणी ।
प्रत्येकस्वरसं दत्वा मर्दयेत्त्रिदिनावधि ॥
भक्षयेत्पर्णखण्डेन चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ।
महाग्निकारको रोगसङ्करघ्नः प्रयोगराट् ॥
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ।
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
कासं श्वासं प्रमेहञ्च सशोथं पाण्डुकामले ।
ग्रहणीं क्षयरोगञ्च सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥

रससिन्दूर १ कर्ष (१। तोला), अभ्रकभस्म ½ कर्ष, चांदी भस्म, सोनामक्खी भस्म, रसौत, खपरिया, ताम्र भस्म, मोती भस्म, प्रवाल भस्म,

लोह भस्म, शिलाजीत, गेरु, मनसिल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध तुत्थ (नीला थोथा) प्रत्येक आधा आधा पल (२॥ तोले) लेकर सबको खरल करके, ३-३ दिन सत्यानासीकी जड़ (चोक), गिलोय, पुनर्नवा, अरनी, कटसरैया, कुड़ेकी छाल, पटोल, कुटकी, सुदर्शना, करिहारी, करञ्ज, शालपर्णी और प्रसारिणीके रसमें पृथक् पृथक् घोट लीजिए।

इसमेंसे नित्य प्रति ४ रत्ती रस पानमें रखकर खाना चाहिए।

यह रस अत्यन्त अग्निवर्द्धक, असंख्य रोग नाशक, विशेषतः सतत, सन्तत, रोज़ाना, तिजारी, चातुर्थिक (चौथिया) आदि समस्त ज्वर और खांसी, श्वास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और उपद्रवसहित क्षयका नाश करनेवाला है।

(२१३२) ज्वरकृन्तनो रसः (र प्र.सु.।अ.८)

शुद्धःसूतो गन्धको वत्सनाभः
प्रत्येकं वै शाणमात्रा विधेयाः।
धूर्त्ताद्बीजं कारयेद्वै त्रिशाणं
सर्वेभ्यो वै द्विगुणा हेमवल्ली॥
सूक्ष्मं चूर्णं कारयेत्तत् प्रयत्ना
द्देयं गुञ्जाद्विप्रमाणं च सम्यक्।
भक्षेदार्द्रं चानुपाने ज्वरार्त्तः
सद्यो हन्यात्सर्वदोषान् ज्वरांश्च॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध बछनाग १–१ शाण (३॥ माशे), धतूरेके बीज ३ शाण और इन सबसे दोगुनी सत्यानाशीकी जड़ (चोक) लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली वना लीजिए और फिर अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर खरल कर लीजिए।

इसमेंसे २ रत्ती दवा अद्रकके रसके साथ देनेसे समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(२१३३) ज्वरकेसरीरसः

(भै.र.; र.रा.सुं.; र.सा.सं.; र.चं.; धन्वं.।ज्वर.)

शुद्धसूतं विषं व्योषं गन्धं त्रिफलामेव च।
जयपालसमं कृत्वा भृङ्गतोयेन मर्दयेत्॥
गुञ्जामात्रां वटीं कार्या बालानां सर्षपाकृति।
सितया च समं पीता पित्तज्वरविनाशिनी॥
मरिचेन प्रयुक्ता सा सन्निपातज्वरापहा।
पिप्पलीजीरकाभ्याञ्च दाहज्वरविनाशिनी॥
ज्वरकेसरिनामायं रसो ज्वरविनाशनः॥

शुद्ध पारा, शुद्ध वछनाग विष, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध गन्धक, हर्र, वहेडा, आमला और जमालगोटा समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली वना लीजिए और फिर उसमें अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर भांगरेके रसमें घोटकर बड़े मनुष्योंके लिए १-१ रत्तीकी तथा छोटे बचोंके लिए सरसोंके वरावर गोलियां वना लीजिए।

इन्हें मिश्रीके साथ सेवन करनेसे पित्तज्वर, स्याह मिर्चके चूर्णके साथ देनेसे सन्निपातज्वर और पीपल तथा ज़ीरेके चूर्णके साथ देनेसे दाहयुक्त ज्वर नष्ट होता है।

(२१३४) ज्वरगजसिंहरसः[1]

(यो.र।ज्व., र.रा.सुं। ज्वर; र.र.स.। अ.१२)

गगनदरदयुक्तं शुद्धसूतं च गन्धम्।
प्रहरमथ सुपिष्टं वल्लयुग्मं नरोऽद्यात॥

१ रसराजसुन्दर तथा रसरत्नसमुच्चयमें इसका नाम ज्वरगजहरिरस, तथा ज्वरगजकेसरीरस है।

ज्वरहरगजसिंह शृङ्गवेरोदकेन।
प्रथमजनितदाहे तक्रभक्तं च भोज्यम्॥

अभ्रक भस्म, हिंगुल, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर १ पहरतक खूब अच्छी तरहसे खरल कर लीजिए।

इसमेंसे २ रत्ती रस अद्रकके रसके साथ देनेसे ज्वर नष्ट होता है।

औषध खानेके बाद यदि दाह हो तो तक्र भात खिलाना चाहिए।

(२१३५) ज्वरघ्नीगुटिका [१]

(र. प्र. सु.। अ. ८; वृ. नि. र.; र. का. धे.; र. रा. सुं.; यो. र.। ज्वर.; शा. ध.। र. प्र.)

भागैकः स्याद्रसाच्छुद्धादेलीयः पिप्पलीशिवा।
आकारकरभो गन्धः कटुतैलेन शोधितः॥
फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता इमी।
एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिन्द्रवारुणिकारसे॥
मापोन्मितां गुटीं कृत्वा दद्यात्सर्वज्वरे बुधः।
छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी गुटिका मता॥

शुद्ध पारा १ भाग, एलुवा, पीपल, हर्र, अकरकरा, सरसोके तेलमें शोधा हुवा गन्धक और इन्द्रायनके फल ४-४ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली वना लीजिए और फिर अन्य औषधोंका कपडछन चूर्ण मिलाकर इन्द्रायनके रसमें घोटकर १-१ माशेकी गोलियां वना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली गिलोयके काथके साथ देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

ज्वरघ्नी गुटिका [२]

(भा. प्र.। म. खं. ज्वर; वृ. नि. र.। ज्वर; वृ. यो. त.। त. ५९; र. र. प्र.)

जय रस देखिए।

(२१३६) ज्वरघ्नीवटी (यो. स.। समु. ३)

शुद्धेन गन्धेन समो रसेन्द्रो
द्विभागमुक्तं गुडूचीघनस्य।
शिला विषं नाग्यपराजिता च
भागोप्यमीषां द्विगुणो नियोज्यः॥
कटुत्रिकाङ्कोल्लकदेवदाल्य-
स्त्रिभागिकाःस्यु परिचूर्ण्य सर्वम्।
ततो रसैःशिग्रुदलोद्भवैस्तन्
मर्द्यं द्विगुञ्जागुटिका विधेया॥
देया समस्ते विषमे त्रिदोषे
सद्यो ज्वरघ्नी हिमवालुमिश्रा॥

शुद्ध पारा और गन्धक १-१ भाग, गिलोयका घन (काथको पकाकर गाढा किया हुवा सत्व), शुद्ध मनसिल, शुद्ध बछनाग और अपराजिता [कोयल] की जड़का चूर्ण २-२ भाग, तथा सौंठ, मिर्च, पीपल, अङ्कोल और देवदाली [बिंडाल डोढे] का चूर्ण ३-३ भाग।

प्रथम पारे गन्धककी कज्जली वना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर सहंजनेके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां वना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली [४ रत्ती] कर्पूरके साथ पीसकर (ठण्डे पानी या शहदके साथ) देनेसे

सर्व प्रकारके विषमज्वर और त्रिदोषज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं।

(२१३७) ज्वरधूमकेतुः

(र. सा. सं. । ज्वर.; रसें. चिं. म. । अ. ९; भै. र.; र. च.; वै. क. द्रु.; र. का. धे.; भा. प्र. । ज्वर.)

भवेत्समं सूतसमुद्रफेनंहिंगूलगन्धं परिमर्द्य यत्नात्।
नवज्वरे वल्लमितं त्रिघस्रमार्द्राम्बुनायंज्वरधूमकेतु

शुद्ध पारा, समन्दर झाग, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर १ दिन तक अद्रकके रसमें घोटकर ३–३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे एक एक गोली अद्रकके रसके साथ देनेसे ३ दिनमें नवीन ज्वर नष्ट होता है।

(२१३८) ज्वरध्वान्तदिवाकरो रसः

(र. का. धे. । ज्वर.)

पारदं गन्धकं ताम्रं जैपालं त्रिवृतां कणाम् ।
नलिकां कटुकीं पथ्यां विषतिन्दुकवीजकम् ॥
समभागं समादाय सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत् ।
वज्रीक्षीरेण सम्मर्द्य पश्चादुन्मत्तवारिणा ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव श्लक्ष्णं गुञ्जाचतुष्टयम् ।
नवज्वरे प्रयोक्तव्यो ज्वरध्वान्तदिवाकरः ॥
आत्मान्तशोधनात् पश्चात् पथ्यं मुद्गौदनंहितम्॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, शुद्ध जमालगोटा, निसोत, पीपल, उसारे–रेवन्द, कुटकी, हर्र और कुचला समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य ओषधियोका महीन चूर्ण मिलाकर उसे थोहर (सेंड) के दूध, धतूरेके रस और अद्रकके रसमें पृथक् पृथक् १–१ दिन घोटकर चार चार रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १ गोली प्रातःकाल अद्रकके रसके साथ देनेसे विरेचन होकर ज्वर नष्ट हो जाता है।

जब विरेचनद्वारा आम (कफ) निकल जाय तो मूंगकी दाल और भातका पथ्य देना चाहिए।

(२१३९) ज्वरनागमयूरचूर्णम् (भै.र.।ज्व.)

लौहाभ्रटङ्कनं ताम्रं तालकं वङ्गमेव च ।
शुद्धसूतं गन्धकञ्च शिग्रुवीजं फलत्रिकम् ॥
चन्दनातिविषा पाठा वचा च रजनीद्वयम् ।
उशीरं चित्रकं देवकाष्ठञ्च सपटोलकम् ॥
जीवकर्षभकाजाज्यस्तालीसं वंशलोचना ।
कण्टकार्या फलं मूलं शठीपत्रं कटुत्रयम् ॥
गुडूचीसत्वधन्याकं कटुका क्षेत्रपर्पटी ।
मुस्तकं बालकं विल्वं यष्टीमधु समं समम् ॥
भागाच्चतुर्गुणं देयं कृष्णजीरस्य चूर्णकम् ।
तत्समं तालपुष्पञ्च चूर्णं दण्डोत्पलाभवम् ॥
कैरातं तत्समं देयं तत्समञ्चपलाभवम् ।
एतच्चूर्णसमाख्यातं "ज्वरनागमयूरकम्" ॥
प्रतिमाषमितं खाद्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ।
सन्ततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥
क्षयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकोद्भवं ज्वरम् ।
भूतावेषज्वरञ्चैवमभिचारसमुद्भवम् ॥
दाहशीतज्वरं घोरं चातुर्थादिविपर्ययम् ।
जीर्णञ्च विषमं सर्वं प्लीहानमुदरं तथा ॥

कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं हन्ति न संशयः।
भ्रमं तृष्णां च कासञ्च शूलानाहौ क्षयं तथा ॥
यकृतं गुल्मशूलञ्च आमवातं निहन्ति च।
त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वानां शूलनाशनम् ॥
अनुपानं शीतजलं न देयमुष्णवारिणा ॥

लोह भस्म, अभ्रक भस्म, सुहागा, ताम्र भस्म, हरताल भस्म, वङ्ग भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सहञ्जनेके बीज, हर्रे, वहेड़ा, आमला, सफेद चन्दन, अतीस, पाठा, वच, हल्दी, दारुहल्दी, खस, चित्रक [चीता], देवदारु, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, जीरा, तालीसपत्र, वंसलोचन, कटेलीके फल, कटेलीकी जड, कचूर, तेजपात, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), गिलोयका सत, धनियां, कुटकी, पित्तपापड़ा, मोथा, सुगन्धवाला, वेलगिरी और मुलैठी समान भाग; काला जीरा ४ भाग, तथा तालपुष्प, दण्डोत्पला (सहदेवी), चिरायता और पीपल चार चार भाग* लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसका नाम "ज्वरनागमयूर चूर्ण" है। इसे १ मासा या रोगीकी अवस्थानुसार न्यूनाधिक मात्रामें सेवन करानेसे दुस्साध्य सन्ततादि विषम ज्वर, क्षयज ज्वर, धातुस्थित ज्वर, काम, शोक और भूतावेपसे उत्पन्न ज्वर, अभिचारज ज्वर, दाहपूर्व अथवा शीतपूर्व ज्वर, चातुर्थिकादिके विपर्यय, जीर्णज्वर और विषमज्वरादि हर प्रकारके ज्वरोंका नाश होता है।

यह चूर्ण प्लीहा (तिल्ली), उदररोग, कामला, पाण्डु, शोथ, भ्रम, तृष्णा, खांसी, शूल, आनाह, क्षय, यकृत्वृद्धि, गुल्म, आमवात, त्रिक पृष्ट[पीठ], कमर, जानु और पसलीके शूलको भी अवश्य नष्ट कर देता है।

अनुपान—इसे शीतल जलके साथ खिलाना चाहिए और उष्ण जलसे परहेज करना चाहिए।

* नोट—कुछ वैद्योंका मत है कि काला जीरा उससे पहिलेकी समस्त ओषधियोंसे ४ गुना और तालपुष्प तथा दण्डोत्पला अपने से पूर्वकी समस्त ओषधोंके बराबर, चिरायता अपने पहिलेकी समस्त ओषधोंके बराबर और पीपल अन्य समस्त चूर्णके बराबर लेनी चाहिए।

(२१४०) ज्वरपञ्चाननो रसः
(र. का. धे. । ज्वर.)

शुद्धं रसं गन्धकनागहेम-
बीजं समं कोलकणाजगद्भिः।
दिनत्रयं मर्द्य ततःशनैःशनै--
र्जम्बीरनिम्बार्द्रकवारिणा तत् ॥
वल्लःसिताचन्द्ररसेन देयः
सर्वज्वरान्नाशयति क्षणेन।
सर्वेषु रोगेष्वथ सन्निपाते
दध्योदनोऽस्मिन्खलु पथ्यहेतुः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सीसा भस्म और धतूरेके बीजोंका चूर्ण समान भाग लेकर कज्जली करके उसे ३-३ दिन मिर्च, पीपल और सोंठके काथमें घोटिए फिर जम्बीरी नींबू, नीम और अद्रकके रसकी १-१ भावना देकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेसे १-१ गोली सुगन्धवालाके काथमें खांड मिलाकर उसके साथ देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

पथ्य—दही भात।

(२१४१) ज्वरपञ्चाननो रसः
(र. का. धे. । ज्वर.)

तैलादिना नागवङ्गौ शोधितौ द्रावितौ समौ ।
तत्रैकभागं सूतेन्द्रं क्षिप्त्वा समवतारयेत् ॥
रसे विषं शुद्धमेतन्मेलयित्वा विमर्दयेत् ।
कज्जलाभं दिनं खल्वे स्थापयेद्दन्तभाजने ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव गुञ्जामात्रो ज्वरापहः ।
अतितापे सन्निपाते विहितोऽयं रसोत्तमः ॥
मुहूर्तद्वितयात्तीव्रं ज्वरं नाशयति स्फुटम् ।
ज्वरपञ्चाननो नाम नवज्वरविनाशनः ॥

तैलादि द्वारा शुद्ध सीसा और वङ्ग समान भाग लेकर गलाकर उसमें १ भाग शुद्ध पारा मिलाइये। तत्पश्चात् उसे अग्निसे नीचे उतारकर उसमें एक एक भाग शुद्ध पारा और एक भाग शुद्ध बछनाग विषका चूर्ण मिलाकर एक दिन खूब घोटिए कि जिससे काजलके समान हो जाय। इसे हाथीदांतके पात्रमें भरकर रख छोड़िये।

इसमेंसे १ रत्ती दवा अद्रखके रसके साथ देनेसे नवीन ज्वर और अत्यन्त तीव्र सन्निपात ज्वर भी ४ घड़ीमें उतर जाता है।

(२१४२) ज्वरभैरवचूर्णम् (भै.र।ज्वर.)

नागरं त्रायमाणा च पिचुमन्दं दुरालभा ।
पथ्या मुस्तं वचा दारु व्याघ्री शृङ्गी शतावरी ॥
पर्पटं पिप्पलीमूलं विशाला पुष्करं शटी ।
मूर्वा कृष्णा हरिद्रे द्वे लोध्रं चन्दनमुत्पलम् ॥
कुटजस्य फलं वल्कं यष्टीमधुकचित्रकम् ।
शोभाञ्जनं बला चातिविषा च कटुरोहिणी ॥
मुसली पद्मकाष्ठं च यवानी शालपर्णिका ।
मरिचं चामृता बिल्वं वालं पङ्कस्य पर्पटीम् ॥
तेजपत्रं त्वचं धात्री पृश्निपर्णी पटोलकम् ।
गन्धकं पारदं लौहमभ्रकञ्च मनःशिला ॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् ।
तदर्द्धं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं भूनिम्बसम्भवम् ॥
मात्रामस्य प्रयुञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
चूर्णं भैरवसंज्ञन्तु ज्वरान्हन्ति न संशयः ॥
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्
द्वन्दजान् सन्निपातोत्थान् मानसानपि नाशयेत्
प्राकृतं वैकृतश्चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ।
अन्तर्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव च ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ।
नानादेशोद्भवश्चैव वारिदोषभवं तथा ॥
विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति ।
अग्निमान्द्यं यकृत्प्लीहापाण्डुरोगमरोचकम् ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिं च रक्तपित्तं त्वगामयम् ।
श्वयथुञ्च शिरःशूलं वातामयरुजापहम् ॥
ज्वरभैरवसंज्ञन्तु भैरवेण कृतं शुभम् ॥

सोंठ, त्रायमाणा, नीमकी छाल, धमासा, हर्र, नागरमोथा, वच, देवदारु, कटेली, काकड़ासिंगी, शतावर, पित्तपापड़ा, पीपलामूल, इन्द्रायन, पोखरमूल, कचूर, मूर्वा, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध्र, चन्दन, नीलोत्पल, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौं, मुलैठी, चीता, सहंजना, खरैटी, अतीस, कुटकी, मूसली, पद्माख, अजवायन, शालपर्णी, कालीमिर्च, गिलोय, बेलकी छाल, सुगन्धबाला, तालावकी पापड़ी (जमी हुई मिट्टी), तेजपात, दारचीनी, आमला, पृष्टपर्णी, पटोलपत्र, गन्धक, शुद्ध पारद, लौहभस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध मनसिल समान भाग और

चिरायता सबसे आधा। प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाइये।

इसे दोष और बलाबलके अनुसार योग्य मात्रामें सेवन करना चाहिए।

यह "ज्वर भैरव" नामक चूर्ण पृथक् पृथक् दोषोंसे उत्पन्न ज्वर, विषम ज्वर, सन्निपात ज्वर, द्वन्दज ज्वर और मानस ज्वर, प्राकृत ज्वर, वैकृत ज्वर, सौम्य ज्वर, तीक्ष्ण ज्वर, अन्तर्गत ज्वर, बहिर्गत ज्वर, निराम ज्वर, एवं अनेक देशोंके पानीसे और विरुद्धौषधके सेवनसे उत्पन्न ज्वरको शीघ्र नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त इसके सेवनसे अग्निमांद्य, यकृत् , तिल्ली, पाण्डु, अरुचि, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, रक्तपित्त, त्वक्रोग, सूजन, शिरशूल और वातव्याधिका भी नाश होता है।

(२१४३) ज्वरभैरवरसः [१]

(र. का. धे. । अधि. १)

पलैकं पारदं शुद्धं गन्धकञ्च पलोन्मितम्।
मर्दितं कज्जलाभासं क्षिपेत्ताम्रस्य सम्पुटे॥
कृत्वा तां पिठरीमध्ये शरावेण पिधापयेत्।
सन्धिलेपं ततःकृत्वा भस्मना परिपूरयेत्॥
मन्दादिवह्निना यामषट्कं तद्विपचेद्भिषक्।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पलार्धं बलिना दृढम्॥
मर्दयित्वा शुक्तिकाया स्वरसेन विभावयेत्।
तक्रेण मर्दयेत्किञ्चित्स्वेदयेत्तच्छनैःशनैः॥
भावयेत्तुलसीनीरैर्दशवारं प्रयत्नतः।
त्रिर्नागवलारसतो भावितः शुद्धिमाप्नुयात्॥
नागवल्लीरसेनैव त्रिगुञ्जासम्मितो ज्वरे।
जन्तोर्जीर्णज्वरे देयः पथ्यं मुद्गौदनं हितम्॥
शूलमन्दानलं गुल्ममतिसारं गुदाङ्कुरान्।
कासं श्वासं जयेच्छीघ्रं तत्तद्रोगानुपानतः॥
ज्वरभैरवनामाऽयं निर्मितो रससागरे॥

१-१ पल शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धकको एकत्र घोटकर कज्जली बनाइये और इस कज्जलीको उसके बराबर ताम्रके सम्पुटमें बन्द करके उस सम्पुटको एक हाण्डीमें रखकर उसको (सम्पुटको) शरावसे ढक दीजिए और सन्धिको चूने और शहदके मिश्रणसे बन्द करके हाण्डीको राखसे भरकर अग्निपर चढ़ा दीजिए और ६ पहर तक क्रमशः मृदु, मध्यम और तीव्राग्नि दीजिए। इसके पश्चात् हांडीके स्वांग शीतल हो जाने पर उसके भीतरसे सम्पुटको निकालकर उसमें आधा पल शुद्ध गन्धक मिलाकर [ताम्र सहित] मर्दन कीजिए और फिर उसे १ दिन चूकेके रसमें घोटकर गोला बना लीजिए और उसे सुखाकर थोड़ी देर तक दोलायन्त्र विधिसे मन्दाग्नि पर छाछमें स्वेदन कीजिए इसके पश्चात् उसे दस भावना तुलसीके रसकी और ३ भावना नागवलाके रसकी देकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली पानके रसके साथ देनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है। इसपर मूङ्गका यूष और भातका पथ्य देना चाहिए।

इसे यथोचित अनुपानके साथ देनेसे शूल, अग्निमांद्य, गुल्म, अतिसार, अर्श, खांसी और श्वास का भी नाश होता है।)

(नोट—तांबेकी जिन कटोरियोंमें कज्जली भरकर सम्पुट बनाना हो वह कज्जलीके बराबर वज़नी होनी चाहियें।

२—जिस हाण्डीमें सम्पुट रक्खा जाय उसके ऊपर ३—४ कपरौटी कर लेनी चाहियें।

३—हाण्डीमेंसे औषध निकालकर देख लेना चाहिये कि तांबेकी कटोरियोंकी भस्म बन गई है या नहीं यदि कमी हो तो दुबारा अग्नि लगानी चाहिए।)

(२१४४) ज्वरभैरवरसः [२]

(र. का. धे. । ज्वर.)

रसगन्धकतालेन्दुमल्लटङ्कणकं विषम् ।
आकल्लकं द्वि द्वि भागं कृष्णधूर्तफलं त्रिधा ॥
जैपालश्च समुद्रश्च जीरकश्च विभावयेत् ॥
तुलस्या गुटिका गुञ्जा रसोऽयं ज्वरभैरवः ॥
तप्तोदकेन सकलाञ्जयेज्जीर्णज्वरान् भृशम् ।
हिङ्गुदीप्यवचाभिस्तु सतक्राभिः सशूलजित् ॥
त्रिकटुत्रिफलाचित्रैर्वातंपित्तं फलत्रिकैः ।
सहदेवीभृङ्गशुण्ठीब्राह्मीनिर्गुण्डिकारसैः ॥
समन्व्यदुग्धैर्जयति सर्वरोगानशेषतः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, कपूर, सोमल (संखिया, सुहागेकी खील, शुद्ध बछनाग और अकरकरेका चूर्ण २—२ भाग, तथा धतूरेके बीज, शुद्ध जमालगोटा, समन्दर फल और जीरेका चूर्ण ३—३ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर तुलसीके रसमें घोटकर १—१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे एक एक गोली गर्म पानीके साथ देनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है। हींग, अजवायन और वचके [१ माशा] चूर्णको तक्रमें मिलाकर उसके साथ खिलानेसे शूल नष्ट होता है। त्रिफला, सोठ, मिर्च, पीपल और चीतेके क्राथके साथ अथवा इनके चूर्णको गर्म पानीमें मिलाकर उसके साथ देनेसे वायु; और त्रिफलेके साथ सेवन करनेसे पित्त नष्ट होता है। एवं सहदेवी, भंगरा, सोंठ, ब्राह्मी और संभालुके रस अथवा क्राथको गायके दूधमें मिलाकर उसके साथ देनेसे अन्य समस्त रोग शान्त होते है।

(२१४५) ज्वरभैरवरसः [३]

(र. का. धे. । अधि. १)

सूतं गन्धमभ्रकं समलवं सूतार्धभागं विषम् ।
तत्त्र्यंशं जयपालमम्लमृदितंतद्गोलकं वेष्टितम्॥
पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिमृदितैर्निष्पिष्य खाते पुटम्
दत्वा कुक्कटसंज्ञकं सहबलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत्॥
भागार्द्धं जयपालवीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतम् ।
गुञ्जानागरसिन्धुचित्रकयुतो सर्वज्वरान्नाशयेत् ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्म १—१ भाग, शुद्ध बछनागका चूर्ण आधा भाग और शुद्ध जमालगोटेका चूर्ण बछनागसे तीन गुना लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर नींबूके रस या काञ्जीमें घोटकर सबका एक गोला बनाइये। इस गोलेको नागरवेलके पानोंमें लपेटकर भूमिमें गढा खोदकर उसमें रखकर कुक्कुट पुटमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् स्वांग शीतल होनेपर निकाल कर पानो सहित पीसकर उसमें आधा आधा भाग शुद्ध जमालगोटे और बछनागका चूर्ण मिलाकर घोटकर सुरक्षित रखिए।

इसमेंसे १-१ रत्ती रस सोंठ, सेंधा और चीतेके चूर्णके साथ मिलाकर खिलानेसे सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

(अनुपान=शीतल जल)

(२१४६) ज्वरभैरवोरसः [४]

(भै. र.; धन्व.; र. रा. सुं. । ज्वर.)

त्रिकटु त्रिफला टङ्कणविषगन्धकपारदम् ।
जैपालश्च सम्मर्द्य द्रोणपुष्पीरसैर्दिनम् ॥
ताम्बूलेन समं ह्यस्य खादेत्गुञ्जामितां वटीम् ।
मुद्गयूषं शिखरिणीं पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥
नवज्वरं त्रिदोषोत्थं जीर्णश्च विषमज्वरम् ।
दिनैकेन निहन्त्याशु रसोऽयं ज्वरभैरवः ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, सुहागा, शुद्ध बछनाग, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा और जमालगोटेका चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर १ दिन गूमाके रसमें घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली पानमें रखकर खानेसे नवीन ज्वर, सन्निपात, विषमज्वर और जीर्णज्वर एकही दिनमें नष्ट हो जाता है। पथ्य—मूंगका यूष और शिखरन।

(२१४७) ज्वरभैरवोरसः [५]

(र. का. धे. । अधि. १)

रसेन्द्रगन्धकव्योषवह्निस्फाटिकटङ्कणम् ।
फलमारुष्करं भृङ्गजयपालं समांशकम् ।
भागद्वयं विषं चात्र दत्त्वा सर्वं विमर्दयेत् ।
भावयेन्मार्कवरसैः सप्तधा रवितापतः ॥
शर्करार्द्रकनीराभ्यां दद्याद् गुञ्जाद्वयं भिषक् ।
श्वासं नवज्वरं जीर्णं विषमं कफपित्तजम् ॥
वह्निमान्द्यं तथा शूलं जयेद्रोगानुपानतः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), चीता, फिटकी, सुहागेकी खील, मिलावा, भंगरा और जमालगोटा समान भाग तथा बछनाग २ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर भांगरेके रसमें भिगोकर धूपमें रख दीजिए। रस दवासे एक अंगुल ऊपर रहना चाहिए। जब सब रस सूख जाय तो इतनाही और डाल दीजिए और इसी प्रकार सात बार रस डालकर सुखाइये।

इसमेंसे २ रत्ती रस अद्रकके रसमें खांड मिलाकर उसके साथ देनेसे श्वास, नवीन ज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर और कफपित्तज ज्वर, अग्निमांद्य और शूल नष्ट होता है।

(२१४८) ज्वरमातङ्गकेसरीरसः

(भै. र.; र. रा. सुं. । ज्वर.)

पारदं गन्धकश्चैव हरितालं समाक्षिकम् ।
कटुत्रयं तथा पथ्या क्षारौ द्वौ सैन्धवं तथा॥
निम्बस्य विषमुष्टेश्च बीजं चित्रकमेव च ।
एषां माषमितं भागं ग्राह्यं प्रति सुसंस्कृतम् ।
द्विमाषं कानकफलं विषश्चापि द्विमाषिकम् ।
निर्गुण्डीस्वरसेनैव शोषयेत्तत् प्रयत्नतः ॥
सार्द्धरक्तिप्रमाणेन वटी कार्या सुशोभना ।
सर्वज्वरहरी चैषा भेदिनी दोषनाशिनी ॥
आमाजीर्णप्रशमनी कामलापाण्डुरोगहा ।
वह्निदीप्तिकरी चैषा जठरामयनाशिनी ॥

उष्णोदकानुपानेन दातव्या हितकारिणी ।
भाषितो लोकनाथेन ज्वरमातङ्गकेसरी ॥

पारा, गन्धक, हरताल, सोनामक्खी भस्म, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, यवक्षार, सज्जीक्षार (सोडा), सेंधानमक, नीमके बीज, कुचला और चीतेका चूर्ण १–१ माषा तथा शुद्ध बछनाग और धतूरेके बीज २–२ माषे लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोका कपड़छन चूर्ण मिलाकर संभालूके रसमें अच्छी तरह घोटकर १॥–१॥ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए ।

इन्हें उष्ण जलके साथ देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर, आमाजीर्ण, पाण्डु, कामला और उदरविकार दूर होते तथा अग्नि दीप्त होती है। ये गोलियां भेदिनी और दोष नाशिनी है ।

(२१४९) ज्वरमुरारिरसः [१]

(र. रा. सुं.। ज्वर.; वृ. यो. त । त. ५९)

रसबलिफणिलोहव्योमताम्राणितुल्या-
न्यथ रसदलभागो नागरं तत्प्रमृष्टम् ।
भवति ज्वरमुरारिश्चास्य गुञ्जार्द्रवारिः
क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम् ॥

पारा, गन्धक, सीसाभस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म १–१ भाग तथा सोठका चूर्ण ६ भाग लेकर, प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर अदरकके रसमें घोटकर १–१ रत्तीकी गोलियां बनाइये ।

इनमेंसे १ गोली अदरकके रसके साथ देनेसे प्रबल आमज्वर एक ही दिनमें नष्ट हो जाता है ।

(२१५०) ज्वरमुरारिरसः [२]

(भै. र.; र. रा. सुं. । ज्वर.)

शुद्धसूतं शुद्धगन्धं विषञ्च दरदं पृथक् ।
कर्षप्रमाणं कर्षार्द्धं लवङ्गं मरिचं पलम् ॥
शुद्धकनकबीजं च पलद्वयमितं तथा ।
त्रिवृता कर्षमेकञ्च भावयेद्दन्तिकाद्रवैः ॥
सप्तधा ततः कार्या गुटी गुञ्जमिता शुभा ।
ज्वरमुरारिनामायं रसो ज्वरकुलान्तकः ॥
अत्यन्ताजीर्णपूर्णे च ज्वरे विष्टम्भसंयुते ।
सर्वाङ्गग्रहणे गुल्मे चामवातेऽम्लपित्तके ॥
कासे श्वासे यक्ष्मरोगेऽप्युदरे सर्वसम्भवे ।
गृध्रस्यां सन्धिमज्जस्थे वाते शोथे च दुस्तरे ॥
यकृति प्लीहरोगे च वातरोगे चिरोत्थिते ।
अष्टादशकुष्ठरोगे सिद्धो गहननिर्मितः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बछनाग और शुद्ध हिंगुल (सिंगरफ) १–१ कर्ष (१। तोला), लौङ्ग आधा कर्ष, काली मिर्च १ पल (५ तोले), धतूरेके शुद्ध बीज २ पल, और निसोत १ कर्ष लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका कपड़छन महीन चूर्ण मिलाकर दन्तीमूलके क्वाथकी सात भावना देकर १–१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए ।

इन्हें यथोचित अनुपानके साथ देनेसे अत्यन्त विष्टम्भ और अजीर्ण युक्त ज्वर, समस्त शरीरका जकड जाना, गुल्म, आमवात, अम्लपित्त, खांसी, श्वास, क्षय, सर्वदोषज उदररोग, गृध्रसी, सन्धि

और मज्जागत वायु, भयङ्कर शोथ, यकृत, प्लीहा (तिल्ली), पुरानी वातव्याधि और अठारह प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते है।

(२१५१) ज्वरराजरसः

(र. मं.। रस.; र. का. धे.। अ. १)

भागैको रसराजस्य भागः स्याद्धेममाक्षिकात्।
भागद्वयं शिलायाश्च गन्धकस्य त्रयोमताः॥
तालस्याष्टादशभागाः शुल्वस्य भागपञ्चकम्।
भल्लातकास्त्रयो भागा सर्वमेकत्र चूर्णयेत्॥
वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृन्मयभाजने।
विधाय सुदृढं मुद्रां पचेद्यामचतुष्टयम्॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मर्दयेत्सुदृढं पुनः।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पर्णखण्डेन दापयेत्॥
ज्वरराजप्रसिद्धोऽयमष्टज्वरविनाशकः।
प्रातःकाले प्रयोक्तव्य पथ्यं तक्रोदनं हितम्॥
तुत्थभागेन संयुक्तश्चातुर्थिकनिवारणः॥

शुद्ध पारद १ भाग, सोना मक्खी भस्म १ भाग, मनसिल २ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, हरताल १८ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग और शुद्ध भिलावे ३ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर भिलावोंके साथ खूब कूटकर थोहरके दूधमें भिगो दीजिए और उसे ३-४ कपरमिट्टी की हुई एक हांडीमें भरकर उसके मुखको अच्छी तरह बन्द करके सन्धिपर चूना और गुड मिलाकर लगा दीजिए और सुखाकर चार पहरकी अग्नि दीजिए। हाण्डीके स्वांग शीतल होनेपर औषध को निकालकर पीसकर सुरक्षित रखिए।

इसमेंसे चार रत्ती औषध प्रातःकाल पानमें रखकर खिलानेसे ८ प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

इसपर तक्रभात पथ्य देना चाहिए।

यदि इसमें १ भाग तुत्थ मिला दिया जाय तो इसका नाम "चातुर्थिकनिवारण" हो जाता है।

(२१५२) ज्वरशतघ्नी (रसायनसार। चि.)

चन्द्रोदयो यो विषसंज्ञया वा
सिन्दूरनामा दशगन्धजारी।
मल्लाभिधो वा ज्वरि दत्तमात्रः
शतघ्निकाकर्मकरोति मङ्क्षु॥
विसूचिकाद्याश्चापरेऽपि रोगाः
पलायमाना शतशोऽनुभूताः।
इयं शतघ्नी यदि कुण्ठिता स्यात्
नितान्तमन्तं कुरुते कृतान्तः॥
निराचरीकर्ति समस्तरोगान्
योगानुसारेण शतघ्निकेयम्।
सञ्चर्स्करीति प्रबला बलानां
बालाबलानामपि कायमेषा॥

ज्वरके लिए तोप

अर्थ—षड्गुण गन्धक जारित "विष चन्द्रोदय" अथवा दशगुण गन्धक जारित सुवर्णसिन्दूरका बनाया हुवा "विष स्वर्ण सिन्दूर" अथवा "दशगुण गन्धक जारित मल्ल सिन्दूर" इन चारोंमेंसे कोईसा क्यो न हो सबका नाम "ज्वर शतघ्नी" तोप है; अर्थात् ज्वरके उड़ानेके लिए ये चारों प्रयोग तोपके समान है। इनकी खुराक एक रत्तीसे दो रत्ती तक तरुण पुरुषके लिये है। सन्निपात

आदि तत्काल मारक-व्याधियोंमें इनका प्रत्यक्ष फल देखा गया है। हैज़ा, अतिसार, आदि व्याधियां तो एक दो ही खुराकमें जाने कहां चली जाती है। यदि इस तोपके छोड़ने पर भी रोगीके प्राण न बचे तो उस रोगीकी मृत्यु अन्य योगसे टल भी नहीं सकती। कास, श्वास, साधारण ज्वर आदि रोगोमें भी अपने अनुपानके साथ पाव रत्ती देनेसे तत्काल काम करती है। और जो अत्यन्त दुर्बल बाल वृद्ध अबला आदि जन इनमेंसे किसी एकको एक एक चावल प्रतिदिन सेवन किया करें तो उनके शरीरको भी दिनोदिन संस्कारयुक्त (नया) कर देती है। वैद्य लोगोंको यह फिक्र नहीं करना चाहिए; कि यह शतघ्नी कैसे बनेगी? यद्यपि चन्द्रोदय बनानेमें तो अवश्य भारी परिश्रम है क्योंकि बुभुक्षित पारदमें बहुत दिन लग जाते है तथापि दशगुण गन्धकजारितसिन्दूर रसकी तो बातही क्या है? शतगुणगन्धकजारित सिन्दूर रस भी परिश्रमसे साध्य हो सकता है इस बातको गन्धकजारणप्रकरणमें लिख चुका हूं।

(रसायनसारसे उद्धृत)

(२१५३) ज्वरशूलहरो रसः

(र. रा. सुं.; भै. र। रसें. चि.। अ. ९)

रसगन्धकयो कृत्वा कज्जलीं भाण्डमध्यगाम्।
तत्राधोवदनां ताम्रपात्रीं सन्रुध्य शोषयेत्॥
पदाङ्गुष्ठप्रमाणेन चुल्यां ज्वालेन तां देहत्।
यामद्वयं ततस्तस्य रसपात्रं समाहरेत्॥
चूर्णयेद्रक्तियुगलं तृतयं वा विचक्षणः।
ताम्बूलीदलयोगेन दद्यात्सर्वज्वरेष्वशुम्॥
जीरसैन्धवसंलिप्तवक्त्राय ज्वरिणे हितम्।
स्वेदोद्गमो भवत्येव देवि सर्वेषु पाप्मसु॥
चातुर्थिकादीन् विषमान्नवमागामिनं ज्वरम्।
साधारणं सन्निपातं जयत्येव न संशयः॥

समान भाग पारे और गन्धककी कज्जली करके उसे तीन चार कपरौटी की हुई हांड़ीमें रखकर उसके ऊपर उतनेही वज़नकी शुद्ध तांवे की कटोरी ढक दीजिए और जोड़को गुड़ चूनेसे अच्छी तरह बन्द करके सुखाकर हाण्डीको चूल्हे पर चढ़ा दीजिए। और उसके नीचे २ पहर तक पैरके अंगूठेके बराबर मोटी लकड़ी जलाइये। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल हो जाने पर उसमेंसे कटोरी सहित समस्त औषधको निकालकर पीस लीजिए।

ज़ीरे और सेधानमकके चूर्ण को पानीमें पीसकर रोगीके मुंहके भीतर लेप करके इस रसमेंसे २–३ रत्ती पानमें रखकर देनेसे तुरन्त पसीना आता है और चातुर्थिकादि विषम ज्वर रुक जाते है तथा सन्निपात नष्ट होता है।

(२१५४) ज्वरसिंहरसः

(र. रा. सुं; वै. क. द्रु.। ज्व.)

पारदं गन्धकं तालं भल्लातकमथैव च।
वज्रीक्षीरसमायुक्तमेकत्र च विमर्दयेत्॥
मृत्तिकाभाजने स्थाप्यं मुद्रितव्यं विचक्षणैः।
अग्निं प्रज्वालयेत्तत्र प्रहरद्वयसंख्यया॥
शीतलं खल्वयेत्तत्र भावना च प्रदीयते।
भृङ्गराजरसैरत्र[1] गण्डदूर्वाभवै रसैः॥

१ भृङ्गराजरसैरण्डेति पाठान्तरम्।

चित्रकस्य रसेनापि भावना दीयते पुनः।
पश्चात्तं चूर्णयेत् यत्नात्कूपिकायां च धारयेत् ॥
ज्वरमुत्पद्यते यस्य चतुर्थे चापरे पुनः।
माषैकश्च रसो देयं तत्क्षणान्नाशयेज्ज्वरम् ॥
ज्वरे शान्ते परं पथ्यं देयं मुद्गौदनं पयः ॥

पारा, गन्धक, भिलावा और हरताल समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य दोनों ओषधियां मिलाकर थोहरके दूधमें अच्छी तरह घोटिए और फिर उसका गोला बनाकर उसे मिट्टीके पात्रमें रखकर उसके मुंहको शरावसे बन्द करके ऊपर ३-४ कपरमिट्टी कर दीजिए। जब यह सम्पुट सूख जाय तो उसे चूल्हे पर रखकर नीचे २ पहर तक अग्नि जलाइये। जब सम्पुट स्वांग शीतल हो जाय तो उसमेंसे औषध निकाल कर उसे भंगरा और बडी दूबके रस तथा चीतेके क्वाथकी भावना देकर सुखाकर शीशीमें भरकर रखिए।

चातुर्थिक या अन्य किसी ज्वरमें भी इसमेंसे १ माशा औषध देनेसे ज्वर तुरन्त उतर जाता है।

ज्वर उतर जानेके बाद मूंगका यूष और भातका पथ्य देना चाहिए।

(नोट—मात्रा अधिक लिखी है, विचार-पूर्वक देना चाहिए।)

(२१५५) ज्वरहरो रसः (र.का.धे.। अ.१)

रसं गन्धं विषं ताम्रं नैपालं गुग्गुलं तथा।
गुटी रक्तिमिता क्षौद्रयुक्ता सर्वज्वरापहा ॥

पारा, गन्धक, बछनाग, नैपाली ताम्रकी भस्म और गूगल समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधे मिलाकर शहदके साथ घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते है।

(२१५६) ज्वरहारी रसः (र.का.धे.।ज्वर.)

एकवर्णवृषोन्मूत्रघटे तुत्थालकं पलम्।
क्वथनाच्छुष्कं तच्चूर्णं ज्वरहारी रसो भवेत् ॥
नवज्वरे तथा जीर्णे गुञ्जामानेन दीयते।
उक्तानुपानसंयुक्तः सर्वज्वरहरः परः ॥६०७॥

इकरंगके बैलके १६ सेर मूत्रमें ५-५ तोले तूतिया और हरतालको इतना पकाइये कि समस्त मूत्र शुष्क हो जाय, तब उस औषधको पीसकर रख लीजिए, बस "ज्वरहारी" रस तैयार है।

इसे १ रत्तीकी मात्रानुसार मिश्रीके साथ मिलाकर देनेसे नवीन ज्वर तथा जीर्ण ज्वर आदि सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(२१५७) ज्वराङ्कुशोरसः [१]

(शा. सं.। ख. २ अ. १२, बृ. नि. र.; र. च.; र. का. धे.। ज्व.; र. प्र. सु.। अ. ८)

खण्डितं मृगशृङ्गं च ज्वालामुखिरसैःसमम्।
रुध्वा भाण्डे पचेच्चुल्यां यामयुग्मं ततो नयेत् ॥
अष्टांशं त्रिकटुं दद्यान्निष्कमात्रं च भक्षयेत्।
नागवल्या रसैःसार्धं वातपित्तज्वरापहम् ॥
अयं ज्वराङ्कुशो नाम रसः सर्वज्वरापहः ॥

मृगशृङ्गके छोटे छोटे टुकडोंको एक हाण्डीमें भरकर उसमें ज्वालामुखीका रस इतना भर दीजिए कि जिससे वह सींगके टुकडोसे १ अंगुल ऊपर

१-कहीं कहीं इसका नाम 'ज्वालामुखी रस' भी लिखा है।

रहे । अब इस हण्डीके मुखपर कपरमिट्टी करके सुखाकर चूल्हे पर चढा दीजिए और दो पहर तक अग्नि जलाकर स्वांग शीतल होनेपर हाण्डीके भीतरसे औपधको निकालकर पीसकर उसमें उसका आठवां भाग त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर घोट-कर सुरक्षित रखिए।

इसमेंसे नित्य प्रति ४ माशे रस नागरबेलके पानके रसमें मिलाकर चाटनेसे वातपित्तज तथा अन्य समस्त ज्वर नष्ट होते है।

(व्यवहारिक मात्रा आधेसे १ माशा तक)

(२१५८) ज्वराङ्कुशरसः [२]

(रसायनसार. । चि.)

शुद्धे शिलाले रसगन्धकौ च
मन्दारदुग्धेन करोतु पिष्टिम् ।
तुत्थोत्थताम्रस्य दलानि मध्ये
निधाय तत्र प्रविधाय गोलम् ॥
धत्तूरपत्रैरपिधाय सम्यक्
पुटेत्पुटे कुक्कुटनामधेये ।
शीते स्वतो जात गुणप्रकर्षो
ज्वराङ्कुशोऽयं सितया प्रदेयः ॥
शीते ज्वरे मङ्क्षु बहूपकारी
दुग्धौदनं पथ्यमुषन्ति वैद्याः ॥

अर्थ—शुद्ध मनसिल, और शुद्ध हरताल, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक इन चारोकी कज्जली करके मन्दारके (आकके) दूधमें घोटकर पिट्टी करले फिर तूतियासे निकाले हुवे शुद्ध ताम्बेके पत्रोको पिट्ठीके बीचमें रखकर गोला बनाले। उस गोलेके ऊपर धतूरेके पत्ते लपेटकर सात कपड़-मिट्टी करके कुक्कुट पुटमें हांडीके सम्पुटमें रखकर फूंकदे। जब स्वाङ्ग शीतल हो जाय तब यह ज्वरांकुश तैयार होता है। इसको मिश्रीकी चाशनी के साथ देनेसे शीत ज्वर शीघ्र शान्त होता है। इसके ऊपर दूध भातका पथ्य है। इसमें जितने ताम्बेके पत्र लिए जाय उनसे दूने मनसिल आदि चारो पदार्थ लें, अर्थात् शुद्ध किए हुए ताम्बेके पत्र यदि आध पाव (१० तोले) हों तो मनसिल आदि चारों वस्तुएं १—छटांक (५ तोले) रहे। यदि रस बनने पर ताम्रपत्र कुछ कच्चे निकलें तो फिर उनको मंदारके दूधमे घुटी हुई पिट्ठीके अन्दर रखकर पूर्ववत् फूंक दो फिर सब रसको कूट कपड़छन कर रख छोड़ो।

(रसायनसारसे उद्धृत)

(२१५९) ज्वराङ्कुशरसः[३] (र.का.धे.।ज्व.)

शिखितुत्थं सोममलं हरांशं मर्दयेत् त्र्यहम् ।
कृष्णधत्तूरतोयेन मर्दनाच्च ज्वराङ्कुशः ॥
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु ज्वरांश्च विषमान् हठात्

तुत्थ, सोमल और पारा समान भाग लेकर कज्जली करके उसे ३ दिन तक काले धतूरेके रसमें घोट लीजिए।

इसमेंसे १-१ रत्ती औषध उचित अनुपानके साथ देनेसे समस्त विषमज्वर नष्ट होते हैं।

(मात्रा बहुत अधिक लिखी है। यह विषैली औषध है अत एव इसका प्रयोग अनुभवहीन वैद्योको न करना चाहिए।)

(२१६०) ज्वराङ्कुशरसः [४]

(भा. प्र. म. ख । ज्व.; वृ. यो. त.। त. ५९)

दारुमूषां शिखिग्रीवां रसकञ्च पृथक् पृथक् ।
टङ्कत्रयानुमानेन गृहीत्वा कनकद्रवैः ॥

मर्दयेत्त्रिदिनं कार्या वटी चणकमात्रया।
मरिचैरेकविंशत्या सप्तभिस्तुलसीदलैः ॥
खादेद्वटीद्वयं पथ्यं दुग्धभक्तं सशर्करम्।
तरुणं विषमं जीर्णं हन्यात्सर्वं ज्वरं ध्रुवम् ॥

दारचिकना, तुत्थ और खपरिया ३-३ टङ्क लेकर ३ दिन तक धतूरेके रसमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

२१ काली मिर्च और सात तुलसीपत्र एकत्र पीसकर उसके साथ २ गोली खानेसे तरुण ज्वर, विषमज्वर और जीर्णज्वर अवश्य नष्ट होता है। पथ्यमें दूध भात और खांड देनी चाहिए।

(नोट-यह प्रयोग केवल अनुभवी वैद्यको ही करना चाहिए और मात्रा विचारपूर्वक निश्चित करनी चाहिए।)

(२१६१) ज्वराङ्कुशरसः [५] (र.का.धे.।ज्व.)

रसार्धस्त्रयस्तालाद्भल्लातात्द्वादशांशकाः।
स्नुकक्षीरसप्तपुटितास्त्रिगुञ्जो ज्वरजिद्रसः ॥

रस सिन्दूर आधा भाग, हरताल ३ भाग और शुद्ध भिलावे १२ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके थोहरके दूधकी सात भावनाएं दीजिए।

इसमेंसे ३ रत्ती औषध उचित अनुपानके साथ देनेसे ज्वर नष्ट होता है।

(२१६२) ज्वराङ्कुशरसः [६]

(र. चं.। ज्व.; र. प्र. सु.। अ. ८)

एक एव कथितस्तु सोमलः
स्वेदितोऽपि सह चूर्णजलेन।
यामपूर्वमपि रक्तिकामितो
भक्षितः सकलशीतजूर्तिहृत् ॥

सोमलको चूनेके पानीमें (७ दिन तक) स्वेदित करके पीसकर रख लीजिए।

इसमेंसे १ रत्ती औषध शीतज्वर आनेसे १ पहर पहिले देनेसे शीतज्वर रुक जाता है।

(नोट-इसे अनुभवी चिकित्सकके अतिरिक्त अन्य किसीको प्रयुक्त न करना चाहिए और मात्रा समयानुकूल १ चावल या न्यून देनी चाहिए। सोमल १ रत्ती मात्रानुसार कदापि न देना चाहिए।)

(२१६३) ज्वराङ्कुशरसः [७]

(र. सा. सं.। ज्वर.)

ताम्रतो द्विगुणं तालं मर्दयेत्सुपवीद्रवैः।
प्रपुटेद्भूधरे शीते वज्रीक्षीरैर्विमर्दयेत् ॥
प्रपुटेद्भूधरे पश्चात्पञ्चगुञ्जामितं शुभम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव सर्वज्वरनिकृन्तनः ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्चातुराहिकम्।
विषमञ्चापि शीताढ्यं ज्वरं हन्ति ज्वरांकुशः॥

ताम्र भस्म १ भाग और हरताल भस्म २ भाग लेकर दोनोंको करेलेके रसमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखाकर भूधर यन्त्रमें पकाइये। तत्पश्चात् थोहरके दूधमें घोटकर फिर भूधर पुटकी आंच दें। जब स्वांग शीतल हो जाय तो निकालकर पीस लीजिए।

इसमेंसे ५ रत्ती दवा अदरकके रसके साथ देनेसे एकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक और चातुर्थिकादि सर्दी लगकर आनेवाले समस्त विषमज्वर नष्ट होते हैं।

(२१६४) ज्वराङ्कुशरसः [८] (भै.र.।ज्व.)

शुद्धसूतं तथा गन्धं बीजं कनकसम्भवम् ।
महौषधं टङ्कनञ्च हरितालं तथा विषम् ॥
भृङ्गराजाम्भसा सर्वं मर्दयित्वा वटीं चरेत् ।
गुञ्जाप्रमाणां खादेत्तां यथादोषानुपानतः ॥
एष ज्वरांकुशो नाम्ना विषमज्वरनाशनः ।
ज्वरातिसारं मन्दाग्निं नाशयेच्चाविकल्पतः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, धतूरेके बीज, सोंठ, सुहागेकी खील, हरताल और शुद्ध बछनाग समान भाग लेकर भंगरेके रसमें घोटकर १–१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए ।

इनमेंसे १–१ गोली यथोचित अनुपानके साथ देनेसे विषमज्वर, ज्वरातिसार और अग्निमांद्य अवश्य नष्ट होता है ।

(२१६५) ज्वराङ्कुशरसः [९]

(र. चं.; र. सा. सं.; र. रा. सुं. । ज्वर.)

रसस्य द्विगुणं गन्धं गन्धतुल्यं च टङ्कणम् ।
रसतुल्यं विषं योज्यम् मरीचं पञ्चधा विषात् ॥
कट्फलं दन्तिबीजञ्च प्रत्येकं मरिचोन्मितम् ।
ज्वराङ्कुशरसो नाम मर्दयेद्यामसात्रकम् ॥
माषैकेन निहन्त्याशु ज्वरं जीर्णं त्रिदोषजम् ॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागा २ भाग, शुद्ध बछनाग १ भाग तथा काली मिर्च, कायफल और शुद्ध जमालगोटा ५–५ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर १ पहर तक घोटिए ।

इसे १ मापेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे त्रिदोषज जीर्णज्वर अवश्य नष्ट होता है ।

(अनुपान—अदरकका रस ।)

(२१६६) ज्वराङ्कुशारसः (अल्प) [१०]

(भै.र., बृ.नि.र.; र.रा.सुं.।ज्वर.; आयु.वि.।अ.४)

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूर्त्तबीजं त्रिभिः समम् ।
चतुर्णां द्विगुणं व्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् ।
ज्वराङ्कुशो रसो नाम्ना ज्वरान्सर्वान्प्रणाशयेत् ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध बछनाग और शुद्ध गन्धक १–१ भाग, धतूरेके बीज ३ भाग, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) १२ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बना लीजिए, फिर अन्य ओषधियोका महीन चूर्ण मिलाकर खरल करके रखिए ।

इसमेंसे २ रत्ती चूर्ण जम्बीरी नींबूकी मज्जा अथवा अद्रकके रसके साथ सेवन करनेसे समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते है ।

(२१६७) ज्वराङ्कुशो रसः [११]

(र. प्र. सु. । अ. ८)

सूतगन्धविषकारवीकणा
दन्ती बीजमिति वर्धितैः क्रमात् ।
मर्दितैश्च दशनिम्बुकद्रवै
रक्तिकार्धतुलिता वटी कृता ॥
भक्षिता ज्वरगणान्निहन्ति वै
सद्य एव विनिहन्ति सूचिकाम् ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, बछनाग ३ तोले, काली जीरी ४ तोले, पीपल ५ तोले और जमालगोटा ६ तोले लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर दश कागज़ी नींबूके रसमें घोटकर आधी आधी रत्तीकी गोलियां बना लीजिए ।

इनके सेवनसे सर्व प्रकारके ज्वर और विसूचिका अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

(२१६८) ज्वराङ्कुशो रसः [१२]

(वै. क. द्रु. । ज्वर.)

मरिचं टङ्कणं शङ्खचूर्णं पारदगन्धकम्।
शोधितं ब्रह्मपुत्रश्च भागमेकं विनिक्षिपेत् ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं नागवल्लीदले सह।
ज्वराङ्कुशो रसो ह्येष ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥

काली मिर्च, सुहागा, शङ्खभस्म, पारा, गन्धक और शुद्ध किया हुवा ब्रह्मपुत्र विष। प्रत्येक पदार्थ समान भाग।

प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए। तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल करके रखिए।

इसमेंसे १ रत्ती रस पानमें रखकर खिलानेसे आठ प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(२१६९) ज्वरान्तकोरसः(भै.र.,धन्व।ज्वर.)

भास्करो गन्धकःसर्वो देवी विहङ्गं तीक्ष्णकम्।
शोणितं गगनश्चैव पुष्पकश्च महेश्वरम् ॥
भूनिम्बादिगणैर्भाव्यं मधुना गुटिका दृढा।
चातुर्थिकं तृतीयश्च ज्वरं सन्ततकन्तथा ॥
आमज्वरं भूतकृतं सर्वज्वरमपोहति ॥

(अत्र सर्वो रसः, देवी सौराष्ट्रमृत्तिका, विहङ्गं स्वर्णमाक्षिकं, पुष्पकं कासीसं, महेश्वरं कनकबीजं अन्यत् सुगमम्। ताम्रादीनां समभागचूर्णं भूनिम्बादिक्काथेन भावयेत्। भूनिम्बाद्यष्टादशद्रव्याणि सर्वद्रव्यतुल्यानि अष्टावशिष्टं क्वाथं कृत्वा दिन त्रयं विभाव्य विशोष्य मधुना विमर्दानुरूपं लिहेत्।)

ताम्र भस्म, गन्धक, पारा, सौराष्ट्री, सोनामक्खी भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, शिंगरफ, अभ्रक भस्म, कसीस और धतूरेके बीज समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य ओषधियोका अत्यन्त महीन चूर्ण मिलाकर भूनिम्बादि गणके[1] क्वाथमें ३ दिन तक घोटकर (१-१ रत्तीकी) गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातः सायं १-१ गोली शहदके साथ खिलानेसे चातुर्थिक (चौथिया), तृतीयक (तिजारी) और सन्तत ज्वर तथा आमज्वर और भूतज्वरादि समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(२१७०) ज्वरारिरसः [१]

(शा. सं. । खं. २, अ. १२)

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धके।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्या रसैर्दिनम् ॥
मर्दयेल्लेपयेत्तेन ताम्रपात्रोदरं भिषक्।
अङ्गुल्यर्धप्रमाणेन ततो रुद्ध्वा च तन्मुखम् ॥
पचेत्तं वालुकायन्त्रे क्षिप्त्वा धान्यानि तन्मुखे।
यदा स्फुटति धान्यानि तदा सिद्धं विनिर्दिशेत् ॥
ततो नयेत् स्वाङ्गशीतं ताम्रपात्रोदराद् भिषक्।
रसं ज्वरारि नामानं विचूर्ण्य मरिचैःसमम् ॥
माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम्।
त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकाद्वित्रिचतुर्थकम् ॥

१-भूनिम्बादि गण-चिरायता, देवदारु, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया, गजपीपल और दशमूल। यह सब चीजें समान भाग मिलाकर ताम्रादि समस्त औषधोंके बराबर लें और आठ गुने पानीमें पकाकर आठवां भाग शेष रहने पर छान लें।

शुद्ध पारा, शुद्ध खपरिया, शुद्ध हरताल, शुद्ध तुत्थ, सुहागेकी खील और शुद्ध आमलासार गन्धक समान भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर कज्जली बना लीजिए और फिर उसे १ दिन करेलेके रसमें घोटकर पिठ्ठी (लुगदी) बना लीजिए; और तांबेके पात्रमें इसका आधा अंगुल मोटा लेप करके उसके मुखपर शराव ढककर सन्धिको अच्छी तरह बन्द कर दीजिए और फिर इसे बालुका-यन्त्रमें पकाइये ।

जब बालुकायन्त्रके रेत पर धान इत्यादि डालनेसे उसकी खील हो जाय तो अग्नि लगानी वन्द कर दीजिए और यन्त्रके स्वांगशीतल होने पर ताम्रपात्रमेंसे रसको निकाल कर पीसकर रख लीजिए ।

इसमेंसे १ रत्ती रस १ माशा मरिचके चूर्णके साथ पानमें रखकर खिलानेसे ३ दिनमें तीव्र विषमज्वर, चातुर्थिक, तृतीयक, द्व्याहिक और दैनिक ज्वर नष्ट हो जाते है ।

(२१७१) ज्वरारिरसः [२]

(धन्वं., भै. र.; र. र. । ज्व.)

दरदबलिरसानां शुल्वनागाभ्रकाणाम् ;
सुभगविडशिलानां सर्वमेकत्र योज्यम् ।
विपिननृपदलोत्थैः भावयेत्शोषयेत्तम् ;
दिवसदशसमाप्तौ वर्त्तिका कारणीया ॥
एकैकां भक्षयेदस्य आर्द्रकस्य रसैर्युताम् ;
दत्तमात्रो ज्वरं हन्ति ज्वरारिः स निगद्यते ।
सर्वशूलविनाशी च कफपित्तविनाशनः ॥

१ शुद्धनागाभ्रकाणामिति पाठान्तरम् ।

(सर्वं आरग्वधपत्ररसेन दशदिनं भावयित्वा गुञ्जाप्रमाणमार्द्रकरसेन देयम् ।)

शुद्ध शिंगरफ, गन्धक, पारा, ताम्रभस्म, सीसा भस्म, अभ्रक भस्म, सुहागेकी खील, विड-नमक और शुद्ध मनसिल समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका महीन चूर्ण मिलाकर दस दिन तक अमलतासके पत्तोंके रसमें घोटकर १–१ रत्तीकी गोलियां बनाकर सुखाकर रखिए ।

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातः सायं १–१ गोली अद्रकके रसके साथ देनेसे ज्वर तुरन्त नष्ट हो जाता है । इसके अतिरिक्त यह "ज्वरारि रस" सर्व प्रकारके शूल और कफ तथा पित्तको भी शान्त करता है ।

(२१७२) ज्वरारिरसः [३]

(र. चं.; र. रा. सुं. । ज्व.)

रसगन्धककासीसत्र्यूषणातिविषाऽभयाः ।
चम्पकत्वक् च सर्वाणि यवतिक्तारसैर्दिनम् ॥
मर्दयित्वा वटी कार्या रक्तिकाद्वयसम्मिता ।
आर्द्रकस्वरसेनाऽथ दापयेज्ज्वरशान्तये ॥
रसैर्वा बहुमञ्जर्याः केवलेन जलेन वा ।
नवज्वरं महाघोरं वातपित्तकफोद्भवम् ॥
सोपद्रवं त्रिदोषाख्यं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ।
ज्वरारिरसनामाऽसौ नाशयेन्नात्र संशयः ॥

पारा, गन्धक, कसीस, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), अतीस, हर्र और चम्पककी छाल समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोका चूर्ण मिला-

कर एक दिन शंखिनीके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली अदरकके रस, तुलसी-पत्रके रस अथवा पानीके साथ देनेसे घोर नवीन ज्वर, वातज पित्तज और कफज ज्वर, उपद्रव सहित सन्निपात, जीर्णज्वर तथा विषमज्वरका नाश होता है।

(२१७३) ज्वरारिरसः[४](रसायनसार।चि.)

खट्वाङ्गयन्त्रेण समुद्धृते द्वे
मल्लस्फटीतुल्यतया गृहीते।
कृष्णोपणे तद्द्विगुणे स्फटीं तां
कन्याद्रवैः श्लक्ष्णतरं विमर्द्य॥
वटीर्विधायाथ ददीत मुद्गमानां
द्विसन्ध्यं ज्वरिताय चैकाम्।
जलानुपानेन रसो ज्वरारि-
र्निरस्य रोगं सुखितं करोति॥

अर्थ—आध पाव संखिया विष, आध पाव गुलाबी फटकरी, दोनोंको खरलमें घोटकर डमरू यन्त्रमें रखकर चार पहरकी अग्नि दे यन्त्रके स्वाङ्ग शीतल होनेपर ऊपरकी हांडीमें लगे हुए संख्याके फूलको तो जुदा निकाल ले और नीचेकी हांडीके तलमें जमी हुई फटकिरीकी खील और उससे दो दो गुनी छोटी पीपल और काली मिरचको कूट कपड़छन करके तीनों चीजोको घृतकुमारीके रसमें खूब घोटकर मूँगके समान गोली बनाकर सुखाले। ज्वर वाले रोगीको १-१ गोली प्रातःकाल तथा सायंकाल पानीसे साबुत निगलवा दें। यह ज्वरारि रस दो तीन दिनमें ज्वरको निकालकर सुखी कर देता है। इस योगमें जो संखिया डाला जाता है उसको नींबूके रसमें या घृतकुमारीके रसमें घोटकर शुद्ध करले बाद फिटकिरीमें मिलावे और ऊपरकी हांडीमें लगे हुए संख्याके फूलको १ शीशीमें रख छोड़े, और उसकी भी समभाग तम्बाकू तथा कालीमिर्च मिलाकर ज्वरवटी बनाले।

(मूल ग्रन्थसे)

(२१७४) ज्वरारिरसः [५] (र.प्र.सु.। अ.८)

सूतं गन्धं हिङ्गुलं दन्तिबीजं
भागैर्वृद्धं कारयेच्च क्रमेण।
चूर्णं कृत्वा मर्दितं दन्तितोये
गुञ्जामात्रं भक्षितं जूर्तिहारि॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) ३ भाग और शुद्ध जमालगोटा ४ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य दोनो ओषधियां मिलाकर दन्तीमूलके रसमें घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे ज्वर नष्ट होता है।

(अनुपान—शीतल जल।)

(नोट—यह रस विरेचक है। गर्भिणीको न देना चाहिए।)

(२१७५) ज्वरार्यगदः (र.का.धे.। अ.१)

विषद्वयश्च नैपालं तुत्थकोपणसादरम्।
स्वर्जीक्षारसमायुक्तमगदोऽयं ज्वरशल्यजित्॥

शुद्ध बछनाग २ भाग, जमाल गोटा, तुत्थ, मरिच, नौसादर और सज्जीखार १-१ भाग लेकर खरल करके रखिए।

इसके सेवनसे ज्वर नष्ट होता है। (मात्रा २ रत्ती। अनुपान=अदरकका रस, या शहद।)

(२१७६) ज्वरार्यभ्रम्

(र. चं.; र. सा. सं.; र. रा. सुं.; भै. र.। ज्व.)

अभ्रं ताम्रं रसं गन्धं विषश्चैव समं समम्।
द्विगुणं धूर्त्तबीजञ्च व्योषं पञ्चगुणं मतम् ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव वटी कार्या द्विगुञ्जिका।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ॥
अभ्रं ज्वरारिनामेदं सर्वज्वरविनाशनम्।
वातिकं पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥
विषमाख्यां ज्वरान्सर्वान्धातुस्थान्विषमज्वरान्।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्रमांसं सशोथकम् ॥
हिक्कां श्वासं च कासञ्च मन्दानलमरोचकम्।
नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, पारा, गन्धक और बछनाग १—१ भाग तथा धतूरेके बीज २ भाग और त्रिकुटा ५ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् अन्य औषधोका महीन चूर्ण मिलाकर अद्रकके रसमें घोटकर २—२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे वातज ज्वर, पित्तज ज्वर, कफज ज्वर, सन्निपात, विषमज्वर, धातुगत विषमज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म, अग्रमांस, शोथ, हिचकी, श्वास, खांसी, अग्निमांद्य और अरुचि अवश्य नष्ट हो जाती है।

(२१७७) ज्वराशनिरसः

(र. सा. सं., भै. र.; र. चं.; धन्व.। ज्वर.)

रसं गन्धं सैन्धवञ्च विषं ताम्रं समांशिकम्।
सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं शुद्धमभ्रकम् ॥
लौहे च लौहदण्डेन निर्गुण्डीस्वरसेन च।
मर्दयेद्यत्नतःपश्चान्मरिचं सूततुल्यकम् ॥
नागवल्ल्या दलेनैव दातव्यो रक्तिसम्मितः।
सर्वज्वरहरःश्रेष्ठो ज्वरान्हन्ति सुदारुणान् ॥
कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम्।
धातुस्थं परमं दाहं ज्वरं दोषत्रयोद्भवम् ॥

पारा, गन्धक, सेंधानमक, बछनाग और ताम्र-भस्म १—१ भाग, लोह भस्म ५ भाग और अभ्रकभस्म १० भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका महीन चूर्ण मिलाकर लोहेके खरलमें लोहेकी मूसलीसे संभालूके रसमें घोटकर उसमें १ भाग कृष्ण-मरिचका चूर्ण मिलाकर १—१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १—१ गोली पानमें रखकर देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर, विशेषतः विषमज्वर, खांसी, श्वास, वमन और दाहयुक्त धातुगत ज्वर नष्ट होता है।

(२१७८) ज्वरेभसिंहो रसः

(र. का. धे.। अधि. १)

पारदं मरिचं शोपं शङ्खभस्म विषं समम्।
जयपालं तथा गन्धं त्रिभागं मर्दयेद् दिनम् ॥
जयायाःस्वरसेनैव दद्याद् गुञ्जाद्वयं भिषक्।
कफवातज्वरं तीव्रं हन्याद्रोगांश्च तत्क्षणात् ॥
हृद्रोगमामवातञ्च शूलं शीतं ज्वरं दृढम्।
विसूचिकां च मान्द्यञ्च जयेद्रोगानुपानतः ॥
यथा दानववृन्दाना नरसिंहो भयावहः।
तद्वज्ज्वरेभसिंहोऽयं कफवातनिवारणः ॥

पारा, कृष्णमरिच, समन्दरसोख, शंखभस्म और शुद्ध बछनाग १-१ भाग तथा जमालगोटा और गन्धक ३-३ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बना लीजिए फिर उसमें अन्य ओषधियोका चूर्ण मिलाकर १ दिन भांगके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

उन्हें यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे कफवातज्वर, हृद्रोग, आमवात, शूल, शीतज्वर, विसूचिका और अग्निमांद्यका नाश होता है।

जिस प्रकार दानवोंके लिए नरसिंह भयावह है ऐसेही इसके सामने वातज और कफज रोग थर्राते हैं।

(२१७९) ज्वरेभसिंहरसः (र.का.धे.।अ.१)

पारदं गन्धकं ताम्रं विषं तुल्यं विमर्दयेत्।
शेफालिकास्वरसतो भावयेदातपे दृढे॥
शृङ्गवेराम्बुना तद्वद्भावितं सिद्धिमाप्नुयात्।
गुञ्जैकं ससितं दद्याच्छृङ्गवेराम्बुना भिषक्॥
अभ्यङ्गस्तिलतैलेन कृत्वा स्नानं हिमोदकैः।
पित्तरोगे तथोष्णेन विदध्यात्पयसा ततः॥
तत्तच्छीतोपचारैस्तु हन्यात्तत्तदुपद्रवान्॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म और बछनाग समान भाग लेकर कज्जली करके १-१ दिन हार सिंगार और अदरकके रसमें घोटकर धूपमें सुखा लें।

इसमेंसे १ रत्ती दवा ६ माशे मिश्रीमें मिलाकर अदरकके रसके साथ देनेसे ज्वर नष्ट होता है।

यदि दाहादि पित्तविकार उत्पन्न हों तो शरीर पर तिल तैलकी मालिश करके ठण्डे जलसे स्नान करना तथा अन्य शीतोपचार करने चाहिएं।

(२१८०) ज्वालानलरसः

(र. का. धे.। अ. १२; र. सा. सं.। अजी.)

क्षारत्रयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम्।
सर्वतुल्या जया भ्रष्टा तदर्धा शिग्रुजा जटा॥
एतत्सर्वं जयाशिग्रुवह्निमार्कवजैर्द्रवैः।
भावयेत् त्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे क्षिपेत्॥
सप्तधाऽऽर्द्रद्रवैर्घृष्टो रसो ज्वालानलो भवेत्।
निष्कोऽस्य मधुना लीढोऽनुपानं गुडनागरम्॥
हन्त्यजीर्णमतीसारं ग्रहणीमग्निमार्दवम्।
श्लेष्महृल्लासवमनमालस्यमरुचिं जवात्॥

सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, पारा, गन्धक, पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ १-१ भाग तथा इन सबके बराबर (घीमें) भुनी हुई भांग और भांगसे आधी सहंजनेकी जड़की छाल लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर सबको ३-३ दिन भांग, सहंजना, चीता और भंगरेके रसकी धूपमें भावना देकर उसका एक गोला बना लीजिए और उसे सम्पुटमें बन्द करके लघुपुटमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् उसे निकालकर अद्रकके रसकी सात भावनाएं दीजिए।

इसमेंसे ५-५ माशे दवा शहदके साथ चाटकर ऊपरसे सोंठके चूर्णको गुड़में मिलाकर खानेसे अजीर्ण, अतिसार, ग्रहणी, अग्निमांद्य, कफ, हृल्लास (जी मिचलाना), वमन, आलस्य और अरुचिका अत्यन्त शीघ्र नाश होता है।

(व्यवहारिक मात्रा=आधा माषा)

(२१८१) ज्वालालिङ्गरसः

(र. का. धे.। अ. १; र. रा. सुं.। उत्तर.)

शुद्धं सूतं मृतं स्वर्णं मरिचं तुत्थकं समम्।
ज्वालामुख्यग्निजैर्द्रावैर्जलमुण्डितिकाद्रवैः॥
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे गुञ्जामात्रं च भक्षयेत्।
ज्वालालिङ्गो रसो नाम त्रिदोषे दीयते सदा॥
कर्षैकं वह्निमूलन्तु तक्रेण च पिबेदनु॥

रस सिन्दूर, सोनेकी भस्म, मरिचका चूर्ण और तुत्थ भस्म समान भाग लेकर सबको ज्वालामुखी, चीता और जलमुण्डीके रसमें १–१ दिन घोटकर १–१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १–१ गोली खाकर ऊपरसे १ तोला चीतेकी जड़को तक्रमे पीसकर पीनेसे त्रिदोषज संग्रहणी नष्ट होती है।

॥ इति जकारादिरसप्रकरणम्॥

अथ जकारादि कल्पप्रकरणम्।

(२१८२) ज्योतिष्मतीकल्पः

(र. र. स.। उ. खं. अ. २६)

ज्योतिष्मती नामलता पीता पीतफलोज्ज्वला।
आषाढे पूर्वपक्षे स्याद् गृहीत्वा बीजमुत्तमम्॥
आहरेत्तिलवत्तैलं मुष्टिना वापि तत्पचेत्।
क्षीरतुल्यं चतुर्थांशमाक्षिकं तैलशेषितम्॥
ततस्तत्कोलकर्पूरत्वग्जातीफलमिश्रितम्।
स्निग्धभाण्डगतं धान्येष्वनुगुप्तं निधापयेत्॥
पिबेत्सूर्योदये तैलात्पलं याति विसंज्ञताम्।
ततः संज्ञां शनैर्लब्ध्वा ततःक्रन्दति रोदिति॥
एवं मासे श्रुतधरः परस्मिन्सूर्यसन्निभः।
तृतीये पूज्यते देवैश्चतुर्थे नैव दृश्यते॥
खेचरःपञ्चमे षष्ठे सिद्धैर्मिलति सप्तमे।
विष्णोसमदिनं जीवेज्जीवन्मुक्तोऽष्टमे भवेत्॥

ज्योतिष्मती (मालकंगनी) लता जातिकी वनस्पति है, इसकी लता पीले रंगकी होती है और उसपर सुन्दर पीले रंगकेही फल आते है।

अषाढ़के प्रथम पक्षमें उसके उत्तम बीज लेकर तिलोंकी भांति उन्हें कोल्हूमें पिलवा कर अथवा कूटकर मुट्ठीसे निचोड़कर उनका तेल निकलवाना चाहिए। इस तैलको समान भाग दूध और चतुर्थांश मधुमें मिलाकर तैलमात्र शेष रहने तक मन्दाग्नि पर पकाइये और फिर उसमें थोड़ा थोड़ा कङ्कोल, कपूर, दारचीनी और जायफलका चूर्ण मिलाकर मिट्टीके चिकने पात्रमें (अथवा काच या चीनी आदिकी बरनीमें) भरकर मुख बन्द करके अनाजके ढेरमें दबा दीजिए। (२१ दिन पश्चात् निकालकर काममें लाइये।)

इसमेंसे ५ तोले तैल सूर्योदयके समय पीना चाहिए। इसके पीनेसे मनुष्य बेहोश हो जाता है और जब होशमें आता है तो बेचैनीके मारे चिल्लाता और रोता है। जब तक तैल सात्म्य नहीं हो जाता तबतक नित्य यही दशा होती है। इस प्रकार इस तैलको १ मास पर्यन्त सेवन करने से मनुष्य श्रुतधर हो जाता है अर्थात् वह जो कुछ सुनता है वह उसे कण्ठस्थ हो जाता है। दो मास

सेवन करनेसे सूर्य समान कान्ति हो जाती है। तीन मास सेवन करनेसे उसे देवता भी अपना पूज्य मानने लगते हैं। चौथे मासमें उसका शरीर अदृश्य हो जाता है अर्थात् उसे अन्य मनुष्य नहीं देख सकते। पांचवें मासमें आकाशगमनकी शक्ति प्राप्त हो जाती है, छठे मासमें सिद्धपुरुषोसे भेट होती है। सात मास तक सेवन करनेसे विष्णुके एक दिनके समान आयु प्राप्त होती है और यदि आठ मास तक इसका सेवन किया जाय तो मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है।

॥ इति जकारादि कल्पप्रकरणम् ॥

अथ जकारादिमिश्रप्रकरणम्।

(२१८३) जम्बीरद्रावः (यो.चि.। मिश्रा.)

शतं च जम्बीररसं रामठं च पलद्वयम्।
सैन्धवं च विडङ्गञ्च पृथक् दत्त्वा पलं पलम् ॥
त्र्यूषणं पलमेकैकं सौवर्चलं चतुष्टयम्।
यवानीका पलं चैकं सर्षपानां चतुष्टयम् ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य अश्वशालां निधापयेत्।
एकविंशद्दिनं यावत्ततः सर्वं समुद्धरेत् ॥
सुचन्द्रे सुदिने लोके पूजयित्वा भिषग्गुरून्।
यकृत्प्लीहामगुल्मे च विद्रध्यष्ठीलिकादयः ॥
वातगुल्ममतीसारं शूलं पार्श्वहृदामयम्।
नाभिशूलं विवन्धे च आध्मानञ्च गदोदरम् ॥
नश्यन्ति तस्य शीघ्रेण वातश्लेष्मामयाश्च ये।
जीर्यन्ते तस्य कोष्ठे तु जम्बीरीद्रवसेवनात् ॥

जम्बीरी नींबूका रस १०० पल (६। सेर), हींग २ पल, सेंधानमक, वायविड़ंग, सोंठ, मिर्च और पीपल १-१ पल (५-५ तोले), सौवर्चल (कालानमक) ४ पल, अजवायन १ पल और सरसों ४ पल लेकर कूटने योग्य चीज़ोंको कुटवा कर सबको चिकने मटकेमें भरकर उसका मुंह बन्द करके घोड़ेकी लीदमें दबा दीजिए; और २१ दिन पश्चात् निकालकर छानकर बोतलोंमें भरकर कार्क लगाकर रख दीजिए।

इसके सेवनसे यकृत् रोग, प्लीहा (तिल्ली), गुल्म, आम, विद्रधि, अष्ठीला और विशेषतः वात गुल्म तथा शूल, अतिसार, पसलीका दर्द, हृच्छूल, नाभिशूल, कब्ज, अफारा और अन्य उदरविकार तथा वातज और कफज रोग नष्ट होते हैं।

(मात्रा—६ माशे। पानीमें मिलाकर पीना चाहिए।)

(२१८४) जलतैलप्रयोगः (वै. म। प. ६)

पूर्वेद्युरानीतसुरक्षितं जलं
प्रभातकाले प्रपिबेत्सतैलम्।
चिरन्तनं द्राक् शमयेत् सुघोरं
प्रवाहणं रक्तकफान्वितञ्च ॥

पहिले दिनके रक्खे हुवे वासी पानीको प्रातः-काल तैलमें मिलाकर पीनेसे पुराना रक्तातिसार और कफातिसार अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(प्र. वि. तैल १ तो., पानी ८ तो. लेना चाहिए।)

(२१८५) जलधाराप्रयोगः

(भा. प्र. । म. खं. ज्वर.)

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-
कांस्यादिपात्रे निहितश्च नाभौ।
शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती
निहन्ति दाहं त्वरितं ज्वरश्च ॥

रोगीको सीधा लिटाकर उसकी नाभि पर ताम्र वा कांसीका खूब गहरा पात्र रखकर उसमें [कुछ देर तक] शीतल जलकी धारा छोड़नेसे ज्वर और उसका सन्ताप नष्ट होता है।

(२१८६) जलनस्यम् (वं. से. । रसाय.)

व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथघ्नम्।
रजनीक्षयेम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजननश्च ॥

रात्रि बीतने पर (ब्राह्म मुहूर्तमें) पानीकी नस्य लेनेसे व्यङ्ग (चेहरेकी झांई), बलि [झुर्री] पलित, पीनस, वैस्वर्य (आवाजका खराब होना), खांसी और श्वासका नाश होता तथा दृष्टि बढती है। यह रसायन प्रयोग है।

(२१८७) जलप्रयोगः [१] (वं.से.। रसा.)

कासश्वासातिसारज्वरपिटक-
कटीकुष्ठमेदोविकारान्।
मूत्रघातोदरार्शः श्वयथु-
गलशिरःस्रावशूलाक्षिरोगान् ॥
ये चान्ये वातपित्तश्रमजकफ-
कृता व्याधयःसन्ति जन्तोः।
तांस्तानभ्यासयोगादपन
यतिपयः पीतमन्ते निशायाः ॥

रात्रि बीतने पर (ब्राह्म मुहूर्तमें) जलपान करनेसे खांसी, श्वास, अतिसार, ज्वर, पिडिका, कटिशूल, कुष्ठ, मेद, मूत्राघात, उदररोग, अर्श (बवासीर), शोथ, गले या शिरसे स्राव होना (नजला और जुकाम) शिरशूल, गलेका दर्द, नेत्र रोग, तथा अन्य वातज, पित्तज, कफज और श्रम जनित रोग नष्ट होते हैं।

(लगभग १ सेर पानी पी लेना चाहिए।)

(२१८८) जलप्रयोगः [२] (वं.से.। रसा.)

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यम्।
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि॥
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो।
बलिपलितविहीनस्सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥

रात्रि बीतने पर (ब्राह्म मुहूर्तमें) नित्य प्रति नासिका द्वारा जलपान करनेसे बुद्धि और दृष्टिकी वृद्धि तथा बलिपलित और अन्य समस्त रोगोंका नाश होता है।

(२१८९) जलमज्जनमृतप्रतीकारः

(वै. म. । प. १७)

वारिमज्जनमृतस्य विग्रहं
तिन्तडीदलरसेन सेचितम्।
आतपे धृतमथास्य चेन्द्रिये-
ष्वाशु जीवितमवाप्नुयाद्ध्रुवम् ॥

पानीमें डूबकर मरे हुवे (अचेत हुवे) मनुष्यके शरीरको तिन्तडीकके पत्तोंके रससे सेचन करके धूपमें लिटा देनेसे शीघ्रही चेत हो जाता है।

(२१९०) जातीपत्रयोगः (ग. नि.। मुख.)

सञ्चर्वितैर्वक्त्रधृतैःप्रशान्ति
वक्त्रामयो गच्छति जातिपत्रैः।

दन्तास्तु बीजैर्वकुलद्रुमस्य
स्थानच्युताऽप्यचला भवन्ति ॥

चमेलीके पत्तोंको चबानेसे मुखरोग नष्ट होते हैं और मौलसिरीके बीजोंको चबानेसे स्थानच्युत (जड़ छोड़े हुवे) दांत भी जम जाते हैं।

(२१९१) जात्यादिवर्त्तिः

(वृं. मा.; भा. प्र.; वं. से.। नाडी व्र.)

जात्यर्कशम्पाककरञ्जदन्ती
सिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः।
वर्त्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं
स्नुकक्षीरपिष्टा सह चित्रकेण ॥

चमेलीके पत्ते, अर्क (आक) के पत्ते या जड़ अमलतासके पत्ते, करञ्ज, दन्ती, सेंधा, सौवर्चल (काला नमक), जवाखार और चीतेको सेहुंडके दूधमें पीसकर उसमें कपड़ा भिगोकर उसकी वत्ती बनाकर नासूरके भीतर लगानेसे नासूर अत्यन्त शीघ्र भर जाता है।

(२१९२) जालिनीफलवर्त्तिः

(रा. मा.। अर्श. १८)

यत्नेन वर्त्तिरथवा गमिता गुदेन
या जालिनीफलरजोगुडसम्प्रयुक्ता ॥

कड़वी तूंबी (अथवा बिन्दाल) के फलके चूर्णको गुड़में मिलाकर उसकी वत्ती बनाकर गुदामें रखनेसे अर्श नष्ट होती है।

(२१९३) जीवन्त्याद्यनुवासनम्

(च. सं.। चि.। अ. ४)

जीवन्तीं मदनं मेदां श्रावणीं मधुकं बलाम्।
शताहर्षभको कृष्णां काकनासां शतावरीम् ॥
स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शटीं वचाम्।
पिष्ट्वा तैलं घृतं क्षीरे साधयेच्चतुर्गुणे ॥
बृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्द्धनम्।
मूत्ररेतोरजोदोषान् हरेत्तदनुवासनम् ॥

जीवन्ती, मयनफल, मेदा, मुण्डी, मुलैठी, खरैंटी, सौंफ, ऋषभक, पीपल, काकनासा, शतावर, कौंचके बीज, क्षीरकाकोली, काकड़ासिंगी, कचूर और वच। सबको पीसकर कल्क बना लीजिए। इस कल्कके साथ इससे ४ गुना घी या तैल और उससे ४ गुना दूध एकत्र मिलाकर पकाइये।

इस स्नेहकी अनुवासन वस्ति लेनेसे मूत्र-विकार, शुक्रदोष और वातज तथा पित्तज रोग नष्ट होते और बल वीर्य तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

(२१९४) ज्योतिष्मतीरसायनम्

(र. र. स.। उ. ख. अ. २६)

ज्योतिष्मत्यास्तैलमाज्यं सगन्धम्
गुञ्जावृद्ध्या सेवयेन्मासमात्रम्।
यावच्च स्याद्यस्तु स प्राप्य मूर्ति-
र्मेधायुक्तो दिव्यदृष्टिर्नियक्ष्मा ॥

ज्योतिष्मती (मालकंगनी) का तैल, घी और शुद्ध आमलासार गन्धक समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर एक रत्तीकी मात्रासे सेवन करना आरम्भ करें और प्रतिदिन १-१ रत्ती मात्रा बढाते जाएं।

इस प्रकार १ मास तक सेवन करें। इस प्रयोगसे मेधावृद्धि होती है, दृष्टि दिव्य हो जाती है तथा यक्ष्मा रोग नष्ट होता है।

(२१९५) ज्वरनाशकबस्तिः

(च. सं. । चि. अ. ३)

पटोलारिष्टपत्राणि सोशीरश्चतुरङ्गुलः ।
ह्रीवेरं रौहिणं तिक्ता श्वदंष्ट्रा मदनानि च ॥
स्थिरा बला च तत् सर्वं पयस्यर्द्धोदके शृतम् ।
क्षीरावशेषं निर्यूहं संयुक्तमधुसर्पिषा ॥
कल्कैर्मदनमुस्तानां पिप्पल्या मधुकस्य च ।
वत्सकस्य च संयुक्तं वस्तिं दद्यात् ज्वरापहम् ॥

पटोलपत्र, नीमके पत्ते, खस, अमलतासका गूदा, सुगन्धबाला, चन्दन, कुटकी, गोखरु, मयनफल, शालपर्णी और खरैटी। सब चीज़ें समान भाग लेकर कूटकर उनमें सबसे चार गुना दूध और उतनाही पानी मिलाकर पकाइये। जब दूध मात्र शेष रह जाय तो उतारकर छान लीजिए।

इस दूधमें घी और शहद तथा मैनफल, मोथा, पीपल, मुलैठी और इन्द्रजौका कल्क मिलाकर बस्ति देनेसे ज्वर नष्ट होता है।

(२१९६) ज्वरनाशनो विरेकः

(र स. क. । उ. ५)

सैन्धवेन युतं वज्रक्षीरमग्निविपाचितम् ।
द्विवल्लमुष्णकैःपीतं विरेकाज्ज्वरनाशनम् ॥

सेहुंड (थोहर) के दूधमें समान भाग सेंधानमक मिलाकर अग्नि पर पकाकर गाढ़ा कर लीजिए।

इसमेंसे २ वल्ल (४ या ६ रत्ती) औषध उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे विरेचन होकर ज्वर नष्ट हो जाता है।

(२१९७) ज्वरहरी बस्तिः

(च. सं. । चि. स्था. अ. ३)

जीवन्तीं मधुकं मेदां पिप्पलीं मरिचं वचाम् ।
ऋद्धिं रास्नां बलां विश्वं शतपुष्पां शतावरीम् ॥
पिष्ट्वा क्षीरजलं सर्पिस्तैलञ्च विपचेद् भिषक् ।
आनुवासनिकं स्नेहमेतद् विद्याज्ज्वरापहम् ॥

जीवन्ती, मुलैठी, मेदा, पीपल, स्याह मिर्च, बच, ऋद्धि, रास्ना, खरैटी, सोंठ, सौंफ और शतावर। सब चीज़ें समान भाग लेकर पीस लीजिए। इस कल्क और दूध तथा पानीके साथ घृत और तैल पका लीजिए।

इस स्नेहकी बस्ति लेनेसे ज्वर नष्ट होता है।

(विधिः—कल्क १ भाग, घी २ भाग, तैल २ भाग, दूध ८ भाग, पानी ८ भाग। एकत्र मिलाकर स्नेह मात्र शेष रहने तक पकावें।

॥ इति जकारादि मिश्रप्रकरणम् ॥



अथ टकारादि चूर्णप्रकरणम् ।

(२१९८) टङ्कणप्रयोगः (वं. से. । क्षु.)

नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन न शाम्यति ।
कुनखश्चेत्तदा भ्रान्तःशैलोपि प्लवते जले ॥

सुहागेकी खीलको नाखूनके नीचे भरनेसे (अथवा घीमें मिलाकर लगानेसे) कुनखं रोग अवश्य नष्ट होता है ।

(२१९९) टङ्कनादिचूर्णम् (आ.वे.वि.।योनि.)

टङ्कनं पञ्चलवणं तुगाक्षीरीं शिलाजतु ।
नागरं मुस्तकं वह्निं पद्मकं नीलमुत्पलम् ॥
जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां गुडूचीं चन्दनद्वयम् ।

१ नखके नीचेका मांस कठोर हो जाना तथा उसमें दाह होना ।

चूर्णयित्वाम्भसा नारी पिबेत् कण्डूप्रशान्तये ॥
योनिकण्डूगदे योनौ शीततोयाभिषेचनम् ।
स्नेहस्वेदश्च कर्त्तव्यो वस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः ॥

सुहागा, पांचों लवण, वंसलोचन, शिलाजीत, सोंठ, नागरमोथा, चीता, पद्माख, नीलोत्पल(नीलोफर), जीवन्ती, मुलैठी, मुनक्का, गिलोय, लाल चन्दन और सफेद चन्दन । सब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए ।

इसे ठण्डे पानीके साथ पीनेसे योनिकी खुजली शान्त होती है । योनिकी खाजको शान्त करनेके लिए योनिको ठण्डे पानीसे धोना तथा स्नेहन स्वेदन और उत्तरवस्ति करानी चाहिए ।

इति टकारादिचूर्णप्रकरणम् ।

अथ टकाराद्यञ्जनप्रकरणम् ।

(२२००) टङ्कणाद्यञ्जनम् (र. र. । ने.)

टङ्कणं रसकं पिष्ट्वा जम्बीरैःकांस्यभाजने ।
पक्ष्मरोगहरं कण्डूं रक्तस्रावञ्च नाशयेत् ॥

समान भाग सुहागेकी खील और खपरिया (अभावमें जसत भस्म) को नीम्बूके रसमें कांसीके पात्रमें पीसकर महीन कर लीजिए ।

इसका अञ्जन करनेसे नेत्रोंकी पलकोंके रोग, खुजली और रक्तस्रावका नाश होता है ।

इति टकाराद्यञ्जनप्रकरणम् ।



अथ टकारादि रसप्रकरणम्।

(२२०१) टङ्कनादिवटी

(भै. र.; र. रा. सुं.। अग्निमां.)

टङ्कननागरगन्धकपारद
गरलं मरिचं समभागयुतम्।
लकुचस्वरसैश्चणकप्रतिमा
गुटिका जनयत्यचिरादनलम्॥

सुहागेकी खील, सोंठ, गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध मीठा तेलिया और स्याह मिर्चका चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए। तत्पश्चात् अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर लकुच (बढल) के स्वरसमें घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे अग्निकी वृद्धि अत्यन्त शीघ्र होती है।

(मात्रा=२–३ गोली। अनुपान=उष्ण जल या अद्रकका रस।)

इति टकारादि रसप्रकरणम्।

अथ टकारादि मिश्रप्रकरणम्।

(२२०२) टङ्कणक्षारः (आ. वे. प्र.। अ. ८)

सौभाग्यं टङ्कणक्षारो धातुद्रावकमुच्यते।
टङ्कणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो वातपित्तकृत्॥

टङ्कणको सौभाग्य (सुहागा) टङ्कणक्षार और धातुद्रावक कहते है।

सुहागा अग्निवर्द्धक, रूक्ष, कफनाशक और वातपित्तवर्द्धक है।

अशुद्धष्टङ्कणो वान्तिभ्रान्तिकारी प्रयोजितः।
अतस्तं शोधयेदेव वह्नावुत्फुल्लितःशुचिः॥

अशुद्ध टङ्कण सेवन करानेसे वमन और भ्रान्ति होती है अतएव उसे शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिए; और उसे शुद्ध करनेके लिए केवल अग्नि पर फुला लेना पर्याप्त है।

टङ्कणो वह्निकृत्स्वर्णरूप्ययोः शोधनः परः।
विषदोषहरो हृद्यो वातश्लेष्मविकारनुत्॥
अपरो नीलकण्ठाख्यष्टङ्कणःपूर्वटङ्कणात्।
श्रेष्ठो नीलच्छविःकिञ्चिच्छोधनं तस्य पूर्ववत्॥

सुहागा अग्निवर्द्धक और स्वर्ण तथा चांदीको शुद्ध करनेवाला है। तथा विषके दोषोको नष्ट करनेवाला, हृद्य (हृदयके लिए हितकारी) और वात कफनाशक है।

एक दूसरे प्रकारका टङ्कण भी होता है जिसमें कुछ नीली झलक होती है। उसे नीलकण्ठ टङ्कण कहते हैं। यह गुणोमें पहिले प्रकारसे श्रेष्ठ होता है। इसकी शोधनविधि भी पहिलेके समान ही है।

(२२०३) टङ्कणशोधनम् [१]

(शा. सं.। खं. २ अ. ११)

नीलाञ्जनं चूर्णयित्वा जम्बीरद्रवभावितम्।
दिनैकमातपे शुद्धं भवेत्कार्येषु योजयेत्॥

एवं गैरिकं कासीसं टङ्कणानि वराटिका।
तुवरीशङ्खकङ्कुष्ठं शुद्धिमायाति निश्चितम्॥

नीलाञ्जनके चूर्णको एक दिन जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर धूपमें सुखानेसे वह शुद्ध और कार्योपयोगी हो जाता है।

गेरु, कसीस, सुहागा, कौड़ी, फिटकी, शङ्ख और कंकुष्ठकी शुद्धि भी इसी प्रकार होती है।

(२२०४) टङ्कणशोधनम् [२]

(र. सा. सं. । उपरसा.)

आदौ टङ्कणमादाय काञ्जिकाम्ले विनिक्षिपेत्।
एकरात्रात् समुद्धृत्य शोषयेद्धि निरातपे॥
नरमूत्रगतं टङ्कं गवां मूत्रगतं तथा।
दिनान्ते तत्समुद्धृत्य जम्बीराम्बुगतं ततः॥
जम्बीराम्लात्समुद्धृत्य नारिकेलस्य पात्रके।
मरीचचूर्णसंयुक्तं क्षालयेच्छीतलाम्बुना॥
एवं टङ्कं समादाय सर्वरोगेषु योजयेत्।
टङ्कणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो रेचनो लघुः।

सुहागेको एक दिन काञ्जीमें भिगोकर छाया में सुखा लीजिए। इसके पश्चात् उसे १-१ दिन मनुष्यके मूत्र और गोमूत्रमें भिगोकर (छायामें सुखाकर) जम्बीरी नींबूके रसमें डाल दीजिए और एक दिन पश्चात् निकालकर नारयलके पात्रमें (नरेलीमें) रखकर थोड़ासा स्याह मिर्चका चूर्ण मिलाकर ठण्डे पानीसे धो डालिए। इस प्रकार सुहागा शुद्ध हो जाता है। इसे सर्वत्र प्रयुक्त कर सकते है।

सुहागा अग्निवर्द्धक, रूक्ष, कफनाशक रेचक और लघु है।

(२२०५) टिण्डुकादिपुटपाकः

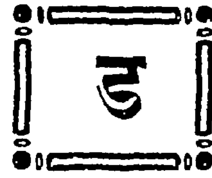
(हा. सं. । स्था. ३ अ. ३)

टिण्डुकत्वचमाहृत्य काश्मीरीपत्रवेष्टितम्।
मृदा विलिप्य विधिवद्दहेन्मृद्वग्निना भिषक्॥
रसं गृहीत्वा मधुसंयुतं पानं सर्वातिसारघ्नश्च॥

सोनापाठा (स्योनाक) वृक्षकी छालको कूटकर खम्भारीके पत्तोंमें लपेटकर सुतलीसे बांध दीजिए फिर उनके ऊपर मिट्टीका १ अंगुल मोटा लेप करके मृद्वग्नि (भूबल)में दबा दीजिए। मिट्टीका रंग लाल हो जाय तो भीतरसे छालको निकालकर रस निचोड़ लीजिए।

इस रसमें शहद डालकर पीनेसे सर्व प्रकारके अतिसार नष्ट होते है।

इति टकारादि-मिश्रप्रकरणम्।



अथ डकारादि रसप्रकरणम् ।

(२२०६) डामरेश्वराभ्रम् (भै. र.। हिक्का.)

मेचकं पलमितं मृतमभ्रं
ब्रह्मयष्टिकनकामृतवासाः ।
कासमर्दवननिम्बकचव्यं
ग्रन्थिकं दहनमूलसमेतम् ॥
एकशश्च पलिकैरिह सर्वै-
र्मर्दितं सुवलितं गुरुहिक्काम् ।
श्वासकासमुदरं चिरमेहान्
पाण्डुरोगयकृतीगलरोगान् ॥
शोथमोहनयनास्यजरोगं
यक्ष्मपीनसगरं बलसादम् ।
गण्डमण्डलवमिभ्रमदाहं
प्लीहशूलविषमज्वरकृच्छ्रम् ॥
हन्ति वातकफपित्तमशेषं
द्वन्दरोगमनुपानविशेषैः ।
डामरेश्वरमिदं महदभ्रं
पूर्ववैद्यगदितं सुखहेतु ॥

५ तोले कृष्णाभ्रक-भस्म तथा ५ तोले मोरपंखके अगले भागकी भस्म लेकर उसे भारंगी, धतूरा, गिलोय, बासा, कसौंदी, बकायन (बन निम्ब), चव्य, पीपलामूल और चीतामूलके ५-५ तोले स्वरसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इसके सेवनसे भयङ्कर हिक्का, खांसी, श्वास, उदरविकार, पुराना प्रमेह, पाण्डु, यकृत्‌रोग, गल-रोग, शोथ, मोह, नेत्ररोग, मुखरोग, राजयक्ष्मा, पीनस, विषदोष, बलक्षय, गण्डमाला, वमन, भ्रम, दाह, तिल्ली, शूल, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र और अन्य वातज, पित्तज तथा कफज रोगोका नाश होता है।

यह रस हिक्का तथा श्वास रोगमें विशेष गुणकारी है।

(मात्रा-१ रत्तीसे २ रत्ती तक। साधारण अनुपान=शहद।)

इति डकारादि रसप्रकरणम् ।



अथ तकारादिकषायप्रकरणम् ।

(२२०७) तगरमूलादियोगः (रा.मा.।वात.)

तक्रेण पिष्टं तगरस्य मूल-
मार्द्रं निपीतं विनिहन्ति शीघ्रम् ।
शेफालिकामूलविनिर्मितो वा
क्वाथो नृणां सन्धिकवातरोगम् ॥

तगरकी गीली (ताज़ी) जड़को तक्रके साथ पीसकर अथवा निर्गुण्डी (संभालु)की जड़का क्वाथ बनाकर पीनेसे सन्धिवायु (गठिया) नष्ट होती है।

(२२०८) तगरादिक्वाथः

(यो. चि.। अ. ४; यो. र.। सन्नि.)

तगरतुरगगन्धापर्पटीशङ्खपुष्पी
त्रिदशविटपि तिक्ता भारती भूतकेशी ।
जलधरकृतमालश्चेतकीगोस्तनीभ्यां
सह हरति कषायो मङ्क्षु पानात्प्रलापम् ॥

तगर, असगन्ध, पित्तपापड़ा, शंखपुष्पी, देवदारु, कुटकी, ब्राह्मी, निर्गुण्डी, नागरमोथा, अमलतास, छोटी काली हर्र और मुनक्का । इनका क्वाथ पीनेसे प्रलाप नष्ट होता है।

(२२०९) तण्डुलीयकमूलप्रयोगः

(यो. र.। विष.)

तण्डुलीयकमूलन्तु पीतं तण्डलवारिणा ।
तक्षकेणापि दष्टं हि निर्विषं कुरुते नरम् ॥

चौलाईकी जड़को तण्डुल जल (चावलोंके पानी)के साथ पीसकर पीनेसे सर्पविष नष्ट होता है।

(२२१०) तण्डुलीयकल्कः

(शा. सं.। खं. २ अ. ५)

तंदुलीयजटाकल्कः सक्षौद्रःसरसाञ्जनः ।
तन्दुलोदकसंपीतो रक्तप्रदरनाशनः ॥

चौलाईकी जड़ और रसौतको पीसकर शहद में मिलाकर चावलोके धोवन (तण्डुल जल) के साथ सेवन करनेसे रक्तप्रदर नष्ट होता है।

(२२११) तण्डुलीयमूलप्रयोगः [१]

(रा. मा.। अति.)

घृष्टोदकेन घननादजटा तु हन्ति ।
तं रक्तयुक्तमपि माक्षिकशर्कराढ्या ॥

चौलाईकी जड़को पानीमें पीसकर उसमें शहद और खांड मिलाकर पीनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है।

(२२१२) तण्डुलीयमूलप्रयोगः [२]

(यो. त.। त. ७५; ग. नि.)

तण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
ऋत्वन्ते तु त्र्यहं पीत्वा वन्ध्याकुर्वन्ति योषितः॥

मासिक धर्म होनेके पश्चात् तीन दिन तक चौलाईकी जड़को चावलोके पानीमें पीसकर पीनेसे स्त्री वंध्या हो जाती है।

(२२१३) ताम्बूलपत्रयोगः (वं.से.। श्लीप.)

सप्तताम्बूलपत्राणां कल्कं तप्तेन वारिणा ।
संसृष्टलवणोपेतं श्लीपदं हन्ति सेवितम् ॥

७ ताम्बूलपत्रों (पानों) को नमकके साथ पीसकर गर्म पानीसे सेवन करनेसे श्लीपद (हाथी पग) रोग नष्ट होता है।

(२२१४) तिक्तादिक्वाथः [१]

(वैद्यामृत. वि. ६)

तिक्तापद्मकतोयचन्दनधनावासाभयारग्वधैः। पाठाविश्वकलिङ्गकामृतलतामुस्तैःकषायःकृतः॥ कृष्णाचूर्णयुतस्त्रिदोषजनिते विष्टम्भदाहान्विते। कासश्वासविलापतृड्वति हितःसन्दीपनःपाचनः॥

कुटकी, पद्माख, सुगन्धवाला, लालचन्दन, धनिया, बासा (अडूसा), हर्र, अमलतास, पाठा, सोंठ, इन्द्रजौ, गिलोय और मोथेका क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे कब्ज और दाहयुक्त सन्निपात ज्वर, खांसी, श्वास, प्रलाप और तृष्णा नष्ट होती है। यह क्वाथ दीपन पाचन भी है।

(२२१५) तिक्तादिक्वाथः [२] (ग.नि.। ज्व.)

क्वाथः सततके तिक्ता पटोलं सारिवा घनम्।

सतत ज्वर (दिन रातमें २ बार आनेवाले ज्वर) में कुटकी, पटोलपत्र, सारिवा और मोथेका क्वाथ देना चाहिए।

(२२१६) तिक्तादिक्वाथः [३]

(वं. से.; वृ. नि. र.। ज्व.)

तिक्ता पर्पटभूनिम्बौ मुस्तां छिन्नरुहां पिबेत्। अभ्यासेन जयत्येष ज्वरमामृत्युमातुरः॥

कुटकी, पित्तपापड़ा, चिरायता, मोथा और गिलोयका क्वाथ नित्य प्रति कुछ दिनो तक पीनेसे मरणासन्न ज्वररोगी भी स्वस्थ हो जाता है।

(२२१७) तिक्तादिक्वाथः[४] (वृ.नि.र.।ज्व.)

तिक्तातिक्तकपर्पटमृतसठीरास्नाकणापौष्करम्। त्रायन्तीबृहतीसुरौषधशिवादुःस्पर्शभार्गीकृतः॥ क्वाथो नाशयति त्रिदोषनिकरं स्वापं दिवा जागरम् नक्तं तृण्मुखशोषदाहकसनश्वासानशेषानपि॥

कुटकी, कड़वा पटोल, गिलोय, कचूर, रास्ना, पीपल, पोखरमूल, त्रायमाणा, बड़ी कटेली, देवदारु, सोंठ, धमासा और भारंगीका क्वाथ पीनेसे सन्निपान ज्वर, दिनमें नींद आना, रातमें नींद न आना, तृष्णा, मुखशोष, दाह, खांसी और श्वास नष्ट होता है।

(२२१८) तिक्तादिक्वाथः [५]

(वृ. नि. र.। ज्व.; भा. प्र.। ख. २ ज्व.)

तिक्तामुस्तायवैःपाठाकटफलाभ्यां सहोदकम्। पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिकज्वरे॥

कुटकी, मोथा, इन्द्रजौं, पाठा और कायफलके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पैत्तिक ज्वरमें पीनेसे दोषोका पाचन होता है।

(२२१९) तिक्तादिक्वाथः [६]

(वं. से.; वृ. नि. र.। ज्वर.)

तिक्तानिम्बविषाव्योषशक्राह्वाभिःशृतं जलम्। पिबेत्कफज्वरं घोरं हन्ति काससमन्वितम्॥

कुटकी, नीमकी छाल, अतीस, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और इन्द्रजौंका क्वाथ पीनेसे कास युक्त भयङ्कर कफज्वर नष्ट होता है।

(२२२०) तिक्तादिक्वाथः [७]

(वृ. नि. र.। ज्वर)

तिक्तायासकभूनिम्बश्यामापर्पटवासकैः। शृतं जलं सितायुक्तं रक्तपित्तज्वरं जयेत्॥

कुटकी, धमासा, चिरायता, काली निसोत, पित्तपापड़ा और वासेका क्वाथ मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त और ज्वर नष्ट होता है।

(२२२१) तिक्तादिक्वाथः [८]

(वृ. नि. र. । ज्वर)

तिक्तोशीरबलाधान्यपर्पटाम्भोधरैर्कृतः ।
क्वाथःपुनःसमायातं ज्वरं शीघ्रं निवारयेत् ॥

कुटकी, खस, खरैंटी, धनियां, पित्तपापड़ा और नागरमोथेका क्वाथ पीनेसे लौट लौट कर आनेवाला ज्वर नष्ट होता है।

(२२२२) तिक्तादिक्वाथः [९]

(वृ. नि. र., वं. से. । ज्वर.)

तिक्ताभयावृहद्दन्ती त्रायन्ती राजवृक्षकः ।
क्षाराढ्यःसैन्धवोपेतःक्वाथो भेदी ज्वरापहः ॥

कुटकी, हर्र, बड़ी दन्तीकी जड़, त्रायमाणा और अमलतासके क्वाथमें जवाखार तथा सेंधा-नमक मिलाकर पीनेसे विरेचन होकर ज्वर नष्ट हो जाता है।

(२२२३) तिक्तानवको क्वाथः

(यो. स. । अ. ५)

तिक्तेन्द्रवीजघनकौटजभङ्गुराभिः
पथ्यारसाञ्जनमहौषधधातकीभिः ।
क्वाथो हरेत्सगुदशूलमतिप्रवृद्धं
पित्तोद्भवं बहुविधं ग्रहणीगदञ्च ॥

कुटकी, इन्द्रजौ, मोथा, कुडेकी छाल,अतीस, हर्र, रसौत, सोंठ और धायकी जड़। इनका क्वाथ पीनेसे गुदाका प्रबल शूल और अनेक प्रकारकी पित्तज संग्रहणी नष्ट होती है।

(२२२४) तिक्तालावुयोगः (यो.त.।त.५७)

तिक्तालावुफले पक्वं सप्ताहमुषितं जलम् ।
गलगण्डं निहन्त्याशु पानात्पथ्यानुशीलितम् ॥

एक अच्छी बड़ी कड़वी तूंबीको भीतरसे थोड़ा खाली करके उसमें गर्म पानी भरकर उसके मुंहको मोम इत्यादिसे अच्छी तरह बन्द करके रख दीजिए।

सात दिन पश्चात् इस पानीको निकालकर इसमेंसे नित्य प्रति थोड़ा थोड़ा पीने और पथ्य पालन करनेसे गलगण्ड नष्ट होता है।

(२२२५) तिन्तिडीपानकम् (भै. र.। अरु)

भागास्तु पञ्च चिञ्चायाःखण्डस्यापि चतुर्गुणाः।
धान्यकार्द्रकयोर्भागं चातुर्जातार्द्धभागिकम् ॥
द्विगुणं जलमेतेषामेकपात्रे विलोडितम् ।
पिहितन्तप्तदुग्धेन ततो वस्त्रपरिस्रुतम् ॥
विधिना धूपिते पात्रे कृत्वा कर्पूरवासितम् ।
नृपयोग्यमिदं पानं वेदयुक्त्या प्रयोजितम् ॥

इमलीका गूदा ५ पल (२५ तोले), खाण्ड २० पल, धनियां और अद्रक १–१ पल, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर) आधा पल और पानी ५५ पल लेकर, कूटने योग्य चीज़ोंका चूर्ण करके सबको मिट्टीके पात्रमें पानीमें मिलाकर मथ डालिए। तत्पश्चात् उसमें थोड़ासा गर्म दूध मिलाकर कपड़ेमें छान लीजिए। अब इसमें तनिकसा कपूर मिलाकर अगर इत्यादिसे धूपित मिट्टी या पत्थरके पात्रमें भरकर रख दीजिए।

यह पानक राजाओंके सेवन करने योग्य है। इसके पीनेसे अरुचि नष्ट होती है।

(२२२६) तिन्दुकादिक्वाथः

(आ. वे. वि.। चि. अ. ६८)

तिन्दुविल्वं विडङ्गञ्च व्याघ्री धात्री च जाम्बवी
बब्बूलं लोहितश्चैव खदिरं रक्तचन्दनम् ॥
एषां क्वाथो हरेन्मेहान् लसिकाख्यं सुदारुणम्।
तथा मञ्जिष्ठमेहादिनानोपद्रवसंयुतम् ॥

तिन्दु (तेन्दु) की छाल, बेल छाल, बायविड़ंग, कटेली, आमला, नागदमन, बबूल (कीकर) की छाल, रक्त खैरसार और लाल चन्दनका क्वाथ पीनेसे भयङ्कर लसिकामेह, माञ्जिष्ठामेह और अन्य उपद्रव युक्त प्रमेहोंका नाश होता है।

(२२२७) तिलक्वाथः

(वृ. नि. र.; वं. से.; वृं. मा.; यो. र.। गुल्म; वृ. यो. त.। त. ९८)

तिलक्काथो गुडघृतव्योषभार्ङ्गीरजोन्वितः ।
पीतो रक्तभवे गुल्मे नष्टे शुक्रे च योषितः ॥

तिलके क्वाथमें गुड़, घी और त्रिकुटे (सोंठ, मिर्च, पीपल) तथा भारंगीका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे रक्त गुल्म और नष्टपुष्प (रजोदर्शन न होना) रोग मिट जाते है।

(२२२८) तिलादिकल्कः (वं. से.। अति.)

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करा पञ्चभागिकः।
आजेन पयसा पीतःसद्यो रक्त नियच्छति ॥

१ भाग काले तिल और ५ भाग मिश्रीको एकत्र पीसकर बकरीके दूधके साथ पीनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है।

(२२२९) तिलादिक्वाथः [१]

(वं. से.। अश्म.; वृ. यो. त. । त. १०२)

तिलाऽपामार्गकदलीपलाशयवबिल्वजः ।
क्वाथः पेयोऽविमूत्रेण शर्कराश्मरिनाशनः ॥

तिल, चिरचिटा, केलेकी जड़, ढाक[पलाश] की छाल, जौं और बेलकी छालको भेड़के मूत्रमें पकाकर पीनेसे शर्करा और अश्मरी [पथरी] नष्ट होती है। अथवा इनके क्षारोंको भेड़के मूत्रके साथ पीनेसे भी पथरी नष्ट होती है।

(२२३०) तिलादिक्वाथः [२]

(यो. त.। त. ७४)

क्वाथस्तिलानां विनिधाय पीतः
कटुत्रयं ब्राह्मणयष्टिचूर्णम्।
निहन्ति सद्यःकुसुमं सलोध्रं
स्त्रीणामसृग्दाहमतिप्रवृद्धम् ॥

यदि स्त्रीको मासिक धर्मके समय अधिक रक्त आता हो तो तिलोंके क्वाथमें, त्रिकुटा, भारंगी और लोधका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वह बन्द हो जाता है। यह क्वाथ स्त्रियोंके रक्तप्रदर और दाहको भी नष्ट करता है।

(२२३१) तिलादिक्वाथः [३] (यो.र.।स्त्री.)

सगुडःश्यामतिलानां क्वाथःपीतःसुशीलितो नार्या।
जनयति कुसुमं सहसा गतमपि सुचिरं निरातङ्कम्॥

काले तिलोंके क्वाथमें गुड मिलाकर नित्य प्रति कई दिन तक पीनेसे बहुत दिनोंसे बन्द ऋतुस्राव भी खुलकर होने लगता है।

---

१ क्षारः इति पाठान्तरम् ।

(२२३२) तिलादिक्वाथः [४] (यो.र.।स्त्री.)

तिलशेलुकारवीणां क्वाथं पीत्वा नष्टरजा महिला।
सगुडं शिशिरं त्रिदिनाज्जयति कुसुमं न सन्देहः॥

तिल, लिहसोड़ा और कलौंजीके काथको ठण्डा करके गुड़ मिलाकर नित्य प्रति तीन दिन तक पीनेसे नष्टार्तव (ऋतु बन्द होना) नष्ट होकर रजोस्राव होने लगता है।

(२२३३) तुलसीपत्रस्वरसः

(शा. सं.। खं. २ अ. १)

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः।
द्रोणपुष्पीरसोप्येवं निहन्ति विषमज्वरान्॥

तुलसीपत्र अथवा द्रोणपुष्पी [गूमा] के रसमें मिर्चका चूर्ण मिलाकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट होते हैं।

(२२३४) तुलसीपत्रस्वरसयोगः

(रा. मा.। स्त्री.)

सुरसादलनिष्यन्दः पुराणगुडमद्यखण्डसंमिश्रः।
पीतःप्रसूति समयादनन्तरं शूलमपहरति॥

तुलसीपत्रके स्वरसमें पुराना गुड़, मद्य और खाण्ड मिलाकर स्त्रीको प्रसवके पश्चात् तुरन्त पिलानेसे शूल नष्ट होता है।

(२२३५) तृणपञ्चमूलादिक्वाथः

(यो.र ; वै.र ; भा. प्र , ग.नि., भै.र.; वृं.मा.; धन्व । मूत्र. कृ.: यो. तं.। त. २८)

कुशःकाशःशरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम्।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम्॥
एतत्सिद्धं पयःपीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम्॥

१ सुश्रुतमें शरके स्थानपर नल पाठ है।

कुश, कांस, शर, दाभ और ईखकी जड़। इन सबके योगका नाम तृणपञ्चमूल है।

यह पित्तज मूत्रकृच्छ्रनाशक तथा वस्ति-शोधक है।

इनके साथ दूध पकाकर पीनेसे मूत्रेन्द्रियसे आनेवाला रक्त बन्द हो जाता है।

(२२३६) तृणपञ्चमूलादिसिद्धपयः

(वृं. मा.। कास.; वं. से.। कास.)

शरादिपञ्चमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा।
कषायेण शृतं क्षीरं पिबेत्समधुशर्करम्॥

तृणपञ्चमूल (कुश, कास, शर, दाभ और ईखकी जड़), पीपल और द्राक्षा (मुनक्का) के काथके साथ दूध पकाकर उसमें शहद और शर्करा [खाण्ड] मिलाकर पीनेसे खांसी नष्ट होती है।

(२२३७) तृणपञ्चमूलीसिद्धपयः

(वं. से.। रक्तपित्ता.)

शृतं क्षीरं पिबेच्चापि पञ्चमूल्या तृणाह्वया।
गोकण्टकानां स्वरसे पर्णिनीभिस्तथा पयः॥
हन्त्याशु रक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगम्।
मेढ्रगे विहितश्चापि वस्तिरुत्तरसंज्ञिकः॥

तृणपञ्चमूलके साथ अथवा शालपर्णी, पृष्ट-पर्णी, मुदगपर्णी और मापपर्णीके साथ अथवा गोखरुके स्वरसके साथ दूध पकाकर पीनेसे रक्त-पित्त और विशेषकर मूत्रमार्गसे आने वाला रक्त शान्त होता है।

मूत्रमार्गसे रक्त आता हो तो उसमें इस दूधकी उत्तरवस्ति भी लाभ पहुंचाती है।

(दूध ८ भाग, पानी ३२ भाग, कुटी हुई औषध १ भाग। सबको मिलाकर पानी जलनेतक पकाकर छान लें।)

(२२३८) तृप्तिघ्नो कषायदशकः

(च. सं.। सू. अ. ४)

नागरचित्रकचव्यविडङ्गमूर्वागुडूचीवचामुस्त-पिप्पलीपटोलानीति दशेमानि तृप्तिघ्नानि भवन्ति।

सोंठ, चीता, चव, बायविड़ंग, मूर्वा, गिलोय, बच, मोथा, पीपल और पटोलपत्र। यह दश चीज़े तृप्तिका नाश करती है।

(२२३९) तृष्णानिग्रहणो कषायदशकः

(च. सं.। सू. अ. ४)

नागरधन्वयासकमुस्तपर्पटकचन्दनकिरात-तिक्तकगुडूचीह्रीवेरधान्यकपटोलानीति दशेमानि तृष्णानिग्रहणानि भवन्ति।

सोंठ, धमासा, मोथा, पित्तपापड़ा, लाल चन्दन, चिरायता, गिलोय, सुगन्धबाला, धनियां और पटोलपत्र। यह दश चीज़ें तृष्णानाशक हैं।

(२२४०) त्रायन्त्यादिकषायः(ग.नि.।ज्वर.)

त्रायन्ती कटुका मुस्तं चन्दनोशीरसारिवाः।
पटोलपत्रं मधुकं मधूकं चाक्षसम्मितम्॥
तत्पक्वं मधुना पेयं कफपित्तोद्भवे ज्वरे॥

त्रायमाणा, कुटकी, मोथा, लाल चन्दन, खस, सारिवा, पटोलपत्र, मुलैठी और महुवेके फूल १।-१। तोला लेकर क्वाथ बनाकर ठण्डा करके उसमें शहद मिलाकर पीनेसे कफपित्तज्वर नष्ट होता है।

१ तृप्ति-कफजरोग, जिसमें पूर्णाहार किए विना ही तृप्ति रहती है।

(२२४१) त्रायन्त्यादिक्वाथः [१]

(ग. नि.। पाण्डु)

त्रायन्तिकामधुकपिप्पलीमूलमुस्ता-
वासागुडूचिपिचुमन्दकिरातजातम्।
शीतीकृतं मधुयुतं पिबतः कषायम्
हारिद्रकज्वरमसौ विनिहन्ति शीघ्रम्॥

त्रायमाणा, मुलैठी, पीपलामूल, मोथा, बासा, गिलोय, नीमकी छाल और चिरायता। इनके क्वाथ को ठण्डा करके शहद मिलाकर पीनेसे हारिद्रक सन्निपात शीघ्र नष्ट होता है।

(२२४२) त्रायन्त्यादिक्वाथः [२]

(वं से., वृ. नि. र., यो र.। ज्वर.)

त्रायन्तीकटुकानन्तासारिवाभिः शृतं जलम्।
सन्तताद्ये ज्वरे देयं वातादीनां निवृत्तये॥

सन्ततादि ज्वरोमें त्रायमाणा, कुटकी, अनन्त-मूल और सारिवाका क्वाथ देनेसे वातादि दोष शान्त होते है।

(२२४३) त्रायन्त्यादिक्वाथः [३]

(वृ नि र.; ग. नि.। ज्वर)

त्रायन्तीदशमूलपुष्करजटावातारिभिः कारवी।
भार्गी स्यादमृताटरूपकशटीगोमूत्रसंयोजितैः॥
शृङ्गीव्योषपुनर्नवाभिरचिरादुष्णकषायो हरेत्।
साभिन्यासगदं कफज्वरहरं निःसंशयं पाययेत्॥

त्रायमाणा, दशमूल, पोखरमूल, अरण्डमूल, कलौंजी, भारंगी, गिलोय, बासा [अड़ूसा], कपूर-कचरी, काकड़ासिंगी, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और पुनर्नवाको गोमूत्रमे पकाकर गर्म गर्म पीनेसे कफज्वर और अभिन्यास सन्निपात शीघ्र नष्ट होता है।

(२२४४) त्रायन्त्यादिक्वाथः [४]

(यो. चि. । का.)

त्रायन्तीपर्पटोशीरतिक्तानिम्बदुस्पृशा-
कषायो मधुसंयुक्तो पित्तज्वरविनाशनः ॥

त्रायमाणा, पित्तपापड़ा, खस, कुटकी, नीमकी छाल और धमासेके क्वाथमें शहद डालकर पीनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है।

(२२४५) त्रायन्त्यादिक्वाथः [५]

(वा. भ. । चि. । अ. १३)

त्रायन्ती त्रिफला निम्ब कटुका मधुकं समम्।
त्रिवृत्पटोलकाभ्याञ्च चत्वारोंशाः पृथक् पृथक्॥
मसूरान्निस्तुषादष्टौ तत्क्वाथःसघृतो जयेत्।
विद्रधीगुल्मवीसर्पदाहमोहमदज्वरान् ॥
तृण्मूर्छाच्छर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः ॥

त्रायमाणा, त्रिफला, नीमकी छाल, कुटकी और मुलैठी १-१ भाग; निसौत और पटोल ४-४ भाग तथा छिलके रहित मसूर ८ भाग। इनके क्वाथमें घी डालकर पीनेसे विद्रधि, गुल्म, वीसर्प, दाह, मोह, मद, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, वमन, हृद्रोग, रक्तपित्त, कुष्ट और कामलाका नाश होता है।

(२२४६) त्रायन्त्यादिक्वाथः(वृद्ध) [६]

(यो. चि. । का.)

त्रायन्तीन्द्रयवावासाछिन्नातिक्तापटोलकैः।
निम्बदुस्पर्शभूनिम्बशम्पाकपद्मकपर्पटैः ॥
अष्टावशेषितःक्वाथः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

त्रायमाणा, इन्द्रयव, वासा, गिलोय, कुटकी, पटोलपत्र, नीमकी छाल, धमासा, चिरायता, अमलतास, पद्माख और पित्तपापड़ा समान भाग लेकर अधकुटा करके आठगुने पानीमें पकाकर आठवां भाग पानी शेष रहने पर छानकर पिलानेसे पित्त-कफज ज्वर नष्ट होता है।

(२२४७) त्रायमाणाक्वाथः

(वा. भ. । चि. स्था. अ. १४)

द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम्।
अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत् ॥
पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथा बलम्।
तेन निर्मितदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः॥

१० तोले त्रायमाणाको २ सेर पानीमें पकाइये जब पावसेर पानी शेष रह जाय तो छान लीजिए।

प्रथम विरेचनादि द्वारा शरीर शुद्धि करा देनेके पश्चात् इस क्वाथमें समान भाग दूध मिलाकर मन्दोष्ण पिलाकर ऊपरसे यथाशक्ति उष्ण दूध पिलाइये। इसके सेवनसे पैत्तिक गुल्म नष्ट होता है।

(२२४८) त्रायमाणादिक्वाथः [१]

(वृ. नि. र. । शू.)

त्रायमाणकणामूलं त्रिवृता मधुकं शिवा।
गिरिमालाशिवाद्राक्षाकुरण्टपित्तशूलहृत् ॥

त्रायमाणा, पीपलामूल, निसोत, मुलैठी, आमला, अमलतास, हर्र, मुनक्का और पिया वांसेका क्वाथ पीनेसे पित्तज शूल नष्ट होता है।

(२२४९) त्रायमाणादिक्वाथः [२]

(वृ. यो. त. । त. १२३)

त्रायमाणपटोलपर्पटकच्छुराकटुरोहिणी।
पावकेन लघीयसा परिपाच्य साधुशृतं हितम् ॥

हन्ति सर्वविसर्पजालमुपद्रवौघसमायुतम्।
द्वन्द्वजं विषजं च तं पुरसंयुतं गुणवत्तरम्॥

त्रायमाणा, पटोल, पित्तपापड़ा, धमासा और कुटकीको अधकुटा करके रातको पानीमें भिगो दीजिए और प्रातःकाल मन्दाग्निपर पकाकर छानकर रोगीको पिला दीजिए। यह द्वन्द्वज, विषज और अन्य सर्व प्रकारके विसर्पोंको नष्ट करता है। यदि इसमें गूगल मिला लिया जाय, और भी अधिक गुणकारी हो जाता है।

(२२५०) त्रायमाणादिक्वाथः [३]

(च. सं.। चि. अ. ३)

त्रायमाणामृतनिम्बपटोलत्रिफलाशृतम्।
गुरुक्षीरा पिबेदेतत् स्तन्यदोषविशुद्धये॥

यदि बालककी माताका दूध भारी हो तो उसे [माताको] त्रायमाणा, गिलोय, नीमकी छाल, पटोल और हर्र, बहेड़ा तथा आमलेका क्वाथ पिलाना चाहिए।

(२२५१) त्रिकटुकादिगणः

(सु. सं.। सू. अ. ३८)

पिप्पलीमरिचशृङ्गवेराणि त्रिकटुकम्।
त्र्यूषणं कफमेदोघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान्॥
निहन्याद्दीपनं गुल्मपीनसाग्न्यल्पतामपि॥

पीपल, कृष्णमिर्च और सोंठके मिश्रणको त्रिकटु या त्र्यूषण कहते हैं।

त्रिकुटा—कफ, मेद, प्रमेह, कुष्ट, चर्मरोग, गुल्म, पीनस और अग्निमांद्य नाशक तथा अग्निदीपक है।

(२२५२) त्रिकट्वादिक्वाथः [१]

(वृ. नि. र.। वृ.)

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथःसक्षारलवणःपिबेत्।
कफवातप्रकोपघ्नो विरेकात्कफवृद्धिजित्॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा और आमलेके क्वाथमें यवक्षार और सेंधानमक मिलाकर पीनेसे विरेचन होकर कफ और वायुके प्रकोप तथा अण्डवृद्धिका नाश होता है।

(२२५३) त्रिकट्वादिक्वाथः [२]

(वं. से.; यो. र., वृ. नि. र.; वृं. मा.। शिर.)

त्रिकटुपुष्करबीजकरञ्जरास्नातुरङ्गगन्धानाम्[१]।
क्वाथः शिरोर्त्तिजालं नासापीतो निवारयति॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), कमलगट्टे, करञ्जकी गिरी, रास्ना और असगन्धका क्वाथ नासिका द्वारा पीनेसे शिरःशूल नष्ट होता है।

(२२५४) त्रिकट्वादिक्वाथः [३]

(वै. जी.। विलास ४)

त्रिकटुत्रिफलाकलिङ्गनिम्ब
त्रिवृदुग्राखदिरोद्भवःकषायः।
पशुमूत्रसमन्वितो निपीतः
कृमिकोटीरपि हन्ति वेगतोऽयम्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, निसोत, वच और खैरके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर पीनेसे पेटके कृमि शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं।

---

१ त्रिकटुपुष्कररजनीरास्नासुरदारुअगन्धानामिति पाठभेदः।

(२२५५) त्रिकट्वादिक्वाथः [४]

(यो. र.। सन्नि.)

त्रिकटुकलिङ्गकटुकाहरीतकीविभीतकामलकैः।
ध्वंसयति कण्ठकुब्जं वृषरजनीद्वययुतः क्वाथः॥

त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), इन्द्रजौ, कुटकी, हर्र, बहेड़ा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी तथा बांसेका क्वाथ पीनेसे कण्ठकुब्ज सन्निपात नष्ट होता है।

(२२५६) त्रिकण्टकादिक्वाथः

(धन्व., यो. र.; भै. र.; वृं. मा.। मूत्र, वृ. यो. त.। त. १००)

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकास-
दुरालभाःप्रस्तरभेदपथ्याः।
निघ्नन्ति पीडां मधुनाऽश्मरीं च
सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम्॥

गोखरु, अमलतास, दाभ, कास, धमासा, पखानभेद और हर्रके क्वाथमें शहद डालकर पीनेसे पथरी और मृत्युके समीप पहुंचा देने वाले मूत्रकृच्छ्रकी पीड़ा भी नष्ट हो जाती है।

(२२५७) त्रिकण्टकादिक्षीरः

(वृ. नि. र., वृं. मा., वं. से.। ज्व.; शा. सं.। खं. २ अ. २)

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम्।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं कफज्वरहरं पयः॥

गोखरु, खरैंटी, कटैली और सोठ २-२ तोले, पानी १२८ तोले, गायका दूध ३२ तोले। सबको एकत्र मिलाकर पकाइये जब पानी जल जाय तो छान लीजिए। इसमें गुड़ मिलाकर पीनेसे मूत्रावरोध, कब्ज़ और कफज्वर नष्ट होता है।

१ वचेति पाठान्तरम्।

(२२५८) त्रिकण्टकादिसिद्धपयः (च. द.। मू.)

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः
सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूलैः।
गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा
रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत्॥

गोखरु, अरण्डमूल और शतावर अथवा तृणपञ्चमूल (कुश, कास, शर, दर्भ और ईखकी जड़) से सिद्ध दूधको गुड़से मीठा करके घी डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

(औषध ५ तोले, दूध ४० तो., पानी १६० तो.। मिलाकर पकाएं। पानी जल कर दूध मात्र शेष रहनेपर उतार लें।)

(२२५९) त्रिकार्षिकादिकषायचतुष्टयः

(ग. नि.। ज्वरा.)

इमं चान्यं प्रवक्ष्यामि समासेन यथा क्रमम्।
सर्वज्वरहरं श्रेष्ठं कषायममृतोपमम्॥
त्रिकर्षं पञ्चकर्षं वा सप्तकर्षमथापि वा।
एवं सशमनार्थं तु देय स्यान्नवकार्षिकम्॥
त्रिकार्षिकं पटोलन्तु मधुकं भद्ररोहिणी।
एतदेव समुस्तं स्यात्साभयं पञ्चकार्षिकम्॥
सनिम्बपत्रं सोशीरं विज्ञेयं सप्तकार्षिकम्।
त्वक्चात्र सप्तपर्णस्य फलान्यारग्वधस्य च॥
सन्निपातप्रशमनं विज्ञेयं नवकार्षिकम्।
एतदेव कषायन्तु सर्पिषा सह योजितम्॥
वातपित्तसमुत्थस्य ज्वरस्य त्वमृतोपमम्।

सुखोष्णलवणं दद्याद्वातश्लेष्मोद्भवे ज्वरे ॥
शर्करा संयुतं पीतं पित्तज्वरविनाशनम्।
क्षौद्रेण सह संयुक्तं श्लेष्मज्वरहरं परम् ॥
गोमूत्रेण समायुक्तं सन्निपातज्वरापहम् ॥

निम्न लिखित त्रिकार्षिक, पञ्चकार्षिक, सप्तकार्षिक या नव कार्षिक कषाय समस्त प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेके लिए अमृतके समान गुणकारी है।

१—पटोलपत्र, मुलैठी और कुटकी। तीनो चीजें १-१ कर्ष लेकर क्वाथ बनावें। इसका नाम "त्रिकार्षिक क्वाथ" है।

२—इसी क्वाथमें १-१ कर्ष मोथा और हर्र भी मिला लिया जाय तो इसका नाम "पञ्चकार्षिक" हो जाता है।

३—पञ्चकार्षिक क्वाथमें नीमके पत्ते और खस मिलानेसे "सप्तकार्षिक" हो जाता है।

४—सप्त कार्षिकमें सप्तपर्ण (सतौने) की छाल और अमलतासके फलका गूदा (गर्भ) मिलानेसे वह "नवकार्षिक" क्वाथ कहलाता है। यह क्वाथ सन्निपातके लिए विशेष उपयोगी है।

उपरोक्त क्वाथोमें घी डालकर पिलानेसे वह वातपित्त ज्वरमें अमृतके समान लाभ पहुंचाते हैं।

इन्हे वातकफ ज्वरमें जरासा सेंधा लवण मिलाकर (कुछ गर्म) पिलाना चाहिए। पित्तज्वरमें मिश्री मिलाकर, कफज ज्वरमें शहद मिलाकर और सन्निपात ज्वरमें गोमूत्र मिलाकर सेवन कराना चाहिए।

(२२६०) त्रिफला (सु. सं.। सू. स्था. ३८)

हरीतक्यामलकविभीतकानि त्रिफला ॥
त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशिनी।
चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशिनी ॥

हर्र, बहेड़ा और आमला मिलकर "त्रिफला" कहलता है।

त्रिफला—कफ, पित्त, प्रमेह, कुष्ठ और विषम ज्वरनाशक तथा नेत्रोंके लिए हितकारी और दीपन है।

(२२६१) त्रिफलाकल्कः

(वृ. नि. र.; यो. र.। मूत्रकृ.)

त्रिफलायाःसुपिष्टायाःकल्कं कोलसमन्वितम्।
वारिणा लवणीकृत्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥

त्रिफला और बेरको पानीमें कल्क (पिट्ठी) की भांति पीसकर उसे सेंधा नमकसे नमकीन करके पानीके साथ पीनेसे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

(२२६२) त्रिफलाकषायः (यो.र.; वं.से.।नेत्र)

त्रिफलायाःकषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित्।
कवलान्मुखरोगघ्नःपानतःकामलापहः ॥

त्रिफलाके कषायसे आंखे धोनेसे नेत्ररोग, कुल्ले करनेसे मुखरोग और पीनेसे कामला रोग नष्ट होता है।

(२२६३) त्रिफलाक्वाथः [१] (वं.से.।नेत्र.)

पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः षट् धात्र्यो द्वादशैव तु।
प्रस्थार्द्धे सलिले क्वाथ्यमष्टभागावशेषितम् ॥
पित्ताभिष्यन्दमास्रावं रोगं वा तिमिरं जयेत्।
सरम्भदाहशूलासृङ्नाशनं दृक्प्रसादनम् ॥

हर्र ३ नग, बहेडे ६ नग और आमले १२ नग लेकर उनकी गुठली निकालकर, अधकुटा

करके आधा सेर पानीमें पकाकर आठवां भाग शेष रहने पर छानकर पीनेसे पित्ताभिष्यन्द (गर्मीसे आंख दुखना), आंखोंसे पानी बहना, तिमिर, सूजन, दाह और शूल शान्त होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते है।

(२२६४) त्रिफलाक्वाथः[२] (वं.से.।विसर्प.)

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थंवीसर्पज्वरशान्तये ॥

विसर्पजन्य ज्वरमें विरेचन करानेके लिए त्रिफलाके क्वाथमें निसोतका चूर्ण और घी मिलाकर पिलाना चाहिए।

(२२६५) त्रिफलाक्वाथः[३] (ग.नि.।नेत्र.)

कल्कःक्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम्।
मधुना हविषा वाऽपि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥
त्रैफलेनाथ हविषा लिहानस्त्रिफलां निशि।
यष्टीमधुकसंयुक्तां मधुना च परिप्लुताम् ॥

त्रिफलेका कल्क, क्वाथ अथवा चूर्ण शहद या घीमें मिलाकर सेवन करनेसे समस्त तिमिर रोग नष्ट होते हैं।

रात्रिके समय त्रिफला और मुलैठीके चूर्णको त्रिफलाघृत और शहदमें मिलाकर चाटनेसे तिमिर रोग नष्ट होता है।

(२२६६) त्रिफलाक्वाथः[४] (वृं.मा.।ज्व.)

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः।

त्रिफलेके क्वाथको गुड़से मीठा करके पीनेसे विषमज्वर नष्ट होता है।

(२२६७) त्रिफलाक्वाथः [५]

(वृं. मा.। उप.; वृ. नि. र.)

त्रिफलायाःकषायेण भृङ्गराजरसेन वा।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥

त्रिफलाके क्वाथ या भंगरेके रससे उपदंश (आतशक)के घावोको धोनेसे वह नष्ट हो जाते हैं।

(२२६८) त्रिफलादिकल्कः

(वा. भ.। चि. स्था. अ. १२)

त्रिफलाव्योषपत्रैलात्वक्क्षीरीचित्रकत्वचाम्।
विडङ्गं पिप्पलीम् लोमशं वृषकं वचाम् ॥
ऋद्धिं लाङ्गलिकं चव्यं समभागानि पेषयेत्।
कल्कैर्लिह्यायसीं पात्रीं मध्याह्ने भक्षयेदिदम् ॥
वातास्रे सर्वदोषेऽपि परं शूलान्विते हितम् ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंसलोचन, चीता, दालचीनी, वायविडंग, पीपल, जटामांसी, वासा, वच, ऋद्धि, कलिहारी और चव। समान भाग लेकर पानीमें पीसकर प्रातःकाल लोहेकी कटोरीमें लेप कर दीजिए और दोपहरको (शहदमें मिलाकर) चाट लीजिए।

इसके सेवनसे सर्वदोषज वातरक्त और शूल नष्ट होता है।

(२२६९) त्रिफलादिकषायः [१]

(ग. नि.। ज्वर.)

फलत्रिकमुशीरञ्च पटोलं मधुयष्टिका।
आटरूषःकषायोऽयं पेयःपित्तकफज्वरे ॥

त्रिफला, खस, पटोलपत्र, मुलैठी और वासे [अडूसे] का क्वाथ पित्तकफज ज्वरमें लाभ पहुंचाता है।

(२२७०) त्रिफलादिकषायः [२]

(ग. नि.। ज्वर.)

त्रिफलाव्योषकटुकगुडूचीनिम्बवत्सकान्।
किराततिक्तकं मुस्तं पटोलञ्चैव संहरेत् ॥
सिद्धःकषायःपातव्यो वातश्लेष्मोद्भवे ज्वरे ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, कुटकी, गिलोय, नीमकी छाल, इन्द्रजौ, चिरायता, मोथा, पटोलपत्र। इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातकफज ज्वर नष्ट होता है।

(२२७१) त्रिफलादिकषायः [३]

(ग. नि.। ज्वर.; वृं. मा.; वृ. नि. र.; वं. से.। ज्वर.; वृ. यो. त.। त. ५९)

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाव्याधिघाताटरूषकैः।
एषां क्वाथः सितायुक्तो वातपित्तज्वरापहः॥

त्रिफला, सेंभलकी मूसली (अथवा छाल), रास्ना, अमलतास और बासे (अडूसे) के क्वाथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे वातपित्तज ज्वर नष्ट होता है।

(२२७२) त्रिफलादिकषायः [४]

(ग. नि.; वृं. मा.। प्रमे.)

त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः।
पीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं नृणाम्॥

त्रिफला, अमलतास और मुनक्काके क्वाथमें शहद मिलाकर पीनेसे फेनाख्य प्रमेह (वातज प्रमेह-भेद) अवश्य नष्ट हो जाता है।

(२२७३) त्रिफलादिकषायः [५]

(ग. नि.। ज्वर.)

त्रिफलोशीरभूतीकं निम्बरोहिषमुस्तकम्।
सरलं दारु खदिरं पटोलं विश्वभेषजम्॥
त्वक्सप्तपर्णात्पिप्पल्यःकार्पासास्थि त्वयोरजः।
पक्त्वा तुल्यानि निःस्राव्य स्थापयेन्मृण्मये नवे॥
ततःसंप्रस्नुते हृद्यं स्थितं क्षौद्रयुतं पिबेत्।
हन्याच्च श्लैष्मिकान् रोगान् ज्वरश्च कफसम्भवम्

त्रिफला, खस, अजवायन, नीमकी छाल, रोहिषतृण (मिर्चियागन्ध), मोथा, चीरका बुरादा, देवदारु, खैरसार, पटोलपत्र, सोंठ, सतौने(सप्तपर्ण) की छाल, पीपल, कपासके बीज (बिनौले) और शुद्ध लोह चूर्ण। सब चीज़ें समान भाग लेकर अधकुटी करके मिट्टीके बरतनमें आठ गुने पानीमें पकाइये। जब चौथाई पानी शेष रहे तो उतारकर छान लीजिए। इसमें शहद मिलाकर पीनेसे कफज ज्वर तथा अन्य कफज रोग नष्ट होते है। यह हृदयके लिए भी हितकर है।

(२२७४) त्रिफलादिकषायः [६]

(ग. नि.; वृं. मा। ज्वर.)

त्रिफलापटोलवासाच्छिन्नरुहा-
(तिक्त)रोहिणीषड्ग्रन्थाः।
मधुना श्लेष्मसमुत्थे
दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः॥

कफज ज्वरमें त्रिफला, पटोलपत्र, वासा (अडूसा), गिलोय, कुटकी और बचके क्वाथमें अथवा दशमूल और बासेके क्वाथमें शहद डालकर पीना चाहिए।

(२२७५) त्रिफलादिक्वाथः [१]

(वृं. मा.। शोथा.)

त्रिफलायोरजःक्षारैःशोथजित्त्रिफलारसः।

त्रिफलाके क्वाथमें त्रिफलाका चूर्ण, लोहभस्म और यवक्षार मिलाकर पीनेसे शोथ रोग नष्ट होता है।

(२२७६) त्रिफलादिक्वाथः [२]

(वृ. नि. र.। व्रण.)

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो
व्रणा महान्तःसरुजा सशोथाः।

प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन
पीतेन शान्ति त्रिफलाजलेन ॥

त्रिफलाके क्वाथमें गूगल मिलाकर पीनेसे क्लेद, पाक, स्राव, दुर्गन्ध, शोथ और पीड़ायुक्त भयङ्कर घाव भी नष्ट हो जाते हैं।

(२२७७) त्रिफलादिक्काथः [३]

(आ. वे. वि.। चि. अ. ४०)

त्रिफला कटुका भीरु पटोलामृतपर्पटः।
क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तू रोगं दुष्टसूतोद्भवम् ॥

त्रिफला, कुटकी, शतावर, पटोलपत्र, गिलोय और पित्तपापड़ेका क्वाथ पीनेसे अशुद्ध पारद खानेसे उत्पन्न विकार नष्ट होते हैं।

(२२७८) त्रिफलादिक्वाथः [४]

(वृ. नि. र.; यो. र.। शोथ.)

त्रिफलाक्काथपानं हि महिषीसर्पिषा सह।
हन्ति शोथं प्रमेहञ्च नाडीव्रणभगन्दरम् ॥

त्रिफलाके क्वाथमें भैंसका घृत मिलाकर पीनेसे शोथ, प्रमेह, नाडीव्रण [नासूर] और भगन्दर नष्ट होता है।

(२२७९) त्रिफलादिक्वाथः [५]

(ग. नि.। अम्ल.; वृं. मा.। अ.पि.)

फलत्रिकं पटोलञ्च तिक्ताक्काथः सितायुतः।
पीतःक्षौद्रयुतो वाऽसौ ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तहा ॥

त्रिफला, पटोलपत्र और कुटकीके क्वाथमें मिश्री, शहद और मुलैठीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे ज्वर, वमन और अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

(२२८०) त्रिफलादिक्वाथः [६]

(शा. सं.। ख. २ अ. २)

त्रिफलादेवदारुश्च मुस्ता मूषककर्णिका।
शिग्रुरेतैःकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च कृमिघ्नःकृमिरोगहा ॥

त्रिफला, देवदारु, मोथा, मूषाकर्णी और सहंजनेकी छालके काथमें पीपल और बायविड़ङ्गका चूर्ण मिलाकर पीनेसे कृमिरोग नष्ट होता है।

(२२८१) त्रिफलादिक्वाथः [७]

(ग. नि.। ज्वर.)

त्रिफलाऽतिविषा मुस्तं क्रमुकं सकलिङ्गकम्।
पटोलारग्वधश्चैव रोहिणी चित्रकं समम् ॥
क्वाथःक्षौद्रयुतः श्लेश्म ज्वरकासगलामये ॥

त्रिफला, अतीस, मोथा, सुपारी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चीतेके क्वाथमें शहद मिलाकर पीनेसे कफज्वर, खांसी और गलरोग नष्ट होते हैं।

(२२८२) त्रिफलादिक्वाथः [८]

(वृं. मा.। प्र.; वृ. नि. र.)

त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा।
गुडूच्याःस्वरसःपीतो मधुना सर्वमेहजित् ॥

त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी और मोथेके क्वाथमें अथवा गिलोयके स्वरसमें शहद मिलाकर पीनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं।

(२२८३) त्रिफलादिक्वाथः [९]

(वृं. मा.। व्रणशो.)

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादिर्बलाकुशाः।
निम्बकोलकपत्राणि कषायःशोधने हितः ॥

त्रिफला, खैरसार, दारुहल्दी, न्यग्रोधादिगण, खरैटी, कुशा, नीम और बेरीके पत्तोका क्वाथ

१ त्रिवृतेति पाठान्तरम्। २ कटुकमिति पाठान्तरम्।

घावोंके शुद्ध करनेके लिए प्रयुक्त करना चाहिये। (इनके क्वाथसे घाव धोने चाहियें।)

(२२८४) त्रिफलादिक्वाथः [१०]

(वा. भ.। चि. अ. अ. १)

त्रिफला पिचुमन्दत्वङ्मधुकं बृहतीद्वयम्।
समसूरदलं क्वाथःसघृतो ज्वरकासहा॥

त्रिफला, नीमकी छाल, मुलैठी, कटेली, कटेला और मसूरके क्वाथमें घी मिलाकर पीनेसे कास और ज्वर नष्ट होता है।

(नोट—यह क्वाथ जीर्णज्वर और वातज कासमें हितकर है। कफज कास अथवा नवीन ज्वरमें नहीं देना चाहिये।)

(२२८५) त्रिफलादिक्वाथः [११]

(वृं. मा.। मुख.)

क्वथिता त्रिफला पाठा मृद्वीका जातिपल्लवाः।
निषेव्या भक्षणीया वा त्रिफला मुखपाकहा॥

त्रिफला, पाठा, मुनक्का और चमेलीके पत्तों का क्वाथ पिलाने अथवा शहदके साथ त्रिफला चूर्ण चटानेसे मुखपाक नष्ट होता है।

(२२८६) त्रिफलादिक्वाथः [१२]

(वै.जी.।वि.३; भा.प्र.।पां.; शा.सं.।खं.२अ.२)

त्रिफलावृषभूनिम्बनिम्बतिक्तामृताकृतः।
क्वाथो मधुयुतःपीतः कामलापाण्डुरोगजित्॥

त्रिफला, बासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और गिलोयके क्वाथमें शहद मिलाकर पीनेसे कामला तथा पाण्डुरोग नष्ट होता है।

(२२८७) त्रिफलादिक्वाथः [१३]

(ग. नि.। कु., च. सं.। चि. अ. ७ कु.)

त्रिफलापटोलपिचुमन्दवचा-
रुणयष्टिकाः सकटुका रजनी।
नवभिशृतं प्रपिबतःसलिलं
न भवन्ति पित्तकफकुष्ठरुजः॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, पटोलपत्र, नीमकी छाल, बच, मजीठ, कुटकी और हल्दी। इन नौ वस्तुओं का क्वाथ पीनेसे पित्तकफज कुष्ठका नाश होता है।

(२२८८) त्रिफलादिक्वाथः [१४]

(यो. र। बहुमू.)

त्रिफलावेणुपत्राब्दपाठामधुयुतैः कृतः।
कुम्भयोनिरिवाम्भोधिं बहुमूत्रन्तु शोषयेत्॥

त्रिफला, बांसके पत्ते, मोथा और पाठाका मधुमिश्रित क्वाथ बहुमूत्रको इस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार कुम्भज ऋषिने क्षण भरमें समुद्रको सुखा दिया था।

(२२८९) त्रिफलादिक्वाथः [१५]

(वृ. नि. र.; वं. से., यो. र.। शूल.; शा. सं.। ख. २ अ. २)

त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः।
रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः॥

त्रिफला और अमलतासके क्वाथमें खांड और शहद मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, दाह और पित्तज शूल नष्ट होता है।

(२२९०) त्रिफलादिक्वाथः [१६]

(यो. र.। ने.)

अयःस्थं त्रिफलाक्वाथं सर्पिषा सह योजितम्।
भुक्तोपरि पिबेत्सायं मासेनान्धोऽपि पश्यति॥

प्रातःकाल त्रिफलेके क्वाथमें घी डालकर लोहे के वर्तनमें भरकर रख दीजिए और उसे सायङ्काल के भोजनके पश्चात् पीजिए। इस प्रकार १ मास तक त्रिफला क्वाथ सेवन करनेसे अन्धेको भी दीखने लगता है।

(२२९१) त्रिफलादिक्वाथः [१७]

(च. सं. । चि. अ. ३ ज्व.; वं. से. । ज्व.)

त्रिफलां त्रायमाणाञ्च मृद्वीकां कटुरोहिणीम् ।
पित्तश्लेष्माहरस्त्वेष कषायो ह्यानुलोमिकः ॥

त्रिफला, त्रायमाणा, मुनक्का और कुटकीका क्वाथ पीनेसे पित्तकफज ज्वर नष्ट होता और वायु अनुलोम होता है।

(२२९२) त्रिफलादिक्वाथः [१८]

(वृ. नि. र. । शूल.)

त्रिफलारिष्टयष्ट्याह्वाकटुकारग्वधैः शृतम् ।
पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥

दाह और शूलकी शान्तिके लिए त्रिफला, नीमकी छाल, मुलैठी, कुटकी और अमलतासके क्वाथमें शहद डालकर पिलाना चाहिए।

(२२९३) त्रिफलादिक्वाथः [१९]

(च. सं.। चि. स्था. कामला.; च. द.। काम.)

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसम्।
शीतं मधुयुतं प्रातः कामलार्त्तःपिबेन्नरः ॥

कामला रोगकी शान्तिके लिए प्रातःकाल त्रिफला, या गिलोय, या दारुहल्दी अथवा नीमकी छालके शीतकषायमें शहद डालकर पीना चाहिए।

(२ तोले औषधको कूटकर रातको १०तोले पानीमें भिगो दें। प्रातःकाल मल छानकर १॥ तोला शहद डालकर पिएं।

(२२९४) त्रिफलादिक्वाथः [२०]

(वृ. नि. र. । मूत्राघा.)

वराम्बुलवणश्चैव ससूतं यः पिबेन्नरः ।
तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥

त्रिफलाके काथमें सेंधानमक मिलाकर उसके साथ रस सिन्दूर सेवन करनेसे १३ प्रकारके मूत्राघात अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

(२२९५) त्रिफलादिक्वाथः [२१]

(र. र.। अ. १२ प्रेम.; वं. से. प्र.)

त्रिफला मुस्तकं दारुहरिद्रा देवदारु च ।
तत्क्वाथं मतिमान्मेहान्वहुपत्ररजं जयेत् ॥

त्रिफला, मोथा, दारुहल्दी और देवदारुके क्वाथके साथ अभ्रकभस्म सेवन करनेसे प्रमेह नष्ट होता है।

(२२९६) त्रिफलादिपाचनकषायः

(ग. नि. । कुष्ठ)

त्रिफला खदिरं काष्ठं निम्बत्वक् च जले शृतम् ।
कुष्ठेषु पाचनं दद्यात्सर्वदोषोद्भवेष्वपि ॥

पृथक् पृथक् दोषोंसे तथा सर्व दोषोंसे उत्पन्न कुष्ठमें त्रिफला, खैरसार और नीमकी छालका क्वाथ पिलाकर दोषोंको पचाना चाहिए।

(२२९७) त्रिफलादिविरेचनम् [१]

(वृं. मा.। शीतपि.; वृ. नि. र.)

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते।
त्रिफलां क्षौद्रसहितां पिबेद्वा नवकार्षिकम् ॥

शीतपित्त रोगमें त्रिफलेके क्वाथमें गूगल और पीपलका चूर्ण मिलाकर उससे विरेचन कराना चाहिए अथवा शहदके साथ त्रिफला चूर्ण चटाना चाहिए, या नवकार्षिक क्वाथ पिलाना चाहिए।

(२२९८) त्रिफलादिविरेचनम् [२]
(वं. से. । नेत्र.)

त्रिफलादशमूलानां निर्यूहं दुग्धमिश्रितम् ।
गन्धर्वतैलसंयुक्तं प्रयुञ्जीत विरेचनम् ॥

त्रिफला और दशमूलके क्वाथमें समान भाग दूध और ४—५ तोले अरण्डका तैल (काष्ट्रालय) मिलाकर पिलानेसे विरेचन होकर वातज तिमिर रोग नष्ट होता है।

(२२९९) त्रिफलायोगः (ग. नि.। ग्रन्थ्य.)

सकाञ्चनारात्रिफलाजले शृता
प्रशस्यते मागधिकावचूर्णिता।
सगण्डमालागलगण्डरोगिणां
फलत्रिकाढ्यं यवमुद्गभोजनम् ॥

त्रिफला और कचनारकी छालके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाने और त्रिफला चूर्ण मिलाकर मूंगकी दाल तथा जौंकी रोटी खिलानेसे गण्डमाला और गलगण्ड रोग नष्ट होता है।

(२३००) त्रिफले (भै. र. । परि.)

पथ्या विभीतकं धात्री महती त्रिफला मता।
स्वल्पा काश्मर्यखर्जूरपरूषकफलैर्भवेत् ॥

हर्र, बहेड़ा और आमलेके मिश्रणको "बृहत् त्रिफला" और खम्भारी, खजूर तथा फालसेके फलोंके मिश्रणको "लघुत्रिफला" कहते हैं।

(२३०१) त्रिवृतादिक्काथः [१]
(वृं. मा. शो.; वृ. नि. र.)

क्षीराशिनःपित्तकृते तु शोथे
त्रिवृद्गुडूचीत्रिफलाकषायम् ।
पिबेद्गवां मूत्रविमिश्रितं वा
फलत्रिकचूर्णमथाक्षमात्रम् ॥

पित्तज शोथमें निसोत, गिलोय और त्रिफला का क्वाथ अथवा गोमूत्रके साथ १। तोलाकी मात्रानुसार त्रिफलाका चूर्ण पिलाना चाहिए।

(२३०२) त्रिवृतादिक्काथः [२]
(वं. से.। ग. नि., वृं. मा., वृ. नि. र.; र. र.; च. द.। ज्वर., हा. सं.। स्था. ३ अ. २)

त्रिवृद्विशालाकटुकात्रिफलारग्वधैःशृतः ।
सक्षारो भेदनःक्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः॥

निसोत, इन्द्रायण, कुटकी, त्रिफला और अमलतासके क्वाथमें यवक्षार मिलाकर पीनेसे विरेचन होकर समस्त ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

(२३०३) त्र्यूषणादिक्काथः [१]
(वृं. मा. । वृद्धच.; वं. से.)

त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं देवदारु फलत्रिकम् ।
कषायं पाययेद्ध्येष सक्षारलवणात्रिकम् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), पीपलामूल, देवदारु, हर्र, बहेड़ा और आमला, समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर उसमें यवक्षार, सेंधानमक, सामुद्रनमक और कालानमक मिलाकर पीनेसे वातकफज अण्डवृद्धि नष्ट होती है।

(यवक्षार २ माशे और तीनो नमक मिलाकर १ माशा लेने चाहियें।)

(२३०४) त्र्यूषणादिक्काथः [२]
(वृ. नि. र. । ज्वर., वं. से.)

त्र्यूषणःदशमूलशुण्ठीभार्गीछिन्नोद्भवः क्वाथः।
पीतःशमयति सहसा ज्वरमुग्रं सन्निपाताख्यम्॥

त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय का क्वाथ पीनेसे भयङ्कर सन्निपात ज्वर नष्ट होता है।

॥ इति तकारादि कषायप्रकरणम् ॥

१ संस्कारे इति पाठान्तरम् ।

अथ तकारादि चूर्णप्रकरणम् ।

(२३०५) तवराजादिचूर्णम् (वृ.नि.र.।क्षय.)

तवराजकणाद्राक्षा खर्जूरं मधुकं त्रुटी ।
लवङ्गं पत्रकञ्चैव नागकेसर नामतः ॥
मधुना भक्षितं हन्ति चूर्णमेषां हि निश्चितम् ।
भ्रमं दाहं शिरःपीडां क्षयरोगं न संशयः ॥

यवासशर्करा (जवासेकी खांड-शीरखिस्त), पीपल, मुनक्का, खजूर, मुलैठी, सफेद या हरी इलायची, लौंग, तेजपात और नागकेसर समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे शहदके साथ सेवन करनेसे भ्रम, दाह, शिरपीडा और क्षय रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

(मात्रा=३ माशे प्रातः, ३ माशे सायम् ।)

ताप्यादिचूर्णम्
ताम्रादिचूर्णम् } रसप्रकरणमें देखिए।

(२३०६) तालकन्दादियोगः (यो.र।मूत्र.)

तालकन्दश्च खर्जूरं मधुकश्च विदारिकाम् ।
सितामधुयुतां खादेन्मूत्रातीसारनाशनम् ॥

तालवृक्षकी जड़, खजूर, मुलैठी, विदारीकन्द और मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण करके शहदके साथ सेवन करनेसे मूत्रातिसार नष्ट होता है।

(मात्रा=प्रातः सायं ३-३ माशे ।)

(२३०७) तालपत्रक्षारः (वृ.नि.र.। मेदो.)

क्षारं वा तालपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिबेन्नरः ।
मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥

तालपत्रके (ताड़के पत्तोंके) क्षारको समान भाग हींगमें मिलाकर चावलोके मांडके साथ सेवन करनेसे मेदोवृद्धि रोग नष्ट होता है।

(२३०८) तालीसगैरिकयोगः

(यो. त. । त. ७५)

तालीशगैरिके पीते विडालपदमात्रके ।
शीताम्बुना चतुर्थेऽह्नि वन्ध्या नारी प्रजायते ॥

तालीसपत्र और गेरुका समान भाग चूर्ण मिलाकर १। तोलेकी मात्रानुसार ठण्डे पानीके साथ मासिक धर्मके चौथे दिन पीनेसे स्त्री वन्ध्या हो जाती है।

(२३०९) तालीसचूर्णम्

(वृं. मा.। रक्त.पि.; हा. सं.। स्था. ३ अ. १०)

तालीशचूर्णयुक्तःपेयःक्षौद्रेण वासकस्वरसः ।
कफपित्तकासतमकश्वासस्वरभेदरक्तपित्तहरः॥

तालीसपत्रके चूर्णमें बांसेका स्वरस और शहद मिलाकर पीनेसे कफपित्तज खांसी, तमक-श्वास, स्वरभेद और रक्तपित्त नष्ट होता है।

(२३१०) तालीसादिचूर्णम् [१]

(वृ. नि. र., यो. र.। ज्वर., शा. सं.। ख. २ अ. ६; यो. त. । त. २७)

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचना ।
एकद्वित्रिचतुः पञ्च कर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥
एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमाहरेत् ।
द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥
तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् ।
कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥
शोफाध्मानहरं प्लीहग्रहणीपाण्डुरोगजित् ।
पक्त्वा वा शर्करा चूर्णं क्षिपेत्सा गुटिका मता ॥

तालीसपत्र १। तोला, काली मिर्च २॥ तोले,

सोंठ ३॥। तोले, पीपल ५ तोले, बंसलोचन ६। तोले, इलायची ७॥ माशे, दालचीनी ७॥ माशे और मिश्री ४० तोले लेकर यथाविधि चूर्ण बना लीजिए अथवा मिश्रीकी चाशनी करके उसमें समस्त ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

यह 'तालीसादि चूर्ण' रुचिवर्धक, पाचक, तथा खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोथ, अफारा, संग्रहणी, तिल्ली और पाण्डुरोग नाशक है।

(मात्रा=२–३ माशे। प्रातः सायं शहदके साथ चाटें।)

(२३११) तालीसादिचूर्णम् [२]

(यो. त.। त. २२; यो. र.)

तालीसोग्रातुगाषडूषणनिशाबिल्वाजमोदासठी।
चातुर्जातलवङ्गधातुकिविषाजातीफलं दीप्यकम्॥
पाठा मोचरसालपञ्चलवणाजाजीद्वयं वेल्लकम्।
वृक्षाम्लाम्लवरापलाशतरुजं मांस्यम्बुदं बालकम्॥
ऐन्द्री ब्रह्मसुवर्चला दृढपदी कुष्ठं समस्तं समम्।
वल्या सर्वसमा जयाखिलसमा मत्स्यण्डिका-
वा सिता॥
चूर्णोयं ग्रहणीक्षयादिकसनश्वासारुचिप्लीहरुक्।
दुर्नामातिसृतिज्वरार्तिपवनस्थौल्यप्रमेहप्रणुत्॥
तीव्रापस्मृतिपाण्डुगुल्मजठरश्लेष्मोत्थपित्तोद्भवो-
न्माद्ध्वंसविधायको विजयते सर्वामयध्वंसकः॥
बालानां च विशेषहितकरो सुस्पष्टवाणीप्रदः।
पुष्ट्यायुर्बलकान्तिधीस्मृतिमहामेधाविलासप्रदः॥

तालीसपत्र, बच, बंसलोचन, पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ, मिर्च, हल्दी, बेलगिरी, अजमोद, कचूर, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची, लौंग, धायके फूल, अतीस, जायफल, अजवायन, पाठा, मोचरस, शिलारस, पांचोनमक, सफेद जीरा, काला जीरा, बायविड़ंग, तितड़ीक, चूक, त्रिफला, पलाशका क्षार, जटामांसी, नागरमोथा, सुगन्धबाला, इन्द्रायनकी जड़, हुलहुल, भूई आमला और कूठ। १–१ भाग, असगन्ध ४६ भाग, भांग ९२ भाग और मिश्री १८४ भाग लेकर यथाविधि चूर्ण बना लीजिए।

इसके सेवनसे ग्रहणी, खांसी, क्षय, श्वास, अरुचि, तिल्ली, बवासीर, अतिसार, ज्वर, वायु, स्थूलता, प्रमेह, अपस्मार (मिर्गी), पाण्डु, गुल्म, उदरविकार, कफज और पित्तज उन्माद इत्यादि सैकड़ो रोग नष्ट होते और आयु, बल, पुष्टि, कान्ति, मेधा और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है।

यह बालकोके लिए विशेष हितकारी और उनके स्वरको स्पष्ट करनेवाला है।

(मात्रा=१॥ माशा)

(२३१२) तालीसाद्यचूर्णम् (वं.से.। राजय.)

तालीसमरिचनागरपिप्पलीतन्मूलत्रुटिफलत्वचः
जातिफलमृणालं त्वक्क्षीरीमुस्ततुल्यांशम्॥
चूर्णत्रिगुणसितोपलमेतद्रुच्यं प्रदीपनं हृद्यम्।
ज्वररक्तपित्तकासश्वासक्षयगुल्मशूलघ्नम्॥
कृम्यतिसारग्रहणीहृद्रोगामूढमारुतं दाहम्।
करचरणादिपु शमयति पाण्डुगदं कण्ठरोगश्च॥

तालीसपत्र, मिर्च, सोठ, पीपल, पीपलामूल, सफेद इलायची, दालचीनी, जायफल, कमलनाल, बंसलोचन और मोथेका चूर्ण १–१ भाग तथा मिश्रीका चूर्ण ३२ भाग लेकर सबको एकत्र मिला लीजिए।

यह चूर्ण रुचिवर्द्धक, अग्निदीपक, हृदयके लिए हितकारी और ज्वर, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, क्षय, गुल्म, शूल, कृमि, अतिसार, ग्रहणी, हृद्रोग, मूढवात, हाथपैरोंकी दाह, पाण्डु तथा कण्ठ रोगो को नष्ट करनेवाला है।

(मात्रा=६ माशे। शहदमें मिलाकर प्रातः सायं चाटें।)

(२३१३) तिक्तकं चूर्णम् (ग. नि.। चूर्णा.)

मुस्तं त्रिकटुकं पाठां त्वग्बीजं वत्सकस्य च।
निम्बं पटोलं कटुकां हरिद्रां धन्वयासकम् ॥
जातीप्रवालं भूनिम्बं मधुकं सरसाञ्जनम्।
त्रायमाणां गुडूचीं च त्रिफलां चेति चूर्णयेत् ॥
चूर्णोऽयं तिक्तको नाम कवलःप्रतिसारिणम्।
दन्तमूलास्यगलजान्रोगानाशु व्यपोहति ॥

मोथा, त्रिकुटा, पाठा, दालचीनी, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, हल्दी, धमासा, चमेलीकी कोपल, चिरायता, मुलैठी, रसौत, त्रायमाणा, गिलोय और त्रिफला समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इस चूर्णका मञ्जन करनेसे मसूढे, मुख और गलेके समस्त रोग शीघ्र नष्ट होते हैं।

(२३१४) तिक्ताख्यं चूर्णम्

(वं. से.। हृद्रो. ग. नि.। परि. चूर्णा.)

मुस्तैलाचन्दनोशीरजीवनीव्योपचित्रकाः।
बिल्वत्वक्कटुकादारुदार्वीत्वक्पर्पटत्वचः ॥
पटोलं निम्बपड्ग्रन्थाऋद्धिभूनिम्बशिग्रुकाः।
चूर्णं त्रायन्ती सौराष्ट्री केशरातिविषाःसमाः॥
तिक्ताख्यं हन्ति हृद्रोगं शूलहृत् सन्निपातजित् ॥

मोथा, इलायची, सफेद चन्दन, खस, काकोली, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), चीता, बेलकी छाल, कुटकी, देवदारु, दारुहल्दीकी छाल, पित्तपापडा, पटोल, दालचीनी, नीमकी छाल, वच, ऋद्धि, चिरायता, सहंजना, त्रायमाणा, सौराष्ट्री, नागकेसर और अतीस। सब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।

इसके सेवनसे हृद्रोग, शूल और सन्निपात नष्ट होता है।

(२३१५) तिक्ताचूर्णम् (वं. से. वै. र.। ज्व.)

सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा।
पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥

१। तोला कुटकीके चूर्ण और खांडको एकत्र मिलाकर गर्म पानीसे खानेसे कफपित्तज ज्वर नष्ट होता है।

(२३१६) तिलवाकुच्योर्योगः (ग.नि.।कु.)

तिलैःसमां वाकुचिकां हिताशी
संवत्सरं यो नियमेन खादेत्।
तस्य प्रणश्येत्प्रबलं हि कुष्ठं
मेधादयश्चापि भवन्ति भावाः ॥

१ वर्ष तक पथ्य पालनपूर्वक तिल और बावचीका समान भाग मिश्रित चूर्ण नित्य प्रति नियमपूर्वक यथोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे भयङ्कर कुष्ट नष्ट होकर बुद्धि और स्मरणशक्ति आदिकी वृद्धि होती है।

---

१ ग. नि में ऐसा पाठ है—
मुस्तैलाचन्दनोशीरं यवानी व्योपवत्सकौ।
फलं त्वक् कटुका दारु दार्वीत्वक्पर्पटस्तथा॥
पटोलपत्रं षड्ग्रन्था मूर्वा भूनिम्बशिग्रुका।
त्रायमाणा च सौराष्ट्री सुरा प्रतिविषासमा।
तिक्तकं नाम हृद्गुल्मशूलघ्नं सन्निपातनुत् ॥

(२३१७) तिलमूलादिचूर्णम्

(यो. र.; वृ. नि. र.। गुल्म.)

तिलमूलश्च शिग्रुश्च ब्रह्मदण्डीयमूलकम्।
मधुयष्टीत्रिकटुकैर्युतं चूर्णमुपासते ॥
पुष्परोधे वातगुल्मे स्त्रीणां सद्यःसुखावहम् ॥

तिलकी जड़, सहंजनेकी जडकी छाल, ब्रह्मदण्डीकी जड़, मुलैठी और त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) के चूर्णको सेवन करनेसे पुष्परोध (मासिक धर्म न होना) और वातज गुल्म नष्ट होता है।

(मात्रा=३ माशे। अनुपान=तिलका क्वाथ या गर्म पानी।)

(२३१८) तिलसप्तकचूर्णम् (यो. स.। स.४)

तिलाग्निकव्योषविडङ्गपथ्या
चूर्णं गुडेनाथ जयेत्समस्तान्।
दुर्नामकान्पाण्डुगदान् कृमींश्च
कासाग्निसादज्वरगुल्मरोगान् ॥

तिल, चीता, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), बायबिड़ंग और हर्रके चूर्णको गुड़के साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी बवासीर, पाण्डु, कृमि, खांसी, अग्निमांद्य, ज्वर और गुल्मरोग नष्ट होता है।

(चूर्णकी मात्रा=६ माशे, गुड ६ माशे। गरम पानीसे प्रातःसायं खाएं)

(२३१९) तिलादिक्षारः (वं. से.। उदर.)

तिलैरण्डद्रुमस्तस्य क्षारो भल्लातकं कणा।
एषां भागं समं कृत्वा तत्तुल्यन्तु गुडं मतम् ॥
खादेदग्निबलं मत्वा पावकस्य विवृद्धये।
जयेत्प्लीहानमत्युग्रं यकृद्गुल्मं तथैव च ॥

तिल और अरण्डका क्षार, शुद्ध भिलावा और पीपल समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए। इसे समान भाग गुड़में मिलाकर यथोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे अत्यन्त प्रवृद्ध प्लीहा [तिल्ली], यकृत् (जिगर) और गुल्मका नाश होता तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

(मात्रा=१॥ माशा। गर्म पानीसे खाएं)

(२३२०) तिलादिक्षारयोगः [१]

(यो. र., ग. नि.। अश्म.)

क्षारोनिपीतस्तिलनालजातः
समाक्षिकक्षीरयुतस्त्रिरात्रम्।
हन्त्यश्मरीं सिन्धुविमिश्रितं वा
निपीयमानं रुचकं प्रयत्नात् ॥

तिलनालका क्षार शहदमें मिलाकर ३ दिन तक दूधके साथ सेवन करनेसे अश्मरी (पथरी) नष्ट हो जाती है। अथवा मूलीके बीजोंके क्वाथमें सेंधानमक मिलाकर पीनेसे भी पथरी नष्ट हो जाती है।

(२३२१) तिलादिक्षारयोगः [२]

(वृं.मा., वृ.नि.र.।अश्मरी, वा.भ. चि. अ.११)

तिलापामार्गकदलीपलाशयवसंभवः।
क्षारःपेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ॥

तिल, अपामार्ग, केला, पलाश और यव। इन सबके क्षार समान भाग एकत्र मिलाकर यथोचित मात्रानुसार भेड़के मूत्रके साथ सेवन करनेसे शर्करा (पेशावके साथ आनेवाली रेत) और अश्मरी (पथरी) नष्ट होती है।

(मात्रा=१-१॥ मापा।)

(२३२२) **तिलादिचूर्णम्** (ग. नि. । राजय.)

तिलमाषाश्वगन्धानां चूर्णमाजघृतान्वितम् ।
लिह्यात्क्षौद्रयुतं प्रातः क्षयव्याधि निबर्हणम् ॥

तिल, उर्द और असगन्धका समान भाग चूर्ण एकत्र मिलाकर बकरीके घी और शहदके साथ प्रातःकाल सेवन करनेसे क्षय रोग नष्ट होता है ।

(मात्रा=१॥ माशेसे ३ माशे तक । घी १ तोला । शहद २ तो.)

(२३२३) **तिलादिप्रयोगः[१]**(यो.स.।स ४)

हैयङ्गवीयेन समं तिलानां
चूर्णं युतं शर्करया निहन्यात्।
अर्शांसि दुष्टान्यपि पित्तजानि
दिनैरनल्पैश्च चिरन्तनानि ॥

काले तिलोका चूर्ण और खांड समान भाग मिलाकर गायके नवनीत (नौनी—मस्का) के साथ साथ चाटनेसे पुरानी, दुष्ट पित्तज ववासीर नष्ट होती है।

(२३२४) **तिलादिप्रयोगः [२]**

(वै. म. र.। प. १; वृं. मा.; च. द.; वं.से.।अर्श.)

तिलभल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशिकम् ।
दुर्नामकासश्वासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहम् ॥

तिल, शुद्ध मिलावा, हर्र और गुड़ समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए। इसे यथोचित (१ तोला तक) मात्रानुसार (गर्म पानीके साथ) सेवन करनेसे ववासीर, खांसी, श्वास, तिल्ली,पाण्डु और ज्वर नष्ट होता है।

१ योगसमुच्चयमें इसी प्रयोगमें शुण्ठि भी लिखी है।

(२३२५) **तिलादिप्रयोगः [३]**

(यो. त.। त. ६२, वं. से.। कु.)

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः ।
वृष्या सप्तसमा मेध्यःकुष्ठहा कामचारिणः ॥

तिल, त्रिफला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), शुद्ध मिलावा और खांड तथा घी और शहद १-१ भाग एवं असगन्ध ७ भाग लेकर चूर्ण योग्य चीजोंका चूर्ण करके सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कुष्ठका नाश होता है तथा मेधाकी वृद्धि होती है।

(२३२६) **तिलाद्यं चूर्णम्** (ग. नि.। चूर्णा.)

तिलकर्कन्धुलाजानां चूर्णं मध्वाज्यलेहितम् ।
क्षीरानुपानं मासेन शोषघ्नं नास्त्यतःपरम् ॥

तिल, बेरकी गुठलीकी गिरी और धानकी खीलोंके समान भाग मिश्रित चूर्णको शहद और घीमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे दूध पीनेसे १मासमें शोष रोग नष्ट हो जाता है। शोषके लिए इससे अच्छी अन्य एक भी औषध नहीं है ।

(मात्रा=२ तोलेसे ३ तोले तक। घी १ तोला। शहद ४ तोले)

नोट—यह चूर्ण वमनके लिए भी अत्युत्तम है।

(२३२७) **तुगाचूर्णम्** (वृ. नि. र.। बा. रो.)

तुगां क्षौद्रैश्च संलिह्याच्छ्वासकासौ शिशोर्जयेत् ॥

बंसलोचनके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंका श्वास और खांसी नष्ट होती हैं।

(२३२८) **तुम्बर्वादिकं चूर्णम्**

(शा. सं.। खं. २ अ. ४; यो. चि.। अ. २; वृ. यो. त.। त. ९४; यो. र.; ग. नि.; वृ. नि. र.। उदर.)

तुम्बरूणि त्रिलवणं यवानी पुष्कराह्वयम् ।

यवक्षाराभया हिङ्गु बिडङ्गानि समानि च ॥
त्रिवृत्त्रिभागा विज्ञेया सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
पिबेदुष्णेन तोयेन यवक्काथेन वा पिबेत् ॥
जयेत्सर्वाणि शूलानि गुल्माध्मानोदराणि च ॥×

कुस्तुम्बरु, सेंधानमक, विडनमक, कालानमक, अजवायन, पोखरमूल, जवाखार, हर्र, हींग (भुना हुवा) और बायबिड़ंग। इन सबका चूर्ण १-१ भाग और निसोतका चूर्ण ३ भाग लेकर एकत्र मिला लीजिए।

इसे गर्म पानी या जौके क्काथके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके गुल्म, शूल, अफारा और उदरविकार नष्ट होते है।

(मात्रा=३ माशे।)

(२३२९) तुम्बुर्वादिचूर्णम् [१]

(वृ. नि. र.; ग. नि.; वं. से.; वृं. मा.। उदर.; च. सं.। चि. स्था. अ. ९)

तुम्बुरुन्यभयाहिङ्गु पौष्करं लवणत्रयम् ।
पिबेद्यवाम्बुना वातशूलगुल्महरं परम् ॥+

तुम्बुरु (नैपाली धनियां), हर्र, हींग, पोखरमूल, सेंधा नमक, विडलवण और कालानमक। समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए। इसे जौके पानीके साथ सेवन करनेसे वातजशूल और गुल्म नष्ट होता है।

(नोट—पिछला प्रयोग "तुम्बुर्वादिचूर्ण" इसी चरकोक्त प्रयोगका परिवर्द्धित रूप प्रतीत होता है।)

× वृ.यो.त में मिर्च और त्रिकुटा अधिक हैं।
+ इस प्रयोगमें गदनिग्रहमें अम्लवेतस अधिक है।

(२३३०) तुम्बुर्वादिचूर्णम् [२]

(हा. सं. स्था. ३ अ. ७)

तुम्बरु ग्रन्थिकैरण्डव्योषं पथ्याजमोदकम् ।
सक्षारलवणोपेतं चूर्णं शूले कफात्मके ॥

तुम्बुरु (नैपाली धनियां), पीपलामूल, अरण्डमूल, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), हर्र, अजमोद, यवक्षार और सेधानमक समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे (गर्म पानीके साथ) खानेसे कफज शूल नष्ट होता है।

(मात्रा=२-३ माशा।)

(२३३१) तेजोह्वादिदन्तधावनचूर्णम्

(वं. से.। मुख.)

तेजोह्वा मागधीमूलं समङ्गा कटुका घनम् ।
पाठा ज्योतिष्मती लोध्रं दार्विकुष्ठश्च चूर्णयेत् ॥
दन्तानां घर्षणं कण्डूरक्तस्रावरुजापहम् ॥

बच, पीपलामूल, मजीठ, कुटकी, मोथा, पाठा, मालकंगनी, लोध, दारुहल्दी और कूठ समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसका मञ्जन करनेसे मसूढोकी खुजली, रक्तस्राव और पीडा नष्ट होती है।

(२३३२) त्रपुषबीजादियोगः (ग.नि.।मूत्रा.)

त्रपुसैर्वारुबीजानि कुमुदं वृषकं बला।
पुष्करस्य तु बीजानि पिबेद्द्राक्षारसेन तु ॥
एतेन मूत्रकृच्छ्राणि पैत्तिकानीतराणि च।
अश्मरीशर्करा चैव बस्तिशूलश्च शाम्यति ॥

खीरे और फूट (ककड़ी भेद)के बीज, गोखा-

त्पल, वासा, खरैटी और कमलगट्टे समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इस चूर्णको द्राक्षाके रस (ताज़ी द्राक्ष न मिले तो मुनक्काके शीतकषाय) के साथ सेवन करनेसे पैत्तिक तथा अन्य सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शर्करा और वस्तिशूल नष्ट होते हैं।

(मात्रा १—१॥ तोला।)

(२३३३) त्रपुषादियोगः (ग. नि. अर्श.)

त्रपुसैर्वारुबीजानि हरिद्रे दारुसाह्वयम्।
तण्डुलोदकपीतश्च हन्यादर्शो हि पित्तजाम्॥

खीरे और ककड़ीके बीज तथा हल्दी, दारुहल्दी और देवदारके समान भाग मिश्रित चूर्णको चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज बवासीर (अर्श) नष्ट होती है।

(२३३४) त्रपुसीबीजादियोगः [१]
(वं. से.। मूत्र.)

पीतश्च त्रपुसीबीजं सतिलाज्यं पयोन्वितम्॥

खीरेके बीज और तिलके चूर्णको घीमें मिलाकर दूधके साथ पीनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है।

(२३३५) त्रपुसीबीजादियोगः [२]
(यो. र.; वं. से.। अश्म.; वृ. यो. त.। त. १०२)

त्रपुसीबीजं पयसा पीत्वा वा नारिकेरजं कुसुमम्।
दृढमूत्रशर्करावान्भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः॥

खीरेके बीजोंको अथवा नारयलके फूलोंको दूधके साथ पीसकर पीनेसे कुछ दिनमें ही मूत्र शर्करा [पेशावके साथ आनेवाली रेत] नष्ट हो जाती है।

(२३३६) त्रिकटुकादिचूर्णम् (वै.म.र.पट.३)

त्रिकटुकमजमोदा चित्रको हिङ्गु भार्गी।
विडमपि सह चव्यं सैन्धवं यावशूकम्॥
अमृतमिति भिषग्भिः पूजितश्चूर्णराजः।
कफपवनहन्ता शूलहा दीपनश्च॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), अजमोद, चीता, हींग, भारंगी, विडनमक, चव, सेंधा नमक, जवाखार और बछनाग विष। समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसके सेवनसे कफ, वायु और शूल नष्ट होता तथा अग्नि दीप्त होती है।

(मात्रा—१ माशा। अनुपान अदरकका रस और शहद)

(२३३७) त्रिकटुकादिचूर्णप्रयोगः
(वै. जी.। वि. ३)

सयुक्तोगुडसर्पिर्भ्यां चूर्णस्त्रिकटुसम्भवः।
निहन्ति तरसा श्वासं त्रासानिव सतां हरिः॥

सोंठ, मिर्च और पीपलके चूर्णको गुड़ और घीमे मिलाकर सेवन करनेसे श्वास नष्ट होता है।

(२३३८) त्रिकटुकादिप्रयोगः
(वं. से., यो. र.। स्त्री.)

त्रिकटुचातुर्जातककुस्तुम्बरुचूर्णसंयुक्तम्।
खादेद्गुडं पुराणं नित्यं नारी मक्कल्लदलनाय॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर और कुस्तुम्बरुके चूर्णको पुराने गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे मक्कल्ल[२] शूल नष्ट होता है।

---

१ दर्शांसि पाठान्तरम्।

२ प्रसवके पश्चात् भलीभांति रक्तस्राव न होनेसे वायुद्वारा हृदय, शिर और वस्तिमें होनेवाले शूलको "मक्कल शूल" कहते हैं।

(२३३९) त्रिकट्वादिचूर्णम् [१]

(वृ.नि.र., वं.से.; यो.र.।अम्ल., वृ.यो.त.।त.१२२)

त्रिकटुकसकण्टकारिपर्पटवारिकुटजबीजानाम्।
सौराष्ट्रिकापटोलित्रायन्तीदारुमूर्वाणाम्॥
तिक्तामृणालमलयजकलिङ्गकैलाकिराततिक्तानाम्।
सवचातिविषाकेसरदीप्यकमधुशिग्रुबीजानाम्॥
चूर्णं परं घृष्टमिदं पीतं शिशिरेण वारिणा प्रातः।
क्षौद्रेण चाथ लीढं प्रायेणाधोगतं हन्ति॥
अतिविषममम्लपित्तं पथ्यभुजो वासरैः कैश्चित्॥

त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), कटेली, पित्तपापड़ा, सुगन्धबाला, इन्द्रजौ, सौराष्ट्री[1], पटोलपत्र, त्रायमाणा, दारुहल्दी, मूर्वा, कुटकी, कमलनाल, सफेद चन्दन, कुड़ेकी छाल, इलायची, चिरायता, वच, अतीस, केसर, अजवायन, मुलैठी और सहंजनेके बीज। सब चीजोका समान भाग महीन चूर्ण लेकर एकत्र मिला लीजिए।

इसे पथ्यपालन पूर्वक शीतल जलके साथ फांकने या शहदमें मिलाकर चाटनेसे कुछ दिनोमें ही भयङ्कर अम्लपित्त भी नष्ट हो जाता है।

(२३४०) त्रिकट्वादिचूर्णम् [२]

(र. र.। कास.)

कटुत्रयं पाठा देवदारु
रास्ना विडङ्गत्रिफलावृषाणाम्।
चूर्णं समांशं सितया विमिश्रं
कासं जयेद्विष्णुरिवातिपापम्॥

त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), पाठा, देवदारु, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला और बासा। समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए और उस सबके बराबर मिश्री मिलाकर रखिए।

इसके सेवनसे खांसी अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

(मात्रा=६ माशे। अनुपान=शहद।)

(२३४१) त्रिकट्वादिचूर्णम् [३]

(यो. चि.। अ. २)

त्रिकटुकग्रन्थिकं ब्राह्मी रेणुकाऽऽकल्लपुष्करम्।
लवङ्गमश्वगन्धा च किरातं हपुषा सठी॥
रास्ना श्वेता वचा भृङ्गं सर्वमेकत्र चूर्णयेत्।
सन्निपाते महावाते चूर्णमेवं सदाहितम्॥

त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), पीपलामूल, ब्राह्मी, रेणुका, अकरकरा, पोखरमूल, लौङ्ग, असगन्ध, चिरायता, हाऊबेर, कचूर, रास्ना, श्वेतापराजिता (कोयल), बच और भांगरा। सब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रक्खें।

इसके सेवनसे सन्निपात और वातव्याधि नष्ट होती है।

(२३४२) त्रिकट्वादिचूर्णम् [४]

(यो. चि। अ. २)

त्रिकटुत्रिफलाधान्ययवानी शतमूलिका।
वचाभार्गी तथा ब्राह्मी चूर्णं समधुलेहयेत्॥
वाक्पतित्वं च बालानां वाणीवाद्यसमज्वरम्।
तैलं तीक्ष्णं रूक्षमम्लं वातलञ्च विवर्जयेत्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, वहेड़ा, आमला, धनियां, अजवायन, शतावर, वच, भारंगी, और ब्राह्मी समान भाग लेकर चूर्ण वना लीजिए।

इसे शहदके साथ चटानेसे बालकोंका स्वर शुद्ध होता और ज्वर नष्ट होता है।

---

१ एक प्रकारकी सुगन्धित मिट्टी, अभावमें गोपीचन्दन लें।

परहेज—तेल, मिर्च इत्यादि तीक्ष्ण पदार्थ, तथा रूक्ष, अम्ल और वातल पदार्थोंसे परहेज कराएं।

(२३४३) त्रिकण्टकादिचूर्णम् [१]

(वृ. नि. र.; ग. नि., वृं. मा., च. द.; यो. र., वं. से.। अश्म.)

त्रिकण्टकस्य वीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
आविक्षीरेण सप्ताहं पिबेदश्मरिभेदनम् ॥

गोखरुके फलोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे भेड़का दूध पीनेसे १ सप्ताहमें पथरी नष्ट हो जाती है।

(२३४४) त्रिकण्टकादिचूर्णम् [२]

(वं. से.। वाजी., नपुंसका.। त. ३)

त्रिकण्टकात्मगुप्तानां वीजचूर्णसशर्करम् ।
क्षीरेण यःपिबेद्गच्छेद्दशवारं निरन्तरम् ॥

गोखरु और कौंचके वीज वरावर वरावर लेकर चूर्ण वनाएं। इसमें सवके वरावर खांड मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे नित्यप्रति दश वार स्त्री रमणकी शक्ति प्राप्त होती है।

(मात्रा=२ से ६ माशे तक।)

(२३४५) त्रिकण्टकादिप्रयोगः

(यो. स.। समु. ४)

त्रिकण्टवीर्यामुशलीस्वगुप्ता
चूर्णं सिताढ्यं मधुनानु दुग्धम् ।
लीढ्वाप्तवीर्यो विगतक्लमोऽसौ
स्त्रीणां शतं क्रीडति कामकेलौ ॥

गोखरु, शतावर, मूसली और कौंचके वीजो का समान भाग चूर्ण और सवके वरावर मिश्री लेकर एकत्र मिला लीजिए।

इसे शहदमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे दूध पीनेसे, वीर्य और कामशक्तिकी वृद्धि तथा क्लम (विना परिश्रम किए ही थकान रहना) का नाश होता है।

(मात्रा=६ माशे।)

(२३४६) त्रिगन्धम् (शा. सं.। ख. २ अ. ६)

त्रिगन्धमेलात्वक्पत्रैश्चातुर्जातं सकेशरम् ।
त्रिगन्धं स चतुर्जातं रूक्षोष्णं लघुपित्तकृत् ॥
वर्ण्यरुचिकरं तीक्ष्णं पित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥

इलायची, दालचीनी और तेजपातके समूहका नाम 'त्रिगन्ध' है। यदि त्रिगन्धमें नागकेसर भी मिला ली जाय तो उसका नाम 'चातुर्जात' हो जाता है।

त्रिगन्ध और चातुर्जात रूक्ष, उष्ण, तनिक पित्तकारक, वर्ण [शरीरके रंग] को सुधारने वाले, रुचिकारक, तीक्ष्ण और पित्तश्लेष्म नाशक हैं।

(२३४७) त्रिजातकादिचूर्णम्

(वै. मृ.। अलं. २ विषय १३)

त्रिजातकव्योपलवङ्गजीर-
नागाह्वयग्रन्थिकचूर्णमेतत् ।
मधुप्रयुक्तं सहसा निहन्ति
द्विष्टार्थजां छर्दिमपि प्रसक्ताम् ॥

इलायची, दालचीनी, तेजपात, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, जीरा, नागकेसर और पीपलामूलका समान भाग चूर्ण शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे खराव पदार्थोंके देखने या सूंघने आदिसे उत्पन्न उल्टी तुरन्त नष्ट हो जाती है। (मात्रा=२ माशे।)

(२३४८) त्रिजात्यादिचूर्णम् (यो.चि.।चूर्णा.)

त्रिजातिविश्वात्रिफलाविडङ्ग,
द्राक्षानिशायुग्ममरिष्टपत्रम्।
कृष्णा गुडूची मिषिमेषशृङ्गी,
पुरातनाः षष्टिकतन्दुला च॥
एतानि चूर्णानि समानि कृत्वा,
सिता प्रदेया तदनन्तरं समा।
दिनोदये चूर्णमिदं हि खादन्,
कुर्यान्नरं शीतरसापहारी॥
दद्रूणि रक्तं कुपितं च पित्तं,
कुष्ठाम्लपित्तं खसखुर्जिपामा।
विस्फोटकान् मण्डलकान् प्रदोषान्,
अनेकदोषान् प्रशमं प्रयान्ति॥

इलायची, दालचीनी, तेजपात, सोंठ, हर्र, बहेड़ा, आमला, बायबिडङ्ग, मुनक्का, हल्दी, दारुहल्दी, नीमके पत्ते, पीपल, गिलोय, सौंफ, मेढासिंगी और पुराने साठी चावल, समान भाग तथा मिश्री इन सबके बराबर लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इस चूर्णको सेवन करने और शीतल पदार्थों का त्याग करनेसे दाद, रक्तकोप, पित्त, कुष्ठ, अम्लपित्त, खुजली, पामा, विस्फोटक, मण्डल इत्यादि अनेकों रोग नष्ट होते हैं।

(२३४९) त्रिफलाचूर्णम् [१]

(वृ.नि.र.; वृं.मा.; यो.र.। उरु.; वं से.। आ.वा.)

लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम्।
सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः॥

हर्र, बहेडा, आमला और कुटकीके चूर्ण को शहदके साथ चाटनेसे अथवा "षडधरण" चूर्णको मन्दोष्ण पानीके साथ पीनेसे उरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है।

(२३५०) त्रिफलाचूर्णम् [२] (यो.चि.।चूर्णा.)

त्रिफला त्रपुषीवीजं सैन्धवन्तु शिलाजतु।
बद्धमूत्रे हितं चूर्णं नात्र कार्या विचारणा॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, खीरेके बीज, सेंधानमक और शिलाजीत समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसके सेवनसे बद्धमूत्र खुल जाता है।

(२३५१) त्रिफलादिक्षारः

(च. सं.। चि. स्था. अ. १९, ग. नि.। ग्रह.)

त्रिफलां कटभीं चव्यं बिल्वमध्यमयोरजः।
रोहिणीं कटुकां मुस्तं कुष्ठं पाठाञ्च हिङ्गु च॥
यवमुष्ककयोःक्षारं मधुकं त्र्यूषणं वचाम्।
विडङ्गं पिप्पलीमूलं स्वर्जिकां निम्बचित्रकौ॥
मूर्वाजमोदेन्द्रयवान् गुडूची देवदारु च।
कार्षिकं लवणानाञ्च पञ्चानां पालिकान्पृथक्॥
भागान्दध्नि त्रिकुडवे घृततैलेन मूर्छितान्।
अन्तर्धूमं शनैर्दग्ध्वा तस्मात्पाणितलं पिबेत्॥
सर्पिषा कफवातार्शो ग्रहणीपाण्डुरोगवान्।
प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिक्काकासक्रिमिज्वरान्॥
शोषातिसारौ यक्ष्माणं प्रमेहानाहहृद्ग्रहान्।
हन्यात्सर्वविषाणाञ्च क्षारोऽग्निजननोवरः॥

त्रिफला, मालकंगनी, चव, बेलगिरी, लोहचूर्ण, मांसरोहिणी, कुटकी, मोथा, कूठ, पाठा, हींग, जौकाक्षार, मुष्कक (घण्टापारुल—मोपा) का क्षार, मुलैठी, त्रिकुटा, वच, वायविडङ्ग, पीपलामूल, सज्जी, नीमकी छाल, चीता, मूर्वा, अजमोद, इन्द्रजौं, गिलोय और देवदारु १।—१। तोला, सेंधा नमक,

विडलवण, सामुद्रलवण, कालानमक और काचलवण ५-५ तोले लेकर सबको कूटकर थोड़ा थोड़ा घी और तैल मिलाकर एक हांडीमें भर दीजिए और उसमें ६० तोले दही मिलाकर उसके मुख-पर शराव ढककर कपरमिट्टी कर दीजिए। जब कपरौटी सूख जाय तो हाण्डीको चूल्हेपर चढ़ाकर उसके नीचे (१ पहर तक) मन्दाग्नि जलाइये और फिर हाण्डीके स्वांगशीतल हो जाने पर उसके भीतरसे औषधको निकालकर पीस लीजिए।

इसे १। तोलेकी मात्रानुसार घीमें मिलाकर सेवन करनेसे कफ और वातज अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, तिल्ली, मूत्रावरोध, खांसी, श्वास, हिचकी, कृमि, ज्वर, शोष, अतिसार, यक्ष्मा, प्रमेह, आनाह, हृद्ग्रह और विषोका नाश होता तथा अग्निवृद्धि होती हैं।

(व्यवहारिक मात्रा=२ माशे)

(२३५२) त्रिफलादिचूर्णम् [१]

(हा. सं.। स्था. ३ अ. १०)

रक्तातिसारे च प्रयोजनीयं
रक्तप्रवाहे सरुजे सदाहे।
फलत्रिकश्चैव विषा समङ्गा
सपर्पटं दाडिमधातुकीनाम् ॥
चूर्णं मधुशर्करया समेतं
तथैव दध्ना सघृतं सलेहम्।
रक्तातिसारं रुधिरप्रवाहं
योनिप्रवाहं सततं स्त्रियश्च ॥
निवारयत्याशु हितं नराणां
बालातिसारे प्रशमाययोग्यम् ॥

त्रिफला, अतीस, मजीठ, पित्तपापड़ा, अनार-दाना और धायके फूल। समान भाग लेकर चूर्ण बनाएं।

इसे मिश्री और शहदमें अथवा दही और घीमें मिलाकर चाटनेसे पीडा और दाहयुक्त रक्तातिसार, रक्तस्राव, रक्तप्रदर और बालकोंका अतिसार नष्ट होता है।

(२३५३) त्रिफलादिचूर्णम् [२]

(यो.र.; वृ.नि.र.।ऊरुस्त.; वृं.मा.। आ.वा.)

त्रिफलाचव्यकटुका ग्रन्थिकं मधुना लिहेत्।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥

त्रिफला, चव, कुटकी और पीपलामूलके चूर्णको शहदके साथ चाटने अथवा गूगलको गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है।

त्रिफलादिचूर्णम् [३] (यो.र., वं.से.। नेत्र.)

रसप्रकरणमें देखिए।

(२३५४) त्रिफलादिचूर्णम् [४] (वं.से.।शू.)

त्रिफलायास्तथा चूर्णं चूर्णं वा काललोहजम्।
शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूलनिवारणम् ॥

✓ त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला) के चूर्ण अथवा तीक्ष्णलोहके चूर्णको समान भाग मिश्रीमें मिलाकर खानेसे सर्व प्रकारके शूल नष्ट होते हैं।

मात्रा=त्रिफलाचूर्ण ६ माशे। लोहचूर्ण ०॥ माशा।

नोट-लोहचूर्ण शुद्ध लेना चाहिए, अथवा शुद्ध मण्डूर प्रयुक्त करना चाहिए।

(२३५५) त्रिफलादिचूर्णम् [५]

(वृ. यो त.; ग. नि.)

त्रिफलारजःसमानं रजो रजन्या सितासमानेन।
मधुना च लीढमेतत्प्रमेहनामापि नाशयति ॥

त्रिफला और हल्दी का समान भाग चूर्ण एकत्र मिलाकर-उसमें उसके बराबर मिश्री मिला लीजिए।

इसे शहदके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

(मात्रा–६ माशे।)

(२३५६) त्रिफलादिचूर्णम् [६]

(वृ. नि. र., ग. नि. । ज्व.)

लिह्याज्ज्वरार्तस्त्रिफलां पिप्पलीञ्च समाक्षिकाम्।
कासे श्वासे च मधुना सर्पिषा च सुखी भवेत्॥

त्रिफला और पीपलके चूर्ण को शहदके साथ चाटनेसे ज्वर, और शहद तथा घीके साथ चाटनेसे खांसी श्वास नष्ट होते है।

(मात्रा–३ से ६ माशे तक। घी १ तो. शहद ४ तोले।)

(२३५७) त्रिफलादिचूर्णम् [७]

(वै. जी.। वि. ३)

फलत्रयं छिन्नरुहा सचित्रा
रास्ना कृमिघ्नं सकटुत्रयञ्च।
चूर्णं समांशं सितया समेतं
कासं जयेन्नात्र विचारणीयम्॥

हर्र, बहेडा, आमला, गिलोय, मजीठ, रास्ना, बायबिड़ङ्ग और त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च और पीपल) का समान भाग चूर्ण मिलाकर उसमें सबके बराबर मिश्री मिला लीजिए। इसके सेवनसे खांसी अवश्य नष्ट हो जाती है।

(मात्रा–३ से ६ माशे तक। शहदमें मिला कर दिनमें ३–४ बार चाटें।)

(२३५८) त्रिफलादिप्रयोगः (वं.से.।स्व.भे.)

फलत्रिकत्र्यूपणयावशूक
चूर्णश्च हन्यात्स्वरभेदमाशु।
किम्वा कुलित्थं वदनान्तरस्थं
स्वरामयं हन्त्यथ पौष्करम्वा॥

त्रिफला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और जवाखारके चूर्णको (शहदमें मिलाकर) चाटने या कुलत्थ अथवा पोखरमूलको मुखमें रखकर उसका रस चूसनेसे स्वरभंग रोग नष्ट होता है।

(२३५९) त्रिफलादियोगः (र.र.खं.।उप.५)

त्रिफला वाकुचीवीजं पिप्पली चाश्वगन्धिका।
सर्वं तुल्यं कृतं चूर्णं मध्वाज्याभ्यां लिहेत्पलम्॥
वर्षान्मृत्युं जरां हन्ति जीवेद्ब्रह्मदिनत्रयम्॥

त्रिफला, बाबची, पीपल और असगन्धका समान भाग चूर्ण एकत्र मिलाकर १ पल (५ तोले की मात्रानुसार घी और शहदके साथ नित्य प्रति १ वर्ष तक सेवन करनेसे जरामृत्युका नाश होकर ३ ब्रह्मदिन (६००० दिव्ययुग) की आयु हो जाती है।

(२३६०) त्रिफलादि विरेचनम्

(ग. नि. ज्व.)

चूर्णैस्त्रिफलाश्यामा त्रिवृत्पिप्पलीकेसरैः।
सक्षौद्रःशर्करायुक्तो विरेकस्तु प्रशस्यते॥

ज्वरमें विरेचन देनेके लिए त्रिफला, काला निसोत, सफेद निसोत, पीपल और नागकेसरके समान भाग मिश्रित चूर्णको मिश्री और शहदमें मिलाकर खिलाना चाहिए।

(मात्रा ६ माशेसे १ तोले तक।)

(२३६१) त्रिफलादीनां योगः

(ग. नि. । मूर्च्छा.)

फलत्रिकैश्चित्रकनागराढ्यै-
स्तथाऽश्मजाताञ्जतुनः प्रयोगैः ।
सशर्करैर्मासमुपक्रमेत
विशेषतो जीर्णघृतं सपाय्यः ॥

त्रिफला, चीता, सोंठ और शिलाजीत १-१ भाग तथा खांड इन सबके बराबर लेकर चूर्ण बना लीजीए ।

इसे १ मास तक पुराने घृतके साथ सेवन करानेसे मूर्च्छा रोगका नाश होता है ।

(२३६२) त्रिफलाद्यं चूर्णम्

(ग. नि. । चूर्णा.)

त्रिफलातिविपाकटुका-
निम्बकलिङ्गवचापटोलानाम् ।
मागधिकरजनीद्वयपद्मक-
भार्गीमूर्वाविशालानाम् ॥
भूनिम्बपलाशानां दद्याद्द्विपलं त्रिवृत्त्रिगुणा ।
तैश्च समाना ब्राह्मी तच्चूर्णं सुप्तिनुत् परमम् ॥

त्रिफला, अतीस, कुटकी, नीमकी छाल, इन्द्रजौ, वच, पटोलपत्र, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, पद्माक, भारंगी, मूर्वा, इन्द्रायण, चिरायता और पलाशकी छाल २-२ पल, निसोत सबसे ३ गुना और इन सबके बराबर ब्राह्मी लेकर यथाविधि चूर्ण बना लीजिए ।

इसके सेवनसे सुप्ति (किसी अङ्गका शून्य हो जाना) रोग नष्ट होता है ।

(२३६३) त्रिफलाप्रयोगः [१]

(ग. नि. । ज्वर.)

दुग्धेन त्रिफला पीता हन्ति चातुर्थिकं ज्वरं ।

दूधके साथ त्रिफला पीनेसे चातुर्थिक चौथिया) ज्वर नष्ट होता है ।

(ज्वर आनेसे पहिले दिन १ से १॥ तोले तककी मात्रामें पीना चाहिए कि जिससे विरेचन होकर कोष्ठ शुद्ध हो जाय ।)

(२३६४) त्रिफलाप्रयोगः [२]

(यो. स. । समु. ६)

फलत्रिकं त्रिकटुकं भार्ङ्गी कुष्ठमुचटा ।
एतानि सममात्राणि तावन्ति लवणानि च ॥
उष्णेन पयसा चूर्णं हिक्काश्वासहरं परम् ॥

हर्रे, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), भारंगी, कूठ और ल्हसन । समान भाग तथा इन सबके बराबर पांचोंलवण (सेंधानमक, कालानमक, काचलवण, खारीनमक, सामुद्रलवण) लेकर चूर्ण बना लीजिए ।

इसे गर्म पानीके साथ सेवन करनेसे हिचकी और श्वास रोग नष्ट होता है ।

(मात्रा-१-१॥ माशा)

(२३६५) त्रिफलायोगः [१]

(ग. नि. । रसा.)

खदिरासनयूपभाविताया-
स्त्रिफलाया घृतमाक्षिकप्लुतायाः ।
नियमेन नरा निषेवितारो
यदि जीवन्त्यजराःकिमत्र चित्रम् ॥

त्रिफलाके चूर्णको खैर, और असन वृक्षकी छालके काथकी भावना देकर शहद और घीके साथ मिलाकर नियमपूर्वक सेवन करने वाले मनुष्योंको मरणपर्यन्त वृद्धावस्था नहीं आती।

(२३६६) त्रिफलायोगः [२]

(यो. त. । त. ७१)

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी
सायं समश्नाति समाक्षिकाज्यम्।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारै-
र्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः॥

जिस प्रकार धनहीन मनुष्यको उसके नौकर छोड़कर चले जाते हैं, इसी प्रकार सायङ्कालके समय घी और शहदके साथ त्रिफला सेवन करने और पथ्य पालन करने वाले मनुष्योंको नेत्ररोग छोड़ जाते हैं।

(मात्रा—३ से ६ माशे तक।)

(२३६७) त्रिमदः (भै. र. । परि.)

विडङ्गमुस्तचित्रश्च त्रिमदः समुदाहृतः॥

बायविड़ङ्ग, मोथा और चीतेके समूहको 'त्रिमद' कहते है।

(२३६८) त्रिलवणादिचूर्णम्

(वृ. यो. त. । त ९४, यो. र. । शू.)

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम्।
सुखोष्णेनाम्भसा पीतं कफशूलहरं परम्॥

सेंधानमक, कालानमक, खारी नमक, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और भुनी हुई हींग समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे गर्म पानीके साथ खानेसे कफज शूल नष्ट होता है। (मात्रा १ माशा)

(२३६९) त्रिवृच्चूर्णम् (वं. से., नि. र.। ज्व.)

चूर्णं त्रिवृत्कणाश्यामा त्रिफलानां सिता समम्।
भेदि कोष्ट रुजादाह गौरव ज्वरनाशनम्॥

निसोत, पीपल, कालानिसोत, त्रिफला और मिश्रीका चूर्ण सेवन करनेसे विरेचन होकर उदर पीड़ा, दाह, शरीर का भारीपन और ज्वर नष्ट होता है।

(२३७०) त्रिवृतादिचूर्णम् [१]

(भा. प्र. ख. २ । वा. र.)

धारोष्णं मूत्रसंयुक्तं क्षीरं दोषानुलोमनम्।
पिबेद्वा सत्रिवृच्चूर्णं पित्तरक्तावृतानिले॥

पित्तप्रधान वातरक्तमें धारोष्ण दूधमें गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिए अथवा उसके साथ निसोत का चूर्ण सेवन करना चाहिए।

(२३७१) त्रिवृतादिचूर्णम् [२]

(वा. भ. कल्प. । अ. २)

त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम्॥

ग्रीष्मकाल (जेठ, अषाढ़ मास) में विरेचन करानेके लिए समान भाग निसोत और मिश्री मिलाकर प्रयुक्त करनी चाहिए।

(मात्रा—१ तोला। गर्म पानीके साथ खिलाएं)

(२३७२) त्रिवृतादिचूर्णम् [३]

(च. सं. । क. अ. ७; वा. भ. कल्प. अ. २)

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पलीविश्वभेषजम्।
क्षौद्रद्राक्षारसोपेतं वर्षाकाले विरेचनम्॥

वर्षाकाल (सावन भादों मास) में विरेचन कराने के लिए निसोत, इन्द्रजौं, पीपल और सोंठ समान भाग लेकर चूर्ण करके शहद और द्राक्षरस (मुनक्काके रस या क्वाथ)के साथ खिलाना चाहिए।

(२३७३) त्रिवृतादि चूर्णम् [४]
(वा. भ. । क. अ. २; च. सं. । क. अ. ७)

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करोदीच्यचन्दनम् ।
द्राक्षाम्बुना सयष्टयाह्व शीतलं जलदात्यये ॥

निसोत, धमासा, मोथा, खांड, सुगन्धबाला, लाल चन्दन और मुलैठी । समान भाग लेकर चूर्ण करके मुनक्का के शीतकषाय के साथ खिलानेसे शरद ऋतुमें (आश्विन, कार्तिक मासमें) भली भांति विरेचन हो जाता है ।

(२३७४) त्रिवृतादि चूर्णम् [५]
(च. सं. । क. अ. ७; वा. भ. कल्प. अ. २)

त्रिवृतां चित्रकं पाठामजाजीं सरलं वचाम् ।
स्वर्णक्षीरीं च हेमन्ते चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ॥

हेमन्त ऋतु (अघन, पौष मास)में विरेचन करानेके लिए निसोत, चीता, पाठा, जीरा, चीरका बुरादा, वच और स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) की जड़, समान भाग लेकर चूर्ण करके गर्म पानी से खिलाना चाहिए।

(२३७५) त्रिवृतादि चूर्णम् [६]
(वृ. नि. र. । हृद्रो.)

त्रिवृच्छठी बला रास्ना शुण्ठी पथ्या सपौष्करा ।
चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्या कफहृद्गदे ॥

कफज हृद्रोगमें निसोत, कपूरकचरी, खरैंटी, रास्ना, सोंठ, हर्र और पोखरमूल समान भाग लेकर चूर्ण करके, अथवा गोमूत्रमें पकाकर सेवन कराना चाहिए ।

(२३७६) त्रिवृतादियोगः (ग. नि. । उदर.)

त्रिवृता दन्तिनीमूलं देवदाली यवासकः ।
एकैकं वारिणा पीतं हन्ति सर्वं जलोदरम् ॥

निसोत, दन्तीमूल, देवदाली (विण्डालडोढा) और जवासा । इनमेंसे किसी एक का भी चूर्ण पानीके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके जलोदर नष्ट होते है ।

(२३७७) त्रिवृतादिशोधनम्
(वृ. नि. र. । विसर्प.)

त्रिवृद्धरीतकीभिर्वा विसर्पे शोधनं हितम् ॥

विसर्प रोगमें निसोत और हर्रके चूर्णको खिलाकर विरेचन कराना लाभदायक है ।

२३७८) त्रुट्यादि चूर्णम्
(वृ. नि. र. । आमवा.)

त्रुटिलवङ्गविडङ्गकटुत्रिकं
घनशिवाशिवपत्रजकं समम् ।
त्रिगुणितं त्रिवृता च सिता समा
अदत आम पतिष्यति क्रामतः ॥

सफेद इलायची, लौंग, वायविडंग, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), मोथा, हर्र, आमला और तेजपात १-१ भाग तथा निसोत इन सबसे ३ गुना और मिश्री सबके बराबर लेकर चूर्ण बना लीजिए ।

इसके सेवनसे आम निकल जाती है ।

(२३७९) त्र्यूषणादिचूर्णम्

(च. स. चि. अ. २०)

सत्र्यूषणं बिल्वपत्रं पिबेन्ना कामलापहम्।
दन्त्यर्द्धपलकल्कं वा द्विगुडं शीतवारिणा॥
कामली त्रिवृतां वापि त्रिफलाया रसैःपिबेत्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), और बेलके पत्तोंका चूर्ण सेवन करनेसे अथवा आधापल (२॥ तोले) दन्तीमूलको पानीके साथ पीसकर दो गुने गुड़में मिलाकर ठण्डे पानीके साथ खानेसे अथवा निसोत के चूर्णको त्रिफलाके काथके साथ पीनेसे कामला रोग नष्ट होता है।

(२३८०) त्र्यूषणादिचूर्णम्

(ग. नि.; वृं. मा.; यो. र। अति.; हा. सं। स्था. ३ अ. ३)

त्र्यूषणातिविषाहिङ्गुवचासौवर्चलाभयाः।
पीत्वोष्णेनाम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), अतीस, हींग, बच, सौचल (कालानमक), और हर्र के समान भाग मिश्रित चूर्णको गर्म पानीके साथ पीनेसे प्रवल आमातिसार नष्ट होता है।

(२३८१) त्र्यूषणादिचूर्णम् (ग.नि। उदर.)

त्र्यूषणं निचुलं दन्ती केशरं लवणत्रयम्।
विशालां त्रिफलां दार्वीं पटोलं चेति चूर्णयेत्॥
सुखाम्बुनाथ मूत्रेण धात्रीफलरसेन वा।
पीतमेतद्यथादोषं प्लीहोदरहरं परम्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), समन्दरफल, दन्ती, नागकेशर, सेंधानमक, काला नमक, खारी नमक, इन्द्रायण, हर्र, बहेडा, आमला, दारुहल्दी, और पटोलपत्र। समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे दोषानुसार मन्दोष्ण जल, गोमूत्र या आमलेके रसके साथ सेवन करनेसे प्लीहोदर (तिल्ली) रोग नष्ट होता है।

(नोट—वातज रोगोंमें गर्म पानीसे कफजमें गोमूत्रसे और पित्तज रोगोंमें आमलेके रसके साथ सेवन कराना चाहिए। मात्रा ३ माशे।)

(२३८२) त्र्यूषणादिचूर्णम्

(ग. नि.; वृं. मा., यो. र.; । अरोचका.)

त्रीण्यूषणानि त्रिफला रजनीद्वयञ्च।
चूर्णीकृतानि यावशूकविमिश्रितानि॥
क्षौद्रान्वितानि वितरेन्मुखधावनार्थ-
मन्यानि तिक्त कटुकानि च भैषजानि॥

अरुचिमें त्रिकुटा, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी और जवाखार के समान भाग मिश्रित चूर्णको शहदमें मिलाकर उससे अथवा अन्य कटु (चरपरी) और तिक्त (कड़वी) औषधियोंके चूर्णसे मञ्जन कराना जाहिए, और इनकी जिह्वापर मालिश करानी चाहिए।

(२३८३) त्र्यूषणादिचूर्णम्

(वं से.। नासा.)

त्र्यूषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धं दुग्धान्नभोजनम्।
प्रतिश्यायहरं प्रोक्तं विशेषात्कफनाशनम्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च और पीपल)के चूर्णको गुड़में मिलाकर (गरम पानीके साथ) सेवन

करने और दूध भातादि स्निग्ध भोजन करनेसे प्रतिश्याय और विशेषतः कफ नष्ट होता है।

(२३८४) त्र्यूषणाद्यं चूर्णम्

(च. सं. । चि. अ. ८ संग्र.)

त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं पाठा हिङ्गु सचित्रकम्।
सौवर्चलं पुष्कराख्यमजाजीं विल्वपेशिकाम्॥
विडं यवानीं हपुषां विडङ्गं सैन्धवं वचाम्।
तिन्तडीकं च मण्डेन मद्येनोष्णोदकेन वा॥
तथाऽर्शोग्रहणीदोषशूलानाहाच्च मुच्यते॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), पीपलामूल, पाठा, हींग, चीता, काला नमक, पोखरमूल, जीरा, बेलगिरी, विड़नमक (खारी नमक), अजवायन, हाऊबेर, वायविड़ंग, सेंधा, वच और तिन्तड़ीकके समान भाग मिश्रित चूर्णको मण्ड मद्य अथवा गर्म पानीके साथ सेवन करनेसे अर्श, ग्रहणी, शूल और आनाह (अफारे)का नाश होता है।

(२३८५) त्र्यूषणाद्यं चूर्णम्

(वृ. यो. त. । १०४)

त्र्यूषणं त्रिफला चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्।
वाकुची सैन्धवश्चैव सौवर्चलसमन्वितम्॥
माषमात्रमिदं चूर्णं लिहेदाज्यमधुप्लुतम्।
अतिस्थौल्यमिदं चूर्णं निहन्त्यग्निविवर्धनम्॥
मेदोघ्नं मेहकुष्ठघ्नं श्लेष्मव्याधिनिबर्हणम्।
नाऽहारे नियमश्चात्र विहारे वा विधीयते॥
त्र्यूषणाद्यमिदं चूर्णं रसायनमनुत्तमम्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, चव्य, चीता, विड़ (खारी) नमक, औद्भिद नमक (शोरा), बावची, सेंधा और सौचल (काला नमक) समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे अति स्थूलता (मुटापा), मेद, प्रमेह, कुष्ठ और कफज रोग नष्ट होते तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

यह चूर्ण अत्यन्त रसायन है। इसके सेवन कालमें किसी प्रकारके परहेज़की आवश्यकता नहीं होती।

(२३८६) त्वगाद्यमुद्वर्तनम्

(ग. नि.; वृं. मा. । अजी.)

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठै-
रम्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः।
उद्वर्तनं खल्लिविषूचिकाघ्नं
तैलं विपक्वं च तदर्थकारि॥

दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सहंजनेकी छाल, कूठ, वच और सोयेका समान भाग मिश्रित चूर्ण लेकर काञ्जीमें पीसकर मलनेसे विषूचिका रोगमें होनेवाली हाथ पैरोंकी ऐंठन नष्ट होती है। इन औषधियोंसे पका हुवा तैल भी ऐसा ही गुणकारी होता है।

(२३८७) त्वगेलाद्यं चूर्णम् (ग. नि. । चूर्णा.)

त्वगेलाव्योषधान्याम्लनागकेसरजीरकम्।
लवलीफलकङ्कोलं लवङ्गं जातिपत्रिका॥
भागानिमान्समान्कृत्वा दद्याद्द्विगुणितां सिताम्।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तं चूर्णं रुचिकरं परम्॥

दालचीनी, इलायची, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), धनियां, अम्लबेत, नागकेसर, जीरा, लवलीफल, कङ्कोल, लौंग और जावित्री । एक एक भाग तथा मिश्री इन सबसे दोगुनी लेकर कूटकर ज़रासा कपूर मिलाकर घोटकर रखिए ।

यह चूर्ण अत्यन्त रुचिकारक है ।

(२३८८) त्वङ्मुस्तादिचूर्णम्

(वृ. नि. र. । अरुचि.)

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानि मुस्तमामलकत्वचा ।
त्वक् च दार्वी यवान्याश्च पिप्पली तेजवत्यपि ॥
यवानीतिन्तडीकश्च पश्चैते मुखशोधनाः ।
श्लोकपादैरभिहिताः सर्वारोचकनाशनाः ॥

(१) दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां । (२) मोथा और आमला । (३) दालचीनी, अजवायन और दारुहल्दी । (४) पीपल और मालकंगनी (५) अजवायन और तिन्तड़ीक । यह पांचों प्रयोग मुखशोधक और हर प्रकारकी अरुचिको नष्ट करनेवाले हैं ।

(इनका चूर्ण करके उसे जिह्वा पर मलना चाहिए और शहदमें मिलाकर चाटना चाहिए ।

॥ इति तकारादिचूर्णप्रकरणम् ॥

अथ तकारादि गुटिका प्रकरणम्

तक्रवटी (भै. र. । ग्रहणी)
रसप्रकरणमें देखिए ।

ताम्रेश्वरगुटिका
(र. सा. सं.; र. चं.; धन्वं.; र. रा. सुं. । प्लीहा.)
रसप्रकरणमें देखिए ।

तारकेश्वरगुटिका (र. र. खं. । अ. ५)
रसप्रकरणमें देखिए ।

तारसुन्दरीवटी (र सा. । प. २४)
रसप्रकरणमें देखिए ।

तारामण्डूरवटकाः (ग. नि.; भै. र. । शूल)
रसप्रकरणमें देखिए ।

तालकादिगुटिका (र. रा. सुं. । वा. व्या.)
रसप्रकरणमें देखिए ।

तालकादिवटी (र. चं. । शी. पि.)
रसप्रकरणमें देखिए ।

तालवटिका (र. चं. । रसा.)
रसप्रकरणमें देखिए ।

(२३८९) तालीसादिगुटिका

(यो. चि. । अ. ३०)

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तडीकं
तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धयुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिपुप्रशस्तम् ॥

चव्य, अमलवेत, त्रिकुटा (सोंठ मिर्च, पीपल), तिन्तड़ीक, तालीसपत्र, ज़ीरा, बंसलोचन, चीता, दालचीनी, इलायची और तेजपातका चूर्ण

समान भाग लेकर गुड़में मिलाकर गोलिया बना लीजिए।

इनके सेवनसे पीनस, स्वरभंग (गला बैठना) और कफज अरुचि नष्ट होती है।

(गुड़ सब औषधियोंके बराबर लेना चाहिए। मात्रा १ तोला। अनुपान—उष्णजल)

तालीसादिगुटिका

(वं. से.; च. द.; र. र.। राजय.; वृं. मा; भै. र.। कासा.)

तालीसादिचूर्ण संख्या २३१० देखिए।

(२३९०) तालीसाद्या गुटिका

(ग. नि.। गुटि., वृ. नि. र.। सं.)

तालीसचव्यं मरिचं पलार्धांशानि नागरात्।
अध्यर्धं पिप्पलीमूलात्पिप्पल्याश्च पलं पलम्॥
कर्षन्तु नागपुष्पस्य त्रुटी कर्पार्धमेव च।
त्वक्पत्रोशीरकर्षस्तु चूर्णात्त्रिगुणितोगुडः॥
ततोऽक्षमात्रा गुटिका मद्ययूषपयोरसैः।
पीताऽम्भसा भक्षिता वा सर्वान् हन्याद्गुदोद्भवान्
शूलं पानात्ययं छर्दिं प्रमेहं विषमज्वरान्।
गुल्मं पाण्डुरुजं शोफं हृद्रोगं ग्रहणीगदान्॥
कासहिक्कारुचिश्वासकृम्यतीसारकामलाः।
मन्दाग्नितां मूत्रकृच्छ्रं हन्याच्छोफं च सा भृशम्॥
एतदेव भवेच्चूर्णं सिताचूर्णं चतुर्गुणम्।
सपित्तेषु विकारेषु विशेषेणामृतोपमम्॥

१ वृहन्निघन्टुरत्नाकरमें पाठ भिन्न है, योग यही है।

सा चैव गुटिका पथ्या फलत्रयविशेषिता।
शोफार्शोग्रहणीरोगपाण्डुशूलापहारिणी॥

तालीस पत्र, चव्य और मरिचका चूर्ण आधा आधा पल (२॥ तोले), सोंठका चूर्ण १॥ पल, पीपल और पीपलामूलका चूर्ण १—१ पल, नागकेसरका चूर्ण १ कर्ष (१। तोला), सफेद इलायचीका चूर्ण आधा कर्ष तथा दालचीनी, तेजपात और खसका चूर्ण १—१ कर्ष एवं इन सबसे ३ गुना गुड़ लेकर सबको एकत्र मर्दन करके १।—१। तोलेके मोदक बना लीजिए।

इन्हें मद्य, यूष, दूध अथवा पानीके साथ सेवन करनेसे अर्श, शूल, पानात्यय, छर्दि, प्रमेह, विषमज्वर, गुल्म, पाण्डु, सूजन, हृद्रोग, ग्रहणी, खांसी, हिचकी, श्वास, अरुचि, कृमि, अतिसार, कामला, अग्निमांद्य, मूत्रकृच्छ्र और शोथका नाश होता है।

यदि इस गुटिकामें हर्र और त्रिफलेका चूर्ण बढ़ा दिया जाय तो सूजन, ववासीर, ग्रहणी, पाण्डु और शूल रोगमें विशेष गुण करती है।

(२३९१) तिलादिगुटिका

(भा. प्र. खं. २; वृं. मा.; वं. से.। शूल)

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि।
शूलं सुदुस्तरं तेन शान्तिं गच्छति सत्वरम्॥

तिलोको पीसकर गोला बनाकर पेटके ऊपर घुमानेसे भयङ्कर शूल भी नष्ट हो जाता है।

(२३९२) तिलादिवटी (वृ. नि. र.। शूल.)

तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूकभस्मनाम्।
द्विभागं गुडसंयुक्तं वटीं कृत्वाक्षभागिकाम्॥

शीताम्बुना पिबेत् प्रातर्भक्षयेत् क्षीरभोजनम्।
सायाह्ने रसकं पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जरात् ॥
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि ॥

तिल, सोठ और हर्रका चूर्ण तथा शंख भस्म १-१ भाग लेकर दो भाग गुड़में मिलाकर १-१ कर्ष (१। तोले) के वटक बना लीजिए।

प्रतिदिन प्रातःकाल शीतल जलके साथ १-१ वटक खाने, सायंकालको खपरिया सेवन करने और दूध भातका आहार करनेसे अजीर्ण और पुराना परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

(२३९३) तृष्णाघ्नी गुटी (यो. र। तृ.)

नीलाम्बुजाब्दमधुलाजावटावरोहैः।
श्लक्ष्णीकृतैर्विरचिता गुटिका मुखस्था ॥
तृष्णां निवारयति तत्क्षणमेव तीव्राम्।
मृत्यो स्पृहामिव यतेः परमार्थचिन्ता ॥

नील कमल, मोथा, धानकी खील, वटके अंकुर। समान भाग लेकर महीन पीसकर शहदमें मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

इनको मुंहमें रखनेसे प्रबल तृष्णा भी तुरन्त शान्त हो जाती है।

(२३९४) तेजोवत्यादिगुटिका

(वृ. यो. त.। त. १२८)

तेजोवतीं दारुनिशां सकृष्णां
यवाग्रजं तार्क्ष्यगिरिश्च पाठाम्।
क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिका मुखेन
तां धारयेत्सर्वगलामयघ्नीम् ॥

बच, दारुहल्दी, पीपल, जवाखार, रसौत और पाठाका समान भाग चूर्ण लेकर सबको शहदमें मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें मुंहमें रखकर रस चूसनेसे गलेके समस्त रोग नष्ट होते हैं।

(२३९५) त्रिकटुकादिगुटी

(यो. चि.। मिश्रा.)

मरीचं पिप्पली शुण्ठी ग्रन्थिकं च समांशतः।
गुडेन गुटिका कार्या पक्वखण्डेन वा पुनः ॥
एतत्त्रिकटुकं नाम शून्यत्वाधिर्यवारणम्।
शीतकाले सदा ग्राह्यं बुद्धिचैतन्यकारणम्।

सोंठ, मिर्च, पीपल और पीपलामूल समान भाग लेकर महीन चूर्ण करके उसको सबके बराबर गुड़ या खांडकी चाशनीमें मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे शून्यता (स्पर्शशक्तिका नष्ट हो जाना) और बधिरता नष्ट होती है।

यह गोलियां बुद्धि और चैतन्यकी वृद्धिके लिए शीतकालमें सेवन करने योग्य हैं।

(२३९६) त्रिकटुकादिमोदकः

(हा. सं.। स्था. ३ अ. ११)

त्रिकटुकमभयानां पुष्करं चित्रकाणां
क्रिमिरिपुतिलचूर्णं कारयेत् सगुडेन।
उषसि वटकमेकं भक्षयेद्यो मनुष्यो
विनिहन्तिगुदरोगं चाग्निवृद्धिं करोति ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, पोखरमूल, चीता, तिल और वायविडंगका समानभाग चूर्ण लेकर गुडमें मिलाकर मोदक बना लीजिए।

प्रतिदिन प्रातःकाल १ मोदक खानेसे बवा-

मीर नष्ट और अग्नि दीप्त होती है। (मात्रा—१ तोला। अनुपान उष्ण जल)

(२३९७) त्रिकटुकाद्यो मोदकः

(भा. प्र.। प्रमेह)

त्रिकटु त्रिफला पाठा मूलं शोभाञ्जनस्य च।
विडङ्गतन्दुला हिङ्गु तथा कटुरोहिणी ॥
बृहती कण्टकारी च हरिद्रे द्वे यवानिका।
केम्बुकं शालपर्णी च तथातिविषचित्रकौ ॥
सौवर्चलं जीरकञ्च हपुषा धान्यमेव च।
एषां कर्षप्रमाणञ्च श्लक्ष्णचूर्णञ्च कारयेत् ॥
यवशक्तुपलानाञ्च नवतिं द्वितयाधिकाम्।
घृततैलमधूनाञ्च प्रत्येकञ्च पलानि षट् ॥
एभिःकर्षप्रमाणञ्च प्रत्यहं मोदकं सुधीः।
भक्षयन्नाशयेदुग्रान्प्रमेहानतिदारुणान् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, पाठा, सहंजनेकी जड़, वायविड़ंगके चावल (बीज), हींग, कुटकी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, अजवायन, सुपारी, शालपर्णी, अतीस, चीता, सौवर्चल, (काला नमक), ज़ीरा, हाऊबेर और धनियां। प्रत्येकका महीन चूर्ण १—१ कर्ष (१। तोला), जौका सत्तू ९२ पल (५ सेर १२ छटाक) तथा घी, तेल और शहद ६-६ पल (३० तोले) लेकर सबको एकत्र मिलाकर मर्दन करके १—१ कर्ष (१। तोले)के मोदक बना लीजिए। इनमेंसे १—१ मोदक प्रतिदिन खानेसे भयङ्कर प्रमेह भी नष्ट हो जाता है।

(अनुपान दूध)

(२३९८) त्रिकण्टकाद्यो मोदकः

(भै. र.। वाजी.)

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजीगन्धा शतावरी।
मुपली वानरीबीजं यष्टीनागबला बला ॥
एषाञ्चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाज्येन भर्जितम्।
सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥
चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम्।
सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा ॥
वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः।
तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥

गोखरु, तालमखानेके बीज, असगन्ध, शतावर, मूसली, कौंचके बीज, मुलैठी, नागबला (गंगेरन)की जड़ और बला (खरैटी) मूल। सबका समान भाग चूर्ण लेकर उसे सबसे ८ गुने दूधमें पकाएं, जब मावा हो जाए तो उसमें चूर्णके बराबर गायका घी डालकर भूनिए और फिर उसे सबसे दोगुनी खाण्डकी चासनीमें मिलाकर मोदक बना लीजिए। मात्रा— अग्निबलानुसार १ तोला तक। अनुपान दूध। यह मोदक बहुतसी वाजीकरण औषधोंके योगसे बनते हैं अतएव यह अत्युत्तम वाजीकर (कामशक्तिवर्द्धक) मोदक है।

(२३९९) त्रिजातगुटिका (ग.नि.। गुटिका.)

त्रिजात त्रिफला व्योषं सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत्।
तत्तुल्यं त्रिवृताचूर्णं शर्करा क्षौद्रमेव च ॥
बद्ध्वात्र मोदकान्वैतान् भक्षयेच्च यथा बलम्।
विरेक एष प्रबलस्तथा कण्डूविनाशनम् ॥

दालचीनी, इलायची, तेजपात, हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च और पीपल)का

चूर्ण १–१ भाग तथा निसोतका चूर्ण समस्त औषधोंके बराबर और निसोतके बराबर ही खाण्ड तथा शहद लेकर खाण्डकी चाशनीमें समस्त चूर्ण मिलाकर ठण्डा होने पर शहद मिलाइये और फिर मोदक बना लीजिए।

इन्हें यथोचित मात्रानुसार खानेसे विरेचन होकर कण्डू (खुजली) नष्ट हो जाती है।

(मात्रा–१ तोला। अनुपान–गर्म जल)

(२४००) त्रिजातादिगुटिकाः

(वृ. नि. र.। कास.)

त्रिजातमर्धकर्षञ्च पिप्पल्यर्धपलं सिता।
द्राक्षामधुकखर्जूरं पलांशं श्लक्ष्णकल्कितम् ॥
मधुना गुटिका घ्नन्ति ता वृष्याः पित्तशोणिते।
कासश्वासारुचिच्छर्दिमूर्च्छाहिध्मामदभ्रमान्।
क्षतक्षये स्वरभ्रंशे प्लीहशोषाढ्यमारुतान्।
रक्तनिष्ठीवहृत्पार्श्वरुक्पिपासाज्वरानपि ॥

दालचीनी, इलायची, तेजपात। प्रत्येक आधा आधा कर्ष (७॥ माशे), पीपल आधापल (२॥ तोले), मिश्री, मुनक्का, मुलैठी, खजूर १–१ पल। सबको बारीक पीसकर शहदमें मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

यह गोलियां वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है और रक्तपित्त, खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, हिचकी, मद, भ्रम, क्षतक्षीणता, स्वरभंग, (गला बैठना), प्लीहा, (तिल्ली), ऊरुस्तंभ, शोथ, रक्त-थूकना, हृदय और पसलीका दर्द तथा ज्वरका नाश करती है।

(२४०१) त्रिपुरभैरवीगुटी

(वृ. नि. र.। श्वास.)

त्रिकटुटङ्कणं नागपत्रेण क्रियते वटी।
मरिचप्रमाणा कफजिन्नाम्ना त्रिपुरभैरवी ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और सुहागे की खील समान भाग लेकर चूर्ण करके पानके रसमें घोटकर स्याह मिर्चके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे कफ नष्ट होता है।

(से. वि. मुंहमें रखकर रस चूसें। दिन भरमें २०–२५ गोली तक खा सकते है।)

(२४०२) त्रिफलादिगुटिका (१)

(वा. भ.। उत्त. अ. २२)

फलत्रयद्वीपिकिराततिक्त–
यष्ट्याह्वसिद्धार्थककटुत्रिकाणि।
मुस्ताहरिद्राद्वययावशूक–
वृक्षाम्लकाम्लाग्निमवेतसाश्च ॥
अश्वत्थजम्ब्वाम्रधनञ्जयत्वक्
त्वक्चाहिमारात्खदिरस्य सारः।
क्वाथेन तेषां घनतां गतेन
तच्चूर्णयुक्ता गुटिका विधेया ॥
ता धारिता घ्नन्ति मुखेन नित्यं
कण्ठौष्ठताल्वादिगदान्सुकृच्छ्रान्।
विशेषतो रोहिणिकास्यशोष–
गन्धान्विदेहाधिपतिप्रणीताः ॥

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), चीता, चिरायता, मुलैठी, सरसों, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च,

पीपल), मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, यवक्षार, तिंतड़ीक, विजौरे नींबूके छिलके, अम्लवेत, पीपल वृक्षकी छाल, जामन, आम, कोह (अर्जुन) और दुर्गन्धित खैरकी छाल तथा खैर सार समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए। इसमेंसे आधे चूर्णको ८ गुने पानीमें पकाइये, जब चौथा भाग पानी शेष रहे तो उसे छानकर फिर पकाइये और जब वह गाढ़ा हो जाय तब उसमें शेष रहा हुवा उपरोक्त चूर्ण मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें मुखमें रखनेसे कण्ठ, ओष्ट, तालु और गलेके कष्टसाध्य रोगोका और विशेषतः रोहिणी, मुखशोष तथा मुखकी दुर्गन्धका नाश होता है।

त्रिफलादिगुटिका (२) (यो. र. । कुष्ट)
रसप्रकरणमें देखिए ।

(२४०३) त्रिफलादिगुटिका (३)(वृ.नि.र.।संग्र.)

त्रिफला पञ्चलवणं कुष्टं कटुकरोहिणी ।
देवदारु विडङ्गानि पिचुमन्दफलानि च ॥
बला चातिबला चैव द्विहरिद्रा सुवर्चला ।
एतत्संभृतसंभारं करञ्जत्वग्रसेन तु ॥
पिष्ट्वा च गुटिकां कृत्वा बादरास्थिसमां बुधः।
एकैकां तां समुद्धृत्य रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥
अर्शांसि हन्ति तक्रेण गुल्मानम्लेन निर्हरेत् ।
उष्णेन वारिणा पीता शान्तमग्निं प्रदीपयेत् ॥
जन्तुजुष्टा तु योगेन त्वग्दोषं खदिराम्बुना ।
मूत्रकृच्छ्रं तु तोयेन हृद्रोगं तैलसंयुता ॥
इन्द्रस्वरससंयुक्ता सर्वज्वरविनाशिनी ।
मातुलुङ्गरसेनाथ सद्यःशूलहरी स्मृता ॥
कपित्थतिन्दुकानान्तु रसेन सह मिश्रिता ।
विषाणि हन्ति सर्वाणि पानाशनप्रयोगतः ॥

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), पाँचोंलवण (सेंधा, काला नमक, खारी नमक, काचलवण, सामुद्रलवण), कूठ, कुटकी, देवदारु, बायविड़ंग, नीमके फल, बला (खरैटी), अतिबला (कंघी), हल्दी, दारुहल्दी और हुलहुल। सबका समान भाग चूर्ण लेकर करञ्जकी छालके रसमें घोटकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलिया बना लीजिए।

इन्हे भिन्न भिन्न अनुपानोके साथ सेवन करानेसे अनेको रोग नष्ट होते हैं।

इन्हें अर्शमें तक्रके साथ, गुल्ममें काञ्जी या नींबूके रसके साथ, अग्निमांद्यमें उष्ण जलसे, चर्म रोगोंमें खैरकी छालके क्वाथके साथ, मूत्रकृच्छ्रमें ताज़े पानीके साथ, हृद्रोगमें तैलके साथ, ज्वरोंमें इन्द्रजौके स्वरसके साथ, शूलमें विजौरेके रसके साथ और विषविकारमें कैथ या तेन्दुके रसके साथ सेवन कराना चाहिए।

(२४०४) त्रिफलादिमोदकः (१)
(वृ. नि. र. । वातज्व.)

त्रिफलाव्योषगुडकं शर्करा त्रिवृतार्धकम् ।
मोदकं भक्षयित्वा तु पिबेच्चोष्णजलं पुनः ॥
पार्श्वशूले रुचौ कासे ज्वरे चानिलसम्भवे ॥

हर्र, बहेडा, आमला, सोठ, मिर्च, पीपल, गुड़ और खांड एक एक भाग तथा निसोत सबसे आधा लेकर सब औषधियोंको कूटकर गुड़में मिलाकर मोदक बना लीजिए।

इन्हे गर्म पानीके साथ सेवन करनेसे पस-

लीका शूल, अरुचि, खांसी, श्वास और वातज्वर नष्ट होता है।

त्रिफलादिमोदकः (२)

(शा. सं. । खं. २, यो. चि. म. । अ. ३)

रसप्रकरणमें देखिए।

(२४०५) त्रिफलादिवटिका (ग. नि. श्वय.)

त्रिफलागुरुकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशकल्पिता।
गुडेन गुटिका हन्ति शोफपाण्डुभगन्दरान्॥

त्रिफला ३ भाग, अगर ५ भाग और पीपल १ भाग लेकर चूर्ण करके गुड़में मिलाकर गोलियां बना लीजिए। इनके सेवनसे सूजन, पाण्डु और भगन्दर नष्ट होता है।

(गुड़ सबके बराबर लेना चाहिए। मात्रा १ तोला)

(२४०६) त्रिफलादि वटी

(आ. वे. वि. । रसाय. अ. ८५)

त्रिफलां पर्पटं कट्वीं त्रायन्तीं च समांशिकाम्।
सर्वैःसमं कुपीलुश्च रक्तिद्वयमिता वटी॥
नाशयेच्छुक्रतारल्यं शोधयेच्छोणितं भृशम्।
हरेदिन्द्रियशैथिल्यं बलं वह्निश्च वर्द्धयेत्॥

त्रिफला, पित्तपापड़ा, कुटकी और त्रायमाणाका चूर्ण समान भाग तथा सबके समान शुद्ध कुचले का चूर्ण लेकर सबको पानीमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलिया बना लिजीए।

इनके सेवनसे शुक्र तारल्य दूर होता और रक्त शुद्ध होता है तथा अग्नि और शारीरिक बलकी वृद्धि होकर इन्द्रियोंकी शिथिलता नष्ट होती है।

(२४०७) त्रिफलाद्या गुटिका

(ग. नि. । परि. गुटि.)

त्रिफलाबदराणां स्याद् व्योषस्य च पलद्वयम्।
कर्पूरकर्षो लाजानां पलद्वादशक भवेत्॥
एलात्वक्पत्रकानान्तु पलं स्याद्वंशरोचना।
पलाष्टिका वेतसश्च चतुष्पल उदाहृतः॥
चूर्णाद्द्विगुणखण्डं स्याद् हृद्या वमिहरा परम्।
यक्ष्माणं रक्तपित्तश्च ज्वरं कासं च नाशयेत्॥

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला), बेर और त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) २-२ पल (१०-१० तोले), कपूर १ कर्ष (१। तोला), धानकी खील १२ पल, इलायची, दालचीनी और तेजपात १-१ पल, बंसलोचन ८ पल, और अम्लवेत ४ पल लेकर सबका चूर्ण करें और उसे समस्त ओषधियोंसे २ गुनी खाण्डकी चाशनीमें मिलाकर गोलियां बनाएं।

इनके सेवनसे वमन, राज्यक्ष्मा, रक्तपित्त, खासी और ज्वर नष्ट होता है। यह हृदयके लिए भी हितकारी है।

त्रिफलाद्यावटकाः (ग.नि., यो.र.; वं.से.। कु.)

रसप्रकरणमें देखिये।

(२४०८) त्रिवृतादिगुटिका

(भै. र.; वृ. नि. र.; वै. र.; ग. नि., वं. सं.; र. र । उदावर्त)

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुःपञ्चभागिकाः।
गुडिका गुडतुल्या सा विड्विबन्धगदापहा॥

निसोत २ भाग, पीपल ४ भाग और हर्र

५ भाग। सबके महीन चूर्णको समान भाग गुड़में मिलाकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे मलावरोध नष्ट होता है।

[मात्रा—१ तोले तक। अनुपान—उष्ण जल।]

(२४०९) त्रिवृतादि मोदकः (१) (भै. र.। परि.)

त्रिवृतामममृतां द्राक्षां जातीकोषफलेऽभयाम्।
जीवन्तीं मधुकं श्यामामनन्तामिन्द्रवारुणीम्।
अब्दमिन्दीवरं वह्निं मधुकं मागधीं मुराम्।
चविकां चोरपुष्पींश्च चन्द्रशूरश्च चन्द्रिकाम्॥
चूर्णाङ्क्रिमानां विजयां शुद्धां बीजविवर्जिताम्।
सितां सर्वद्विगुणितां निकुम्भेन्धनवह्निना॥
यथाशास्त्रं भिषग्पक्त्वा मोदकं परिकल्प्य च।
प्रयुञ्ज्यात् पयसोष्णेन सायाह्ने शाणमात्रया॥
मास्तिष्के दारुणे रोगे स्नायव्ये मारुतोद्भवे।
पित्तजे कफजे चापि ग्रहण्यां विकृतेऽनले॥
क्लीवतायां ज्वरे जीर्णे दुष्टे रजसरेतसी।
प्रयोज्यं देवदेवोक्तं मोदकं त्रिवृतादिकम्॥

निसोत, गिलोय, मुनक्का, जावित्री, जायफल, हर्र, जीवन्ती, मुलैठी, काला निसोत, अनन्तमूल, इन्द्रायण, मोथा, कमल, चीता, मुलैठी, पीपल, मुरामासी, चव, चोरपुष्पी, हालों और इलायची। एक एक भाग तथा शुद्ध बीजरहित भांग सबसे चौथाई और इस सब चूर्णसे २ गुनी खांड लेकर खाडको दन्तीवृक्षकी अग्नि पर पकाकर चाशनी बनावें और फिर उसमें अन्य समस्त औषधोंका-चूर्ण मिलाकर ४—४ माशेका मोदक बनाएं।

इन्हें सायंकालके समय उष्ण दूधके साथ सेवन कराना चाहिए।

इनके सेवनसे मस्तिष्क रोग, वातज, पित्तज और कफज स्नायु रोग, ग्रहणी, अग्निविकार (अग्निमांद्यादि), नपुंसकता, जीर्णज्वर तथा रज और वीर्यदोष नष्ट होते हैं।

(२४१०) त्रिवृतादिमोदकः (२) (भै. र.। अग्नि.)

त्रिवृद्दन्ती कणामूलं कणा वह्नि पलं पलम्।
सर्वतुल्यामृता शुण्ठी गुडेन सहमोदकम्॥
कर्षकं भक्षयेन्नित्यं दीप्ताग्निं कुरुते क्षणात्॥

निसोत, दन्तीमूल, पीपलामूल, पीपल और चीतका चूर्ण १—१ पल (५—५ तो०) गिलोय और सोंठ २५—२५ तोले लेकर चूर्णकर उसे ७५ तोले गुड़की चाशनीमें मिलाकर १।—१। तोलेके मोदक बना लीजिए।

इनके सेवनसे जठराग्नि अत्यन्त शीघ्र तीक्ष्ण हो जती है।

(अनुपान—उष्ण जल।)

(२४११) त्रिवृतादिमोदकः (३)
(च. सं.। क. अ. ७)

त्रिवृद्धेमवती श्यामा नीलिनी हस्तिपिप्पली।
समूलापिप्पली मुस्तमजमोददुरालभा॥
अर्धांशिकं पलं शुण्ठ्या गुडस्य पलविंशतिम्।
चूर्णितं मोदकान्कुर्यादुदुम्बरफलोपमान्॥
हिङ्गुसौवर्चलव्योषयवानीविडजीरकैः।
वचाजगन्धात्रिफलाचव्यचित्रकधान्यकैः॥
मोदकान् वेष्टयेच्चूर्णैस्तान् सतुम्बरुदाडिमैः।

त्रिकवंक्षणहृद्बस्तिकोष्ठार्शःप्लीहशूलिनाम् ॥
हिक्काकासारुचिश्वासकफोदावर्तिनां शुभाः ॥

निसोत, हर्र (अथवा सत्यानाशीकी जड–चोक), काला निसोत, नीलिनी, गजपीपल, पीपल, पीपलामूल, मोथा, अजमोद और जवासा। आधा आधा पल तथा सोंठ १ पल (५ तोले) और गुड़ २० पल लेकर चूर्ण बनाकर सबको गुडमें मिलाकर गूलरके फलके समान मोदक बना लीजिए। तत्पश्चात् हींग, कालानमक (सौवर्चल), सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, खारी नमक, जीरा, बच, अजमोद, हर्र, बहेड़ा, आमला, चव, तुम्बरु, अनारदाना, चीता और धनियेका समान भाग चूर्ण एकत्र मिलाकर उसे उपरोक्त मोदकोंके उपर लपेट दीजिए।

इन मोदकोके सेवनसे त्रिकशूल, वंक्षणशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल, उदररोग, अर्श, प्लीहा (तिल्ली), हिचकी, खांसी, अरुचि, श्वास, कफ और उदावर्त रोग नष्ट होता है।

मात्रा–१ मोदक। अनुपान उष्ण जल।)

(२४१२) त्रिवृतादिमोदकः (४)
(वं. से ; वृं. मा.। रक्तपित्ता.)

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु।
मोदकःसन्निपातोत्थरक्तपित्तज्वरापहः ॥

निसोत, हर्र, बहेड़ा, आमला, कालानिसोत, और पीपलका चूर्ण १–१ भाग तथा खांड और शहद इन सबके बराबर लेकर खांडकी चाशनी करके उसमें समस्त चूर्ण मिला दीजिए और ठण्डा होने पर शहद मिलाकर मोदक बना लीजिए।

इनके सेवनसे सन्निपातज रक्तपित्त और ज्वर नष्ट होता है।

(२४१३) त्रिवृतादिमोदकः (५) (च. स.। कल्प.)

त्रिवृत्पलं द्विप्रसृतं पथ्या धान्योर्वूकयोः।
दशैतान् मोदकान् कुर्यादीश्वराणां विरेचनम् ॥

निसोतका चूर्ण १ पल (५ तोले), हर्र, धनिया और अरण्डमूलका चूर्ण ४–४ पल लेकर सबको सब चूर्णके बराबर गुडकी चाशनीमें मिलाकर उस सबके दश मोदक बना लीजिए।

धनिक पुरुषोंको विरेचन करानेके लिए यह मोदक अत्युपयोगी है।

(व्यवहारिक मात्रा २ तोले। अनुपान उष्ण जल।)

(२४१४) त्रिवृतादि मोदकः (६) (ग.नि.।ज्वर.)

त्रिवृत्पिप्पलिसंयुक्तो गुडसर्पिर्विपाचितः।
मण्डानुपानो दातव्यो मोदकः सन्निपातहा ॥

निसोत और पिप्पलीके चूर्णको घीमें भूनकर समान भाग गुडकी चाशनीमें मिलाकर मोदक बना लीजिए।

इन्हें मण्डके साथ सेवन करनेसे सन्निपात नष्ट होता है।

(२४१५)त्रिवृतादि वटिका(ग.नि.।उदावर्त्त.)

त्रिवृद्धरीतकी श्यामा स्नुहीक्षीरेण भावयेत्।
वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठास्त्वानाहभेदने ॥

निसोत, हर्र और काली निसोतका चूर्ण समान भाग लेकर उसे थोहर (सेहुंड)के दूधमें घोटकर (चनेके बराबर) गोलियां बना लीजिए।

इन्हें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे विरेचन होकर अफारा नष्ट हो जाता है।

(२४१६) त्रिवृदष्टकमोदकः

(सु. संहिता। सूत्र. अ. ४४)

व्योषं त्रिजातकं मुस्ता विडङ्गामलके तथा।
नवैतानि समांशानि त्रिवृदष्टगुणानि वै॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतानीह दन्तीभागद्वयं तथा।
सर्वाणि चूर्णितानीह गलितानि विमिश्रयेत्॥
षडभिश्च शर्कराभागैरीषत्सैन्धवमाक्षिकैः।
पिण्डितं भक्षयित्वा तु ततः शीताम्बु पाययेत्॥
वस्तिरुक्तृड्ज्वरच्छर्दिशोष पाण्डुभ्रमापहम्।
निर्यन्त्रणमिदं सर्वं विषघ्नन्तु विरेचनम्॥
त्रिवृदष्टकसंज्ञोयं प्रशस्तःपित्तरोगिणाम्।
भक्ष्यःक्षीरानुपानो वा पित्तश्लेष्मातुरैर्नरैः॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, मोथा, वायविडंग और आमलेका चूर्ण १-१ भाग, निसोतका चूर्ण ८ भाग तथा दन्तीमूलका चूर्ण २ भाग।

सबको ६ भाग मिश्रीकी चाशनीमें मिलाएं और उसके ठण्डे हो जाने पर उसमें १।-१। तोला शहद और सेंधा नमकका चूर्ण मिलाकर मोदक बना लें।

इन्हें शीतल जलके साथ सेवन करनेसे वस्तिकी पीड़ा, तृषा, ज्वर, छर्दि, शोष और पाण्डु रोग नष्ट होता है।

यह विकार रहित विरेचन और विषघ्नौषध है। तथा पित्त रोगोंमें अत्यन्त उपयोगी है। पित्त कफज रोगोंमें दूधके साथ भी दे सकते हैं।

(२४१७) त्रोटहरीगुटिका (ग.नि.। परि.गुटि.)

शुण्ठीसक्तुपुनर्नवात्रिफलिकासैरेयशेफालिका-
मुस्तावासकनिम्बपत्रकटुकाबोलाश्वगंधावचाः।
व्योषच्छिन्नरुहाविडङ्गसहिताःसर्वाःसमांशा बुधै-
र्विंशांशाचमहौषधीपरिमिता,खंडस्यविंशांशकाः॥
त तुल्येन च गोघृतेन मधुना सर्वं च संमर्दितम्।
बद्धा तेन शिवाप्रमाणगुटिका श्लेष्माणमुग्रं जयेत्
क्षीणस्यानिलजानि हन्ति सहसा सर्वप्रमेहांस्तथा
नाम्ना त्रोटहरी गुटी च विजयालोकेच या विश्रुता॥

सोंठ, सत्तू, पुनर्नवा, हर्र, बहेड़ा, आमला, कटशरैया, हारसिंगारकी जड़, मोथा, वासा, नीमके पत्ते, कुटकी, बोल, असगन्ध, वच, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), गिलोय और वायविडंगका चूर्ण १-१ भाग, सोंठका चूर्ण २० भाग, खाण्ड, गायका घी और शहद २०-२० भाग लेकर समस्त चूर्णको घीमें मर्दन करके खांडकी चाशनीमें मिलाइये और कुछ ठण्डा होनेपर उसमें शहद मिलाकर आमलेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे भयङ्कर कफज रोग और वातज प्रमेह नष्ट होते हैं।

त्र्यूषणादिगुटिका (वं. से. पाण्डु)

रसप्रकरणमें देखिये।

त्र्यूषणादि गुटिका (र. र.। शिरो.)

रसप्रकरणमें देखिये।

त्र्यूषणादिमण्डूरवटिकाः(भा.प्र.खं.२।पाण्डु)

रसप्रकरणमें देखिए।

(२४१८) त्र्यूषणादिवटी (वृ.नि.र.।अरुचि.)

त्र्यूषणकपित्थशर्करारोचकेन च साधयेद्वटी ।
सेविता च साजायतेनरोभीमसेनवद्भक्षयेत् लालसः

सोंठ, मिर्च, पीपल, कैथका गूदा (गर्भ) सञ्चल और मिश्री समान भाग लेकर महीन चूर्ण करके गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे रुचि और अग्नि अत्यधिक बढ जाती है।

इति तकारादि गुटिकाप्रकरणम् ॥

अथ तकारादि गुग्गुलुप्रकरणम् ।

(२४१९) त्रयोदशाङ्गगुग्गुलुः

(भै. र., वं. से., वै. र.; भा. प्र, ग. नि. खं. २; वृ. मा.; र. र.; च. द. । वा. व्या; वृ. यो. त. । त. ९८; यो. त. । त. ४०)

आभाऽश्वगन्धा हवुषा गुडूची
शतावरी गोक्षुरवृद्धदारम्[1] ।
रास्ना[2] शताह्वा सशटी यमानी*
सनागरा चेति समैश्च चूर्णम् ॥
तुल्यं भवेत्कौशिकमत्र मध्ये
देयं तथा सर्पिरथार्धभागम् ।
अक्षार्द्धमात्रन्तु ततःप्रयोगात्
कृत्वानुपानं सुरयाथ यूषैः ॥
कटिग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठे
हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे ।
सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते
मज्जाश्रिते स्नायुगते च कुष्ठे ॥
रोगाञ्जयेद्वातकफानुविद्धान्
वातेरितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान् ।
भग्नास्थि विद्धेषु च खञ्जवाते
त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति सन्तः ॥

टि०—गुग्गुलोरर्धभागं घृतं । वृद्धवैद्यास्तु यावता घृतेन गुग्गुलु पिष्टं भवति तावदेव घृतं गृह्णन्ति ।

कीकरके फल, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावर, गोखरु, विधारा, रास्ना, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठका चूर्ण समान भाग और सबके बराबर शुद्ध गूगल तथा गूगलसे आधा घृत लेकर गूगल और समस्त द्रव्योंके चूर्णको एकत्र मिलाकर थोड़ा थोड़ा घी डालकर कूटें।

इसे आधे कर्ष (७॥ माशे) की मात्रानुसार मद्य अथवा यूषके साथ सेवन करनेसे कटिग्रह, गृध्रसि, हनुग्रह, बाहु, पृष्ठ, जानु (घुटना), पैर, सन्धि, अस्थि, मज्जा और स्नायुगत वायु, कुष्ठ, वातज और कफज रोग, हृद्ग्रह, योनिदोष, खञ्जवात और अस्थिभग्नादि रोग नष्ट होते हैं।

नोट—अनुभवी वैद्य इसमें घृत उतना ही

[1] गोक्षुरकश्च रास्नेति, गोक्षुरकं समङ्गेति च पाठान्तरम् ।

[2] श्यामेति पाठान्तरम् ।

* श्यामा शटी चोपचती यमानीति पाठान्तरम् ।

डालते है कि जितनेसे अच्छी तरह कूटा जा सके।

(व्यवहारिक मात्रा ३ माशे तक)

(२४२०) त्रिकण्टकादिगुग्गुलुः

(वृ. नि. र । मूत्र.)

त्रिकण्टकानां क्वथितेऽष्टनिघ्ने
पुरं पचेत् पाकविधानयुक्त्या ।
फलत्रिकव्योषपयोधराणां
चूर्णं पुरेण प्रमितं विदध्यात् ॥
वटी प्रमेहञ्च समूत्रघातं
सवातकृच्छ्रञ्च तथाश्मरीञ्च ।
शुक्रस्य दोषान् सकलांश्च वातान्
निहन्ति मेघानिव वायुवेगः ॥

१ सेर गोखरुको ८ सेर पानीमें पकाकर १ सेर शेष रहने पर छानकर उसमें १० तोले गूगल मिलाकर पकाएं, जब वह गाढा हो जाय तो उसमें त्रिफला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), और मोथेका समभाग मिश्रित १० तोले चूर्ण मिलाकर कूटकर गोलियां बनाएं ।

इनके सेवनसे प्रमेह, मूत्राघात, वातज मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और शुक्रदोष नष्ट होते है ।

(मात्रा—३ माशे तक । अनुपान त्रिफलाक्वाथ या उष्ण दूध ।

(२४२१) त्रिफलादिगुग्गुलुः

(भा. प्र. । ख. २. वात. र.)

त्रिफलातिविषादारुदार्वीमुस्तापरूषकैः ।
खदिरासन नक्ताह्वगुडूचीनृपपादपैः ॥
भूनिम्बकटुकाकलिङ्गकुलकैः समैः ।
क्वाथं कृत्वा ततःपूतं भृतमष्टगुणेम्भसि ॥
गडूच्यास्तत्र सुकृतं चूर्णमर्द्धन्तु वारिणि ।
क्षिप्त्वा सुनूतने भाण्डे वासयेद्रजनीतगम् ॥
सोमोपेतेन पूतेन कौशिकं परिभावयेत् ।
षड्गुणेन तु सप्ताहं शिलाजतुसमन्वितम् ॥
सूक्तस्य तु पलान्यष्टौ समावाप्य विचक्षणः ।
ताप्यचूर्णं पलञ्चैकं द्वे पले मधुसर्पिषो ॥
एकीकृत्य समं सर्वं लिह्यात्सुत्रिफलाम्बुना ।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम् ।
निहन्ति वीर्यतःक्षिप्रं कुष्ठरोगान्व्रणानपि ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, अतीस, दारुहल्दी, देवदारू, मोथा, फालसेकी छाल, खैरसार, असन, करञ्ज, गिलोय, अमलतासकी छाल, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी, इन्द्रजौं और पटोलपत्र समान भाग लेकर आठ गुने पानीमें पकाइये, जब आठवां भाग पानी शेष रहे तो छानकर उसमें उससे आधा गिलोयका चूर्ण मिला दीजिए और एक रात रक्खा रहने दीजिए। दूसरे दिन उसमें क्वाथका आठवां भाग बावचीका चूर्ण मिलाकर थोड़ा पकाकर छान लीजिए । अब गूगल और शिलाजीत समान भाग लेकर दोनोमें छ गुना उपरोक्त क्वाथ मिलाकर घोटिए, जब क्वाथ सूख जाए तो फिर डालकर घोटिए, इसी प्रकार ७ भावनाएं दीजिए। तत्पश्चात् उसमें ८ भाग सुक्त (कांजी), १ भाग सोनामक्खीकी भस्म, १ भाग घी और १ भाग शहद मिलाकर मर्दन कर लीजिये।

इसे त्रिफलाक्वाथके साथ ३१ दिन तक सेवन करनेसे भयङ्कर वातरक्त, कुष्ट और व्रण नष्ट होते है ।

(मात्रा=३ माशे तक)

(२४२२) त्रिफलागुग्गुलुः (र. र. । वात.)

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं वचा ।
चित्रकं मधुकञ्चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥
अयश्चूर्णं पलान्यष्टौ गुग्गुलुस्तावदेव च ।
आलोड्य मधुनोपेतं पलद्वादशकेन च ॥
प्रातर्विभज्य भुञ्जानो जीर्णे तस्मिञ्जयेद्रुजः ।
आमवातं तथा गुल्मं श्वयथुं विषमज्वरम् ॥
जीर्णानुसम्भवं शूलं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥

त्रिफला, मोथा, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), बायबिडंग, पोखरमूल, बच, चीता और मुलैठीका सूक्ष्म चूर्ण १–१ पल (५–५ तोले) तथा लोहचूर्ण और गूगल ८–८ पल लेकर सबको एकत्र मिलाकर खूब कूटें और फिर उसमें १२ पल शहद मिला लें ।

इसे प्रातःकाल सेवन करना चाहिए और इसके पचने पर यथोचित आहार करना चाहिए ।

इसके सेवनसे आमवात, गुल्म, सूजन, विषमज्वर, परिणाम शूल, पाण्डु और हलीमक रोग नष्ट होता है ।

(मात्रा–१ माशा । अनुपान–उष्ण जल ।)

(२४२३) त्रिफलागुग्गुलुः

(शा. ध. । खं. २ अ. ७; यो. चि. म. । अ. ७)

त्रिपलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम् ।
गुग्गुलुपञ्चपलिकः क्षोदयेत्सर्वमेकतः ॥
ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुञ्जाद्वह्न्यपेक्षया ।
भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत् ॥

त्रिफलाका चूर्ण ३ पल, पीपलका चूर्ण १ पल, (५ तोले) और गूगल ५ पल लेकर सबको एकत्र कूटकर गोलियां बना लीजिए ।

इनके सेवनसे भगन्दर, गुल्म, शोथ और अर्श रोग नष्ट होता है ।

(मात्रा–३ माशे । अनुपान त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र या उष्ण जल ।)

नोट–योगरत्नाकरमें यही प्रयोग अन्तर्विद्रध्यधिकार में लिखा है, उसमें पीपल २ पल लिखी है। गुणोंके विषयमें लिखा है कि इसके सेवनसे अत्यन्त पीपवाली पक्वविद्रधि, नासूर और गण्डमाला नष्ट होती है। पथ्य–घृतयुक्त आहार ।

(२४२४) त्रिफलादिगुग्गुलुः

(वृ.नि.र., ऊरु.; वं.से.। गण्डमा.; ग. नि.। गुटि.)

त्रिफलात्रिवृतादन्तीनीलिनीचतुरङ्गुलैः ।
पञ्चविंशतिसंख्यातैः प्रत्येकं पलमात्रया ॥
क्वथिते कुट्टिते चैभिश्चतुर्द्रोणे प्रमाणतः ।
पचेत्सलिले तावद्यावद्द्रोणावशेषितम् ॥
पश्चात्तत्र निक्षिप्य गुग्गुलुस्तु पलान्यपि ।
क्वाथयेद्धि घनं यावत्तावत्पूर्ववत्पचेत् ॥
तावतास्मिन् घनीभूते त्वगेलानागकेसरम् ।
त्रिकटु त्रिफला पत्रं यवानीजीरकाणि च ॥
पिप्पली दहनश्चैव हपुषा कृष्णजीरकम् ।
चाव्यिका साजमोदा च तिन्तडीचाम्लवेतसौ॥
सौवर्चलयुता कृत्वा श्लक्ष्णचूर्णं विनिःक्षिपेत् ।
प्रत्येकमेकपलिकैर्भागैः सम्यक् विचक्षणैः ॥
ततोक्षमात्रां गुटिका भक्षयेत्तु दिने दिने ।
ऊरुस्तम्भोरुग्रन्थितगण्डमालोदरार्दितः ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, निसोत, दन्तीमूल, नीलीनि और अमलतास। इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण २५ पल (१ सेर ९ छटांक) लेकर सबको १२८ सेर पानीमें पकाइये, जब ३२ सेर पानी शेष रहे तो छानकर उसमें ५० पल गूगल मिलाकर पुनः पकाइये और जब गाढ़ा हो जाय तो उसमें १-१ पल (५-५ तोले) दालचीनी, इलायची, नागकेसर, सोंठ, मिर्च, पीपल, बहेड़ा, आमला, तेजपात, अजवायन, जीरा, पीपल, चीता, हाउबेर, कालाजीरा, हिङ्गुपत्री, अजमोद, तिन्तड़ीक, अम्लवेत और सौचल (काला नमक)का चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह कूटकर १-१ कर्ष (१। तोले)की गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे ऊरुस्तम्भ, ऊरुग्रन्थि, गण्डमाला और उदररोग नष्ट होते हैं।

(व्यवहारिक मात्रा २-३ माषे। अनुपान-उष्ण जल)

(२४२५) त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः

(ग. नि.। गुटिकाधिकार.)

पलानि क्वाथयेत्षष्टिं त्रिफलायास्तु गुग्गुलोः।
पलैः षोडशभिः सार्धमपां द्रोणद्वयेन तु ॥
चतुर्भागवशेषन्तु कृत्वा भूयोऽप्यधिश्रयेत्।
घनीभूतं कषायन्तु ज्ञात्वा चोद्धृत्य निःक्षिपेत् ॥
छिन्नाविडङ्गव्योषाणां चूर्णानि पलिकानि च।
ततो मात्रां बलापेक्षी भक्षयेद्वातरक्तिनम्।
कुष्ठिनं श्वित्रिणश्चैव गुल्मिनं मेहिनन्तथा।
बलं मेधां स्मृतिं ज्ञानं तेज आयुर्विवर्धयेत् ॥

६० पल (३०० तोले) त्रिफलाको कूटकर २ द्रोण (३२ सेर) शुद्ध पानीमें पकाइये और पकते समय उसमें १६ पल (८० तोले) शुद्ध गूगल कपड़ेकी पोटलीमें बांधकर डालदीजिए। जब ८ सेर पानी शेष रहे तो क्वाथको बारीक छलनी या धोतरसे छानकर पुनः पकाइये। (यदि कपड़ेमें कुछ गूगल रह गया हो तो उसे निकालकर इस क्वाथमें ही डाल दीजिये।) जब क्वाथ गाढ़ा हो जाय तो उसमें गिलोय, वायविडंग, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च और पीपल)का १-१ पल (५-५ तोले) चूर्ण मिला दीजिए।

इसे यथोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, श्वित्र (सफेद कोढ़), गुल्म और प्रमेह नष्ट होता तथा बल, बुद्धि, स्मरणशक्ति, ज्ञान, तेज और आयुकी वृद्धि होती है।

(२४२६) त्र्यूषणादि गुग्गुलुः

(भा. प्र.। ख. २ मेदो.)

त्र्यूषणाग्निघनवेल्लवचाभि
र्भक्षयन्समघृतं महिषाक्षम्।
आशु हन्ति कफमारुतमेदो
दोषजान्बलवतोऽपि विकारान् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), चीता, सुगन्धबाला, वायविडंग और वचका चूर्ण १-१ भाग और गूगल इन सबको बराबर लेकर घी डालकर कुटवा लीजिए।

इसके सेवनसे कफज, वातज और मेदज बलवान रोगभी अत्यन्त शीघ्र शान्त हो जाते हैं।

(२४२७) त्र्यूषणादिगुटिका (गुग्गुलु)

(र. र.। वात.)

त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रकं रजनीद्वयम्।
अजमोदां यवानीं च पथ्या तुल्या सुवर्चलैः ॥
सैन्धवं वाकुचीबीजं यवक्षारं विडं वचाम्।
प्रत्येकञ्च त्रिमाषन्तु सर्वतुल्यं च गुग्गुलम् ॥

अम्लवेतसकर्षैकं किञ्चिदाज्येन कुट्टयेत् ।
गुटिका च हिता वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे॥
दृढं करोति भग्नश्च जठरानलदीपिनी ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), पीपलामूल, चीता, हल्दी, दारुहल्दी, अजमोद, अजवायन, हर्र, काला नमक (सञ्चल), सेंधा, बाबची, यवक्षार, बायबिड़ंग और बचका चूर्ण ३–३ माशे तथा इन सबके बराबर शुद्ध गूगल और १। तोला अमलवेतका चूर्ण एकत्र मिलाकर घृत डालकर अच्छी तरह कूटकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे आमवात, सन्धि, अस्थि और मज्जागत वायु नष्ट होती तथा टूटी हुई हड्डीका जोड़ मज़बूत और अग्नि दीप्त होती है।

(२४२८) त्र्यूषणादिगुटिका (गुग्गुलु)
(च. द.। प्रमे.)

त्रिकटु त्रिफला चूर्णं तुल्ययुक्तं तु गुग्गुलम्।
गोक्षुरक्वाथसंयुक्तं गुटिकां कारयेद्भिषक् ।
दोषकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमीकीम् ।
न चात्र परिहारोस्ति कर्मकुर्याद्यथेप्सितम् ॥
प्रमेहान्मूत्रघातांश्च बालरोगोदरं जयेत् ।

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला, (हर्र, बहेड़ा, और आमलेका चूर्ण) १–१ भाग तथा शुद्ध गूगल सबको बराबर लेकर गोखरुके क्वाथमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इन्हें दोष, काल और बलाबलके अनुसार सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्राघात, बालरोग और उदर विकार नष्ट होते है।

इनके सेवनकालमें किसी प्रकारके भी परहेज़ की आवश्यकता नहीं हैं।

(मात्रा ३ माशे। अनुपान उष्ण जल)

इति तकारादिगुग्गुलुप्रकरणम् ॥

अथ तकारादि लेहप्रकरणम् ।

(२४२९) त्रिफलापाकः
(नपुंसकामृतार्णव। त ७)

प्रस्थार्द्धं त्रिफलाचूर्णं शुद्धतोये विभावयेत् ।
चतुःपले घृते भर्ज्यं मन्दमन्देन वह्निना ॥
त्रिकटु गोक्षुरु एला चित्रकं पुष्करं तथा।
शाणद्वयप्रमाणेन मुस्तकं त्वक्पत्रजम् ॥
निस्तुषं धान्यकं दद्यात्पलार्द्धं च प्रमाणतः ।
काश्मीरमश्मजं शुद्धं षण्मासश्च प्रमाणतः ॥
प्रस्थैकस्य सितायास्तु पाकं कृत्वा विधानतः।
शीते मधु प्रदातव्यं कुडवैकमितन्तथा ॥
कर्षद्वयप्रमाणेन भोक्तव्यं च द्विसन्ध्ययोः ।
नेत्ररोगशिरोरोगान्सर्वान्मेहांश्च नाशयेत् ॥

आधे प्रस्थ (४० तोले) त्रिफलाके चूर्णको स्वच्छ पानीमें भिगो दीजिए; जब वह कोमल हो जाय तो उसे फिर पीसकर पिट्ठीसी बना लीजिए और फिर ४ पल (२० तोले) घीमें मन्दाग्नि पर भून लीजिए। तत्पश्चात् १ प्रस्थ (८० तोले) खांडकी चाशनी करके उसमें यह त्रिफला और त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), गोखरु, इलायची, चीता और पोखरमूलका चूर्ण २–२ शाण (१० माशे); मोथा, दालचीनी, तेजपात, और तुष (भूसी) रहित धनियेका चूर्ण २॥ २॥ तोले तथा ७॥ माशे शुद्ध शिलाजीत और केसर मिला दीजिए और ठण्डा होने पर उसमें २० तोले शहद मिलाइये।

इसे प्रतिदिन प्रातः सायं २ कर्ष (२॥ तोले) मात्रानुसार सेवन करनेसे समस्त नेत्ररोग, शिरोरोग और प्रमेह नष्ट होता है।

(२४३०) त्रिफलावलेहः (वृ.नि र.। अर्जी.)

त्रिफलामुस्तविडङ्गैः कणया सितया समैः।
स्यात्खरमञ्जरिवीजैर्लेहो भस्मकनाशनः॥

हर्रे, बहेड़ा, आमला, मोथा, वायविड़ंग, पीपल, अपामार्ग (चिरचिटे)के बीज और मिश्री समान भाग लेकर पीसकर शहदमें (अथवा मिश्री-की चाशनीमें) मिलाकर अवलेह बना लीजिए।

इसे सेवन करनेसे भस्मक रोग नष्ट होता है।

इति तकारादि लेहप्रकरणम्॥

अथ तकारादि घृतप्रकरणम्।

(२४३१) तण्डुलीयकं घृतम्

(र. र.; वं. से.; भै. र.; धन्वं.। विष.)

तण्डुलीयकमूलेन गृहधूमेन चैकतः।
क्षीरेण सघृतं सिद्धं समस्तविषरोगनुत्॥

चौलाईकी जड़ और घरके धुवेंके कल्क तथा दूधके साथ पका हुवा घृत पीनेसे समस्त विषविकार नष्ट होते है।

(चौलाईकी जड़ ४ तो., घरका धुवां ४ तो., घी ३२ तोले। दूध १२८ तोले)

(२४३२) तिक्तकं घृतम्

(ग. नि.। घृता ; वृ. नि. र.। त्व.; वं. से.; वृं. मा.। कुष्ठ.; वा. भ.। चि. स्था. अ. १८)

पटोलनिम्बकटुकादार्वीपाठादुरालभाः।
पर्पटं त्रायमाणां च पलांशं पाचयेदपाम्॥
द्व्याढकेऽष्टांशशेषेण तेन कर्षोन्मितैस्तथा।
त्रायन्तीमुस्तभूनिम्बकलिङ्गकणचन्दनैः॥
सर्पिषो द्वादशपलं पचेत्तत्तिक्तकं जयेत्।
पित्तकुष्ठपरीसर्पपिटिकादाहतृड्भ्रमान्॥
कण्डूपाण्ड्वामयान्गण्डान् दुष्टनाडीव्रणापचीः।
विस्फोटकविद्रधीगुल्मशोफोन्मादमदानपि॥
हृद्रोगतिमिरव्यङ्गग्रहणीश्वित्रकामलाः।
भगन्दरमपस्मारमुदरं प्रदरं गरम्॥
अर्शोस्रपित्तमन्यांश्च सुकृच्छ्रान्पित्तजान् गदान्

पटोलपत्र, कुटकी, नीमकी छाल, दारुहल्दी, पाठा, धमासा, पित्तपापड़ा और त्रायमाणा १-१ पल (५-५ तोले) लेकर १६ सेर पानीमें पका-इये। जब २ सेर पानी शेष रहे तो छानकर उसमें १-१ कर्ष (१।-१। तोला) त्रायमाणा, मोथा, चिरायता, इन्द्रजौ, पीपल और चन्दनका कल्क तथा १२ पल (६० तोले) घी मिलाकर पकाइये। जब समस्त पानी जल जाय तो उतारकर छान लीजिए।

यह घृत पित्त, कुष्ठ, विसर्प, पिटिका, दाह, तृष्णा, भ्रम, खुजली, पाण्डु, नाड़ीव्रण (नासूर), अपची (गण्डमाला भेद), विस्फोटक, विद्रधी, गुल्म, शोथ, उन्माद, मद, हृद्रोग, तिमिर, व्यङ्ग, ग्रहणी, श्वित्र (श्वेत कुष्ठ), कामला, भगन्दर, अपस्मार, उदररोग, प्रदर, अर्श और रक्तपित्तादि, पित्तज रोगोंका नाश करता है।

(२४३३) तिक्तादिघृतम्

(वृ. नि. र; यो. र., वं. से., च. द.। व्रण.; वृ. यो. त.। त. १११)

तिक्तासिक्थनिशायष्टीनक्ताह्वफलपल्लवैः।
पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्व्रण्यं घृतं शृतम्॥

कुटकी, मोम, हल्दी, मुलैठी, करञ्जके पत्ते और फल, पटोलपत्र, चमेली और नीमके पत्ते इनके क्वाथ और इन्हींके कल्कसे सिद्ध घृतको

घाव आराम होनेके पश्चात् उस स्थान पर लगाने से त्वचाका रंग ठीक हो जाता है।

(२४३४) तिक्ताद्यं घृतम् (वं. से. श्वास.)

तिक्तासौवर्चलक्षारपथ्यात्रिकटुहिङ्गुभिः ।
समालूरैघृतं सिद्धं सक्षीरं श्वासकासनुत् ॥
गुल्मानाहश्च शमयेत्प्रवृद्धान्गुदजानपि ॥

कुटकी, सौवर्चल (काला नमक-सञ्चल) यवक्षार, हर्र, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हींग, और बेलकी छालके कल्क तथा दूधके साथ सिद्ध घृत खानेसे खांसी, श्वास, गुल्म, अफारा और अर्श (बवासीर) रोग नष्ट होता है।

(कुटकी आदि प्रत्येक द्रव्य ५ तो०, घी १८० तोले, दूध ७२० तो. अर्थात् ९ सेर)

(२४३५) तिल्वकघृतम् (वं.से. वातव्याध्य.)

पलाष्टकं तिल्वकतो वचायाः
प्रस्थं पलं शिग्रु च पञ्चमूलम् ।
सैरण्डसिंही त्रिवृतं घटेपाम्
पक्त्वा पचेत्पादशतेन तेन ॥
दध्नोपेतं यावशूकांशबिल्वैः ।
सर्पिष्प्रस्थं हन्ति तत्सेव्यमानम् ॥
दुष्टान्वातानेकसर्वाङ्गसंस्थान ।
योनिव्यापद्ब्रध्नगुल्मोदरश्च ॥

लोध ८ पल (४० तोले), बच १ प्रस्थ (१ सेर), सहंजनेकी छाल, वेल, सोनापाठा (अरलु) की छाल, खम्भारीकी छाल, पाढलछाल, अरणी, अरण्डमूल, कटैली और निसोत १-१ पल (५-५ तोले) लेकर सबको १६ सेर पानीमें पकाइए। जब ४ सेर पानी जल जाय तो उसे छानकर उसमें १ प्रस्थ (१ सेर) घी, ४ सेर दहीं और १०-१० तोले जवाखार तथा वेलकी छालका कल्क मिलाकर पकाइए।

इसके सेवनसे एकांगगत तथा सर्वांगगत दुष्ट वातव्याधि, योनिरोग, ब्रध्न और गुल्मरोग तथा उदररोग नष्ट होते हैं।

(२४३६) तिल्वकाख्यं घृतम्

(वं. से. । वातव्याधि)

त्रिफला शङ्खिनी दन्ती विडङ्गं त्रिवृता सुधा ।
कार्षिकाणि पचेत्तानि तिल्वकस्य पलेन च ॥
दध्नि च त्रिवृताक्वाथे घृतप्रस्थं चतुर्गुणे ।
तिल्वकाख्यं घृतं तत्स्याद्विरेके वातरोगिणम् ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, शंखपुष्पी, दन्ती, बाय बिड़ंग, निसोत और थूहर (सेंड) का दूध १-१ कर्ष (१।-१। तोला) तथा लोध १ पल (५तोले) लेकर इनके कल्क तथा ४ प्रस्थ दही और ४ प्रस्थ निसोतके काथके साथ १ प्रस्थ (८० तोले) घृत पका लीजिए।

यह घृत वातरोगियोंको विरेचन देनेके लिए उपयोगी है।

(२४३७)तिल्वकाद्यं घृतम् (ग. नि। घृता.)

तिल्वकस्य पलान्यष्टौ त्वचस्तु सुकुतादतः ।
अंशुमत्युरुबूकश्च विल्वाद्यश्च पृथक् पलम् ॥
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं फलत्रिकात् ।
तत्साधयेज्जलद्रोणे चाष्टभागावशेषितम् ॥
घृतप्रस्थं पचेत्तेन दत्वा दध्नस्तथाढकम् ।
कर्षेण यावशूकस्य पक्वं तदवचूर्णयेत् ॥
एतत्तु तैल्वकं नाम जीर्णज्वरविषापहम् ।
कृमिकुष्ठहरश्चैव शोफपाण्ड्वामयापहम् ॥

लोध आठ पल, मैंडफलकी छाल, शालपर्णी, अरण्डमूल, बेलछाल, अरलुकी छाल, खम्भारीछाल, पाढलछाल और अरनी १-१ पल (५-५ तोले) तथा जौ, बेर, कुलथ और त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला) १-१ प्रस्थ (८० तोले) लेकर सबको ३२ सेर पानीमें पकाइए, जब ४ सेर पानी शेष रहे तो उसे छानकर उसके साथ १ आढक (४ सेर) दही मिलाकर १ प्रस्थ घृत पकाइए और सब पानी जल जानेके पश्चात् घीमें १ कर्ष (१। तोला) जवाखार मिला दीजिए।

इसके सेवनसे जीर्णज्वर, विष, कृमि, कुष्ठ, शोथ और पाण्डुरोग नष्ट होता है।

(२४३८) तुरङ्गगन्धाघृतम् (यो.स.। समु.५)

तुरङ्गगन्धाक्काथेन विपचेदाज्यमुत्तमम् ।
ऋतुकाले मुहुःपीतं वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥

असगन्धके क्वाथके साथ पका हुवा घृत ऋतुकालमें सेवन करानेसे वन्ध्या स्त्री गर्भ धारण करती है।

(घी १ सेर। क्वाथ ४ सेर। असगन्धका कल्क पाव सेर। मात्रा १ तोला। अनुपान दूध।)

(२४३९) तृणपञ्चमूलाद्यं घृतम्

(भा. प्र., म. ख.; वं. से. । अश्म)

पञ्चमूल्यास्तृणाख्यायास्तथा गोक्षुरकस्य तु ।
पृथग्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
गुडगोक्षुरबीजञ्च कल्कं तत्र प्रदापयेत् ।
तत्सिद्धं मूत्रदोषेषु शर्करास्वश्मरीषु च ।
स्नेहने भोजने चैव प्रयोज्यं सर्पिरुत्तमम् ॥

तृणपञ्चमूल (शर, दाभ, कुश, कास और ईख) तथा गोखरू। प्रत्येक वस्तु १०-१० पल (५०-५० तोले) लेकर सबको ३२ सेर पानीमें पकाइए, जब ४ सेर पानी शेष रहे तो छान लीजिए। इस क्वाथ और १०-१० तोले गुड़ और गोखरूके कल्कके साथ १ सेर घृत पका लीजिए।

इसके सेवनसे मूत्रदोष, शर्करा और अश्मरी नष्ट होती है।

इसे स्नेहनके लिए अथवा भोजनमें प्रयुक्त करना चाहिए।

(२४४०) तेजोवत्यादिघृतम्

(च. द.; धन्व.। हिक्का; च. सं.,)

तेजोवत्यभयाकुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ।
भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशं चित्रकं शठी ॥
सौवर्चलं तामलकीं सैन्धवं बिल्वपेशिका ।
तालीसपत्रं जीवन्तीं वचां तैरक्षसंमितैः ॥
हिङ्गुपादैर्घृतं प्रस्थं पचेत्तोयचतुर्गुणे ।
एतद्यथाबलं पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः ॥
शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव च ॥

चव्य, हर्र, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पोखरमूल, पलाश (ढाक) की छाल, चीता, कचूर, सञ्चल (काला नमक), भुइं आमला, सेंधा, बेलगिरि, तालीसपत्र, जीवन्ती और बच। एक एक कर्ष (१।-१। तोला) तथा हींग २० तोले लेकर सबको पानीके साथ पीसकर कल्क बनाइए।

तत्पश्चात् यह कल्क, १ सेर घी और ४ सेर पानी एकत्र मिलाकर पकाइए। जब सब पानी जल जाय तो घृतको छानकर रख लीजिए।

इसे अग्निबलोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे हिचकी, श्वास, शोथ, अग्निमांद्य, अर्श, ग्रहणीरोग

और हृदय तथा पसलीकी पीड़ा शान्त होती है।

(२४४१) त्रायमाणाद्यं घृतम्

(च. सं. । चि. स्था. अ. ५, वं. से.; भै. र.; धन्व., च. द. । गुल्म.)

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणा चतुष्पलम् ।
पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः सयोज्य कार्षिकैः ॥
रोहिणीकटुकामुस्तत्रायमाणादुरालभाः ।
द्राक्षातामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥
रसस्यामलकानाञ्च क्षीरस्य च घृतस्य च ।
एतानि पृथगष्टाष्टौ दत्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं वीसर्पं पैत्तिकं ज्वरम् ।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥

४ पल (२० तोले) त्रायमाणाको ४० पल पानीमें पकाइए, जब २० पल पानी शेष रहे तो उसे छान लीजिए। तत्पश्चात् मांसरोहिणी, कुटकी, मोथा, त्रायमाणा, धमासा, मुनक्का, भुईआमला, खस, जीवन्ती, चन्दन और नीलोफर १-१ कर्ष (११-११ तोला) लेकर सबको पानीके साथ पीस लीजिए। पश्चात् यह कल्क, उक्त क्वाथ और ८-८ पल आमलेका रस, दूध और घी एकत्र मिलाकर पकाइए।

जब समस्त दूध और क्वाथ जल जाय तो घृतको छान लीजिए।

इसके सेवनसे पित्तज और रक्तज गुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठ नष्ट होता है।

(२४४२) त्रिकण्टकादिघृतम्

(च. सं. । चि. स्था, प्र., वृं. मा.; र. र. । प्रमे.)

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवल्कै-
र्भल्लातकैःसातिविषैःसरोध्रैः ।
वचापटोलार्जुननिम्बमुस्तै-
र्हरिद्रयापद्मकदीप्यकैश्च ॥
मञ्जिष्ठया चागुरुचन्दनैश्च-
सर्वैः समस्तैः कफवातजेषु ।
मेहेषु तैलं विपचेत्घृतन्तु
पैत्तेषु मिश्रं त्रिषु लक्षणेषु ॥

गोखरु, पत्थरचटा, बावची, भिलावा, अतीस, लोध, बच, पटोलपत्र, अर्जुनकी छाल, नीमकी छाल, मोथा, हल्दी, पद्माक, अजवायन, मजीठ, अगर और चन्दन। इनके कल्क तथा क्वाथके साथ तैल पकाकर वातज तथा कफज प्रमेहमें और घृत पकाकर पित्तज प्रमेहमें प्रयुक्त कराना चाहिए। यदि तीनो दोषोंसे उत्पन्न प्रमेह हो तो घृत और तेल मिलाकर पका लेना चाहिए।

(२४४३) त्रिकण्टकाद्यं घृतम्

(वं. से.; भै. र.; वृं. मा.; ग. नि.; र. र.; यो. र., च. द., भा. प्र.; धन्व. । मूत्रकृ.; र. यो. त. । त. १००)

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरु—
कर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।
सर्पिर्गुडर्द्धांशमितं प्रयोज्यं
कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातदोषे ॥

गोखरु, अरण्डमूल और कुशादि पञ्चमूल (कुश, काश, शर, दाभ, ईखकी जड)का क्वाथ ४ सेर, शतावर, पेठा और ईखका रस ४-४ सेर तथा घी ४ सेर लेकर एकत्र पकाइए। जब घृतमात्र शेष रहे तो छानकर उसमें २ सेर गुड मिलाकर अच्छी तरह विलोडित कर लीजिए।

इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और मूत्राघात रोग नष्ट होता है। (मात्रा २ तोले)

(२४४४) त्रिफलाघृतम् (१)

(शा. ध. । ख. २. अ. ९)

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वासारसोद्भवम् ।
भृङ्गराजरसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयः स्मृतम् ॥
दत्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कैः कर्षमितैः पृथक् ।
त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चन्दनं सैन्धवं बला ॥
काकोली क्षीरकाकोली मेदा मरिचनागरम् ।
शर्करा पुण्डरीकं च कमलं च पुनर्नवा ॥
निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरेभिर्विपाचयेत् ।
नक्तान्ध्यं नकुलान्ध्यं च कण्डूं पिल्लं तथैव च ।
नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं चाजकं जयेत् ।
अन्येऽपि प्रशमं यान्ति नेत्ररोगाः सुदारुणाः ॥
त्रैफलं घृतमेतद्धि पाने नस्यादि सूचितम् ॥

त्रिफलेका क्वाथ १ सेर, वासेका रस १ सेर, भंगरेका रस १ सेर और बकरीका दूध १ सेर तथा घी १ सेर और १-१ कर्ष (१।-१। तोला) त्रिफला, पीपल, मुनक्का, चन्दन, सेंधा, बला (खरैंटी), काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, मिर्च, सोंठ, मिश्री, लाल कमल, श्वेत कमल, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी और मुलैठीका कल्क लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाइए।

इसके सेवनसे नक्तान्ध्य (रतौंधा), नकुलान्ध्य, आंखोंकी खुजली, रोहे, नेत्रस्राव, पटल, तिमिर, और अन्य कितने ही भयङ्कर रोग नष्ट होते हैं।

इस घृतको पिलाना तथा नस्यद्वारा प्रयुक्त करना चाहिए।

(मात्रा—१ तोला। गर्म दूधमें डालकर पिलाएं।)

(२४४५) त्रिफलाघृतम् (२) (मध्यम)

(वै. र.; वृ. यो. त.; वं. से.; वृं. मा. । नेत्ररोगा.)

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेसरम् ॥
नीलोत्पलं सारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् ।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ।
तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥
वीसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च ।
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा ॥
विषमज्वरमर्माणि शुक्रं चाशु व्यपोहति ।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च मर्मजाः ॥
तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
न चैवास्मात्परं किञ्चिद्दृष्टिभिः काश्यपादिभिः ॥
दृष्टिप्रसादनं दृष्टं तथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), मुनक्का, मुलैठी, कुटकी, पुण्डरिया, छोटी इलायची, वायविड़ंग, नागकेसर, नीलोत्पल, सारिवा, कृष्ण सारिवा, चन्दन, हल्दी और दारु हल्दी। प्रत्येकका कल्क १-१ कर्ष (१।-१। तोला), दूध १ सेर, और त्रिफलेका क्वाथ ३ सेर तथा घी १ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाइए। जब समस्त पानी जल जाय तो घीको छानकर रख लीजिए।

इसे यथोचित मात्रानुसार सेवन करनेसे तिमिर, नेत्रस्राव, कामला, काच, नेत्रार्बुद, विसर्प,

प्रदर, नेत्रकण्डू, सूजन, खालित्य, (गंज), पलित (बाल सफेद होना), बालोंका गिरना, विषमज्वर, नेत्रफूला और अन्यान्य नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

(२४४६) त्रिफलादि घृतम् (१)

(वं. से.; वृं. मा. । नेत्र०)

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं
कल्केन यष्टिमधुकांशयुक्तम् ।
सर्पिःसमं क्षौद्रचतुर्थभागं
हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं भवन्तम् ॥

त्रिफलेका क्राथ २ सेर, शतावरका रस २ सेर, घी १ सेर और मुलैठीका कल्क पावसेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाइये; जब समस्त पानी जल जाय तो घीको छानकर उसमें २० तोले शहद मिला लीजिए।

इसे सेवन करनेसे त्रिदोषज तिमिररोग नष्ट होता है।

(२४४७) त्रिफलादिघृतम् (२) (सु. सं. । उत्तर.)

त्रिफलोशीरशम्पाककटुकातिविषान्वितैः ।
शतावरीसप्तपर्णगुडूचीरजनीद्वयैः ॥
चित्रकत्रिवृतामूर्वापटोलारिष्टबालकैः ।
किराततिक्तकवचाविशालापद्मकोत्पलैः ॥
सारिवाद्वययष्ट्याह्वचविकारक्तचन्दनैः ।
दुरालभापर्पटकत्रायमाणाटरूषकैः ॥
रास्नाकुङ्कुममञ्जिष्ठामागधीनागरैस्तथा ।
धात्रीफलरसैः सम्यग्द्विगुणे साधितं हविः ॥
परिसर्पज्वरश्वासगुल्मकुष्ठनिवारणम् ।
पाण्डुप्लीहाग्निमान्द्येभ्य एतदेयं परमं हितम् ॥

त्रिफला, (हर्र, बहेड़ा, आमला), खस, अमलतास, कुटकी, अतीस, शतावर, सतौनेकी छाल, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, चीता, निसोत, मूर्वा, पटोलपत्र, नीमकी छाल, सुगन्धबाला, चिरायता, बच, इन्द्रायण, पद्माख, नीलोत्पल, दोनों प्रकारकी सारिवा, मुलैठी, चव, लाल चन्दन, धमासा, पित्तपापड़ा, त्रायमाणा, बासा, (अडूसा) रास्ना, केसर, मजीठ, पीपल और सोंठका कल्क पावसेर (प्रत्येक वस्तु समान भाग मिश्रति) घी १ सेर और आमलेका स्वरस २ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाएं। जब समस्त रस जल जाय तो घीको छान ले।

इसके सेवनसे विसर्प, ज्वर, श्वास, गुल्म, कुष्ठ, पाण्डु, तिल्ली, और अग्निमांद्यका नाश होता है।

(मात्रा ६ माशे से १ तोले तक। गर्म दूधमें डालकर पिएं।

(२४४८) त्रिफलादिघृतम् (३)

(वृं. मा.; वं. से.; यो. र.; च. द. । नेत्र०)

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्घृतं सिद्धं पिबेन्नरः ।
चक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफनाशनम् ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और सेंधानमकके कल्क तथा इन्हींके काथके साथ सिद्ध घृत आंखोंके लिए हितकारी, भेदन, हृद्य, दीपन और कफनाशक होता है।

(२४४९) त्रिफलादिघृतम् (४)

(वै. म. र. । प. १६)

वरायाःक्राथसंसिद्धं क्षीरोत्थदधिसाधितम् ।
सर्पिर्मधुकरसंसिद्धं नस्याद्धे मूर्धरोगजित् ॥

त्रिफलाका क्वाथ २ सेर, दही २ सेर, घी १ सेर और मुलैठीका कल्क पावसेर लेकर सबको एकत्र पकाइए। जब सब पानी जल जाय तो घीको छान लीजिए। इसकी नस्य लेनेसे शिरोरोग नष्ट होते हैं।

(२४५०) त्रिफलादिघृतम् (५)

(यो. र. । स्त्री ; भा. प्र. । ख. २ यो. रो.)

त्रिफलां द्वौ सहचरौ[1] गडूचीं सपुनर्नवाम् ।
शुकनासां[2] हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे ।
तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिरोगप्रशान्तये ॥

त्रिफला, नीले और पीले फूलवाली (दोनों प्रकारकी) कटशरैया, गिलोय, पुनर्नवा, शुकनासा (श्योनाक वृक्षकी छाल), हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा और शतावरी। सब चीज़ें समान भाग मिला-मिलाकर पावसेर लें और सबको पानीके साथ पीसकर कल्क बना लें। फिर यह कल्क, ४ सेर दूध और १ सेर घी एकत्र मिलाकर पकाएं। जलांश जल जाने पर घीको छान लें।

इस घीको पीनेसे योनिरोग नष्ट होता है।

(मात्रा—१ तोला तक।)

(२४५१) त्रिफलादिघृतम्

(यो. र. । नेत्र.; भाव. प्र. । ख. २ नेत्र.)

शतमेकं हरीतक्या द्विगुणं च विभीतकम् ।
चतुर्गुणं त्वामलकं वृषमार्कवयोःसमम् ॥
चतुर्गुणोदकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
भागं चतुर्थं संरक्ष्य क्वाथं तमवतारयेत् ॥

१ त्रिवृतां शुण्ठीमिति पाठान्तरम् ।
२ विदारिकामिति पाठान्तरम् ।

शर्करामधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदिग्धिका ।
काकोलीक्षीरकाकोली त्रिफला नागकेसरम् ॥
पिप्पली चन्दनं मुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम् ।
घृतं प्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः शनैः पचेत् ॥
हन्यात्सतिमिरं काचं नक्तान्ध्यं शुक्रमेव च ।
तथा स्रावं च कण्डूं च श्वयथुं च कषायताम् ॥
कलुषत्वं च नेत्रस्य विडूर्त्मपटलान्वितम् ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान्हरेत् ॥
यस्य चोपहता दृष्टि सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः ।
तस्मै तद्भेषजं प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम् ॥
मार्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां व्रजेत् ।
तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं निर्मलतामियात् ॥

हर्र १००, बहेड़े १०० और आमले ४०० तथा वासा और भंगरा चार चारसो तोले लेकर सबको ४ गुने पानीमें पकाइए, जब चौथा भाग पानी शेष रहे तो क्वाथको छान लीजिए। तत्पश्चात् इस क्वाथ और खांड, महुवेके फूल, मुनक्का, मुलैठी, कटेली, काकोली, क्षीरकाकोली, त्रिफला, नागकेसर, पीपल, चन्दन, मोथा, त्रायमाणा और नीलोफरके कल्क तथा समान भाग दूधके साथ १ प्रस्थ (१ सेर) घृत पका लीजिए।

इसके सेवनसे तिमिर, काच, नक्तान्ध्य (रतौंधा), नेत्रशुक्र (फूला), नेत्रस्राव, नेत्रकण्डू (आंखमें खाज आना), सूजन, कषायता, नेत्रकी कलुषता, पटल, विड्वर्त्म इत्यादि समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

सूर्य और अग्निकी ओर देखनेसे नष्टदृष्टि इसके सेवनसे यथावत् हो जाती है।

जिस प्रकार मांजनेसे दर्पण स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार इसके सेवनसे दृष्टि भी अत्यन्त निर्मल हो जाती है।

नोट—मूल पाठमें हर्र, बहेड़े और आमलेकी स्पष्ट तोल नहीं लिखी; यह सन्देह होता है कि हर्र इत्यादि १००–२००–४०० नग ली जायं या पल अथवा तोला? परन्तु वासा और भंगरा समान भाग लेनेके लिए लिखा है इससे प्रकट होता है कि १००–२०० और ४०० नग नहीं अपितु पल या तोले की संख्या है। अब यदि इनको तोला भी मानें तो भी सबका मिलकर १५०० तोले (लगभग १८ सेर) क्वाथ होता है, जो १ सेर घीके लिए बहुत अधिक है, इसलिए सब क्वाथ एक बारमें न डालकर हरबार चार सेर डालना चाहिए और इस प्रकार १ प्रस्थ घीको ५ बार पकाकर सिद्ध करना चाहिए।

(२४५२) त्रिफलाद्यं घृतम् (१)

(भै. र. । कृमि.)

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः विडङ्गं प्रस्थ एव च।
दीपनं दशमूलञ्च लाभतः सम्प्रुपाहरेत् ॥
पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत्।
प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं कृमिनाशनम् ॥
त्रिफलाघृतमेतद्धि लेह्यं शर्करया सह ॥

त्रिफला ३ सेर, वायविडंग १ सेर और यदि मिल सकें तो अजवायन और दशमूल भी १–१ सेर लेकर सबको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें पकाएं। जब ४ सेर पानी शेष रहे तो छानकर उसमें १ सेर घी और पाव सेर सेंधानमक मिलाकर पकाइए। जब सब पानी जल जाय तो घीको छान लीजिए।

इसे खाण्डमें मिलाकर चाटनेसे कृमिरोग नष्ट होता है। मात्रा—१ तोले तक।)

(२४५३) त्रिफलाद्यं घृतम् (२)

(वा. भ. । उ. अ. १३)

त्रिफलाष्टपलं क्वाथ्यं पादशेषं जलाढके।
तेन तुल्यपयस्केन त्रिफलापलकल्कवान् ॥
अर्द्धप्रस्थो घृतात्सिद्धः सितया माक्षिकेण वा।
युक्तं पिबेत्तिमिरी तद्युक्तं वा वरारसम् ॥

आठ पल (४० तोले) त्रिफलाको १ आढक (४ सेर) पानीमें पकाकर १ सेर पानी शेष रक्खें और छानकर उसमें १ सेर दूध तथा १ पल (५ तोले) त्रिफलेका कल्क और आधा सेर घी मिलाकर पकाएं। जब सब पानी जल जाय तो घृतको छान लें।

इसमें मिश्री और शहद मिलाकर चाटने या त्रिफलाके क्वाथके साथ पीनेसे तिमिर रोग नष्ट होता है।

(२४५४) त्रिफलाद्यं घृतम् (३)

(ग. नि. । घृता.)

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च।
पीडयित्वा वृषं वालं रसप्रस्थं प्रदापयेत् ॥
अजाक्षीरस्य च प्रस्थं कार्षिकैः श्लक्ष्णपेषितैः।
पिप्पलीशर्कराद्राक्षात्रिफलानीलमुत्पलम् ॥
मधुकं क्षीरकाकोलीमधुपर्णीनिदिग्धिका।
मञ्जिष्ठापद्मकोशीरसारिवादारुचन्दनैः ॥
घृतं प्रस्थं पचेत् प्राज्ञःकल्कैरेभिःसमन्वितम्।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानं विशिष्यते ॥

अतिप्रदुष्टे रक्ते च रक्ते स्रावति सते तथा ।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे सर्वनेत्ररुजासु च ॥
वक्रविद्योतितं भ्रान्तं सूर्यतेजोद्विषं तथा ।
गृध्रदृष्टिकरं धन्यं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥
त्रिफलाया घृतं सिद्धं सर्वनेत्ररुजान्तकृत् ॥

त्रिफलाका काथ १ सेर, भंगरेका रस १ सेर, वासेका रस १ सेर, बकरीका दूध १ सेर, घी १ सेर और पीपल, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नीलोफर, मुलैठी, क्षीरकाकोली, गिलोय, कटेली, मजीठ, पद्माख, खस, चन्दन, सारिवा और देवदारुका १।-१। तोला अत्यन्त महीन पिसा हुआ कल्क लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाइये । जब समस्त जलांश जल जाय तो घृतको छान लीजिए ।

इसे सेवन करनेसे रक्तदुष्टि, रक्तस्राव, नक्तान्ध्य (रतौंधा), तिमिर, काच और सूर्यके तेजको न सहना आदि समस्त नेत्ररोग नष्ट होते और बल, वर्ण तथा अग्निकी वृद्धि होती है ।

(२४५५) त्रिफलाद्यं घृतम् (४)

(ग. नि. । घृता.)

त्रिफला मदनं कुष्ठं शार्ङ्गेष्टा रजनीद्वयम् ।
शुकनासा काकमाची हपुषाऽतिविषा वचा ॥
पाठा कोशातकी मूर्वा तिक्ता काकादनी घृतम् ।
एतत्कषायकल्काभ्यां सिद्धं पीतं घृतोत्तमम् ॥
विशीर्यमाणं विध्वस्तस्नायुकेशनखं नरम् ।
कुष्ठातुरं तु जनयेन्मुमूर्षुमपि निर्गदम् ॥

त्रिफला, मैनफल, कूठ, काकजंघा, हल्दी, दारुहल्दी, अरलु, काकमाची (मकोय), हाऊबेर, अतीस, वच, पाठा, कोशातकी (कड़वी तूंबी), मूर्वा, कुटकी और चौंटली । समान भाग लेकर इनके क्वाथ और कल्कसे घृत पका लीजिए ।

इस घृतको पीनेसे मृतप्राय कुष्ठरोगी भी स्वस्थ हो जाता है । यदि स्नायु गल गए हों, या केश और नखादि गिर गये हों तो वह भी ठीक हो जाते हैं ।

(२४५६) त्रिफलाद्यं घृतम् (५)

(ग. नि.; वृं. मा.; ग. र.; भै. र.; वं. से. । कृमि.)

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा कम्पिल्लकस्तथा ।
सिद्धमेभिर्गवां मूत्रे सर्पिः कृमिविनाशनम् ॥

त्रिफला, निसोथ, दन्तीमूल, वच, और कबीला समान भाग मिश्रित पावसेर, घी १ सेर तथा गोमूत्र ४ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर मंदाग्नि पर पकाइये । जब गोमूत्र जल जाय तो घीको छान लीजिए ।

इसके सेवनसे कृमिरोग नष्ट होता है ।

(२४५७) त्रिफलादि घृतम् (महा)

(भै. र.; वं.से.; च.द.; यो.र.; यो.त. । नेत्ररोग ।)

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा ।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥
कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
ऊर्ध्वपानमधः पानं मध्ये पानञ्च शस्यते ॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति ।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे च दारुणे ।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ॥

अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च कफवातप्रदूषिताम् ।
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् ॥
गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद्घृतम् ॥

त्रिफलाका क्वाथ १ सेर, भांगरेका रस १ सेर, अडूसेका रस १ सेर, शतावरका रस १ सेर, बकरीका दूध १ सेर, गिलोयका रस १ सेर, आमलेका रस १ सेर तथा घी १ सेर ।

कल्कद्रव्य—पीपल, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नीलोत्पल, मुलैठी, क्षीरकाकोली, गिलोय और छोटी कटेली । सब समान भाग मिलाकर २० तोले लें ।

सब चीज़ोंको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं और पानी जल जाने पर घृतको छानकर चिकने पात्रमें भरकर रख दें ।

इसे भोजनसे पहिले, भोजनके मध्यमें या भोजनान्तमें सेवन करना चाहिए ।

इसके सेवनसे नक्तान्ध्य (रतौंधा), तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द (आंख दुखना), अधिमन्थ, पक्ष्मकोप तथा अन्य समस्त वातज, पित्तज और कफज नेत्ररोग एवं अदृष्टि (अन्धता), मन्ददृष्टि, कफवातसे दूषित दृष्टि, वात-पित्तजस्राव (आंखसे पानी बहना—ढलका), आंखों की खुजली, आसन्न दृष्टि (दूरसे स्पष्ट दिखाई न देना), दूर दृष्टि (पाससे बारीक अक्षर स्पष्ट दिखाई न देने) इत्यादि समस्त नेत्ररोग नष्ट होकर दृष्टि गृध्रके समान तीव्र हो जाती है ।

इसके सेवनसे शरीरमें बल बढ़ता, अग्नि तीव्र होती और शरीरका रंग निखरता है ।

(मात्रा—आधा तोला । दूधमें डालकर पिएं)

नोट—पूरा लाभ प्राप्त करनेके लिए ५–६ मास तक सेवन करना चाहिए ।

(२४५८) त्रिवृतादिघृतम् (भै. र. । वृद्धय.)

त्रिवृतामधुयष्ट्यम्बुपयोधरयमानिकाः ।
श्यामाविदारीमिश्रेया पिप्पलीगिरिमल्लिका ॥
घृतप्रस्थं पयःप्रस्थं दध्याढकसमन्वितम् ।
शतावरीरसप्रस्थं सर्वाण्येकत्र सम्पचेत् ॥
त्रिवृतादिघृतञ्चैतदन्त्रजान्निखिलान् गदान् ।
प्रमेहान्विंशतिं श्वासान्कुष्ठान्यर्शांसि कामलाम् ।
हलीमलकं पाण्डुरोगं गलगण्डं तथार्बुदम् ॥
विद्रधिं व्रणशोथञ्च हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥

कल्क द्रव्य—निसोत, मुलैठी, सुगन्धबाला, मोथा, अजवायन, काली निसोत, विदारीकन्द, सौंफ, पीपल और कुड़ेकी छाल २–२ तोले । घी १ सेर, दूध १ सेर, दही ४ सेर और शतावरका रस १ सेर । सबको एकत्र मिलाकर पकाएं ।

इसे सेवन करनेसे समस्त अन्त्ररोग बीस प्रकारके प्रमेह, श्वास, कुष्ठ, अर्श, कामला, हलीमक, पाण्डु, गलगण्ड, अर्बुद, विद्रधि व्रणशोथ इत्यादि रोग नष्ट होते हैं ।

(मात्रा—१ तोला तक ।)

(२४५९) त्रिवृतादिमिश्रकस्नेहः

(च. सं. । चि. अ. ५)

त्रिवृतां त्रिफलां दन्तीं दशमूलं पलोन्मितम् ।
जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागस्थितं रसम् ॥
सर्पिरेरण्डजं तैलं क्षीरञ्चैकत्र साधयेत् ।
स सिद्धो मिश्रकस्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥

कफवातविबन्धेषु कुष्ठप्लीहोदरेषु च ।
प्रयोज्यो मिश्रकःस्नेहो योनिशूलेषुचाधिकम्॥

निसोत, हर्र, बहेड़ा, आमला, दन्ती और दशमूल। १-१ पल (५-५ तोले) लेकर सबको चारगुने पानीमें पकाइये, जब चौथा भाग पानी शेष रहे तो छान लीजिए। तत्पश्चात् यह क्वाथ और इतनाही दूध तथा इससे चौथाई घी और उतना ही अरण्डीका तैल लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाइए। जब सब पानी जल जाय तो स्नेहको छान लीजिए।

इसमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे कफज गुल्म, कफ, वायु, मलावरोध, कुष्ठ, प्लीहा और विशेषतः योनिशूल नष्ट होता है।

(२४६०) त्रिवृताद्यं घृतम्

(वं. से.; यो. र.। उदर.)

पयस्यष्टगुणे सर्पिः प्रस्थं स्नुक्पयसःपलम्।
त्रिवृतापलषट्केन सिद्धं जठरगुल्मनुत ॥

घी १ प्रस्थ (८० तोले), दूध ८ प्रस्थ, सेहुंड (थोहर)का दूध १ पल (५ तोले) और निसोतका कल्क ६ पल। सबको एकत्र मिलाकर दूध जल जाने तक पकाएं।

इसके सेवनसे उदररोग और गुल्म नष्ट होता है।

(२४६१) त्र्यूषणादि घृतम्

(च. सं.। चि.। स्था. अ. २६; यो. र.।)

स्यात् त्र्यूषणं द्वे त्रिफले सपाठे
निदिग्धिका गोक्षुरको बले द्वे।
ऋद्धिस्त्रुटिस्तामलकी स्वगुप्ता।
मेदे मधूकं मधुकं स्थिराश्च ॥
शतावरीं जीवकपृश्निपर्ण्यौ
द्रव्यैरिमैरक्षसमैः सुपिष्टैः।
प्रस्थं घृतस्येह पचेद्विधिज्ञः
प्रस्थेन दध्नस्त्वथ माहिषस्य ॥
मात्रां पलं चार्द्धपलपिचुम्वा
प्रयोजयेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तम्।
श्वासे सकासे त्वथ पाण्डुरोगे
हलीमके हृद्ग्रहणीप्रदोषे ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, खम्भारीके फल, मुनक्का, फालसेके फल, पाठा, कटेली, गोखरु, बला (खरैटी), अतिबला (कंघी), ऋद्धि, छोटी इलायची, भुई आमला, कौंचके बीज, मेदा, महामेदा, मुलैठी, महुवेके फूल शालपर्णी, शतावर, जीवक और पृश्निपर्णीका कल्क १-१ कर्ष (१।-१। तोला), घी १ सेर, भैंस की दही १ सेर और पानी ४ सेर। सबको एकत्र मिलाकर पकाएं।

इसे ५ तोले, २॥ तोले या १। तोलेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे श्वास, खांसी, पाण्डुरोग, हलीमक, हृद्रोग, ओर ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

(२४६२) त्र्यूषणादि घृतम्

(वृ. नि. र.। अति.; वृ. यो. त.। त. ६४)

त्र्यूषणा त्रिफला चैव चित्रको गजपिप्पली।
बिल्वं कर्कटिका हिंस्रा विडङ्गं सनिदिग्धिकम्॥
घृतप्रस्थं पचेदेभिर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे।
तत्प्रयोगं पिबेत्कोलं हन्यातेन प्रवाहिकाम्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेडा, आमला, चीता, गजपीपल, बेलगिरी, ककड़ी,

कटेला, बायविडंग और कटेली प्रत्येक १॥ तोला लेकर पानीके साथ पीस लें। तत्पश्चात् इस कल्क और ४ सेर गोमूत्रके साथ १ सेर घी पकाएं।

इसे १। तोलेकी मात्रानुसार पीनेसे प्रवाहिका नष्ट होती है।

(२४६३) त्र्यूषणाद्यं घृतम् (१)

(ग. नि. । ग्रहणी०)

त्र्यूषणत्रिफलाकल्के विल्वमात्रे गुडात्पलम् ।
सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिबेत्॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और त्रिफलाका कल्क आधा आधा पल (२॥–२॥ तोले), गुड १ पल और घी ४० तोले तथा पानी २ सेर एकत्र मिलाकर पानी जलने तक पकाइए और फिर घृतको छान लीजिए।

इसे यथोचित मात्रानुसार पीनेसे मन्दाग्नि नष्ट होती है। (मात्रा–१ तोले तक)

(२४६४) त्र्यूषणाद्यं घृतम् (२)

(ग. नि.। घृता.; यो. र., च.सं. । चि. अ. २२)

त्र्यूषणं त्रिफलां द्राक्षां काश्मर्यं च परूषकम् ।
द्वे पाठे देवदारुर्वृद्धिःस्वगुप्तां चित्रकं शठीम् ॥
व्याघ्रीमामलकीं मेदां काकनासां शतावरीम् ।
त्रिकण्टकं गुडूचीं च पिष्ट्वा कर्षसमान्घृतात् ॥
चतुःप्रस्थं चतुर्गुणे क्षीरे सिद्धं कासहरं पिबेत् ।
ज्वरगुल्मारुचिप्लीहशिरोहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥
कामलार्शोऽनिलार्तिघ्नं क्षतशोपक्षयापहम् ।
त्र्यूषणं नाम विख्यातमेतद्घृतमनुत्तमम् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, द्राक्षा (मुनक्का), खम्भारीके फल, फालसा, दो प्रकारका पाठा, देवदारु, वृद्धि, कौंचके बीज, चीता, कचूर, कटैली, आमला, मेदा, काकनासा, शतावर, गोखरु और गिलोयका कल्क १।–१। तोला, दूध ४ सेर तथा घी १ सेर (८० तोले) लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकाएं।

इसे यथोचित मात्रानुसार (१ तोला तक) पीनेसे खांसी, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, शिरो–पीडा, हृदयका शूल, पसलीका दर्द, कामला, अर्श, वातव्याधि, क्षतज शोष और क्षय रोग नष्ट होता है।

(२४६५) त्र्यूषणाद्यं घृतम् (३)

(ग. नि.; वृ. नि. र.; च.द.; वृं. मा.; च.सं.। गुल्मे)

त्र्यूषणत्रिफलान्धान्यविडङ्गचव्यचित्रकैः ।
कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, धनियां, बायविडंग, चव्य और चीता समान भाग लेकर इनके कल्क और चार गुने दूधके साथ घी पका लीजिए।

इसके सेवनसे वातज गुल्म नष्ट होता है।

इति तकारादिघृतप्रकरणम् ॥

अथ तकारादितैलप्रकरणम् ।

(२४६६) तप्तराजतैलम् (भै.र.; धन्वं.। शिरो.)

धुस्तूरं पूतिकं पीता जयन्ती सिन्धुवारकम् ।
शिरीषं हिज्जलं शिग्रु दशमूलं समं भवेत् ॥
प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम् ।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥
गोमूत्रश्चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
मदनं त्र्यूषणं कुष्ठमजाजीं विश्वभेषजम् ॥
कट्फलं वरुणं मुस्तं हिज्जलं बिल्वमेव च ।
हरितालं जवापुष्पममृतं कुनटीं तथा ॥
कर्कटं चन्दनं शिग्रु यमानी व्याघ्रपादपि ।
एतेषां कार्षिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥
तप्तराजमिति ख्यातं महादेवेन निर्मितम् ।
सन्निपातं महाघोरं शिरोरोगं महोत्तरम् ॥
शिरःशूलं नेत्ररोगं कर्णशूलञ्च दारुणम् ।
ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदश्चैव महोत्तरम् ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च सहलीमकं पीनसम् ।
त्रयोदशसन्निपातं हन्ति सद्यो न संशयः ॥

क्वाथ्यद्रव्य-धतूरा, करञ्ज, हल्दी, जयन्ती, सम्भालु, सिरसकी छाल, हिज्जल (समुद्रफल), सहंजनेकी छाल और दशमूल। प्रत्येक १ सेर। पानी ३२ सेर। पकाकर ८ सेर पानी शेष रहने पर छान लें।

कल्क—मैनफल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), कूठ, जीरा, सोंठ, कायफल, वरनेकी छाल, मोथा, समुद्रफल, बेलछाल, हरताल, जवापुष्प (गुढलका फूल), शुद्ध बच्छनागविष, मनसिल, काकड़ासिंगी, सफेद चन्दन, सहिंजनेकी छाल, अजवायन और कटाई। प्रत्येक एक एक कर्ष (१। तोला)।

गोमूत्र ८ सेर और कड़वा (सरसोंका) तैल २ सेर। सबको एकत्र मिलाकर पकाएं।

इसके उपयोगसे भयङ्कर सन्निपात, शिरोरोग, शिरशूल, नेत्ररोग, कर्णशूल, ज्वर, दाह, अत्यधिक पसीना आना, कामला, पाण्डु, हलीमक और पीनसका नाश होता है।

(२४६७) ताम्रगर्भतैलम्

(र. र. स. । उ. खं. अ. २६)

भूमावरत्निमात्रायां ताम्रं तैलेन पूरयेत् ।
षण्मासं तापयेदूर्ध्वं मृदुना तुषवह्निना ।
पीत्वामापादिनिष्क्रान्तं तत्रिवर्षान्महाकविः ॥

एक ताम्रपात्रमें मालकंगनीका तैल भरकर उसके मुखपर ढक्कन रखकर उसे टांकेसे अच्छी तरह बन्द करा दीजिए, फिर भूमिमें १ अरत्नि[1] प्रमाण गहरा गढा खोदकर उसमें इस पात्रको दबा दीजिए। छः मास इसके ऊपर मृदु तुषाग्नि जलाएं और स्वांग शीतल होनेपर निकाल लें।

इसमेंसे प्रथम दिन १ माशा तैल पिएं और फिर रोज थोड़ा थोड़ा बढाते जाएं। जब चार माषे मात्रा पर पहुंच जाएं तो मात्रा न बढाएं और रोज़ ४ माषे ही पीते रहें।

इसे तीन वर्ष पर्यन्त सेवन करनेसे मनुष्य महाकवि (अत्यन्त तीव्र बुद्धिः) हो जाता है।

१ अरत्नि=कनउंगलीको फैलाकर बन्द की हुई मुट्ठीका माप।

(२४६८) ताम्रादितैलम् (रा. मा. । मुखरो.)

अम्भःक्षालितटङ्कणेन मसृणोत्पिष्टेन यल्लेपितम् ।
ताम्रं तत्परिताप्य सूक्ष्मकणिकाभावं क्रमात्प्रापयेत् ॥
तैलं तत्र चतुर्गुणं विनिहितं तैलात्सुरभ्याःपयो।
विन्यस्याष्टगुणं पचेत्सुनिपुणो नात्यन्ततीव्रेऽनले ॥
कर्षं तैलपले क्षिपेदथ मधूच्छिष्टस्यकाश्मीरजस्याष्टांशं विनिधाय तेन शिशिरे वक्त्रं समालेपयेत् ॥
एवं व्यङ्गकलङ्कविन्दुवलिभिर्निर्मुक्तमत्युज्ज्वलम्
तत्स्यात् पार्वणचन्द्रविम्बविजयी प्रस्फारचारुद्युतिः ॥

सुहागेको पानीके साथ अत्यन्त महीन पीसकर ताम्रपत्रपर लेप कर दीजिए और फिर उसे अग्निमें तपाइये। (और खूब लाल होनेके पश्चात् गोदुग्ध या गोमूत्रमें बुझाइये ।) इसी प्रकार बार बार करनेसे ताम्रका चूर्ण हो जायगा। अब यह ताम्र चूर्ण १ भाग, तेल ४ भाग और गोदुग्ध ३२ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये। जब दूध जल जाय तो तैलको छानकर उसमें प्रतिपल (५ तोले) तैलमें १ कर्ष (१। तोला) मोम और आधा कर्ष काश्मीरी केसर मिलाइये।

इस तैलकी मालीश करनेसे मुखके व्यङ्ग, कलङ्क (झांई, कलौस) और वलि इत्यादि नष्ट होकर मुख चन्द्रमाके समान अत्यन्त सुन्दर हो जाता है।

(२४६९) तालीसाद्यं तैलम्

(सु. सं. । चि. क्षतचि.)

तालीसं पद्मकं मांसी हरेण्वगुरुचन्दनम् ।
हरिद्रे पद्मबीजानि सोशीरं मधुकञ्च तैः ॥
पक्कं सद्यो व्रणेपूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ॥

तालीसपत्र, पद्माक, जटामांसी, रेणुका (संभालुके बीज), अगर, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, कमलगट्टा, खस और मुलैठी। समान भाग लेकर इनके कल्क और इन्हींके क्वाथसे तैल पकाकर रखिए।

इसे व्रण (घाव)में लगानेसे घाव भर आता है। (काथके लिए प्रत्येक औषधि ४ तो०; पानी ४ सेर ३२ तो., शेष १ सेर ८ तोले। तैल ३२ तोले। कल्कके लिए प्रत्येक वस्तु आधा तोला।)

(२४७०) तिलतैलादिप्रयोगः (यो.र.।स्त्री.रो.)

तिलतैलदुग्धफाणितदधि घृतमेकत्र पाणिना मथितम् ।
पीतं सपिप्पलिकं जनयति पुत्रं परं महिला ॥

तिलका तेल, दूध, फाणित (पतली राब), दही और घी समान भाग लेकर सबको हाथसे भली भांति मथकर उसमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे बन्ध्या स्त्री गर्भ धारण करती और उत्तम पुत्रको जन्म देती है।

(२४७१) तुम्बीतैलम्

(भै. र.; यो. र.; वृं. मा.; र. र., वं. से.। गलगण्डा. वृ. यो. त.। त. १०८. यो. त। त. ५७)

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योपदारुभिः ।
कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥

चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥

बायविड़ंग, जवाखार, सेंधानमक, रास्ना, चीता, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और देवदारुका कल्क २-२ तोले, सरसोंका तैल ७२ तोले और कड़वी तुंबीका रस २८८ तोले लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाइये। जब सब रस जल जाय तो तैलको छान लीजिए।

इसकी नस्य लेनेसे पुराना गलगण्ड भी नष्ट हो जाता है।

(२४७२) तृणकतैलम्

(च. द.; वं. से.; वृं. मा.; ग.नि.। कुष्ठा.; वृ. यो. त.। त. १२०)

मञ्जिष्ठारुङ्निशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः ।
तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं कटु ॥

मजीठ, कूठ, हल्दी, पंवाड़ और अमलतासके पत्ते ५-५ तोले लेकर पीस लें, फिर यह कल्क; १। सेर सरसोंका तैल तथा ५ सेर गन्धतृण (मिर्चिया गन्ध)का स्वरस एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं।

इस तैलकी मालिशसे कुष्टरोग नष्ट होता है।

(२४७३) त्रिकटुकाद्यं तैलम्

(वं. से.; वृं. मा.; ग. नि.। नासा.)

त्रिकटुविडङ्गसैन्धवबृहतीफलशिग्रु-
सुरसदन्तीभिः ।
तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात् पूतिनस्यस्य ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), बायविड़ंग, सेंधानमक, कटेलीके फल, सहिंजनेकी छाल, तुलसी और दन्तीमूलके कल्क तथा गोमूत्रके साथ तैल पका लीजिए।

इसकी नस्य लेनेसे पूतिनस्य रोग नष्ट होता है। (तैल १ सेर, गोमूत्र ४ सेर; समान भाग मिश्रित और जलपिष्ट कल्क द्रव्य पावसेर ।)

(२४७४) त्रिफलातैलम् [१]

(शा. ध. सं.। ख. २ अ. ९)

त्रिफलारिष्टभूनिम्बं द्वेनिशे रक्तचन्दनम् ।
एतैःसिद्धमरूंषीणां तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, नीमकी छाल, चिरायता, हल्दी, दारुहल्दी और लाल चन्दनके कल्क और इन्हींके क्काथसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे अरुंषिका रोग (शिरोरोग विशेष) नष्ट होता है।

(कल्कके लिए प्रत्येक द्रव्य ५ तोले लेकर पानीमें पीस लें।

क्काथके लिए प्रत्येक द्रव्य ४० तोले, पानी ३२ सेर; शेष ४ सेर। तैल २ सेर।)

(२४७५) त्रिफलातैलम् [२]

(वं. से.। अपस्मा.)

त्रिफलाव्योषकुष्ठाब्दयवक्षारफणिज्झकैः ।
कल्कीकृतैरेभिर्द्रव्यैर्गजमूत्रे चतुर्गुणे ।
साधितं नावनं तैलमपस्मारं विनाशयेत् ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), कूठ, मोथा, जवाखार और वनतुलसीके कल्क तथा चार गुने हाथीके मूत्रके साथ तैल पका लीजिए।

इसकी नस्य लेनेसे अपस्मार (मिरगी) रोग नष्ट होता है।

(तैल १ भाग, हस्तीमूत्र ४ भाग, समान भागमिश्रित कल्क द्रव्य १/४ भाग। सबको मिलाकर पकाएं)

(२४७६) त्रिफलादितैलम्

(र. र. र. । उपदे. ५; र. मं । अ. ८)

त्रिफलालोहचूर्णं तु वारिणा पेषयेत्समम् ।
तत्तुल्येन च तैलेन भृङ्गराजरसेन च ॥
पचेत्तैलावशेषं तत्स्निग्धभाण्डे निरोधयेत् ।
मासैकं भूगतं कुर्यात्तेन शीर्षं प्रलेपयेत् ॥
कारवल्ल्या दलैर्वेष्ट्य ततो वस्त्रेण बन्धयेत् ।
निर्वाते क्षीरभोजी स्यात्क्षालयेत्त्रिफलाजलैः॥
नित्यमेवं प्रकर्तव्यं लेपनं दिनसप्तकम् ।
कपालरञ्जनं ख्यातं यावज्जीवं न संशयः॥

१–१ भाग त्रिफला और लोहचूर्णको पानीके साथ एकत्र खरल करें, फिर उसमें समान भाग तैल और तैलसे चार गुना भंगरेका रस मिलाकर मंदाग्नि पर पकाएं। जब समस्त रस जल जाय तो उस तैलको बिना छाने ही मिट्टीके चिकने पात्रमें (अथवा चीनीके मर्तबान आदिमें) भरकर उसके मुख को अच्छी तरह बन्द करके भूमिमें दबा दीजिए। और एक मास पश्चात् निकालकर छान लीजिए।

सफेद बालो पर यह तैल लगाकर ऊपरसे करेलेके पत्ते रखकर कपडा बांध दीजिए। दूसरे दिन बालोको त्रिफलेके क्राथसे धो डालिए और फिर इसी प्रकार तैल लगाइये। इस प्रकार सात दिन तक यह तैल लगाने और निर्वात स्थानमें रहने तथा दुग्धाहार करनेसे सफेद बाल आयु भरके लिए काले हो जाते है।

(२४७७) त्रिफलाद्यं तैलम् [१]

(वं. से.; वृ. नि. र.; वृं. मा., भा. प्र.; यो. र.; ग. नि.; भै. र.; च. द.। मेदो वृ.; वृ. यो. त.। त. १०४)

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥
गुडूचीन्द्रसुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ।
तैलमेभिःसमैःपक्वं सुरसादिरसप्लुतम् ॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषुयोजितम् ।
स्थूलताऽऽलस्यपाण्ड्वादीन्जयेत्कफकृतान्गदान् ।

कल्क द्रव्य—हर्र, बहेड़ा, आमला, अतीस, मूर्वा, निसोत, चीता, वासा (अडूसा), नीमकी छाल, अमलतासका गूदा, बच, सप्तपर्ण (सतौना) वृक्षकी छाल, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, इन्द्रायण, पीपल, कूठ, सरसो और सोंठ। समान भाग मिश्रित आधा सेर।

सुरसादिगणका क्वाथ १६ सेर और तेल ४ सेर। सबको एकत्र मिलाकर पकाएं।

इसे पान, अभ्यङ्ग, बस्ति, नस्य और गण्डूषादि द्वारा प्रयुक्त करनेसे स्थूलता, आलस्य, पाण्डु और कफजरोग नष्ट होते हैं।

(२४७८) त्रिफलाद्यं तैलम् [२]

(वं. से.। नेत्ररो.)

संपिष्य त्रिफलालोध्रमुशीराणि प्रियङ्गुकम् ।
तैलमेतैर्विपक्वं स्याच्छ्लैष्मिके नस्यमुत्तमम्॥

त्रिफला (हर्र, बहेडा, आमला), लोध, खस और फूलप्रियंगुके कल्क तथा इन्हींके क्वाथके साथ तैल पका लीजिए।

इसकी नस्य लेनेसे कफज तिमिररोग नष्ट होता है।

(२४७९) त्रिफलाद्यं तैलम् [३]

(वृ. नि. र.; भा. प्र.; भै. र.; वृं. मा.; धन्वं.; यो. र.। मेदोरो.; आ. वे. वि.। अ.८१, च.द.। क्षुद्र.)

त्रिफलायोरजयष्टि[1] मार्कवोत्पलशारिवैः।
ससैन्धवैःपचेत्तैलमभ्यङ्गादरूंपिकां जयेत् ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, लोहचूर्ण, मुलैठी, भंगरा नीलोत्पल, सारिवा और सेंधानमक। इनके कल्क तथा इन्हींके क्वाथसे तैल पका लीजिए। इसकी मालीशसे अरुंषिका रोग (शिरोरोग विशेष) नष्ट होता है।

(२४८०) त्रिशतीप्रसारिणीतैलम्

(च. द.; वं. से.; भै. र.; धन्वं.। वातव्याध्य.)

प्रसारण्यास्तुलामश्वगन्धाया दशमूलतः।
तुलां तुलां पृथग्वारिद्रोणे पादांशशेषिते ॥
तैलाढकं चतुःक्षीरं दधितुल्यं द्विकाञ्जिकम्।
द्विपलैर्ग्रन्थिकक्षारप्रसारण्यक्षसैन्धवैः ॥
समञ्जिष्ठाग्नियष्ट्याह्वैःपलिकैर्जीवनीयकैः।
शुण्ठ्याःपञ्चपलं दत्त्वा त्रिशद्भल्लातकानि च ॥
पचेद्वस्त्यादिना वातं हन्ति सन्धिशिरास्थितम्।
पुंस्त्वोत्साहस्मृतिप्रज्ञाबलवर्णाग्निवृद्धये ॥
(प्रसारणीयं त्रिशती 'अक्षं' सौवर्चलं त्विह)

प्रसारिणी (गन्धेल घास), असगन्ध और दशमूल १-१ तुला (प्रत्येक ६। सेर) लेकर पृथक् पृथक् १६-१६ सेर जलमें पकाएं; और ४-४ सेर जल शेष रहने पर छान लें। तत्पश्चात् यह तीनों क्वाथ, ४ सेर तैल, १६ सेर दूध, ४ सेर दही और ८ सेर काञ्जी तथा निम्न लिखित औषधियोंका कल्क एकत्र मिलाकर पकाइये।

कल्क द्रव्य—पीपलामूल, जवाखार, प्रसारिणी, सौवर्चल (कालानमक), सेंधानमक, मजीठ, चीता और मुलैठी प्रत्येक १०-१० तोले। जीवनीय गण[2]की प्रत्येक औषध १-१ पल (५-५ तोले), सोंठ २५ तोले और भिलावे ३००।

इसे वस्ति, मर्दनादि द्वारा प्रयुक्त करनेसे सन्धिगत, शिरागत और अस्थिगत वायु इत्यादि समस्त वातज रोग नष्ट होते और पुंस्त्व, बल, वर्ण, अग्नि, स्मृति और बुद्धि इत्यादिकी वृद्धि होती है।

(२४८१) त्वगादि तैलम्

(च. सं.। चि. अ. २६ शिरो. रो.)

त्वग्दन्तीव्याघ्रकरजविडङ्गनवमालिकाः।
अपामार्गफलं बीजं नक्तमालशिरिषयोः ॥
क्षवकोऽश्मन्तको बिल्वं हरिद्रा हिङ्गुयूथिका।
फणिज्झकश्च तैस्तैलमविमूत्रे चतुर्गुणे ॥
सिद्धं स्यान्नावनं चूर्णं चैषां प्रधमनं हितम् ॥

दालचीनी, दन्तीमूल, व्याघ्रनखी (नख नामक गन्ध द्रव्य), बायविड़ंग, मोगरा, अपामार्ग (चिरचिटा), करञ्जके फल, सिरसके बीज, नकछिकनी, अश्मन्तक (पाषाणभेद-पत्थरचटा), बेलकी छाल, हल्दी, हींग, जूही और वनतुलसी इनके कल्क और ४ गुने भेड़के मूत्रके साथ तैल पका लीजिए।

---

१ त्रिफलायोरजमांसीति पाठान्तरम् २ 'जीवनीयगण' जकारादि कषायप्रकरणमें देखिये।

इस तैलकी बूंदे नाकमें डालनेसे अथवा उपरोक्त औषधियोंके चूर्णको नाकमें चढ़ानेसे शिरो रोग नष्ट होता है।

(२४८२) त्वगादितैलम् (वृ. नि. र.। बाल)

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठै-
रम्लप्रपिष्टैःसबलासिताह्वैः।
अजीर्णकघ्नं च विषूचिकाघ्नं
तैलं विपक्कं च तदर्थकारि॥

दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सहिंजना, कूठ, बला और सफेद आकको काञ्जीमें पीस लीजिए। इस कल्क और चारगुने पानीके साथ तैल पका लीजिए।

यह तैल अजीर्ण और विषूचिकाका नाश करता है।

इति तकारादि तैलप्रकरणम्।

अथ तकाराद्यरिष्टप्रकरणम्।

(२४८३) तक्रारिष्टः

(ग नि.। आस., च. सं.। चि. अ. ९)

हपुषा सुषवी धान्यमजाजी कारवी शठी।
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको गजपिप्पली॥
यवानीचाजमोदा च तच्चूर्णं तक्रसंयुतम्।
मन्दाम्लकटुकं विद्वान् स्थापयेद्घृतभाजने॥
व्यक्ताम्लकटुकं जातं तक्रारिष्टं मुखप्रियम्।
पाययेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य तृषितं त्रिषु॥
दीपनो रोचनो बल्यः कफवातानुलोमनः।
गुदश्वयथुकण्ड्वार्त्तिनाशनो बलवर्धनः॥

हाऊबेर, कालाज़ीरा, धनियां, सफेद ज़ीरा, कलौंजी, कचूर, पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, अजवायन और अजमोद के समान भाग चूर्णको ८ गुने तक्रमें मिलाकर घृतके चिकने बरतनमें भरकर मुख बन्द करके रख दीजिए। ६—७ दिन या न्यूनाधिक समयमें वह तक्र अम्ल और कटु (चरपरा) हो जायगा। उस समय उसे छानकर बोतलोंमें भरकर रख दीजिए।

यह अत्यन्त स्वादु, अग्निदीपक, रोचक, बलकारक, कफवातानुलोमक तथा गुदाकी सूजन, खुजली और पीड़ाशामक है।

इसे दिनमें ३ बार भोजनके समय प्यास लगने पर पिलाना चाहिए।

(मात्रा—२–४ तोले।)

(२४८४) तक्रारिष्टः (भै. र., च. द. संग्र.)

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिफलांशिकम्।
लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत्॥
तक्रकं संयुतं जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नरः।
दीपनं शोथ गुल्मार्श क्रिमिमेहोदरापहम्॥

अजवायन, आमला, हर्र और मरिचका चूर्ण १५–१५ तोले तथा सेंधालवण, सञ्चल (काला नमक), बिड (खारी) नमक, सामुद्रनमक और उद्भिज लवण ५–५ तोले लेकर चूर्ण करके सब को ८॥ सेर तक्रमें मिलाकर घृतसे चिकने किए हुवे मिट्टीके पात्रमें भरकर, उसका मुख बन्द करके रख दीजिए। ५–६ दिन पश्चात् निकालकर छान लीजिए।

इसे पीनेसे शोथ, गुल्म, अर्श, कृमि, प्रमेह और उदररोग नष्ट होते तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। (मात्रा—२-४ तोले।)

(२४८५) ताम्बूलासवः (ग. नि. । आसवा.)

जतुसूतमादौ कृत्वा भाण्डकमर्धप्रवेशितं भूमौ।
त त्तरुणहरितजम्बूपत्रक्काथेन संशुद्धम् ॥
शुद्धे च शर्कराभिरगुरुं दद्यात्सुगन्धतरम् ।
वासार्थं, धातक्याःपलानि खलु सप्त देयानि॥
पूगीफलानि खादिरं दशपलकानि दापयेत्तत्र ।
ताम्बूलीपत्रशतैर्दशभिःक्षुण्णैश्च पञ्चभिश्चान्यैः॥
पलशतमेकं मधुनः शतंच सार्धं तु वारिणो देयम् ।
कङ्कोलककृष्णानां प्रत्येकं द्वे पले च स्युः ॥
त्रिफलाजातिफलैलालवङ्गकुसुमानि चैकपलिकानि ।
दत्वावलोड्यमेतत्त्रीणि दिनानि पाणिना पात्रे॥
सभवेद्यदा सशब्दस्ततो गुडशतपलानि त्रीणि ।
देयानि प्रविलीनमग्नियोगात्तं तु जलद्रोण संयुक्तम् ॥
पक्षद्वयेन पेयो रसनाक्षिमनोहरःसुरभिगन्धः।
ताम्बूलासव एष रसायनानां भवेदग्र्यः ॥
प्रीणयति हन्ति गुदजान् सर्वांश्च कफोद्भवांस्तथा रोगान् ।
बलवर्ण शुक्रजननो ह्युपयोगादश्मरीं हन्यात्॥
संवत्सरमुपयुक्तः स्थिरवयसं मानवं कुरुते ॥

प्रथम मिट्टीके नवीन मटकेको जामनके नवीन पत्तोंके क्वाथसे अच्छी तरह धोकर उसके भीतर लाखका रंग पोत दीजिए, फिर उसे खांड और अगरकी धूनी देकर ज़मीनमें गाड़ दीजिए। आधा मटका ज़मीन के भीतर और आधा ऊपर रहना चाहिए।

अब इस मटकेमें सात पल धायके फूल, दस दस पल सुपारी और खैरसार, १५०० पान (पीसे हुवे), १०० पल शहद, १५० पल पानी तथा २-२ पल कंकोल और पीपलका चूर्ण एवं १-१ पल (५-५ तोले) त्रिफला, जायफल, इलायची और लौंगका चूर्ण मिलाकर सबको तीन दिन तक हाथसे विलोडन करते रहिए। जब सब वस्तुएं एकरस हो जायं और उसमें शब्द होने लगे तो ३०० पल गुड़को १६ सेर पानीमें अग्नि पर गर्म करके अच्छी तरह घोलकर उस मटकेमें डाल दीजिए और मुख बन्द करके रख दीजिए।

एक मास पश्चात् निकालकर छानकर बोतलोंमें भर दीजिए।

इसका रंग, सुगन्ध और स्वाद अत्यन्त उत्तम होगा।

इसके सेवनसे अर्श, समस्त कफरोग और पथरी नष्ट होती तथा बल, वर्ण और शुक्रकी वृद्धि होती है। यह अत्युत्तम रसायन है। एक वर्ष पर्यन्त सेवन करते रहनेसे आयु स्थिर हो जाती है।

(मात्रा—१ तोला पानीमें डालकर पीएं।)

(२४८६) त्रायमाणासवः (ग.नि.। आसव.)

त्रायन्ती कट्फलदन्ती पौष्करं कण्टकारिका ।
दुरालभाञ्जनं सिंही पिप्पलीमूलमेव च ॥
धात्री कृमिहरं भार्ङ्गी माचिका चैलवालुकम् ।
पथ्या शठी विशाला च भागानष्टपलोन्मितान्॥

चतुर्द्रोणेऽम्भसःपक्त्वा शृतं द्रोणावशेषितम् ।
धातक्या विंशतिपलं माक्षिकस्य शतत्रयम् ॥
श्यामा पलानि चत्वारि एलात्वक्पत्रकेसरम् ।
भागान्द्विपलिकानेषां चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥
त्रायमाणासवो ह्येष कासश्वासामयप्रणुत् ।
पाण्डुहृद्रोगगुल्मार्शःसन्निपातज्वरापहः ॥

त्रायमाणा, कायफल, दन्तीमूल, पोखरमूल, कटेली, धमासा, सुरमा, बड़ी कटैली, पीपलामूल, आमला, बायबिड़ंग, भारंगी, पाठा, एलवा, हर्र, कचूर और इन्द्रायन ८-८ पल (४०-४०तोले) लेकर सबको ६४ सेर पानीमें पकाएं। जब १६ सेर पानी शेष रहे तो छानकर उसमें २० पल धायके फूलोंका चूर्ण, ३०० पल शहद, ४ पल निसोतका चूर्ण तथा इलायची, दालचीनी, तेजपात और नागकेसरका चूर्ण २-२ पल मिलाकर उसके मुखको बन्द करके रख दीजिए। एक मास पश्चात् छानकर बोतलोंमें भर दीजिए।

इसके सेवनसे श्वास, खांसी, पाण्डु, हृद्रोग, गुल्म, अर्श और सन्निपात ज्वर नष्ट होता है।

(मात्रा-१ से २ तोले तक। समान भाग पानीमें मिलाकर)

(२४८७) त्रिफलारिष्टः

(ग. नि. । आसवा.; च. सं. । चि. अ. १७)

फलत्रयं चित्रकपिप्पली च
सदीप्यकं लोहरजो विडङ्गम् ।
चूर्णीकृतं कौडविकं द्विरंशं
क्षौद्रं पुराणस्य तुलां गुडस्य ॥
मासं निदध्याद्घृतभाजनस्थं
यवेषु तानेव निहन्ति रोगान् ॥

त्रिफला, चीता, पीपल, अजवायन, लोह और बायबिड़ंगका चूर्ण २०-२० तोले, शहद ४० तोले और पुराना गुड़ ६। सेर। सबको घृतसे चिकने मिट्टीके घड़ेमें भरकर मुख बन्द करके जौंके ढेरमें दबा दें। और एक मास पश्चात् निकालकर छान लें।

इसके सेवनसे हृद्रोग, पाण्डु, सूजन, तिल्ली, भ्रम, अरुचि, खांसी, श्वास और कुष्ठादि नष्ट होते हैं।

नोट—इसमें १६ सेर पानी भी डालना चाहिए।

इति तकाराद्यरिष्टप्रकरणम् ।

अथ तकारादि लेपप्रकरणम् ।

(२४८८) तण्डुलादिलेपः

(वृं. मा. । कुष्ठा.)

नारिकेलोदरे न्यस्तस्तण्डुलःपूतितां गतः ।
लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥

चावलोंको अधकुटा करके कच्चे नारियलके भीतर भर दीजिए और उसके मुंहको मोमादिसे बन्द करके रख दीजिए। जब चावल सड़ जायं तो उनको निकालकर पीस लीजिए।

इसे पैरोंके तलुवोंमें लगानेसे विपादिका (बिवाई) नष्ट होती है।

(२४८९) तमालपत्रादियोगः

(च. सं. । चि. अ. ७ कु.)

तमालपत्रं मरिचं समनःशिलां सकाशीशम् ।
तैलेन युक्तमुचितं सप्ताहं भाजने ताम्रे ॥
तेनालिप्तं सिध्मं सप्ताहाद्व्येति तिष्ठतो धर्मे ।
मासान्तरं किलासं स्नानं मुक्त्वा विशुद्धतनोः ॥

तेजपात, काली मिर्च, मनसिल और कसीस समान भाग लेकर तैलमें घोटकर ताम्रपात्रमें भर-कर रख दीजिए। सात दिन पश्चात् इसका लेप करके थोड़ी देर तक नित्य प्रति धूपमें बैठनेसे सात दिनमें सिध्म और १ मासमें किलास कुष्ठ नष्ट हो जाता है। इस प्रयोगके दिनोंमें स्नान नहीं करना चाहिए।

(२४९०) तर्कारिकादिलेपः (ग.नि.। वृद्ध्य.)

तर्कारिकासैन्धवदेवदारु
कुष्ठानि शुण्ठी सहचित्रकेण ।
रास्नाऽऽटरूषोऽथ तथा शताह्वा
प्रलेपनं स्याद्वृषणप्रवृद्धौ ॥

अरनी, सेंधालवण, देवदार, कूठ, सोंठ, चीता, रास्ना, वासा और सोया समान भाग लेकर पानीमें पीसकर लेप करनेसे अण्डवृद्धि नष्ट होती है। (लेप तनिक गर्म करके करना चाहिये)

(२४९१) ताम्बूलचूर्णादिलेपः

(शा. ध. सं. । खं. २. अ. ११)

ताम्बूलपत्रचूर्णं तु चूर्णं कुष्ठशिवाभवम् ।
वारिणा लेपनं कुर्याद्गात्रदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥

सूखे हुवे नागरवेलके पान, कूठ और हर्रका चूर्ण समान भाग लेकर पानीमें पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्धि नष्ट होती है।

(२४९२) तालकादिप्रयोगः

(शा. ध. सं. । ख. ३ अ. ११)

तालकं शाणयुग्मं स्यात् षट्शाणं शंखचूर्णकम् ।
द्विशाणिकं पलाशस्य क्षारं दत्वा प्रमर्दयेत् ॥
कदलीदण्डतोयेन रविपत्रिरसेन वा ।
अस्यापि सप्तभिर्लेपैर्लोम्नां शातनमुत्तमम् ॥

हरताल २ शाण, शंखका चूर्ण ६ शाण और ढाकका क्षार २ शाण लेकर सबको केलेके खम्भेके रसमें या हुलहुलके रसमें घोटकर सात बार लेप करनेसे बाल गिर जाते हैं।

(२४९३) तालकादिलेपः [१]

(वृ. नि. र. । त्वग्दो.)

तालकाद्द्विगुणं गन्धं बाकुचीगोजलमर्दितम् ।
सिध्मंप्रलेपनादाशु हन्ति मासप्रयोगतः ॥

१ भाग हरताल और २ भाग गन्धक तथा २ भाग बावचीके चूर्णको एकत्र मिलाकर गोमूत्र में पीसकर नित्यप्रति १ मास तक लेप करनेसे सिध्म (सीप—जिसमें शरीरसे भूसीसी उतरकर सफेद रंग निकल आता है और जो प्रायः छाती पर होता है, वह) कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

(२४९४) तालकादिलेपः [२]

(वृ. नि. र.। त्वग्दोष.; शा. ध। खं.३ अ. ११)

तालकःशाणमात्रःस्याच्चतुःशाणा च बाकुची ।
गोमूत्रयुक्तं तच्चूर्णं लेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥

हरताल (पीली वर्की हरताल) १ शाण, बावची ४ शाण। दोनोंके चूर्णको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र (सफेद कोढ) नष्ट होता है।

(२४९५) तालमूलादियोगः

(वै. म. र. । पट ११)

तुषाम्भसा तालशिफां सशुण्ठीं
नाभौ कवोष्णं प्रदिहेत् कृमिघ्नाम् ।

ताल वृक्षकी जड़ और सोंठके समान भाग चूर्णको काञ्जीमें पीसकर ज़रा गर्म करके नाभिपर लेप करनेसे पेटके कृमि नष्ट होते हैं ।

(२४९६) तालमूलादिलेपः(वै.म.। पट. ६)

तण्डुलोदकपिष्टेन तालमूलेन लेपनम् ।
नाभौ प्रकल्पितं सद्यो जयत्येव विषूचिकाम् ॥

ताल वृक्षकी जड़को चावलोंके पानीके साथ पीसकर नाभिपर लेप करनेसे विषूचिका (हैज़ा) अवश्य ही नष्ट हो जाती है ।

(२४९७)तालादिलेपनम्(वृ.यो.त.।त.१२०)

तालं सूतवली शिला च तुवरी सिक्थं वचा धूम्रकम् ।
मुद्दारं सुरशङ्खजीररसकं गैरीकसिन्दूरकम् ॥
पूगं माहिषशृङ्गकं द्विरजनी निम्बं वरा माक्षिकम् ।
भृष्टं तुत्थमिदं समांशमखिलं चूर्णाद्द्विभागं घृतम् ॥
पात्रे ताम्रमये निधाय सकलं ताम्रेण संघर्षयेत् ।
यामैकं हरिताल लेपनमिदं सर्वान्व्रणान् नाशयेत् ॥
पूयं स्रावयुतं कृमींश्च पिटकां सर्वोपदंशव्रणा-
न्नाडीकुष्ठभगन्दरान्मुनिदिनात्सर्वान्गदा- न्नाशयेत् ।

हरताल, पारा, गन्धक, मनसिल, फटकी, मोम, बच, घरका धुंवा, मुरदा सिंघ (मुर्दारशंख), जीरा, खपरिया, गेरु, सिन्दूर, पुरानी सुपारी, भैंसका सींग, हल्दी, दारुहल्दी, नीमकी छाल, त्रिफला, स्वर्णमाक्षिक भस्म और भुना हुवा तुत्थ (नीला थोथा) समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें मोमके अतिरिक्त अन्य समस्त औषधियोंका महीन चूर्ण मिला लीजिए, फिर सबसे दोगुना घी लेकर पहिले उसमें मोमको पिघलाकर मिलाइये और फिर उपरोक्त सब चीज़े मिलाकर तांबेके पात्रमें तांबेकी मूसलीसे १ पहर तक अच्छी तरह घोटिये ।

इसका लेप करनेसे पीप और कृमियुक्त घाव, पिड़िका (फुंसिया), सर्व प्रकारके आतशकके घाव, नासूर, कुष्ठके घाव, भगन्दर और अन्य समस्त प्रकारके घाव नष्ट हो जाते हैं ।

(२४९८) तिक्तापटोलीपत्रप्रयोगः

(वृ. नि. र.; वं. से. । क्षुद्र.; शा. सं. । खं. ३) अ. ११; भा. प्र.। खं. २ इन्द्रलु०)

तिक्तापटोलीपत्रस्वरसं घृष्ट्वा शमं याति ।
चिरकालजापि रुह्या नियतं दिनत्रयादेव ॥

कड़वे पटोलपत्रके स्वरसको शिर पर मलने से पुराना इन्द्रलुप्त (गंज) रोग भी ३ दिनमें ही अवश्य नष्ट हो जाता है ।

(२४९९) तिलपर्णीबीजलेपः

(यो. समु. । अ. ८)

बीजानि पिष्ट्वा तिलपर्णिकाया
जलेन लेपो विहितो ललाटे ।

शीर्षव्यथां संशमयत्यवश्यं
शीतं यथा वह्निरतिप्रवृद्धम् ॥

वन तुलसीके बीजो (तुख्मरीहां) को पानीमें पीसकर मस्तक पर लेप करनेसे शिरपीड़ा अवश्य शान्त हो जाती है।

(२५००) तिलपुष्पादिलेपः (वृं.मा.।क्षुद्ररोग.)

आदाय तिलपुष्पाणि सर्पिरश्वखुरं तथा।
मधुना सहसंयुक्तं शिरो लेपं तु कारयेत् ॥
तैलेनानेन जायन्ते केशाःहस्ततलेष्वपि ॥

तिलपुष्प, घोड़ेके खुरका कोयला, घी और शहद समान भाग लेकर घोटकर शिरपर लेप करनेसे गंज नष्ट होता है। इस प्रयोगसे हथेली में भी बाल उग जाते हैं।

(२५०१) तिलादिकल्कः

(यो. र.; वृ. नि. र.; ग. नि.। भगन्द०; वृं. मा.। उपदंश)

तिलाभयाकुष्ठमरिष्टपत्रं
निशे वचा रोध्रमगारधूमः।
भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च
दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥

तिल, हर्र, कूठ, नीमके पत्ते, हल्दी, दारु हल्दी, वच, लोध और घरका धुंवा। सबका समान भाग महीन चूर्ण लेकर (घीमें मिलाकर) लेप करने से भगन्द, नासूर और उपदंश (आतशक) के दुष्ट व्रण शुद्ध होकर भर जाते हैं।

(२५०२) तिलादिलेपः (वृं. मा.। व्रणशोथा.)

तिलाःपयःसिता क्षौद्रं तैलं मधुकचन्दनम्।
लेपेन शोथरुग्दाहरक्तं निर्वापयेद् व्रणान् ॥

महीन पीसे हुवे तिल, दूध, मिश्री, शहद, तिलका तेल तथा मुलैठी और लालचन्दनका चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे व्रण (घाव) की सूजन, पीड़ा, दाह और रक्तस्राव का नाश होता है।

नोट-यदि लेप गाढा हो तो दूध मिलाकर लगाने योग्य पतला कर लेना चाहिए। यदि अधिक पतला हो तो मुलैठी और चन्दनका चूर्ण मिलाकर गाढा कर लेना चाहिए या दूध और तैल पहिलेसे ही थोड़ा मिलाना चाहिए।

(२५०३) तिलादिलेपः

(वृ. नि. र.; यो. र.। भगन्दर,)

तिलत्रिवृन्नागदन्तीमञ्जिष्ठाद्यैःससैन्धवैः।
सक्षौद्रैश्च प्रलेपोयं भगन्दरकुलान्तकृत् ॥

तिल, निसोत, नागदन्ती, मञ्जिष्ठादि गण और सेंधा नमकके समान भाग चूर्णको शहदमें मिलाकर लेप करनेसे भगन्दर नष्ट होता है।

(२५०४) तिलादिलेपः (वृं.मा.;वं.से.।व्रणरो.)

सदाहा वेदनावन्तो ये व्रणाः मारुतोत्तराः।
तेषां तिलानुमांश्चैव भृष्टान् पयसि निर्वृतान् ॥
तेनैव पयसा पिष्ट्वा दद्यादालेपनं भिषक् ॥

दाह और वेदनायुक्त वातज व्रणों (घावो)में तिल और अलसीको भूनकर (तुरत गर्म गर्म ही) दूधमें बुझाकर उसी दूधके साथ पीसकर लेप करना चाहिए।

(२५०५) तिलादिलेपः

(वं. से.; ग. नि.। भगन्दर)

पयःपिष्टैस्तिलैरण्डमधुकैश्च[1] सुशीतलैः।
भगन्दरे प्रलेपोऽयं सरक्ते वेदनावति ॥

---

१ पयः पिष्टैस्तिलैराज्यमधुकैश्चेति पाठान्तरम् ॥

रक्त और वेदनायुक्त भगन्दर पर अरण्डकी जड़, तिल और मुलैठीको कच्चे दूधमें पीसकर ठण्डा ठण्डा लेप करना चाहिये।

(२५०६) तिलाष्टकम्

(वृ. मा.; यो. र.; च. द.; भै. र., र. र.; भा. प्र.। खं. २। व्रण.; शा. ध.। खं. ३ अ. ११ व्रणशोथा.)†

तिलकल्कःसलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृन्धृतम्।
मधुकं निम्बपत्राणि लेपःस्याद् व्रणशोधनः॥

पिसे हुवे तिल, सेंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, निसोत, मुलैठी और नीमके पत्तोंका समान भाग चूर्ण लेकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे घाव शुद्ध हो जाते हैं।

(२५०७) तुगाक्षीर्यादिलेपः

(शा. सं.। खं. ३ अ. ११.)

अग्निदग्धे तुगाक्षीरी प्लक्षचन्दनगैरिकैः।
साम्रृतैःसर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक्॥

अग्निसे जले हुवे स्थान पर बंसलोचन, पीपल की छाल, लालचन्दन और गेरुके महीन चूर्णको दूधमें पीसकर घीमें मिलाकर लेप करना चाहिए।

(२५०८)तुत्थादिमलहरम् (नपुं. मृ.। त.८)

तुत्थं सिक्थं च काम्पिल्लं सिन्दूरं मृतमश्मकम्।
पूगीफलं च खर्जूरं भर्जितं शाणमात्रकम्॥
कर्पूरं च वेदगुञ्जा सर्वं सम्मेलयेद् बुधः।
एकोत्तरशतं धौते नवनीते त्रिमेलयेत्॥
उपदंश फिरङ्गघ्नं लेपनं परमोत्तमम्।
अनुभूतश्च योगोऽयं योगेषु प्रवरो मतः॥

† भा. प्र.; यो. र; शा. ध.; में श्लोक भिन्न है, प्रयोग यही है॥

नीला थोथा (तुत्थ), मोम, कमीला, सिन्दूर, मुरदासिंग, सुपारी और छुहारेका कोयला ४-४ माशे तथा रस कपूर ४ रत्ती लेकर मोमके अतिरिक्त समस्त औषधियोंका महीन चूर्ण कर लीजिए; फिर मोमको पिघलाकर १०१ बार धुले हुवे नवनीत (नौनी) घीमें मिलाकर उसमें अन्य समस्त औषधियोंका चूर्ण मिलाकर घोट लीजिए।

इस मल्हमसे उपदंश और फिरङ्ग रोगके घाव नष्ट होते है। यह प्रयोग अत्युत्तम और अनुभूत है। (नोट—घी सब औषधियोंके बराबर लेना चाहिए।)

(२५०९) तुत्थादिलेपः

(वा. भ.। उत्त. अ. ३४.; र. र.। उप.)

तुत्थगैरिकलोध्रैलामनोह्वालरसाञ्जनैः।
हरेणपुष्पकासीससौराष्ट्रीलवणोत्तमैः॥
लेपः क्षौद्रयुतैः सूक्ष्मैरुपदंशव्रणापहः॥*

तुत्थ (नीलाथोथा), गेरु, लोध, इलायची, मनसिल, हरताल, रसौत, रेणुका, पुष्पकासीस (फूलकसीस), सौराष्ट्री और सेंधानमक समान भाग लेकर अत्यन्त महीन पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंश (आतशक) के घाव नष्ट हो जाते हैं।

(२५१०) तुम्बर्वाद्युद्वर्त्तनम् (ग. नि.। कु.)

तुम्बरु सर्षपाःकुष्ठमश्वगंधाऽथ चित्रकः।
पटोलपिचुमन्दौ च देवदारुःकुठेरकः॥

* रसरत्नाकरमें पाठ भिन्न है और गेरु तथा लोधके स्थानमें सुहागा और सिन्दूर लिखा है शेष प्रयोग समान है॥

सुरसा सैन्धवं रास्ना चोरकःसारिवा वचा ।
हरितालं शिला चैव हरिद्रे द्वे निदिग्धिका ॥
एतानि तक्रपिष्टानि कुष्टप्रद्वर्त्तनं परम् ।
पामाकिटिभसिध्मानि स्थूलारुष्कं विचर्चिका॥
कपालकुष्ठं दद्रुं च तथा स्याद्विषमं च यत् ।
योगेनानेन शाम्यन्ति कुष्ठानि विविधानि च॥

कुस्तुम्बरु (नैपाली धनियां), सरसों, कूठ, असगन्ध, चीता, पटोल, नीमकी छाल, देवदारु, कुठेरक (छोटे पत्तेकी सफेद तुलसी या काली तुलसी), तुलसी, सेंधा, रास्ना, चोरक, सारिवा, वच, हरताल, मनसिल, हल्दी, दारु हल्दी और कटैली। सब चीजें समान भाग लेकर तक्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ट, पामा, (खुजली), किटिभ, सिध्म (सीप), भिलावेकी सूजन, विचर्चिका, कपाल कुष्ट और दाद इत्यादि नष्ट होते हैं।

(२५११) तुम्बीपत्रादियोगः

(यो. र.। स्त्री.; यो. स.। स. ५७; वं. से.। स्त्री.)

तुम्बीपत्रश्च लोध्रश्च समभागानि कारयेत् ।
दद्याल्लेपो भगस्यायं प्रसूताप्यक्षता भवेत् ॥

तुंबीके पत्तो और लोधको पीसकर लेप करने से प्रसूता स्त्रीकी योनि भी अक्षता स्त्रीके समान हो जाती है ।

(२५१२) तैलादिलेपः (वृ. नि. र.। मुख.)

तैलं घृतं सर्जरसं ससिक्थं
रास्ना गुडं सैन्धवगैरिकं च ।
पक्त्वा समांशं दशनच्छदानां
त्वग्भेदहन्त् व्रणरोपणश्च ॥

तेल, घी, रालका चूर्ण, मोम, रास्ना, सेंधा और गेरूका चूर्ण तथा गुड़ समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं, जब सब चीज़ें मिलकर एकजीव हो जायं तो डब्बे या कांचादिकी प्यालीमें भरकर सुरक्षित रक्खें ।

इसे लगानेसे मसूढ़ोंके घाव नष्ट होते हैं ।

(२५१३) त्रपुसीबीजादिलेपः

(वृ. नि. र. । मूत्रा.)

त्रपुसीबीजलेपो वा धारा वा किंशुकाम्भसः ।
ज्वलच्छिद्रे चेन्दुदानं लेपो वा चटकाविशः॥
मेघनादशिलालेपःस्वेदो वा कर्कटाऽम्भसा ।
पातो वा कोष्णतैलस्य धारा वा कोष्णवारिणा॥
नवैते पादिकायोगा मूत्रकृच्छ्रहरा मताः ॥

निम्नलिखित ९ प्रयोग मूत्र कृच्छ्रका नाश करते है ।

(१) खीरेके बीजोंको पीसकर पेड़ू पर लेप करना ।

(२) किंशुक (केसु—ढाकके फूल)के काढ़ेकी नाभिसे नीचे पेड़ूपर धार छोड़ना ।

(३) दाह होती हो तो मूत्रेन्द्रीके छिद्रमें तनीकसा कपूरका चूर्ण पहुंचाना ।

(४) चिड़ियाकी बीटको पानीमें पीसकर पेड़ू पर लेप करना ।

(५) चौलाईकी जड़को पानीमें पीसकर लेप करना ।

(६) मनसिलको पानीमें पीसकर पेड़ूपर लेप करना ।

(७) काकड़ा सिंगीके काढ़ेकी भाप देना ।

(८–९) मन्दोष्ण तैल या मन्दोष्ण (कुछ गरम) पानीकी पेडूपर धार डालना ।

(२५१४) त्रिफलादिप्रयोगः

(वै. म. र. । पट ११)

त्रिफलां किञ्चिद्भृष्ट्वा तैलेनालेपयेद्बहुशः ।
पादे विपादकायाः पादं पद्मोपमं कुरुते ॥

त्रिफलेको जरा तेलमें भूनकर पीसकर (तैलमें मिलाकर) विपादिका (पैरोंकी बिवाई)में वार वार लेप करनेसे बिवाई नष्ट होकर पैर कमलके समान कोमल हो जाते हैं ।

(२५१५) त्रिफलादियोगः [१]

(र. र. र. । उप. ५)

त्रिफलालोहचूर्णं तु कृष्णमृद्भृङ्गजद्रवम् ।
इक्षुदण्डद्रवं चैव मासं भाण्डे निरोधयेत् ॥
तल्लेपाद्रञ्जयेत्केशान् स्याद्यावन्मासपञ्चकम् ॥

त्रिफला, लोहेका चूर्ण, काली मिट्टी, भांगरे का रस और ईखका रस मिट्टीके बरतनमें भरकर उसके मुखपर सराव ढककर तथा उस पर कपरौटी करके उसे भूमिमें गाढ दीजिए । इसे एक मास पश्चात् निकालकर बालोंपर लेप करनेसे बाल काले हो जाते है और फिर ५ मास तक सफेद नहीं होते ।

नोट—भूमिसे औषधको निकालकर अच्छी तरह घोटकर छान लेना चाहिये । रातको बालों पर लगाकर अरण्डके पत्ते बांध देने चाहियें, और प्रातःकाल त्रिफलेके काढेसे धोकर तेल लगा देना चाहिये । जब तक बाल अच्छी तरह काले न हो जायं तब तक रोज़ इसी प्रकार लेप करते रहें ।

भांगरेका रस और ईखका रस समस्त औषधियोंसे २–२ गुना लेना चाहिये ।

(२५१६) त्रिफलादियोगः [२]

(र. र. र. । उप. ५)

अयस्कान्तमये पात्रे रात्रौ लेप्यं फलत्रयम् ।
भृङ्गराजद्रवैःसार्धं प्रातः केशान् प्रलेपयेत् ॥
एवं कुर्यात्त्रिसप्ताहं जायते पूर्ववत्फलम् ॥

अयस्कान्त (चुम्बक) के पात्रमें रातको भांगरेके रसमें घिसे हुए त्रिफलेका लेप कर दीजिए । प्रात.काल उसे छुड़ाकर भंगरेके रसमें मिलाकर लेप करनेसे २१ दिनमें बाल काले हो जाते है और ५ मास तक सफेद नहीं होते ।

(२५१७) त्रिफलादिलेपः [१]

(वृ. नि. र.; वं. से.; यो. र.; ग. नि.; वृं. मा. । विसर्प; शा. ध. । खं. ३ अ. ११)

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ।
नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥

त्रिफला, पद्माख, खस, मजीठ, करवीर (कनेर), नलकी जड़ और अनन्तमूलका समान भाग चूर्ण लेकर पानीमें पीसकर लेप करनेसे कफज विसर्प नष्ट होता है ।

(२५१८) त्रिफलादिलेपः [२]

(वृ. नि. र. । त्वग्दोष.)

त्रिफला नीलिकापत्रं लोहचूर्णं रसाञ्जनम् ।
श्वेतगुञ्जा दन्तिदन्तभस्म तुल्यं च मार्कवम् ॥
मेषीदुग्धेन सम्पिष्य स्थापयेल्लोहभाजने ।

दिनमेकं ततो लिम्पेन्मुहुःश्वित्रेष्वनुक्रमात् ॥
श्वित्राण्यनेन लेपेन निजवर्णं त्यजन्ति वै ॥

त्रिफला, नीलके पत्ते, लोहका चूर्ण, रसौत, सफेद चौटली, हाथीदांतकी भस्म और भंगरा समान भाग लेकर सबको भेड़के दूधमें अच्छी तरह घोटकर १ दिन लोहपात्रमें रक्खा रहने दीजिए, फिर चौड़े मुंहकी शीशी या बरनी आदिमें भरकर रख दीजिए।

श्वेत कुष्ट पर वारवार इसका लेप करनेसे वह नष्ट हो जाता है ।

(२५१९) त्रिफलादिलेपः [३]

(वं. सेन. । क्षुद्र.)

धात्रीफलं द्वयं पथ्ये द्वे तथैकं बिभीतकम् ।
लोहचूर्णस्य कर्षन्तु दशार्द्धं चूतमज्जतः ॥
पिष्ट्वालोहमये पात्रे स्थापयेदुषितं निशि ।
लेपोऽयं हन्ति न चिरादकालपलितं महत् ॥

दो आमले, २ हर्र, १ वहेड़ा, १ कर्ष (१। तोला) लोहेका चूर्ण और ५ आमकी गुठलीके भीतरकी गिरी। सबको महीन पीसकर रातको लोहपात्रमें डालकर रख दीजिए। दूसरे दिन इसका लेप लगानेसे सफेद बाल (जो वृद्धावस्थासे पहिले सफेद हो गये हो वह) काले हो जाते हैं ।

(प्रयोगविधि नं. २५१५ के समान हैं।)

(२५२०) त्रिफलादिलेपः [४]

(वृं. मा.; वृ. नि. र.; । क्षुद्र.)

त्रिफलानीलिनीपत्रं लोहभृङ्गरजःसमम् ।
अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥

त्रिफला, नीलके पत्ते, लोहेका चूर्ण और भंगरेका चूर्ण समान भाग लेकर भेड़के मूत्रमें पीसकर लेप लगानेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं।

(प्रयोगविधि नं. २५१५ के समान है ।)

(२५२१) त्रिफलादिलेपः [५] (ग.नि.। वृद्ध्य.)

त्रिफलाशतपुष्परजं काञ्जिक-
यवतिलपुनर्नवामूलम् ।
संपेपितं सुखोष्णं प्रलेपनं वृषणवृद्धौ स्यात् ॥

त्रिफला, सोया, जौ, तिल और पुनर्नवाकी जड़को काञ्जीमें पीसकर मन्दोष्ण (कुछ गरम) करके लेप करनेसे अण्डवृद्धि नष्ट होती है।

(२५२२) त्रिफलामषीलेपः [१]

(वृ. नि. र. । अग्निद.)

अन्तर्धूमविदग्धं त्रिफलाचूर्णं विमिश्रितं तैलैः।
क्षौमैः शीघ्रं शमयत्यग्निव्रणमाशु लेपेन ॥

त्रिफला और रेशमी कपड़ेको हाण्डीके भीतर बन्द करके भस्म करें। इसे तिलके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अग्निदग्धव्रण (आगसे जलनेसे होने वाला घाव) अत्यन्त शीघ्र नष्ट होता है।

(नोट—तैल इतना मिलाना चाहिये कि जिससे मरहम सा बन जाय ।

(२५२३) त्रिफलामषीलेपः [२]

(वृ.नि.र.; वृं.मा.। उपदंश.: ग.ध. खं. ३ अ. ११)

दहेत् कटाहे त्रिफलां तां मषीं मधुसंयुताम् ।
कृत्वोपदंशे लेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥

त्रिफलेका कढाहीमें जलाकर पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंश (आतशक)के घाव नष्ट होते हैं।

इति तकारादिलेपप्रकरणम् ॥

अथ तकारादि धूपप्रकरणम् ।

(२५२४) तण्डुलकण्डनधूपः

(वै. म. र. । पट. १८)

तण्डुलकण्डनलुलितैर्लशुनवरासर्षपैःकृतो धूपः।
कन्दर्पराजधान्यास्तोदं द्रागेव जयति रमणीनाम्॥

चावल, ल्हसन, त्रिफला और सरसोंको एकत्र मिलाकर धूप देनेसे योनिका तोद (सुइ चुभकनेके समान दर्द) नष्ट होता है ।

(२५२५) तालनिम्बादियोगः (वं.से.। विष.)

तालनिम्बदलं केशा जीर्णाश्च लवणं घृतम् ।
धूपोवृश्चिकविद्धस्य शिखिपत्रं घृतेन वा ॥

हरताल, नीमके पत्ते, बाल और सेंधा नमकको अथवा केवल चिरचिटेके पत्तोंको घीमें मिलाकर धूप देनेसे विच्छूका विष उतर जाता है ।

इति तकारादि धूपप्रकरणम् ॥

अथ तकाराद्यञ्जनप्रकरणम् ।

(२५२६) तन्द्राहरीवर्त्तिः (हा.सं.।स्था.३अ.२)

त्रिकटु च करञ्जबीजं त्रिफला
सुरदारु सैन्धवं सुरसा ।
वर्त्तिनयनाञ्जनकं तन्द्रा-
नाशं करोति नयनानाम् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), करञ्जवीज, हर्र, बहेड़ा, आमला, देवदारु, सेंधा नमक, और तुलसी। समान भाग लेकर पानीके साथ अत्यन्त महीन पीसकर बत्तियां वना लीजिए।

इसे पानीके साथ पत्थर पर घिसकर आंखमें लगानेसे तन्द्रा नष्ट होती है ।

(२५२७) तमालपत्रादिवर्त्ती

(वा. भ. । उत्त. अ. ११, ग. नि. । नेत्र.)

तमालपत्रं गोदन्तं शङ्खं फेनोऽस्थिगार्दभम् ।
ताम्रञ्च वस्तमूत्रेण वर्त्तिःशुक्रविनाशिनी ॥

तेजपात, गायका दांत, शङ्ख, समुद्रफेन, गधेकी हड्डी और ताम्र। सब चीजे समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर बत्तियां वना लीजिए।

इसे पानीके साथ पत्थर पर घिसकर आंखमें आंजनेसे समस्त प्रकारके फूले नष्ट होते हैं ।

(२५२८) ताप्याद्यञ्जनचतुष्टयम्

(वृं. मा. । नेत्र.)

ताप्यं मधुकसारो वा वीजं चाक्षस्य सैन्धवम् ।
मधुनाञ्जनयोगाःस्युश्चत्वारःशुक्रशान्तये ॥

सोनामक्खी, महुवेका सार, वहेड़ेकी मींगी (बीज) और सैन्धवमेंसे किसी एकको शहदमें घिसकर आंखमें आंजनेसे फूला नष्ट होता है ।

(२५२९) ताम्बूलादियोगः (ग.नि. । नेत्र.)

ताम्बूलशिग्रुकरवीरशिरीषदन्ती
श्यामादधित्थसुरसासुमनार्जकानाम् ।
प्रत्येकशो मधुयुतःस्वरसोञ्जनेन
कोपं नवं नयनयोःसहसैव हन्ति ॥

पान, सहंजना, कनेर, सिरस, दन्ती, श्यामालता, कैथ, तुलसी, चमेली और छोटी तुलसीमेंसे

किसी एकके रसमें शहद मिलाकर आंखमें आंजनेसे नवीन नेत्राभिष्यन्द (आंख दुखना) नष्ट होता है।

(रस ४ भाग, शहद १ भाग)

(२५३०) ताम्रद्रुतिः (अञ्जनम्)

(र. र. स. । उ. ख. अ. २३)

शुल्वं गन्धकमभ्रकं च
रसकं दिक्संख्यनिष्कं पृथक् ।
सर्वं रुद्रजटारसेन बहुशो
भृंगस्य सारेण वा ॥
प्रायःश्लक्ष्णतरं सुमर्दित-
मिदं सम्यक् पुटं कारयेत् ।
स्थाल्यां तत्पुनरेव शीतल-
मिदं विन्यस्य तस्यान्तरे ॥
निष्कं निष्कमनन्तरं परि-
पचेज्जीर्णे तथा गन्धकम् ।
स्यादेवं शतनिष्कमात्र-
मसकृच्चद्रस शीतं ततः ॥
प्रस्थेनोन्मितवारिणा
विलुलितं कल्कं विना गालितम् ।
संगृह्याम्बुतदन्तरे शिखि-
निभं तुत्थं सुचूर्णीकृतम् ॥
कर्षांशांशितमञ्जनं विनि-
हितं कांस्ये परं शोषयेत् ।
तां ताम्रद्रुतिमामनन्ति
निखिलान्नेत्रामयान्नाशयेत् ॥

ताम्रभस्म, गन्धक, अभ्रकभस्म और खपरिया १०-१० निष्क (प्रत्येक ४ तो. २ माशे) लेकर सबको रुद्रजटा अथवा भंगरेके रसकी २१ अथवा ततोऽधिक भावनाएं देकर और खूब घोटकर गोला बनाइये, तत्पश्चात् उसे सम्पुटमें बन्द करके गज-पुटमें फूंक दीजिए। जब पुट स्वांग शीतल हो जाय तो उसमेंसे औषध निकाल कर उसमें ५ माशे गन्धक मिलाकर घोटिए और फिर उसे तांबे-की कढ़ाइमें डालकर आगपर चढ़ा दीजिए; जब गन्धक जल जाय (धुवां निकलना बन्द हो जाय) तो फिर ५ माशे गन्धक डाल दीजिए और साफ करछी आदिसे चलाते रहिए। इसी प्रकार १०० बार ५-५ माशे गन्धक डालकर जलाइये और अन्तिम बार जब सब ठण्डा हो जाय तब उसमें १ सेर पानी डालकर अच्छी तरह विडोलन कीजिए और फिर पानीको नितरने दीजिए। जब पानी नितर जाय तो उसे धीरे धीरे उतार लीजिये और उस पानीमें १। तोला नीला थोथा और १। तोला सुरमा मिलाकर कांसीके पात्रमें धूपमें सुखाकर सुरक्षित रखिए।

इसे आंखमें आंजनेसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

(२५३१) ताम्रद्रुतिः (अञ्जनम्)

(र. र. स. । उ. । ख. अ. २३)

आर्द्रालकुचभृङ्गाणां रसपिष्टेन कस्यचित् ।
गन्धकेन समांशेन प्राग्वत्ताम्रं च मारितम् ॥
ताम्राभ्रकं च तुत्थं च दशनिष्कं पृथक् पृथक् ।
कन्दुकस्थमिदं त्रिंशत्कर्षं चूर्णितं गन्धकम् ॥
दत्त्वाल्पशोऽग्निनाल्पेन रुध्वा धूमं विसर्जयेत् ।
प्रस्थाम्बुमर्दितस्यास्य प्रासादं निःसृतं सुतः ॥
तुत्थनीरशिलाजाभ्यां कर्षांशाभ्यां विशोषयेत् ।
ताम्रद्रुतिरियं साज्यमानुषीक्षीरमाक्षिकात् ॥

काचार्मपिल्लाभिष्यन्दव्रणशुक्रप्रणाशिनी।
तत्किट्टं दद्रुकिटिभं लेपात्पामादिकं जयेत् ॥

गन्धकको अद्रक, लकुच (कटहल) और भंगरेमेंसे किसी एकके रसमें घोटकर समान भाग तांबेके बारीक पत्रों पर लेप कर दीजिए और फिर उन्हें सम्पुटमें बन्द करके गजपुटकी अग्नि दीजिए। इसी प्रकार बारबार पुट देकर ताम्र भस्म तैयार कर लीजिए।

यह ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म और तुत्थ (नीला थोथा) १०–१० निष्क (४ तो. २माशे) लेकर सबको अच्छी तरह घोटकर मिट्टी या ताम्र अथवा लोहेके पात्रमें डालकर मन्दाग्निपर रखिए और उसके ऊपर दूसरा ऐसा पात्र ढक दीजिए कि जिसमें धूम्र निकलनेके लिए कुछ छिद्र हों। अब नीचेवाले पात्रमें थोड़ा थोड़ा गन्धक डालकर जलाना आरम्भ कीजिए। जब एक बारके डाले हुवे गन्धकका धूम्र निकल जाय तो पुनः डालना चाहिए। इसी प्रकार जब ३० कर्ष (३७॥ तोले) गन्धक जल जाय तो पात्रके स्वांग शीतल होने पर उसे नीचे उतार कर उसमें १ सेर पानी डालकर अच्छी तरह विलोडन कीजिए और फिर निथरनेके लिए रख दीजिए। जब पानी निथर जाय तो उसे धीरे धीरे नितारकर उसमें नीला थोथा और सफेद सुरमेका चूर्ण १।–१। तोला मिलाकर घोटिए और धूपमें सुखा लीजिए।

इसे घी, स्त्रीके दूध अथवा शहदमें मिलाकर आंखमें आंजनेसे काच (मोतिया), अर्म, पिल्ल, अभिष्यन्द, व्रण और फूला नष्ट होता है। पात्रके नीचे जो गाद रह जाती है उसका लेप करनेसे दाद, किटिभ और पामादि नष्ट होते हैं।

(२५३२) तालकादिप्रयोगः

(वा. भ. । उ. अ. १३)

आलश्च सौवीरकमञ्जनश्च
ताभ्यां समं ताम्ररजश्च सूक्ष्मम्।
पिल्लेषु रोमाणि निषेवितोऽसौ
चूर्णः करोत्येकशलाकयाभिः ॥

हरताल और सौवीराञ्जन १–१ भाग तथा ताम्रचूर्ण २ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके अत्यन्त महीन सुरमा बना लीजिए।

इसे आंखमें लगानेसे पिल्ल रोग नष्ट होता और पलकोंके गिरे हुवे बाल पुनः निकल आते हैं।

(२५३३) तालकाद्यञ्जनम् (वं.से.। नेत्ररोगा.)

आलदारुवचापिष्टा सुरसापत्रवारिणा।
छायाशुष्ककृता वर्त्तिः क्लिन्नवर्त्मनिवारिणी ॥

हरताल, देवदारु और वच। सबको तुलसीके पत्ते के रसमें घोटकर गोलियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

एक गोलीको पानीमें घिसकर आंखमें आंजनेसे क्लिन्नवर्त्म रोग नष्ट होता है।

(२५३४) तिमिरनाशिनीवर्त्तिः (धन्वं.। चक्षु.)

कतकस्य फलं शङ्खं सैन्धवं त्र्यूषणं वचा।
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥
एषां वर्तिर्हन्ति काचं तिमिरं पटलन्तथा ॥

निर्मलीके फल, शंख भस्म, सेंधा नमक, त्रिकुटा, वच, समुद्रफेन, रसौत, वायविडंग और

मनसिलके महीन चूर्णको शहदमें घोटकर वत्तियां बना लीजिए ।

यह वर्ति काच, तिमिर और पटल नामक नेत्ररोगोको नष्ट करती है ।

(२५३५) तुत्थकाद्यञ्जनम्

(ग. नि.; । वं. से. नेत्र.)

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ।
त्रिंशता काञ्जिकपलै पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥
पिल्लानपिल्लान् कुरुते वहुवर्षोत्थितानपि ।
उत्सेकेनोपदेहाश्रुकण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥

तुत्थ ५ तोले, श्वेत मरिच (सहंजनेके वीज) २०; काञ्जी ३० पल (१५० तोले)। सबको ताम्रके पात्रमें घोटें ।

इसे आंखमें डालनेसे अथवा इससे आंख धोने या आंखपर इसकी पट्टी वांधनेसे पुराना पिल्ल रोग अश्रुस्राव, खुजली और शोथादि नष्ट होता है ।

(२५३६) तुत्थप्रयोगः [१]

(ग. नि. । नेत्ररोग.)

तुत्थकं वारिणां घृष्टं शुक्र हन्त्यक्षिपूरणात् ॥

तुत्थको पानीमें घिसकर आंखमें डालनेसे नेत्रशुक्र (फूला) नष्ट होता है ।

(१० तोले पानीमें ५ रत्तीसे अधिक नीला-थोथा न मिलाना चाहिये। अनुभवके विना इस प्रयोगकी आज़मायश न करनी चाहिये।)

(२५३७) तुत्थप्रयोगः [२]

(वै. म. र. । पटल १६)

तुत्थं तुषाम्भसा पिष्टं वर्त्मरोगविनाशनम् ॥

तुत्थको काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे पल्कों के रोग नष्ट होते हैं ।

(२५३८) तुत्थादिचूर्णाञ्जनम् (ग.नि.।नेत्र.)

तुत्थकमधुकामलकं
वदरीपत्रश्च सम्पुटे दग्धम् ।
उत्कुपितमात्रलोचन-
रोगप्रतिनिधि तच्चूर्णम् ॥

तुत्थ, मुलैठी, आमला और वेरीके पत्ते समान भाग लेकर सम्पुटमें वन्द करके भस्म कर लीजिए ।

इसे आंखमें आंजनेसे नवीन नेत्राभिष्यन्द (आंख आना) रोग नष्ट होता है ।

(२५३९) तुत्थादि प्रयोगः

(वा. भ. । उत्त. अ. १३)

गोमूत्रे छगणरसेऽम्लकाञ्जिके च
स्त्रीस्तन्ये हविषि विषे च माक्षिके च ।
यत्तुत्थं ज्वलितमनेकशो ऽभिषिक्तं
तत्कुर्याद्गरुडसमं नरस्य चक्षुः ॥

तूतियाको वारवार अग्निमें तपा तपाकर गोमूत्र, गोवरके रस, खट्टी कांजी, स्त्रीके दूध, घी, पानी और शहदमें वुझाकर पीस लीजिए। इसे आंखमें डालनेसे दृष्टि गरुडके समान तीव्र हो जाती है ।

(२५४०) तुत्थादिवर्तिः (वै.म.र.। पट.१६)

तुत्थाभयाफेनशिरःकपालै-
र्जम्बीरसारे मसृणं प्रपिष्टैः ।
वर्त्तिकृता स्तन्यविघर्षिता स्यात्,
पिल्लार्मपूयालसपोथकिघ्ना ॥

तूतिया, हर्र, अफीम और कपालकी हड्डी समान भाग लेकर सबको जम्बीरी नींबूके रसमें महीन पीसकर बत्तियां बना लीजिए।

इन्हें स्त्रीके दूधमें घिसकर आंखमें आंजनेसे पिल्ल, अर्म, पूयालस और पोथकी रोग नष्ट होता है।

(२५४१) तुत्थाद्यञ्जम् (ग. नि. नेत्ररोग.)

तुत्थं च काचं च समुद्रफेनं
मनःशिलामाक्षिकलोहचूर्णम्।
नारं कपालं सहकुक्कुटाण्ड-
माजन्मजातं विनिहन्ति पुष्पम् ॥

तूतीया, काच, समुद्रफेन, मनसिल, सोनामक्खी, लोहचूर्ण, मनुष्यके कपालकी हड्डी और मुरगीके अण्डेके छिलके। सब चीज़ोंका अत्यन्त महीन चूर्ण लेकर एकत्र खरल करके रक्खें।

इसे आंखमें लगानेसे जन्मका फूला भी नष्ट हो जाता है।

(२५४२) तुत्थाद्यञ्जनम् (वं.से.। नेत्ररोगा.)

ताम्रे च मस्तुनोद्घृष्टं तुत्थकं श्यामतां गतम्।
सर्वाभिष्यन्दशुक्रार्मशिराशूलजिदञ्जनात् ॥

तूतियाको तांबेके पात्रमें मस्तु[१]के साथ इतना घोटे कि वह काला हो जाय।

इसे आंखमें आंजनेसे सर्व प्रकारके नेत्राभिष्यन्द, शुक्र, अर्म, शिराएं और शूल नष्ट होते हैं।

(२५४३) तुरङ्गलालाद्यञ्जनम्
(वृ. नि. र.। सन्निपात)

तुरङ्गलालालवणोत्तमेन्दु
मनःशिलामागधिकामधूनि।
नियोजितान्यक्षिणि निश्चितं द्राक्
तन्द्रासनिद्रां विनिवारयन्ति ॥

सेंधा नमक, कपूर, मनसिल और पीपलके महीन चूर्णको घोड़ेकी लार (थूक) और शहदमें घोटकर आंखमें आंजनेसे सन्निपात ज्वरकी तन्द्रा और निद्रा नष्ट होती है।

(२५४४) तुलस्याद्यञ्जनम्
(यो.र.। नेत्र.)

तुलस्या बिल्वपत्रस्य रसो ग्राह्य समांशकः।
ताभ्यां तुल्यं पयो नार्यास्त्रितयं कांस्यपात्रके॥
गजवल्या दृढं मर्द्यं ताम्रेण प्रहरं पुनः।
कज्जलत्वं समुत्पाद्य तेनाञ्जितविलोचनः ॥
सद्यो नेत्ररुजं हन्ति सशूलां पाकसम्भवाम् ॥

तुलसी और बेलके पत्तोंका रस १-१ भाग और स्त्रीका दूध २ भाग लेकर तीनोंको कांसीके पात्रमें डालकर नागरबेलके पानसे अच्छी तरह रगड़ें और फिर तांबेकी मूसलीसे घोटकर कज्जलके समान बना ले।

इसे आंखमें आंजनेसे नेत्रपाक सम्बन्धी पीड़ा अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाती है।

(२५४५) त्रिकट्वाद्यञ्जनम्
(वृं. मा.; र. र.; ग. नि.। नेत्र.)

त्रीणी कटूनि करञ्जफलानि
द्वे रजनी सह सैन्धवकेन।
बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं
वारिधरं दशमं च वदन्ति ॥
हन्ति तमस्तिमिरं च पटलं च
पिच्चिटशुक्रमथार्जुनकञ्च।

---

१ दहीमें दोगुना पानी मिलाकर बनाए हुए तक्रको 'मस्तु' कहते हैं।

अञ्जनकं जनरञ्जनकञ्ज
दृक् च न नश्यति वर्षशतञ्च ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, करञ्जफल, हल्दी, दारुहल्दी, सेंधानमक, बेलकी जड़की छाल, वरनेकी जड़की छाल और नागरमोथा। यह दशों चीजें समान भाग लेकर अच्छी तरह खरल करके अञ्जन बना लीजिए।

इसे आंखमें आंजनेसे अन्धता, तिमिर, पटल, पिच्चिट, शुक्र और अर्जुनका नाश होता है तथा सौ वर्ष तक भी दृष्टि नष्ट नहीं होती।

(२५४६) त्रिफलादिरसक्रिया

(यो. र.। नेत्ररोग.)

त्रिफलामृतकासीससैन्धवैःसरसाञ्जनैः।
रसक्रियां कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम्॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, बछनाग विष, कसीस, सेंधानमक और रसौत समान भाग लेकर ४ गुने पानीमें पकाएं, जब चौथाई भाग पानी शेष रहे तो छानकर उस काथको पुनः पकाकर गाढ़ा कर लें और सूखने पर महीन खरल कर लें।

कृमिग्रन्थि फूट जाने पर उस स्थान पर यह चूर्ण घिसना चाहिए।

(२५४७) त्र्यूषणादिवर्त्तिः

(वृं. मा., वं. से.; धन्वं.; भै. र.। नेत्ररो०)

त्र्यूषणत्रिफलावक्त्रसैन्धवालमनःशिला।
क्लेदोपदेहकण्डूघ्नी वर्त्तिः शस्ता कफापहा॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, तगर, सेंधा, हरताल और मनसिल। सब चीज़ोंका समान भाग महीन चूर्ण लेकर पानीमें घोटकर वत्तियां बना लीजिए।

इन्हें आंखमें लगानेसे क्लेद (चिपचिपाहट), खुजली और कफका नाश होता है।

(२५४८) त्र्यूषणाद्यञ्जनवर्त्तिः

(ग. नि.; वृं. मा., भा. प्र. खं. २। उन्माद.)

त्र्यूषणं हिङ्गु लशुनं वचा कटुकरोहिणी।
शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताश्च सर्षपाः॥
गोमूत्रपिष्टान्येतानि वर्त्तिर्नेत्राञ्जने हिता।
चातुर्थकमपस्मारमुन्मादं चापकर्षति॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, लहसन, (रसोन), बच, कुटकी, सिरस और करञ्जके बीज तथा सफेद सरसोंका समान भाग चूर्ण लेकर सबको गोमूत्रमें घोटकर वत्तियां बना लीजिए।

इसे पानीमें घिसकर आंखमें आंजनेसे, चातुर्थिक ज्वर, अपस्मार (मिरगी) और उन्माद का नाश होता है।

इति तकाराद्यञ्जनप्रकरणम्॥

१ लवणमिति पाठान्तरम्

अथ तकारादि नस्यप्रकरणम् ।

(२५४९) ताम्बूलादिनस्यम्

(हा. सं. । अ० ३ अ. ४४)

ताम्बूलपत्रस्य रसं विडङ्गं
सिन्धूद्भवं हिङ्गु गुडेन युक्तम् ।
जलेन पिष्टं विहितं च नस्यं
भ्रूशङ्खदोषांश्च कृमीन्निहन्ति ॥

बायविड़ङ्ग, सेंधानमक, हींग और गुड़ समान भाग लेकर सबको महीन पीसकर नागरबेलके पानके रसमें अच्छी तरह घोटकर सुखा लीजिए ।

इसे पानीमें घोलकर नाकमें टपकानेसे भौं, और कनपटीकी पीड़ा नष्ट होती है ।

(२५५०) तालकादिनस्यम् (र.रा.सु.।क्षया.)

तालकं गन्धकं तुत्थं वाकुची च मनःशिला ।
अर्कदुग्धेन सम्पिष्ट्वा वदर्याग्नौ च जारयेत् ॥
नस्यं सप्तदिनं चैव कफक्षयविनाशनम् ॥

हरताल, गन्धक, नीलाथोथा, बाबची और मनसिलको आकके दूधमें घोटकर टिकियां बनाकर सुखा लीजिए और फिर उसे सम्पुटमें बन्द करके बेरीकी अग्निमें फूंक दीजिए ।

सात दिन तक उसकी नस्य लेनेसे कफदोषप्रधान क्षय नष्ट हो जाता है ।

(२५५१) त्वक्पत्रादिनस्यम्

(वं. से. । शिरो.)

त्वक्पत्रशर्करापिष्टा नावनं तण्डुलाम्बुना ।

दालचीनी, तेजपात और खांडको चावलोंके पानीके साथ पीसकर नाकमें टपकानेसे पित्तज शिरोरोग नष्ट होते है ।

इति तकारादि नस्यप्रकरणम् ।

अथ तकारादि कल्पप्रकरणम् ।

(२५५२) तुवरककल्पः (ग.नि.। औष.कल्प.)

वृक्षास्तुवरका नाम पश्चिमार्णवतीरजाः ।
वीचीतरङ्गविक्षोभमारुतोद्धूतपल्लवाः ।
तेभ्य फलान्याददीत सुपक्वान्यम्बुदात्यये ।
मज्जं फलेभ्यश्चादाय शोषयित्वा विचूर्ण्य च॥
तिलवत्पीडयेद्द्रोण्यां क्वाथयेद्वा कुसुम्भवत् ।
तत्तैलं सम्भृतं भूयः पचेदासलिलक्षयात् ॥
अवतार्य करीषे च पक्षमेकं निधापयेत् ।
स्निग्धस्विन्नो हृतमलः पक्षादुद्धृत्य यततः ॥
चतुर्थभक्तान्तरितः प्रातः पाणितलं पिबेत् ।
मन्त्रेणानेन पूतस्य तैलस्य दिवसे शुभे ॥
मज्जासार महावीर्य सर्वान् धातून् विशोधय ।
शङ्खचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः ॥
तेनास्योर्ध्वमधस्ताच दोपा यान्त्यसकृत्ततः ।
सायमस्नेहलवणां यवागूं शीतलां पिबेत् ॥
पञ्चाहानि पिबेत्तैलमित्थं वर्ज्यान्विवर्जयेत् ।
तदेव खदिरक्वाथे त्रिगुणे साधुसाधितम् ॥

निहन्ति पूर्ववत्पक्कं पिवेन्मासं सुयन्त्रितः ।
तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वीताहारमीरितम् ॥
भिन्नस्वरं रक्तनेत्रं शीर्णाङ्गं कृमिभक्षितम् ।
अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत् कुष्ठिनं नरम् ॥
एकान्तरं तौवरकं च तैलं
पिवेद्धिताशी नियमेन मासम् ।
प्रभिन्नकुष्ठी गलिताङ्गदेशम्
त्वचं त्यजेत् सर्प इवाशु जीर्णाम् ॥
उपयुज्ययोगमखिलं प्रति-
दिनमेवं द्विकालमभियुक्तः ।
कुष्ठी कुष्ठमपोहति विशीर्णकण्ठोष्ठमासमपि ॥

तुवरकके वृक्ष पश्चिमी समुद्रके तट पर उत्पन्न होते हैं; जहां समुद्रसे आनेवाली वायु उनके पल्लवोंको प्रकम्पित करती रहती है ।

शरद ऋतुमें इनके सुपक्व फल लेकर उनके भीतरसे मज्जा निकालकर उसे सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् उस मज्जाको कोल्हूमें पिलवाकर तिलकी भांति तैल निकलवा लेना चाहिए, अथवा उसे पानीके साथ पकाकर छान लेना चाहिए और फिर उस छने हुवे क्वाथको पुनः मन्दाग्नि पर पकाकर पानी जला देना चाहिए ।

इन दोनों विधियोंमेंसे किसी एक विधिके द्वारा तैल निकालकर कांच या चीनी आदिके पात्रमें भरकर और उसका मुख अच्छी तरहसे वन्द करके उसे गोवरमें दवा देना चाहिए, एवं १५ दिन पश्चात् निकालकर सेवन करना चाहिए ।

तुवरक तैल सेवन करनेसे पहिले स्नेहन, स्वेदन, वमन और विरेचन द्वारा शरीर शुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिए और फिर शुभ दिनमें प्रातःकाल थोड़ा भात खाकर १ कर्ष (१। तोला) तुवरक तैल पीना चाहिए अथवा तैलको भातमें मिलाकर खाना चाहिए ।

तैल सेवन करते समय मनमें इस प्रकारके विचार करने चाहिएं कि "हे महावीर्य मज्जसार! तुवरक तैल! तू समस्त धातुओंको शुद्ध कर। तुझे ऐसा करनेके लिए शंखचक्रगदाधारी विष्णु भगवान आज्ञा देते हैं, तू उनकी आज्ञाका पालन कर!" इस प्रकार तैल पीनेसे शरीरके समस्त दोष निकल जाते हैं। प्रातःकाल तैल पीकर सायं कालको घृत और लवण रहित शीतल यवागू खानी चाहिए। इसी प्रकार यह तैल पांच दिन पीना चाहिए और पथ्य पालन करना चाहिए ।

इसी तैलको ३ गुने खैरसारके क्वाथमें मिला-कर तैलमात्र शेष रहने तक पकाकर छान लेना चाहिए। इसे भी पूर्वोक्त विधिसे ही एक मास पर्यन्त सेवन करना चाहिए। तथा शरीर पर भी इसीकी मालीश करनी चाहिए ।

कुष्ठरोगीका स्वर बिगड़ गया हो, नेत्र लाल रहते हों, अङ्ग गल गये हो या उनमें कीड़े पड़ गये हों तो भी इस प्रयोगसे शीघ्र आराम हो जाता है ।

यह तैल तीसरे दिन पीना चाहिए और इस प्रकार एक मास तक प्रयोग जारी रखना चाहिए। अथवा रोगीके वलावल का विचार करके नित्य प्रति प्रातः सायं सेवन कराना चाहिए। इसके सेवनसे कुष्ठीके शरीरसे पुरानी चमड़ी इस प्रकार

दूर हो जाती है कि जिस प्रकार सर्पके शरीरसे कांचली।

(२५५३) त्रिफलाकल्पः (ग. नि. । कल्पा.)

हरीतकी चामलकं विभीतकमिति त्रयम्।
त्रिफलेति समाख्याता तच्च ज्ञेयं फलत्रयम्॥
इयं रसायनकरा त्रिफलाऽक्ष्यामयापहा।
रोपणी त्वग्गदक्लेदमेदोमेहकफास्रजित्॥

हर्र, बहेड़ा और आमला। इन तीनोंके योग को त्रिफला कहते हैं। इसी योगका नाम फलत्रय भी है।

त्रिफला रसायन, नेत्ररोग नाशक, रोपण तथा चर्मरोग, क्लेद, मेद, प्रमेह, कफ और रक्तविकार नाशक है।

वरोत्तमा च त्रिफला स्मृता श्रेष्ठा फलत्रयम्।
त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशिनी॥
चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशिनी।
नाशयेद्राजयक्ष्माणमर्शोगुल्मेषु पूजिता॥
वमिकण्डूप्रशमनी नाडीव्रणविशोधिनी।
दृष्टिप्रसादजननी मेधास्मृतिविवर्धिनी॥

वरा, उत्तमा, श्रेष्ठा और फलत्रय इसी योग के नाम हैं। यह पित्त, कफ, प्रमेह, चक्षुरोग, कुष्ठ, विषमज्वर, राज्यक्ष्मा, अर्श, गुल्म, वमन और कण्डू नाशक तथा नाड़ी व्रण (नासूर) शोधक है। दृष्टिको स्वच्छ करता और मेधा तथा स्मरणशक्तिको बढ़ाता है।

घृतान्विता वा मधुनान्विता वा
गुडान्विता तैलसमन्विता वा।
एका हि नित्यं मनुजैःप्रयोज्या
सर्वामयानां शमनी महार्थी॥

केवल एक त्रिफला ही समस्त रोगोंको नष्ट कर सकता है। उसे घृत, शहद, गुड अथवा तैलमें मिलाकर सेवन करना चाहिए।

वातरोगेषु तैलेन, पित्तरोगेषु सर्पिषा।
कफरोगेषुमधुना, प्रयोज्या त्रिफला नरैः॥

त्रिफलाको वातज रोगोंमें तेलके साथ, पित्तज रोगोंमें घीके साथ और कफज रोगोंमें शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

योज्यास्तिस्रो हरीतक्यस्तथा षट् च विभीतकाः।
द्वादशामलकानीति त्रिफलेयं प्रकीर्त्तिता॥

त्रिफला बनानेके लिए ३ हर्र, ६ बहेड़े और १२ आमले लेने चाहियें।

प्रातर्हरीतकीं खादेन्मध्याह्ने द्वौ विभीतकौ।
रात्रौ शयनकाले तु चत्वार्यामलकानि च॥
रूपेण कामःप्रभया शशाङ्को
दृष्ट्या गरुत्मान्निनदेन सिंहः।
बलेन नागः पवनो जवेन
गिरि गुरुत्वेन भवेन्नरोऽसौ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल १ हर्र, दोपहरको २ बहेडे और रातको सोनेके समय चार आमले खानेसे कामदेवके समान रूप, चन्द्रमाके समान

कान्ति, गरुड़के समान दृष्टि सिंहके समान शब्द, हाथीके समान बल, पवनके समान तीव्र गति और पर्वतके समान शारीरिक भार प्राप्त होता है।

वर्षं खादेत्प्राणदा प्रातरेका-
मश्नन्नन्नात्पूर्वमक्षद्वयञ्च।
साज्यक्षौद्रं भोजनान्ते चतुष्कं
मृद्वीकानां तद्वयः स्थापनेऽलम् ॥

आयुकी स्थिरताके लिए १ वर्ष तक प्रतिदिन प्रातःकाल १ हर्र, भोजनके पहिले घी और शहदमें मिलाकर दो बहेड़े तथा भोजनके पश्चात् ४ आमले खाने चाहिएं।

निक्काथ्य त्रिफला पीता नाशयेन्नितरां मलम्।
नेत्रश्वयथुदाहाग्निरागकण्डूपरिस्रवान् ॥

त्रिफलेका क्काथ पीनेसे मल निकलकर शरीर शुद्ध हो जाता है तथा नेत्रोंकी सूजन, जलन, सुर्खी, कण्डू (खुजली) और स्रावका नाश होता है।

नवान्पथ्याक्षधात्रीणां कृत्वाऽर्धपलिकानपि।
पिबेत्कोष्ठविशुद्ध्यर्थं पलिकांश्च यथा बलम् ॥

कोठेकी शुद्धिके लिए २॥ तोले या ५ तोले त्रिफलाका क्वाथ पिलाना चाहिए।

त्रिफला सर्वरोगघ्नी त्रिभागघृतमिश्रिता।
विसर्पं सर्वजं शुक्रं हन्ति चार्धावभेदकम् ॥

त्रिफलाको ३ भाग घीमें मिलाकर सेवन करनेसे विसर्प, प्रमेह और आधासीसी आदि समस्त रोग का नाश होता है।

मधुना त्रिफला चूर्णं प्रयुक्तं नाशयेद्ध्रुवम्।
प्रमेहान्मुखरोगांश्च गलगण्डापचीं तथा ॥

त्रिफलाके चूर्णको शहदके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, गलगण्ड और अपची (गण्डमाला भेद) इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

भक्षयंस्त्रिफलाकल्कं मासं निर्यन्त्रणं पुमान्।
वैनतेयोपमा दृष्टिं मासमात्रादवाप्नुयात् ॥

एक मास तक त्रिफला सेवन करनेसे दृष्टि गरुड़के समान हो जाती है।

त्रिफलादलचूर्णस्य कृत्वा पलशतं नवम्।
भृङ्गराजरसेनैव कुर्यात्सप्ताहभावितम् ॥
लिह्यान्मधुघृताभ्याञ्च पलार्द्धं प्रत्यहं पुमान्।
जीर्णे दुग्धौदनाहारो गुणानेतानवाप्नुयात् ॥
प्रसन्नदृष्टिरव्याधिर्जीवेद्वर्षशतानि षट्।
नीलालिकुलसंकाशकेशराशिर्महाबलः ॥
मेधावी स्मृतिमान्धीरः स्निग्धश्यामवपुर्युवा।
सुभगश्च सरूपश्च स्त्रीशतानन्दवर्धनः ॥

१०० पल (६। सेर) त्रिफला चूर्णको भांगरेके रसमें सात दिन तक घोटकर रख लीजिए।

इसमेंसे प्रतिदिन २॥ तोले चूर्ण शहद और घृतके साथ मिलाकर खाना चाहिए और उसके पचने पर दूधभातका आहार करना चाहिए।

इस प्रयोगसे दृष्टि स्वच्छ हो जाती है, बाल भौरके समान काले हो जाते हैं, शरीर स्निग्ध और सुन्दर हो जाता है, सैकड़ों स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति प्राप्त होती है तथा मनुष्य महाबल-

शाली, मेधावान्, स्मृतिमान् और धीर श्याम कान्तिवाला होकर छः सौ वर्ष पर्यन्त रोगरहित जीवन धारण करता है।

त्रिफलां निष्कुलां कृत्वा वारिणा तां स्थितां निशि।
प्रातः प्रातः पिबेद्धीमान्विषमज्वरशान्तये ॥

त्रिफलेकी गुठली दूर करके कूटकर रातको पानीमें भिगो दीजिए। इसे प्रातःकाल सेवन करने से विषमज्वर नष्ट होता है।

(२५५४) त्रिफलाकल्पः

(हा. सं. । स्था. ५ अ. २)

हरीतक्याश्चामलक्या विभीतस्य च यत्फलम्।
त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैर्वक्ष्यामि भागनिर्णयम् ॥
एकं भागं हरीतक्या द्वौ भागौ च विभीतकम्।
आमलक्यास्त्रिभागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत् ॥

हर्र, बहेड़े और आमलेके फलोंके योगको त्रिफला कहते है। त्रिफला बनानेके लिए १ भाग हर्र, २ भाग बहेड़ा और ३ भाग आमला लेना चाहिए।

त्रिफला कफपित्तघ्नी महाकुष्ठविनाशिनी।
आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी॥
वर्णप्रदायिनी वृष्या विषमज्वरविनाशिनी।
दृष्टिप्रदा कण्डुहरा वमिगुल्मार्शनाशिनी ॥
सर्वरोगप्रशमनी मेधास्मृतिकरी वरा।

त्रिफला—कफपित्त और महाकुष्ठ नाशक, आयुवर्द्धक, अग्निदीपक, नेत्रोंके लिए हितकर, व्रण-शोधक, वर्ण संस्कारक, वृष्य, विषमज्वरनाशक, खुजली, वमन, गुल्म, अर्श इत्यादि समस्त रोगो को नष्ट करनेवाला और स्मृति तथा मेधावर्द्धक है।[1]

वक्ष्यामि योगयुक्तिश्च रोगे रोगे पृथक्पृथक्॥
वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा।
श्लेष्मे त्रिकटुकोपेता मेहे समधुवारिणा ॥
कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवेनाग्निमान्द्यहा।

त्रिफलाको वातज रोगोंमें घृत और गुड़के साथ, पित्तज रोगोमें शहद और खांडके साथ, कफजरोगोंमें त्रिकुटाके साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिए। प्रमेह रोगमें शहदके साथ चाटकर ठण्डा पानी पीना चाहिए। यदि त्रिफलाको घीके साथ सेवन किया जाय तो कुष्ठ नष्ट होता है और सेंधा नमकके साथ सेवन करनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है।

चक्षुर्धावनके क्काथो नेत्ररोगनिवारणः ॥
घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम्।
क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं गुडेन च ॥
भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सह योजितः।
वलीपलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ॥
सक्षीरः सगुडः क्काथो विषमज्वरनाशनः।
सशर्करा घृतः क्काथः सर्वजीर्णज्वरापहः ॥

त्रिफलाके क्काथसे आंखे धोनेसे नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

त्रिफलाके क्काथमें घी डालकर पीनेसे खुजली, नींबूका रस मिलाकर पीनेसे वमन, दूधके साथ

---

[1] संस्कृतमें त्रिफला स्त्रीलिंग है परन्तु हिन्दीमे प्रायः उसे पुल्लिङ्ग लिखते है।

पीनेसे राजयक्ष्मा और गुड़ डालकर पीनेसे पाण्डु रोग नष्ट होता है।

यदि त्रिफलाके क्वाथमें भांगरेका रस और घी डालकर सेवन किया जाय तो वलि पलित नष्ट होकर मेधा और स्मरण शक्तिकी वृद्धि होती है।

त्रिफलेके क्वाथमें दूध और गुड़ मिलाकर पीनेसे विषमज्वर और खांड तथा घृत मिलाकर पीनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है।

एषा नराणां हितकारिणी च।
सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृता च।
सर्वामयानां शमनी च सद्य-
स्तेजश्चकान्तिप्रतिभांकरोति ॥
शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे
तथोदरे मूत्रयुता हिता च।
हिध्मातिसारे ग्रहणीविकारे
हिता च तक्रेण फलत्रिका च ॥
क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे
क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च।
स्यान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च
कुष्ठे च कण्डूव्रणपीनसे च ॥
मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमांद्ये
हिता जलेन त्रिफला हि कल्किता।

त्रिफला मनुष्यके लिए अत्यन्त हितकारी है और समस्त रोगोंमें प्रयुक्त किया जा सकता है। यह शीघ्र ही समस्त रोगोंका नाश करके तेज, कान्ति और प्रतिभाकी वृद्धि कर देता है।

शोथ, कामला, पाण्डु और उदर रोगोंमें त्रिफलाको गोमूत्रके साथ तथा हिचकी, अतिसार और ग्रहणी रोगमें तक्र के साथ सेवन करना चाहिए।

यदि इन्द्रियां क्षीण हो गई हों या जीर्ण-ज्वर अथवा यक्ष्मा रोगने दवा रक्खा हो तो त्रिफलाको दूधके साथ सेवन करनेसे लाभ होता है; तथा नेत्ररोग, शिरोरोग, कुष्ठ, कण्डू, व्रण, पीनस, मूत्रावरोध, कामला और अग्नि मांद्यमें पानीके साथ पीसकर खाने से रोग नष्ट हो जाता है।

सशीतकाले गुडनागरेण
सशर्कराक्षीरयुता तथोष्णे।
वर्षासु शुण्ठीसहिता फलत्रिका
फलत्रिका सर्वरुजा हरा स्यात् ॥

त्रिफलाको शीतकालमें सोंठके चूर्ण और गुड़के साथ, ग्रीष्मकालमें खांड और दूधके साथ, और वर्षाकालमें सोंठके साथ सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट हो जाते है।

इति तकारादिकल्पप्रकरणम्।

अथ तकारादिरसप्रकरणम्।

(२५५५) तक्रमण्डूरम् (भै. र.। शोथे)

गोमूत्रशुद्धं मण्डूरचूर्णं पलचतुष्टयम्।
बिल्वपत्रं भृङ्गराजद्वयश्च गणिकारिका ॥
शोथघ्नो कोकिलाक्षश्च रसैरेषां पृथक् पृथक्।
गोमूत्राष्टपलैश्चैव भावयेद्यत्नतस्त्रिधा ॥
दशगुञ्जामितां खादेत्तक्रेण वर्जयेज्जलम्।
तक्रेण भोजयेदन्नं पाने तक्रश्च दापयेत् ॥
पाण्डुशोथं हरेच्चूर्णं भास्करस्तिमिरं तथा ॥

गोमूत्रमें सिद्ध किया हुवा ४ पल (२०तोले) मण्डूर लेकर उसे बेलपत्र, काला और सफेद भंगरा, अरनी, पुनर्नवा और तालमखानेके रसमें १—१ दिन घोटकर उसमें ८ पल (४० तोले) गोमूत्र थोड़ा थोड़ा डालकर घोटें।

इसे १० रत्तीकी मात्रानुसार तक्रके साथ सेवन करने तथा जल बन्द कराके तक्रके साथ ही आहार देने और प्यासमें भी तक्र ही पिलानेसे पाण्डु और शोथ अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते हैं।

(२५५६) तक्रवटी (भै. र.। ग्रहणी)

रसस्य माषकं ग्राह्यं गन्धकस्य च माषकम्।
द्विमाषकं विषस्यापि ताम्रं माषचतुष्टयम् ॥
तोलकं पिप्पलीचूर्णं मण्डूरस्य च तोलकम्।
क्वाथेन कृष्णजीरस्य भावयेत्सप्तवासरम् ॥
वल्लप्रमाणां वटिकां तक्रेण सह पाययेत्।
तक्रेण भोजनं पानं लवणाम्भोविवर्जितम् ॥
निहन्ति शोथं ग्रहणीं मन्दाग्निं पाण्डुतामपि॥

शुद्ध पारा और गन्धक १—१ माशा, शुद्ध मीठा तेलिया २ माशे, ताम्र भस्म ४ माशे और पीपल तथा मण्डूर भस्म १—१ तोला लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर सबको सात दिन तक काले जीरेके रसमें घोटकर ३—३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १—१ गोली प्रतिदिन प्रातः सायं तक्रके साथ सेवन कराने और लवण तथा पानी बन्द करके रोगीको केवल तक्र (छाछ) पर रखने से शोथ, संग्रहणी, मंदाग्नि और पाण्डुका नाश होता है।

(२५५७) तरुणज्वरारिरसः [१]
(र. प्र. सु.। अ० ८.)

तालताम्ररसगन्धतुत्थका-
श्छाणमात्रतुलितान्समानपि।
निष्कमात्रं रुचिरां मनःशिलां
मर्दयेत्त्रिफलकाम्बुभिर्दृढम् ॥
गोलमस्य च विधाय सम्पुटे
पाचयेच्च पुटयोगतः सदा।
अर्कवज्रिपयसा सुभावयेत्
सप्तवारमथ दन्तिकाभृतैः ॥
माषमात्ररसमेव भक्षितं
शाणमानमरिचैर्युतं सदा।
सार्धनिष्कगुडमत्र योजितं
तच्च सौरसदलद्वयान्वितम् ॥
शीतपूर्वमथ दाहपूर्वकं
त्र्याहिकं च सकलान् ज्वरानपि।

नाशयेद्धि तरुणज्वरारिकः–
सर्वदोष शमनःसुखावहः ॥

शुद्ध हरताल, ताम्र भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध नीला थोथा और शुद्ध मनसिल समान भाग लेकर सबको त्रिफलाके रसमें अच्छी तरह घोटकर गोला बना लीजिए और उसे सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। पुटके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर उसे आक (अर्क) और सेहुंड (सेंड–थोहर)के दूध तथा दन्तीमूलके काथकी सात सात भावनाएं दीजिए ।

इसमेंसे १ माशा औषध १ शाण (४ माशे) काली मिर्चके चूर्ण और १॥ निष्क (६ माशे) गुड़के साथ मिलाकर नागरवेलके २ पानोके साथ खानेसे शीतपूर्व और दाहपूर्व, द्व्याहिक (तिजारी) आदि ज्वर नष्ट होते हैं ।

(व्यवहारिक मात्रा–२ रत्ती । ज्वर आनेके समयसे ३ घन्टे पूर्व खिलाएं। औषध खिलानेके पश्चात् २ पान खिलाएं ।)

नोट–यह रस रेचक है, गर्भिणी और बहुत छोटे बच्चोंको न देना चाहिए।

(२५५८) तरुणज्वरारिरसः [२]

(भै.र.; धन्वं.; र.चं.; रसें. सा.; र.रा. सुं.। ज्वरा.)

जैपालगन्धं विषपारदश्च
तुल्यं कुमारिस्वरसेन मर्द्यम् ।
अस्य द्विगुञ्जा हि सितोदकेन
ख्यातो रसोयं तरुणज्वरारिः ॥
दातव्य एषोऽह्वि पञ्चमे वा
षष्ठेऽथवा सप्तम एव वापि ।
जाते विरेके विगतज्वरःस्यात्
पटोलमुद्गान्ननिषेवणेन ॥

शुद्ध जमाल गोटा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) और शुद्ध पारद समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर घीकुमारके रसमें घोटकर २–२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए। इनमेंसे प्रातःकाल मिश्रीके पानीके साथ १ गोली खिलानेसे विरेचन होकर ज्वर नष्ट हो जाता है ।

यह रस ज्वर आनेके पांचवें, छठे या सातवें दिन देना चाहिये। इस पर पटोलका शाक, मूंगका यूष और भात खिलाना पथ्य है ।

(नोट–यह रस गर्भिणीको न देना चाहिए ।)

(२५५९) तरुणानन्दरसः

(र. सा. सं.; धन्वं.; र. रा. सुं. । कास; र. चिं.। स्तव. ११)

कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च ।
कज्जलीकृत्य यत्नेन शिलातलशुभे दृढे ॥
बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मरीपाटलाबला ।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम् ॥
विदारी शतमूली च कर्षैरेषां पृथग्रसैः ।
मर्दयित्वा पुनर्वासास्वरसैर्दशतोलकैः ॥
मर्दयेत्तत्र शुद्धाभ्रं रसस्याद्विगुणं क्षिपेत् ।
रसस्यार्धञ्च कर्पूरं तत्रैव दापयेद्भिषक् ॥
जातीकोषफले मांसी तालीशैला लवङ्गकम् ।
चूर्णं कृत्वा प्रयत्नेन माषमात्रं क्षिपेत्पृथक् ॥

विदारीस्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं क्षयञ्चोग्रमुरःक्षतम् ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं स्वरघातमरोचकम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्लीहानं सहलीमकम् ॥
जीर्णज्वरं तृषां गुल्मं ग्रहणीमामसम्भवाम् ।
अतीसारञ्च शोथञ्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥
नाशयेदेष विख्यातस्तरुणानन्दसंज्ञितः ।
रसायनवरो वृष्यश्चक्षुष्यःपुष्टिवर्द्धनः ॥
सहस्रं याति नारीणां भक्षणादस्य मानवः ।
क्षीणता न च शुक्रस्य न च बुद्धिबलक्षयम्॥
द्विमासमुपयोगेन निहन्ति कामलान्गदान् ।
शुक्रसन्दीपनं कृत्वा ज्वरं हन्ति न संशयः ॥
नारिकेलजलेनैव भक्ष्योऽयञ्च रसायनः ।
क्षीरानुपानाद्वृष्योऽयं न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥

२-२ कर्ष (२॥-२॥ तोले) शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक लेकर पत्थरके खरलमें घोटकर चिक्कण कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें बेलपत्र, अरणी, अरलु, गंभारी, पाढल, बला (खरैटी), मोथा, पुनर्नवा, आमला, बड़ी कटेली, बासेके पत्ते, विदारिकन्द और शतावरका १-१ कर्ष (१।-१। तोला) स्वरस डालकर घोटिये और फिर बासेका १२॥ तोले स्वरस मिलाकर घोटकर उसमें ५ तोले अभ्रक भस्म, १। तोला कपूर और १।-१। माशा जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीसपत्र, इलायची और लौंगका चूर्ण मिलाकर विदारीकन्दके रसमें घोटकर (४-४ रत्तीकी) गोलियां बना लीजिए ।

इनके सेवनसे राजयक्ष्मा, भयङ्कर क्षय, उरःक्षत, पांच प्रकारकी खांसी, श्वास, स्वरभंग, अरुचि, कामला, पाण्डु, हलीमक, तिल्ली, जीर्ण ज्वर, तृषा, गुल्म, आमग्रहणी, अतिसार, शोथ, कुष्ठ और भगन्दरका नाश होता है ।

यह रस रसायन, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंके लिए हितकारी और पौष्टिक है । इसके सेवन करने वाला मनुष्य सैकड़ों स्त्रियोके साथ रमण करे तो भी उसका शुक्रक्षय नहीं होता और न ही बुद्धि-बलका ह्रास होता है ।

इसे दो मास तक सेवन करनेसे कामला रोग नष्ट हो जाता है। यह रस ज्वरको अवश्य नष्ट कर देता है और वीर्यको पुष्ट करता है।

इसे नारयलके पानीके साथ सेवन करनेसे रसायनके गुण प्राप्त होते हैं और दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्यकी वृद्धि होती है ।

(२५६०) ताण्डवरसः (र. का. धे. । कु.)

तालगन्धकमाक्षीककुष्ठामृतरसं समम् ।
श्वेतापराजिताद्रावैर्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥
द्विगुञ्जं तद्वटीं मूत्रैर्गलत्कुष्ठहरं लिहेत् ।
वाकुचीबीजकक्षौद्रैरनु स्यात्ताण्डवो रसः ॥
असम्भवे तु वाकुच्या वटी चानन्दभैरवी ।
लेहयेत्कर्षमात्रेण गलत्कुष्ठापनुत्तये ॥

हरताल भस्म, शुद्ध गन्धक, सोनामक्खी भस्म, कूठ, शुद्ध बच्छनाग (मीठा तेलिया) और शुद्ध पारा समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य औषधियोंका महीन चूर्ण मिलाकर ३ दिन तक सफेद अपरा-जिता (कोयल)के रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए ।

इनमेंसे प्रतिदिन (प्रातः सायं) १-१ गोली गोमूत्रके साथ खा कर ऊपरसे १। तोला बावचीका चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटना चाहिए। यदि बावची न मिल सके तो आनन्द भैरवी वटी (र. का. धे.) खानी चाहिए।

इसके सेवनसे गलत्कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

(२५६१) ताण्डवारिलोहम्

(आयु. वे. वि. । उत्त. अ. ५९)

दारुरामठकर्पूरयशदायो यथोत्तरम् ।
प्रगृह्य चतुरावृत्या विभाव्य विजयाम्बुना ॥
कुपीलुजकषायेण पार्थस्य स्वरसेन च ।
षड्रक्तिकां वटीं कृत्वा युञ्ज्यात्ताण्डवशान्तये॥

देवदारु १ भाग, हींग ४ भाग, कपूर १६ भाग, जसत भस्म ६४ भाग और लोह भस्म २५६ भाग लेकर सबको १-१ दिन भांगके रस और कुचलेके क्वाथ तथा अर्जुनकी छालके स्वरसमें घोटकर छः छः रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे ताण्डवरोग[1] नष्ट होता है।

(२५६२) ताप्यादिचूर्णम्

(र. चं. । पाण्डु, च. सं. । चि. स्था. पाण्डु.)

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाः पञ्चपलाःपृथक् ।
चित्रकत्रिफलाव्योपविडङ्गैःपालिकैःसह ॥
शर्कराष्टपलोन्मिश्रा चूर्णिता मधुना प्लुताः ।
अभ्यस्यास्त्वक्षमात्रा हि जीर्णे नियमिताशिना॥
कुलत्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा ॥

स्वर्णमाक्षिक, शिलाजीत, रौप्यमाक्षिक और मण्डूर ५-५ पल (२५-२५ तोले), चीतामूल, हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और वायविडंगका चूर्ण १-१ पल तथा मिश्री ८ पल लेकर सबको एकत्र मिलाकर रक्खें।

इसे १। तोलेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर खाना चाहिए। औषधके पच जानेपर नियमित भोजन करना चाहिए और कुलत्थ, काकमाची तथा कपोतादिके मांससे परहेज़ करना चाहिए।

(यह चूर्ण कामला रोगको नष्ट करता है।)

(२५६३) ताप्यादिरसायनम्

(र. र. स. । उ. खं. अ. २६)

ताप्याभ्रकत्रिकटुतुत्थशिलाजकान्त-
मङ्कोल्ललोहमलटङ्कणसैन्धवञ्च ।
भृङ्गीरसेन वटिकांश्च मसूरमात्रान्
खादेद्रसायनवरं सकलामयघ्नम् ॥

सोनामक्खी भस्म, अभ्रक भस्म, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), शुद्ध नीलाथोथा (तुत्थ), शिलाजीत, कान्तलोह भस्म, अङ्कोलमूल, मण्डूर भस्म, सुहागेकी खील और सेंधानमक समान भाग लेकर भांगके रसमें घोटकर मसूरके दानेके बराबर गोलियां बना लीजिये।

इन्हें यथोचित अनुपानके साथ सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हैं।

[1] ताण्डव रोग-यह रोग अत्यधिक हर्ष शोकादिके कारण मनके अतिशय क्षोभ पानेके कारण होता है। इसमें मनुष्य नाचता हुआ सा चलता है, हाथ, पैरोंको नचाता है, और मुट्ठीसे किसी भी वस्तुके पकड़ने या मुंहमें देनेमें असमर्थ होता है।

(२५६४) ताम्रकः [१]

(वं. से.। रसायन.; र. र.। रसा; धन्वं.)

जीर्णताम्रं रसं चैव गन्धकञ्च सुचूर्णितम्।
स्वर्णमाक्षिकमादाय धत्तूरकरसे पचेत्॥
यावत्पाकं यथा कृत्वा शास्त्रविन्मन्दवह्निना।
त्रिफलापिण्डिकावेष्ट्य विधिवत्सर्पिषा पचेत्॥
ज्ञात्वा पाकं समुत्तार्य शीते निष्कास्य भक्षयेत्।
विमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां नारिकेलं पिबेदनु॥
पाण्डुरोगञ्च कासं च ज्वरांश्च विषमांस्तथा।
गुल्मं प्लीहामयञ्चैव विनाशयति भक्षणात्॥

ताम्र भस्म, पारद, गन्धक और सोनामक्खी भस्म बराबर बराबर लेकर कज्जली करके धतूरेके रसमें मन्दाग्नि पर इतना पकाइये कि पकते पकते, गोली बनने योग्य हो जाय। तत्पश्चात उसकी पिण्डी बनाकरउसके ऊपर त्रिफलेका महीन चूर्ण लपेटकर उसे मन्दाग्निपर घृतमें पकाइये; जब त्रिफलेका रंग लाल हो जाय तो निकाल लीजिए और ठण्डा होनेपर पीसकर रखिये।

इसे शहद और घीमें मिलाकर चाटकर ऊपर से नारियलका पानी पीना चाहिये।

इसके सेवनसे पाण्डु, खांसी, विषमज्वर, गुल्म और प्लीहारोग नष्ट होते हैं।

(मात्रा—२–३ रत्ती। शहद २ तोले। घी ६ माशे।)

(२५६५) ताम्रकः [२]

(वं. से.। रसायना.; र. का. धे.। ग्रह.)

गन्धकस्य पलं प्रोक्तं रसस्य द्विपलं तथा।
नैपालस्य विशुद्धस्य ताम्रस्य च पलं भवेत्॥
ततो गन्धार्द्धचूर्णेन ताम्रं संयुज्य चूर्णयेत्।
शेषार्द्धं गन्धकं कृत्वा पारदं खल्लयेद्भिषक्॥
रसेन हस्तिशुण्ड्याश्च लोहपात्रे पचेच्छनैः।
कृत्वा पङ्कसमं पाकं ताम्रेण सहयोजयेत्॥
तच्च गन्धकचूर्णेन समवेष्ट्य हविषा सह।
पाचयति भिषक् प्राज्ञः पाकविन्मृदुवह्निना॥
आलोड्य मधुसर्पिर्भ्यां भुक्त्वा तक्रं पिबेदनु।
अग्निमांद्यमजीर्णञ्च ग्रहणीपाण्डुकामलाम्॥
परिणामरुजं चाशु नाशयेत्तु प्रयोजितम्॥

शुद्ध गन्धक ५ तोले, शुद्ध पारा १० तोले और शुद्ध नैपाली ताम्र ५ तोले लेकर प्रथम २॥ तोले गन्धक और ताम्रको एकत्र खरल कीजिये और फिर शेष गन्धकको पारेके साथ मिलाकर कज्जली बना लीजिये। इस कज्जलीको लोहेके पात्रमें डालकर मन्दाग्निपर हाथी सुण्डीके रसमें पकाइये। जब कीचड़के समान हो जाय तो उस में उपरोक्त ताम्रचूर्ण मिलाकर गोला बना लीजिये और उसपर गन्धकका महीन चूर्ण लपेटकर मन्दाग्नि पर घीके साथ लोहेकी कढ़ाहीमें पकाइये। (जब गन्धक जल जाय) तो गोलेको निकालकर पीस-कर रखिये।

इसे शहद और घीके साथ मिलाकर तक्रके साथ सेवन करनेसे अग्निमांद्य, अजीर्ण, ग्रहणी, पाण्डु कामला और परिणामशूलका अत्यन्त शीघ्र नाश हो जाता है।

(मात्रा–२–३ रत्ती। शहद २ तो., घी ६ माशे।)

(नोट–ताम्रचूर्णके स्थानमें ताम्र भस्म लेना उचित प्रतीत होता है।)

(२५६६) ताम्रकल्पः

(रसें. चि. अ. ९; रसें. सा. सं.; र. रा. सुं. । प्लीहा.)

अक्षपारदगन्धकञ्च कर्षद्वयमितं पृथक् ।
सर्वैःसमं भवेत्ताम्रं जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥
सूर्यावर्त्तरसैःपश्चात् कणामोचरसेन च ।
योजयेत्तीव्रघर्मे तु यावत् सर्वन्तु जीर्यति ॥
जम्बीरस्य रसैर्भूयो रसं दण्डेन चालयेद् ।
दृढे शिलामये पात्रे चूर्णयेदति शोभनम् ॥
रक्तिद्वयक्रमेणैव योज्यं माषद्वयावधि ।
ह्रासयेच्च क्रमेणैव तथा चैव विवर्द्धयेत् ॥
जीर्णे भुञ्जीत शाल्यन्नं क्षीरं घृतसमन्वितम् ।
हन्त्यम्लपित्तं विविधं ग्रहणीं विषमज्वरम् ॥
चिरज्वरं प्लीहगदं यकृद्रोगं सुदुस्तरम् ।
अग्रमांसं तथा शोथं कांस्यक्रोडं सुदुर्जयम् ॥
कमठञ्च तथा शोथमुदरं च सुदारुणम् ।
धातुवृद्धिकरं वृष्यं वलवर्णकरं शुभम् ॥
सद्यो वह्निकरं चैव सर्वरोगहरं परम् ।
मुखशुद्धिविधानव्या पर्णैश्चूर्णसमन्वितैः ॥
ताम्रकल्पमिदं नाम्ना सर्वरोगप्रशान्तये ॥

बहेड़ा, पारद और गन्धक २॥-२॥ तोले तथा ताम्रभस्म सबके बराबर लेकर कज्जली करके उसे जम्बीरी नींबूके रस, हुलहुलके रस तथा पीपल और मोचरसके काथकी तेज़ धूपमें एक एक भावना दीजिये अर्थात् एक चीजका रस डालकर धूपमें रख दीजिये और इसके सूखने पर अन्य औषधका रस डाल दीजिये । इसी प्रकार उपरोक्त सब रसोंकी भावना देकर उसे जम्बीरी नींबूके रसमें पत्थरके खरलमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिये ।

इसे एक गोलीसे आरम्भ करके प्रतिदिन एक एक गोली बढ़ाते हुवे खाना चाहिये और १० गोली पर पहुंचने पर फिर एक एक गोली घटाना चाहिये, और एक गोलीपर पहुंचकर फिर १-१ गोली बढ़ाना चाहिये ।

इसी प्रकार रोग नष्ट होने तक क्रमशः मात्रा बढाते घटाते हुवे सेवन करना चाहिये ।

औषध खानेके पश्चात् मुखशुद्धिके लिए चूना लगा हुवा पान खाना चाहिये और औषध पचने पर घृत युक्त दूध भात खाना चाहिये ।

इसके सेवनसे अम्लपित्त, अनेक प्रकारकी ग्रहणी, विषमज्वर, पुराना ज्वर, तिल्ली, दुस्साध्य यकृत्विकार, अग्रमांस, शोथ, कांस्यक्रोड, कमठ, भयङ्कर उदरशोथ और अन्य अनेकों रोग नष्ट होते तथा वल, वर्ण, वीर्य, धातु और अग्निकी वृद्धि होती है ।

(२५६७) ताम्रद्रुतिरसः

(र. र. स. । उ. ख. अ. १८)

पलं नेपालशुल्वस्य पत्राणि सुतनूनि च ।
कृत्वा कण्टकवेध्यानि कारयेत्तदनन्तरम् ॥
कर्षैकं द्विगुणं ग्राह्यं क्रमात्सूतकगन्धयोः ।
मर्दितव्यं शिलाखल्वे रसैर्दन्तशठस्य वै ॥
तत्कल्कं पङ्कवत्कृत्वा तेन पर्णानिसर्वशः ।
लेपयित्वा शिलाखल्वे स्थापयेदातपे खरे ॥
यामैकेन समुद्धृत्य द्रवी भवति नान्यथा ।
वान्ति विरेचनं कृत्वा शुद्धकायो यथाविधिः॥

पूजयित्वा सुरान्वैद्यान्विप्रान्हेमांबरादिभिः।
तां द्रुतिं मधुसर्पिर्भ्यां रक्तिकामाषकादिभिः॥
लीढ्वा तत्र पिबेत्तक्रं धान्याम्लकमथापि वा।
जीर्णे सायं समश्नीयाच्छाल्यन्नं तु पुरातनम्॥
सेव्यमानं निहन्त्येतदम्लपित्तं सुदारुणम्।
कासं क्षयं तथा शोषमर्शांसि ग्रहणीं तथा॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च कुष्ठान्येकादशैव च।
रक्तपित्तं सखालित्यं शूलञ्चैवोदराणि च॥
वातरोगं प्रतिश्यायं विद्रधिं विषमज्वरम्।
सतताभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनम्॥
ताम्रवत्कुरुते देहं सर्वव्याधिविवर्जितम्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं द्वितीय इव भास्करः॥

१ कर्ष (१। तोला) पारद और २ कर्ष गन्धककी कज्जली करके उसे जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर कीचड़के समान बना लीजिये और फिर ५ तोले अत्यन्त बारीक कण्टकवेधी ताम्रपत्रों पर इस कज्जलीको अच्छी तरहसे लपेट दीजिये और पत्थरके खरलमें रखकर तेज़ धूपमें रख दीजिये। १ पहर पश्चात् द्रव तैयार हो जायगा, उसे शीशीमें भरकर रख लीजिये।

इसमें से नित्य प्रति १ रत्तीसे १ माशे तक यथोचित मात्रानुसार घी और शहदके साथ सेवन करनेसे भयङ्कर अम्लपित्त, खांसी, क्षय, शोष, अर्श, संग्रहणी, कामला, पाण्डु, ग्यारह प्रकारके कुष्ठ, रक्तपित्त, खालित्य, शूल, उदररोग, वातव्याधि, प्रतिश्याय, विद्रधि और विषमज्वरका नाश होता है।

इसे निरन्तर कुछ समय तक सेवन करनेसे शरीर वलिपलित और रोग रहित, ताम्रके सदृश हो जाता है।

औषध खानेके पश्चात् तक्र अथवा काञ्जी पीनी चाहिये और औषध पच जानेके पश्चात् सायङ्कालको पुराने शाली चावलोंका भात खाना चाहिये।

औषध प्रारम्भ करनेसे पूर्व वमन विरेचन द्वारा यथाविधि शरीर शुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिये; और गुरु, वैद्य तथा ब्राह्मणादि पूज्य महानुभावोंको स्वर्ण और वस्त्रादि द्वारा सम्मानित करनेके पश्चात् औषध सेवन करनी चाहिये।

(नोट—यदि १ पहरमें ताम्रपत्र न गल जायं तो अधिक समय तक धूपमें रखना चाहिये और यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो उसमें नींबूका रस भी डाल देना चाहिये।)

(२५६८) ताम्रपर्पटी [१]

(र. चिं.। स्तव. ८)

प्रत्येकं दशगद्याणाः शुद्धगन्धकसूतयोः।
मृतताम्रस्य पञ्चैव खल्वके पञ्चविंशतिः॥
क्षिप्त्वा संमर्दयेत्तावद्द्रवान्निर्याति सत्वरम्।
निर्धूमाङ्गारके वह्नौ लोहपात्रे घृताक्तके॥
तावच्च स्थाप्यते यावत्तैलाभो जायते रसः।
प्रथमं कदली श्रेष्ठा तदलाभे पद्मिनी दलम्॥
तदलाभे नागवल्ली ह्येकस्य च दलद्वयम्।
गोमयोपरि निक्षिप्ते पत्रे तं ढालयेद्रसम्॥
पुनर्दत्वापरं पत्रं पत्रस्योपरि गोमयम्।
रसं तं शीतलीभूतं खल्वे सूक्ष्मं हि पेषयेत्॥

भृङ्गराजरसेनादौ दातव्याः सप्तभावना ।
आटरूषकपत्राणां स्वरसैः सप्तभावना ॥
त्रिकटोर्वारिणा सप्त सप्तधं त्रिफलाम्भसा ।
सप्तार्द्रक रसेनैवं सप्तपत्रकजैर्द्रवैः ॥
व्याघ्रीरसेन सप्तैव शिग्रुमूलरसेन च ।
वत्सनागविषेणैव श्रीखण्डेनैव सप्त च ॥
सशुष्कं च ततश्चूर्णं सूक्ष्मं सम्मर्दयेद्दृढम् ।
प्रक्षिपेत्कूप्यके चूर्णं सम्भिन्नाञ्जनसन्निभम् ॥
ताम्रपर्पटि संज्ञोयं रसश्च परिकीर्त्तितः ।
रोगिणे प्रत्यहं देयो वल्लयुग्मो जलान्वितः ॥
त्रिभिर्दिनैर्ज्वरो याति श्लेष्मवातादिसम्भवः ।
वातरक्ते ह्यजीर्णेषु ग्रहण्यां कुष्ठरोगिषु ॥
मासैकेन निहन्त्याशु रोगनेतान्सुदारुणान् ॥

शुद्ध पारा और गन्धक २॥-२॥ तोले तथा ताम्रभस्म १। तोला लेकर सबको खरलमें घोटकर इतनी महीन कज्जली तैयार कीजिये कि जो कपड़े-मेंसे आसानीके साथ छन सके, फिर एक लोहेके पात्रमें घी चुपड़कर धूम्ररहित आगपर रखकर उसमें यह कज्जली डाल दीजिये। जब वह पिघल कर तेलके समान हो जाय तो भूमि पर गायका ताजा गोवर बिछाकर उसपर केलेका पत्ता रख दीजिये और उसके ऊपर उपरोक्त पिघली हुई कज्जलीको ढालकर उसके ऊपर दूसरा पत्ता रख-कर उस पर पुनः गोवर डाल दीजिये। यदि केला न मिल सके तो कमलिनीका पत्ता और यदि वह भी न मिले तो नागरवेलके पानसे काम चला लेना चाहिये।

जब औषध स्वांग शीतल हो जाय तो उसे सावधानी पूर्वक निकालकर अत्यन्त महीन पीस-कर भंगरेके रस, बासे (अडूसे) के पत्तोंके रस, त्रिकुटा और त्रिफलेके क्वाथ, अदरकके रस, तेज-पातके क्वाथ, कटेली और सहंजनेकी जड़की छालके रस तथा बछनाग विष और सफेद चन्दनके क्वाथकी सात सात भावना देकर सुखाकर अत्यन्त महीन पीसकर रखिये।

इसे ६ रत्तीकी मात्रानुसार पानीके साथ सेवन करानेसे कफज और वातज ज्वर तीन ही दिनमें नष्ट हो जाता है। तथा वातरक्त, अजीर्ण, ग्रहणी और कुष्ठ रोग १ मास तक सेवन करनेसे नष्ट हो जाते हैं।

(नोट—भूमि पर गोवर इतना बिछाना चाहिये कि जिससे ४-५ अंगुल मोटी शिला सी बन जाय, और उसे चौरस करके उसके धरातलको समान कर देना चाहिये। इस पर पिघली हुई कज्जली बहुत फुरतीसे डालनी चाहिये। क्यों कि देर लगानेसे कज्जली जम जाती है और फिर पर्पटी अच्छी नहीं बनती। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सम्पूर्ण कज्जली एकही स्थानमें न डाल कर समस्त पत्र पर फैलाकर डाली जाय; और उस पर तुरन्त ही दूसरा पत्ता ढककर गोवर फैला दिया जाय।)

(२५६९) ताम्रपर्पटी [२]

(वृ. नि. र.; यो. र.; र. च.। कास.)

मृतं ताम्रं त्रिभागं च रसं गन्धं च तत्समम् ।
भागमेकं वत्सनाभं कज्जलीं खल्वमध्यगाम् ॥
गोघृतेन कृतं कल्कं लोहपात्रे विपाचयेत् ।
ढालयेदर्कपत्रस्थां पर्पटीं रससिद्धये ॥

गुञ्जाद्वयं त्रयं चैव पिप्पलीमधुसंयुतम् ।
त्रिसप्तरात्रयोगेन रोगराजं च नाशयेत् ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव सन्निपातं नियच्छति ।
त्रिफलारससंयुक्ता सर्वं पाण्डुं विनाशयेत् ॥
वातारितैलसंयुक्ता सर्वशूलनिवारिणीम् ।
कुमारीरसयोगेन वातपित्तोपशान्तिकृत् ॥
वाकुचीरससंयुक्ता सर्वदद्रुविनाशिनी ।
त्रिफलामधुसंयुक्ता सर्वमेहनिवारिणी ॥
खदिरक्काथपानेन कुष्ठाष्टादशनाशिनी ।
मन्थानभैरवेणोक्ता लोकानां हितकाम्यया ॥

ताम्र भस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ३-३ भाग तथा शुद्ध बछनाग विष (मीठा तेलिया) १ भाग लेकर सबको घोटकर महीन कज्जली बना लीजिये; फिर उसमें थोड़ासा गोघृत मिलाकर लुगदी बना लीजिए और उसे लोहपात्रमें निर्धूम अग्नि पर पिघला कर भूमिपर गोबर बिछाकर उस पर आकके पत्ते फैलाकर उन पर ढाल दीजिए और तुरन्त ही उसके ऊपर पुनः आकके पत्ते बिछाकर उनपर ताजा गोबर फैला दीजिए। स्वांग शीतल होने पर औषधको निकालकर अत्यन्त महीन पीसकर रक्खे।

इसे २-३ रत्तीकी मात्रानुसार पीपलके चूर्ण और शहदके साथ ३ सप्ताह तक सेवन करानेसे राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है।

इसे अद्रकके रसके साथ देनेसे सन्निपात ज्वर, त्रिफलाके क्काथके साथ देनेसे हर प्रकारका पाण्डु, अरण्डके तैलके साथ देनेसे सर्व प्रकारके शूल, घृतकुमारी (कुंवार पाठा) के रसके साथ देनेसे वातज तथा पित्तज रोग, बावचीके रससे दाद, त्रिफलाचूर्ण और शहदसे प्रमेह तथा खैरके काथके साथ देनेसे १८ प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं।

(२५७०) ताम्रपर्पटी [३]

(र. र.; धन्वं.। वाजी.; र. का. धे.। कास.)

रसगन्धकताम्राणां चूर्णं कृत्वा समांशिकम् ।
पुटपाकविधौ पक्त्वा मधुनालोड्य संलिहेत् ॥
सर्वरोगहरं चैतत्पर्पटाख्यं रसायनम् ॥

पारा, गन्धक और ताम्र भस्म समान भाग लेकर कज्जली करके उसे लोहेके पात्रमें जरासे घीके साथ निर्धूम अग्नि पर पिघलाकर पर्पटी बनाइये और फिर उसे सम्पुटमें बन्द करके लघु पुट लगा दीजिए। (पुटमें अग्नि बहुतही हल्की होनी चाहिए।)

इसे शहदके साथ सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट होते हैं।

(मात्रा-२-३ रत्ती।)

(२५७१) ताम्रभस्मनिरुत्थीकरणम्

(रसायनसार)

अथो निरुत्थीकरणं ब्रवीमी
ताम्रस्य यत्स्यादखिलो गुणोऽस्य ।
मित्रै पुरःपञ्चभिरुत्थितं
तद्भस्म प्रकुर्यात्परिघट्टनेन ॥१॥

स्नुगर्कयोर्नूतनशुद्धदुग्धे
चक्रीं च तामातपसंविशुष्काम् ।
पुटे गजाख्ये विनिधाय वह्निं
दद्याच्च शीतां तु समुद्धरेत्ताम् ॥२॥

स्नुह्यास्तथार्कस्य च दुग्धयोस्तां
विघट्टय सम्यक् प्रपचेत् पुरोवत् ।
एकद्वियोगोऽयमुदीरितो वः
कुर्यादितीत्थं खलु पञ्चकृत्वः ॥३॥

एवं कृते सत्यपि यत्कथञ्चि
द्भवेत्प्रकाशो लघुताम्रकान्तेः ।
तदा द्विवारं पुनरित्थमेव
कुर्यान्निरुत्थीकरणं ह्यवश्यम् ॥४॥

अर्कस्नुहीदुग्धयुगस्य यत्र
लाभो न सम्यग्यदि तत्र वैद्यः ।
मित्रोत्थितं तच्च सुगन्धकेन
कन्याद्रवैःपूर्ववदेव कुर्यात् ॥५॥

यथा विदग्धं न हि पच्यतेऽन्न-
मौदर्यवह्नौ न च तत्समस्तम् ।
स्वीयं गुणं भुक्तवतः प्रदद्यादु-
त्थास्तवो धातव एवमेव ॥ ६ ॥

यूनानवैद्यश्च तथाऽऽर्यवैद्यः
परस्परं सङ्गिरतेस्म कामम् ।
सुवर्णपत्राणि निषेवितानि
स्वर्णस्यपत्राणि तु मासमात्रम् ॥७॥

तदार्यऽवैद्येन तदीयविष्ठा
संग्राहिता चाथ सुदाहिता च ।
प्रदाहितायामथतत्र तेन
स्वर्णं परिक्षालनतोऽत्रकृष्टम् ॥८॥

उत्थास्तुधातोश्च निरुत्थधातो-
र्निवेषणे चापि निदर्शनं तत् ॥

अर्थ—अब मै ताम्र भस्मकी निरुत्थीकरण—क्रिया बतलाता हूं, जिससे ताम्र भस्म सम्पूर्ण गुणयुक्त हो। जब मित्र-पञ्चकके साथ ताम्र भस्मको घोटकर अग्निमें देने पर ताम्रकी कान्ति कुछ मालूम पडने लगे तब फिर मन्दार वा थूहरके दूधमें घोटकर ताम्र भस्मकी टिकियां बना ले, जब टिकियां धूपमें खूब सूख जाय तब फिर सम्पुटमें रख कर गजपुटमें देकर भस्म कर ले। जब स्वांग शीतल हो जाय तब निकाल ले, इसी प्रकार मित्र-पञ्चकसे जिला जिला कर पांच बार मारण करे। ऐसा करने पर भी मित्र-पञ्चकमें घोटकर सम्पुटमें रखकर गजपुट देनेसे कुछ कुछ यदि ताम्रकी झलक मालूम हो तो फिर भी दो बार उक्त प्रकारसे जरूर भस्म कर ले। यदि मन्दार वा थूहरका दूध नहीं मिले तो शुद्ध गन्धक व घृतकुमारीके रसके साथ ताम्रभस्मको घोटकर पूर्ववत् निरुत्थीकरण कर ले ॥५॥ निरुत्थीकरण करनेका तात्पर्य यह है कि जैसे अधपका अन्न जठराग्निमें नहीं पचकर खानेवालेको पूरा फायदा नहीं करता है इसी प्रकार जिनका निरुत्थी-करण संस्कार नहीं हुआ है, वे धातु भी अपना पूर्ण गुण नहीं करते हैं ॥ ६ ॥ इस विषयको पुष्ट करनेवाला दृष्टान्त यह है—किसी हकीम का मत था कि स्वर्णगर्भपोटली इत्यादि रसोंमें अथवा केवल सुवर्णसेवनमें सोने के तबक देने चाहिएं; और वैद्यका मत था कि केवल सुवर्ण जठराग्निमें नहीं पचेगा; अतः उसकी भस्म देनी चाहिए। दोनोंका विवाद बढ़ने पर वैद्यने एक आदमीको हकीमजीके कहने मुताबिक एक महीने तक सुवर्णके तबक खिलाये, और उस आदमीकी विष्ठा प्रतिदिन एकट्ठी कराई, जब विष्ठा सूख गई तब उसको जलाकर पानीमें धोकर सुवर्ण

निकाल लिया और हकीमजीको अपना पक्ष छोड़ना पड़ा। इस कारण वैद्योंसे हमारी प्रार्थना है कि यदि पूर्ण फल चाहते हो तो जहां पर शास्त्रमें किसी रसप्रयोगमें सुवर्ण देना लिखा हो वहां उसकी भस्म ही डाला करें। यद्यपि शास्त्रोक्त रीतिसे शुद्ध किए हुए धातुके देनेपर भी अपकार नहीं होगा। किन्तु अल्प गुण होगा।

(रसायन सार।)

(२५७२) ताम्रभस्मप्रयोगः [१]

(र. र. स. । उत्तर खं. । अ. १३)

पक्वताम्रे रसः पिष्टो बलिना हिध्मिनां हितः॥

पारा, गन्धक और ताम्र भस्मको एकत्र घोटकर सेवन करानेसे हिचकी (हिक्का) रोग नष्ट होता है।

(मात्रा—२–३ रत्ती। अनुपान अद्रकका रस।)

(२५७३) ताम्रभस्मप्रयोगः [२]

(रसे. चि. म. । अ. ८)

कन्यातोये ताम्रपत्रं सुतप्तं कृत्वा वारान् विंशतिं प्रक्षिपेत्तत्।
रसतस्ताम्रं द्विगुणं ताम्रात् कृष्णाभ्रकं द्विगुणम्॥
एतत् सिद्धं त्रितयं चूर्णिततताम्राभ्रिकैः पृथग्युक्तम्।
पिप्पलीविडङ्गमरिचैः श्लक्ष्णं द्वैमाषिकं योज्यम्॥
शूलाम्लपित्तशोथग्रहणीयक्ष्मादिकुक्षिरोगेषु।
रसायनं महदेतत् परिहारो नियमितो नात्र॥

तांबेके बारीक पत्रोंको अग्निमें तपा तपा कर बीस बार घीकुमार (ग्वारपाठा)के रसमें बुझावें फिर इस ताम्रसे २ गुनी कृष्णाभ्रक भस्म और आधा आधा भाग पारद (रससिन्दूर), पीपल, मरिच और विडङ्गका महीन चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल करें।

इसे २ माशेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे शूल, अम्लपित्त, शोथ, ग्रहणी और यक्ष्मादि रोग नष्ट होते हैं। इस पर किसी विशेष परहेज़की आवश्यकता नहीं है।

(नोट—ताम्रपत्रोंको घृतकुमारीके रसमें २० बार बुझानेके पश्चात् उसीके रसमें घोटकर पुटद्वारा भस्म कर लेना उचित प्रतीत होता है। व्यवहारिक मात्रा ४–५ रत्ती।)

(२५७४) ताम्रभस्मप्रयोगः [३]

(र. चि. म. । स्तव. ४)

विंशद्भागमितं ताम्रं सूक्ष्मं भागत्रयं शिला।
ताम्रतुल्यानि गृह्णीयाद्वन्यभल्लातकानि च॥
तानि संकुट्टयित्वाथ शिलाताम्रं विमिश्रयेत्।
द्विगुणं गन्धकं दत्त्वा सम्पुटे तत्परिक्षिपेत्॥
हण्डिकायन्त्रमध्यस्थं पञ्चयामावधिर्हि तत्।
तावच्चुल्ल्युपरि क्षिप्त्वा वह्निं चाधः प्रदापयेत्॥
अवतार्य स्वयं शीतं तत्ताम्रं मृतमुत्तमम्।
पिप्पलीनां रसेनादौ चिञ्चिकास्वरसेन च॥
बदर्याः स्वरसेनापि कन्यकाया रसेन तत्।
भावनाश्च पुटं दत्त्वा प्रत्येकेन च पञ्च च॥
ततः सूक्ष्मं विचूर्ण्याथ तत्ताम्रं योग्यमात्रया।
पिप्पल्या सह तद्द्यान्माषमात्रं भिषग्वरः॥
तदेतद्रेचयेत्सम्यग् यावदामावधिर्भवेत्।
नैव मूर्च्छा न च क्लेदो वान्तिभ्रान्तिर्न विद्यते॥

शुद्ध ताम्र २० भाग, शुद्ध मनसिल ३ भाग और कुटेहुवे मिलावे २० भाग तथा गन्धक ४० भाग लेकर सबको एकत्र कूटलें; और उसे सम्पुट में बन्द करके हण्डिकायन्त्र (वालुकायन्त्र) में ५ पहरकी अग्नि दें। तत्पश्चात् हण्डीके स्वांग-शीतल होनेपर उसमेंसे भस्मीभूत ताम्रको निकाल लें और पीपलके क्वाथ, इमलीके पत्तोंके स्वरस, वेरीके पत्तोंके स्वरस और घृतकुमारीके रसमेंसे प्रत्येकमें घोट घोटकर ५-५ पुट (कुल मिलाकर २० पुट दें और फिर पीसकर रख लें।

इसमेंसे १ माशा या न्यूनाधिक मात्रानुसार पीपलके चूर्णके साथ खिलानेसे समस्त आम निकल जाने तक विरेचन होता रहता है और मूर्च्छा, वमन, भ्रान्ति आदि नहीं होती।

(अनुपान-उष्ण जल या त्रिफला क्वाथ।)

(२५७५) ताम्रभस्मप्रयोगः [४]

(भै. र. । भगन्दरा.)

ताम्रपत्रं रवेः क्षीरे निर्गुण्डीस्वरसे तथा।
त्रिकण्टजे स्नुहीरसे ताम्रं दग्ध्वा क्षिपेत्ततः॥
रसस्यार्द्धपलं शुद्धं गन्धकस्य पले तथा।
कज्जल्यर्द्धेन जम्बीरप्लुतेन ताम्रतः पलम्॥
परिक्षिप्यान्धमूषायां दद्यात्पञ्चपुटाल्लँघून्।
सम्मर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां ततो रक्तिमितं लिहेत्॥
भगन्दरे सर्वभवे कार्यं सर्वव्रणेषु च॥

तांबे के वारीक पत्रोंको अग्निमें तपा तपा कर सात सात वार आकके दूध, संभालुके रस, गोखरुके रस या क्वाथ तथा सेंड (थूहर)के रसमें बुझाइए; फिर १ पल (५ तोले) यह शुद्ध ताम्र पत्र लें और उनपर आधा पल पारद और एक पल गन्धककी कज्जलीको पौन पल (३॥ तोले) नींबूके रसमें घोटकर लेप कर दें और अन्धमूषामें बन्द करके लघुपुटमें फूंक दें, इसी प्रकार पांच पुट दें।

इसे १ रत्तीकी मात्रानुसार घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे सर्व प्रकारके भगन्दर और व्रण (घाव) नष्ट होते हैं।

(२५७६) ताम्रभस्मप्रयोगः [५]

(भा. प्र. । ख. २ मूर्च्छा.)

ताम्रं दुरालभाक्वाथैः पीतन्तु घृतसंयुतम्।
निवारयेद्भ्रमं शीघ्रं तं यथा शम्भुभाषितम्॥

ताम्र भस्मको घीमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे धमासेका क्वाथ पीनेसे भ्रमका अत्यन्त शीघ्र नाश हो जाता है।

(२५७७) ताम्रभस्मयोगः [६]

(र. का. धे. । कुष्ठ)

ताम्रं मृतमपामार्गक्षारञ्च क्षारकद्वयम्।
समं गुञ्जाद्वयं प्रातः प्रातर्नित्यं निषेवयेत्॥
मध्याह्नभोजनात्पूर्वं सायमेव द्वयं भवेत्।
औदुम्बरे महाकुष्ठे साध्यासाध्येपि निश्चितम्।
सप्तसप्तकमध्ये तदवश्यं नाशयेदपि।
मांसं न भक्षयेन्नूनं न मत्स्यं क्षीरमेव च॥
अन्यद्वस्तु न चाश्नीयाद्विदाही न गुरूदकम्॥

ताम्र भस्म, अपामार्ग (चिरचिटे)का क्षार, जवाखार और सज्जीखार (सोडा) समान भाग लेकर एकत्र खरल करा लीजिए।

इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल तथा दोपहरको और शामको भोजनसे पहिले २ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करनेसे ४९ दिनमें साध्य अथवा असाध्य औदुम्बर महाकुष्ठको अवश्य आराम हो जाता है।

इस पर दुग्धाहार करना चाहिए और मांस, मछली तथा विदाही पदार्थ और भारी पानीसे परहेज़ करना चाहिए।

(२५७८) ताम्रभस्मयोगः [७]

(र. रा. सुं. । ज्वरा.)

मृतं ताम्रं च मरिचं लवङ्गं कुङ्कुमं कणा।
भार्गी समांशचूर्णं स्यान्नागवल्लीदलान्वितम्॥
माषैकं सार्द्धमाषं वा कफव्याधिविनाशनम्॥

ताम्र भस्म, कृष्ण मरिच, लौंग, केसर, पीपल और भार्गीका चूर्ण समान भाग लेकर एकत्र खरल कर लीजिए।

इसमेंसे १ या १॥ माशा चूर्ण पानमें रखकर खानेसे कफज ज्वर नष्ट होते है।

(२५७९) ताम्रभस्मयोगः [८]

(र. चं. । मूर्च्छा.; भा. प्र. । ख. २ मूर्च्छा.)

ताम्रचूर्णं समोशीरं केसरं शीतवारिणा।
पीतं मूर्च्छां द्रुतं हन्याद् वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥

ताम्र भस्म, खस और केसरका समान भाग चूर्ण एकत्र खरल कराके रखिए।

इसे ३—४ रत्तीकी मात्रानुसार शीतल जलके साथ पीनेसे मूर्च्छा अत्यन्त शीघ्र जाती रहती है।

(२५८०) ताम्रभस्मयोगः [९]

(र. चिं. म. । अ. ९; र. का. धे. । अधि. २२)

केवलं जारितं ताम्रं शृङ्गवेररसैः सह।
द्विगुञ्जं भक्षयेत्प्रातः सर्वगुल्मोदरापहम्॥

केवल ताम्र भस्मको २ रत्तीकी मात्रानुसार अदरकके रसके साथ प्रातःकाल सेवन करनेसे समस्त प्रकारके उदररोग और गुल्म नष्ट होते हैं।

(२५८१) ताम्रभस्मविधिः [१]

(वैद्यामृत. । विषय १० श्लो. १७—१८)

ताम्रं कृशानौ सलिलं विधाय
निर्वापयेल्लोणिरसे त्रिवारम्।
उपर्यधस्तस्य पटु प्रदत्वा
पुटं प्रदद्याच्च भवेत् सुभस्म॥१७॥

कासातुराय श्वसनातुराय
हितं तदेतन्मगधामधुभ्याम्।
यथा तृषार्त्ताय सुगन्ध शीतं
चकोरनेत्राकरदत्तमम्भः॥ १८॥

तांबेको अग्निमें गला गलाकर तीन वार लोणीके रसमें बुझाइए। अब इसे सेधा नमकके चूर्णके वीचमें रखकर सम्पुट करके गजपुटमें फूकनेसे उत्तम भस्म वन जायगी।

इसे पीपलके चूर्ण और शहदके साथ चाटनेसे खांसी और श्वासका नाश होता है।

(नोट—यदि एक पुटमें भस्म न हो तो पुनः इसी प्रकार पुट लगाना चाहिए।)

(२५८२) ताम्रभस्मविधिः [२-४]

(र. र. स. । पू. ख. अ. ५; र. मञ्जरी. अ. ५)

जम्बीररससंपिष्टरसगन्धकलेपितम् ।
शुल्वपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पञ्चताम् ।

अथवा मारितं ताम्रं ह्यम्लेनैकेन मर्दितम् ।
तद्गोलं सूरणस्यान्ते रुध्वा सर्वत्र लेपयेत् ॥
शुष्कं गजपुटे पच्यात्सर्वदोषहरं भवेत् ।
वान्तिं भ्रान्तिं विरेकञ्च न करोति कदाचन॥

ताम्रपत्राणि सूक्ष्माणि गोमूत्रे पञ्चयामकम् ।
क्षिप्त्वा रसेन भाण्डे तद्द्विगुणं देहि गन्धकम्॥
अम्लपर्णी प्रपिष्टाथ ह्यमितो देहि ताम्रके ।
सम्यङ् निरुध्य भाण्डे तस्मिं ज्वालय यामकम्॥
भस्मी भवती ताम्रं तद्यथेष्टं विनियोजयेत् ।
सूताद्द्विगुणितं ताम्रपत्रं कन्यारसैःप्लुतम् ॥
पिष्ट्वा तुल्येन बलिना भाण्डमध्ये विनिक्षिपेत्।
छन्नं शरावकेणैतत्तदूर्ध्वं लवणं त्यजेत् ॥
मुखे शरावकं दत्वा वह्निं यामचतुष्टयम् ।
अवचूर्ण्यैव तच्छुल्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ॥
पिप्पलीमधुना सार्धं सर्वरोगेषु योजयेत् ।
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं अग्निमांद्यमरोचकम्॥
गुल्म-लीहयकृन्मूर्च्छाशूलं च पक्तिसंज्ञकम्।
दोषत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम् ॥
रोगानुपानसहितं जयेद्धातुगतं ज्वरम् ।
रसे रसायने ताम्रं योजयेद्युक्तमात्रया ॥

५ तोले पारद और ५ तोले गन्धककी कज्जली करके नींबूके रसमें घोटकर उसे १०तोले शुद्ध ताम्रके बारीक पत्रों पर लेप कर दीजिए और उन्हें दो शरावोंमें सम्पुट करके गजपुटकी अग्नि दीजिए। इसी प्रकार ३ पुट देनेसे ताम्रकी भस्म हो जाती है। अब इस भस्मको नींबूके रस अथवा अन्य किसी अम्ल रसमें घोटकर गोला बनाइए और उसे सुखाकर उसके ऊपर सूरण (जमीकंद)को पीसकर ३-४ अंगुल मोटा लेप कर दीजिए अथवा जिमिकंदको भीतरसे खाली करके उसके भीतर ताम्र भस्मके गोलेको रखकर उसके मुखको ज़िमीकन्दके ही टुकड़ेसे बन्द कर दीजिए और उसके ऊपर ३-४ कपरमिट्टी करके उस पर १ अंगुल मोटा मिट्टीका लेप कर दीजिये और सुखाकर गजपुटमें फूंक दीजिए। जब गोला स्वांग शीतल हो जाय तो उसके भीतर से ताम्र भस्मको सावधानी पूर्वक निकालकर पीस कर रखिए। यह भस्म वमन, भ्रान्ति और विरेकादि ताम्रदोषोंसे मुक्त होती है।

प्रथम ताम्रके बारीक पत्रोंको ५ पहर तक दोलायन्त्रविधिसे गोमूत्रमें पकाइए, फिर १ भाग पारद और २ भाग गन्धककी कज्जलीको अम्लपर्णीके रसमें घोटकर कज्जलीके बराबर उपरोक्त ताम्रपत्रो पर लेप कर दीजिए और इन्हें एक हाण्डीमें रखकर शरावसे ढक दीजिए तथा सन्धिको गुड़ चूनेसे बन्द करके हाण्डीमें रेत भर दीजिए और फिर उसे भट्टी पर चढ़ाकर एक पहरकी अग्नि दीजिए। जब हाण्डी स्वांग शीतल हो जाय तो उसके भीतरसे ताम्रको निकालकर पिसवाकर रख लीजिए। इस प्रकार उत्तम भस्म बन जाती है।

---

१ भाग पारद और १ भाग गन्धककी कज्जलीको घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रसमें घोट कर २ भाग शुद्ध ताम्रपत्रों पर लेप करके इन्हें हाण्डीमें रखिए और शरावसे ढककर जोड़को गुड़ चूनेसे बन्द करके हाण्डीके मुंह तक सेंधा नमक का चूर्ण भर दीजिए और हाण्डीके मुख पर शराव ढककर उस पर ३-४ कपड़मिट्टी कर दीजिए तथा सुखाकर भट्टीपर चढ़ाकर ४ पहरकी अग्नि दीजिए। जब हाण्डी स्वांग शीतल हो जाय तो उसके भीतरसे ताम्र भस्मको निकालकर पीसकर रखिए।

इस भस्मको २ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करानेसे श्वास, खांसी, क्षय, पाण्डु, अग्निमांद्य, अरुचि, गुल्म, मूर्च्छा, तिल्ली, जिगर पक्तिशूल धातुगत ज्वर नष्ट होते हैं।

(२५८३) ताम्रभस्मविधिः [५]

(रसायनसार)

इत्युक्तरीत्या सुविशुद्धताम्र-
पत्राणि खण्डानि विधाय कामम्।
तेषां समानं खलु हिङ्गुलोत्थं
रसं समादाय च मर्दयेत् ॥
ताम्रार्द्धमानेन च निम्बुनीरं
विनिक्षिपेन्मर्दनकाल एव।
यामत्रयं प्रत्यहमाविमर्द्य
नैम्बूकनीरश्च नवम्प्रदेयम् ॥
प्रयत्नतश्चैव जलेन सायं
प्रक्षालनीयं खलु ताम्रपत्रम्।
यथा न सूतस्तु परिस्रुतः स्यान्न
चाम्लयोगः परिशेषितः स्यात् ॥
ताभ्यां समश्च विशुद्धगन्ध-
मावाप्य कार्या खलु कज्जली सा।
तां काच कुप्यां शनकैर्निधाय
सिन्दूरयुक्त्या प्रपचेत् वैद्यः ॥
तले च तिष्ठेदिह ताम्रभस्म
गले च सिन्दूररसो विलग्नः।
प्रत्यक्षिता ऽनेन हि किम्वदन्ति
एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥

ताम्रभस्मविधिः—

अर्थ—पूर्वोक्त रीतिसे शुद्ध किये हुए ताम्र पत्रोंके छोटे छोटे टुकड़े बनाकर उनके समान हिङ्गुलोत्थ पारद मिलाकर ताम्बेके आधे नीबूके रसमें घोटें। जब तीन पहर घोट ले, तब सायङ्कालको बहुत होशियारीके साथ (जिसमें पारद पानीके साथ खरलसे बाहर न गिर जाय) जलसे धो डाले। ऐसा धोना चाहिए कि जिसमे नीबूकी खटाई बिल्कुल निकल जाय। बादमें दूसरे नीबूका रस डालकर रात्रिभर रख दे, प्रातःकाल फिर तीन पहर घोटे। इस प्रकार कमसे कम तीन दिन घोटे। फिर ताम्बे व पारदके तुल्य शुद्ध की हुई आमलासार गन्धक डालकर कज्जली बनावे। उस कज्जलीको कपरमिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर रससिन्दूरकी विधिसे पकावे। यह स्मरण रहे कि जिस शीशीमें ४ सेर कज्जली आ सके उसमे एक सेर कज्जली भरनी चाहिए, अर्थात् पावभर ताम्र, पावभर पारद, आधा सेर गन्धक इन तीन चीज़ोंकी बनी हुई कज्जली (एक सेर) शीशीमें भरकर चार अहोरात्रकी अग्नि दे। ऐसा करनेसे स्वाङ्गशीतल होने पर शीशीके तलभागमे

पावभर ताम्र भस्म मिलेगी और गलेमें कुछ कम पावभर रससिन्दूर मिलेगा। बस, अब क्या चाहते हो? रससिन्दूर बनानेके लिए शीशी चढ़ानी ही पड़ती, सो इस प्रकार करनेसे रससिन्दूर भी बन गया और ताम्र भस्म मुफ्तमें मिल गई तो "एक पन्थ दो काज" यह कहावत चरितार्थ हो गई। वैद्य लोग ताम्बेमे पारदको इस कारण नहीं दिया करते हैं कि गजपुटमें देनेसे पारा उड़ जायगा तो नुकसान होगा, वह भय अब नहीं करना चाहिए। क्यो कि पारदके योगसे ताम्र भी अच्छी बन जाती है, और सिन्दूर रस भी तैयार हो जाता है ॥ ५ ॥ (र० सा०)

(२५८४) ताम्रभस्मविधिः [६]

(रसायनसार; र. प्र. सु. । अ. ४)

ताम्रस्य तुल्यं तु विशुद्धगन्धं
चूर्णीकृतं मत्स्नितहण्डिकायाम् ।
तले प्रपूर्य्योपरि शुद्ध ताम्रं
निधाय तस्योपरि तावदेव ॥
गन्धस्य चूर्णं पुनरावपेच्च
शरावमस्याश्च मुखे पिदध्यात् ।
शरावमध्ये विदधीत रन्ध्रं
प्रवेशयोग्यं बदरीफलस्य ॥
मृद्भस्मसिन्धूद्भवमुद्रया तत्
पिधानमावेष्ठ्य च सप्तकृत्वः ।
चुल्यां चतुर्याममिदं पचेत
क्रमेण तापैर्मृदुमध्यतीव्रैः ॥
स्वाङ्ग शीते च सञ्जाते
ताम्रभस्म प्रशस्यते ।
सर्वयोगेषु धीमद्भि-
र्वान्तिभ्रान्तिविमुक्तियुत् ॥

अर्थ—शुद्ध तूतियाका अथवा नैपाली तांबा आध सेर और शुद्ध आमलासार गन्धक आध सेर ले। गन्धकको खूब पीसकर तीन कपरमिट्टी की हुई चिकनी हाण्डीमे पावभर गन्धकका चूर्ण रख कर ऊपर आध सेर ताम्रपत्र रखकर पश्चात् बचे हुए पावभर गन्धकके चूर्णको रखकर ताम्रपत्रको ढाँक दे। उस हाण्डीके मुखको एक शराव (सिकोरा-ढकना)से ढाँक दे। उस शरावके बीचमें धुंवा निकालनेके लिए इतना बड़ा छिद्र कर देना चाहिए कि जिसमें जङ्गली छोटा बेर (लाल बेर) समा जाय। हांडीके मुख वशरावके मध्यमें चिकनी मिट्टी, उपला (गोयठा)की राख, और सैन्धवनोन, इन तीनोंको खूब पीसकर पानीमें सानकर मुद्रा कर दे। पश्चात् उस पर उस कीचड़में सने हुए कपड़ेसे सात कपड़ौटी कर दे, खूब सूख जाने पर रोटी बनानेवाले चूल्हे पर रखकर क्रमसे मन्द, मध्यम व तीव्र आँच चार पहर दे। शरावके छिद्रद्वारा धूंआ बराबर निकलता रहेगा, यदि तीन पहरमें धूंआ निकलना बन्द हो जाय तो भी एक पहर और आँच दे। यदि चार पहरमें भी धूंआ निकलना बन्द न हो तो एक पहर और खूब तेज आँच दे। जब स्वांग शीतल (अपने आप ठण्डा) हो जाय तब मुद्राको खोलकर हाँडीके तल भागमें जमी हुई ताम्रभस्मको निकाल ले। इस भस्ममें भी वान्ति, भ्रान्ति आदि दोष कुछ नहीं है। जिस योगमें ताम्र भस्म डालना लिखा हो उसमें इस ताम्र भस्मको निशङ्क डाल

सकते हैं। प्रथम जो ताम्र भस्म प्रकार लिखा है उस प्रकारसे नैपाली तांबे या तूतियासे निकाले हुए तांबेमेंसे किसीकी भस्म कर सकते हैं और जो ग्रन्थोमें ताम्र प्रयोग लिखे हैं उन योगोमें नैपाली तांबेकी भस्म अथवा तूतियाके तांबेकी भस्म दोनोमेंसे कोई भी ले सकते है।

(रसायनसारसे उद्धृत)

(नोट—रस प्रकाश सुधाकरमे केवल ३ पहरकी अग्नि देनेके लिए लिखा है और हाण्डीके ढक्कनमें छिद्र करनेके लिए नहीं लिखा। शेष प्रयोग समान है।)

(२५८५) ताम्रभस्मविधिः [७]

(रसायनसार)

त्रिसेटकोन्मानमितं विशुद्धं
तुत्थोत्थताम्रं दततामुतापि।
नैपालिकं शास्त्रविधानयोगैः
संशोधितं तैलमुखेषु मस्याम्॥

निष्पादितायां रसगन्धयोस्तत्
सार्द्धाधिकायामवधानचेताः।
यन्त्रे द्वयोर्नान्दिकयोः कृते त-
स्योर्द्धस्थनान्द्यां विदधीत रन्ध्रम्॥

छिद्रेवितस्त्यामितलम्बमानां
ददीत नालीं रसरोधनाय।
निर्यासतूले ननुलोहभस्म
मृत्सामिति द्रव्यचतुष्टयञ्च॥

पानीय योगेन दिनद्वयं ज्ञः
कुट्टेत्तथा श्लाक्ष्ण्यमियाद्यथा तत्।
अस्यैव कल्कस्य ददीत मुद्रां
नान्दीमुखे नालीमुखे च धीमान्॥
सर्वार्थकर्याः खलु कोष्ठिकाया
विशालचुल्ल्यां निदधीत यन्त्रम्।
ताम्रस्य पत्रञ्च मसीक्रमेण
संस्थापिते यन्त्रददीत वह्निम्॥
होरात्रयं मन्दमथ क्रमेण
मध्योत्तमौ चापि तथा विदध्यात्।
यथोग्रवह्नेः परिताप एनद्
न स्फोटयेन्नेत्रदिने ततोऽथ॥
पुनः पुनर्लोहशलाकयापि
पश्यन् यदाऽवैति च जीर्णगन्धम्।
उत्तार्य चुल्ल्यां निदधीत यन्त्रं
या प्रस्तरेङ्गालवती च कोष्ठी॥
तस्याश्च गन्धस्य विपाचनाय
ताम्रस्य सम्यक् परिपाकहेतोः।
नालीं विहायोन्दपटेन नान्दीं
सम्यक् पिदध्यात्पुनरुन्दयेत॥
स्वाङ्गे शीतेऽथ सञ्जाते
नन्दिकोर्द्धतलं गतः।
रससिन्दूर नामा स्यात्
ताम्रभस्माप्यधस्तले॥
श्यामसुन्दरवैश्येन सम्यगेतत्परीक्षितम्।
विधातव्या न शङ्काऽत्रकर्मसिद्धौ भिषग्वरैः॥

अर्थ—तूतियाका तावा (उक्त विधिसे शुद्ध किया हुआ) अथवा तैलादि वर्गमें शुद्ध किय हुआ नैपालिक तावां तीन सेर ले। और डेढ सेर शुद्ध पारा व तीन सेर शुद्ध गन्धककी कज्जली वना ले। फिर दो नांदोंके ऊपर सात सात कपर-

मिट्टी कर ले। दोनों नाँदोंका मुख मिलाकर देख ले कि कहीं छिद्र न रह जाय; फिर ऊपरवाली नाँदके पेंदेमें इतना बड़ा छिद्र कर दे कि जिसमें अंगुली जा सके, उस छिद्रमे एक बिलाद लम्बी एक लोहेकी नली लगा दे जो नाँदके अन्दर लटकती रहे। इस नलीके लगानेका यह अभिप्राय है कि नाँदके पेंदेमें किए हुए छिद्रके द्वारा पारा बाहर न निकल जाय, किन्तु सिन्दूर रस बनकर नलीकी चारों तरफ नांदके पेंदेमें लगे। निचली नांदमे पारद गन्धककी थोडीसी कज्जली रख कर थोड़ासा ताम्रपत्र रखे, फिर कज्जली दे, पुनः ताम्रपत्र रखे। इस प्रकार क्रमसे साढ़े चार सेरऽ ४॥ कज्जली व २ शेर ताम्रपत्रोंको रखे और कज्जलीको हाथसे खूब दबा दे। बाद इस नांदके ऊपर नली लगाई हुई, दूसरी नादको रखकर इन चीजोंको कल्ककी मुद्रा लगावे, पीपलका गोंद, रुई, लोह भस्म (मुद्रा देनेको कान्तिसार या तीक्ष्ण लोहकी भस्मकी जरुरत नहीं है किन्तु सर्वार्थकरी भ्राष्ट्रीमे जो लोह जाली रखी जाती है वही दो चार मासमें आंच खानेसे भस्मीभूत हो जाती है उसीको कूटकर कपडेमें छानकर रख छोड़े अथवा लुहारोंके यहां जो लोह जलकर भस्मीभूत निकम्मे पड़े रहते है उसीको ले) और चिकनी मिट्टी, इन चारों चीजोको पानीके योगसे दो दिन तक कूटकर खूब चिकना कल्क बनावे,। इसी कल्ककी मुद्रा कर दे, और इसी कल्कसे नाँदके पेंदेमे लगी हुई नलीके मुखपर भी मुद्रा कर दे। मुद्राके ऊपर सात कपरौटी करके खूब सुखा दे; पश्चात् इस "नलिकाडमरुयन्त्र"को सर्वार्थकरीभ्राष्ट्री[1]के मुखपर बड़ा लोहेका चूल्हा

१ **सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री**—प्रथम पृथ्वीमें एक वृत (घेरा-कुण्डल) इतना बड़ा बनावें कि जिसमें डेढ़ हाथका डण्डा आ जाय। अब इसके बीचमें एक बालिश्त (बिलाँद) गढ़ा खोदें और उसमें पानी डालकर मट्टीको खूब कूटकर पक्का कर दें। इसके पश्चात् इस गढ़ेके किनारेसे भट्टीकी दिवार कच्ची ईंटोंसे बनाना शुरु करे, जब अठारह अंगुल ऊंची भीत बन जाय तो उस पर चारों ओर लोहेके एक एक हाथ लम्बे चार डण्डे रख दे और उनके ऊपर १९ अंगुल भीत और बना दे। लोहेके डण्डे इस प्रकार लगाने चाहिएं कि आवश्यकतानुसार बाहर निकाले या भीतर घुसाए जा सके। भीतको इस प्रकार बनाना चाहिए कि जिससे अन्तमे उसके ऊपर २२ अंगुल चौड़ी लोहजाली आ सके, भीतके नीचेके भागमें १-१ बिलांद लम्बे चौड़े दो दरवाजे बनाने चाहिएं। भट्टीके अन्दर एक हाथ लम्बी लोहेकी नली भी लगानी चाहिए, इस नलीका एक सिरा भट्टीके ऊपर जाकर निकलेगा और दूसरा भट्टीके भीतर। भट्टीके भीतरवाला सिरा (मुख) इतना बड़ा होना चाहिए कि जिसमे मुट्ठी घुस सके और ऊपरवाला सिरा २ अंगुल चौडा होना चाहिए। यह नली नीचेसे ऊपरको सीधी नहीं बल्कि कुछ आड़ी करके लगानी चाहिए। इसके नीचेवाले मुखमें अग्निकी लपटें घुसेंगी और ऊपरवाले मुखसे बाहर निकलेंगी।

यह भट्टी इतनी उपयोगी है कि इस पर आयुर्वेदकी सभी औषधें सुगमतापूर्वक बन सकती हैं।

उपयोग—१—यदि किसी औषधके सम्पुटको तीव्राग्नि देनी हो तो भट्टीके बीचमें लगे

रखकर रख दे और लोहजालीके ऊपर दस सेर पत्थरके कोयले भर कर भट्टीके नीचे लकड़ीकी आंच दे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ प्रथम तीन घण्टे तो मन्दाग्नि लगानी चाहिए बाद चार घण्टे तक मध्यमाग्नि लगानी चाहिए और पश्चात् तीव्राग्नि दे। यहां यह शङ्का हो सकती है कि जब पत्थरके कोयलेकी आंच है तब अग्निक्रमका पालन किस तरह हो सकता है? उसका उत्तर यह है कि जब मन्दाग्नि लगानेकी आवश्यकता होगी तब भभकते हुए कोयलोंके ऊपर दो तीन नम्बरी ईंट रख देंगे और मध्यमाग्नि देनी होगी तव इंटोंको हटाकर लोहेका तवा रख देंगे और जब तीव्राग्नि देनी होगी तब तवेको भी हटा देंगे, अथवा मन्दाग्नि वा मध्यमाग्निके समय लोहजालीके ऊपर कोयला नहीं रखेंगे किन्तु लकडीकी ही आंच दी जायगी। तीव्राग्निके समय पत्थरके कोयले भी भर देंगे। इस प्रकार दो दिन तक आंच दे। ऐसा करनेसे अग्निका प्रचण्ड ताप यन्त्रको फोड़ नहीं सकेगा, क्यों कि यन्त्र सर्वदा पत्थरके कोयलोंसे एक बिलांद ऊंचा रहता है। पश्चात् जब देखे कि नलीसे धुंआ नहीं निकलता है, तब नलीद्वारा शलाका डालकर देख ले; जब शलाकामें कज्जली नहीं लगे तब समझे कि गन्धक जीर्ण प्रायः हो गया है। तब यन्त्रको ठण्डा हो

हुवे लोहेके डण्डोंको छः छ अंगुल भीतके बाहर (भट्टीके अन्दर) निकालकर उन पर लोहजाली रख दीजिए (जैसा लोहेकी अंगीठियों या दम चूल्हेमें होती है।) इस जालीपर सम्पुट रखकर उसके चारों ओर पत्थरके या लकड़ीके कोयले भरकर भट्टीके नीचेके भागमें आग लगाइए।

२—हरितालादिकी भस्म बनानेके लिए भट्टीके ऊपर एक बड़ासा लोहेका चूल्हा रख कर उसपर यन्त्रको रखना चाहिए। बीचवाली जाली पर भी सम्पुट पकता रहे तो कोई हर्ज नहीं है।

३—धात्वादि शोधनके लिए भट्टीके दरवाजोंके बीचमें एक तीसरा दरवाजा भी रख लेना चाहिए कि जिससे भीतर लोहेका करछा घुसाया जा सके कि जिसमें धात्वादि डाल कर तपाई जा सकें।

४—गजपुट देना हो तो—लोहजालीको निकालकर और लोहेके डण्डोंको भीतर घुसा कर भट्टीके मध्यमें सम्पुट रख दें और ऊपर नीचे उपले भरकर आंच दे तथा दरवाजे बन्द कर दें।

५—वराह पुट देना हो तो लोहजाली पर उपले डालकर और भट्टी पर लोहेका चूल्हा रखकर उसके भीतर सम्पुट रक्खें और चूल्हेमें भी उपले भरकर उसके दरवाजेको लोहेकी चादर और ईंटों आदिसे बन्द कर दें।

६—कुक्कुट पुट देना हो तो पुटको लोहजाली पर रखकर शेष भागमें उपले भर दें। इसमें भट्टीके ऊपर चूल्हा रखनेकी आवश्यकता नहीं है।

७—भोजन बनाना हो तो लोहेकी नलीके ऊपरवाले छिद्र पर कढ़ाई रखकर बना सकते है। इत्यादि।

[रसायनसार]

जाने पर बहुत होशियारीके साथ (उत्थापक संदंश द्वारा) उतार ले और सर्वार्थकरी भ्राष्ट्रीके मुखसे चूल्हेको हटाकर लोहजालीके ऊपर तीन चार सेर पत्थरके कोयले रखकर यन्त्रको कोयलों पर रख दे और नीचेसे लकड़ीकी आंच दे, परन्तु इस तीव्र आंचमे नलीके द्वारा पारा उड़ जानेकी शङ्का है इस लिए नलीके छिद्रको बचाकर ऊपरकी नांदको चार तरह भीगे कपड़ेसे ढांक दे। जब कपड़ा सूख जाय तब फिर दूसरा भीगा कपड़ा बदल दे। यदि किसी वैद्यको सर्वार्थकरी भ्राष्ट्रीके बनानेका सौकर्य नहीं हो तो हलवाइयोंकी सी भट्टी पर ही यन्त्रको रखकर बबूरकी सूखी लकड़ीकी आंच दे। परन्तु इस प्रकार करनेसे चार अहोरात्र अग्नि देनी पड़ेगी तब माल तैयार होगा। यन्त्रके स्वांगशीतल हो जाने पर बहुत हुशीयारीसे खोले। ऊपरवाली नांदके पेंदेमें लगा हुआ सिन्दूर रस मिलेगा और नीचेकी नांदके तलभागमे वान्ति भ्रान्ति रहित ताम्र भस्म मिलेगी। यह विधि किसी शास्त्रमे लिखी हुई तथा वैद्यकी बतलाई हुई नहीं है। किन्तु मैने स्वयं अनुभवसे निकालकर आज़मा ली है। हर एक वैद्य बना सकते हैं। इसमें शङ्का करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह सिन्दूर रस उतना लाल नहीं होगा जितना कि शीशीवाला होता है। (र० सा०)

(२५८६) ताम्रभस्मविधिः [८]

(रसायनसार)

शोधितं भावितं चापि मन्दारपयसा त्रिधा।
उर्द्धाधस्तालकं दत्त्वा ताम्रपत्राणि सम्पुटे ॥
शरावयोःकृते धृत्वा चुल्ल्यां मन्दाग्निना पचेत्।
प्रहरत्रितयेऽतीते पुटेद् वाराहसंज्ञके ॥

मन्दारके दूधमें तीन भावना दी हुई शुद्ध हरितालको शुद्ध ताम्रपत्रोंके नीचे ऊपर दो शरावों (सिकोरों)के बनाए हुए सम्पुटमें रखकर वालु-रेता चिकनी मिट्टी व नोन इन तीनोंकी बनी हुई कीच ले शरावोंके मुखपर मुद्रा करके सम्पूर्ण सम्पुट पर सात कपरौटी कर दे। खूब सूख जाने पर तीन पहर मन्दाग्निसे चूल्हे पर पका ले। बाद वराहपुटमें फूंक दे। स्वाङ्ग शीतल होने पर निकाले। ताम्र भस्मके बहुत प्रकार हैं। वैद्योंको दिग्दर्शनके लिए कुछ लिख दिये गये हैं।

(२५८७) ताम्रभस्मविधिः (सोमनाथी) [९]

(र. र. स. । पूर्व. अ. ५.; आ. वे. प्र.; र. प्र. सु. । अ. ४)

शुल्वतुल्येन सूतेन बलिना तत्समेन च।
तदर्धांशेन तालेन शिलया च तदर्धया ॥
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां भिन्नकज्जलसन्निभाम्।
यन्त्राध्यायविनिर्दिष्टगर्भयन्त्रोदरान्तरे ॥
कज्जलीं ताम्रपत्राणि पर्यायेण विनिक्षिपेत्।
प्रपचेद्यामपर्यन्तं स्वाङ्गशीतं प्रचूर्णयेत् ॥
तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं द्विवल्लोन्मितम्।
संलीढं परिणामशूलमुदरं शूलञ्च पाण्डुज्वरम्॥
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं च मूलामयम्।
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद्ध्रुवमिदं श्रीसोमनाथाभिधम्॥

पारद और गन्धक २-२ भाग, हरताल १ भाग और मनसिल आधा भाग लेकर सबकी अत्यन्त महीन कज्जली बना लीजिए, और २ भाग

शुद्ध ताम्रके अत्यन्त महीन पत्र करा लीजिए, तत्पश्चात् गर्भयन्त्रमें[1] पहिले थोड़ी कज्जली बिछा कर उसपर ताम्रपत्र रखिए और उससे ऊपर फिर कज्जली बिछा दीजिए, इसी प्रकार ताम्रपत्रों और कज्जलीकी तह जमाकर यन्त्रके मुखको बन्द करके एक पहर तक अग्नि पर पकाइए और स्वाङ्गशीतल होने पर ताम्र भस्मको निकालकर पीसकर रख लीजिए।

इसे यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल, उदररोग, पाण्डु, ज्वर, गुल्म, प्लीह, यकृत, क्षय, अग्निमांद्य, प्रमेह और अर्श (बवासीर) रोग नष्ट होता है। इससे दुष्ट संग्रहणी भी अवश्य मिट जाती है।

इसे 'सोमनाथी ताम्र भस्म' कहते है।

मात्रा—६ रत्ती तक।

नोट—ताम्र भस्मकी कुछ विधियां 'ताम्र मारणम्' नामसे दी गई हैं।

(२५८८) ताम्रभस्मशुद्धिः (रसायनसार)

यदिपर्याप्तविशुद्धं कथमपि न कृतं कृतं तु भस्मापि
तस्मा तद्गोमूत्रे निर्वाप्यं त्वेकविंशतिं वारान् ॥

अर्थ—यदि किसी वैद्यने ताम्रकी पूर्ण शुद्धि नहीं करके ताम्र भस्म बना डाली हो तो, उस ताम्र भस्मको घृतकुमारीके रसमें घोटकर टिकियां बना ले। जब टिकियां खूब सूख जाय तब कलछामें रखकर शोधनार्थ भ्राष्ट्रीमें तपाकर इक्कीस बार गोमूत्रमें बुझा दे। ऐसा करनेसे ताम्र भस्म शुद्ध हो जायगी। वान्ति, भ्रान्ति इत्यादि दोष निवृत्त हो जायंगे। एक बार हमने "सप्तैव वारांश्च पृथक् पृथक् वै" इस पाठका ख़याल नहीं करके "त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्यात्स्वर्णादिनां समासतः" इस साधारण नियमके अनुसार ताम्र पत्रोंको उक्त तैल आदि वस्तुओंमें तीन तीन बार ही बुझाकर सात सेर ताम्र भस्म बना डाली; उस भस्मको हमने खाकर देखा तो खाते ही वमन हुआ और चक्कर आने लगे, तबियत बहुत खराब रही। तब हमने उस भस्मको घृतकुमारीके रसमें टिकियां बनाकर २१ बार गोमूत्रमें बुझाई तब शुद्ध हुई। टिकियां बनानेका अभिप्राय यह है कि ताम्र भस्म बुझानेसे बरबाद न होगी।

(२५८९) ताम्रभस्मामृतीकरणम् (रसायनसार)

पञ्चामृतैरत्र कृते कषायके
विमर्द्य कुर्यात् खलुभस्मचक्रिकाम्।
पचेत्पुटे नाम गजे त्रिवारक-
मिमां वदन्ति ह्यमृतीकृतिं पराम् ॥

---

१ गर्भयन्त्र—एक ४ अंगुल लम्बी और ३ अंगुल घेरेवाली मिट्टीकी मूषा बनवाइये, इसका मुख गोल होना चाहिए। जब वह सूख जाय तो २० भाग अधजला लोह (लोहेकी कच्ची भस्म) और १ भाग गूगलको एकत्र मिलाकर खूब कूटकर उपरोक्त मूषा पर इसके ७-८ लेप कर दीजिए, हर लेपके बाद मूषाको सुखा लेना चाहिए। अन्तमें १ भाग चिकनी मिट्टी और २ भाग सेंधा नमकके महीन चूर्णको पानीमें घोटकर उसका लेप कर दीजिए। बस यन्त्र तैयार है। इसके ढकने पर भी इसी प्रकार लेप करके मजबूत बना लेना चाहिए। आवश्यकतानुसार मूषा इससे बड़ी भी बनाई जा सकती है।

ताम्रभस्मका अमृतीकरण—

अर्थ—अमृतपञ्चक (सोंठ, गिलोय, सफेद मुसली, शतावर, गोखरू के बनाए हुए क्वाथमें ताम्र भस्मको घोटकर टिकियां बना लें। खूब सूख जाने पर सम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूंक दे। इसी प्रकार ३ वार संस्कार करनेको अमृतीकरण कहते हैं।

(२५९०) ताम्रभैरवो रसः (र.रा.सुं.। कास.)

विषं खदिरसारञ्च करहाटं टङ्कणं तथा।
व्योषं ताम्रं शुद्धफेनं चणमात्रा वटी कृता ॥
दीयते कासश्वासेषु पीनसे ग्रहणीकफे।
नाशयेन्नात्र सन्देहस्तिमिरञ्च यथा रविः॥
ताम्रभैरव इत्येष ज्वराणाञ्च निकृन्तनः॥

शुद्ध मीठा तेलिया, खैरसार, अकरकरा, सुहागेकी खील, त्रिकुटा, ताम्र भस्म और अफीम समान भाग लेकर सबको महीन घोटकर चनेके बराबर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे खांसी, श्वास, पीनस, ग्रहणी, कफ और ज्वर नष्ट होते हैं।

(२५९१) ताम्रमारणम् [१]

(शा. सं.। म. ख. अ. ११; यो. चि. म.। अ. ८; भा. प्र.। पूर्व खं.)

सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः।
यामत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षिपेत् ॥
पादांशं सूतकं दत्वा याममम्लेन मर्दयेत्।
ततः उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद् द्विगुणेन च ॥
गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम्।
ततःपिष्ट्वा च मीनाक्षीं चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम्॥
तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेदङ्गुलोन्मितम्।
धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत्॥
वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणाम्बुभिः।
दत्वा भाण्डमुखे मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत्॥
क्रमवृद्ध्याग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम्।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य मर्दयेत्सूरणद्रवैः॥
दिनैकं गोलकं कुर्यादर्धगन्धेन लेपयेत्।
सघृतेन ततो मूषां पुटे गजपुटे पचेत्॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मृतं ताम्रं शुभं भवेत्।
वान्तिं भ्रान्तिं क्लमं मूर्च्छां न करोति कदा च न॥

ताम्बेके बारीक पत्रोंको तीन दिन तक दोलायन्त्र विधिसे नींबूके रस या काञ्जीमें पकाइए फिर उन्हें खरलमें डालकर तथा उनसे चौथाई पारा डालकर १ पहर तक नींबूका रस डाल डालकर घोटिए। तत्पश्चात् पत्रोंसे दो गुने आमलासार गन्धकको नींबूके रसमें पीसकर उन पर लेप कर दीजिए और उनका गोला बनाकर उस पर मीनाक्षी, चांगेरी (चूका-चौपतिया) या पुनर्नवाको पीसकर उसका १ अंगुल मोटा लेप करके सुखाकर हाण्डीमें रखकर शरावसे ढक दीजिए और सन्धिको बन्द करके हाण्डीको मुंह तक बालुरेतसे भरकर ऊपर एक शराव ढककर उसकी सन्धिको राख और सेंधा नमकको पानीमें मिलाकर उससे बन्द कर दीजिए। और सुखाकर ४ पहर तक क्रमशः मृदु, मध्यम और तीव्राग्नि दीजिए, तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे ताम्रको निकालकर १ दिन जिमिकन्द (सूरण)के रसमें घोटकर और गोला बनाकर उसके ऊपर

घीमें पिसे हुए ताम्रसे आधे गन्धकका लेप करके सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। स्वांग शीतल होने पर ताम्र भस्मको निकालकर पीसकर रख लीजिए।

इस प्रकार ताम्रकी अत्युत्तम भस्म बन जाती है जिससे वमन, भ्रान्ति, क्लम और मूर्च्छादि विकार कभी नहीं होते।

(२५९२) ताम्रमारणम् [२]

(र. प्र. सु.। अ. ४)

कृत्वा ताम्रस्य पत्राणि कन्यापत्रे निवेशयेत्।
कुक्कुटाख्ये पुटे सम्यग्पुटयेत्तदनन्तरम् ॥
सूतगन्धकयोः पिष्टिं कार्या चातिमनोरमा।
विमर्द्य निम्बुतोयेन तानि पत्राणि लेपयेत् ॥
स्थालीमध्ये निरुन्ध्याथ पचेद्यामचतुष्टयम्।
पञ्चदोषविनिर्मुक्तं शुल्वं तेनैव जायते ॥

ताम्रके शुद्ध पत्रोंको घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के भीतर घुसाकर सम्पुटमें बन्द करके कुक्कुटपुट की अग्नि दीजिए। तत्पश्चात् ताम्रके बराबर पारे गन्धककी कज्जलीको नींबूके रसमें घोटकर उन पत्रों पर लेप कर दीजिए और उन्हें एक हाण्डीमें रखकर ऊपरसे शराव ढककर सन्धिको गुड़चूनेसे बन्द कर दीजिए और उस पर कपरमिट्टी करके ४ पहरकी अग्नि दीजिए एवं हण्डीके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे ताम्र भस्मको निकाल लीजिए।

इस प्रकार ताम्रकी वान्ति, भ्रान्ति आदि पञ्चदोषोंसे रहित उत्तम भस्म बन जाती है।

(२५९३) ताम्रमारणम् [३]

(रसेन्द्र. चिं.। अ. ६)

गन्धेन ताम्रतुल्येन ह्यम्लपिष्टेन लेपयेत्।
कण्टवेध्यं ताम्रपत्रं मूषामध्ये पुटे पचेत् ॥
उद्धृत्य चूर्णयेत्तस्मिन् पादांशं गन्धकं क्षिपेत्।
पाच्यं जम्भाम्भसा पिष्टं समो गन्धश्चतु पुटे॥
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा पुटमेकं प्रदापयेत्।
सितशर्करयाप्येवं पुटदाने मृतिर्भवेत् ॥

कण्टकवेधी शुद्ध ताम्रपत्रों पर उनके बराबर गन्धकको नींबूके रसमें पीसकर लेप कर दीजिए और उन्हें मूषामें बन्द करके पुट दीजिए। इसके पश्चात् उन्हें पीसकर और चतुर्थांश गन्धक मिला कर जम्बीरी नींबूके रसमें घोटिए और टिकिया बनाकर सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके गजपुटकी अग्नि दीजिए, इसी प्रकार चार पुट देनेके पश्चात् सफेद खांडके साथ १ पुट देनेसे ताम्र भस्म बन जाती है।

ताम्रयोगः (र. र.; र. चं.। ग्रहणी.)

लगभग "ताम्रद्रुति" सं. २५६७ के समान है, केवल इतना अन्तर है कि इसमें पारा १ कर्ष और ताम्रपत्र ४ कर्ष लिखे है और इसमें तीनो चीज़ें बराबर हैं। दूसरे इसमें नींबूका रस डालकर धूपमें रखनेको लिखा है पर उसमे रसका विधान नहीं है। इसमे अनुपानमें ज़ीरे धनियेका योग है और उसमें मधुघृतादि का। शेष प्रयोग लगभग समान है।

(२५९४) ताम्रयोगः (च. द.। ग्र.)

स्थाल्यां सम्मर्द्य दातव्यौ माषिकौ रसगन्धकौ।
नखक्षुण्णं तदुपरि तण्डुलीयकं द्विमाषिकम् ॥

ततो नैपालताम्रस्य पिधाय सुकपालकम् ।
पांशुना पूरयेदूर्ध्वं सर्वां स्थालीं ततोऽनलः ॥
स्थाल्यधो नालिकां यावद्दद्यस्तेन मृतस्य च ।
ताम्री ताम्रस्य रत्त्येका त्रिफलाचूर्णरक्तिकाम् ॥
त्र्यूषणस्य च रत्त्येका विडङ्गस्य च तन्मधु-
घृतेनालोड्य लेढव्यं प्रथमे दिवसे ततः ॥
रक्तिवृद्धिं प्रतिदिनं कुर्याचाम्रादिषु त्रिषु ।
स्थिरा विडङ्गरक्तिस्तु यदा भेदो विवक्षितः ॥
तदा विडङ्गं त्वधिकं दद्याद्रक्तिद्वयं पुनः ।
द्वादशाहं योगवृद्धिस्ततो ह्रासक्रमोप्ययऽयम् ॥
ग्रहणीमम्लपित्तञ्च क्षयं शूलञ्च सर्वदा ।
ताम्रयोगो जयत्येष बलवर्णाग्निवर्धनः ॥

एक हाण्डीपर कपरौटी करके उसमें १-१ माशे पारद और गन्धककी कज्जली रखकर उसपर २ माशे चौलाई नाखूनसे छीलकर डाल दें और उसके ऊपर (४ माशे वज़नी) शुद्ध नैपाली ताम्रकी कटोरी ढककर जोड़को गुड़ चूनेसे बन्द करदें और हाण्डीको रेतसे मुंह तक भरदें। अब उसे भट्टीपर चढ़ाकर (४ पहरकी) अग्नि दीजिए और फिर हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर उसके भीतर से ताम्बेकी कटोरीको निकालकर पीस लीजिए।

प्रथम दिन १ रत्ती यह ताम्र और १-१ रत्ती त्रिफला, त्रिकुटा और वायविडंगका चूर्ण एकत्र मिलाकर घी और शहदके साथ खिलाइए और फिर प्रतिदिन वायविडंगके अतिरिक्त अन्य तीनों औषधियोंकी मात्रा १-१ रत्ती बढ़ाते हुए १२ दिन तक सेवन कराइये और इसके पश्चात् इसी प्रकार १-१ रत्ती औषध घटाकर खिलाइये। यदि विरेचन कराना हो तो वायविड़ंगका चूर्ण भी प्रतिदिन २-२ रत्ती बढ़ाना चाहिए।

इसके सेवनसे ग्रहणी, अम्लपित्त, क्षय और शूलका नाश होकर बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

नोट—इस प्रयोगमें पारदादि की मात्रा केवल औषधोंका भागक्रम प्रकट करनेके लिए लिखी हैं, अत एव १-१ माशा पारद गन्धककी जगह १-१ पल लेना चाहिए।

२—यदि ताम्रकी कटोरीका कुछ भाग भस्म होनेसे रह गया हो तो उसे अलग कर देना चाहिए।

(२५९५) ताम्रयोगः (वृ. यो. त.। त.१२१)

शुद्धं पारदगन्धकाभिकलितं
युक्त्या हृतं य पुमा-
नद्यात्ताम्रमनूतनं शशिकला
क्षौद्रान्वितं पथ्यभुक्।
कोठोदर्दकशीतपित्तजरुजो
नश्यन्त्यवश्यं दिनै-
रल्पैरस्य नरस्य यान्ति विलयं
कुष्ठानि चाष्टादश ॥

शुद्ध पारद और गन्धककी कज्जलीद्वारा बनी हुई पुरानी ताम्रभस्मको बावचीके चूर्ण और शहदके साथ पथ्य पालनपूर्वक सेवन करनेसे कोठ, उदर्द, शीतपित्त और अठारह प्रकारके कुष्ठ शीघ्र ही अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

(मात्रा—ताम्र २ रत्ती, बावचीका चूर्ण ३ माशे, शहद ३ तोले।)

(२५९६) ताम्ररसायनम्

(वं. से.; च. द. । रसायन)

तनुपत्रीकृतं ताम्रं नैपालं गन्धकं समम् ।
दत्त्वा चोर्ध्वमधो मध्ये स्थालिकामध्यसंस्थितम्॥
कृत्वा स्वल्पपिधानञ्च स्थालीमध्ये निधाय च।
शर्कराभक्तलेपेन तस्य सन्धीन्निरोधयेत् ॥
वालुकापूरितास्थालीं विहितायां पुनस्तथा ।
सुलिप्तायाञ्च यामैकमधो ज्वालां प्रदापयेत्॥
तत आकृष्टताम्रस्य मृतस्य त्विह योजना ।
अथ कर्षं गन्धकस्य वह्निस्थलोहपात्रगम् ॥
शिलापुत्रेण सम्मर्द्य द्रुतं घृष्टं पुनः पुनः ।
रसोऽम्लमथितः शुद्धस्तावन्मानः प्रदीयते ॥
ततस्तथैव सम्मर्द्य पुनराज्यं प्रदापयेत् ।
अष्टबिन्दुकमानञ्च मर्दयेन्मूर्च्छितं तथा ॥
सर्वं स्यात्तत आकृष्य शिलापुत्रादिकं दृढम् ।
संहृत्यालम्बुषरसप्रसूतेन विलोडितम् ॥
पुनस्तथैव वह्निस्थे लोहपात्रे विमर्दयेत् ।
यावद्द्रवक्षयं पश्चादाकृष्य संप्रपेषितम् ॥
अलम्बुषारसेनैव गोलकं सम्प्रकल्पयेत् ।
तत्पिण्डं वस्त्रविस्तीर्णे पिण्डे त्रिकटुजे पुनः ॥
वसनान्तरितं कृत्वा पोट्टलीं कारयेत्सुधीः ।
ततस्तां पोट्टलीमाज्ये मग्नां कृत्वा विधारिताम्॥
सूत्रेण दण्डसंलग्नां पाचयेत्कुशलो भिषक् ।
यदा निष्फेनता चाज्ये गुटिका च दृढा भवेत्॥
तदा पक्कां समाकृष्य पञ्चगुञ्जातुला घृतम् ।
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं तुल्यं प्रातः प्रयोजयेत् ॥
तक्रं स्यादनुपाने तु ह्यम्लपित्तोच्छ्रये पुनः ।
त्रिफलैव समा देया कोष्णं वारि पिबेदनु ॥
सप्तमे दिवसे रक्तीवृद्धिस्तावत्तु माषकम् ।
यावत्प्रयोगस्तथैव ह्यपकर्षः पुनर्भवेत् ॥
योगोऽयं ग्रहणीयक्ष्मपक्तिशूलाम्लपित्तहा ।
रसायनं समुद्दिष्टं गुदकीलादिनाशनम् ॥
न चात्र परिहारःस्याद्विहाराहारकर्मसु ।
ताम्ररसायनमिदं सर्वव्याधिहरं परम् ॥

शुद्ध नैपाली ताम्रके बारीक पत्र और शुद्ध गन्धकका चूर्ण समान भाग लेकर एक शरावमें थोड़ासा गन्धकचूर्ण बिछाकर उसपर ताम्रपत्र रक्खें और उसपर गन्धकचूर्ण बिछाकर उसके ऊपर दूसरा ताम्रपत्र रखकर उसे भी गन्धकके चूर्णसे ढक दें; इसी प्रकार तह जमाकर सब पत्रोंको गन्धकके बीचमें रखकर दूसरे शरावसे ढककर दोनोंके जोड़को भात और खांडकी पिट्ठीसे बन्द करके उसके ऊपर ३—४ कपड़मिट्टी कर दें और उसे सुखाकर ४—५ कपड़मिट्टी की हुई एक हाण्डीमें रखकर उसमें मुंहतक बालु रेत भर दें और उसके मुंह पर शराव ढककर तथा जोड़को बन्ध करके १ पहर तक तेज़ अग्निपर पकाएं। जब हाण्डी स्वांगशीतल हो जाय तो उसके भीतरसे ताम्रको निकालकर पीस लें। इसके पश्चात् १ कर्ष (१। तोला) यह ताम्र भस्म और १ कर्ष शुद्ध गन्धक एकत्र मिलाकर लोहेके पात्रमें डालकर मन्दाग्निपर चढ़ाकर पत्थरकी मूसलीसे जल्दी जल्दी घोटें; जब गन्धक पिघल जाय तो उसमें जम्बीरी नींबूके रसमें शुद्ध किया हुवा पारद एक कर्ष डालकर पुनः घोटें और कज्जली हो जाने पर उसमें ८ बूंद घृत डालकर घोटें, जब

घी अच्छी तरह मिल जाय तो पात्रको अग्निसे नीचे उतारकर उसमें १० तोले मुण्डीका रस डालकर मिलावें, जब रस अच्छी तरह मिल जाय तो पात्रको पुनः अग्निपर चढ़ाकर औषधको पत्थर की मूसलीसे घोटें। जब सब रस सूख जाय तो औषधको मुण्डीके रसमें घोटकर गोला बनाएं और उसे कपड़ेमें लपेटकर उसके ऊपर त्रिकुटेका कल्क लपेट दें तथा उसके ऊपर दूसरा कपड़ा लपेटकर पोटली बनाएं। अब एक हाण्डीमें घी भरकर उसके मुखपर एक डण्डा रखकर उसमें पोटलीको इस प्रकार बांध दीजिए कि वह घीमें डूब जाय परन्तु हाण्डीकी तलीसे कुछ ऊपर रहे। इस हाण्डीको मन्दाग्निपर चढ़ाकर पकाइए। जब पकते पकते औषधका गोला खूब कठिन हो जाय और घीमें झाग आने बन्द हो जायं तो अग्नि लगानी बन्द कर दें और हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर पोटलीको निकालकर ऊपरसे कपड़ा और त्रिकुटेका कल्क अलग करके शेष औषधको महीन पीस लें और उसमेंसे ५ रत्ती औषध समान भाग त्रिफला और त्रिकुटाके चूर्णमें मिलाकर प्रातःकाल घीके साथ सेवन करायें तथा ऊपरसे तक्र पिलाएं। यदि अम्लपित्तमें सेवन कराना हो तो केवल त्रिफलाके चूर्णके साथ मिलाकर उष्ण जलसे सेवन कराएं। हर सातवें दिन १ रत्ती ताम्र बढ़ा दिया करें और १ माषा तक पहुंचने पर इसी प्रकार १-१ रत्ती औषध घटाकर सेवन करायें।

इसके सेवनसे ग्रहणी, राजयक्ष्मा पक्तिशूल, अम्लपित्त, बवासीरके मस्से और अन्य अनेक रोग नष्ट होते हैं।

इसके सेवनकालमें किसी विशेष परहेज़की आवश्यकता नहीं है।

(२५९७) ताम्ररसायनम् (वृं. से.। रसायन)

कण्टकवेधनयोग्यं ताम्रस्य पत्रं पलं समादाय।
कर्षाधिकपलमात्रेऽम्लेऽग्नौ निर्दहेद्भिषक्कुशलः॥
एवं पुनरपि वारद्वितयं त्रिमर्द्यमतिगाढम्।
प्रत्येकं मिलितेष्वपि तथैव वारत्रयं दद्यात्॥
इन्द्रस्वरसभावितगन्धकलिप्तन्तु ताम्रकं कृत्वा।
स्वरपरसंपुटमध्ये विनिधाय मृदा तमुपलिम्पेत्॥
हस्तप्रमाणवदने गर्ते चतुर्हस्तपरीणाहे।
दत्त्वेन्धनं करीषन्तुषमध्ये दहनमाधाय॥
तदुपरि दत्वा ताम्रसम्पुटं निहितं पुनश्च करीषाभिः।
संछाद्य तत्र वह्निं प्रज्वालयेद्भिषग्विशङ्कः॥
तावत् पुटं प्रदेयं यावत्ताम्रञ्च मृत्युमायाति।
मृतमधिगम्य च भाण्डे क्वचिदपि तत् स्थापयेत् पुटितम्॥
तदनु तावत्प्रमाणं पारदमादाय खल्वयेन्निपुणः।
खल्वशिलाया मध्ये गृहधूमनिशेष्टकाचूर्णैः॥
पश्चाद्धारिविधानं पुनश्च त्रिकटुना खल्लयेन्निपुण
खल्लितसूतस्यैवं पातयन्त्रेण चोद्धारः॥
समकृतगन्धकसहितं पुनरपि कृत्वा खल्लयेत्त्रिदिनम्।
एवं च शुद्धसूतं मृतताम्रकमिश्रितं कुर्यात्॥
दुग्धपलाष्टकमाज्यं तत्समञ्च नारिकेलजलम्।
द्विपलं कलितत्रिफलाक्वाथञ्च चतुर्गुणं दद्यात्॥
सुदृढे ताम्रकटाहे मार्ते वा स्थापयेद्विविधविधिज्ञः
दर्व्या च ताम्रमय्याऽऽयस्या चाल्यं पुनः पचेद्वैद्यः॥

ज्ञात्वा पाकं भूयो झटिति
कटाहमवतारयेन्निपुणः ।
तदनु च तस्मिन्नष्टलक्षणांश्च विश्राम्य
क्रियतेऽपि ॥
त्रिकटुत्रिफलालोहितचित्रकविडङ्गक-
भद्रमुस्तानाम् ।
जीरकयोः प्रत्येकं कर्षकलितचूर्णनिक्षेपः ॥
पुनरैलाकङ्कोललवङ्गजातिफलजातिकोषाणाम्।
चूर्णं गुडत्वचोपि माषाष्टपरिमितं दद्यात् ॥
ततः सुशीते ताम्रे माषाष्टकमतिविकीर्य
घनसारम् ।
ताम्रमयादिकभाण्डे स्निग्धे मार्त्ते वा स्थाप्यम्॥
मनसि च विधाय सूर्यपूजां कृत्वा शुभे दिने चर्क्षे।
आदाय माषमेकं दधिमधुना सह भक्षयेत्
सुचिरम् ॥
तदनु च कण्ठप्रायःक्षीरं
कार्यमनुपानमधिकाल्पम् ।
नक्तमनल्पं पुनरपि ताम्बूलं भक्षयेत्सरुजः ॥
रक्तीद्वयमथ त्रितयं पञ्चकं वृद्धेर्माषकं यावत्।
स्थितमतश्चोपरिष्टात्प्रतिलोमं ह्रासयेत्तदनु ॥
खादितमेतन्नियतं यस्य न ताम्रं प्रवर्तते प्रायः।
तत्रापि स यवक्षारस्त्रिफलाक्काथोऽत्र पानीयः॥
प्रारब्धेऽसितताम्रे कतिचिद्दिवसान् न
भक्षयेन्मत्स्यान् ।
क्रोधश्च दिवानिद्रां वेगनिरोधांस्त्यजेद्दूरम् ॥
शाकं चाम्लं वर्ज्यं दधिबहिरम्लं भक्षयेदेव ।
जह्यात्तिक्तकषायं जह्यात्तात्कालिकीं पुष्टिम् ॥
वृष्यं मधुरं शीतलमथ शाल्यन्नं
मधुघृतमश्नीयात् ।
जयति च कफमतिगाढं कासं श्वासं
च निवारयति ॥
विरचितमेतत्ताम्रं धर्माध्यक्षेण धर्मपालेन ।
विन्ध्याटवीये पिण्डितमिडानिबन्धचर्याभिः॥

ताम्रके १ पल (५ तोले) कण्टकवेधी पत्र लेकर उनमे १। पल बिजौरे नींबूका रस या अन्य अम्लरस डालकर मन्दाग्नि पर पकावें, जब रस जल जाय तो इतना ही और डाल दें; इसी प्रकार ३ बार रस डालकर पकावें। तत्पश्चात् इन पत्रोंके बराबर आमलासार गन्धकको कुड़ेकी छालके स्वरसकी कई भावनाएं देकर और कुड़ेकी छालके रसमें ही पीसकर इन पत्रों पर लेप कर दें और सुखाकर दो शरावोंके बीचमें रखकर ऊपरसे ३–४ कपड़मिट्टी करके सुखा ले। तत्पश्चात् एक ऐसा गढ़ा खुदवाएं कि जो तलीमें तो ४ हाथ लम्बा चौड़ा हो पर जिसका मुख केवल एक हाथ लम्बा चौड़ा रहे। इस गढ़ेमें आधी दूरतक अरने उपले (कण्डे) भरकर उनपर अग्नि डाल दीजिए; जब अग्नि अच्छी तरह सुलग जाय तो उसपर सम्पुटको रखकर गढ़ेको मुंहतक उपलोंसे भर दीजिए और उसके ऊपर मिट्टीकी नांद या अन्य कोई ऐसी चीज़ ढक दीजिए कि जिससे उसके भीतर हवा जानेका मार्ग रह जाय और अग्नि न बुझने पावे। अब अग्निके शान्त होने और गढ़ेके बिल्कुल शीतल हो जाने पर उसमेंसे सम्पुटको निकालकर ताम्रपत्रोंको निकाल लीजिए। यदि कच्चे हो तो फिर इसी तरह गन्धकके साथ पुट दीजिए। भस्म तैयार होनेपर शीशीमें भरकर रख दीजिए।

अब इस ताम्र भस्मके बराबर पारद लेकर उसे १ दिन घरके धुंवेके साथ घोटिए और पानीसे धोकर डमरुयन्त्रसे उड़ा लीजिए। इसी प्रकार एक एक दिन हल्दी, ईंटका चूर्ण और त्रिकुटेके चूर्णके साथ भी घोटकर उड़ा लें और फिर उसमें समान भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर तीन दिन तक घोटें। तत्पश्चात् उसमें उपरोक्त ताम्र भस्म मिलाकर खरल कर लें और उसे तांबे या मिट्टीकी कढ़ाईमें डालकर मन्दाग्निपर चढ़ाकर उसमें ८-८ पल (४०-४० तोले) दूध और घी तथा २ पल नारयलका पानी और सबसे चार गुना त्रिफलेका क्वाथ मिलाकर तांबे या लोहेकी करछलीसे चलाते हुवे पकावें। जब समस्त पानी जल जाय तो तुरन्त अग्निसे नीचे उतारकर करछलीसे अच्छी तरह घोटकर चूर्णके समान कर दें। अब इसमें त्रिकुटा, त्रिफला, लाल चीता, बायविडंग, नागरमोथा, काला जीरा और सफेद जीरेका चूर्ण १।-१। तोला तथा इलायची, कंकोल, लौंग, जायफल, जावित्री, दालचीनी और कपूरका अत्यन्त महीन चूर्ण १०-१० माशे मिलाकर ताम्रपत्रमें अथवा घृतसे चिकने हुवे मिट्टीके पात्रमें भरकर रख दें।

प्रथम दिन सूर्यका ध्यान करके इसमेंसे १। माषा औषध, दही और शहदमें मिलाकर रोगीको खिलायें और ऊपरसे वह अधिकसे अधिक जितना दूध पी सके उतना पिला दें। रात्रिको भी भरपेट दूध पिलाकर पान खिलाएं।

दूसरे दिन रोज़ाना २ रत्ती; ३ रत्ती या ५ रत्ती औषध बढाकर खिलायें। जब दो माशे मात्रा पर पहुंच जाय तो इसी प्रकार प्रतिदिन औषध घटाकर सेवन कराएं। यदि कुछ लाभ प्रतीत न हो तो पुनः इसी प्रकार सेवन कराना चाहिए परन्तु इस बार औषध खानेके बाद त्रिफलाके क्वाथमें (१ माशा) यवक्षार मिलाकर पीना चाहिए।

औषधका सेवन प्रारम्भ करने पर कुछ दिनों तक मछली नहीं खानी चाहिए।

पथ्यापथ्य—क्रोध करना, दिनमें सोना, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकना, वैरभाव, शोक, अम्ल पदार्थ और कड़वे तथा कषैले पदार्थोंसे परहेज़ करना और शहदका सेवन करना चाहिए। दही खट्टा न होने पर सेवन करना चाहिए। तात्कालिक पुष्टिकी चिन्ता न करनी चाहिए।

विन्ध्याचलवासी धर्मपालनिर्मित इस ताम्रके सेवनसे अत्यन्त बढ़ा हुवा कफ, खांसी और श्वास नष्ट होता है।

(२५९८) ताम्रविकारशान्तिः (रसायनसार)

श्यामकाऽन्नं सितायुक्तं सितायुक्तं च धान्यकम्।
पीतं दिनत्रयं दोषान् दुष्टताम्रभवाञ्जयेत्॥१॥

अर्थ—जिस मनुष्यने—

"न विषं विषमित्याहुस्ताम्रन्तु विषमुच्यते।
एको दोषो विषे सम्यक् ताम्रे त्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः"

इस वचन पर ध्यान नहीं देकर अपनी बेगहूरीसे ताम्रका पूर्ण शोधन नहीं करके भस्म बना डाली हो तो उसके सेवन करनेसे कुष्ट, जड़ता, फोड़े आदि अनेक व्याधियाँ शरीरमें उत्पन्न हो जाती हैं; उनको नष्ट करनेके लिए तीन

दिन तक मिश्रीके साथ सांवा अन्नका पतला भात बनाकर पिया करे और जब प्यास लगे तब धनियेके पानीमें मिश्री डालकर पिया करे। इसके अतिरिक्त दूसरा खानपान कुछ सेवन नहीं करे। ऐसा करनेसे सर्व विकार शान्त हो जायंगे और चन्द्रोदयको सेवन करनेसे भी दो तीन दिनमें सर्व विकार शान्त हो जाते है। यह मैने अपनेही शरीर पर आजमा लिया है; और दूषित ताम्र भस्मकी शुद्धि बीस बार गोमूत्रमें बुझानेसे जो होती है उसको मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ।

(रसायनसार)

(२५९९) ताम्रशुद्धिः [१] (रसायनसार)

नैपालताम्रमिति यत्सुप्रसिद्धताम्रं
पत्राणि तस्य सुलघूनि हि कारयित्वा।
दोषाष्टकं किल तदीयमपानुनुत्सु-
र्माताग्निसान्द्रवनभाञ्जि कृतानि तानि ॥१॥

निर्वापयेच्च शनकैः परिगसप्तकृत्वः
प्रत्येकशोधनकवस्तुनि वक्ष्यमाणे।
तैलञ्च तक्रमथ गव्यमपीह मूत्रं
काञ्जी कुलत्थभवमम्बु तथाम्लिकायाः ॥२॥

नैम्बूकमम्बु च रसश्च कुमारिकायाः
स्यात्सूरणस्य च पयोऽपि गवां ततोन्ते।
स्यान्नारिकेलजलमप्यथ माक्षिकश्चा-
प्येतेषु शुद्धिकरणेषु रवेर्मितेषु ॥ ३ ॥

सूरणस्वरस आप्यते न
चेद्यत्र कुत्रच न तत्र तत्पुटे।
ताम्रपत्रगणमानिधाय वै
त्रिः पुटम्परिपचेत्तु शुद्धये ॥

नारिकेलजलमाप्येते न चे
द्यत्र कुत्रच न तत्र तद्भवे।
तैल एव विनिमज्जयेत् त्रिधा
ध्मातमग्निमयपत्रसञ्चयम् ॥

सर्वेषां धातुनां संशुद्धिः शास्त्रतो विनिर्दिष्टा।
गुणभूमार्थं भिषजा सम्पाद्ये-
येति हि प्रसिद्धमिदम् ॥

किन्त्वल्पशुद्धियोगेऽप्यन्ये
न तथा वहन्त्यनर्थास्तु।
एकन्ताम्रं शुद्धावल्पो-
नम्भ्रान्तिवान्तिकृत्तु यथा ॥

तस्मात्ताम्रविशुद्धावायतिपश्येन वैद्यवर्येण।
अणुमात्रमपि च नत्र प्रमादयोगो विधातव्यः॥

अर्थ—ताम्रभस्म बनाने के लिए लाल वर्णका नैपाली ताम्र लेना चाहिए, आजकल सब ही शहरोंमे नैपाली ताम्रके बने हुए पुराने बरतन मिलते है, उन बरतनोका ताम्बा भस्मके लिए अच्छा होता है; उसके पतले पतले पत्र बनवाकर तद्गत आठ (वान्ति, भ्रान्ति, ग्लानि, दाह, शूल, कण्डू, रेचन, वीर्यनाश), दोषोंको दूर करनेके लिए पत्रोंको अग्निमें निहत करके (खूब तपाकर) इन बारह चीजोमें सात सात बार बुझावे। बारह चीजोंके नाम ये हैं—तिलका अथवा सरसोंका तेल, गौका या भैंसका मट्ठा, गोमूत्र, कांजी, कुलथीके बीजोका क्वाथ, इमलीकी छालका अथवा पत्तोंका क्वाथ, नींबूका रस, घृतकुमारी (ग्वारका पाठा)का स्वरस, सूरण (जिमिकन्द)का स्वरस, गौका दूध (गौका दूध नहीं मिले तो बकरी या

भैंसके दूधसे भी काम चल सकता है), नारियलका पानी (जो गलेके भीतर रहता है) और सहत ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ यदि सूरणका स्वरस नहीं मिले तो सूरणके कन्दमें ही ताम्रपत्रोंको रखकर तीन चार गजपुट देनेसे शुद्धि हो सकती है ॥४॥ यदि नारियलका पानी नहीं मिले तो नारियलके तेलमें भी तीन चार पत्रोंको बुझानेसे काम चल सकता है ॥५॥ सबही धातुओंकी शुद्धि शास्त्रमें बतलाई गई है उसकी गुणवृद्धि करनेके लिए वैद्य लोगोंको करना चाहिए, यह तो प्रसिद्ध ही है; परन्तु और धातुओंकी शुद्धिमें कुछ कमी रहनेपर भी उतना नुकसान नहीं होता जितना कि ताम्रशुद्धिमें कुछ न्यूनता रह जानेसे वान्ति, भ्रान्ति आदि दोष उपस्थित होते हैं; इस लिए वैद्योंसे हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि अपनी भलाई चाहने वाले वैद्यवर ताम्रशुद्धिमें किञ्चिन्मात्र भी आलस्य तथा प्रमाद न करें, क्यों कि शास्त्रोंमें लिखा है कि—

"न विषं विषमित्याहुस्ताम्रन्तु विषमुच्यते ।
एको दोषो विषे सम्यक् ताम्रेत्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः॥"

(२६०० ताम्रशुद्धिः [२]

(वृ. यो. त. । त. ४१; यो. र. । भा. १; आ. वे. प्र.। अ. ११; रसं. सा. सं.)

नृक्षीदुग्धैः सलवणैस्ताम्रपत्रं विलेपयेत् ।
अग्नौ सन्ताप्य निर्गुण्डीरसैः संसेचयेत्त्रिशः ॥
स्नुह्यर्कक्षीरसेकैर्वा शुल्वशुद्धिः प्रजायते ॥

अन्यच्च

गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।
साम्लक्षारेण संशुद्धिं ताम्रं प्राप्नोति सर्वथा ॥

तांबेके पत्रों पर थोहर (सेंड-सेहुंड) के दूधमें सेंधा नमक पीसकर लेप करके उन्हें अग्निमें तपा तपाकर संभालूके रसमें अथवा थोहर या आकके दूधमें ३ बार बुझानेसे वह शुद्ध हो जाते हैं ।

अथवा गोमूत्रमें थोड़ा नींबूका रस और जवाखार मिलाकर उसमें तांबेके पत्रोंको दोलायन्त्र विधिसे १ पहर तक खूब तेज़ आगपर पकानेसे भी वह शुद्ध हो जाता है ।

(२६०१) ताम्रशुद्धिः [३]

(भा. प्र. । ख. १ धातुशो.)

पत्तलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्नौ प्रतापयेत् ।
निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥
गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा।
एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥

तांबेके पत्रोंको अग्निमें खूब तपा तपाकर तैल, तक्र, काञ्जी, गोमूत्र और कुलथीके क्वाथमें ३-३ बार बुझानेसे वह शुद्ध हो जाते हैं ।

(२६०२) ताम्रशोधनम् (र.र.स.। पूर्व.अ.५)

ताम्रनिर्मलपत्राणि लिप्त्वा निम्बम्बुसिन्धुना।
ध्मात्वा सौवीरकक्षेपाद्विशुध्यत्यष्टवारतः ॥

निम्बम्बुपटुलिप्तानि तापितान्यष्टवारकम् ।
विशुद्ध्यन्त्यर्कपत्राणि निर्गुण्ड्या रसमज्जनात्॥

---

१ रसेन्द्रसारसंग्रहमें अर्कदुग्ध लिखा है।

२ रसेन्द्र सा. सं में अम्ल और क्षार नहीं लिखा। केवल गोमूत्रमें स्वेदन करना लिखा है।

तांबेके उत्तम पत्रोपर नींबूके रसमें पीसे हुवे सेंधा नमकका लेप करके उन्हे अग्निमें तपाइए। जब खूब लाल हो जायं तो उनपर काञ्जी छिड़क कर उन्हें ठण्डा कर दीजिए। इसी प्रकार ८ बार करनेसे ताम्रपत्र शुद्ध हो जाते हैं।

उपरोक्त विधिसे सेंधा नमकका लेप करके, अग्निमें तपाकर ८ बार संभालुके रसमें बुझानेसे भी ताम्रपत्र शुद्ध हो जाते हैं।

(२६०३) ताम्रसुवर्णयोगः

(वै. म. र. । पटल. १९)

लीढः क्षौद्रसितायुक्तश्चूर्णस्ताम्रसुवर्णयोः।
स्यात्स्थावरविषध्वान्तसन्तानैकदिवाकरः॥

ताम्रभस्म और स्वर्णभस्म समान भाग लेकर एकत्र खरल करके मिश्री और मधुमें मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारके स्थावर विष (कन्द मूल खनिजादि विष) नष्ट होते हैं।

(२६०४) ताम्रादिप्रयोगः (र. र. । शूला.)

मृतताम्रं पलैकन्तु चिञ्चाक्षारपलाष्टकम्।
हिङ्गुहरीतकीव्योषं करञ्जबीजचोरकम्॥
प्रत्येकं पलमात्रन्तु चूर्णं कोष्णोदके पिबेत्।
कर्षैकं शूलशान्त्यर्थं सर्वोपद्रवसंयुतम्॥

ताम्रभस्म ५ तोले, इमलीका क्षार ४० तोले तथा हींग, हर्र, त्रिकुटा, करञ्जबीज और चोरकका चूर्ण ५–५ तोले लेकर सबको एकत्र खरल कर लीजिए।

इसमेंसे १। तोले औषध मन्दोष्ण जलके साथ पीनेसे उपद्रवयुक्त शूल भी शान्त हो जाता है।

(नोट—हींग भूनकर डालनी चाहिए। व्यवहारिक मात्रा–६ माशे।)

(२६०५) ताम्रामृताख्यं रसायनम्

(वं. से. । रसायन०)

गन्धकं जीर्णताम्रञ्च सूतकञ्च समांशकम्।
तण्डुलीयकमूलस्य रसे हि लवणस्य च॥
लोहपात्रे पचेत्तावद्यावत्तद्गुलिकायते।
वस्त्रे तत्पोटलीं बद्ध्वा वेष्टयेत्तां सुपिष्टया॥
आमलक्या ततः पक्त्वा सर्पिषा मृदुवह्निना।
शर्करामधुसर्पिर्भ्यामालोड्य विधिवल्लिहेत्॥
नारिकेलपयः पेयं तक्रं चानु यथाविधिः।
आचरेद् ब्रह्मचर्यन्तु हितार्थं वैद्यवत्सलः॥
दुर्नामप्लीहपाण्डुत्वज्वरकासादिकान्गदान्।
अग्निमान्द्यकृतान्सर्वान्निहन्त्याशु क्षिप्रमेव तु॥

शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म और शुद्ध पारद समान भाग लेकर सबकी कज्जली करके चौलाईकी जड़के रस और सेंधा नमकके पानीमें लोहपात्रमें मन्दाग्नि पर पकाएं, जब गोला बनने योग्य हो जाय तो उसका गोला बनाकर कपड़ेमें लपेटकर उस पर आमलेकी पिट्ठीका लेप कर दीजिए और मन्दाग्नि पर घीमें पकाइए। तत्पश्चात् गोलेके स्वांगशीतल होने पर उसके भीतरसे औषध को निकालकर पीस लीजिए।

इसे मिश्री, घी और शहदके साथ मिलाकर नारियलके पानी या तक्रके साथ सेवन करने और ब्रह्मचर्यपालन करनेसे बवासीर, प्लीहा (तिल्ली), पाण्डु, ज्वर, खांसी और अग्निमांद्यादि रोग नष्ट होते हैं।

(नोट—कज्जली १० तोले हो तो चौलाई का रस और सेंधेका पानी २०-२० तोले लें। सेंधे का पानी बनानेके लिए ५ तोले सेंधेको ८० तोले पानीमें मिलायें।

गोलेको इतना पकाना चाहिए कि उसके ऊपरवाली आमलेकी पिट्ठीका रंग लाल हो जाय।)

(२६०६) ताम्राष्टकम्

(र. र. स. । उ. ख. अ. १८)

हिङ्गुव्योषं मधुकरुचकं तिन्तिडीक्षारताम्रं,
सर्वं चैतन्मसृणमृदितं पीतमुष्णोदकेन।
क्षिप्रं शूलं क्षपयति नृणां तीव्रपीडासमेतं,
ध्वान्तं भानोरिव समुदयः साधु ताम्राष्टकं हि॥

घीमें भुना हुवा हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, मुलैठी, सञ्चल (काला नमक) इमलीका क्षार और ताम्र भस्म। सबका समान भाग चूर्ण लेकर एकत्र खरल करके रखिए।

इसे उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे तीव्र पीड़ायुक्त उदरशूल अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(मात्रा-१ माशा।)

(२६०७) ताम्रेन्द्ररसः

(र. सा. । पट. २९; र. का. धे.। अधि. १२)

मृतं शुल्वं समं सूतं गन्धकं च क्रमपाचितम्।
सम्भाव्य खदिरक्राथे मञ्जिष्ठादिगणेऽपि च॥
भृङ्गार्केण वटीं कृत्वा कुष्ठाद्युदरनाशिनी।
ताम्रेन्द्रो नाम विख्यातः कफवातहरः परः॥

ताम्रभस्म, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर कज्जली करके उसे (लोहेके पात्रमें जरासा घी डालकर मन्दाग्नि पर) पिघलाएं और फिर उसे खैरके क्वाथ, मञ्जिष्ठादिगणके क्वाथ तथा भांगरेके रसकी (३-३ या ७-७) भावना देकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे कुष्ठ, उदररोग और कफज तथा वातज रोग नष्ट होते हैं।

(मात्रा-२ रत्ती।)

(२६०८) ताम्रेश्वरगुटिका

(रसें. सा. सं.; र. चं.; धन्वं.; र. रा. सुं.। प्ली.; रसें. चिं.। अ. ९)

हिङ्गु त्रिकटुकश्चैव अपामार्गस्य पत्रकम्।
अर्कपत्रन्तथा स्नुहीपत्रञ्च समभागिकम्॥
सैन्धवन्तत्समं ग्राह्यं लौहं ताम्रञ्च तत्समम्।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममामवातं सुदारुणम्॥
अर्शांसि घोरमुदरं मूर्च्छां पाण्डुं हलीमकम्।
ग्रहणीमतिसारञ्च यक्ष्माणं शोथमेव च॥
एतानन्यांश्च जयति रोगानेष रसो वरः॥

हींग, त्रिकुटा, अपामार्ग (चिरचिटा) के पत्ते, आक और थोहर (सेहुंड-सेंड) के पत्ते समान भाग तथा इन सबके बराबर सेंधा नमक, लोहभस्म और ताम्रभस्म लेकर सबका चूर्ण करके एकत्र घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे तिल्ली, यकृत, गुल्म, आमवात, अर्श (बवासीर), भयङ्कर उदररोग, मूर्च्छा, पाण्डु, हलीमक, ग्रहणी, अतिसार, यक्ष्मा और शोथरोग नष्ट होता है। (मात्रा-४-५ रत्ती)

(२६०९) ताम्रेश्वरो रसः [१]

(वृ. नि. र.; र. रा. सुं.। कास.)

रसपादं मृतं तारं शिलाताप्यं चतुर्गुणम्।
वासाचेक्षुरसाभ्याञ्च मर्दयेत्प्रहरद्वयम्॥

द्वियामं वालुकायन्त्रे स्वेद्यमादाय चूर्णयेत् ।
गुञ्जाद्वयं निहन्त्याशु कासं क्षतभवं ध्रुवम् ॥
रसस्ताम्रेश्वरो नाम ह्यनुपानं च कथ्यते ।
दाडिमं त्रिफला व्योपं त्रयाणांश्च समं गुडम्।
चूर्णितं भक्षयेत्कर्षं क्षतकासापनुत्तये ॥

रससिन्दूर १ भाग, चांदी भस्म चौथाई भाग, मैनसिल और सोनामक्खी भस्म ४–४ भाग लेकर सबको २–२ पहर वासा और ईखके रसमें घोट-कर सुखाकर आतशी शीशी या काली बोतलमें भरकर २ पहर तक वालुका यन्त्रमें पकाएं और फिर शीशीके स्वांगशीतल होनेपर उसके भीतरसे औषधको निकालकर पीसकर रक्खें ।

अनारके फलकी छाल, त्रिफला और त्रिकुटा समान भाग तथा इन सबके बराबर गुड़ लेकर चूर्ण बनावें, उपरोक्त औषधमें से २ रत्ती औषध खाकर ऊपरसे १। तोला यह चूर्ण (गर्म पानीसे) खाएं। इसके सेवनसे क्षतज कास अवश्य नष्ट हो जाता है।

(२६१०) ताम्रेश्वरो रसः [२]

(र. रा. सुं. । श्वासा.)

पलानि पञ्च शुद्धानि ताम्रपत्राणि बुद्धिमान् ।
गृहीत्वा योजयेत् तत्र तदर्धं शुद्धसूतकम् ॥
मर्दयेन्निम्बुकद्रावैस्त्रिदिनान्युभयं भिषक् ।
ताम्रपत्रैः समं शुद्धं गन्धकं तत्र निक्षिपेत् ॥
मर्दयित्वा घटीयुग्मं काचकूप्यां च निःक्षिपेत्।
यामानष्टौ पचेदग्नौ वालुकायन्त्रसंस्थितम् ॥
एष ताम्रेश्वरो हन्यात् श्वासादीनखिलान्गदान्।
धातुपुष्टिकरश्चैव सूतिकारोगनाशनः ॥

शुद्ध ताम्रपत्र ५ पल (२५ तोले) और शुद्ध पारद २॥ पल लेकर दोनोंको तीन दिन तक नींबूके रसमें घोटिए और फिर उसमें ५ पल शुद्ध गन्धक मिलाकर २ घड़ी तक घोटकर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर आठ पहर तक वालुका यन्त्रमें पकाइए। शीशीके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रखिए। इसके सेवनसे श्वास और सूतिका रोगादि नष्ट होते तथा धातु पुष्ट होती है।

(२६११) तारकेश्वरी गुटिका

(र. र. र. । उप. ३)

काकमाच्यमृताद्रावैः पारदं तालकं समम् ।
मर्दयेद्दिनमेकन्तु कृत्वा गोलं विशोषयेत् ॥
निक्षिपेद्वज्रमूषायामाच्छाद्य लौहपर्पटैः ।
रुध्वा सन्धिं धमेद्गाढं खोटबद्धो भवेद्रसः ॥
लोहपर्पटकं दत्वा तद्वद्ध्माप्यं त्रिधा पुनः ।
वर्षैकं धारयेद्वक्त्रे गुटिकां तारकेश्वरी ॥
वाकुचीवीज कर्षैकं गवां क्षीरैः पिबेदनु ।
सर्वकुष्ठानि नश्यन्ति दिव्यकायो भवेन्नरः ॥

पारा और हरताल समान भाग लेकर दोनों को १–१ दिन काकमाची (मकोय) और गिलोयके रसमें घोटिए और उसका गोला बनाकर सुखाकर उसे लोहेके वारीक पत्रमें लपेटकर वज्रमूषामें वन्द करके और उसके जोड़को अच्छी तरह वन्द करके खूब तेज़ आगमें धमाइए। इस प्रकार धमानेसे उसका खोटबद्ध वन जायगा, उसे फिर कूटकर मकोय और गिलोयके रसमें घोटकर, लोहपत्रमें लपेटकर उपरोक्त विधिसे मूषामें वन्द करके धमा-

हुए। इसी प्रकार तीन बार करनेसे गुटिका तैयार हो जायगी।

नित्य प्रति इसे मुंहमें रखकर १ कर्ष (१। तोला) बावचीका चूर्ण गोदुग्धके साथ सेवन करने से १ वर्षमें समस्त प्रकारके कुष्ठ नष्ट होकर देह सुन्दर हो जाती है।

(२६१२) तारकेश्वरो रसः [१]

(र. का. धे.। प्रमेह.)

मृतसूताभ्रवङ्गानि मर्दयेन्मधुना दिनम्।
सर्वतुल्यं महानिम्बबीजं तत्र विनिक्षिपेत् ॥
माक्षिकेण चतुर्यामं माषैकं तेन भक्षयेत्।
अस्यानुपानं मलयूफलं पक्कं विचूर्णयेत् ॥
कदुम्बरफलं पक्कं चूर्णितं कर्षमात्रकम्।
संलिहेन्मधुना सार्धमनुपानं सुखावहम् ॥

पारद भस्म (अभावमें रससिन्दूर), अभ्रक भस्म और वङ्ग भस्म १-१ भाग लेकर सबको एक दिन शहदके साथ घोटें फिर उसमें बकायन के बीजोकी गिरी सबके बराबर मिलाकर चार पहर तक शहदमें घोटें।

इसमेंसे १ माषा दवा शहदमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे १ कर्ष (१। तोला) कठूमरके पक्के फलोंका चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटनेसे प्रमेह नष्ट होता है।

(२६१३) तारकेश्वरो रसः [२]

(भै. र.। मूत्रकृ.)

शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्रकम्।
दुरालभां यवक्षारं बीजं गोक्षुरजं शिवाम् ॥
समांशं भावयेत्सर्वं कूष्माण्डफलवारिणा।
पञ्चतृणभवेक्काथे रसे गोक्षुरजे तथा ॥
सम्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
मधुना मर्द्यं विलिहेन्मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥
उदुम्बरफलं पक्कं चूर्णितं कर्षमात्रकम्।
लेहयेन्मधुना सार्धमनुपानं सुखावहम् ॥
अजाक्षीरं भवेत्पथ्यं शर्करेक्षुरसोहितः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, वङ्ग भस्म, अभ्रक भस्म, धमासा, यवक्षार, गोखरु और हर्र। सब चीज़ें समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर सबको (एक एक दिन) कुहड़े (पेठे) के फलके रस और तृणपञ्चमूल तथा गोखरुके क्राथमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली शहदमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे गूलरके पक्के फलोंका १ कर्ष (१। तोला) चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है। इस पर बकरीका दूध, मिश्री और ईखका रस पथ्य है।

(२६१४) तारकेश्वरो रसः [३]

(रसें. सा. सं.; र. चं.; र. रा. सुं.; धन्वं.। मूत्राघात; रसें. चिं.। अ. ९)

मृतसूताभ्रगन्धञ्च मर्दयेन्मधुना दिनम्।
तारकेश्वरनामायं गहनानन्दभाषितः ॥
माषमात्रं भजेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये।
उदुम्बरफलं पक्कं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ॥
संलिह्यान्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥

पारद भस्म (अभावमें रससिन्दूर), अभ्रक भस्म और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर सबको १ दिन शहदमें घोटकर गोलियां बना लीजिए। इसमेंसे नित्य प्रति १। माशा दवा शहदमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे गूलरके पक्के फलोंका १। तोला चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटनेसे बहुमूत्र रोग नष्ट होता है।

(व्यवहारिक मात्रा—३—४ रत्ती।)

(२६१५) तारकेश्वरो रसः [४]

(भै. र.; यो. र.; र. चं.; धन्व.; र. र. ' प्रमेहा.)

मृतं सूतं मृतं लौहं मृतं वङ्गाभ्रकं समम्।
मर्दयेन्मधुना चाहो रसोऽयं तारकेश्वरः॥
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रापनुत्तये।
औदुम्बरं पक्कफलं चूर्णितं मधुना लिहेत्॥

पारद भस्म (अभावमें रससिन्दूर), लोह भस्म, वङ्ग भस्म और अभ्रक भस्म समान भाग लेकर सबको १ दिन शहदमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर चाटकर ऊपरसे गूलरके पक्के फलोंका चूर्ण शहदमे मिलाकर चाटनेसे बहुमूत्र रोग नष्ट होता है।

(२६१६) तारक्रियाप्रकारः [१]

(र. प्र. सु.। अ. ११)

सूतकं पलमेकन्तु शङ्खाभं सुर्मिलं पलम्।
एरण्डतैले घृष्टं तद्धारितं खर्परे वरे॥
अन्धितं ताम्रपत्रेण मुद्रितं सुदृढं कृतम्।
पश्चाच्चुल्यां समारोप्य वह्निं कुर्याच्छनैः शनैः॥
सार्धयामं ततः पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
ताम्रपात्रे तु यल्लग्नं सर्वं सत्त्वं समाहरेत्॥
घृताक्तं टङ्कणोपेतं गालितं मूषिकामुखे।
देयं तद्वल्लमात्रं हि नात्र कार्या विचारणा॥

पारा १ पल और शंखसदृश सुर्मिल १ पल (५ तोले) लेकर दोनोंको अरण्डके तैलमें घोटकर ५—६ कपड़मिट्टी की हुई मिट्टीकी हाण्डीमें रक्खें और उसपर ताम्बेकी कटोरी ढककर उसके जोड़को गुड़चूने इत्यादिसे बन्द करदें, एवं हाण्डी के मुंहपर शराव ढककर उसके जोड़को भी गुड़ चूने इत्यादिसे बन्द करके उसपर कपड़मिट्टी कर दें और सुखाकर चूल्हे पर चढाकर १॥ पहर तक मन्दाग्नि पर पकाएं।

इसके पश्चात् हाण्डीके स्वांगशीतल होने पर उसके भीतरसे ताम्बेकी कटोरीमें लगे हुवे सत्त्वको निकालकर सुरक्षित रक्खें।

१ पल (५ तोले) ताम्रको सुहागे और ज़रासे घीके साथ मूषामें गलाकर उसमें १ वल्ल (३ रत्ती) यह सत्त्व मिलानेसे चांदी बन जाती है।

(२६१७) तारक्रियायाः प्रकारः [२]

(र. प्र. सु.। अ. ११)

शुद्धस्फटिकसंकाशं सुर्मिलं दृश्यते क्वचित्।
मृत्खर्परे पाचितं हि निम्बूकद्रवसंयुतम्॥
घटिकाद्वयमानेन शुद्धकल्कं प्रजायते।
चतुःषष्ठ्यंशमानेन वेधयेच्छुल्वकं शुभम्॥
जायते प्रवरं तारं सर्वदोषविवर्जितम्॥

स्वच्छ स्फटिक मणिके समान सुर्मिलको नींबूके रसके साथ मिट्टीके खर्पर (प्याले)में २

घड़ी तक पकानेसे उसका कल्क (पिट्ठी) बन जाता है ।

इसमेंसे १ भाग कल्क ६४ भाग (पिघले हुवे) ताम्रमें डालनेसे सर्व दोष रहित उत्तम चांदी बन जाती है ।

(२६१८) तारक्रियायाः प्रकारः [३]

(र. प्र. सु. । अ. ११)

तालं ताम्रं रीतिघोषं समांशं
कुर्यादेवं गालितं ढालितं हि ।
अम्ले वर्गे सप्तवारं प्रढाल्य
पश्चाद्योज्यं तुल्यभागे च रूप्ये ॥
शुद्धं रूप्यं षोडशाख्यं हि सम्यग्
जातं दृष्टं नानृतम् सत्यमेतत् ॥

उत्तम वर्की हरताल, शुद्ध ताम्र, पीतल और कांसी समान भाग लेकर सबको एकत्र गलाकर ढाल लें और फिर उसे गला गलाकर सात बार अम्लवर्ग[१]में बुझावें। इसके पश्चात् उसमें समान भाग चांदी मिला दें तो शुद्ध षोडश (सर्वोत्तम) चांदी बन जायगी। यह प्रयोग हमारा (श्लोककारका) देखा हुवा और सत्य है ।

(२६१९) तारक्रियायाः प्रकारः [४]

(र. प्र. सु. । अ. ११)

पलाष्टमात्रं तालन्तु द्विकर्षप्रमितं रसम् ।
निम्बूरसेन सम्मर्द्य वासरैकं प्रयत्नतः ॥

१ अम्लवर्ग—अम्लवेत, जम्बीरी नींबू, बीजौरा नींबू, नारंगी, तिन्तडी, इमलीका फल, चांगेरी, अनारदाना, करौंदा और अम्लबेत । [र. सा. सं.]

पश्चात्तं मर्दयेद्धीमान् तैलेनैरण्डजेन वै ।
वालुकायन्त्रमध्यस्थं पचेद्यामस्तु षोडशः ॥
पश्चात्सत्वं समुद्धृत्य मर्दयेदेकवासरम् ।
अतसीतिलतैलेन काचकूप्यां निधापयेत् ॥
पूर्ववत्पाचयेद्वह्नौ स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
अनेनैव प्रकारेण पुनरेवं तु कारयेत् ॥
कूपीतलस्थितं सत्वं ग्राह्यं चेत्प्रवरं सदा ।
षोडशांशेन शुल्वस्य वेधं कुर्यान्न संशयः ॥

वर्की हरताल ८ पल (४० तोले) और शुद्ध पारा २ कर्ष (२॥ तोले) लेकर दोनोंको १ दिन नींबूके रसमें घोटें, तत्पश्चात् १ दिन अरण्डीके तेलमें घोटकर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर १६ पहर वालुकायन्त्रमें पकावें, तत्पश्चात् शीशीकी तलीमें लगे हुवे सत्त्वको निकालकर १–१ दिन अलसी और तिलके तैलमें घोटकर उक्त विधिसे वालुकायन्त्रमें पकाएं और स्वांग शीतल होने पर शीशीमेंसे औषधको निकालकर पुनः अलसी और तिलके तेलमें घोटकर वालुका यन्त्रमें पकाएं और शीशीके स्वांगशीतल होनेपर उसकी तलीमेंसे सत्त्वको निकालकर सुरक्षित रक्खें।

यह सत्व १६ गुने तांबेको पिघलाकर उस में मिलानेसे सबकी चांदी बना देता है ।

(२६२०) तारमारणम् [१]

(अनु. त. । को. १)

शुकप्रियापीतकपत्रकल्के
चतुर्गुणे तारकमेव रुध्वा ।
शरावके सम्पुटके पुटेच्च
त्रिभिः पुटैरेव वराहसंज्ञैः ॥

शुद्ध चांदीको दाड़िम और कीकरके पत्तोंकी लुगदीमें रखकर शराव सम्पुटमें बन्द करके बराह पुटमें फूंकनेसे ३ पुटमें चांदी भस्म हो जाती है।

(२६२१) तारमारणम् [२]

(अनु. त. । को. १)

तारपत्राणि सूक्ष्माणि कृत्वा संशोध्य पूर्ववत्।
तत्समौ सूतगन्धौ च काञ्जिकेन विलेपयेत् ॥
स्थाल्यां पचेद्दिनं रुध्वा भस्म स्यात्तीक्ष्णवह्निना।
बालकैणाक्षि बिम्बोष्ठि स्वर्णकुम्भकुचे प्रिये ॥

चांदीके सूक्ष्म पत्रोंको शुद्ध करके उनके ऊपर उनके बराबर पारे गन्धककी कज्जलीको काञ्जीमें पीसकर लेप कर दीजिए और फिर उन्हें ४–५ कपरौटी की हुई हाण्डीमें बन्द करके १ दिन तीक्ष्णाग्नि पर पकाइए और स्वांगशीतल होने पर भस्मको निकालकर सुरक्षित रखिए।

(२६२२) तारमारणम् [३]

(वृ. यो. त. । त. ४१)

तारपत्राणि सूक्ष्माणि कृत्वा तत्तुल्ययोः पृथक्।
सूतगन्धकयोस्तुल्यं तालयोः खल्वसंस्थयोः ॥
कल्कं कृत्वा कुमार्याद्भिस्तेन तानि प्रलेपयेत्।
शरावसंपुटे रुद्ध्वा त्रिंशद्वन्योत्पलै पुटेत् ॥
एवं रजतमाप्नोति मृतिं वारद्वयेन वै ॥

पारा और गन्धक १–१ भाग तथा वर्की हरताल २ भाग लेकर तीनोंको घृतकुमारीके रसमें घोटकर १ भाग चांदीके सूक्ष्म पत्रों पर लेप कर दीजिए और उन्हें शराव सम्पुटमें बन्द करके ३० वन उपलों (अरने उपलो)में फूंक दीजिए। इसी प्रकार २ पुट देनेसे चांदी भस्म हो जाती है।

(२६२३) तारमारणम् [४]

(वृ. यो. त. । त. ४१)

तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम्।
एतज्जम्बीरजद्रावैः कल्कीकृत्यालकं भिषक् ॥
एतेन तारपत्राणि लेपयेच्छोषयेत्ततः।
शरावसम्पुटे तेषामूर्ध्वाधो गन्धकं क्षिपेत् ॥
तारतुल्यं ततस्तानि रुध्वा गजपुटे पचेत्।
त्रिंशद्वनोत्पलैरेव स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥

चार भाग शुद्ध चांदीके सूक्ष्म पत्र, १ भाग शुद्ध हरताल और ८ भाग गन्धक लेकर हरताल को जम्भीरी नींबूके रसमें पीसकर चांदीके पत्रोंपर लेप करके सुखा लीजिए और फिर ऊपर नीचे आधा आधा गन्धक रखकर उन्हें शराव सम्पुटमें बन्द करके ३० अरने उपलों (अरण्योत्पल)में गजपुटके गढ़ेमें फूंक दीजिए और स्वांगशीतल होनेपर चांदी भस्मको निकालकर सुरक्षित रखिए।

(नोट–यदि एक बारमें भस्म न हो जाय तो फिर उसी प्रकार पुट देनी चाहिए।)

(२६२४) तारमारणम् [५]

(र. प्र. सु. । अ. ४)

भागमेकं तु रजतं सूतभागचतुष्टयम्।
मर्दयेद्दिनमेकं तु सततं निम्बुवारिणा ॥
पेषणाज्जायते पिष्टिर्दिनैकेन तु निश्चितम्।
मूषामध्ये तु तां मुक्त्वा ह्यधोर्ध्वं गन्धकं न्यसेत् ॥
वालुकायन्त्रमध्यस्थां दिनैकं तु दृढाग्निना।
पाचितां तु प्रयत्नेन स्वाङ्गशीतलतां गताम् ॥
तालेनाम्लेन सहितां मर्दितां हि शिलातले।
ततो द्वादशवाराणि पुटान्यत्र प्रदापयेत् ॥
अनेन विधिना सम्यग्रजतं म्रियते ध्रुवम् ॥

१ भाग शुद्ध चांदीके पत्र या चूर्ण और चार भाग पारेको एकत्र मिलाकर निरन्तर एक दिन नींबूके रसमें घोटें। इस प्रकार घोटनेसे एक ही दिनमें दोनोंकी पिट्टी हो जायगी। इस पिट्टीके बराबर आमलासार गन्धकका चूर्ण लेकर उसमेंसे ऊपर नीचे आधा आधा गन्धक देकर उक्त पिट्टी को शराव सम्पुटमें बन्द कर दीजिए और सुखाकर एक दिन तीव्राग्नि पर वालुकायन्त्रमें पकाइए। स्वांगशीतल होने पर सम्पुटके भीतरसे चांदीको निकालकर उसमें उसकी बराबर वर्की हरताल मिलाकर नींबूके रसके साथ घोटिए और टिकिया बनाकर सुखाकर उन्हें शराव सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। इसी प्रकार हरतालके साथ १२ पुट देनेसे अवश्य ही चांदीकी उत्तम भस्म बन जाती है।

(२६२५) तारमारणम् [६]

(र. प्र. सु.। अ. ४; र. र. स.। पू. अ. ५)

तारमाक्षिकयोश्चूर्णमम्लेन सह मर्दयेत्।
त्रिंशत्पुटेन तत्तारं भूती भवती निश्चितम्॥

शुद्ध चांदी और शुद्ध सोनामक्खीका चूर्ण समान भाग लेकर नींबूके रसमें घोटें और टिकिया बनाकर सुखाकर शराव सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दें। इसी प्रकार नींबूके रसमें घोटकर ३० पुट देनेसे चांदी अवश्य मर जाती है।

(नोट—स्वर्णमाक्षिक बार बार डालनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल पहिली बार ही मिलानी चाहिए।)

(२६२६) तारमारणम् [७] (र. मं.। अ. ५)

स्वर्णमाक्षिकगन्धस्य समं भागं तु कारयेत्।
अर्कक्षीरेण सम्पिष्टं तारपत्रं प्रलिप्य च॥
पुटेन जारयेत्तारं मृतं भवति निश्चितम्॥

सोनामक्खी और गन्धक समान भाग लेकर दोनोंको आकके दूधमें घोटकर समान भाग चांदी के शुद्ध पत्रों पर लेप कर दीजिए और उन्हें सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके फूंक दीजिए। इसी प्रकार जब तक चांदी भस्म न हो जाय पुट देते रहिए।

(२६२७) तारमारणम् [८]

(शा. सं.। म. ख. ११; भा. प्र.। ख. १)

स्नुहीक्षीरेण सम्पिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत्।
तालकस्य प्रकारेण तारपत्राणि बुद्धिमान्॥
पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते॥

१ भाग स्वर्ण माक्षिकको १ पहर थोहर (सेहुंड–सेंड)के दूधमें घोटकर ३ भाग शुद्ध चांदीके पत्रों पर लेप करके मूसमें बन्द करके २० अरण्योपल (अरने उपलों)में फूंक दीजिए। स्वांग शीतल होने पर निकालकर पुनः इसी प्रकार पुट दीजिए। इसी प्रकार १४ पुट देनेसे चांदी भस्म हो जाती है।

(२६२८) तारमारणम् [९]

(अनु. त., शा. सं.। म. अ. ११; भा. प्र.। खं. १; र. र. स.। पू. अ. ५)

भागैकं तालकं मर्द्य याममम्लेन केनचित्।
तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत्॥

धृत्वा मूषापुटेरुद्धा पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः ।
समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुध्वा पुटे पचेत् ॥
एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥

१ भाग हरतालको नींबूके रस आदि किसी अम्ल पदार्थमें घोटकर ३ भाग शुद्ध चांदीके सूक्ष्म पत्रों पर लेप कर दीजिए और उन्हें मूषामें बन्द करके ३० बनोपल (अरने उपले) में फूंक दीजिए। इसी प्रकार वार वार हरताल देकर १४ पुट देनेसे चांदीकी भस्म बन जाती है।

(नोट—जब पुट लगानेसे चांदीके पत्रोंकी अधपकी भस्म बन जाय और वह पत्रोंके रूपमें न रहें तो हरतालको उस चूर्णके ऊपर नीचे रखकर पुट देनी चाहिए अथवा चांदीके साथ ही किसी अम्ल पदार्थमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके पुट देनी चाहिए।)

(२६२९) तारशोधनम् [१]

(र. र. स. । पूर्व. अ. ५)

नागेन टङ्कणेनैव वापितं शुद्धिमृच्छति ।
तारं त्रिवारं निक्षिप्तं तैले ज्योतिष्मतीभवे ॥

समान भाग चांदी और सीसेको पिघलाकर एकत्र मिलावें फिर उसमें सुहागा डालकर अग्निमें तपाकर मालकंगनीके तैलमें बुझावें। इसी प्रकार तपा तपाकर ३ बार बुझानेसे चांदी शुद्ध हो जाती है।

(नोट—सीसा केवल पहिली वार ही मिलाना चाहिए बाद को नहीं; और सुहागा हर बार डालना चाहिए।)

(२६३०) तारशोधनम् [२]

(शा. सं. । म. ख. अ. ११; भा. प्र. । ख. १; यो. त. । त. १७; र. र. स. । पू. खं. अ. ५)

स्वर्णतारारताम्रायः पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् ।
निषिञ्चेत्तत्प्रतप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥
गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा ।
एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः संप्रजायते ॥

स्वर्ण, चांदी, पीतल, ताम्र और लोहेके पत्रोंको अग्निमें तपा तपाकर ३-३ वार तिलके तैल, तक्र, काञ्जी, गौमूत्र और कुलथीके क्वाथमें बुझानेसे वह शुद्ध हो जाते हैं।

(नोट—किसी किसी ग्रन्थमें प्रत्येक वस्तुमें सात सात बार बुझानेको लिखा है।)

(२६३१) तारस्य विशेषशोधनम्

(आ. वे. प्र. । अ. ११)

तैलतक्रादिशुद्धस्य रजतस्य विशेषतः ।
शोधनं मुनिभिः प्रोक्तं तद्यथावन्निगद्यते ॥
पत्रीकृतं तु रजतं प्रतप्तं जातवेदसि ।
निर्वापितमगस्त्यस्य रसे वार त्रयं शुचि ॥

चांदीके पत्रोंको तैल तक्रादिमें शुद्ध करनेके पश्चात् उन्हें अग्निमें खूब तपा तपाकर तीन बार अगस्तिके रसमें बुझानेसे वह शुद्ध हो जाते हैं।

(२६३२) तारसुन्दरीवटी (रससार। प. २४)

तारं कान्तं व्योम वङ्गं तावद्भागं च सूतकम् ।
गन्धकेन समायुक्तं चक्रयन्त्रे स्थिरीकृतम् ॥
क्षुरको गोक्षुरः कच्छुः शतमूली बलात्रयम् ।
एभिर्बद्धा वटी श्रेष्ठा सुन्दरी तारसंज्ञका ॥

रमेद्रामाशतं रात्रौ दुर्दण्डविहितेन्द्रियः ।
वलीपलितनिर्मुक्तो दीर्घायुर्जायते नरः ॥

चांदी भस्म, कान्तलोह-भस्म, अभ्रकभस्म, वङ्गभस्म और शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर सबको घोटकर महीन कज्जली बना लीजिए फिर उसे सम्पुटमें बन्द करके चक्रयन्त्रमें पकाइए और फिर स्वांग शीतल होने पर निकालकर १-१ दिन तालमखाना, गोखरु, कौंचके बीज और तीनो प्रकारकी बला (खरैंटी, गंगेरन, कंघी)के क्वाथ तथा शतावरीके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इसके सेवनसे सैंकड़ों स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी शक्ति और वलीपलित-रहित दीर्घायु प्राप्त होती है।

(मात्रा—२-३ रत्ती। पानमें रखकर खाना चाहिए।

(२६३३) तारामण्डूरम्

(र. का. धे.; वं. से.; यो. र.; र. चं.; र. र.; ग. नि , च. द.; वै. रह ; भै. र.; वृ. मा.। शूल.; यो. त.। त. ४४; वृ. यो. त.। त. ९५)

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ।
नव भागानि सर्वाणि लोहकिट्टसमानि च ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्राद्द्विगुणितम् गुडम्[१]।
शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥
स्निग्धभाण्डे सुनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया ।
प्राङ्मध्यान्तकमर्धेन भोजनस्य च योजितः ॥
योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ।
कामलापाण्डुरोगञ्च शोथं मन्दाग्नितामपि ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च ।
नाशयेदम्लपित्तञ्च स्थौल्यं चाप्यपकर्षति ॥
वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च ।
पक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञकः ॥
शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः ॥

[१] मूत्रार्द्धकगुडान्वितमिति पाठान्तरम्।

बायविड़ंग, चीता, चव्य, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल। प्रत्येक १-१ भाग। मण्डूर का शुद्ध चूर्ण ९ भाग। गोमूत्र ३६ भाग और गुड़ ७२ भाग लेकर, चूर्ण योग्य औषधोंका चूर्ण करके सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाएं। जब गाढा हो जाय तो अग्निसे उतारकर आधा आधा कर्ष (७॥ माशे) के मोदक बना लीजिए।

इन्हें भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें सेवन करनेसे पक्तिशूल, कामला, पाण्डु, शोष, अग्निमांद्य, अर्श, ग्रहणी, कृमिरोग, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त और स्थूलताका नाश होता है।

इसके सेवनकालमें शुष्क शाक, विदाही, अम्ल और कटु (चरपरे) पदार्थ सेवन न करने चाहिएं।

यह पक्तिशूल और साधारण शूलमें विशेष उपयोगी है।

(२६३४) तालकराजरसः (र.प्र. सु। अ.८)

वङ्गं चाभ्रं शोधितं तालकञ्च
सूतं शुद्धं वत्सनाभं तथैव ।
सौवीराख्यं टङ्कणं व्योषसञ्ज्ञं
वङ्गं युग्मं भागमत्रैव कुर्यात् ॥

अभ्रं कुर्यात्रिभागश्च सम्यक्
सूताच्चैकं तालकाद्वै त्रिभागान् ।
नाभाच्चैकं टङ्कणाद्वेदभागान्
सौवीराद्वौ कल्पनीयौ हि भागौ ॥
खल्वे मर्द्यं सर्वमेकत्र वज्री-
क्षीरे च्यार्के वासरैकं प्रयत्नात् ।
पश्चात् क्षेप्यं काचकूप्यां हि सर्वं
कूपीवक्त्रं ताम्रपत्रेण रुन्ध्यात् ॥
मुद्रां कृत्वा पाचयित्वाष्टयामान्
शीतं ज्ञात्वा पूर्ववन्मर्दनीयम् ।
एवं कुर्यात् त्रींश्च वारान् विशुद्धं
कल्कं जातं षोडशांशेन ताम्रम् ॥
शुभ्रं दत्वा सर्वरोगप्रणाशम्
कुर्याच्चैतद् भाषितं भैरवेण ।
सेव्यं वल्लं वर्षमेतत्प्रयत्ना-
द्वृद्धत्वं नो जायते सर्वकालम् ॥

वङ्ग भस्म २ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग, शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध हरताल ३ भाग, शुद्ध वछनाग (मीठा तेलिया) १ भाग, सुहागा ४ भाग, सौवीराञ्जन २ भाग और त्रिकुटा ४ भाग लेकर प्रथम पारे और हरतालको एकत्र घोटें फिर उसमें अन्य औषधियां मिलाकर १-१ दिन थोहर (सेंड)के दूध और आकके दूधमें घोटकर सुखा-कर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर उसके मुखपर शुद्ध तांबेका पत्र ढककर सन्धिको गुड चूनेसे बन्द करके उसपर भी ३-४ कपड़मिट्टी कर दीजिए और सुखाकर वालुकायन्त्रमें ८ पहर तक पकाइए, फिर शीशीके स्वांग शीतल होने पर उसके भीतरसे औषधको निकालकर पुनः थोहर और आकके दूधमें घोट कर उक्त विधिसे ८ पहर तक वालुकायन्त्रमें पकाइए। इसी प्रकार ३ बार पाक कीजिए। ताम्रका पत्र हर बार बदलना नहीं चाहिए बल्कि एक ही पत्र दोनों बार शीशीके मुंह पर ढकना चाहिए। अन्तमें शीशीमेंसे औषध निकालकर सुरक्षित रक्खें और ताम्रपत्रका जितना भाग भस्म होकर श्वेत हो गया हो उसे अलग निकाल लें, उपरोक्त शीशीवाली औषधमें उसका १६ वां भाग यह ताम्र भस्म मिलाकर घोटकर रक्खें।

इसमेंसे नित्यप्रति ३ रत्ती औषध सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट होते हैं। यदि इसे १ वर्ष तक निरन्तर सेवन किया जाय तो कभी बुढ़ापा नहीं आता।

(२६३५) तालकाङ्कोरसः

(र. रा. सुं.; भै. र. । ज्वरा.)

तालकस्य च भागौ द्वौ भागन्तुत्थस्य शुक्तिका।
चूर्णकानां चतुर्भागं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥
यामैकेन ततः पश्चात् रुध्वा गजपुटे पचेत् ।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति वातिकं पैत्तिकं ज्वरम् ॥
शीतज्वरं विशेषेण तृतीयकचतुर्थकौ ॥

शुद्ध वर्की हरताल २ भाग, तुत्थ (नीला-थोथा) और सीप १-१ भाग तथा (वेबुझा) चूना ४ भाग लेकर सबको १ पहर घृतकुमारीके रसमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लीजिए और सम्पुटमें बन्द करके उसे सुखाकर गजपुटमें फूंक दीजिए। सम्पुटके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे औषध निकालकर पीसकर रखिए।

इसमेंसे २ रत्ती दवा खानेसे वातज, पित्तज और विशेषकर तृतीयक (तिजारी) और चौथिया इत्यादि शीतज्वर नष्ट होते हैं।

(से. वि.—औषध ज्वर आनेसे ३-४ घण्टे पहिले खांडमें मिलाकर खानी चाहिए। इससे किसी किसीको उल्टी होना सम्भव है। ज्वरका समय बीत जानेके २-३ घण्टे बाद दहीभातका पथ्य देना चाहिए।

(नोट—इस 'तालकाङ्क रस' तथा आगे लिखे हुवे २ प्रकारके 'तालकादि ज्वरांकुश' रसोंके उपादान लगभग समान ही हैं, परन्तु थोड़ा थोड़ा अन्तर होनेसे भी गुणोंमे विशेष अन्तर होना सम्भव है इस लिए तीनों पाठ पृथक् पृथक् दिये गये हैं।)

(२६३६) तालकादिगुटिका

तालकं गन्धसूतश्च शुद्धं दरदटङ्कणम्।
त्र्यूषणं समभागानि सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥
भावनैका प्रदातव्या आर्द्रकस्य रसेन च।
मुद्गप्रमाणां वटिकामेकां प्रातः प्रभक्षयेत्॥
प्रसूतिवातरोगघ्नं मन्दाग्निं ग्रहणीं तथा।
श्लेष्मघ्नं विषमश्चैव शीतज्वरं विनाशनम्॥

शुद्ध हरताल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ), सुहागेकी खील और त्रिकुटा का चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए तत्पश्चात् अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर १ दिन आदाके रसमें घोटकर मूंग के बराबर गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे एक एक गोली प्रातःकाल सेवन करनेसे प्रसूतिरोग, वातव्याधि, अग्निमांद्य, संग्रहणी, कफ, विषमज्वर और शीतज्वर नष्ट होता है।

(२६३७) तालकादि ज्वराङ्कुशः [१]

(र. रा. सुं. । ज्व.)

एक कर्षं भवेत्तालं द्विकर्षं तुत्थकं भवेत्।
षट् कर्षा भृष्टशुक्तिनां चूर्णमेकत्र कारयेत्॥
धत्तूरपत्रस्वरसैर्मर्दयेद्याममात्रकम्।
निधाय भाजने लौहे सम्मर्द्य क्रमशो बुधैः॥
उपर्यग्नेः स्थापयित्वा तद्रसं शोषयेद्भिषक्॥
पुनः पर्युषितं प्रातर्गृहीत्वा किञ्चिदग्नितः।
कोष्णं कृत्वा कल्कमेतत्ततो वट्यः प्रसाधिताः॥
चणकप्रमितास्तासामेका शर्करया सह।
शीतज्वरं निहन्त्येष सर्वं नास्त्यत्र संशयः॥

शुद्ध वर्की हरताल १ कर्ष (१। तोला), शुद्ध नीलाथोथा (तुत्थ) २ कर्ष और सीपकी भस्म ६ कर्ष लेकर सबको १ पहर धतूरेके पत्तों के रसमें घोटकर लोहेके पात्रमें डालकर अग्निपर रक्खें और जब तक सब रस सूख न जाय तब तक बराबर घोटते रहें। रस सूख जाने पर घोटना बन्द कर दें और औषधको कड़ाहीमें ही रहने दें।

दूसरे दिन उसमें थोड़ासा धतूरेका रस और मिलाकर पुनः गर्म करें और गोलियां बनाने योग्य हो जाय तो चने बराबर गोलियां बनाकर रक्खें।

इनमेंसे १-१ गोली खांडके साथ देनेसे शीतज्वर अवश्य नष्ट होता है।

(२६३८) तालकादि ज्वराङ्कुशः [२]

तालकं शुक्तिकाचूर्णं तुल्यं तत्रोभयोरपि।
नवमांशं च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः॥

तत्तु संशुष्कमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत् ।
शीतं तच्चूर्णयेच्चूर्णं गुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥
प्रभाते भक्षयेत् तेन याति शीतज्वरः क्षयम् ।
वान्तिर्भवति कस्यापि कस्यापि न भवत्यपि॥
एकेन दिवसेनैव शीतज्वरहरं परम् ।
मध्याह्नसमये पथ्यं भक्तं शिखिरिणीयुतम् ॥

शुद्ध वर्की हरताल ९ भाग, सीपका चूर्ण ९ भाग और नीलाथोथा (तुत्थ) २ भाग लेकर सबको १ पहर घीकुमार (ग्वारपाठा) के रसमें घोटकर टिकियां बनाकर सुखा लें और उसे सम्पुट में बन्द करके वन्य उपलों (अरने उपलों) की आगमें गजपुटमें फूंक दें। सम्पुटके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रक्खें।

इसमेंसे १ रत्ती चूर्ण मिश्रीके साथ प्रातःकाल खिलानेसे शीतज्वर एकही दिनमें नष्ट हो जाता है। इससे किसी किसीको उल्टी हो जाती है। पथ्य—मध्याह्नमें शिखरन और भात खिलाएं।

(नोट—रसकामधेनुका ज्वराधिकारका 'चिन्तामणिरस' भी लगभग इसीके समान है, उसमें हरताल १ भाग, तुत्थ २ भाग और चूना ३ भाग पड़ता है। शेष निर्माणविधि इसीके समान है।)

(२६३९) तालकादिवटी

(र. चं.; वृ. नि. र. । शीतपित्त.)

तालं रसेनाष्टगुणं जयां च
विमर्द्य यत्नाद्गुटिका गुडेन ।
निबध्य तां सेवय मासयुग्मं
दिनोदये स्पर्शविकारतुष्ट्यै ॥

शुद्ध वर्की हरताल ८ भाग, रससिन्दूर और भांगका चूर्ण १-१ भाग लेकर सबको अच्छी तरह खरल करके (समान भाग) गुड़में मिलाकर गोलियां बना लें।

इन्हें दो मास तक प्रातःकाल सेवन करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है।

(मात्रा—४ रत्ती। अनुपान उष्ण जल।)

(२६४०) तालकेश्वररसः [१]

(वै. रह. । कुष्ठ)

पलाशजटावल्कलं संशोष्य भस्म कारयेत् तद्भस्म पञ्चविंशतिपलपरिमितं तन्मध्ये प्रकृष्टतालकम् पञ्चविंशतिमाषकपरिमितं खण्डशः कारयित्वा भस्मना सह मिश्रयेत्। नूतनहण्डिकायां दृढं यथास्यादेवं रक्षयेत्; हण्डिकोपरि शरावं दत्वा विना मुद्रां चुल्ल्यां स्थापयेत्, यामदशकपर्यन्तं हठाग्निना दाहयेत्, सम्यग्दग्धं ज्ञात्वा वस्त्रपूतं कारयेत्। तद्भस्म रक्तिकाद्वयपरिमितमदग्धजीरकचूर्णमाषं परिमितमेकीकृत्य पर्णखण्डेन सह भक्षयेत्। शीतलजलमनुपाययेत् पथ्यं चणकचूर्णं चणकरोटिकां भर्जितचणकं वा दापयेत्। एवं मण्डलपर्यन्तं बहुवातातपो वर्जयेत्; तदाष्टादश कुष्ठविविधवातशोणितविविध व्रणप्रमेहपिडिकामवातव्याध्यादीन्नाशयेत्। अनुभूतोऽयं प्रयोगः॥

पलाश (ढाक) की सूखी हुई छालकी भस्म २५ पल (१२५ तोले) लेकर कपडमिट्टी की हुई हाण्डीमें इसमेंसे आधी भस्म भरकर उस पर २५ माशे (३१। माशे=२॥ तोले लगभग) शुद्ध

वकी हरतालके टुकड़े रखकर उपरसे शेष भस्म भरकर उसपर शराव ढक दें और उसकी सन्धिको बन्द किये बिना ही चूल्हेपर चढ़ाकर दश पहर तीव्राग्निपर पकाएं, तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांगशीतल होने पर उसके भीतरसे हरतालको निकालकर पीसकर कपड़ छन करके रखें।

इस भस्ममेंसे २ रत्ती लेकर १ माशे बिना भुने जीरेके चूर्णमें मिलाकर पानमें रखकर खिलाएं और ऊपरसे ठण्डा पानी पिलाएं। पथ्यमें केवल भुने चनेका आटा, चनेकी रोटी और भूने हुवे चने दें, और अधिक वायु तथा धूपादिसे परहेज़ कराएं।

इस प्रकार इन्हें ४८ दिन तक सेवन करने से १८ प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, अनेक प्रकारके व्रण, प्रमेह पिडिका और वातव्याधि आदि रोग नष्ट होते हैं। यह प्रयोग अनुभूत है।

(२६४१) तालकेश्वररसः [२]

(र. र. स. । उ. खं. अ. २०)

मूत्रं गवां षोडशभागमानं
निधाय भाण्डेऽथ पिधाय तस्मिन् ।
दीप्ताग्निना तत्परिशोष्य सर्वं
मूत्रं ततस्तालकशुद्धतास्यात् ॥
वीर्यं पुरारेरिह नागतुल्यं
भागद्वयं चाप्यथ तालकस्य ।
शुद्धेन नागेन रसो विशुद्धो
विमर्दनीयो हरितालकश्च ॥
ततस्तु जम्बीररसेन सर्वं
विमर्दनीयं त्रिदिनं त्रिवारम् ।
भाव्यं कुमार्याः सलिलेन भृङ्ग-
वज्राह्वकन्देन च वारयुग्मम् ॥
कुष्ठे ददीतास्य रसस्य वल्ल-
त्रयं रसैरार्द्रकजैर्विजेतुम् ।
शाखासु पक्वत्वमथो सुपुप्तिं
स्तम्भं च मन्याश्चथ मण्डलानि ॥
गवां पयः शर्करया समेतं
स्तम्भातिरेके सति सन्नियोज्यम् ।
औदुम्बरं हन्ति सिताभधुभ्यां
कृष्णं च कुष्ठं त्रिफलारसेन ॥
गुडार्द्रकाभ्यां गजचर्मसिध्म
विचर्चिकास्फोटविसर्पदद्रून् ।
निहन्ति पाण्डुं विविधां विपादीं
सरक्तपित्तं कटुकीसिताभ्याम् ॥
रोगेषु सर्वेष्वपि वासराणि
त्रिसप्तसंख्यानि रसः प्रदेयः ।
रसप्रयोगावसितौ सुपुष्पां
क्वाथं पिबेच्छिन्नरुहामनोत्थम् ॥
मासद्वयं मुद्गघृतान्विताश्नं
पथ्यं ततोदुम्बरभेषजान्ते ।
अङ्गानि पञ्चानि पलोन्मितानि
दद्याद्गिष्टस्य तथाऽऽढकीनाम् ॥
क्वाथेन युक्तं सघृतौदनं च
पथ्याय कृष्णेप्यथ कृष्णवर्णे ।
रसावसाने सितयासमेतां
पलोन्मितामामलकीं प्रदद्यात् ॥
अन्नं समुद्गं सघृतं नियोज्यं
मासद्वयं स्यादथ वा त्रिचिह्नम् ।

रसप्रयोगावसितौ प्रयुंज्या-
दङ्गानि पञ्चसुमनिः सूतानि ॥
पादोन्मितानीह च मासयुग्मं
पथ्याय दुग्धौदनमाददीत ।
स्यात्तालकेशाख्यरसप्रयोगे
तक्रं हि मासं च विवर्जनीयम् ॥

वर्की हरतालको १६ गुने गोमूत्रमें, बरतन का मुख बन्द करके मूत्र जल जाने तक पकावें। तत्पश्चात् २ भाग यह हरताल और १-१ भाग रस सिन्दूर तथा सीसा भस्म लेकर सबको एकत्र घोटकर कज्जली बनाइए और फिर उसे ३-३ दिन जम्बीरी नींबू तथा घृतकुमारी (ग्वारपाठा)के रसमें और २-२ दिन भंगरे तथा बनसूरणके रसमें घोटकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे प्रतिदिन ३-३ गोली अद्रकके रस के साथ देनेसे शाखागत पका हुवा कुष्ट, सुषुप्ति (सुन्नबहरी), मन्यास्तम्भ और मण्डलकुष्ठ नष्ट होते है। यदि स्तम्भ अधिक हो तो मिश्री मिलाकर गायका दूध पिलाना चाहिए।

इसे मिश्री और शहदके साथ देनेसे औदुम्बर कुष्ठ, अद्रकके रस और गुड़के साथ देनेसे गजचर्म, सिध्म, विचर्चिका, विस्फोट, विसर्प और दाद नष्ट होते हैं, तथा मिश्री और कुटकीके क्वाथके साथ देनेसे पाण्डु, विपादिका (बिवाई) और रक्तपित्त नष्ट होता है।

कृष्णकुष्ठ और सुषुप्तिमें यह रस सेवन कराया जाय तो उसके साथ गिलोय और असनाकी छालका क्वाथ पिलाना चाहिए।

यह रस सभी रोगोंमे २१ दिन तक सेवन कराना चाहिए।

यदि इसे उदुम्बर कुष्ठमें प्रयोग किया गया हो तो औषध बन्द करनेके बाद भी दो मास तक मूंगकी दाल भात और घृत ही खिलाना चाहिए।

कृष्णवर्णके कुष्ठमें नीमके पञ्चाङ्ग और अरहरके पञ्चाङ्गका काढ़ा बनाकर उसके साथ रस सेवन कराना और पथ्यमें घृतयुक्त भात देना चाहिए।

यह रस चाहे जिस रोगमें क्यों न सेवन कराया जाय, इसके खिलानेके पश्चात् ५ तोले आमलेको पीसकर मिश्री मिलाकर खिलाना चाहिए और साधारणतः पथ्यमें मूंगकी दाल, भात और घी देना चाहिए। यदि शरीर काला हो जाय तो २ मास तक विकङ्कतके पञ्चाङ्गका क्वाथ पिलाना और पथ्यमें दूध भात देना चाहिए।

इस रसको सेवन करनेके पश्चात् १ मास तक तक्र न पीना चाहिए।

(२६४२) तालकेश्वररसः [२]

(र. का. धे. । ज्वर)

सुशुद्धतालकसमं बीजं भल्लातकस्य च ।
मर्दयेदर्कदुग्धेन वासरत्रितयं दृढम् ॥
मृन्मूषासम्पुटे सम्पुटं कृत्वा वेष्टयेन्मृत्तिकापटैः
लघुपुटं ददीतास्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥
वल्लमात्रं समरिचं गुडेन सह भक्षयेत् ।
तत्र तैलं तैलपक्वमन्नं पर्युषितं दधि ॥
वर्जयेदिति केषाञ्चिन्मते शीतज्वरं जयेत् ॥

शुद्ध हरताल और शुद्ध मिलावे समान भाग लेकर सबको एकत्र कूटकर ३ दिन तक आकके दूधमें अच्छी तरह घोटकर टिकिया बनावें और उसे सुखाकर मिट्टीके शरावोंमें बन्द करके ऊपर अच्छी तरह कपरौटी कर दें और सुखाकर लघु पुटमें फूंक दें। जब सम्पुट स्वांग शीतल हो जाय तो उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रक्खें।

इसमेंसे ३ रत्ती औषध काली मिर्चके चूर्ण और गुड़के साथ मिलाकर खिलानेसे शीतज्वर नष्ट होता है।

किन्हीं किन्हींका मत है कि इस पर तैल और तैलमें बना हुवा पक्वान्न तथा बासी दहींसे परहेज़ करना चाहिए।

तालकेश्वररसः

(र. चं.; धन्वं.; र. रा. सुं.; र. का. धे.; र. सा. सं. । वातव्या.)

तालकादिवटि सं. २६३९ देखिए। उसमें हरताल ८ भाग पड़ती है परन्तु इसमें १ भाग पड़ती है। शेष प्रयोग समान है।

(२६४३) तालकेश्वररसः [४]

(भै. र. धन्वं. । कुष्ठा.)

दद्रुमत्राणाङ्घ्रिरसं दत्वा तालं सुचूर्णितम् ।
पुनः पुनश्च सम्मर्द्य शुष्कं कृत्वा पुटे दहेत्॥
दृढस्थाल्यां धृतं क्षारं पलाशस्याप्युपर्यधः ।
ततो ज्वाला प्रदातव्या दिनरात्रं मृतं भवेत्॥
शुक्लवर्णं यदा च स्यादग्नौ दत्ते न धूम्रकम्।
तदा ज्ञातं मृतं तालं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥
गलत्कुष्ठं वातरक्तं ताम्रवर्णञ्च मण्डलम् ।
शीतपित्तं महादद्रुच्छुछुन्दरं विनाशनम् ॥
पथ्यं मसूरं चणकं मुद्गसूपं यथेच्छया ।
(टि अतिदृष्टफलोयं फिरङ्गे मतः ॥)

शुद्ध वर्की हरतालको पीसकर (७-७ बार) पंवाड़ और शरफोंकेके रसमें अच्छी तरह खरल करके टिकिया बनाएं और उसे सुखाकर कपड़-मिट्टी की हुई मज़बूत हाण्डीमें ढाककी राखके बीचमें रखकर उसके मुंहको शरावसे ढककर और उसपर कपडमिट्टी करके सुखाकर चूल्हेपर चढ़ाकर उसके नीचे २४ घण्टे अग्नि जलावें और फिर हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे हरताल-भस्मको निकालकर पीस लें। हरतालको मृत उस समय समझना चाहिए कि जब उसका रंग सफैद हो जाय और उसे अग्नि पर डालनेसे धुंवा न निकले। इस प्रकारकी हरतालभस्म समस्त कुष्ठों का नाश करती है।

इसके सेवनसे गलत्कुष्ठ, वातरक्त, ताम्रवर्ण का कुष्ठ, मण्डल कुष्ठ, शीतपित्त, दद्रु और छुछुन्दरका नाश होता है, आतशकमें इसका विशेष फल देखा गया है।

पथ्य-इच्छानुसार मसूर, मूंगकी दाल और चनेकी रोटी खानी चाहिए।

(२६४४) तालकेश्वररसः [५]

(भै. र.; धन्वं. कुष्ठ.)

कूष्माण्डत्रिफलातैलकन्याकाञ्जिकभावितम् ।
तालकं तुल्यगन्धं स्यादर्द्धपारदमर्दितम् ॥
अजाक्षीरेण निम्बूककन्यातोयैर्दिनत्रयम् ।
प्रत्येकं भावयेच्छुष्कं चक्रिकाकारताङ्गतम्॥

विपचेद्दण्डिकामध्ये पलाशक्षारमध्यगम् ।
यामान्द्वादश शीतेऽस्मिन् प्रयोज्यं रक्तिकाद्वयम् ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि रोमविध्वंसनं तथा ।
द्विविधं वातरक्तञ्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥

कुष्माण्ड (पेठे)के रस, त्रिफलाके क्वाथ, तैल, घृतकुमारी (ग्वारपाठा)के रस और काञ्जीमें १-१ रोज़ घोटी हुई हरताल १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग और शुद्ध पारद १/२ भाग लेकर तीनोंकी कज्जली बना लीजिए और फिर उसे ३-३ दिन बकरीके दूध, नींबूके रस और घृत-कुमारीके रसमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लीजिए तथा उसे कपरौटी की हुई हाण्डीमें ढाक (पलाश) की राखके बीचमें रखकर उसे मुख बन्द किए बिना ही चूल्हे पर चढ़ाकर १२ पहर की अग्नि दीजिए और हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे हरताल भस्मको निकालकर पीस कर रखिए ।

इसमेंसे २ रत्ती औषध नित्यप्रति (घृतादिके साथ) सेवन करनेसे अठारह प्रकारके कुष्ठ, इन्द्रलुप्त, दो प्रकारका वातरक्त और दुष्ट नाड़ीव्रण (नासूर) नष्ट होता है ।

तालकेश्वररसः

(र. चि. । स्त. ४; र. का. धे. । कु.)

कुष्ठहरितालेश्वररस सं. १०३१ देखिए ।

(२६४५) तालकेश्वररसः [६]

(वृ. नि. र. । वातरक्त.; र. र. । कुष्ठ.)

तालकस्य तु यस्येह पत्राणि स्युः पृथक् पृथक् ।
अभ्रकस्येव तद्ग्राह्यं हरितालं विचक्षणैः ॥
पुनर्नवायाः स्वरसे तालकं तद्विमर्दयेत् ।
दिनमेकं ततस्तस्मिन् घनत्वं गमिते सति ॥
कुर्वीत चक्रिकां तान्तु शोषयेत्सम्यगातपे ।
पुनर्नवासमस्ताङ्गक्षारैः स्थालीं गलावधिम् ॥
पूरयेत्तु ततः क्षारं दृढयेत्पीडनेन हि ।
क्षारस्योपरि तां सम्यक् दत्वा तत्तालचक्रिकाम् ॥
तत आच्छादनं दत्वा मुद्रां कृत्वा विशोषयेत् ।
स्थालीं चुल्यां निधायाग्निममन्दं ज्वालयेद्भिषक् ॥
निरन्तरमहोरात्रं पञ्चकं तेन सिध्यति ।
स्वाङ्गशीतं समुत्तार्य गृह्णीयात् रसमुत्तमम् ॥
तालकेश्वरनामायं रसो गुञ्जामितोऽशितः ।
गुडूच्यादि कषायेण गदानेतान्विनाशयेत् ॥
सोपद्रवं वातरक्तं कुष्ठान्यष्टादशापि च ।
फिरङ्गदेशजं जन्तोर्हन्ति रोगं सुदुस्तरम् ॥
विसर्पं मण्डलं कण्डूं पामां विस्फोटकं तथा ।
वातरक्तकृतान्रोगानन्यान्यपि विनाशयेत् ॥
एतद्भेषजसेवी तु लवणाम्लौ विवर्जयेत् ।
तथा कटुरसं वह्निमातपं दूरतस्त्यजेत् ॥
लवणं यः परित्यक्तुं न शक्नोति कथञ्चन ।
स तु सैन्धवमश्नीयान्मधुरोपरसो हितः ॥

जिसके अभ्रकके समान पत्र उतरते हों ऐसी हरतालको १ दिन पुनर्नवाके रसमें घोटकर टिकिया बनाकर धूपमें सुखा लीजिए । फिर एक मज़बूत और कपड़मिट्टी की हुई हाण्डीमें गलेतक पुनर्नवाके पञ्चाङ्गकी राख भरकर उसे हाथसे अच्छी तरह दबा दीजिए और उसपर उक्त टिकियाको रखकर हाण्डीके मुखपर शराव ढककर उसकी सन्धिको गुड़ चूनेसे बन्द कर दीजिए ।

अब इस हाण्डीको भट्टीपर चढ़ाकर निरन्तर ५ दिन तक तीव्राग्नि दीजिए। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे हरतालभस्मको निकाल कर पीसकर रखिए।

इसका नाम 'तालकेश्वर रस' है। इसमेंसे प्रतिदिन १-१ रत्ती औषध गुडूच्यादि गणके[1] क्वाथके साथ सेवन करनेसे उपद्रव सहित वातरक्त, अठारह प्रकारके कुष्ट, भयङ्कर फिरंग रोग (आतशक), विसर्प, मण्डल, खुजली, पामा, विस्फोटक, वातरक्त तथा अन्य कितनेही रोग नष्ट होते हैं।

इस रसके सेवन कालमें खटाई और नमक तथा कटुरसवाले (चरपरे) पदार्थों (मिर्चादि)से परहेज़ करना और धूपमें तथा अग्निके पास न जाना चाहिए। यदि नमक छोड़ना असम्भव हो तो सैंधा नमक खाना चाहिए।

(२६४६) तालकेश्वररसः [७]

(र. चिं. । स्तव. २; र. का. धे. कुष्ठ.)

गृहीत्वा कन्यकामूलं निर्व्रणं स्थूलरूपिणम् ।
निर्दोषं तालकं तस्य मध्ये दत्वा विमुद्रयेत् ॥
हण्डिकायन्त्रमध्यस्थं क्रियते सन्धिरोधनम् ।
दिनमेकं भवेदग्निः शीतलं तत उद्धरेत् ॥
भस्मसूतं तदर्धांशं कृत्वा तत्पूर्ववद्धृतम् ।
विपाच्य हण्डिकायन्त्रे स्वाङ्गशीतं तदानयेत् ॥
एकाश्च गुञ्जिकां कुष्ठे गुडान्तर्विनिवेश्यताम् ।
दीयते प्रत्यहं पथ्यं सेवनाद्व्रजति स्फुटम् ॥
कुष्ठञ्च देहसंव्याप्तं शिरादृश्यं त्रिसीपणम् ।
घातलं विषमं प्रायो ब्रह्महत्यादिसम्भवम् ॥
नाशयेदचिरेणैतच्छतजन्मसमुद्भवम् ।
मतिमद्भिः प्रयोगोऽयं चिन्तनीयः पुनः पुनः ॥
अतः परं न चेहास्ति कुष्ठनाशनमौषधम् ।

घृतकुमारी (ग्वारपाठा)की मोटी और कृमि इत्यादिसे रहित जड़ लेकर एक तरफसे जरासी काटकर उसके भीतर गढ़ा करें और उसमें शुद्ध वर्की हरतालकी डली रखकर उसके मुखपर घीकुमारकी जड़का वही कटा हुवा टुकड़ा लगाकर उस पर ३-४ कपरौटी कर दीजिए। तत्पश्चात् एक कपड़मिट्टी की हुई हाण्डीमें इसे (ढाककी राखके बीचमें) रखकर हाण्डीके मुखको शरावसे ढककर सन्धिको गुड़ चूने आदिसे बन्द कर दीजिए और उसे चूल्हे पर चढ़ाकर उसके नीचे १ दिन अग्नि लगाइए। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे हरतालको निकालकर उसमें उससे आधी पारद भस्म (अभावमें रससिन्दूर) मिलाकर (घीकुमारके रसमें घोटकर, टिकिया बनाकर, सुखाकर) उसे पूर्ववत् घीकुमारकी जड़के भीतर रखकर और हाण्डीमें बन्द करके १ दिन पकाइए। जब हाण्डी स्वांग शीतल हो जाय तो उसमेंसे औषध निकालकर पीसकर रखिए।

इसमेसे नित्यप्रति १ रत्ती दवा गुड़में मिलाकर खिलाने और पथ्य पालन करनेसे भयङ्कर कुष्ठ कि जो समस्त शरीरमें व्याप्त हो और जिसमें शिराएं दीखती हो, जो ब्रह्महत्यादि पापोंसे उत्पन्न हुआ हो वह भी नष्ट हो जाता है। कुष्ठके लिए संसारमें इससे अच्छी औषध नहीं है।

---
[1] गुडूच्यादिगण-प्रयोग सं. १२०६ देखिए।

(२६४७) तालकेश्वररसः [८]

(र. का. धे. । कु.)

तालकं निष्कमेकन्तु त्रिगुणं लवणं तथा ।
भृङ्गराजरसेनैव भावना सप्त दापयेत् ॥
दिनसप्तप्रमाणेन छायायां शोषयेत्तथा ।
तस्य गुञ्जा प्रमाणेन गुटिकां कारयेत्ततः ॥
तालकेश्वरनामाऽयं वातरक्ते प्रदापयेत् ।
सर्वकुष्ठेषु दातव्यः सप्तसप्तदिनावधि ॥
विदाहेषु च सर्वेषु छागीक्षीरेण संयुतम् ।
शून्यं च मण्डलं कुष्ठं श्वेतकुष्ठं तथैव च ॥
अष्टादशविधं कुष्ठं नाशयेन्नात्र संशयः ॥

वर्की हरताल भस्म १ भाग और सेंधा नमकका चूर्ण ३ भाग लेकर सबको १ दिन भंगरेके रसमें घोटकर छायामें सुखावें। इसी प्रकार भंगरेके रसकी सात भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए ।

इसे सात दिन तक सेवन करनेसे वातरक्त तथा शून्यता, मण्डलकुष्ठ और श्वेतकुष्ठादि समस्त प्रकारके कुष्ट नष्ट होते हैं ।

इसे विदाहमें बकरीके दूधके साथ देना चाहिए ।

(साधारण अनुपान—घी)

(२६४८) तालकेश्वररसः [९]

(र. का. धे. । कुष्ठ.)

सूताद्द्वाववलगुजात्त्रीणि कणा विश्वात्रिकं त्रिकम् ।
सार्धको ब्रह्मपुत्रस्य मरिचस्य चतुष्टयम् ॥
एकैको निम्बधत्तूरबीजयोर्गन्धकात्त्रयः ।
जातीटङ्कणतालानां भागाः दश दश स्मृताः ॥
युक्त्या सर्वं मर्दयित्वा शिवाख्यरसभावितम् ।
सान्द्रं विभावयेद् धूर्त्तरसादर्द्धपुटितं भवेद् ॥
रसकुष्ठहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियैः ।
देवदेवमुनिप्रोक्तः सर्वकुष्ठविनाशकः ॥

शुद्ध पारा २ भाग, बावची ३ भाग, पीपल और सोंठ ३-३ भाग, ब्रह्मपुत्र विष (अभावमें शुद्ध वछनाग) १॥ भाग, मरिच ४ भाग, नीम और धतूरेके बीज १-१ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग और जायफल, सुहागेकी खील तथा शुद्ध हरताल १०-१० भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बना लीजिए फिर उसमें अन्य औषधोंका महीन चूर्ण मिलाकर आमले और धतूरेके रसमें एक एक दिन घोटकर गोला बना लीजिए और उसे सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके लघुपुटमें फूंक दीजिए। सम्पुटके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे रसको निकालकर पीसकर रखिए ।

इसके सेवनसे समस्त प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते और भूख खुलती है ।

(मात्रा—२-३ रत्ती। साधारण अनुपान घी और मिश्री।)

(२६४९) तालकेश्वरोरसः [१०]

(रसें. चि. । अ. ९; र. सा. सं., र ग. सु. । कुष्ट)

धात्रीटङ्कणतालानां दशभागं समुद्धरेत् ।
धात्र्या रसैर्मर्दयित्वा शिखरीमूलवारिणा ॥
सर्वकुष्ठहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियैः ॥

आमलेका चूर्ण, सुहागेकी खील और हरताल भस्म समान भाग लेकर सबको १-१ दिन आम-

लेके रस और चिरचिटेकी जड़के क्वाथमें घोटकर सुखाकर रखिए।

इसके सेवनसे सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते और भूख खुलती है।

तालकेश्वरोरसः

(रसे. चिं. । अ. ९, र. सा. सं.; धन्व.; र. रा. सुं. । सोम ।)

चतुर्थ तारकेश्वर रस सं. २६१५ देखिए। इसमें उसकी अपेक्षा १-१ भाग हरताल और गन्धक अधिक है। शेष प्रयोग समान है।

(२६५०) तालकेश्वरो रसः [११]

(र. रा. सुं. । कु.)

शुद्धं सूतं समं गन्धं सूतात्तालं चतुर्गुणम् ।
कुक्कुटीपर्णक्षारेण वाकुच्या वा कषायकैः ॥
दिनैकं मर्दयेत्खल्ले त्रिभिस्तुल्यं मृतायसम् ।
अयस्तुल्यं मृतं ताम्रं मर्दयेद्दिनपञ्चकम् ॥
पूर्वक्वाथद्रवैर्वाथ सर्वं तद्गोलकं कृतम् ।
वर्षाभूचित्रपत्रैश्च मूषागर्भं प्रलेपयेत् ॥
तन्मध्ये निक्षिपेद्गोलं लेपः कल्पस्ततोपरि ।
रुद्ध्वाह्नि भूधरे पक्वं समुद्धृत्य विभावयेत् ॥
सप्तधा मलजैस्तोयैः मधु मिश्रं निरुध्य च ।
पुटेत्‍ भूधरे पक्वो रसः स्यात्तालकेश्वरः ॥
चतुर्गुञ्जं पर्णखण्डे भक्षयेच्च पिबेदनु ।
अजाजीद्वितयं त्र्यूषं गिरिकर्णी गवां पयः ॥
मुण्डीचूर्णं तथा क्षौद्रैः सर्वं कुष्ठं नियच्छति ॥

शुद्ध पारा और गन्धक १-१ भाग और शुद्ध वर्की हरताल ४ भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर महीन कज्जली बनावे और फिर उसे एक एक दिन सेंमलके पत्तोंके रस और बावचीके क्वाथमें घोटकर उसमें ६-६ भाग लोहभस्म और ताम्रभस्म मिलाकर ५-५ दिन उपरोक्त दोनों चीजोंके रसोंमें घोटें और गोला बनाकर सुखा ले। तत्पश्चात् दो शरावोंके भीतर पुनर्नवा और चीतेके पत्तोंके रसका लेप करके सुखाकर उनमें उपरोक्त गोलेको बन्द करके ऊपर कपरौटी कर दीजिए। तत्पश्चात् इसे १ दिन भूधरपुटमें पकाइए और फिर उसके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे औषध को निकालकर उसे आमलेके रसकी सात भावना देकर और शहदमें घोटकर पुनः १ दिन भूधर पुटमें पकाइए।

इसमेंसे ४ रत्ती रस पानमें खाकर ऊपरसे दोनो जीरे, त्रिकुटा, विष्णुक्रान्ता और मुण्डीके चूर्णको गायके दूधमें मिलाकर शहदसे मीठा करके पीनेसे समस्त प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते है।

(२६५१) तालकेश्वरो रसः [१२]

(र. का. धे.; र. चि. म. । कुष्ठ.)

हरितालं पलार्द्धैकं तथा सौवर्चलस्य च ।
शतटङ्कमितं ग्राह्यं विंशत्यधिकमुत्तमम् ॥
आरुष्करफलं पक्वं कुट्टितव्यञ्च किञ्चन ।
सेहुण्डपयसाऽऽप्लाव्य कृतक्षारञ्च तत्त्रयम् ॥
त्रिटङ्कमात्रं तद्दद्याच्छागमूत्रेण रोगिणे ।
कुष्ठं कण्डूयुतं स्रावि पिडिकाभिः समन्वितम् ॥
अव्रणं सव्रणं पूयबहलं कृमिलं मलम् ।
गतनासां गताङ्गञ्च दुर्गन्ध्यतीवपिच्छिलम् ॥
नाशयेद्वेगतः सर्वमपूर्वं कुरुते वपुः ।
कुरुध्वं निश्चितं मासाद्गुल्मप्लीहविनाशनम् ॥
पलितञ्च जरां हन्यान्न विषैःपरिभूयते ॥

हरताल भस्म २॥ तोले, काला नमक (सौवर्चल) २॥ तोले और उत्तम पके हुवे मिलावे २७॥ तोले लेकर सबको अधकुटा करके सेहुंड (सेंड-थोहर) के दूधमें भिगो दीजिए और दूसरे दिन कपड़मिट्टी की हुई हाण्डीमें बन्द करके चूल्हे पर चढ़ाकर उसके नीचे (१ पहर तक) अग्नि जलाइए और फिर हाण्डीके स्वांगशीतल होने पर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रखिए।

इसमेंसे प्रतिदिन ३ टङ्क (१५ माशे) दवा बकरीके मूत्रके साथ सेवन करनेसे खुजली, स्राव और पिडिकाओंसे व्याप्त कुष्ठ तथा जिसमेंसे अत्यन्त पीप निकलता हो, कृमि पड़ गये हों, दुर्गन्धित और चिकना मवाद जाता हो, जिसके कारण नासा और अन्य अङ्ग गल गये हों वह कुष्ठ भी शीघ्र ही अवश्य नष्ट होकर देह सुन्दर हो जाती है। इसके अतिरिक्त इसके सेवनसे गुल्म, प्लीहा (तिल्ली) और पलित भी १ मासमें नष्ट हो जाता है एवं इसे सेवन करनेवाले मनुष्य पर विषका प्रभाव नहीं होता।

(व्यवहारिक मात्रा—३-४ माशे)

(२६५२) तालकेश्वरोरसः (महान्) [१३]

(यो. चि.। अ. ७; र. प्र. सु.। अ. ८; भा. प्र.। कुष्ठ.)

तालं ताप्यं शिलासूतं शुद्धसैन्धवटङ्कणम्।
समांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद्द्विगुणगन्धकम्॥
गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरैर्दिनपञ्चकम्।
मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरोदरसम्पुटे॥
पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेकत्र षट्पलम्।
द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुः पलम्॥
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु।
त्रिंशदंशं विषं चास्मिन् क्षिप्त्वा विचूर्णयेत्॥
माहिष्याज्येन संमिश्रं कर्षार्द्धं भक्षयेत्सदा।
मध्वाज्यैर्वाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु॥
सर्वकुष्ठान्निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः॥

शुद्ध हरताल, शुद्ध सोनामक्खी, शुद्ध मनसिल, शुद्ध पारा, सेंधा नमक और सुहागा १-१ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग और ताम्रभस्म लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाइए तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर ५ दिन तक जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर टिकियां बनाकर सुखाकर उसे मूषामें बन्द करके भूधर पुटमें पकाइए और फिर पुटके स्वांगशीतल होनेपर औषधको निकालकर नींबूके रसमें घोटकर इसी भांति पुट दीजिए। इसी प्रकार हर बार नींबूके रसमें घोटकर ६ पुट दीजिए। तत्पश्चात् यदि यह समस्त औषध ६ पल हो तो उसमें २ पल (१० तोले) ताम्रभस्म और ४ पल लोहभस्म मिलाकर १ दिन नींबूके रसमें घोटिए और उसकी टिकिया बनाकर सुखाकर, सम्पुटमें बन्द करके उसे लघु

१—र प्र. सु. में सैन्धव नहीं है तथा पुट लगानेसे पूर्व भी ४ पल लोहभस्म डालना लिखा है। भूधरकी जगह कुक्कुट पुट लिखी है।

भावप्रकाशमें—ताम्रभस्म और लोह भस्म नहीं लिखी। तथा जम्बीरी नींबू के रसमें घोटकर ३० वां भाग शुद्ध बछनाग मिलाकर घोटकर सेवन करनेके लिए लिखा है, पुटपाकका अभाव है।

पुटमें फूंक दीजिए और सम्पुटके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर उसमें उसका ३० वां भाग शुद्ध बछनागका चूर्ण मिलाकर महीन खरल करके रखिए।

इसमेंसे प्रतिदिन ७॥ माशे औषध भैंसके घीके साथ खाकर ऊपरसे १। तोला बावचीका चूर्ण, घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे समस्त प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं।

(व्यवहारिक मात्रा ४ रत्ती।)

(२६५३)तालकेश्वरो रसः(राजादिः) [१४]

(र. का. धे.। कुष्ठा.)

सुजात्यं तालमादाय निर्मलं खल्वमध्यगम्।
कन्याद्रवेण सम्पिष्टं मर्दयेत्प्रतिवासरम्॥
दिनसप्तकपर्यन्तं सुदृढे काचकूपके।
वालुकायन्त्रमध्यस्थं मुखमुद्धाट्य दीयते॥
याति-धूमोऽस्य नीलाभः पीतवर्णश्च सर्वथा।
उद्घाटितं मुखं कुर्यात् पश्चाल्लोहशलाकया॥
क्षिप्यते तस्य तालस्य मध्ये सा भ्रामते क्षणम्।
आकृष्य नीयते सार्द्रा सा शलाका विलोक्यते॥
तालं पीतं यदा किञ्चित्स्वेदरूपं जलं भवेत्।
दिनैकमपरं स्वेदं तत्र दद्याद्दिनद्वयम्॥
जलरूपो यदा स्वेदो दृश्यते च शलाकया।
शीतलं क्रियते तच्च यथास्थानं भवत्यदः॥
रूपेण खोटकाकारं तालसत्वं महोज्ज्वलम्।
गुरुरूपं दृढं प्रायः क्रूरस्पर्शं ससौष्ठवम्॥
टङ्कमात्रं विचूर्ण्याथ तद्दद्यात्कुष्ठिनेऽन्वहम्।
रोहीतकजटाक्वाथमनुपानं प्रदीयताम्॥
चतुर्दशदिनस्यान्ते कुष्ठं शुष्यत्यसंशयम्।
क्षुद्बोधो जायतेऽत्यर्थं सुभगं च भवेद्वपुः॥
अत्यर्थं पच्यते भुक्तमत्यर्थं सुखमाप्नुयात्।
अरुणौदुम्बरं कुष्ठमृक्षजिह्वं कपालिकम्॥
काकणं पुण्डरीकञ्च दद्रुकुष्ठं सुदुस्तरम्।
स्थूलाण्डञ्च महाकुष्ठमेककुष्ठं सुदारुणम्॥
तथा च मण्डलं हन्याद् विसर्पं परिसर्पकम्।
सिध्मां विचर्चिकां गाढां किटिभं च विशेषतः॥
पामां च रकसां वापि किलासमपि नाशयेत्।
चित्रञ्च द्वित्रिमासेन नाशयेत्प्रसभं नृणाम्॥
काकोदुम्बरिकामूलं वारि चानु पिबेद् यदि।
सघृतञ्च भवेत्सर्वं सद्व्यञ्जनमुदाहृतम्॥
वार्ताकं राजिकाशाकमम्लं दधिसुरासवम्।
वर्जयेत्सततं कुष्ठी मत्स्यमांसं द्विभोजनम्॥

उत्तम प्रकारकी शुद्ध वर्की हरतालको सात दिन घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रसमें घोटकर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर उसे वालुकायन्त्रमें रखकर भट्टीपर चढ़ा दीजिए। जब शीशीमेंसे नीला धुंवा निकल चुके और बिल्कुल पीले रंगका धुंवा निकलने लगे तो उसमें लोहेकी एक लम्बी शलाका डालकर और उसे लगभग शीशीकी तली तक पहुंचाकर शीशीके भीतर ही जरा देर घुमाइए और फिर बाहर निकालकर देखिये; यदि शलाका गीली हो जाय और हरतालका रंग पीला मालूम हो तो १–२ दिन अग्नि और लगाइये और फिर शलाका डालकर देखिये; जब हरताल बिल्कुल पानीके समान हो जाय तो अग्नि लगानी बन्द कर दीजिए और

मन्त्रके स्वांग शीतल होने पर शीशीको तोड़कर उसमेंसे हरतालसत्वको निकाल लीजिए। यह सत्व अत्यन्त उज्ज्वल, भारी और कठिन होगा। इसे अत्यन्त महीन पीसकर सुरक्षित रखिये।

इसमेंसे प्रतिदिन ५ माशे सत्व रोहितक (रुहेड़े)की जड़की छालके क्राथके साथ सेवन करानेसे १४ दिनमें कुष्ठ अवश्य सूखने लगता है; भूख बढ़ जाती है, भोजन खूब पचता है और शरीर सुन्दर हो जाता है।

इसके सेवनसे अरुणकुष्ट, औदुम्बरकुष्ट, ऋक्षजिह्वकुष्ठ, कपालिककुष्ठ, पुण्डरीककुष्ट, भयङ्कर दाद, अण्डवृद्धि, विसर्प, सिध्म, विचर्चिका, विशेषतः किटिभकुष्ठ और पामा, किलासकुष्ट, रकसा और चित्रादि समस्त प्रकारके कुष्ट २ मासमें अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

इसके सेवनकालमें पीनेके लिए कठूमरकी जड़की छालका क्राथ देना चाहिए और भोजनमें पथ्य आहार, घीके साथ देना चाहिए, तथा भोजन केवल १ समय ही करना चाहिए और बैंगन, राई, सब प्रकारके शाक, अम्ल पदार्थ, दही, सुरा, आसव, मछली और मांससे परहेज करना चाहिए।

(व्यवहारिक मात्रा—२—३ रत्ती। पथ्य—चनेकी रोटी, गेहूं इत्यादि।)

(२६५४) तालकेश्वरो रसः (महान्) [१५]

(र. चि. म.; र. का. धे.। कुष्ठ.)

तालं सप्तपलं ग्राह्यं स्वेदयेत्तण्डुलाम्भसा।
दिनद्वयञ्च दुग्धेन रसादेयं पलद्वयम् ॥
एकतः क्रियते घृष्ट्वा पश्चादत्र परिक्षिपेत्।
वर्षाभूः पीतिका व्याघ्री गुडूची निम्बचित्रकौ॥
रोहितकद्वये घृष्ट्वा शोषयित्वा भिषग्वरः।
निम्बरोहितकक्वाथे तमाप्लुत्य निरोधयेत् ॥
हण्डिकायन्त्रमध्यस्थं दिनमेकं शनैरिह।
कर्त्तव्यश्च शनैरेव वह्निः शीतं तदुद्धरेत् ॥
अर्चयित्वा शिवं देवं शिवां देवीं तथा श्रियम्।
भैरवं पूजयेद्यत्नात्पुष्पधूपादितर्पणैः ॥
पश्चान्माषादिनैवेद्यैर्योगिनां प्रीतिकारिभिः।
शुल्वामृतं पुनर्दद्यात्ताप्यालं शुद्धमुत्तमम् ॥
गन्धकं पलमात्राणि श्वेताश्च कटुका तथा।
द्वयं तत्सुन्दरं दद्यादेकमेकममुं रसम् ॥
मधुना विल्वपत्रेण प्रातरुत्थाय रोगिणे।
चर्व्याश्च तण्डुलाः पश्चाद्भोज्ये दुग्धश्च भक्तकम्॥
कुष्ठञ्च स्फुटितं हन्ति निःशेषं भग्ननासिकम्।
गताङ्गुलिं गलत्पार्श्वं साध्यासाध्यं न संशयः॥
यान्यन्यान्यपि कुष्ठानि तानि सर्वाणि नाशयेत्।
पुनर्नव्योऽसौ देहं कुर्यात् कल्पस्थितं नृणाम्॥

सात पल (३५ तोले) शुद्ध वर्की हरताल लेकर उसे २—२ दिन तण्डुलजल (चावलोंके धोवन) और दूधमें स्वेदित करें फिर उसे महीन पीसकर उसमें २ पल शुद्ध पारा मिलाकर कज्जली बनावें और उसे १—१ दिन पुनर्नवा, हल्दी, कटैली, गिलोय, नीम, चीता और दो प्रकारके रोहितककी छालके क्राथ या स्वरसमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखालें, फिर उसे कपड़मिट्टी की हुई मज़बूत हाण्डीमें भरकर उसमें नीम और रोहितक (रुहेड़े)की छालका क्राथ भर दीजिए।

और उसका मुख बन्द करके १ दिन मन्दाग्नि पर पकाइए। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर शिव, पार्वती, भैरवादिकी पूजा करके हाण्डीमेंसे औषधको निकालकर उसमें १-१ पल (५-५ तोले) ताम्रभस्म, शुद्ध वछनाग, सोनामक्खीभस्म, हरतालभस्म, शुद्ध गन्धक, श्वेतापराजिता और कुटकीका महीन चूर्ण मिलाकर खरल करके रखिए।

इसमेंसे यथोचित मात्रानुसार रस, प्रातःकाल शहद और बेलपत्रके रसके साथ खाकर ऊपरसे थोड़ेसे चावल चबाने चाहियें और भोजनमें दूध-भात खाना चाहिये।

इसी प्रकार इसे प्रतिदिन सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ कि जिनमें नासा और अंगुलि इत्यादि भी गल गई हों नष्ट होकर पुनः नवीन शरीर प्राप्त हो जाता है।

(मात्रा-३ रत्ती।)

(२६५७) तालकेश्वरो रसः (वृद्धाद्य) **[१६]**

(र. चिं. म. । स्त. २; र. का. धे. । कुष्ठ.)

काकजङ्घारसैः स्वेद्यं तालं पलचतुष्टयम् ।
नैर्मल्यं यात्यनेनाऽथ कुलत्थपलषोडश-॥
जलेनाष्टावशेषेण तत्संस्वेद्यश्च तालकम् ।
लघुक्षुद्राजलेनाथ स्वेद्यं दुग्धेन तावता ॥
निर्विषं जायते तेन कूष्माण्डरसमर्दितम् ।
वेदवासरमानेन पश्चात्सूक्ष्मं विधीयते ॥
तत्पोलिकासमं कुर्यात् पश्चात्तन्दुलपोलिके ।
तदन्तस्थं ततः कुर्याद्दोलायन्त्रे विलम्बितम् ॥
दिनमेकमिदं पच्यान्महानिम्बस्य वारिणा ।
वटारोहाम्भसा पश्चात्ततः पच्याच्च काञ्जिके ॥
सौभाञ्जनस्य क्वाथेन त्रिफलावारिणा तथा ।
पुनस्तद्भृङ्गराजेन छागीदुग्धेन तद्यथा ॥
भावयेत्सेपिकादुग्धाऽशोकजाभ्यां भृशं च तत्।
माषमात्रं दिने देयं मधुना सह भक्षणे ॥
श्वित्रं कुष्ठं तथा दद्रुच्छदनं सव्रणं महत् ।
गजचर्म विचर्चीश्च नाशयेदुग्रकुष्ठकम् ॥
शुष्काङ्गं शुष्कनेत्रं च रक्ताङ्गं रक्तनासिकम् ।
अपि वर्षसहस्रस्य कष्टं कुष्ठं विनाशयेत् ॥
वैद्यवृन्दैः परित्यक्तमसाध्यं यच्च विद्यते ।
तन्नूनं नाशयत्येवासाध्यमेवापि यद्भवेत् ॥

४ पल (२० तोले) वर्की हरतालके बारीक बारीक टुकड़े करके उन्हें ४ तह किये हुवे कपड़े की पोटलीमें बांधकर उसे दोलायन्त्र विधिसे (१-१ पहर) काकजंघाके क्वाथ, १६ पल कुलथीको ८ गुने पानीमें पकाकर आठवां भाग शेष रहे हुवे क्वाथ, छोटी कटेलीके क्वाथ और दूधमें स्वेदित कीजिये। इससे वह निर्विष हो जायगी। अब इसे ४ दिन तक कुम्हेड़े (पेठे) के रसमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लें और फिर चावलोंको पानीके साथ पीसकर उनकी २ टिकिया बनाकर उनके बीचमें उपरोक्त हरतालकी टिकियाको रखकर १-१ दिन दोलायन्त्र विधिसे महानिम्ब (बकायन), और बड़के अंकुरोंके क्वाथ तथा काञ्जीमें स्वेदित करके संहजनेकी जड़के क्वाथ,

१ यदि १ दिन की अग्निमें सब रस न सूखे तो पुनः अग्नि देकर सुखा देना चाहिये।

त्रिफलाकाथ, भंगरेके स्वरस, बकरी और भेड़के दूध तथा अशोककी छालके क्वाथमें कईबार घोट-कर उर्दके बराबर गोलियां बना लीजिये।

इन्हे शहदके साथ सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ, दाद, छाजन, घाववाला कुष्ठ, गजचर्म, विचर्चिका और जिसमें शरीर और नेत्र सूख गये हो, नासिका और शरीर लाल हो गया हो तथा जिसे असाध्य समझकर वैद्योने छोड़ दिया हो वह भी अवश्य नष्ट हो जाता है।

(२६५६) तालकेश्वरो रसः (वृद्धाध:)[१७]

(र. चिं. म.। स्त. २। कुष्ठ.)

गृहकन्यारसैः शुद्धं सूतं तालं विमर्दयेत्।
द्विगुणं गन्धकं दत्त्वा कदलीकन्दवारिणा॥
काकोदुम्बरिका वह्निस्त्रिफलाराजवृक्षकः।
सोमराजी विडङ्गानि क्वाथमेषां प्रसाधयेत्॥
खदिरक्वाथतुल्यांशं वाकुची चूर्णमेव च।
पचेदेकमहोरात्रं गुटिका कर्षमात्रिका॥
श्वेतकुष्ठविनाशाय तृषिते त्रिफला जलम्।
पाययेद्रोगिणे वैद्यः श्वित्रिणे च विचक्षणः॥
त्रिरात्रादूर्ध्वतस्तस्य श्वेते स्फोटश्च जायते।
सन्देहो नात्र कर्तव्यो भिषग्भिः श्वित्रनाशने॥

शुद्ध पारद और शुद्ध हरताल १-१ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर सबकी कज्जली करके उसे १ दिन घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रसमें घोटकर उसमें उसके बराबर बावचीका चूर्ण मिलाएं और फिर कठूमर, चीता, त्रिफला, अमल-तासकी छाल, बावची और बायविड़ंग समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर आठ गुने पानीमें पकाकर अष्टावशेष काथ बनाएं, फिर यह काथ, खैरका काथ और केलेकी जड़का रस बराबर बराबर मिलाकर उसमें २४ घण्टे उपरोक्त कज्जली को मन्दाग्नि पर पकाएं और अन्तमें गाढ़ा करके १।-१। तोलेकी गोलियां बना लें।

इन गोलियोंको सेवन करनेसे तीसरे दिन श्वेत कुष्ठके स्थान पर छाला पड़ कर वह नष्ट हो जाता है।

इस औषधके सेवनकालमें प्यासमें त्रिफलाका क्वाथ देना चाहिये।

नोट—जब छाला पड़ जाय तो उसे फोड़ कर पानी निकाल दें और उस स्थान पर घावके आराम होने तक घी या कोई सादा मरहम लगाते रहें।

(व्यवहारिक मात्रा ३ माशे)

(२६५७) तालचन्द्रोदयः (रसा. सा.)

कुष्माण्डसंस्वेदनजातशुद्धि
तालं सुपत्रं परिकुट्य वस्त्रे।
चाङ्गाल्यमर्दैस्समपारदेन
बुभुक्षुणा जीर्णसुवर्णकेन॥
द्विवृत्तगन्धेन पलङ्कषायां
शुद्धेन सर्पिः पयसोरुतापि।
दिनत्रयं काचमयीं भरेत
शीशीं चतुर्थांशतले मसीं ताम्॥
प्रारम्भतीव्रं कुरु हव्यवाहं
तालादिभस्मार्थविधातृकोष्ठ्यां।
चन्द्रोदयिन्यां विमिधाय यन्त्रं
सर्वार्थकर्यामुत वालुकाख्यम्॥

दिनैकमात्रेण भवेद्विशुद्ध-
श्चन्द्रोदयो नाम च तालपूर्वः ।
कुष्ठादिरोगेष्वतुलप्रभावः
स्वास्थ्यप्रचारक्रमसत्स्वभावः ॥

हरताल शुद्धिके क्रमानुसार तबकिया हर-हरतालको तीन बार पेठेमें शुद्ध करके सुखाकर कूटकर कपरछन करलें; और उसमें स्वर्णजीर्ण बुभुक्षित पारद १ भाग (हरतालके बराबर) और घी, दूधादिमें शुद्ध किया हुवा गन्धक २ भाग मिलाकर कज्जली बनाएं। इसे कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें २ सेर कज्जली आती हो उसमें केवल आधा सेर ही भरनी चाहिये। अब शीशीके मुखपर खिड़िया मिट्टिका डाट लगाकर, उसे वालुकायन्त्रमें रखकर तालभसकरी या 'सर्वार्थकरी' भट्टीपर रखकर १ दिन प्रारम्भसे ही तीव्राग्नि दें और यन्त्रके स्वांगशीतल होने पर शीशीको तोड़कर उसके गलेमें लगे हुवे 'ताल चन्द्रोदय'को निकाल लें।

इसे १-२ रत्तीकी मात्रानुसार उचितानुपानके साथ सेवन करनेसे कुष्ठादि रोगोंमें यह अपना अद्भुत प्रभाव दिखलाता है।

(२६५८) तालभस्मप्रकारः (रसायनसार)

अश्वत्थचिञ्चाऽरुणपुष्पकाणां
जीर्णास्त्वचोऽग्नौ परिदह्य कुर्यात् ।
भस्मानुकन्याद्रवभावितं तत्
पुटेत् त्रिरस्यार्थमनल्पवह्नौ ॥

अर्थ—पीपल, इमली, पलाश इन तीनोंमेंसे किसीकी गली सड़ी मुरदार छाल (वक्कल) वृक्षसे उतार उतार कर संग्रह कर ले फिर उसको खूब सुखाकर अग्निमें जलाकर भस्म करले। इस भस्ममें घृतकुमारी (ग्वारपाठा)के रसकी भावना देकर तीन बार गजपुटमें फूंककर इस भस्मके बीचमें हरितालकी टिकियाको रखकर पांच दिन अग्नि देनेसे उसकी भस्म हो जाती है।

(२६५९) तालभस्मप्रयोगः (र. चं. रसा.)

हिङ्गुलं हरितालं कपिलापयसि पेषयेत् ।
अष्टयामेन पर्यन्तं गुटिकां कारयेद् बुधः ॥
छायाशुष्कं तथा कृत्वा मृत्तिकासम्पुटे पचेत्।
अग्निगजपुटं दद्याद् श्वेतभस्म प्रजायते ॥
ताम्रपात्रे विन्दुमात्रं सुवर्णं च प्रजायते ।
ताम्बूले विन्दुमात्रं स्याद्भक्षितं शृणु तत्फलम्॥
क्षुधागजसमो भूत्वा नारीशतरतिं तथा ।
नाशनं सर्वरोगाणां कथ्यते धन्वन्तरिः ॥

शुद्ध हिंगुल और शुद्ध हरिताल समान भाग लेकर दोनोंको कपिला गायके दूधमें ८ पहर घोटकर उसकी गोली बना लीजिए और छायामें सुखाकर मिट्टीके सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए तो श्वेत भस्म बन जायगी।

इस भस्मसे ताम्रका सोना बन जाता है और इसे १ रत्ती मात्रानुसार पानमें रखकर खानेसे समस्त रोग नष्ट होकर भूख और कामशक्तिकी वृद्धि होती है।

(२६६०) तालभस्मविधिः

(वृ. नि. र. । त्वग्दो.)

अपामार्गस्य भस्मन्तु घटे निक्षिप्य यत्नतः ।
तन्मध्ये तालकं क्षिप्त्वा पचेद्द्वादशयामकम्॥

धवलं जायते भस्म सर्वकुष्ठनिवारणम्।
सर्ववातप्रशमनं सर्वरोगनिवारणम् ॥

एक मजबूत और कपड़मिट्टी किये हुवे घड़ेमें शुद्ध हरतालकी टिकियाको अपामार्ग (चिरचिटे)की सफ़ेद राखके बीचमें रखकर घड़ेको अग्निपर चढ़ाकर १२ पहर अग्नि देनेसे श्वेत रंगकी हरताल भस्म बन जाती है।

इसके सेवनसे समस्त कुष्ठ, समस्त वातरोग और अन्य अनेक रोग नष्ट होते हैं।

(मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–मधु.।)

नोट—राख छनी हुई होनी चाहिए और दबा दबाकर भरनी चाहिए। हरतालकी टिकिया घृतकुमारी (ग्वारपाठा)के रसमें घोटकर बनानी चाहिए।

(२६६१) तालभस्मविधिः

(र. रा. सुं.। हरि. प्र.; वृ. यो. त.। त. १२०)

सम्यक्काञ्जिकदेवपुष्पकवराक्वाथे तु दोलाभिधे।
यन्त्रे तालकशोधनं निगदितं तत्तालकं भावयेत्॥
वारान्विंशति पिप्पलोत्थसलिलैः
खल्वे निधायाऽऽतपे।
बद्ध्वा गोलमथास्य पिप्पलजयाभूत्यर्धपूर्णे
न्यसेत् ॥
भाण्डे तत्र पुनर्विभूतिभरणं कृत्वा शरावं मुखे।
दत्त्वाग्नौ विपचेद्गजाह्वयपुटे वन्यैः सहस्रोपलैः॥
एवं याम चतुष्टयेन विशदं स्याद्भस्म सर्वगदे।
योग्यं कुष्ठखुडोपदंशपवने नाडीव्रणे शस्यते॥

वर्की हरतालको १-१ दिन दोलायन्त्र विधिसे काञ्जी, लौंगके क्वाथ और त्रिफला क्वाथमें स्वेदित करके उसे धूपमें २० बार पीपल वृक्षकी छालके क्वाथकी भावना देकर घोटकर गोला बनाइए और उसे अच्छी तरह सुखाकर कपड़मिट्टी की हुई हण्डीमें आधे तक पीपलकी छालकी कपरछन राख खूब दबा दबाकर हाण्डीके गले तक भर दें, तत्पश्चात् उसके मुखको शरावसे ढककर उसपर कपरौटी करके सुखाकर गजपुटके गढ़ेमें १ हजार बन उपलों (अरने उपलों)में फूंक दें। यह अग्नि लगभग ४ पहरमें शान्त हो जायगी, तब हण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे सावधानी पूर्वक राखको निकालकर हरतालकी टिकिया को निकाल लें। यह सफेद रंगकी हरतालभस्म होगी।

(मात्रा–२ रत्ती। अनुपान–मधु।)

(२६६२) तालभस्म विधिः

(वैद्यामृत। वा. र, वृ. नि. र.। वातव्या.)

तालं रसं तुवरिकां नयनेन्दुबाण–
भागैर्विशुद्धवसुजातरसे विमर्द्य।
दत्त्वा शरावयुगले प्रविधाय मुद्रां
दद्याद्गजाह्वपुटमस्य भवेत्सुभस्म॥
दृष्टाकृतिं प्रकृतिमप्यखिलामवस्थां
दृष्ट्वा पुनश्च बहुधा बहुधा विचार्य।
दद्याच्च तन्दुलमितां हरितालमात्रां
विद्या मया यतिवरादियमापि यत्नात्॥

शुद्ध हरताल २ भाग, शुद्ध पारद १ भाग और फिटकरी ५ भाग लेकर तीनोंको एकत्र खरल करें और फिर सफेद पुनर्नवाके रसमें घोटकर टिकिया बनावें। इस टिकियाको अच्छी तरह

सुखाकर शराव सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए तो उत्तम भस्म बन जायगी।

इसमेंसे १ चावलभर भस्म रोगीकी प्रकृति और अवस्था इत्यादिका विचार करके यथोचित अनुपानके साथ देनेसे वातज रोग नष्ट होते हैं।

(२६६३) तालभस्मविधिः

(र. रा. सुं. । हरताल प्र.)

तालं विचूर्णयेत्सूक्ष्मं मर्द्यं नागार्जुनीद्रवैः ।
सहदेव्या बलायाथ मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥
तत्तालरोटकं कृत्वा ततच्छायायां विशोषयेत् ।
हण्डिकायन्त्रमध्यस्थं पलाशभस्मकोपरि ॥
पाच्यं च वालुकायन्त्रे विहितं चण्ड वह्निना ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सर्वयोगेषु योजयेत् ॥

शुद्ध हरतालको बारीक पीसकर २-२ रोज़ तक दूधी, सहदेवी और खरैटीके रसमें घोटकर उसकी रोटीके समान टिकिया बनाकर छायामें सुखा लीजिए। तत्पश्चात् कपड़मिट्टी की हुई एक हण्डीमें थोड़ी दूर तक बालूरेत भरकर उस पर ४-५ अंगुल पलाश (ढाक) की सफेद राख दबा दबाकर भर दीजिए और उस पर उपरोक्त टिकिया रखकर उसके ऊपर भी ४-५ अंगुल ढाककी राख दाबदाबकर भर दीजिए तथा हाण्डी के शेष भागमें बालूरेत भरकर उसे भट्टीपर चढ़ाकर (८ पहर तक) खूब तेज़ अग्नि पर पकाइए। पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे सावधानी पूर्वक हरताल भस्मको निकाल लीजिए।

नोट—यदि हरताल भस्म बिल्कुल सफेद न हुई हो तो पुनः इसी प्रकार अग्नि देकर सफेद होने तक पकाना चाहिए।

(२६६४) तालभस्मविधिः

(र. रा. सुं.; रसें. सा. सं.; धन्वं. । वातरक्त)

हरितालं पलं तथा कर्षं विषस्य च ।
श्वेताङ्कोठरसेनैव द्वयमेकत्र खल्लयेत् ॥
पलाशभस्मद्विपलं निधाय स्थालिकोपरि ।
तद्भस्मोपरितालस्य गोलकं स्थापयेत्सुधीः ॥
तस्योपरि ह्यपामार्गभस्म दद्यात्पलत्रयम् ।
स्थालीमुखे शरावञ्च दद्याद्यत्नेन लेपयेत् ॥
लेपयित्वा ततश्चुल्ल्यामहोरात्रं पचेद्भिषक् ।
ततस्तु जायते भस्म शुद्धकर्पूरसन्निभम् ॥
गुञ्जात्रयं ततो भक्ष्यमनुपानं विशेषतः ।
वातरक्तञ्च कुष्ठञ्च दद्रुविस्फोटकापचीम् ॥
विचर्चिकां चर्मदलं वातरक्तं च शोणितम् ।
रक्तपित्तं तथा शोथं गलित्कुष्ठं विनाशयेत् ॥
हलीमकं तथाशूलमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥

१ पल (५ तोले) शुद्ध हरताल और १ कर्ष (१। तोला) शुद्ध बछनागको एकत्र मिलाकर सफेद अङ्कोलके रसमें अच्छी तरह घोटकर टिकिया बनाकर सुखा लें, फिर कपड़मिट्टी की हुई एक हण्डीमें नींचे १० तोले ढाककी कपड़छन राख दबा दबाकर भरदें और उसपर वह टिकिया रखकर उसके ऊपर भी इसी प्रकार १५ तोले अपामार्ग (चिरचिटे) की राख भर दे। तत्पश्चात् हाण्डीके मुखपर शराव ढककर उसकी सन्धिको गुड़ चूनेसे अच्छी तरह बन्द करके उसपर ३-४ कपरौटी करके सुखाकर उसे चूल्हे पर चढाकर २४ घण्टे पकाइए। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे हरताल भस्मको निकाल

लीजिए। इसका रंग शुद्ध कर्पूरके समान सफेद होगा।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार यथोचित अनुपानके साथ सेवन करानेसे वातरक्त, कुष्ठ, दाह, विस्फोटक, अपची (गण्डमालाभेद), विचर्चिका, चर्मदल, रक्तपित्त, शोथ, गलित्कुष्ट, हलीमक, शूल, अग्निमांद्य और अरुचिका नाश होता है।

(२६६५) तालभस्मविधिः

(र. र. स. । पू. खं. अ. ३)

मधुतुल्ये घनीभूते कषाये ब्रह्ममूलजे ।
त्रिवारं तालकं भाव्यं पिष्ट्वा मूत्रेऽथ माहिषे॥
उपलैर्दशभिर्देयं पुटं रुध्वाऽथ पेषयेत् ।
एवं द्वादशधा पाच्यं शुद्धं योगेषु योजयेत्॥†

ढाककी जड़की छालके क्वाथको शहदके समान गाढ़ा करके उससे ३ बार हरतालको भावना दीजिए, तत्पश्चात् ३ बार भैंसके मूत्रमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके दश वन उपलों (अरने उपलों)की अग्निमें फूंक दीजिए। इसी प्रकार १२ पुट देनेसे उत्तम हरतालभस्म बन जाती है।

---

† तालभस्मपरीक्षा—

तालं मृतं तदा ज्ञेयं वह्निस्थं धूम्रवर्जितम् ।
सधूमं न मृतं प्राहुर्वृद्धवैद्या इति स्थितिः ॥
(आ. वे. प्र. । अ. ५)

हरतालभस्मको अग्नि पर डालनेसे धूम्र निकले तो कच्ची और धूम्र न निकले तो मृत समझनी चाहिए।

(२६६६) तालमन्त्रेश्वरो रसः

(र. का. धे. । कुष्ठा.)

सितामध्वाज्यगोक्षीरैः स्तालकं मर्दयेद्दिनम् ।
तद्गोलं काञ्जिकैः पश्चाद्दोलायन्त्रेण पाचयेत् ॥
मर्द्यं सेहुण्डदुग्धेन चन्द्रिकाक्षपणाऽवधिम् ।
तच्छुष्कं मर्दयेत्तावद्यावत्स्यात्कृष्णवर्णकम् ॥
व्योषं हयारिमूलञ्च प्रत्येकं दशमांशतः ।
सर्वं तद्वाकुचीतैले दिनं खल्वे विमर्दयेत् ॥
तालमन्त्रेश्वरो नाम द्विगुञ्जो मण्डलान्तकृत्।
वाकुची देवकाष्ठञ्च पातालाऽगरुटङ्कणम् ॥
लेह्यमेरण्डतैलेन त्रिनिष्कमनुपानकम् ॥

शुद्ध हरतालको १-१ दिन मिश्रीके पानी, शहद, घी और गायके दूधमें घोटकर गोला बनाइए और उसे सुखाकर चार तह किये हुवे कपड़ेमें बांधकर १ दिन दोलायन्त्रविधिसे काञ्जीमें पकाइए। तत्पश्चात् उसे सेहुण्ड (सेंड-थोहर)के दूधमें इतना घोटिये कि उसकी चमक जाती रहे, इसके पश्चात् उसे सुखाकर इतनी देर और घोटिये कि वह काला हो जाय। अब उसमें त्रिकुटा और कनेरकी जड़का महीन चूर्ण प्रत्येक उसका दसवां भाग मिलाकर १ दिन बाबचीके तेलमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनाकर रखिये।

इनमेंसे प्रतिदिन १-१ गोली खाकर ऊपरसे बाबची, देवदारु, पातालगरुड़ी अगर और सुहागे की खीलका समान भाग मिश्रित १ तोला चूर्ण अरण्डीके तैलमें मिलाकर चाटनेसे मण्डलकुष्ठ नष्ट होता है।

तालमारणम्

(यो. र. । प्र. भा.; वृ. यो. त. । त. ४१; भा. प्र. । पूर्व.खं.; आ. वे. प्र. । अ. ७: र. रा. सुं. । हरिता. प्र.)

तालकेश्वर रस सं. २६४५ देखिये ।

(२६६७) तालमारणम्

(वै. रह. । कुष्ठ.; यो. त. । त. ६२)

जम्बीरद्रवमध्ये तु प्रक्षाल्य नटमण्डनम् ।
दशांशं टङ्कणं दत्त्वा खण्डशः परिमेलयेत् ॥
चतुर्गुणे गाढपटे निबध्य प्रहरद्वयम् ।
दोलायन्त्रेण संस्वेद्य प्रदीपप्रमितेऽनले ॥
चूर्णतोये काञ्जिके च कूष्माण्डाम्बुनि तैलके ।
त्रिफलाम्बुनि तत्पश्चात् क्षालयित्वाम्लवारिभिः
ततः पलाशत्वग्वारिपिष्टं घर्मे प्रशोषयेत् ।
तं गोलकं शरावाभ्यां सम्पुटीकृत्य यत्नतः ॥
खाते गजाख्ये पक्त्वा तु स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
अजादुग्धैः पुनः पिष्ट्वा शोषयेद्गोलकीकृतम् ॥
आढकं भस्म पालाशं हण्डिकायां दृढं क्षिपेत् ।
सम्यक् चूर्णस्य कुडवं दत्त्वा सम्यग्विचक्षणः ॥
स्थापयेद्गोलकं तत्र पुनश्चूर्णं च भस्म च ।
यथा धूमो बहिर्याति न तथा मुद्रयेच्च ताम् ॥
द्वात्रिंशत्प्रहरान्वह्निं भक्तवद्दापयेत्तथा ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सञ्चूर्ण्य नटमण्डनम् ॥
हिमं कुन्दप्रभाकाशं निर्धूमं कृष्णवर्त्मनि ।
रक्तिकास्य प्रदातव्या पुराणगुडयोगतः ॥
पथ्यं च चणकस्योक्तं षष्टिकाकोद्रवौदनम् ।
एकविंशद्दिनं यावल्लवणाम्लौ विवर्जयेत् ॥
अष्टादशानि कुष्ठानि वातरक्तं तथोद्धतम् ।
फिरङ्गदेशजं रोगं दुस्तरं च व्यपोहति ॥

हरतालके बारीक बारीक टुकड़े करके उन्हें चार तह किये हुवे कपड़ेमें बांधकर दोलायन्त्र विधिसे १ पहर जम्बीरी नींबूके रसमें पकाएं। तत्पश्चात् उसमें उसका दसवां भाग सुहागेके बारीक टुकड़े मिलाकर उक्त विधिसे २-२ पहर चूनेके पानी, काञ्जी, पेठे (कुहड़े) के रस, तैल और त्रिफलाके क्वाथमें दीपकी शिखाके समान अग्निपर स्वेदित करें।

अब उसे काञ्जीमें धोकर ढाककी छालके स्वरस या क्वाथमें घोटकर गोला बनाकर धूपमें सुखाएं और उसे शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दें। पुटके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे हरतालको निकालकर उसे बकरीके दूधमें घोटकर गोला बनाकर सुखा लें और कपड़मिट्टी की हुई एक मजबूत हाण्डीमें ढाक (पलाश)की ४ सेर राख खूब दाब दाबकर भरकर उस पर पावसेर पत्थरका चूना दबा दबाकर बिछाकर उसके ऊपर उपरोक्त गोला रखकर उसपर पुनः पावसेर चूना और उसके ऊपर ढाककी राख दाब दाबकर भर दीजिए। अब हाण्डीके मुखपर शराव ढककर उसके जोड़को गुड़चूने आदिसे इस प्रकार बन्द कर दीजिये कि जिससे धुवां न निकल सके और ऊपरसे ३-४ कपरौटी करके सुखाकर ३२ पहर तक भात पकानेके समान अग्नि दीजिये। इसके पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे हरतालके गोलेको निकालकर पीसकर रखिये। यह बरफके समान सफेद रंगकी भस्म होगी, और अग्निपर डालनेसे धूम नहीं देगी।

इसमेंसे १ रत्ती भस्म पुराने गुड़में मिलाकर

खिलानेसे अठारह प्रकारके कुष्ठ, भयङ्कर वातरक्त और दुस्साध्य आतशक (फिरङ्ग रोग) नष्ट होता है।

पथ्य—चना, कोदों और साठी चावलोंका भात।

अपथ्य—२१ दिन तक लवण और अम्ल पदार्थ नहीं खाने चाहियें।

(२६६८) तालमारणम् (सिद्धमते)
(आ. वे. प्र. । अ. ५)

तवकाख्यं हरितालं महिषीमूत्रे, घृतकुमारीरसे, चूर्णतोये, शरपुङ्खारसे, कूष्माण्डरसे, निम्बूरसे च पृथक् पृथक् पट्प्रहरं संशोध्यमिति शुद्धिः।

अथ मर्दनं—कूष्माण्डरसेन दिनानि २१, कागदीनिम्बूरसेन दिनानि २१, धत्तूररसेन दिनानि २१, सहदेवीरसेन दिनानि २१, पलाशरसेन दिनानि २१, बदरीमूलरसेन दिनानि २१, आर्द्रकरसेन दिनानि २१, गोभीरसेन दिनानि २१, छिक्किणीरसेन दिनानि २१, हुलहुलरसेन दिनानि २१, नागार्जुनरसेन दिनानि २१, भृङ्गराजरसेन दिनानि २१, एरण्डमूलरसेन दिनानि २१, ब्रह्मदण्डीरसेन दिनानि २१, श्वेतलशुनरसेन दिनानि २१, पलाण्डुरसेन दिनानि २१, स्वर्णवल्लीरसेन दिनानि २१, काकमाचीरसेन दिनानि २१, बलारसेन दिनानि २१, वज्रीदुग्धेन दिनानि २१, अर्कदुग्धेन दिनानि २१। एवं दिनसंख्या ४४१; एतैर्वर्ष एको १ मासौ द्वौ २, दिनानि २१ भवन्ति। एतत्कष्टं कर्तुमशक्तश्चेत्तेन दिन शब्दो भावनापरतया बोध्यः।

ततश्चक्रिकां कृत्वा तां घर्मशुष्कां कारयेत्, ततोऽतिदृढां हण्डीं मृत्कर्पटैरेकत्रिंशतिवारं लेपयेत्, ततस्तस्यां हण्डिकायां पिप्पलस्य विभूतिं पूरयेदङ्गुष्ठपरिमितं यावत्, तदुपरि तां चक्रिकां दृढां संस्थाप्य तदुपरि पुनस्तद्विभूत्याऽतिदृढं पूरयेदाकण्ठं, ततो मुद्रां कृत्वा क्रमविवर्धितमग्निं दद्यात्प्रहराणां चतुःषष्टिं; अष्टौ दिनानीति यावत्। सिद्धं भस्म भवति। तद्यत्नतः संरक्षयेत्। शिवस्य महतीं पूजां कृत्वा, देवगोब्राह्मणवैद्यान् पूजयित्वा, तस्य मात्रां तण्डुलपरिमितां, गुञ्जापरिमितां वा भक्षयेत्, यथा रोगमनुपानानि पथ्यं लवणाम्लतीक्ष्णतैलवर्ज्यं प्रोक्तवत् ज्ञेयम्। अस्य फलश्रुतिः त्रिसप्ताहान्मण्डलैकेन वा श्वेतप्रभृत्यष्टादश कुष्ठानि, यावन्तो रक्तविकारा, त्रयोदश सन्निपाता अपस्मारादयो यावन्तः पापरोगाः, भगन्दरनाडीव्रण प्रभृतयो महाव्रणाः, प्रशीर्ण, वातरक्तं, उपदंशफिरङ्गाद्या लिङ्गरोगाः, श्लीपदग्रन्थिप्रभृतयः सर्वाङ्गशोफाः, सूतिकावातरोगप्रभृतयः, सर्वशीतवातविकाराः, श्वासकासाद्या वातविकाराः, दुष्टपीनसप्रभृतयः प्रतिश्यायाः, अर्शादयोऽष्टौ महारोगाः, वह्निमान्द्यजा ग्रहणीप्रभृतयः, मधुमेहाद्याः सर्वे प्रमेहाः, मेदोवृद्ध्यर्बुद गण्डमालाद्याः कठिनविकाराः, आमवातगृध्रस्याद्या मूढविकाराः, राजयक्ष्माद्याः शोषाः,

किञ्चाशीतिसंख्यावातरोगाः, अनुपानभेदेन चत्वारिंशत्पित्तरोगाः, विंशतिसंख्याका कफजा रोगाः, दशरक्तजारोगाः, शीघ्रं प्रणश्यन्ति; जराव्याधिविनाशश्च भवति; दिव्यदेहः कान्तिधृतिमान् सत्त्वसंयुतः कामिनीकामदर्पघ्नरतार्क्ष्यदृष्टिः शूरो वदान्यश्च भवतीति सिद्धमते हरितालमारणम्। सिद्धाद्यैस्तु हरितालश्चतुर्विधःप्रोक्तः-वुगदादी १, गोदन्ती २, तबकी ३, पिण्डतालश्च ४। एते पिण्डाख्यात् क्रमेण श्रेष्ठतरा ज्ञेयाः।

शुद्धि—तबकी हरतालको भैंसके मूत्र, घृतकुमारी (ग्वारपाठा)के रस, चूनेके पानी, सरफोंकाके रस, पेठे (कुम्हेड़े)के रस और नींबूके रसमें पृथक् पृथक् दोलायन्त्र विधिसे ६-६ पहर स्वेदित करनेसे वह शुद्ध हो जाती है।

मर्दनम्—पेठा, कागजी नींबू, धतूरा, सहदेवी, पलाश (ढाक)की छाल, वेरीकी जडकी छाल, अद्रक, गोभी, नकछिकनी, हुलहुल, नागार्जुनी (दूधी), भंगरा, अरण्डमूल, ब्रह्मदण्डी, सफेद ल्हसन, प्याज, स्वर्णवल्ली, काकमाची (मकोय), और बला (खरैंटी); इनमेंसे प्रत्येकका रस या क्वाथ और आक तथा सेहुण्ड (सेंड-थोहर)के दूधमें २१-२१ दिन घोटें। इस प्रकार कुल औषधोंमें घोटनेमें ४४१ दिन अर्थात् १ वर्ष, २ मास और २१ दिन लगते हैं। यदि इतना कष्ट सहन करना असम्भव हो तो हरेक चीज़की २१-२१ भावना दे लेनी चाहियें। (धूपमें भावना देनेसे एक एक दिनमें २-३ भावना तक दी जा सकती है।)

इस प्रकार मर्दन करनेके पश्चात् हरतालकी टिकिया बनाकर धूपमें सुखाना चाहिए और फिर एक मज़बूत हाण्डीपर २१ कपरौटी करके सुखाकर उसमें पीपल वृक्षकी राख एक अंगुल ऊंचाई तक भर दें और उसपर वह टिकिया रखकर हाण्डीके गले तक वही राख खूब दबा कर भरदें। तत्पश्चात् हाण्डीके मुखपर शराव ढककर उसके जोड़को गुड़ चूनेसे बन्द करके ८ दिन तक क्रमशः मृदु, मध्यम और तीव्राग्नि पर पकाएं। पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे भस्मको निकालकर सुरक्षित रक्खें।

शिव, देव, गो, ब्राह्मण और वैद्यकी पूजा करके इसे १ चावलसे १ रत्ती मात्रा तक यथोचित अनुपानोंके साथ सेवन करना चाहिए। इसके सेवनकालमें लवण, अम्ल और तीखे पदार्थ तथा तैलसे परहेज़ करना चाहिए।

इसके सेवनसे १ मण्डल या ३ सप्ताहमें श्वित्रादि अठारह प्रकारके कुष्ठ, समस्त रक्तविकार, १३ प्रकारके सन्निपात, अपस्मार, भगन्दर और नासूरादि सब प्रकारके महाव्रण (घाव), वातरक्त, उपदंश इत्यादि लिङ्गरोग, समस्त शीत और वायुके विकार, श्वास, खांसी, वातव्याधि, दुष्ट पीनस, प्रतिश्याय, अर्श (बवासीर) इत्यादि आठ महारोग, अग्निमांद्य, संग्रहणी, मधुमेहादि समस्त प्रकारके प्रमेह, मेदोवृद्धि, गण्डमाला, अर्बुद, आमवात, भ्रमसी, राजयक्ष्मा, हर प्रकारका शोथ, अस्सी प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग, २० प्रकारके कफरोग और १० प्रकारके रक्तज

रोग तथा जरा (वृद्धावस्था) नष्ट होकर शरीर कान्तिमान हो जाता है; एवं बल, बुद्धि, दृष्टि और कामशक्ति इत्यादिकी वृद्धि होती है।

हरताल ४ प्रकारकी मानी गई है—१ बुगदादी, २ गोदन्ती, ३ तबकी और ४ पिण्ड-हरताल। इनमें बुगदादी हरताल सबसे अच्छी होती है, गोदन्ती में उससे कम गुण होते हैं, तबकी गोदन्ती से भी कम गुणवाली और पिण्ड हरताल सबसे निकृष्ट होती है।

(२६६९) तालवटिका (र. चं.। रसायन.)

अश्वगन्धाहरीतालं हिङ्गुलं विजयायुतम्।
गोदुग्धेन समं पेष्यं वटिकां वल्लमात्रकाम्॥
ताम्बूले भक्षयेत्प्रातश्चत्वारिंशद्दिने तथा।
मत्तमातङ्गवीर्यस्तु वायुतुल्यपराक्रमः॥
गृध्रदृष्टिर्भवेत्तस्य वराहश्रवणोपमः।
जायते भास्करीकान्तिर्मकरध्वजवल्लभा॥

असगन्ध, हरतालभस्म, शुद्ध हिङ्गुल (शिंगरफ) और भांग समान भाग लेकर गोदुग्धमें घोटकर ३—३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए। इन्हें पानमें रखकर निरन्तर ४० दिन तक नित्य प्रति सेवन करनेसे हाथीके समान वीर्य, वायुके समान पराक्रम, गृध्रके समान दृष्टि, शूकरके समान श्रवणशक्ति और सूर्यके समान कान्ति प्राप्त होती है।

(२६७०) तालशुद्धिः (रसायनसार)

कटाह्यां स्थापिते श्वेते कूष्माण्डत्रितयेधृतम्।
तालं मध्यग्निना स्विन्नं शुद्धिं याति समासतः॥
सुधापानीयमध्ये वा दोलायन्त्रेऽवलम्बितम्।
प्रहरद्वितयं पाच्यं तालं तेन विशुद्ध्यति॥
तैले तक्रे गवां मूत्रे काञ्जिके च कुलत्थजे।
यामे यामे पचेत्तेन शुद्धिं याति विशेषतः॥

श्वेत कूष्माण्ड (पेठा—भतुआ)के मध्यमें छटाँकसे पावभर तक तबकिया हरतालको रखकर और उसी पेठेके टुकड़ेसे छिद्रको बन्द करके उस पेठेको लोहेकी कड़ाहीमें रखकर भट्टीपर कड़ाहीको चढादे और मध्याग्नि (न मन्दी न तेज माफिक की अग्नि) दे। जब पेठा जलते जलते हरितालके समीप तक कड़ाहीका पेंदा आ लगे तब उस कड़ाहीको जमीनपर उतार दे। इस प्रकार तीन बार पेठेमें स्वेदन करनेसे तबकिया हरिताल शुद्ध हो जाती है। परन्तु यह स्मरण रहे कि पेठेके जिस छिद्रद्वारा हरितालको घुसाकर रखा है उस छिद्रको कढाहीके पेंदेकी तरफ न रखे, किन्तु ऊपर आकाशकी तरफ रखे, नहीं तो उसी छिद्र द्वारा सम्पूर्ण पेठेका पानी कड़ाहीमें गिर जायगा तो हरितालका ठीक स्वेदन नहीं होगा। यह संक्षेपसे हरितालकी पहिली शुद्धि हुई। अथवा एक सेर पत्थरके बिना बुझे हुए चूनेमें चार सेर पानी डालकर दोलायन्त्र विधिसे हरतालकी पोटरीको लटकाकर एक एक पहर तक मन्दाग्निसे तीन बार स्वेदन करनेसे भी तबकिया हरतालकी शुद्धि हो जाती है। अथवा तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी और कुलथीका काढा इन पाँचों चीजोंमें दोलायन्त्र विधिसे एक एक पहर पकानेसे तबकिया हरितालकी उत्तम शुद्धि होती है।

(रसायनसारसे उद्धृत)

(२६७१) तालशोधनम् [१]

(र. र. स. । पू. ख.; र. प्र. सु. । अ. ६)

स्विन्नं कूष्माण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुध्यति ॥

हरितालको दोलायन्त्र विधिसे पेठेके रस, तिलक्षार[1]के पानी वा चूनेके पानीमे पकानेसे वह शुद्ध हो जाती है।

(२६७२) तालशोधनम् [२]

(शा. ध. सं. । म. अ. ११, यो. र. । प्र. भा.; वृ. यो. त. । त. ४१; भा. प्र. । पू. खं.; आ. वे. प्र. । अ. ५; र. चिं. म. ।)

तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं काञ्जिके क्षिपेत्।
दोलायन्त्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजद्रवैः ॥
तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजले।
चूर्णोदके च यामैकं पक्वं शुध्यति तालकम् ॥

वर्की हरतालके चावलोंके समान बारीक टुकड़े करके दोलायन्त्रविधिसे १-१ पहर काञ्जी, पेठेके रस, तिलके तैल, त्रिफलाके काथ और चूनेके पानीमें स्वेदन करनेसे वह शुद्ध हो जाती है।

(२६७३) तालसत्वपातनम् [१]

(र. प्र. सु. । अ. ६)

कुलत्थकाथसौभाग्यमाहिषाज्यमधुप्लुतम्।
खल्वे क्षिप्त्वा च तत्तालं मर्दयेदेकवासरम् ॥
निस्तुषीकृत्य चैरण्डबीजान्येव तु मर्दयेत्।
पलाष्टमानं तालस्य चाष्टमांशन्तु कारयेत् ॥
बीजान्येरण्डजान्येव क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत्।
यवाभा गुटिका कार्या शुष्कां कूप्यां निधाय च॥
वालुकायन्त्रमध्ये तु वह्निं द्वादशयामकम्।
स्वाङ्गशीतं समुत्तार्य ऊर्ध्वगं सत्वमाहरेत् ॥
पाषाणधातुसत्वानां प्रकाराः सन्ति कोटिशः।
यानि कार्यकराण्येव सत्वानि कथितानि वै॥

शुद्ध वर्की हरतालमें सुहागा, भैंसका घी और शहद[2] मिलाकर उसे १ दिन कुलथीके काथमें घोटे। फिर ८ पल यह हरताल और १ पल (५ तोले) छिलके रहित अरण्डीके बीजोंकी पिट्ठीको एकत्र मिलाकर अच्छी तरह घोटकर जौके समान वत्तियां बनाले; और उन्हें सुखाकर[3] कपड़-मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरदें। अब इसे वालुकायन्त्रमें रखकर बारह पहरकी अग्नि दें और शीशीके स्वांगशीतल होने पर उसके ऊपरवाले भागमें (गलेके आसपास) लगे हुवे हरताल सत्वको निकालकर सुरक्षित रक्खे।

-- धातु और पाषाण (संखिया आदि)के सत्व निकालनेकी सैकडो विधियां हैं परन्तु हमने केवल कार्योपयोगी विधियोंका ही वर्णन किया है।

(२६७४) तालसत्वम् [२]

(र. चिं. म. । स्त. ५)

गोमूत्रे भावयेत्तालं दिनैकं शेरमात्रकम्।
चूर्णयित्वा प्रमाणेन तन्दुलानां न चाधिकम्॥

---

१ रसप्रकाश सुधाकरके मतानुसार यवक्षार अथवा चाहे जो क्षार ले सकते हैं।

२ सुहागा हरतालके बराबर और घृत तथा शहद इतना मिलाना चाहिए कि जिससे हरताल गोली बनने योग्य हो जाय।

३ छायामें सुखाना चाहिए। धूपमें सूखना कठिन है।

हण्डिकायां निवेश्याथ काञ्जिकं तत्र दीयते।
वस्त्रेणाच्छादयेदेतद्यथा चूर्णं न लिप्यते ॥
तस्यार्द्धं दीयते तालं चूर्णं तालोपरि क्षिपेत्।
उपरिष्टात्पुनर्दिग्धं तेन चूर्णेन तालकम् ॥
पालिकामुपरि प्राज्ञः पुनर्दत्वा मृदापि तम्।
यावद्यामं ततो वह्निं कुर्याच्चुल्ल्याः समन्ततः॥
पुनस्तेन प्रकारेण द्विवेलं तालकं तथा।
कदलीकन्दतोयेन पुनस्तालं च पेषयेत् ॥
यामेकं पुनस्तालं शोधयित्वा च तत्तथा।
पुनर्यामं पुनर्याममेवं वेलात्रयं बुधः ॥
कुरुते मर्दनं शोषं तण्डुलीयजलेन च।
तथा कृत्वा त्रियामं तद्गण्डदूर्वारसैस्तथा ॥
कूष्माण्डकजलैरेवं त्रिफलाया जलैस्तथा।
तथैवं मर्द्यते काकमाचीजातद्रवैः पुनः ॥
सेहुण्डपयसा दद्याद्गुडसौभाग्यपीतिकाः।
ततो हि चौषधं ह्येतन्निरुध्यात्काचकूपके ॥
यामद्वादशपर्यन्तमग्निं कुर्यादहर्निशम्।
स्वाङ्गशीतं समुत्तार्य पूर्वोक्तं कर्मकारयेत् ॥
रम्भाकन्दादिकं कर्म कृतं यत्प्रथमं किल।
तथैव च पुनः कुर्यात्षड्यामं वह्निदीपनम् ॥
एवं तालकसत्वं स्यादधस्तिष्ठति निश्चितम्।
खोटकाभं गुरुतरं सोज्ज्वलं तारसन्निभम् ॥
वह्निसंयोगतश्चापि न समुड्डीयते किल।
विकल्पो नात्र कर्त्तव्यो व्यासवाक्यमिदं यथा॥

१ सेर हरतालके चावल जैसे बारीक टुकड़े करके उन्हें १ दिन गोमूत्रमें भिगोइये, फिर कपड़-मिट्टी की हुई हाण्डीमें पहिले थोड़ासा बे बुझा पत्थरका चूना डालकर उस पर काञ्जी छिड़क दीजिए, और फिर चूनेपर एक कपड़ा ढककर उसपर हरताल फैला दीजिए। काञ्जी इतनी अधिक न डालनी चाहिए कि चूना अधिक गीला होकर कपड़ेको लग जाय। इसके पश्चात् उक्त हरतालपर पुनः कपड़ा ढककर उसपर चूना डाल-कर उसके ऊपर थोड़ी काञ्जी छिड़क दीजिए और फिर हाण्डीके मुखपर शराव ढककर कपड-मिट्टी कर दीजिए और सुखाकर चूल्हेपर चढ़ाकर उसके नीचे १ पहर अग्नि जलाइए। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर उसमेसे हरतालको निकालकर १ दिन गोमूत्रमें भिगोकर पुनः उप-रोक्त विधिसे पकाइये; इसी प्रकार कुल तीन बार पकाकर हरतालको निकाल लीजिए और १ पहर तक केलेकी जड़के रसमें घोटिये। इसी प्रकार केलेकी जड़के रस, चौलाईके रस, बडी दूबके रस, पेठेके रस, त्रिफला काथ और मकोयके रसमें ३—३ बार घोटिये, हर वार १—१ पहर घोटकर सुखा लेना चाहिए।

अब इस हरतालमें (उसका आठवां भाग) थोहर (सेंड)का दूध, गुड़, सुहागा और हल्दी मिलाकर आतशी शीशीमें भरकर (वालुकायन्त्रमें) निरन्तर १२ पहर तक पकाइए। जब हाण्डी स्वांगशीत हो जाय तो उसमेंसे हरतालको निकाल-कर केलेकी जड़ आदि समस्त औषधोंके रसमें पूर्वोक्त विधिसे घोटकर तथा सेंडका दूध इत्यादि मिलाकर ६ पहर वालुकायन्त्रमें पकाइए, और स्वांग शीतल होनेपर उसकी तलीमें पड़े हुवे हर-तालसत्वको निकालकर सुरक्षित रखिए। यह सत्व भारी, उज्ज्वल और चांदीके समान होगा तथा

अग्निपर रखनेसे भी स्थिर रहेगा। इस कथनको व्यासवाक्यके समान सत्य समझना चाहिए।

(२६७५) तालसत्वविधिः [३]

(र. चिं. स्तब. ५)

अतसीतैलसंभृष्टं तालकं हण्डिकान्तरे।
धृत्वा काचघटे पश्चान्मुद्रयेत्तन्मुखं भृशम्॥
वह्नियोगोऽथ कर्त्तव्यो द्वियामे सत्त्वनिर्गमः।
अनया क्रियते रीत्या चोत्तमं सत्त्वपातनम्॥
दृढं च सैन्धवं दत्त्वा युज्यते वह्निसङ्गमे।
सर्वकार्यकरं सम्यक् सत्वं निर्दोषमुत्तमम्॥

शुद्ध हरतालको अलसीके तैलमें भूनकर आतशी शीशीमें भरकर उसका मुख बन्द कर दे, फिर उस शीशीको कपडमिट्टी की हुई मज़बूत हाण्डीमें रखकर उसमें चारों ओर हाण्डीके गले तक, दबा दबाकर पीसा हुवा सेंधा नमक भर दीजिए, तत्पश्चात् हाण्डीके मुखको शरावसे बन्द करके उस पर कपड़मिट्टी करके दो पहर तक अग्नि लगाइए। इस क्रियासे उत्तम सत्त्व निकल आता है।

(२६७६) तालसत्वविधिः [४]

(रसें. चिं. । अ. ७; आ. वे. प्र. । अ. ५)

जैपालसत्त्ववातारिवीजमिश्रं च तालकम्।
कुप्पीस्थं वालुकायन्त्रे सत्वं मुञ्चति यामतः॥

जमालगोटेका सत, अरण्डीके बीज और हरताल समान भाग लेकर एकत्र खरल करके, आतशी शीशीमें भरकर १ पहर तक वालुकायन्त्रमें पकानेसे हरतालका सत्व निकल आता है।

(२६७७) तालसत्वविधिः [५]

(र. चिं. । स्तबक ५)

योग्यभूमिसमुद्भूतं क्षारिकालवणं नयेत्।
शेरद्वयप्रमाणेन शेरमेकं च तालकम्॥
एवं गोमूत्रमध्यस्थमनेनापि द्वयं ततः।
खल्वस्थं मर्दयेद्गाढं दिनानि त्रीणि तालकम्॥
दश पञ्च च भागाः स्युष्टङ्कणास्त्रिंशतिः पुनः।
तिलतैलस्य दातव्या तदर्धं हस्तिकर्णजम्॥
एकतो मर्द्यते तापे पश्चाच्छुष्कं तदिष्यते।
काचकूपिगतं कार्यो वह्निर्यामचतुष्टयम्॥
मृदुर्धूमो-यदा याति श्वेतधूमो यदाऽऽगतः।
मुद्रयित्वा मुखे चाथ वह्निर्यामाष्टकं ददेत्॥
एवं निष्पद्यते सत्वं तालकस्य विशुद्धिमत्।
कमण्डलुप्रमाणेऽथ गोमूत्रस्यान्तरे क्षिपेत्॥
पुनस्तद्विपचेन्मूत्रं यावन्मूत्रक्षयो भवेत्।
तत उत्तार्यते सत्वं शीतं नीत्वा पुनश्च तत्॥
अथ गन्धस्य खण्डानि त्रिंशदंशमितानि च।
समं सत्त्वेन कार्याणि मिश्रितानि सटङ्कणम्॥
कृत्वाऽथ ध्मापयेद्गाढं ततः सत्वं हि जायते।
खोटरूपमिदं सत्वमक्षयं दोषवर्जितम्॥
शुक्लद्युतिनिभं पश्चाच्छ्रेष्ठपित्तलमानयेत्।
एकादशविभागं हि भागैकोस्य च खोटतः॥
ध्मातव्यं सकलं मूषे रूप्यं किञ्चित्पुनः क्षिपेत्।
एवमुत्पद्यते रूप्यं चन्द्रकान्तिसमद्युति॥

उत्तम भूमिमें उत्पन्न रेह मिट्टी २ शेर तथा शुद्ध तबकी हरताल १ सेर लेकर दोनोंको तीन दिन तक गोमूत्रमें घोटिए। तत्पश्चात् उसमें १५ सेर सुहागा, ३० सेर तिलका तेल और १५ सेर

हरितकर्णपलाशका तैल मिलाकर धूपमें घुटवाइए। जब घोटते घोटते सूख जाय तो उसे आतशी शीशीमें भरकर (वालुकायन्त्रमें) ४ पहरकी अग्नि दीजिए। जब चार पहर पश्चात् शीशीमेंसे हलका हलका धुंवां निकलकर सफेद धुंवां निकलने लगे तब शीशीके मुखको खिड़ियामिट्टीके डाटसे बन्द कर दीजिए और आठ पहरकी अग्नि और दीजिए एवं हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर शीशीमेंसे सत्वको निकाल लीजिए।

इस सत्वको १ कमण्डलु[1] गोमूत्रमें डालकर समस्त मूत्र जल जाने तक पकाइए और. फिर उसे ठण्डा करके उसमें ३० सेर गन्धकके टुकड़े और सत्वकी बराबर सुहागा मिलाकर बड़े मूषामें भरकर तीव्राग्नि पर धमाइए तो विशुद्ध सत्व निकल आयेगा।

१ भाग यह सत्व और ३० भाग उत्तम पीतलको एकत्र मिलाकर मूषामें रखकर तीव्राग्नि पर धमाइए और जब पीतल पिघल जाय तो उसमें थोड़ीसी चांदी डाल दीजिए। इस क्रियासे समस्त पीतलकी उत्तम, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल चांदी बन जायगी।

(२६७८) तालेश्वररसः [१] (र.र. । कास)

रसपादं मृतं तारं शिलाताले चतुर्गुणे।
वासागोक्षुरसत्वाभ्यां मर्दयेत्प्रहरद्वयम्॥
द्वियामं वालुकायन्त्रे स्वेद्यमादाय चूर्णयेत्।
गुञ्जाद्वयं निहन्त्याशु कासं श्वासं क्षतोद्भवम्॥
रसस्तालेश्वरो नाम्ना अनुपानं च कथ्यते।
वचा कुष्ठहरिद्राभिः सैन्धवं टङ्कणं विषम्॥
सपाठालाङ्गलीव्योषं चाक्षं प्रत्येकभागकम्।
भावितं भृङ्गराजेन दिनैकं तं च भक्षयेत्॥
माषं तालेश्वरो नाम्ना हिक्कावैस्वर्यकासजित्॥

शुद्ध पारा १ भाग, चांदी भस्म चौथाई भाग और शुद्ध हरिताल तथा शुद्ध मैनसिल ४-४ भाग लेकर मैनसिल और हरतालका महीन चूर्ण करें और फिर सब चीज़ोंको एकत्र मिलाकर घोटे। तत्पश्चात् उसे २-२ पहर बासा और गोखरुके रसमें घोटकर गोला बनाएं और उसे सम्पुटमें बन्द करके उस सम्पुटको वालुकायन्त्रके बीचमें रखकर २ पहर तक स्वेदन करें। तत्पश्चात् यन्त्रके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रक्खें।

बच, कूठ, हल्दी, सेंधा नमक, सुहागेकी खील, शुद्ध मीठा तेलिया, पाठा, कलिहारीकी जड और त्रिकुटेका चूर्ण १-१ कर्ष लेकर एकत्र घोटकर सबको १ दिन भंगरेके रसमें घोटें। १ माशा यह अनुपान और २ रत्ती उपरोक्त रस एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे क्षतज खांसी, श्वास, हिचकी, स्वरभङ्ग (गला बैठना) और खांसीका नाश होता है।

(२६७९) तालेश्वररसः [२]

(र. र स. । उ खं. अ. २०)

हरिताल पले द्वे द्वे द्वंक्षणे रसगन्धयोः।
कुक्कुटीपत्रसारेण पिष्टं ताम्रमयोरजः॥
पञ्चशो मर्दितं धात्रीकुक्कुटीरसमाक्षिकैः।
वर्षाभूचित्रपत्राढ्यं मूषागर्भे निवेशितम्॥

[1] १ गोमूत्र सत्वसे ४ गुना लेना चाहिए।

पाचितं भूधरे संस्थं पर्णखण्डेन भक्षयेत् ।
हिङ्गुजम्बीरवातारितैलैः पवनपीडिते ॥
माधूकसारसिन्धूत्थवचाव्योषैर्हृतौजसि ।
शोफे भक्ताम्बुना कुष्ठे घृतेन पयसाऽथवा ॥
धारोष्णेनार्द्रकस्यापि कामलायां रसेन च ।
रसस्तालेश्वराख्योयं सर्वकुष्ठहरः परः ॥

शुद्ध वर्की हरताल १० तोले तथा पारा, गन्धक, सेमलके पत्तोंके रसमें घुटी हुई ताम्रभस्म और लोहभस्म १।-१। तोला लेकर सबको एकत्र खरल करके आमला और सेंभलके पत्तोंके रस तथा शहदकी ५-५ भावना देकर गोला बना लीजिए और फिर उसे एक मूषाके अन्दर पुनर्नवा और चीतेके पत्तोंके बीचमें रखकर भूधर पुटमें पकाइए।

इसे पानमें रखकर खाना चाहिए।

अनुपान—वातव्याधिमें-हींग, जम्बीरी नींबूका रस और अरण्डीका तैल।

ओजके क्षय होनेमें-महुवेका स्वरस, सेंधा, वच और त्रिकुटाका चूर्ण।

सूजनमें-चावलोंका पानी।

कुष्ठमें-घृत अथवा धारोष्ण दूध।

कामलामें-अद्रकका रस।

यह रस समस्त प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है।

(मात्रा—१-२ रत्ती।)

(२६८०) तालेश्वररसः [३]

(र. रा. सुं. । ज्वरा.)

सम्मर्द्य रम्भासलिलेन तालं
चूर्णेन तुल्यं दिवसत्रयेण ।
शुद्धं सखण्डं विनिहन्ति मुद्गमानं
पयोन्नाशि नयेत तापम् ॥

शुद्ध हरताल और पत्थरका चूना समान भाग लेकर दोनोंको १ दिन केलेके रसमें घोटकर मूंगके दानेके समान गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली खांडके साथ खिलाने और दूधभात पर रखनेसे ३ दिनमें ज्वर नष्ट हो जाता है।

(यह गोलियां शीतज्वर-म्लेरियाके लिए उत्तम प्रतीत होती है।

(२६८१) तालकेश्वरोरसः [४]

(रसे. चिं. । अ ९)

सम्यक्पत्रीकृतं तालं कूष्माण्डसलिले शनैः ।
चूर्णोदके पृथक् तैले दोलायन्त्रे दिनं दिनम्॥
शोधयित्वा तदम्लेन दध्नालोड्य विमर्दयेत् ।
खल्वे लौहमये वापि गाढं यामद्वयं पुनः ॥
पुनर्नवाया क्षारेण संयोज्य घनतां नयेत् ।
दधि किञ्चित् पुनर्दत्त्वा घनीभूतं निवेशयेत्॥
स्थाल्यां दृढतरायां च क्षारे पौनर्णवे पुनः ।
रोटिकासदृशं कृत्वा शरावेण पिधापयेत् ॥
पचेत्तावत् भवेत्क्षारं शङ्खकुन्देन्दु सन्निभम् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पुनरग्नौ परीक्षयेत् ॥
क्षिप्तमग्नौ च निर्धूमं दृश्यते न विलीयते ।
तदा सिद्धिं विजानीयात् योजयेत् सर्वकर्मसु॥
एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ।
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रपाचितम्॥
अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः ।
हन्यात् कुष्ठान्यशेषाणि वातशोणितनाशनः ॥

वातमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गालितं तथा ।
कुष्ठरोगं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः ॥
दुष्टव्रणं च वीसर्पं त्वग्दोषानाशु नाशयेत् ।
वातमण्डलकुष्ठानामौषधं नास्त्यतः परम् ॥
दृष्टयोगशतासाध्यरोगवारणकेसरी ॥

वर्की हरतालके पत्र अलग अलग करके उन्हें कपड़ेमें बांधकर दोलायन्त्र विधिसे १–१ दिन कुम्हेड़े (पेठे) के रस, चूनेके पानी और तैलमें स्वेदित करें, फिर उन्हें काञ्जीसे धोकर लोहेके खरलमें डालकर दो पहर तक दहीके साथ घोटें, फिर उसमें थोड़ासा (आठवां भाग) पुनर्नवाका क्षार मिलाकर थोड़ा दही डालकर घोटें। जब गाढा हो जाय तो उसकी टिकिया बनाकर सुखाकर उसे कपड़मिट्टी की हुई हाण्डीमें रखकर उसके ऊपर पुनर्नवाकी राख हाण्डीके गले तक भर दें और उसके मुंहको शरावसे ढककर भट्टीपर चढ़ाकर अग्नि दें। जब राख शंखके समान सफेद हो जाय तो अग्नि देनी बन्द कर दें और स्वांग शीतल होने पर हाण्डीमेंसे हरतालको निकाल लें। इसे अग्निपर डालनेसे यदी धुवां निकले तो पुनः उक्त विधिसे अग्नि देनी चाहिए।

यह हरताल भस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग और ताम्रभस्म २ भाग लेकर एकत्र घोटकर आतशी शीशीमें भरकर वालुकायन्त्रमें (४ पहर) पकाइए, और यन्त्रके स्वांग शीतल होने पर औषधको निकालकर सुरक्षित रखिए।

यह 'तालेश्वर रस' समस्त प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, भयङ्कर, गलित और स्फुटित कुष्ठ, मण्डल, दुष्टव्रण, विसर्प और त्वग्दोषोंका नाश करता है।

वातज मण्डल कुष्ठके लिए इससे अच्छी अन्य एक भी औषध नहीं है।

(२६८२) तालेश्वरो रसः [५] (र. मं.। कु.)

सूतो द्वौ वल्गुजा त्रीणि कणाविश्वा त्रिकं त्रिकम्।
सार्द्धकं ब्रह्मपुत्रस्य मरिचस्य चतुष्टयम् ॥
एकैकं निम्बधत्तूरवीजतो गन्धकात् त्रयम् ।
जातीटङ्कणतालानां भागा दश दश स्मृताः॥
युक्त्या सर्वं विमर्द्याथामृतास्वरसभाविता ।
सप्तधा शोषयित्वाथ धत्तूरस्यैव दापयेत् ॥
सम्मर्द्य गोलकं सान्द्रं धत्तूरैर्वेष्टयेद्दलैः ।
गोमये वेष्टयेत्तच्च कुक्कुटाख्यपुटे पचेत् ॥
रसः कुष्ठहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियैः ॥

शुद्ध पारा २ भाग, बावची, पीपल और सोंठ ३–३ भाग; ब्रह्मपुत्र विष (अभावमें बछनाग विष) १॥ भाग, काली मिर्च ४ भाग; नीमके बीज (निबौली) और धतूरेके बीज १–१ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, जायफल, सुहागा और शुद्ध हरताल १०–१० भाग लेकर, प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर उसमें अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर गिलोय और धतूरेके स्वरसकी ७–७ भावना दीजिए। हर वार रसमें घोटकर सुखा लेना चाहिए। अन्तमें गोला बनाकर सुखाकर उसपर धतूरेके पत्ते लपेटकर उसके ऊपर (२–३ अङ्गुल मोटा) गोवरका लेप कर दीजिए और सुखाकर कुक्कुटपुटमें फूंककर स्वांग शीतल होनेपर निकाल कर सुरक्षित रखिए।

इसके सेवनसे समस्त प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं। (मात्रा—२-३ रत्ती । अनुपान-बावची, खैर या नीमकी छालका क्वाथ)

(२६८३) तालेश्वरो रसः [६] (र.मं.। कु.)

द्वादशं कर्षतालं च कूष्माण्डस्वरसे क्षिपेत् ।
स्वेदयेद्दोलकायन्त्रे यावत्तोयं न विद्यते ॥
पश्चात्तं मेलयेत्खल्वे सूतं कर्षद्वयं क्षिपेत् ।
तन्मद्यं बहुवाराणि नीलाभा कज्जली भवेत् ॥
स्नुहीक्षीरं रविक्षीरं छागीक्षीरं च वाकुची ।
पातालगरुडाङ्कोलचक्रमर्दकहिज्जलम् ॥
कुमारीपत्रभल्लातत्रिफला तु पुनर्नवा ।
निम्बत्वचं महौषध्या पुटं देयं त्रयं त्रयम् ॥
षट्कर्षं चूर्णकलिकां हण्डिकायान्तु धारयेत् ।
चतुर्थांशमधः स्थाप्यं मध्ये स्थाप्यं तु तालकम् ॥
पश्चादुपरि चूर्णं तत्सर्वं स्थाप्यं प्रयत्नतः ।
हण्डिकाखण्डपर्यन्तं मज्जानं कन्यकोद्भवम् ॥
ततो मुद्रां दृढं कुर्यादूर्ध्वास्यं रोधितं किल ।
चतुर्यामं तु दीपाग्निं विद्याद्यामं हठाग्निना ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य भवेत्तालेश्वरो रसः ।
पथ्यं मुद्गं तु शाल्यन्नं कुष्ठानष्टादशाञ्जयेत् ॥

१५ तोले वर्की हरतालको दोलायन्त्रविधिसे पेठेके स्वरसमें मन्दाग्नि पर पकाइए, जब समस्त रस सूख जाय तो हरतालको निकालकर उसमें २॥ तोले शुद्ध पारा मिलाकर इतना घोटिए कि नीलवर्ण कज्जली हो जाय। तत्पश्चात् उसे सेहुण्ड (सेंड-थोहर)के दूध, आकके दूध, बकरीके दूध; बावची, पातालगरुड़ी, अङ्कोल, पंवाड़, समुद्रफल, घृतकुमारी (ग्वारपाठा), भिलावा, त्रिफला, पुनर्नवा, नीमकी छाल और सोंठमें से जिनका स्वरस मिल सके उनके स्वरस और बाकी औषधोंके क्वाथकी पृथक् पृथक् ३-३ भावना देकर गोला बनाकर सुखा लिजिए। तत्पश्चात् ७॥ तोला कली चूना लेकर उसमेंसे चौथाई, कपड़मिट्टी की हुई हाण्डीमें रखकर उस पर हरतालका गोला रख दीजिए और उसके ऊपर बाकी चूना रखकर हाण्डीके गले तक ग्वारपाठाका गूदा भर दीजिए और उसके मुखपर शराव ढककर जोड़को गुड़ चूनेसे बन्द करके उसपर कपड़मिट्टी कर दीजिए और उसे सुखाकर चार प्रहर तक दीपकी लोके समान मन्दाग्नि पर तथा एक पहर तीव्राग्नि पर पकाइए और हाण्डीके स्वांग शीतल होनेपर उसमें से गोलेको निकालकर पीसकर रखिए।

यह 'तालेश्वर रस' १८ प्रकारके कुष्ठोंका नाश करता है। पथ्य-मूंगकी दाल भात।

(मात्रा—१-२ रत्ती। अनुपान त्रिफला क्वाथ।)

(२६८४) तालकेश्वरो रसः [७]
(वृ. यो. त.। त. ११८)

तालकं मर्दयेत्सम्यक् ताम्बूलीपर्णवारिणा ।
त्रिदिनं मस्तुना मद्यं दिनैकं[१] पयसा रवेः ॥
तद्गोलं भाण्डमध्यस्थं किंशुकक्षारसंयुतम् ।
त्रिदिनं पाचयेत्सम्यक् मन्दमध्यहठाग्निना ॥
तालभस्म समाकृष्य तण्डुलद्वयमात्रकम् ।
आकल्लं जातिपत्रञ्च लवङ्गं जातिकाफलम् ॥

---
१ त्रिदिनमिति पाठान्तरम् ।

संयोज्य सर्पिषा जग्ध्वा सर्ववातकुलान्तकः ।
वातरक्तं तथा कुष्ठं ग्रहणीश्च भगन्दरम् ॥
सर्वव्रणान्निहन्त्याशु नाम्ना तालेश्वरो रसः ॥

शुद्ध वर्की हरतालको ३ दिन ताम्बूल (पान)के रसमें और १-१ दिन दहीका तोड़ और आकके दूधमें घोटकर गोला बनाइए और उसे सुखाकर कपड़मिट्टी की हुई हाण्डीमें ढाककी राखके बीचमें रखकर, हाण्डीके मुखको शरावसे बन्द करके ३ दिन तक क्रमशः मृदु, मध्यम और तीव्राग्नि पर पकाइए। तत्पश्चात् हाण्डीके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे हरताल भस्मको निकाल लीजिए। इसीका नाम 'तालेश्वर रस' है।

अकरकरा, जावित्री, लौंग और जायफलका समान भाग चूर्ण एकत्र मिलाकर खरल करें। (१॥ माषा) यह चूर्ण और २ चावल उपरोक्त भस्म एकत्र मिलाकर घीमें मिलाकर चाटनेसे समस्त वातव्याधि, वातरक्त, कुष्ठ, संग्रहणी, भगन्दर और सब प्रकारके व्रण नष्ट होते हैं।

नोट—ढाककी भस्म हाण्डीमें दबा दबाकर भरनी चाहिए और आधी हाण्डी भस्मसे भर जाने पर उसपर हरतालका गोला रखकर उसके ऊपर हाण्डीके गले तक भस्म भर देनी चाहिए।

(२६८५) तालेश्वरो रसः (लघु) [८]

(र. चि. म. । स्त. २; र. का. धे. । कुष्ठा.)

पलान्यादाय चत्वारि हरितालस्य चित्रकम् ।
अभ्रकं गन्धकं शुद्धं गिरिजश्च पलद्वयद् ॥
हण्डिकान्तरगतं पूर्वं चित्रकं धारयेत्सुधीः ।
पश्चाच्च तालकं दद्याद्गन्धकं तस्य चोपरि ॥
अभ्रकश्च पुनर्दद्यात्पश्चाद्दद्याच्छिलाजतु ।
गव्यं मूत्रं पुनर्दद्याद् गव्यं क्षीरं पुनः क्षिपेत् ॥
प्रवेश्य मूत्रं दुग्धश्च शनैर्वह्नौ च तद्रसे ।
कर्षमात्राश्च हेमाह्वां यवक्षारश्च तत्समम् ॥
स्वर्जीक्षारं तथा दद्यात्क्षारं धत्तूरजन्तथा ।
पुनश्चूर्णं सितं दद्यात्कुष्माण्डक्षारमेव च ॥
सर्वमेकत्र सम्पाच्य गतज्वालमधूसकम् ।
तप्ताङ्गारनिभं यावत्तावज्ज्वालाश्च दापयेत् ॥
स्वाङ्गशीतं समाकृष्य दद्यात्तन्पञ्चरक्तिकम् ।
कुष्ठं वमियुतं स्रावि पतिताङ्गश्च दुस्तरम् ॥
गतश्रोत्राङ्गुलिप्रायं विधुरं विह्वलस्वरम् ।
यथा तथा विधं भूयः कृमिलं कुथितं घनम् ॥
नाशयत्यचिरेणायं लघुतालेश्वरो रसः ॥

कपड़मिट्टी की हुई मज़बूत हाण्डीमें २ पल (१० तोले) चीतेका चूर्ण बिछाकर उसपर ४ पल शुद्ध तबकी हरताल रक्खें, उसपर २ पल गन्धक, गन्धकके ऊपर २ पल अभ्रक और सबके ऊपर २ पल शिलाजीत रखकर हाण्डीमें १२-१२ पल गोमूत्र और गोदुग्ध डालकर मन्दाग्निपर पकाएं, जब मूत्र और दूध सूख जाय तो उसमें क्रमशः १।-१। तो. सत्यानाशीकी जड़ (चोक)के चूर्ण, यवक्षार, सज्जीखार (सोडा), धतूरेके क्षार, पत्थरका चूना और पेठेके क्षारकी तह जमाकर रक्खें और अग्नि तेज़ कर दें। जब हाण्डीमेंसे ज्वाला निकलकर शान्त हो जाय, तथा धूम्र निकलना भी बन्द हो जाय और हाण्डी अंगारके समान लाल हो जाय तो अग्नि देना बन्द कर दें और हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषध को निकालकर पीसकर रक्खें।

इसमेंसे ५ रत्ती मात्रानुसार यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे जिसमें वमन होती हो, पीप वहता हो, अंगुली और कान इत्यादि अंग गल गये हों, कीड़े पड़ गये हों और वदवू आती हो वह कुष्ठ भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

(२६८६) तिक्तत्रयरसः (र.रा.सु. । कास.)

भस्मताम्राभ्रतीक्ष्णानां कासमर्दवरारसैः ।
मुनिजैर्वेतसाम्लेन दिनं मर्द्यश्च पीलितम् ॥
माषार्द्धं पित्तकासार्त्तो भक्षेत्तिक्तत्रयो रसः ॥

ताम्र भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म और अभ्रक भस्म समान भाग लेकर सबको १-१ दिन कसौंदी, त्रिफला, अगस्ति (अगथिया) और अम्लवेतके रसमें घोटकर आधे आधे माशेकी गोलियां बना लीजिए। इनके सेवनसे पित्तज खांसी नष्ट होती है।

(२६८७) तीक्ष्णमुखरसः [१]
(रसे. मङ्ग. । अ. १)

तीक्ष्णं शुल्वसुरायसं च गगनं
तापीरुहं तालकम् ।
गौदन्तं रसराजमिश्रितसमं
धृत्वा च खल्वे भिषक् ॥
द्राक्षागारमृदा पयोजविसिनी
कन्दान्विता चामृता ।
घृष्ट्वा यष्टिरसैः सिता मधुयुता
गद्याणमात्रा वटी ॥
पित्तं हन्ति च पित्तसम्भवगदान्
सर्वांश्च पित्तज्वराः ।
कासश्वासगलामयान्क्षयतृषा-
दाहश्च शोषं भृशम् ॥
प्रज्ञापारमितैर्निशीथसमये
स्वप्ने प्रसादीकृतो ।
नाम्ना तीक्ष्णमुखो रसेन्द्रप्रवरः
श्रीनागबोधोदितः ॥

तीक्ष्ण लोहभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, हरताल भस्म, गोदन्ती भस्म और पारद (रससिन्दूर) समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके मुनक्का, तालावकी मिट्टी, कमल, मृणाल (कमलनाल), कमलकन्द, गिलोय, मुलैठी, मिश्री और शहदमेंसे जिनका स्वरस मिल सके उनके स्वरसके साथ, जो क्वाथ करने योग्य हों उनके क्वाथके साथ और मिट्टी तथा मिश्रीको ८ गुने पानीमें घोलकर उसके साथ १-१ दिन घोटकर ६-६ माशेकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे पित्त, पित्तज समस्त रोग, पित्तज्वर, खांसी, श्वास, गलरोग, क्षय, तृष्णा, दाह और शोषका नाश होता है।

(व्यवहारिक मात्रा-२ रत्ती।)

(२६८८) तीक्ष्णमुखरसः [२]
(र. र. स. । उ. खं. अ. १५)

रसेन्द्रहेमार्कविडाऽऽलगोल-
सुरायसं लोहमलाभ्रगन्धाः ।
ताप्यं च कन्यारसमर्दितोयं
पक्वःपुटे तीक्ष्णमुखोऽर्शसां स्यात् ॥

पारद, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, विडलवण, हरताल, रोहिषतृण, लोहभस्म, मण्डूर भस्म, अभ्रक

भस्म, शुद्ध गन्धक और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान भाग लेकर सबको घृतकुमारीके रसमें घोटकर गोला बनाकर, सुखाकर, सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए।

इसके सेवनसे अर्श (ववासीर) नष्ट होती है। (मात्रा—२—३ रत्ती।)

(२६८९) तीक्ष्णमुखरसः [३]

(र. र. स. । उ. खं. । अ. १५)

नागं पारदगन्धकं त्रिलवणं वार्यर्कजं मेलये-
देकैकं च पलं पलं त्रयमतः पञ्चक्रमान्मर्दयेत्।
सर्वं तद्दिवसत्रयं तदनुतद्दत्वा पुटं भावनाः
कुर्यात्सत्रिफलाग्निवेतसरसैः पञ्चाधिकविंशतिः॥
पञ्चैतत् क्रमशस्ततो गुडभवैर्दत्तोस्य वल्लो जलै-
र्हन्त्यर्शांस्यखिलानि सूरणघृतैस्तस्यान्न-
मस्मिन्हितम्।
अर्केशः परिवर्ज्यतामिति मुनिः
श्रीवासुदेवोऽवद-
त्कूष्माण्डीफलमाषपायसमति-
व्यायाममर्कातपम् ॥

सीसा भस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १—१ पल (५—५ तोले) और तीनों लवण (सेंधा, सञ्चल और समुद्र लवण) ५ पल लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य औषधियोंका बारीक चूर्ण मिलाकर ३ दिन तक आकके पत्तोंके रसमें घोटकर, गोला बनाकर सुखाकर उसे सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। तत्पश्चात् उसे हर्र, बहेड़ा, आमला, चीता और अम्लवेतके क्वाथ तथा गुड़के पानीकी पृथक् पृथक् ५—५ भावना देकर ३—३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे समस्त प्रकारके अर्श (ववासीर) नष्ट होते हैं।

पथ्य—सूरणका शाक और घृतयुक्त आहार।

अपथ्य—पेठा, उर्द, खीर, अत्यधिक परिश्रम और धूप।

(२६९०) तीक्ष्णमुखरसः [४]

(र. रा. सुं.; र. र. धन्वं.; र. सा. सं.; वृ. नि. र. । अर्श.)

मृतसूताभ्रलोहार्कतीक्ष्णं मुण्डं च गन्धकम्।
मण्डूरञ्च समं ताप्यं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ॥
अन्धमूषागतं पाच्यं त्रिदिनं तुषवह्निना।
चूर्णितं सितयामासं खादेत्पित्तार्शसाञ्जयेत् ॥
रसस्तीक्ष्णमुखोनाम ह्यनुयोज्यं मधुत्रयम् ॥

पारद भस्म (अभावमें रससिन्दूर), अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, मुण्डलोह भस्म, शुद्ध गन्धक, मण्डूर भस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान भाग लेकर सबको एक दिन घृतकुमारीके रसमें घोटें और अन्धमूषामें बन्द करके तीन दिन तक तुषाग्निमें पकाएं, तत्पश्चात् उसके स्वांग शीतल होने पर औषधको निकालकर पीसकर रक्खें।

इसे घी, शहद और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे पित्तज अर्श (ववासीर) नष्ट होती है।

(२६९१) तुत्थनिर्माणविधिः (रसायनसार)

ताम्रस्यचूर्णं कुरु घर्षणीत-
स्तत्तुल्यमस्मिन्नरसादरञ्च।

सम्मेल्यनिम्बूकजलञ्च तुल्यं
मासेन तुत्थं स्वयमेव सिद्ध्येत् ॥

तांबेका बारीक अर्थात् रेतीसे रिता हुवा चूर्ण और नौसादर बराबर बराबर लेकर एकत्र मिलाकर कूटें और फिर उसमें दोनोके बराबर नींबूका रस मिलाकर मिट्टीके पात्रमें भरकर रख दें। एक मास पश्चात् तूतिया तैयार हो जायगा।

नोट—यदि नींबूका रस १ मास पश्चात् भी शेष रह जाय तो उसे धूपमें सुखा लेना चाहिए।

(२६९२) तुत्थभस्मविधिः

(र. र. स.। पू. ख. अ. २; आ. वे. प्र.। अ. १२)

लकुचद्रावगन्धाश्मटङ्कणेन समन्वितम् ।
निरुध्य मूषिकामध्ये म्रियते कौक्कुटैः पुटैः ॥

शुद्ध तूतियाको समान भाग गन्धक और सुहागेके साथ मिलाकर लकुच (बड़ल)के रसमें घोटकर कुक्कुट पुटमें फूंकनेसे उसकी भस्म बन जाती है।

(२६९३) तुत्थमारणम् (रसायनसार)

सूतगन्धककज्जल्यां समं तुत्थं विमर्दयेत् ।
सूतार्द्धं टङ्कणं दत्त्वा भावयेल्लकुचद्रवैः ॥
भृत्वा कूप्यां पचेद् वह्नौ तीव्रे सूतं समुद्धरेत्।
गले सिन्दूरनामा स्यात् तुत्थभस्माऽऽप्यधस्तले॥

अर्थ—पावभर शुद्ध पारद, पावभर शुद्ध गन्धक, दोनोंकी कज्जली करके उसमें आधा सेर तूतिया डालकर घोटें। बाद आध पाव शुद्ध सुहागा डालकर बड़हरके काथकी भावना देकर सुखा ले।

इस कज्जलीको शीशीमें भरकर प्रथमसे ही तीव्राग्नि दे। दो दिनके बाद अग्नि लगाना बन्द करे। स्वांग शीतल होने पर शीशीके गले पर सिन्दूर रस मिलेगा और तलभागमें तूतियाकी भस्म मिलेगी। इसके गुण ताम्रभस्मके तुल्य हैं।

(२६९४) तुत्थमुद्रिका

(र. र. सं.। पू. खं. अ. २)

सत्वमेतत्समादाय खरभूनागसत्वयुक् ।
तन्मुद्रिका कृतस्पर्शा शूलघ्नी तत्क्षणाद्भवेत् ॥
चराचरं विषं भूतडाकिनीदृग्गतं जयेत् ।
मुद्रिकेयं विधातव्या दृष्टप्रत्ययकारिका ॥
रामवत्सुरसेनानी मुद्रितेपि तथाक्षरम् ।
हिमालयोत्तरे पार्श्वे अश्वकर्णो महाद्रुमः ॥
तत्रशूलं समुत्पन्नं तत्रैव विलयं गतम् ।
मन्त्रेणानेन मुद्राम्भो निपीतं सप्तमन्त्रितम् ॥
सर्वशूलहरं प्रोक्तमिति भालुकिभाषितम् ।
अनया मुद्रया तप्ततैलमग्नौ सुनिश्चितम् ॥
लेपितं हन्ति वेगेन शूलं यत्र क्वचिद्भवेत् ।
सद्यः सूतिकरं नार्याः सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥

तूतियाका सत्व और खर भूनागसत्वे समान भाग लेकर दोनोंको एकत्र करके अंगूठी बनवा लीजिए।

इस अंगूठीको छूनेसे ही सब प्रकारके शूल, विष और भूतविकार नष्ट हो जाते हैं।

इस अंगूठीको सात बार पानीमें धोकर पीनेसे भी शूल नष्ट हो जाता है। इसे थोड़ी देर तैलमें पकाकर इस तैलकी मालीशसे हर प्रकारका शूल तुरन्त नष्ट हो जाता है।

---

१ रसरत्नसमुच्चय पूर्वखण्ड अध्याय ५ देखिए।

(इसका पानी पीनेसे) बच्चेका जन्म आसानीसे हो जाता है और (इसके पानीसे आंखें धोनेसे) नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

(२६९५) तुत्थविकारशान्तिः

(अनुपा. त. । को. २)

जम्बीरस्वरसं वापि लाजा वारिसमन्विताः।
लामज्जकजलं वापि पिबेत्तुत्थकशान्तये ॥

तूतियाके विकारोंको शान्त करनेके लिए जम्बीरी नींबूका स्वरस, धानकी खीलोंको पानीमें घोटकर, वह पानी अथवा लामज्जक (खसभेद) का पानी पीना चाहिए।

(२६९६) तुत्थशोधनम् [१]

(शा. सं.। म. ख. अ. ११; आ. वे. प्र.। अ.१२; भा. प्र.; र. सा. सं.। धातु प्र.; रसें. चिं. म.। अ. ७)

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारिककपोतयोः।
दशांशं टङ्कणं दत्वा पचेन्मृदुपुटे ततः ॥
पुटं दध्नः पुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थ विशुद्धये ॥

तूतियामें उसका दसवां भाग सुहागा मिलाकर उसे १-१ दिन बिल्ली और कबूतरकी विष्टा के साथ खरल करके लघुपुटमें फूंक दीजिए, फिर उसे दही और शहदमें पृथक् पृथक् घोटकर एक एक पुट दीजिए। इस क्रियासे तूतिया शुद्ध हो जाता है।

(२६९७) तुत्थशोधनम् [२]

(आयु. वे. प्र.। अ. १२; अनु. त.। को. २; र. मं.। अ. ३; यो. त.। त. १७)

ओतोर्विशा समं तुत्थं सक्षौद्रं टङ्कणाद्रियुक्।
त्रिधैव पुटितं शुद्धं वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥

४ भाग तूतियामें एक एक भाग सुहागा और बिलावकी विष्टा मिलाकर उसे शहदमें घोटकर तीन लघुपुट देनेसे वह शुद्ध-वान्ति भ्रान्ति रहित हो जाता है।

(२६९८) तुत्थशोधनम् [३] (रसायनसार)

कृत्रिमं तु जले पात्यं क्षारं तस्याऽपनोदयेत्।
घर्मशुष्कं विशुद्धं तत् योगयोजनकर्मकृत् ॥

अर्थ—बनावटी तूतियाको मिट्टीके पात्रमें पानीमें घोलकर रख दे, जब पानी स्थिर हो जाय और तूतिया तल भागमें बैठ जाय तब ऊपरसे नींबू और नौसादर[१] के खारी पानीको धीरे २ निकालदे। बाद धूपमें सुखाकर काममें ले ॥१॥

(२६९९) तुत्थशोधनम् [४] (रसायनसार)

गोमूत्रे महिषीमूत्रेऽप्यजामूत्रे च तुत्थकम्।
यामे यामे कथेत्तेन खनिजं शुद्धिमृच्छति ॥

अर्थ—गौके मूत्र, भैंसके मूत्र और बकरीके मूत्रमें एक एक पहर पकानेसे खानका तूतिया शुद्ध हो जाता है ॥

(२७००) तुत्थसत्वपातनम्

(र. र. स.। पू. खं. अ. २, आ.वे.प्र.। अ. १२)

निम्बूद्रवाल्पटङ्काभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च।
ताम्ररूपं परिध्मातं सत्वं मुञ्चति सस्यकम् ॥

तूतियामें थोडासा (आठवां भाग) सुहागा मिलाकर उसे नींबूके रसमें घोटकर मूषामें बन्द

१ तूतिया बनानेमें नौसादर और नींबूका पानी पड़ता है और वह उसीमें रह जाता है। देखो ' तुत्थनिर्माण विधि "।

करके तेज़ अग्निपर धमानेसे उसमेंसे तांबेके समान सत्व निकल आता है।

(२७०१) तुत्थात्ताम्रनिस्सारणविधिः
(रसायनसार)

अध्यर्द्धसेटद्वयमात्रतुत्थं
सम्पिष्य सुश्लक्ष्णं कटाहिकायाम्।
विस्तीर्यतामन्यकटाहमध्ये
संस्थाप्य चाच्छाद्य पटेन तुत्थम्॥
तस्मिन् कटाहे खलु पञ्चसेटी
द्वयोन्मितां सुत्रिफलां प्रपूर्य।
मणप्रमाणं जलमत्र दद्यात्
संस्थापयेदातपयोग्यदेशे॥
यथाऽऽतपश्चन्द्रमरीचयश्च
वायुश्च तस्मिन्नाभिसञ्चरेयुः।
त्रिंशद्दिनं तत्समुपेक्ष्यमाणं
ताम्रं विशुद्धं खलु सेरकार्धम्॥
तले विलग्नं समुपाददित
जलं विपक्वन्तु मसीमयं स्यात्।
तथा च नेत्रेषु हितं परं स्यात्
प्रातः परिक्षालनतो नराणाम्॥

अर्थ—बहुत वैद्य नेपाली तांबेकी तलाशमें इधर ऊधर भटकते फिरते हैं और नहीं मिलने पर ताम्रभस्म बनानेमें हताश होकर बैठ जाते हैं। उन्हीं महाशयोंके उपकारार्थ मैं तूतियासे तामा निकालनेकी विधि लिखता हूं। यह तामां नैपाली तांबेसे किसी अंशमें कम नहीं है। अढाई सेर तूतियाको खूब पीसकर साफ छोटी लोहेकी कड़ाही (जैसी हलवाई लोग मावा (खोआ) बनानेके लिए साफ रखते हैं) में बिछाकर उस कड़ाहीको एक बड़े लोहेके कड़ाहमें (यदि बड़ा लोहेका कड़ाह न मिले तो बड़ी मट्टीकी नांद से भी काम चल सकता है) रखकर तूतिएके चूर्ण को कपड़ेसे ढाँक दे। जिसमें तूतिया त्रिफलामें न मिल जाय, बाद कड़ाहमें दशसेर पक्का बिना कुटा हुआ त्रिफला (बड़ी हरड़े, बहेड़ा, आमला) भर दे। उस त्रिफलासे छोटी कड़ाही इतनी ढक जायगी कि दीख नहीं पड़ेगी। फिर इस कड़ाहमें एक मन पक्का मीठा पानी भर दे और वह कड़ाह ऐसी जगहमें रखा जाय जहाँ हवा भी लगे और दिनभर सूर्यका ताप भी पड़े, और रात्रिमें चन्द्रमाकी चांदनी भी पड़ती रहे। इस प्रकार एक मास बीतने पर कड़ाहके पानीको कपड़ेमें छानकर रख ले, यह पानी स्याहीका काम देगा। और प्रातःकाल इस पानीका नेत्रोंमें छींटा देनेसे नेत्रका परम हित होता है। यदि स्याहीको और भी पक्की करनी हो तो एक सेर पीपलकी लाखका काढा वो एक सेर कसीस कूटकर डाल दे। और जो त्रिफला कपड़ेमें छाननेसे बच गई हो उसको भी धूपमें सुखाकर रख ले। इसको जलाकर क्षार बनाया जायगा, जो पाचकके काम आयेगा। वैद्योंके यहां कोई चीज़ फेंकने काबिल नहीं है; और छोटी कड़ाहीके पेंदेमें आधसेर पक्का विशुद्ध ताम्र जमा हुआ मिलेगा जो चाकूसे खुरच खुरचके उठानेसे एक पत्ररूपमें प्राप्त होवेगा। इस ताम्रमें उतना दोष नहीं है जितना कि नैपाली ताम्रमें होता है। संयोगकी महिमा अचिन्तनीय है। देखिये तूतिया, लोह, त्रिफला, पानी, एक मास काल वायु, धूप,

चाँदनी इन आठ पदार्थोंके संयोग से विशुद्ध ताम्र, स्याही, नेत्रकी दवा और पाचन योग्य क्षार कैसे उत्तम पदार्थ बन जाते है। तूतियासे ताम्र निकालनेके और भी प्रकार हैं पर यह सुगम होनेके कारण लिखा गया है।

(रसायनसार)

(२७०२) तुत्थादिकज्वराङ्कुशः

(र. रा. सुं. । ज्वर.)

तुत्थशम्बूकतालानां द्विगुणानां यथोत्तरम्।
चूर्णं कुमारिकाद्रावैर्घृष्ट्वा गोलं प्रकल्पयेत् ॥
द्वाभ्यामेरण्डपत्राभ्यां तद्गोलं वध्यते बुधैः।
सरावसम्पुटे धृत्वा पुटेद्गजपुटेन तु ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वा निधापयेत्।
गुञ्जात्रयं सितायोज्या खादेत्सर्वज्वरापहम् ॥
पथ्यं क्षीरोदनं देयं निहन्ति विषमज्वरान् ॥

शुद्ध तूतिया १ भाग, शंख २ भाग और शुद्ध वर्की हरताल ४ भाग लेकर सबको १ दिन घृतकुमारी (ग्वारपाठे) के रसमें घोटकर गोला बनाइए और उसे अरण्डके दो पत्तोंमें लपेटकर उसके ऊपर डोरा लपेट दीजिए और सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। जब स्वांग शीतल हो जाय तो निकालकर पीसकर रख लीजिए।

इसके सेवनसे सर्व प्रकारके विषमज्वर नष्ट होते हैं।

मात्रा- ३ रत्ती। मिश्रीके साथ मिलाकर (पानीसे) खाएं।

पथ्य—दूध भात।

(२७०३) तुत्थोत्थताम्रशुद्धिः (रसायनसार)

अर्कस्य पत्रस्वरेषु ताम्रं
निष्टप्य वह्नावथ सप्तकृत्वः।
निर्वाप्य सेटार्धकसैन्धवाढ्ये
चिञ्चादलक्वाथजले पचेत ॥
यामेष्वतीतेषु चतुर्षु शुद्धं
तत्ताम्रमाहुःखलु भस्मयोग्यम्।
नैपालताम्रेण समोऽत्र दोषो
नैवास्त्यतः शुद्धिरियम्प्रपूर्णा ॥

अर्थ—तूतियासे निकाले हुए तांबेको अग्निमें खूब निष्तप्त करके (तपाकर) मन्दार के पत्तोके स्वरसमें सात बार बुझाले, पश्चात् दो सेर इमलीके पत्तोंको दश सेर पानीमें डालकर कड़ाहीमें काढ़ा बनावे, जब आधा पानी जल जाय तब उसमें आधसेर सेन्धानोन डालकर साथही साथ तूतिया से निकले हुए आधसेर तांबेको भी डाल दे। बाद चार पहर तक अग्नि दे। यदि पानी जल जाय तो गोमूत्र डालता जाय, गोमूत्र नही हो तो पानीसे भी काम चल सकता है। बस इतनी ही शुद्धि इस ताम्रकी पर्याप्त है; क्यों कि तूतियाके तांवेमें नैपाली तांबाके बराबर दोष नहीं होता है।

(२७०४) तृप्तिसागररसः (र. रा. सुं.। अति.)

रसभस्म तु भागैकं रसाद् द्विगुणगन्धकम्।
गन्धकाद् द्विगुणं चाभ्रं निश्चन्द्रं मर्दयेत्ततः॥
दिनैकं कटुतैलेन रुध्वा चुल्यां विपाचयेत्।
यामैकं वालुकायन्त्रे समुद्धृत्य विमर्दयेत् ॥
हयमारकमूलोत्थरसैर्यामं निरुध्य च।
पूर्ववत्पाचयेच्चुल्यां समादाय विमिश्रयेत्॥

त्रिक्षारं पञ्चलवणं चव्याग्निद्वयजीरकैः।
विडङ्गेन च तत्तुल्यं युक्तोयं तृप्तिसागरः॥
भक्षयेन्माषमात्रं च सन्निपातातिसारजित्।
सज्वरां ग्रहणीं हन्ति ह्यनुपानं विना रसः॥

पारद भस्म (अभावमें रससिन्दूर) १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और निश्चन्द्र अभ्रक भस्म ४ भाग लेकर सबको एक दिन सरसोंके तेलमें घोटकर दो शरावोंमें बन्द करके ऊपरसे ४-५ कपड़मिट्टी कर सुखाकर १ पहर तक वालुकायन्त्र में पकाइए और उसके स्वांगशीतल होनेपर उसमें से औषधको निकालकर १ पहर तक कनेरके रसमें घोटकर उपरोक्त विधिसे १ पहर वालुकायन्त्रमें पकाइए और उसके स्वांगशीतल होने पर उसमेंसे औषधको निकालकर उसमें यवक्षार, सज्जीखार, सुहागा, पांचो लवण, चव्य, चीता, स्याहजीरा, सफेद जीरा और वायविडंगका समान भाग मिश्रित चूर्ण उसके बराबर मिलाइए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार किसी अनुपान के विना ही सेवन करनेसे सन्निपातज अतिसार, ज्वर और संग्रहणी नष्ट होती है।

(२७०५) तृषाहारीरसः (यो. त. । त. ३४)

रसगन्धककर्पूरैः शैलोशीरमरीचकैः।
ससितैः क्रमवृद्धैश्च सूक्ष्मं चूर्णमहर्मुखे॥
त्रिगुञ्जाप्रमितं खादेत्पिबेत्पर्युषिताम्बु च।
भृशं तृष्णां निहन्त्येवमश्विभ्यान्तु प्रकाशितम्॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, कपूर ३ भाग, भूरिछरीला ४ भाग, खस ५ भाग, तुलसीके बीज (तुख्मरीहां-तकमरियां. गु.) ६ भाग और मिश्री ७ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, फिर उसमें अन्य समस्त औषधियोंका महीन चूर्ण मिलाकर खरल करके रखिए।

इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल ३ रत्ती चूर्ण वासी पानीके साथ खानेसे प्रबल तृष्णा भी अवश्य शान्त हो जाती है।

(२७०६) तृष्णाच्छर्दिहरो रसः

(र. र. स. । उ. खं. अ. १४)

युक्तं गन्धकपिष्ट्याऽयस्तालकं स्वर्णमाक्षिकम्।
युक्त्या तद् भस्मतां नीतं तृष्णाच्छर्दिनिवारणम्॥

पारद और गन्धककी कज्जलीसे की हुई लोह, हरताल और सोनामक्खीकी भस्म समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करें।

इसे (२-३ रत्तीकी मात्रानुसार, चन्दनके पानी या अन्य उचित अनुपानके साथ) सेवन करनेसे तृष्णा और वमन नष्ट होती है।

(२७०७) त्रिकटुकादिलौहम् [१]

(यो. स. । समु. ६)

त्रिकटुकाब्दविडङ्गचित्रकाः
कासमर्दवरलोहजचूर्णम्।
मधुयुतं च लिहेत्पयसा
ना सपदि कामलया परिमुच्यते॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), मोथा, बायविडंग, चीता, कसौंदी और उत्तम शुद्ध लोह। सबका समान भाग चूर्ण लेकर एकत्र खरल करें।

इसे (३ मासेकी मात्रानुसार) शहदमें

मिलाकर चाटकर ऊपर दूध पीनेसे कामला (कौलबाय) अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है।

(२७०८) त्रिकटुकादिलौहम् [२]

(ग. नि. । श्वय.)

त्रिकटुलोहचूर्णश्च द्वयमेतत्समांशकम् ।
पीतमुष्णाम्भसा हन्ति शोफरोगमसंशयः ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) और शुद्ध लोहचूर्ण समान भाग लेकर एकत्र खरल करके (१॥ माशेकी मात्रानुसार) उष्ण पानीके साथ सेवन करनेसे शोथ रोग (सूजन)का अवश्य नाश होता है।

(२७०९) त्रिकट्वादिलौहम्

(वृ. नि. र. । क्षय.; वै. क. द्रु. स्क. २)

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः ।
नवभागोन्मितैरेतैः समं तीक्ष्णं मृतं भवेत् ॥
संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रे नित्यं यः सेवते नरः ।
कासं श्वासं क्षयं मेहं पाण्डुरोगं भगन्दरम् ॥
ज्वरं मन्दानलं शोथं संमोहं ग्रहणीं जयेत् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, इलायची, जायफल और लौंग १-१ भाग और तीक्ष्ण लोहभस्म ९ भाग लेकर, यथाविधि चूर्ण बना लीजिए।

इसे शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे खांसी, श्वास, क्षय, प्रमेह, पाण्डु, भगन्दर, ज्वर, अग्निमांद्य, शोथ, मूर्च्छा और ग्रहणी रोगका नाश होता है।

(मात्रा—४-६ रत्ती।)

(२७१०) त्रिकट्वाद्यं लौहम् [१]

(वं. से.; भै. र. । शो०)

त्रिकटु त्रिफला दन्ती विडङ्गं कटुका तथा ।
चित्रको देवदारुश्च त्रिवृच्च गजपिप्पली ॥
चूर्ण्यान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः।
क्षीरेण पीतमेतत्तु श्रेष्ठं श्वयथुनाशनम् ॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, दन्तीमूल, बायबिड़ंग, कुटकी, चीता, देवदारु, निसोत और गजपीपलका चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध लोहचूर्ण सबसे २ गुना लेकर सबको एकत्र खरल करें।

इसे दूधके साथ सेवन करनेसे शोथ नष्ट होता है।

(मात्रा—४-६ रत्ती।)

(२७११) त्रिकट्वाद्यं लौहम्

(रसें. चि. । अ. ९; र. सा. सं.; र. र.; धन्वं.; र. रा. सुं. । शोथ.)

त्रिकटुत्रिफलादन्तीमार्गत्रिमदशुण्ठिभिः ।
पुनर्नवासमायुक्तैर्युक्तो हन्ति सुदुर्जयम् ॥
लौहः शोथोदरं स्थौल्यं मेदोगदमसंशयः ॥

त्रिकुटा, हर्र, बहेड़ा, आमला, दन्तीमूल, अपामार्ग (चिरचिटे) का पञ्चाङ्ग, नागरमोथा, चित्रक, वायविडङ्ग, सोंठ और पुनर्नवा (साठी)की जड़का चूर्ण समान भाग तथा शुद्ध लोहचूर्ण (या भस्म) इन सबके बराबर लेकर एकत्र खरल करें।

इसके सेवनसे शोथोदर, स्थूलता और मेद रोग अवश्य नष्ट होता है।

(मात्रा—४-६रत्ती। अनुपान दूध या छाछ।)

(२७१२) त्रिकत्रयाद्यं लौहम् [१]

(र. सा. सं.; धन्वं.; र. चं; भै. र.; र. रा. सुं. । पाण्डु.)

पलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः ।
सितायाश्च पलश्चैकं क्षौद्रस्यापि पलन्तथा ।
तोलैकं कान्त लोहस्य त्रिकत्रयसुभावितम् ।
ततः पात्रे विधातव्यं लौहे च मृन्मये तथा ॥
हविषा भावितश्चापि रौद्रे च शिशिरे तथा ।
भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चापि प्रदापयेत् ॥
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकं सुदारुणम् ॥
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम् ।
कासं पञ्चविधं श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥
अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च ।
अग्निमांद्यमजीर्णञ्च श्वयथुञ्च सुदारुणम् ॥
निहन्तिनात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥

५ तोले मण्डूर भस्म तथा १। तोला कान्त लोह भस्म लेकर दोनोको त्रिकत्रय (त्रिकुटा, त्रिफला, वायविडङ्ग, मोथा और चीता)के क्काथमें घोटकर उसमें ५-५ तोले गायका घी, शहद और मिश्री मिलाकर लोह या मिट्टीके पात्रमें भरकर दिनको धूपमें सुखावें और रातको चन्द्रमाकी चांदनीमें रक्खें। (इसी प्रकार २१ दिन या कमसे कम सात दिन तक भावना देनेके पश्चात्) घृतसे चिकने किये हुवे पात्रमें भरकर रख दें ।

इसे यथोचित मात्रा और अनुपानके साथ भोजनके आदि, मध्य और अन्तमें सेवन करनेसे कामला, पाण्डु, भयङ्कर हलीमक, अम्लपित्त, उदर-शूल, परिणाम शूल, पांच प्रकारकी खांसी, श्वास, ज्वर, प्लीहा, अपस्मार (मिरगी), उन्माद, उदर-रोग, गुल्म, अग्निमांद्य, अजीर्ण और शोथका अत्यन्त शीघ्र नाश होता है ।

(२७१३) त्रिकत्रयाद्यं लौहम् [२]

(र. सा. सं.; धन्वं.; र. चं.; र. । र. उन्माद; रसे. चि. । अ. ९)

त्रिकत्रयसमायुक्तं जीवनीययुतन्तथा ।
हन्त्यपस्मारमुन्मादं वातव्याधिं सुदुस्तरम् ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिमद (नागरमोथा, वाय-विडङ्ग, चीता) और जीवनीयगण[1] की औषधियोंका चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध लोहचूर्ण या लोह भस्म सबके बराबर लेकर एकत्र खरल कर लीजिए।

इसे यथोचित मात्रा और अनुपानके साथ सेवन करनेसे अपस्मार, उन्माद और दुर्जय वात व्याधि नष्ट होती है ।

(साधारण मात्रा-४-६ रत्ती । अनुपान-शहद ।)

(२७१४) त्रिकत्रयाद्यं लौहम् [३]

(र. र.; धन्वं. । शूल.; रसे. चि. । अ. ९; र. का. धे. ।)

त्रिकत्रयसमायुक्तं तालमूली शतावरी ।
योगन्निहन्ति शूलानि दारुणान्ययसोरजः ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिमद (मोथा, वायविडङ्ग, और चीता), तालमूली (ताल वृक्षकी जड़) और

१ जीवनीयगण—जकारादि क्वाथ प्रकरणमें देखिये ।

शतावर एक एक भाग तथा लोहभस्म इन सबके बराबर लेकर एकत्र खरल करें।

इसके सेवनसे भयङ्कर शूल नष्ट होता है।

(मात्रा–४–६ रत्ती। अनुपान–उष्ण जल या काञ्जी।)

(२७१५) त्रिगन्धरसः (र. रा. सुं। कुष्ठ.)

खरसै राजवृक्षस्य तालगन्धमनःशिला।
गुञ्जावाकुचिकाद्रावैर्मर्द्यं कङ्गुणितैलके॥
प्रतिद्रावैर्दिनैकन्तु भक्षयेदर्द्धनिष्ककम्।
कुष्ठमौदुम्बरं हन्ति त्रिगन्धोऽयं महारसः॥
मध्वाज्यवाकुचीमूर्वाकर्षैकमनु लेहयेत्॥

हरताल भस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मनसिल समान भाग लेकर एकत्र खरल करें और और फिर उसे १–१ दिन अमलतासके पत्तोंके रस, चौंटलीके रस और बावचीके रसमें घोटें और अन्तमें १ दिन मालकङ्गनीके रसमें घोटकर रक्खें।

इसमेंसे प्रतिदिन २ माशे औषध खाकर ऊपरसे बावची और मूर्वाके ६–६ माशे चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे औदुम्बर कुष्ठ नष्ट होता है।

(व्यवहारिक मात्रा–२ रत्ती। मूर्वा और बावची १॥–१॥ माशा)

(२७१६) त्रिगुणाख्यं ताम्रम्

(र. र.। गण्डमाला)

द्विभागगन्धेन रसेन भागं
दिनं च कुर्याः स्वरसेन घृष्टम्।
निक्षिप्य ताम्रस्य पुटे रसेन
तुल्यं मृदा तत्र पुटं ददीत॥
पुटे घृताक्तं मधुना समेतं
फलत्रयेण मधुना घृतेन।
भगन्दरघ्नो हि रसोऽयमुक्तो
ददीत पथ्यं मधुरं हितञ्च॥
(स्त्रियं दिवास्वापञ्च वर्जयेत्॥)

१ भाग पारद और २ भाग गन्धककी कज्जली करके उसे १ दिन कुरी नामक धान्यके स्वरसमें घोटकर पारेके बराबर वज़नी शुद्ध ताम्रकी कटोरियोंमें बन्द करके ऊपर तीन चार कपड़मिट्टी करके सुखाकर गजपुटमें फूंक दें, और स्वांगशीतल होने पर कटोरियों समेत पीस लें। (यदि कटोरियोंकी भस्म न हुई हो तो पुनः इसी प्रकार पुट दें।)

इसे घी और शहद अथवा त्रिफलाका चूर्ण और घी तथा शहदके साथ सेवन करनेसे भगन्दर नष्ट होता है।

पथ्य—मधुररसवाले पदार्थ।

स्त्रीप्रसंगसे बचना और दिनको न सोना चाहिए।

(मात्रा–१–२ रत्ती।)

(२७१७) त्रिगुणाख्यो रसः [१]

(र. रा. सुं.। सन्नि.)

शुद्धं सूतं समं गन्धं सूतांशं मृतताम्रकम्।
त्रिभिस्तुल्यं गवां क्षीरैर्मर्दयेदातपे दृढम्॥
निर्गुण्ड्याथ द्रवैर्मर्द्यं दिनैकन्तं च गोलकम्।
त्रियामं वालुकायन्त्रे ह्यन्धमूपागतं पचेत्॥
आदायचूर्णयेत्खल्वे ह्यष्टमांशं विषं क्षिपेत्।
त्रिगुणाख्यो रसो नाम देयो गुञ्जाद्वयं द्वयम्॥
पञ्चकोलं पिबेच्चानु पथ्यं छागपयेन च॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म १-१ भाग लेकर तीनोंकी कज्जली करके उसे सबके बराबर गोदुग्धमें धूपमें घोटें और फिर १ दिन संभालुके रसमें घोटकर गोला बनावें और उसे सुखाकर अन्धमूषामें बन्द करके ३ पहर तक वालुकायन्त्रमें पकाएं और फिर यन्त्रके स्वांगशीतल होने पर उसमेंसे औषधको निकालकर उसमें उसका आठवां भाग शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) का चूर्ण मिलाकर एकत्र खरल करें।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता और सोंठ) के क्वाथके साथ सेवन कराने और बकरीके दूधके साथ पथ्य देनेसे सन्निपात नष्ट होता है।

(२७१८) त्रिगुणाख्यो रसः [२]

(र. म. । अ. ७; रसं. चिं. । अ. ९; र. का. धे. । वात.)

गन्धकाद्द्विगुणं सूतं[1] शुद्धं मृद्वग्निना क्षणम्।
पक्त्वावतार्य संचूर्ण्य चूर्णतुल्याभयायुतम्॥
सप्तगुञ्जामितं खादेद्वर्द्धयेच्च दिने दिने।
गुञ्जैकं च क्रमेणैव यावत्स्यादेकविंशतिः॥
क्षीराज्यशर्करामिश्रं शाल्यन्नं पथ्यमाचरेत्।
कम्पवातप्रशान्त्यर्थं निर्वाते निवसेत्सदा॥
त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना त्रिपक्षात्कम्पवातनुत्॥

१ भाग शुद्ध गन्धक (पाठान्तरमें १६ भाग) और २ भाग शुद्ध पारद लेकर दोनोंकी कज्जली करके, लोहेके पात्रमें ज़रासा घी लगाकर उसमें इस कज्जलीको डालकर मन्दाग्निपर पकाइए। जब कज्जली पिघल जाय तो उसे ठण्डा करके पीस लीजिए और फिर उसमें उसके बराबर हर्र का महीन चूर्ण मिलाइए।

इसमेंसे पहिले दिन ७ रत्ती औषध खाकर दूसरे दिनसे १-१ रत्ती बढ़ाकर खाना चाहिए; जब २१ रत्ती मात्रा पर पहुंच जायं तो बढ़ाना बन्द कर दें। (यदि अधिक समय औषध खानेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो २१ रत्ती मात्रापर पहुंचनेके पश्चात् प्रतिदिन १-१ रत्ती घटाकर खाएं।)

इसके सेवनसे ६ सप्ताहमें कम्पवात रोग नष्ट हो जाता है।

कम्पवातवाले रोगीको घी, दूध और मिश्रीयुक्त शाली चावलोंका भात खाना और सदैव निर्वात स्थानमें रहना चाहिए।

(२७१९) त्रिदशेश्वररसः (र.का.धे.।अ.२२)

सूतो बलिस्तीक्ष्णकं च ह्यमृतं व्यालपत्रकम्।
हरेणुः कृमिहा मेथी ग्रन्थिकं त्रुटिकेशरम्॥
त्र्यूषणं च वरा चैव म्लेच्छभस्म तथैव च।
एतानि समभागानि ह्यभ्रं द्विगुणं भवेत्॥
शुल्वभस्म समं बीजं दन्तीजातं विनिक्षिपेत्।
त्रिदशेश्वरनामाऽयं रसः स्यात्सर्वरोगजित्॥
श्वासं कासं तथा हिक्कामर्शांसि च भगन्दरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णशूलं कपालिकाम्॥
हरेत्संग्रहणीरोगमष्टौ च जठराणि च।
प्रमेहान्विंशतिं चैवमश्मरीं च चतुर्विधाम्॥
अनुपानविशेषेण सर्वान्रोगान्नियच्छति॥

---

१ गन्धकोऽष्टगुणः सूतादिति पाठान्तरम्।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, तीक्ष्ण लोहभस्म, शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया), चीता, तेजपात, रेणुका, बायबिडङ्ग, नागरमोथा, पीपलामूल, छोटी इलायची, केसर, त्रिकुटा, हर्र, बहेड़ा, आमला, नैपाली ताम्रकी भस्म और शुद्ध जमालगोटा १-१ भाग तथा मिश्री सबसे दोगुनी लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाइए और फिर उसमें अन्य औषधोंका महीन चूर्ण मिलाकर खरल कीजिए।

इसे यथोचित मात्रा और अनुपानके साथ सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। विशेषतः यह—श्वास, खांसी, हिचकी, अर्श, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलीका दर्द, कर्णशूल, मस्तकशूल, संग्रहणी, आठ प्रकारके उदररोग, २० प्रकारके प्रमेह और ४ प्रकारकी अश्मरी (पथरी)का नाश करता है।

(मात्रा—३ माशे।)

(२७२०) त्रिदोषशमनरसः

(र. चं. त्रिदोष. चि.; र. प्र. सु. । अ. ८)

स्वर्णं सूतं तथा गन्धं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः।
पश्चाद्गोलं विधायाथ शरावसम्पुटे पचेत् ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः।
भक्षयेद्वल्लमात्रन्तु त्रिदोषजरुजं जयेत् ॥

स्वर्णभस्म, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर कज्जली बनाकर उसे १ दिन घृतकुमारी (घीकुमार—ग्वारपाठा)के रसमें घोटकर गोला बनाइए, और उसे सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके लघुपुटमें फूंक दीजिए। पुटके स्वाङ्गशीतल होनेपर उसमेंसे रसको निकालकर पीसकर रखिए।

इसे ३ रत्तीकी मात्रानुसार खिलानेसे सन्निपात ज्वर नष्ट होता है।

(अनुपान—शहद या अदरकका रस।)

(२७२१) त्रिदोषशूलहर चूर्णम्

(वै. र. । शूला.)

त्रिफला लोहजं चूर्णं यष्टीमधुकमेव च।
मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, शुद्ध लोहचूर्ण (अथवा लोहभस्म) और मुलैठी। इन सबका समान भाग चूर्ण लेकर एकत्र खरल करें।

इसे शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है।

(मात्रा—३ माशे। घी ६ माशे। शहद २ तोले।)

(२७२२) त्रिनेत्ररसः [१]

(र. चं.; र. र. । वातरक्त० ।)

गरुत्मान् दरदस्तीक्ष्णं स्वर्णं वङ्गशुक्तिके।
शुल्वं च गगनं फेनं रुधिरं च त्रिनेत्रकम् ॥
पातालनृपतिश्चैव वह्निमूलं च रामठम्।
त्रिकटुत्रिफलाशिग्रुश्चाजमोदा यवानिका ॥
पिप्पलीमूलं भार्गी च लशुनं जीरकद्वयम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥
मन्दानलामवातघ्नं श्लेष्माणं च जलोदरम्।
अशीतिर्वातजान् रोगान् प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥
घ्राणाक्षिकर्णजिह्वानां गदं चैव त्रिदोषजम्।
गलिताङ्गं वातरक्तं सर्वमेतद्व्यपोहति ॥

स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ), तीक्ष्ण लोहभस्म, स्वर्णभस्म, वङ्गभस्म, सीपकी

भस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध अफ़ीम, केसर, रुद्राक्ष, सीसाभस्म, चीतामूल, भुना हुवा हींग, त्रिकुटा, हर्र, वहेडा, आमला, सहंजनेके बीज, अजमोद, अजवायन, पीपलामूल, भारङ्गी, ल्हसन, स्याहज़ीरा और सफेद ज़ीरा। सबका समान भाग महीन चूर्ण लेकर अद्रकके रसमें घोटकर (४-४ रत्तीकी) गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे अग्निमांद्य, आमवात, कफ, जलोदर, अस्सी प्रकारके वातरोग, २० प्रकारके प्रमेह, नाक, आंख और कानके त्रिदोषज रोग और जिसमें अङ्ग गल गए हो वह वातरक्त रोग नष्ट हो जाता है।

(२७२३) त्रिनेत्ररसः [२]

(र. र. स. । उ. खं. अ. १८)

रसताम्रगन्धकानां त्रिगुणो वर्धितांशानाम् ।
अम्लेन मर्दितानां पुटपक्वानां निषेवितं भस्म॥
गुञ्जाप्रमाणार्द्रकसिन्धूत्थचूर्णसंयुक्तम् ।
एरण्डतैलमाक्षिकमथ वा पटुहिङ्गुजीरकोपेतम्॥
शमयति शूलमशेषं तत्तद्रसभावितं बहुशः ।
उपचूर्णैरनुपानैस्तैस्तैःसहितंकफानिलार्त्तिहरम्॥
एतच्चहरिणशृङ्गं मृतकाञ्चनटङ्कणोपेतम् ।
सघृतमधुपक्तिशूलं शमयति शूलं त्रिनेत्ररसः॥

शुद्ध पारा १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग और शुद्ध गन्धक ९ भाग लेकर सबकी कज्जली करके उसे नींबूके रसमें घोटकर गोला बनाकर सुखाइए और फिर उसे सम्पुटमें बन्द करके लघुपुटमें फूंक दीजिए। पुटके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे रस-को निकालकर पीसकर रखिए।

इसमेंसे एक एक रत्ती औषध अद्रकके रस और सेंधा नमकके चूर्णके साथ अथवा अरण्डीके तैल और शहदके साथ या सेंधा नमक, हींग और ज़ीरेके चूर्णके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूल नष्ट होते हैं।

यदि इसे कफ और वातज रोगोंको नष्ट करनेवाली औषधोके रस या क्वाथकी अनेक भावनाएं देकर उन्हीं औषधोंके चूर्णके साथ सेवन किया जाय तो कफज और वातज रोग नष्ट होते हैं। (जिस रोगमें सेवन करना हो उसको नष्ट करने-वाली औषधोके रसमें घोटना चाहिए।)

यदि यह रस, हरिनके सींगकी भस्म, स्वर्ण भस्म और सुहागेकी खील समान भाग एकत्र मिलाकर घी और शहदके साथ सेवन किया जाय तो पक्तिशूल नष्ट होता है।

(२७२४) त्रिनेत्ररसः [३]

(वृ. नि. र.; र. रा. सुं. । ज्वर.;
भा. प्र. । ख. २. ज्वर.)

शुद्धसूतं समं गन्धं सूतांशं मृतताम्रकम् ।
त्रिभिस्तुल्यैर्गवां क्षीरैर्मर्दयेदातपे खरे ॥
मर्दयेद्दिनमेकन्तु निर्गुण्डीशिग्रुजद्रवैः ।
विधाय गोलं तं गोलमन्धमूषागतं पचेत् ॥
त्रियामान् वालुकायन्त्रे ततः खल्वे विचूर्णयेत् ।
अष्टमांशं विषं तत्र क्षिपेत्तेनापि मर्दयेत् ॥
त्रिनेत्राख्यो रसो ह्येष देयो गुञ्जाद्वयोन्मितः।
पञ्चकोलकषायेण छागीदुग्धेन वा सह ॥
रसेनानेन भुक्तेन सन्निपातज्वरो महान् ।
संक्षयं व्रजतिक्षिप्रं कर्त्तव्यो नात्र संशयः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म बराबर बराबर लेकर खरल करके कज्जली बनाइए और फिर उसके बराबर गायका दूध मिलाकर तेज़धूपमें खरल कराइए; तत्पश्चात् एक एक दिन संभालु और सहंजनेके रसमें घोटकर गोला बनाकर, सुखाकर उसे अन्धमूषामें बन्द करके ३ पहर तक वालुकायन्त्रमें पकाइए और फिर उसमें उसका आठवां भाग शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) का चूर्ण मिलाकर घोटिए ।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता और सोठ)के क्वाथ या बकरीके दूधके साथ देनेसे सन्निपात ज्वर निस्सन्देह शीघ्रही नष्ट हो जाता है ।

(२७२५) त्रिनेत्ररसः [४] (र. र. । कास.)

भस्मताम्राभ्रतीक्ष्णानां कासमर्दत्वचोरसैः ।
सालजैर्वेतसाम्लेन दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ।।
द्विगुञ्जं पित्तकासार्त्तो भक्षयेच्च त्रिनेत्रकम् ।

ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और तीक्ष्ण लोहभस्म समान भाग लेकर तीनोको १-१ दिन कसौंदी, दालचीनी, साल और अम्लवेतके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए ।

इसके सेवनसे पित्तज खांसी नष्ट होती है ।

(२७२६) त्रिनेत्ररसः [५] (यो. र. । हृद्रोग)

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना ।
एकविंशतिधा घर्मे भावितानि विधानतः ।।
माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा त्रिदोषजम् ।।
क्रमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ।।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म समान भाग लेकर तीनोंकी कज्जली करके उसे अर्जुनकी छालके रस या क्वाथकी धूपमें २१ भावनाएं देकर सुखाकर चूर्ण करके रखिए ।

इसे १ माषेकी मात्रानुसार शहदमें मिलाकर चाटनेसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और कृमिजन्य हृद्रोग नष्ट होता है ।

(व्यवहारिक मात्रा २-३ रत्ती ।)

(२७२७) त्रिनेत्ररसः [६] (र.रा.सुं ।कास.)

ताम्रभस्मारतीक्ष्णानां काञ्चनारत्वचोरसैः ।
मुनिजैर्वेतसाम्लेन दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ।।
द्विगुञ्जं पित्तकासार्त्तो भक्षयेच्च त्रिनेत्रकम् ।।

ताम्रभस्म, पीतलभस्म और तीक्ष्ण लोहभस्म समान भाग लेकर सबको कंचनारकी छालके रस, अगस्ति (अगथिया)के रस और अम्लवेतके रस या क्वाथमें १-१ दिन घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लीजिए ।

इसके सेवनसे पित्तज खांसी नष्ट होती है ।

(२७२८) त्रिनेत्ररसः [७]

(र. र. स.। उ. ख. अ. १८; वृ. नि. र.; र. र.; र. चं.; र. मं.। शूल.; वृ. यो. त.। त. ९५)

खण्डितं[1] हारिणं शृङ्गं स्वर्णं शुल्वं मृतं[2] रसम् ।
दिनैकं चार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुध्वा पचेत्पुटे ।।
त्रिनेत्राख्यो रसः सोऽयं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत् ।
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ।।
पक्तिशूलहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः ।।

१ टङ्कणमिति पाठान्तरम् ।
२ शुद्धमिति पाठान्तरम् ।

त्रिनेत्राख्यो रसः सोयं साय मध्वाज्यकैर्लिहेत्।
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु॥
पक्तिशूलहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः॥

हरिणके सींगका चूर्ण, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म और पारदभस्म (अभावमें रससिन्दूर) समान भाग लेकर सबको एक दिन अदरखके रसमें घोटकर गोला बनाकर सुखाकर उसे सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए और स्वांग शीतल होनेपर निकालकर पीसकर रखिए।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार शहद और घीमें मिलाकर चाटने और ऊपरसे सेंधा, जीरा और हींगके समान भाग मिश्रित चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे १ मासमें पक्तिशूल अवश्य नष्ट हो जाता है।

(२७२९) त्रिनेत्र रसः [८]

(रसें. चिं. । अ. ८; आ. वे. प्र. । अ. १)

रसगन्धकताम्राणि सिन्धुवाररसैर्दिनम्।
मर्दयेदातपे पश्चात् वालुकायन्त्रमध्यगम्॥
अन्धमूषागतं यामत्रयं तीव्राग्निना पचेत्।
तद्भुञ्जा मर्वरोगेषु पर्णखण्डिकया सह॥
दातव्या देहसिध्यर्थं पुष्टिवीर्यबलाय च॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म समान भाग लेकर कज्जली बनाकर उसे १ दिन संभालुके रसमें धूपमें घुटवाइये और फिर अन्धमूषामें बन्द करके उसे वालुकायन्त्रमें रखकर ३ पहर तीव्राग्नि पर पकाइए।

इसे १ रत्तीकी मात्रानुसार पानके साथ देनेसे समस्त रोग नष्ट होकर बलवीर्यकी वृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है।

(२७३०) त्रिनेत्राख्यो रसः [९]

(रसें. चि. । अ. ९; र. रा. सुं.; रसें. सा. सं., धन्वं. । मूत्र.)

वङ्गं सूतं गन्धकं भावयित्वा
लौहे पात्रे मर्दयेदेकघस्रम्।
दूर्वायष्टिगोक्षुरैः शाल्मलीभि-
र्मूषामध्ये भूधरे पाचयित्वा॥
तत्तद्द्रावैर्भावयित्वाऽस्य वल्लं
दद्यात् शीतं पायसं वक्ष्यमाणम्।
दूर्वायष्टीशाल्मलीतोयदुग्धै-
स्तुल्यैः कुर्यात् पायसं तद्दीत॥
प्रातःकाले शीतपानीयपाना-
न्मूत्रे जाते स्यात्सुखित्वं क्रमेण॥

वङ्ग भस्म, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर तीनोंकी कज्जली बनाकर उसे लोहेके खरलमें १-१ दिन दूर्वा, मुलैठी, गोखरु और सेंमलके फूलोंके रस अथवा क्वाथमें घोटकर गोला बनाकर उसे मूषामें बन्द करके भूधरपुटमें पकाइए। तत्पश्चात् पुनः उपरोक्त औषधोंके रसमें घोटकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १ गोली प्रातःकाल ठण्डे पानीके साथ खिलाने और भोजनमें दूर्वाका-रस, मुलैठीका क्वाथ और दूध समान भाग लेकर उसमें चावलों की खीर बनाकर खिलानेसे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता और मूत्र खुलकर आता है।

(२७३१) त्रिनेत्राख्यो रसः [१०]

(भै. र. । शो.)

टङ्कनं शोधितं गन्धं मृतशुल्वायसं रसम्।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं लघुपुटे पचेत्॥

त्रिनेत्राख्यो रसो नाम चासाध्यं श्वयथुं जयेत्।
बिल्वमात्रं पिबेच्चानु एरण्डशिखरीसमम् ॥

सुहागा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, लोहभस्म और शुद्ध पारद समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए, पश्चात् उसमें अन्य चीज़ें मिलाकर सबको एक दिन अदरकके रसमें घोटकर गोला बनाकर सुखाकर उसे सम्पुट में बन्द करके लघुपुटमें फूंक दीजिए और स्वांग शीतल होने पर निकालकर पीसकर रखिए।

इसे (१ से ३ रत्तीकी मात्रानुसार) अरण्डमूल और अपामार्ग (चिरचिटे)के ५ तोले क्वाथके साथ सेवन करनेसे असाध्य शोथ भी नष्ट हो जाता है।

(२७३२) त्रिनेत्राख्यो रसः [११]

(र. र. । पाण्डु.)

टङ्कणं जारितं स्वर्णं शुल्वं शङ्खं मृतं रसः।
दिनैकं चार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥
त्रिनेत्राख्यो रसो नाम चासाध्यं श्वयथुं जयेत्।
शूलगुल्मथार्शांसि नाशयत्याशु देहिनाम् ॥

सुहागा, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, शंख और पारद भस्म (अभावमें रस सिन्दूर) समान भाग लेकर सबको १ दिन अद्रकके रसमें घोटकर गोला बनाकर सुखाकर उसे सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए।

इसे (१ से ३ रत्तीकी मात्रानुसार) सेवन करनेसे असाध्य शोथ, शूल, गुल्म और अर्शका नाश होता है।

(अनुपान—पुनर्नवाका रस।)

(२७३३) त्रिपुरभैरवो रसः [१]

(र. का. धे.; भै. र.; र. चं.; धन्वं; र. रा. सुं. । ज्वर.; रसें. चि. । अ. ९; वृ. यो. त. । त. ६०)

विषटङ्कबलिम्लेच्छदन्तीवीजं क्रमैधितम् ।
दन्त्यम्बुमर्दितं यामं रसस्त्रिपुरभैरवः ॥
वह्नौ व्योषेण चार्द्रस्य रसेन सितयाथवा ।
दत्तो नवज्वरं हन्ति मान्द्यमनिलशोथहा ॥
हन्ति शूलं सविष्टम्भमर्शांसि कृमिजान्गदान् ।
पथ्यं तक्रेण भुञ्जीत रसेऽस्मिन् रोगहारिणि ॥

शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) १ भाग, सुहागा २ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग और शुद्ध जमालगोटा ५ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके १ पहर दन्तीमूलके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे १-१ गोली त्रिकुटाके चूर्ण या अद्रकके रस अथवा मिश्रीके साथ देनेसे नवीन ज्वर, अग्निमांद्य, वातज शोथ, शूल, कब्ज, अर्श और कृमिजन्य रोग नष्ट होते हैं।

पथ्य—छाछ भात।

नोट—यह रस रेचक है, अत एव छोटे बच्चों और गर्भिणी स्त्रीको न देना चाहिए।

(२७३४) त्रिपुरभैरवो रसः [२]

(र. प्र. सु. । अ. ८)

सूतकं मरिचं शुण्ठी टङ्कणं चामृतं तथा ।
गन्धकं चैकचत्वारिवेदवह्निधराधराः ॥
चूर्णितो मधुना लीढो वाते त्रिपुरभैरवः ॥

शुद्ध पारद १ भाग, काली मिर्च ४ भाग, सोंठ ४ भाग, सुहागेकी खील ३ भाग, शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) १ भाग और शुद्ध गन्धक

१ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियोका महीन चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल करके रखिए।

इसे (१॥-२ माशेकी मात्रानुसार) शहद-के साथ सेवन करनेसे वातव्याधि नष्ट होती है।

(२७३५) त्रिपुरभैरवो रसः [३]

(यो. र.; वृ. नि. र.; र. सा. सं; र. चं.; र. रा. सुं.। शूल.; यो. त.। त. ४३)

भागो रसस्य भागश्च हेम्नः पिष्टिं विधाय च।
तथा द्वादश भागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत्॥
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा पलमात्रं समन्ततः।
सिञ्चेन्मत्स्याक्षिनीरेण रुद्ध्वा यामचतुष्टयम्॥
पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः।
माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे॥
अन्येष्वेरण्डतैलेन कटुत्रययुतो हितः॥

१ भाग पारद और १ भाग सोनेके वर्क लेकर दोनोको एकत्र घोटकर पिट्ठी बनावें और उसे १२ भाग शुद्ध ताम्रपत्रों पर लेप करके उन्हें ऊपर नीचे ५-५ तोले गन्धकका चूर्ण बिछाकर एक शरावमें रक्खें और फिर उन्हें मत्स्याक्षि (मछेछी)के रसमें भिगोकर दूसरा शराव ऊपर ढककर सम्पुट बनावें और कपड़मिट्टी करके सुखा ले। इसे ४ पहर तक वालुकायन्त्रमें पकाएं और स्वांगशीतल होनेपर निकालकर पीस लें। (यदि ताम्रपत्र अभी कच्चे हों तो घीकुमारके रसमें घोट-कर पुट लगाकर अच्छी तरह भस्म कर लें।)

इसे १ माशेकी मात्रानुसार शहद और घीके साथ देनेसे परिणामशूल नष्ट होता है। अन्य शूलोंमें त्रिकुटेके चूर्ण और अरण्डीके तेल (काष्ठू-यल्के साथ देना चाहिए।

(व्यवहारिक मात्रा-२-३ रत्ती।)

(२७३६) त्रिपुरभैरवो रसः [४]

(भा. प्र.। ज्वर.)

विषमहौषधभागधिकोषण-
द्युमणिरक्तकमार्द्रकमर्दितम्।
क्रमविवर्धितशुद्दलति ज्वरं
त्रिपुरभैरव एष रसो वरः॥

शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) १ भाग, सोंठ २ भाग, पीपल ३ भाग, काली मिर्च ४ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग और शुद्ध हिङ्गुल (शिंगरफ) ६ भाग लेकर सबको अद्रकके रसमें घोटकर (१-१ रत्तीकी)की गोलियां बना लीजिए।

इन्हें यथोचित अनुपानके साथ सेवन कराने से समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(साधारण अनुपान-मधु।)

(२७३७) त्रिपुरभैरवो रसः [५]

(र. प्र. सु.। अ. ८)

वेदवेदरसः पृथ्व्यः शुण्ठीमरिचटङ्कणाः।
चतुर्थो वत्सनाभश्च वाते त्रिपुरभैरवः॥
भावना नागवल्ल्या च तथार्द्रकस्य भावना।
निम्बुकस्यापि दातव्या वारत्रयमनुक्रमात्॥
सन्निपाते तथा वाते श्लेष्मरोगे महाज्वरे।
व्याधेश्च मस्तकस्यापि पीडायामुदरस्य च॥

सोंठका चूर्ण ४ भाग, काली मिर्चका चूर्ण ४ भाग, सुहागेकी खील ६ भाग और शुद्ध बछ-नाग (मीठा तेलिया) का चूर्ण १ भाग लेकर

सबको एकत्र खरल करके यथाक्रम नागरवेलके पान, अद्रक और नींबूके रसकी ३-३ भावना देकर (१-१ माशेकी) गोलियां बना लीजिए।

इसके सेवनसे सन्निपातज्वर, वातज ज्वर, भयङ्कर कफज्वर, शिरशूल और उदरशूल नष्ट होता है।

(साधारण अनुपान-अद्रकका रस और मधु।)

(२७३८) त्रिपुरसुन्दरो रसः

(भै. र.। आमाशय.)

सिन्दूरमभ्रन्त्वथ हेममाक्षिकं
मुक्ताफलं हेम च तुल्यभागिकम्।
कन्याम्बुना मर्दय सप्तवासरान्
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विधेहि च॥
रसोत्तमस्यास्य निषेवणान्नरा-
माशयोत्थामयरोगसङ्घतः।
गत्वा विमुक्तिं बलवीर्यसंयुतो
मेधान्वितः सौम्यवपुश्च जायते॥
अन्नपानादिकं सर्वं सुजरं यच्च पोषण-
मामाशयगदे सेव्यं दुर्जरश्च विवर्जयेत्॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मोतीकी भस्म और स्वर्णभस्म समान भाग लेकर सबको सात दिन तक घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रसके साथ घोटकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे समस्त आमाशय रोग नष्ट हो कर बल, वीर्य और मेधाकी वृद्धि होती है।

आमाशय रोगमें शीघ्र पचने और पोषण करनेवाला आहार सेवन करना तथा दुर्जर आहार से परहेज़ करना चाहिए।

(२७३९) त्रिपुरारि रसः

(भै. र.; र. रा. सुं.। ज्वर)

दरदोत्थन्तु संशुद्धं रसं ताम्रञ्च गन्धकम्।
लौहमभ्रं विषं चैव सर्वं कुर्यात्समांशकम्॥
रसार्द्धं मृतरूप्यञ्च शृङ्गवेराम्बुमर्दितम्।
द्विगुञ्जं मधुना देयं सितयार्द्ररसेन वा॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति वारिदोषभवं तथा।
प्लीहानमुदरं शोथमतीसारं विनाशयेत्॥
रोगानेतान्निहन्त्याशु शङ्करस्त्रिपुरं यथा॥

हिंगुलोत्थ शुद्ध पारद, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) १-१ भाग तथा चांदी भस्म आधा भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सबको १ दिन अदरकके रसमें घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें शहद अथवा अद्रकका रस और मिश्री के साथ सेवन करनेसे आठ प्रकारके ज्वर विशेषतः पानीकी खराबीसे होनेवाला ज्वर, तिल्ली, उदर विकार, शोथ और अतिसारका नाश होता है।

(२७४०) त्रिफलादि गुटिका

(वृ. नि. र.। त्वग्दोष; यो. र. कुष्ट)

त्रिफलारुष्करलौहैः सावल्गुजभृङ्ग-
लाङ्गलीव्योपैः।
सगुडैर्वराहकन्दैः पलिकैरेकत्र संमिश्रैः॥
गुटिकां प्रकल्प्य खादेदेकैकामक्षसम्मितां प्रातः।
कुष्ठं दद्रुं किलासजित्वा वर्पेण सर्वथा पलितम्॥
जीवति वर्षशतं वै दीप्तहुताशो युवेव सोत्साहः॥

हर्र, बहेड़ा, आमला, भिलावा, लोहभस्म, बावची, भंगरा, कलिहारी, त्रिकुटा, गुड़ और वाराही कन्दका समान भाग चूर्ण लेकर कूटकर १-१ कर्ष (१। तोले)की गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल १ गोली खानेसे कुष्ठ, दाद और किलासकुष्ट नष्ट होता है।

इन्हें १ वर्ष तक सेवन करनेसे पलित रोग नष्ट हो जाता है और मनुष्य १०० वर्ष तक युवाके समान रहता है।

(व्यवहारिक मात्रा-१-१॥ माशा।)

(२७४१) त्रिफलादि चूर्णम्

(यो. र.; वं. से.। नेत्र.; वृ. यो. त.। त. १५)

त्रिफलात्वचमायसं च चूर्णं
समयष्टीमधुकं त्रिसप्तरात्रम्।
मधुना सह सर्पिषा दिनान्ते
पुरुषो निष्परिहारमाददीत ॥
तिमिरार्बुदरक्तराजिकण्डूक्षणदा-
न्ध्यामयदाहशूलतोदान्।
पटलं च सशुक्रकाचपिल्लं
शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः॥
न च केवलमेव लोचनानां
विहितो रोगनिबर्हणाय योगः।
दशनश्रवणोर्ध्वजत्रुजानां
प्रशमे हेतुरयं महामयानाम् ॥
गुदजानि भगन्दरप्रमेहा-
नाहकुष्ठानि हलीमकं किलासम्।
पलितानि विनाशयेत्तथाऽ
ग्निं चिरनष्टं कुरुते रविप्रचण्डम् ॥
प्रमदासिरयं जराधिरूढः
स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु।
सुरतानि पदे पदे निषेवेत्पुरुषो
योगमिमं निषेवमाणः॥
स्मृतिविक्रमबुद्धिशक्तियुक्तः
शारदां जीवति वै शतं समग्रम्।
सुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना
शिरोरुहैरञ्जनसेचकप्रभैः॥
भवेत्सुगृध्रस्य समानलोचन-
श्चिरं नरो वर्षशतं तु जीवति ॥

त्रिफला, लोहचूर्ण और मुलैठी समान भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे २१ दिन तक प्रतिदिन सायङ्कालके समय घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे तिमिर, नेत्रार्बुद, आंखकी पुतली पर लाल धारियां होना, खुजली, क्षणिक अन्धता, दाह, शूल, तोद, पटल, शुक्र, काच (मोतिया बिन्द) और पिल्ल रोग नष्ट होता है।

यह चूर्ण केवल नेत्ररोगोंको ही नष्ट नहीं करता अपितु दन्तरोग, कर्णरोगादि ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको भी नष्ट करता है। इनके सिवाय अर्श (बवासीर), भगन्दर, प्रमेह, आनाह, किलासकुष्ठ, हलीमक और पलितादि रोग भी इसके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं।

इसके सेवनसे पुराना अग्निमांद्य नष्ट हो कर अग्नि अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाती है; अधिक स्त्री प्रसंगके कारण निर्बल हुवे पुरुषोंमें पुनः शक्तिका सञ्चार होता है, स्मृति, बुद्धि और बलयुक्त होकर मनुष्य १०० वर्ष तक जीवित रहता है, उसका

मुख कमलपुष्पके समान सुन्दर और सुगन्धित, तथा बाल सुरसेकी भांति काले और दृष्टि गिद्धके समान तीव्र हो जाती है।

(नोट—यदि लोहचूर्णके स्थानमें लोहभस्म डाली जाय तो अच्छा है। मात्रा-१॥ माशे से ३ माशे तक। घी १ तोला, शहद २ तोले।)

(२७४२) त्रिफलादि मण्डूरम्

(र. का. धे. अधि. ११)

त्रिफला कुण्डली भृङ्गकेशराजाटरूषकम्।
शतावरी श्रावणी च बलाकूलकपर्पटाः॥
भार्ङ्गी किराततिक्तं च निम्बं मण्डूकपर्णिका।
कषायैर्भावयेदासां मण्डूरं बहुवार्षिकम्॥
त्रिफलायाः रसे पूते पचेदष्टगुणे ततः।
मण्डूरेण समं दद्यात् सिता सर्पिः सुमाक्षिकम्॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गाजाजि चित्रकम्।
यवानी मधुकं धान्यं चातुर्जातकपादिकम्।
भक्षयेत्तद्यथा कालमम्लपित्तेन पीडितः॥

त्रिफला, गिलोय, भंगरा, काला भंगरा, अडूसा (बासा), शतावर, मुण्डी, बला (खरैटी), पटोल, पित्तपापड़ा, भारङ्गी, चिरायता, नीमकी छाल और ब्राह्मी। इनमेंसे प्रत्येकके स्वरस या क्वाथकी पुराने मण्डूरकी भस्मको १-१ भावना देकर उसे आठगुने त्रिफला क्वाथमें पकाइए। जब क्वाथ सूख जाय तो मण्डूरका चूर्ण करके उसमें उसके बराबर मिश्री, घी और शहद तथा हर्र, बहेड़ा, आमला, त्रिकुटा, मोथा, बायबिड़ङ्ग, जीरा, चीता, अजवायन, मुलैठी, धनिया, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसरका समान भाग मिला हुवा चूर्ण मण्डूरसे चौथाई मिलाकर चिकने पात्रमें भरकर रख दीजिए।

इसके सेवनसे अम्लपित्त नष्ट होता है।

(मात्रा—१॥ माशा।

(२७४३) त्रिफलादिमोदकः

(शा. सं. । खं. २ अ. ६; यो. चिं. । अ. ३)

त्रिफला त्रिपलं[1] कार्या भल्लातानां चतुःपलम्।
वाकुची पञ्चपलिका विडङ्गानां चतुःपलम्॥
हतं लौहं त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु।
एकैकं पलमात्रं स्यात्पलार्धं पौष्करं भवेत्॥
चित्रकस्य पलार्द्धं स्यात् त्रिशाणं मरिचं भवेत्।
नागरं पिप्पली मुस्ता त्वगेला पत्रकुङ्कुमम्॥
शाणोन्मितो स्यादेकैकश्चूर्णयेत्सर्वमेकतः।
ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णं पक्वखण्डे च तत्समे॥
मोदकान्पलिकान् कृत्वा प्रयुञ्जीत यथोचितम्।
हन्युः सर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोषप्रभवामयान्॥
शिरोक्षिभ्रूगतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि।
प्राग्भोजनस्य देयं स्यादधःकायस्थिते गदे॥
भेषजं भक्तमध्ये च रोगे जठरसंस्थिते।
भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषु च॥

हर्र, बहेड़ा, आमला १-१ पल, शुद्ध भिलावा ४ पल, बावची ५ पल, बायबिड़ंग ४ पल तथा लोहभस्म, निसोत, गूगल और शिलाजीत १-१ पल (५-५ तोले), पोखरमूल और चीता आधा आधा पल, मिर्च ११। माशे और सोंठ, पीपल, मोथा, दालचीनी, इलायची, पत्रज और केसर

१ षट्पलेति पाठान्तरम्।

प्रत्येक ३॥। माशे। सबका महीन चूर्ण करके उसे सबके बराबर खाण्डकी चाशनीमें मिलाकर ५-५ तोलेके मोदक बना लीजिए।

इन्हें यथोचित मात्रा और अनुपानके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ, शिर, आंख और भ्रूके रोग तथा मन्या (गलेकी नस) और पीठके रोग नष्ट होते हैं।

औषध-नाभिसे नीचेके रोगोमें भोजनसे पहिले, उदर विकारोंमें भोजनके मध्यमें और गलेसे ऊपरके रोगोमें भोजनके अन्तमें सेवन करानी चाहिए।

(२७४४) त्रिफलादियोगः (ग. नि.। नेत्र.)

त्रिफला लोहचूर्णश्च पटोली मधुयष्टिका।
सर्वमेकांशतः पथ्या विभीतामलकं क्रमात्॥
द्वित्र्यक्षिभागिकं रुद्रभागाः स्युस्तवराजकात्।
सर्पिषा भक्षिते यान्ति विचूर्णेऽक्षिरुजोऽखिलाः॥

त्रिफला, लोहचूर्ण, पटोल और मुलैठी एक एक भाग, हर्र २ भाग, बहेड़ा ३ भाग, आमला २ भाग और यवासशर्करा (शीर खिस्त-जवासेकी खांड) ८ भाग लेकर चूर्ण बना लीजिए।

इसे घीमें मिलाकर सेवन करनेसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

(२७४५) त्रिफलादिलेहः

(वृ. यो. त.। त. ७४, वृ. नि. र। पाण्डु.)

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च।
भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गात्तथैव च॥
पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च।
शुद्धलोहस्य रजसो भागाश्चाष्टौ प्रकल्पयेत्॥[1]
अष्टौ भागाः सितायास्तु तत्सर्वं मधुसंयुतम्।
श्लक्ष्णचूर्णं सुसंस्थाप्यमायसे भाजने शुभे॥
उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्नि ना।
दिने दिने प्रयोक्तव्यं जीर्णे भोज्यं यथोचितम्॥
वर्जयित्वा कुलित्थांस्तु काकमाचीकपोतकान्।
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम्॥
कुष्ठानि जठरं मेहं श्वासं शोफमरोचकम्।
विशेषाच्च ह्यपस्मारं कामलां गुदजानि च॥

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आमला) ३ भाग, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) ३ भाग, चीतेकी जड़ तथा वायविड़ंग १-१ भाग, शिलाजीत और रूपामक्खी भस्म ५-५ भाग, शुद्ध लोहचूर्ण (भस्म) और मिश्री ८-८ भाग। सब चीजोंके महीन चूर्णको शहदमें मिलाकर अवलेह (चटनी) बनाकर लोहेके पात्रमें भरकर रख दीजिए। इसमें से प्रतिदिन गूलरके फलके बराबर अथवा अग्नि बलानुसार न्यूनाधिक मात्रामें खानेसे पाण्डु रोग, विषविकार, खांसी, क्षय, विषमज्वर, कुष्ठ, उदर-विकार, प्रमेह, श्वास, सूजन, अरुचि और विशेषकर अपस्मार, कामला तथा बवासीर का नाश होता है।

(२७४६) त्रिफलादिलोहम् (भै. र.। आ. वा.)

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं वचा।
चित्रकं मधुकश्चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम्॥
अयश्चूर्णपलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव हि।
आलोड्य मधुनोपेतं पलद्वादशकेन च॥

---

[1] माक्षिकस्य च शुद्धस्य लोहस्य रजसस्तथेति पाठान्तरम्।

प्रातर्विलिह्य भुञ्जानो जीर्णे तस्मिञ्जयेद्रुजः।
दुःसाध्यमामवातञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम्॥
जीर्णान्नसंभवं शूलं श्वयथुं विषमज्वरम्॥

त्रिफला, मोथा, त्रिकुटा, वायबिडंग, पोखरमूल, बच, चीता और मुलैठका महीन चूर्ण १-१ पल (५-५ तोले) तथा शुद्ध लोहचूर्ण (अथवा भस्म) और शुद्ध गूगल ८-८ पल लेकर सबको एकत्र कूटकर १२ पल शहदमें मिलाकर रक्खें।

इसे प्रातःकाल सेवन करनेसे दुस्साध्य आमवात, पाण्डु, हलीमक, परिणामशूल, शोथ और ज्वर नष्ट होता है। (मात्रा-१॥ माशा।)

(२७४७) त्रिफलाद्यो लेहः

(ग. नि.। पाण्डु.; वै. क. द्रु.। पाण्डु.)

त्रिफला द्वे हरिद्रे च कटुरोहिण्ययोरजः।
चूर्णितं मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेत् कामलापहम्॥

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी और लोहभस्म समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर यथोचित मात्रानुसार घी और शहदके साथ सेवन करनेसे कामला रोग नष्ट होता है।

(मात्रा-१॥-२ माशे।)

(२७४८) त्रिफलामण्डूरम्

(भै. र.; धन्वं.। अम्लपि.)

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम्।
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्त्यम्लपित्तजम्॥

गोमूत्रमें शुद्ध किया हुवा मण्डूर और त्रिफलाका चूर्ण समान भाग लेकर दोनो को एकत्र मिलाकर शहद और घीके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त जनित शूल नष्ट होता है।

(मात्रा-२-३ माषे। अनुपान-शीतलजल।)

(२७४९) त्रिफलारसायनम्

(धन्वं.; र. र.। रसा.)

त्रिफलायाः पलशतं चूर्णं भृङ्गरसाम्बुना।
भावयेत्सप्तवारांस्तु छायाशुष्कन्तु कारयेत्॥
पादं गन्धकचूर्णस्य तदर्द्धं पारदं क्षिपेत्।
लिह्यान्मधुघृताभ्यां च मात्रया प्रत्यहं पुमान्॥
जीर्णे भोज्ये ह्यनाहारे गुणानेतानवाप्नुयात्।
प्रसन्नदृष्टिर्व्याधिर्जीवेद्वर्षशतत्रयम्॥

१०० पल त्रिफलाचूर्णको भंगरेके रसकी सात भावना देकर छायामें सुखाकर उसमें २५ पल शुद्ध गन्धक और १२॥ पल शुद्ध पारदकी कज्जली मिलाकर खरल करके रक्खें।

इसे नित्य प्रति यथोचित मात्रानुसार प्रातःकाल, भोजनके पहिले और भोजन पचनेपर घी तथा शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मनुष्य सर्व व्याधि रहित ३०० वर्षकी आयु प्राप्त कर सकता है तथा दृष्टि निर्मल हो जाती है।

(मात्रा-१-१॥ माशा।)

(२७५०) त्रिफलालोहः [१] (र. र.। ज्वर.)

त्रिफलामृतलोहञ्च भृङ्गराजं च चूर्णितम्।
चूर्णमर्जुनपत्रस्य त्रिजातक शिलाजतु॥
त्र्यूषणं तुल्यतुल्यांशं सर्वेषाञ्च समांशतः।
क्षौद्रेण वटिका कार्या कर्षमात्रन्तु भक्षयेत्॥
सर्वज्वरहरः श्रेष्ठो ह्यनुपानं प्रकल्पयेत्॥

त्रिफला, लोहभस्म, भंगरा, अर्जुनके पत्ते, दालचीनी, इलायची, तेजपात, शिलाजीत और त्रिकुटेका समान भाग चूर्ण लेकर सबको शहदमें मिलाकर गोलियां बनाएं।

इन्हें यथोचित अनुपानके साथ १। तोलेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। (व्यवहारिक मात्रा—२ माशे।)

(२७५१) त्रिफलालौहः [२]

(र. सा. सं.। अजी.)

त्रिफलामुस्तवेल्लैश्च सितया कणया समम् ।
खरमञ्जरीबीजैश्च लौहं भस्मकनाशनम् ॥

त्रिफला, मोथा, वायबिडङ्ग, मिश्री, पीपल और अपामार्ग (चिरचिटे) के बीजोंका चूर्ण १-१ भाग तथा लोहभस्म इन सबके बराबर लेकर एकत्र खरल कराइए।

इसे यथोचित मात्रानुसार सेवन करने से भस्मक रोग नष्ट होता है।

(मात्रा—४-६ रत्ती।)

(२७५२) त्रिफलालौहः

(रसे. सा. सं.; र. रा. सुं; धन्वं.। शूल. रसे. चि.। अ. ९)

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफल चूर्णमुत्तमम् ।
क्षीरेण पाययेद्धीमान्सद्यः शूलनिवारणम् ॥

तीक्ष्ण लोहभस्म और त्रिफलाचूर्ण बराबर बराबर लेकर, एकत्र मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे शूल तुरन्त नष्ट हो जाता है।

(मात्रा—१ माषा।)

(२७५३) त्रिफलालौहम् (च. सं.। ग्रहणी)

त्रिफलां कटभीं चव्यं बिल्वमध्यमयोरजः ।
रोहिणीं कटुकां मुस्तं कुष्ठं पाठाञ्च हिङ्गु च ॥
मधुकं मुष्ककयवक्षारौ त्रिकटुकं वचाम् ।
विडङ्गं पिप्पलीमूलं स्वर्जिकां चित्रनिम्बकौ ॥
मूर्वाऽजमोदेन्द्रयवान् गुडूचीं देवदारु च ।
कार्षिकं लवणानाञ्च पञ्चानां पलिकान्पृथक् ॥
भागान् दध्नि त्रिकुडवे घृततैलेन मूर्च्छितान् ।
अन्तर्धूमं शनैर्दग्ध्वा तस्मात्पाणितलं पिबेत् ॥
सर्पिषा कफवातार्शो ग्रहणीपाण्डुरोगवान् ।
प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिक्काकासकृमिज्वरान् ॥
शोषातिसारौ श्वयथुं प्रमेहानाहहृद्ग्रहान् ।
हन्यात्सर्वविषश्चैव क्षारोऽग्निजननो वरः ॥

त्रिफला, मालकंगनी, चव्य, बेलगिरी, लोह चूर्ण, मांसरोहिणी, कुटकी, मोथा, कूठ, पाठा, हींग, जवाखार, मुष्कक (मोखावृक्ष) का क्षार, मुलैठी, त्रिकुटा, वच, वायविडंग, पीपलामूल, सज्जी, नीमकी छाल, चीता, मूर्वा, अजमोद, इन्द्रजौ, गिलोय और देवदारु। प्रत्येक १-१ कर्ष (१।-१। तोला); सेंधा नमक, काला नमक, खारी नमक, काचलवण और सामुद्र नमक १-१ पल (५-५ तोले)। इन समस्त औषधियोंके चूर्णमें थोड़ा थोड़ा घी और तैल मिलाकर उसे ३ कुड़व (६० तोले) दहीमें मिलाकर हाण्डीमें भरकर उसके मुखको अच्छी तरह बन्द करके और उसपर कपड़मिट्टी करके सुखाकर चूल्हेपर रखकर नीचे मन्दाग्नि जलाइए। जब समझें कि अब चूर्णकी भस्म हो गई होगी तब अग्नि बन्द कर दें और हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकाल लें।

इसे ४ माशेकी मात्रानुसार घीके साथ सेवन करनेसे कफ वातज अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, तिल्ली, मूत्रावरोध, श्वास, हिचकी, खांसी, कृमि, ज्वर,

शोथ, यक्ष्मा, अतिसार, प्रमेह, अफारा, हृद्रोग और समस्त प्रकारके विषोंका नाश होता है।

(२७५४) त्रिभुवनकीर्तिरसः [१]

(र. प्र. सु.। अ. ६; र. चं.। उदर.)

शुद्धस्य ताम्रस्य दलानि कुर्यात्
पलानि त्रीण्येव च गन्धकस्य।
पलद्वयं वै रुचकस्य चैकं
पलं रसस्यापि विमर्द्य खल्वे॥
चूर्णं विधायाप्यथ सिन्दुवार-
रसेन पत्राणि विलेपयेच्च।
तत्सम्पुटस्यान्तरतो निधाय
विमुद्रय तत्सम्पुटमेव वह्नौ॥
यामं तथैकं पुटयेच्च गोमयै-
र्जातं सुशीतं हि विचूर्णयेत्तत्।
तन्नागवल्लीदलमध्यतोऽपि
वल्लैकमात्रं सकलोदरघ्नम्॥

शुद्ध ताम्रपत्र और शुद्ध गन्धक ३-३ पल, सञ्चल नमक (काला नमक) २ पल और शुद्ध पारा १ पल (५ तोले) लेकर प्रथम पारे और गन्धककी महीन कज्जली बनाइए और फिर उसमें सञ्चल लवणका चूर्ण मिलाकर उसे संभालुके रसमें घोटकर पिट्ठीसी बना लीजिए और ताम्रपत्रोंपर उसका लेप करके उन्हें सम्पुटमें बन्द करके १ पहर तक उपलोंकी आँचमें पकाइए। तत्पश्चात् पुटके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रखिए।

इसे ३ रत्तीकी मात्रानुसार पानमें रखकर खिलानेसे समस्त उदररोग नष्ट होते हैं।

(२७५५) त्रिभुवनकीर्तिरसः [२]

(वृ. नि. र.; र. चं.; यो. र.। ज्वर.)

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं टङ्कणं मागधीशिफा।
संचूर्ण्य भावयेत्त्रेधा सुरसार्द्रकहेमभिः॥
रसस्त्रिभुवनकीर्तिः सगुञ्जैकार्द्रद्रवेण वै।
सर्वज्वरविनाशं च सन्निपातास्त्रयोदश॥

शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया), त्रिकुटा, सुहागेकी खील और पीपलामूल। इन सबके समान भाग महीन चूर्णको तुलसी, अद्रक और धतूरेके रसकी तीन तीन भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें अद्रकके रसके साथ सेवन करनेसे १३ प्रकारके सन्निपात और अन्य समस्त प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं।

(२७५६) त्रिमूर्त्तिरसः

(वृ. नि. र.; यो. र.। मेदो.)

सूतं गन्धमयोभस्म समं सम्मेल्य भावयेत्।
निर्गुण्डीपत्रतोयेन मुसलिकन्दवारिणा॥
ततः सिद्धममुं माषमात्रं रसमनुत्तमम्।
लोध्रक्षौद्रेण चाश्नीयाच्चूर्णं मापोन्मितं हितम्॥
षटकटु त्रिफला पञ्चलवणाऽम्लगुजस्य तत्।
मेदशोथाग्निमान्द्यामवातश्लेष्मगदप्रणुत्॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लोह भस्म समान भाग लेकर तीनोंकी कज्जली बनाकर उसे १-१ दिन सभालुके पत्तोंके रस और मूसलीके काथमें घोटकर १-१ माशेकी गोलिया बना लीजिए, और पीपल, पीपलामूल, चव, चीता,

सोंठ, स्याहमिर्च, हर्र, बहेड़ा, आमला, सेंधा लवण, समुद्र लवण, विडलवण, काच लवण, सञ्चल नमक और वावची समान भाग लेकर चूर्ण कर लीजिए।

प्रतिदिन उपरोक्त रसमेंसे एक एक गोली लोधके चूर्ण और शहदके साथ खाकर इस चूर्णमेंसे १ माषा (पानीसे) खानेसे मेद, शोथ, अग्निमांद्य, आमवात और कफविकार नष्ट होते हैं।

(व्यवहारिक मात्रा—आधी गोली।)

(२७९७) त्रियोनिरसः

(र. र. स.। उ. ख. अ. १९; र. रा. सुं.। पाण्डु)

ताम्रस्य तुर्यभागेन रसेनोन्मुल्य लेपयेत्।
निम्बुद्रावेण संयोज्य सूर्यतापे विनिक्षिपेत्॥
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा पाचयेदति यत्नतः।
मत्स्याक्षीमभितो दत्त्वा मृत्स्नया सन्निरुध्य च॥
यामद्वयं सुपक्वं च स्वांगशीतं समुद्धरेत्।
गुञ्जामात्रं ददीतास्य साभयगुडसंयुतम्॥
त्रियोन्याख्यो रसो ह्येष शोफपाण्डुपनोदनः॥

(ताम्रमारणम् सं. २५९१ देखिए।)

उसमें वालुकायन्त्रमें पकानेके पश्चात् भी १ पुट लिखी है परन्तु इसमें नहीं है। शेष प्रयोग लगभग समान है। यदि पुट दी जाय तो कुछ हानि नहीं, अपितु लाभ ही हो सकता है।

(२७९८) त्रिवङ्गभस्म (रसायनसार)

जसदं वङ्गनागौ च समस्तेन मेलयेत्।
घृष्ट्वा निम्बुम्बुना ताल गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत्॥ १
खट्वाङ्गनलिकायन्त्रे मन्दादिक्रमवह्निना।
धूमनिर्गमनस्यान्ते पक्त्वा शीतं समुद्धरेत्॥
नलीस्थं तालसिन्दूरं त्रिवङ्गं तलसंस्थितम्।
सङ्गृहीतं पृथग् नाऽपि वासाक्षौद्रेण सेव्यताम्॥
कासः श्वासः क्षयो रक्तपित्तं कुष्ठं प्रमेहकः।
अबल्यं वह्निमान्द्यं च मुक्त्वा गच्छन्ति रोगिणम्॥
तारस्य जसदस्थाने योजनेनाऽपि सिध्यति।
त्रिवङ्गाऽऽख्यो रसस्तस्य वलीयासो गुणास्ततः॥

अर्थ—पांच तोले जस्ता, पांच तोले रांगा, पांच तोले शीशा, इन तीनोंको गलाकर पन्द्रह तोले हिंगुलोत्थ पारदमें मिला दें। इन चारों चीजोंकी पिट्ठीको नींबूके रसके साथ घोटकर पानीसे धो डालें। इस पिट्ठीमें कपड़छन की हुई पन्द्रह तोले तवकिया हरताल और १ तोला गन्धक डालकर कज्जली करलें। इस कज्जलीको नलिकाडमरूयन्त्रमें रखकर मन्द मध्यादि क्रमसे दो दिन तक आंच दें। जब नलीसे धूम निकलना बन्द हो जाय तब यन्त्रके ठण्डे होनेपर नलीके चारों तरफ तालसिन्दूर मिलेगा और नीचेकी हाण्डीमें बङ्गभस्म मिलेगी। तालसिन्दूर और त्रिवङ्गभस्म इन दोनोंको मिलाकर घोटकर सेवन करें। अथवा खाली त्रिवङ्गभस्म सेवन करें। इसका अनुपान अरडूसाके क्वाथको ठंडा करके ६ माशे शहद डालकर सेवन करते हैं; यदि क्वाथ करनेमें परिश्रम मालूम हो तो तीन माशे चूर्ण ही ले। इस रसकी मात्रा १ रत्तीसे ४ रत्ती तक देते हैं। अरडूसाके साथ प्रयोग करनेसे बहुत शीघ्र फल होता है, क्यों कि "वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी रोगी किमर्थमवसीदति?" यह सिद्धान्त प्रसिद्ध है। त्रिवङ्गके सेवन करनेसे

खांसी, श्वास (दमा), क्षयरोग, रक्तपित्त, कुष्ट, प्रमेह, दुर्बलता, मन्दाग्नि नष्ट हो जाते हैं। इस त्रिवङ्ग बनानेके लिए जस्तेकी जगह ५ तोले शुद्ध की हुई चॉदीको डालनेसे भी पूर्वोक्तविधिसे त्रिवङ्गभस्म तैयार हो जाती है। परन्तु पूर्व त्रिवङ्गकी अपेक्षा चाँदीकी त्रिवङ्गमें प्रबल गुण होते हैं।

(रसायनसारसे)

(२७५९) त्रिविक्रमोरसः

(र. रा. सुं.; यो. र.; र. चं.; रसें. सा. सं.; धन्वं.; र. र.। अश्मरी.; र. चिं.। स्तव. ११; शा. सं.। म. अ. १२, रसें. चिं.। अ. ९; वृ. यो. त.। त. १०२; यो. त.। त. ५०; र. प्र. सु.। अ. ८; र. स. क.। उल्ला. ५)

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे।
तत्ताम्रं शुद्धसूतश्च गन्धकं च समं समम् ॥
निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकीकृतम्।
यामैकं वालुकायन्त्रे पक्त्वा योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥

बीजपूरस्य मूलञ्च सजलं चानुपाययेत्।
रसस्त्रिविक्रमो नाम शर्करामश्मरीं जयेत् ॥

ताम्रभस्मको समान भाग बकरीके दूधमें मन्दाग्निपर पकाइए, जब समस्त दूध सूख जाय तो वह ताम्र, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर तीनोंकी कज्जली करके उसे १ दिन सभालुके पत्तोंके रसमें घोटकर गोला बनाकर सुखाकर सम्पुटमें बन्द कर दीजिए और उसे वालुकायन्त्रमें रखकर १ पहर (तीव्राग्नि) पर पकाइए। तत्पश्चात् यन्त्रके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रखिए।

इसमेंसे २ रत्ती रस बिजौरे नींबूकी जड़के पानीमें पीसकर उसके साथ सेवन करानेसे शर्करा और अश्मरी (पथरी) नष्ट होती है।

(२७६०) त्रिविष्टपररसः (रसें. मं.। अ. ३)

दैत्येन्द्रतारताम्राणां कृत्वा चैकत्र पिष्टिकाम्।
तत्समं चाभ्रकं श्लक्ष्णं गन्धकं पञ्चमांशतः ॥
विषं च षोडशांशेन द्वौ भागौ सूतकस्य च।
एकीकृत्य प्रयत्नेन जम्बीररसमर्दितान् ॥
भाजने मृण्मये स्थाप्य पाचयेत् त्रिफलारसे।
दशमूलशतावर्योः क्वाथे पाच्य क्रमेण हि ॥
ततोऽतार्य प्रयत्नेन वटिकाः कारयेद्बुधः।
गुञ्जात्रयप्रमाणेन खादेद्धृद्रोगशूलनुत् ॥

शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ), चांदीभस्म और ताम्रभस्म बराबर बराबर लेकर सबको एकत्र खरल करें। फिर उसके बराबर अभ्रकभस्म, उसका पांचवां भाग शुद्ध गन्धकका बारीक चूर्ण, सोलहवां भाग शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) और दो गुना शुद्ध पारा लेकर पारे गन्धककी पृथक् कज्जली बनाकर सब चीजोंको एकत्र मिलाकर १ दिन जम्बीरी नींबूके रसमें घोटिये और फिर उसमें (सबका चार गुना) त्रिफलाका क्वाथ मिलाकर मिट्टीके बरतनमें पकाइए, तत्पश्चात् क्रमशः ४-४ गुने दशमूल क्वाथ और शतावरके रस या क्वाथमें पकाकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे हृद्रोग और शूल नष्ट होता है।

(२७६१) त्रिसङ्कष्टो रसः

(र. रा. सुं.; र. का. धे. । पाण्डु.)

सूतार्कहेमताराणां समं पिष्टिं प्रकल्पयेत् ।
जम्बीरनीरसंयुक्तमातपे शोषयेद्दिनम् ॥
ऊर्ध्वाधो द्विगुणं देयं गन्धमस्यां क्षिपेत्क्षितिम् ।
भाण्डगर्भे निरुध्याथ द्वियामं पाचयेल्लघु ॥
आदाय चूर्णयेत् श्लक्ष्णं त्रिसङ्कष्टो महारसः ।
हरीतक्या समं देयं द्विगुञ्जं पाण्डुरोगजित् ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म और चांदी भस्म समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके १ दिन जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर धूपमें सुखावें, तत्पश्चात् नीचे ऊपर उसके बराबर शुद्ध गन्धकका चूर्ण रखकर उसे दो शरावोंमें सम्पुट करें, और वालुकायन्त्रमें रखकर २ पहर तक मन्दाग्नि पर स्वेदित करें, पश्चात् यन्त्रके स्वांग शीतल होने पर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर रक्खें ।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार हर्रके चूर्ण (और शहद) के साथ सेवन करनेसे पाण्डुरोग नष्ट होता है ।

(२७६२) त्रिसुन्दरो रसः[1] (रसें. चि.। अ.९)

शुद्धसूतं मृतं चाभ्रं गन्धकं मर्दयेत्समम् ।
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥
चालयेल्लोहदण्डेन अवतार्य विभावयेत् ।
त्रिदिनं जीरकक्वाथैर्माषैकं भक्षयेत्सदा ॥
ग्रहणी शान्तिमायाति सर्वोपद्रवसंयुता ॥

शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर तीनोंकी कज्जली बनाइए, फिर एक लोहपात्रमें जरासा घृत लगाकर उसमें इस कज्जलीको डालकर मन्दाग्नि पर पकाइए। और लोहेकी मुसली आदिसे चलाते रहिए। जब कज्जली पिघल जाय तो पात्रको अग्निसे नीचे उतार लीजिए और औषधको खरलमें डालकर तीन दिन तक ज़ीरेके क्वाथमें घोटिए ।

इसे १ माशेकी मात्रानुसार सेवन करनेसे उपद्रवयुक्त ग्रहणी भी शान्त हो जाती है ।

(व्यवहारिक मात्रा—४-५ रत्ती । अनुपान-ज़ीरेका क्वाथ ।)

(२७६३) त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः [१]

(र. सा. सं.; र. चं. । ज्व.)

भागत्रयं[1] स्वर्णभस्म द्विभागं तारमभ्रकम् ।
लौहात्पञ्च प्रवालं च मौक्तिकं त्रयसम्मितम् ॥
भस्मसूतं सप्तकं च सर्वं मर्द्यं तु कन्यया ।
छायाशुष्का वटी कार्या छागीदुग्धानुपानतः ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं गुल्मं चापि प्रमेहनुत् ।
जीर्णज्वरहरश्चायं उन्मादस्य निकृन्तनः ॥
सर्वरोगहरश्चापि वारिदोषनिवारणः ॥

स्वर्णभस्म ३ भाग, चांदीभस्म और अभ्रक भस्म २-२ भाग, लोहभस्म ५ भाग, प्रवाल (मूंगा) और मोती भस्म ३-३ भाग तथा पारदभस्म (अभाववमें रससिन्दूर) सात भाग लेकर सबको घीकुमारके रसमें घोटकर (३-३ रत्तीकी) गोलियां बनाकर छायामें सुखा लीजिए।

---

१ योगरत्नाकरोक्त 'त्रिनेत्र रस' और इसमें केवल भावनाका ही अन्तर है; प्रधान उपादान दोनोंके समान ही हैं।

१ भागद्वयमिति पाठान्तरम् ।

इन्हें बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे क्षय, खांसी, गुल्म, प्रमेह, जीर्णज्वर, उन्माद और जलदोषादि अनेकों रोग नष्ट होते है।

(२७६४) त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः [२]

(र. चं.; र. सा. सं.; र. रा. सुं.; धन्व.; आ. वे. वि.। वातव्या.)

हीरं सुवर्णं सुमृतं च तार-
मेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम्।
समं मृताभ्रं रससिन्दूरञ्च
निष्पिष्टतीक्ष्णस्य तथाऽश्मनो वा॥
खल्ले द्रवेणैव कुमारिकायाः
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात्।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरेष नाम्ना
सम्पूज्य सम्यग्गिरिजां दिनेशम्॥
हन्त्यामयान् योगशतैर्विवर्ज्या-
नथ प्रणाशाय मुनिप्रणीतः।
अस्य प्रसादेन गदानशेषान्
जरां विनिर्जित्य सुखं विभाति॥

हीराभस्म, स्वर्णभस्म और चांदीभस्म १-१ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ३ भाग तथा अभ्रकभस्म और रससिन्दूर ६-६ भाग लेकर सबको पत्थर या लोहेके चिकने खरलमें घीकुमार (ग्वारपाठा)के रसमें मर्दन करके १-१ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे समस्त रोग नष्ट होते हैं। जो रोग अन्य सैकड़ो औषधोंसे नष्ट नहीं होते वह भी इससे नष्ट हो जाते हैं।

(२७६५) त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः [३]

(र. रा. सुं; भै. र.; र. चं.; यो. र.। राजय.; वृ. यो. त.। त. ६७)

रसं वज्रं हेमतारं ताम्रतीक्ष्णाभ्रकं मृतम्।
गन्धकं मौक्तिकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला॥
शोधितञ्च समं सर्वं सप्ताहं भावयेद्दृढम्।
चित्रमूलकषायेण भानुदुग्धैर्दिनत्रयम्॥
निर्गुण्डीसूरणद्रावैर्वज्रीदुग्धैर्दिनत्रयम्।
अनेन पूरयेत्सम्यक् पीतवर्णान् वराटकान्॥
टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तेषां मुखं लिपेत्।
रुध्वा भाण्डे पुटेत्पश्चात् स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत्॥
चूर्णतुल्यं मृतं सूतं वैक्रान्तं सूतपादकम्।
शिग्रुमूलद्रवैःसर्वं सप्तवारं विभावयेत्॥
चित्रमूलकषायेण भावनाचैकविंशतिः।
*आर्द्रकस्य रसेनैव भावना सप्त एव च॥
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा चूर्णपादांशटङ्कणम्।
टङ्कणांशवत्सनाभं तत्समं मरिचं क्षिपेत्॥
मातुलुङ्ग आर्द्रकस्य रसेन तद्विलोडयेत्।
चतुर्गुञ्जामितं खादेत् कणाक्षौद्रं लिहेदनु॥*
अनुपानैः समायोज्यं सर्वरोगोपशान्तये।
वह्निं दीपयते बलं च कुरुते तेजो महद्वर्धते॥
वीर्यं वर्द्धयते विषं च हरते दार्ढ्यं च धत्ते तनौ।
अभ्यासेन विनिहन्ति मृत्युं पलितं पुष्टिं
प्रदत्ते नृणाम्॥
कासं तुन्दयते क्षयं क्षपयते
श्वासं च निर्णाशयेत्।

* इन चिह्नोंके अन्तर्गत श्लोक कई ग्रन्थोंमें नहीं है।

वातं विद्रधिं पाण्डुशूलग्रहणी
रक्तातिसारं जयेत् ॥
प्रमेहप्लीहजलोदराश्मरितृषा
शोफोहलीमोदरम् ।
भूतोत्थं च भगन्दरं ज्वरगणं
चार्शांसि कुष्ठाञ्जयेत् ॥
साध्यासाध्यरुजां निहन्ति स रस-
स्त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥

शुद्ध पारद, हीराभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, मोतीभस्म, शंखभस्म, प्रवालभस्म, हरतालभस्म और शुद्ध मनसिल समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बना लीजिए और फिर अन्य औषधें मिलाकर सबको सात दिन चीतेकी जड़के काथमें और ३-३ दिन आकके दूध, संभालूके रस, सूरण (जिमीकन्द)के रस और सेहुंड (सेंड-थोहर)के दूधमें घोटकर लुगदी बनाकर उसे पीले रंगकी कौडियोंमें भर दीजिए और सुहागेको आकके दूधमें पीसकर उससे उनका मुख बन्द कर दीजिए, तत्पश्चात् उन्हें शरावसंपुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए और स्वांगशीतल होनेपर निकालकर पीसकर उसमें उसके बराबर पारदभस्म (अभावमें रससिन्दूर) और उससे चौथाई (चतुर्थांश) वैक्रान्तभस्म मिलाइए। तत्पश्चात् उसे सहंजनेकी जड़की छालके काथकी सात भावना, चित्रकमूलके काथकी २१ भावना और अद्रकके रसकी सात भावना देकर महीन चूर्ण बनाइए और उसमें उसका चतुर्थांश सुहागा, शुद्ध बछनाग (मीठा तेलिया) और काली मिर्चमेंसे प्रत्येकका चूर्ण तथा लौंग, सोंठ, हर्र, पीपल और जायफलमेंसे प्रत्येकका महीन चूर्ण बछनागका चतुर्थांश मिलाकर सबको एक दिन नींबू और अद्रकके रसमें घोटकर चार चार रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे प्रतिदिन १-१ गोली खाकर ऊपरसे पीपलके (१॥ माशा) चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे समस्त रोग नष्ट होकर जठराग्नि, बल, तेज और वीर्यकी वृद्धि होती है। इनके सेवनसे विष, खांसी, क्षय, श्वास, वातविद्रधि, पाण्डु, शूल, संग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, तिल्ली, जलोदर, अश्मरी, तृषा, हलीमक, शोथ, उदररोग, भगन्दर, ज्वर, अर्श और कुष्ठादि भयङ्कर रोग भी नष्ट हो जाते हैं। इसे नियमपूर्वक बहुत दिनोंतक सेवन करते रहनेसे पलित (बाल सफेद हो जाना) और मृत्यु (अकाल मृत्यु)का नाश और शरीर दृढ हो जाता है।

(२७६६) त्रैलोक्यडम्बररसः [१]
(र. चि. । स्तब. ८)

शुद्धगन्धस्य गद्याणा ग्रहीतव्यास्त्रयोदश ।
शुद्धरूप्यस्य वा ग्राह्याः गद्याणाश्च त्रयःखलु॥
ताम्रपत्रस्य गद्याणा ग्राह्याः पञ्च भिषग्वरैः ।
एकविंशतिगद्याणान्खल्वे कृत्वा दिनाष्टकम्॥

---

१ योगरत्नाकर और बृहद्योग तरङ्गिणीमें इन चीजोंके अतिरिक्त भांग और जम्बीरी तथा बीजौरे नींबूके रसकी भी सात सात भावना देनेके लिए लिखा है। इसके अतिरिक्त इन ग्रन्थोंमें बछनाग सुहागेसे चौथाई और सबके अन्तमें कस्तूरीकी एक भावना लिखी है।

नैम्बुकेन रसेनैव पेषयेच्च निरन्तरम् ।
पिष्ट्वा पिष्ट्वा प्रकर्त्तव्या पिष्टी सूक्ष्मातिसुन्दरा ॥
वस्त्रे बद्ध्वाथ तां पिष्टीं स्वेदनीयन्त्रके ततः ।
निम्बूरसारनालेन सक्षारेण प्रपूरिते ॥
स्वेद्या दिनाष्टकं यावच्छुष्के देयो पुना रसः ।
ततो बहिर्विनिष्कास्य कुर्याच्चूर्णं हि खल्वके ॥
शुद्धगन्धकगद्याणास्त्रिचत्वारिंशतिस्ततः ।
सप्तभिः स्वर्णमाक्षीकैरेकसप्ततिसंमितैः ॥
सर्वं सार्द्धं च सम्पिष्य चैकरूपं ततो नयेत् ।
त्र्यहं सेहुण्डदुग्धेन रविदुग्धेन च त्र्यहम् ॥
काञ्चनारस्य मूलेन सश्रीखण्डेन च त्र्यहम् ।
चित्रकस्य रसेनाथ दिनमेकञ्च भावयेत् ॥
दशाहभावितं चूर्णं कुर्याद्रम्यञ्च गोलकम् ।
शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा तत्सन्धिं वस्त्रमृत्स्नया ॥
वेष्टयित्वा पुटो देयश्चतुर्भिश्छाणकैर्ध्रुवम् ।
वारं वारं तोलयित्वा पुटो देयो मुहुर्मुहुः ॥
दह्यते गन्धको यावद्वैर्दैर्वैदैश्च च्छाणकैः ।
शरावसम्पुटे मृत्स्नां वस्त्रयुक्तां ददेत्पुटेत् ॥
अष्टाविंशतिगद्याणाः शेषास्तावत्पुटेच्च तम् ।
पेषिताश्च निर्गुण्ड्या गुडूच्याश्च रसेन वै ॥
त्रिकटोः पयसा वापि त्रिफलावारिणा तथा ।
प्रत्येकेन पृथग्देया भावनाश्चैकविंशतिः ॥
सर्वाश्चतुरशीतिश्च मिलित्वा भावनाः खलु ।
करवीरस्य पुष्पाणि पुष्पाणि कनकस्य च ॥
तुल्यतुल्यानि सम्मेल्य रविदुग्धेन मर्दयेत् ।
दातव्या तद्रसेनैका वत्सनाभयुतेन च ॥
श्रीखण्डकरसेनैका सप्ताऽशीतिसमाश्च ताः ।
भावनाःस्युस्ततः खल्वे सम्मर्द्याथ विचूर्णयेत् ॥
तच्चूर्णं कूप्यके धार्यम् रसस्त्रैलोक्यडम्बरः ।
वल्लैकं प्रत्यहं प्रातर्ग्राह्योऽयं चपलान्वितः ॥
सन्निपातेषु सर्वेषु शूलेषु विविधेषु च ।
प्रमेहेषु च सर्वेषु सर्वेषूदररोगिषु ॥
समस्तेष्वपि वातेषु गुल्मयोर्वातरक्तयोः ।
तैलक्षाराम्लवर्ज्यं च भोजने मधुरं स्मृतम् ॥
मासैकेन समस्ताश्च रोगा नाशं व्रजन्ति हि ॥

शुद्ध गन्धक ६॥ तोले, शुद्ध चांदी १॥ तोला और शुद्ध ताम्रपत्र २॥ तोले लेकर सबको निरन्तर आठ दिन तक नींबूके रसमें घोटकर अत्यन्त महीन पिट्ठी बनाकर उसका गोला बना लीजिए और उसे (सुखाकर) एक कपड़ेमें बांधकर दोलायन्त्रविधिसे काञ्जी, नींबूका रस और जवाखारमें आठ दिन तक स्वेदित कीजिए। (नींबूका रस और काञ्जी बराबर बराबर तथा यवक्षार काञ्जीका ३२ वां भाग लेना चाहिए) ज्यो ज्यों काञ्जी और रस सूखता जाय त्यों त्यों नवीन डालते जाना चाहिए। (जवाखार बार बार डालनेकी आवश्यकता नहीं है।)

आठ दिन पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर खरल करके उसमें २१॥ तोले शुद्ध गन्धक और ३॥ तोले शुद्ध स्वर्णमाक्षिकका चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल कीजिए कि जिससे वह सब परस्पर मिलकर एकजीव हो जाय। तत्पश्चात् उसे सेहुण्ड (थोहर-सेंड) और आकके दूध तथा चन्दन मिलेहुवे कचनारकी जड़के क्वाथमें ३-३ दिन और चीतेके क्वाथमें १ दिन (सब मिलाकर १० दिन) घोटकर गोला

बनाइए। और उसे शराव सम्पुटमें बन्द करके, उसपर कपड़मिट्टी करके सुखाकर चार उपलोंकी आगमें फूंक दीजिए। इसी प्रकार उपरोक्त चीजोके रसमें घोट घोटकर चार चार उपलोंकी अग्निमें वार वार फूंकिए और औषधको तोलकर देखते रहिए; जब १४ तोले वज़न शेष रह जाय तब पुट देना बन्द कर दीजिए।

अव उसे संभालूके पत्ते और गिलोयके स्वरस या क्काथ तथा त्रिकुटा और त्रिफलाके क्काथकी २१-२१ भावना (कुल मिलकर ८४ भावना) देकर उसमें १४-१४ तोले कनेर और धतूरेके फूलोंका चूर्ण मिलाकर एक एक दिन आकके दूध तथा वछनाग (मीठा तेलिया) और सफेद चन्दनके क्काथमें घोटकर महीन चूर्ण करके काचकी शीशीमें भरकर सुरक्षित रखिए।

इसमेंसे प्रतिदिन ३ रत्ती रस पीपलके चूर्णके साथ देनेसे एक मासमें समस्त प्रकारके सन्निपात, शूल, प्रमेह, उदररोग, समस्त वातव्याधि, गुल्म और वातरक्तका नाश हो जाता है।

इसके सेवनकालमें तैल, क्षार और खटाईसे परहेज़ करना तथा मधुर रसवाला आहार सेवन करना चाहिए।

(२७६७) त्रैलोक्यडम्बररसः [२]

(र. का. धे.; र. चं.; रसें. सा. सं.; र. रा. सुं. । उदर.; रसें. चिं. । अ. ९)

द्वौ भागौ शिवबीजस्य गन्धकस्य चतुष्टयम्।
अभ्रवह्निविडङ्गानां गुडूचीसत्वनागयोः ॥
कृष्णाजीरकटूनाञ्च लवणं क्षारसंयुतम् ।
गुञ्जात्रयं क्रमेणाथ ददीतघृतसंयुतम् ॥
भोजयेत्स्निग्धमुष्णं च पायसं च विवर्जयेत् ॥

शुद्ध पारा २ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग, अभ्रकभस्म, चीता, वायविडंग, गिलोयका सत्व, सीसाभस्म, पीपल, जीरा, त्रिकुटा, सेंधा और यवक्षार १-१ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली वना लीजिए तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधोंका महीन चूर्ण मिलाकर खरल करके रखिए।

इसे ३ रत्तीकी मात्रानुसार घीके साथ सेवन करने और स्निग्धोष्ण भोजन करनेसे वातोदरका नाश होता है।

इसपर दूधपाक न खाना चाहिए।

(२७६८) त्रैलोक्यडम्बररसः [३]

(यो. र.; र. सा. सं.; र. रा. सुं.; र. का. धे. । ज्वर.; र. चिं. । अ.९; र. र. स. । अ. १२)

सूतार्कगन्धचपलाजयपालतिक्ता
पथ्या त्रिवृच्च विषतिन्दुकजं समांशम् ।
सम्मर्द्य वज्रिपयसा मधुना द्विगुञ्ज—
स्त्रैलोक्यडम्बररसोऽभिनवज्वरघ्नः ॥१

शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, पीपल, शुद्ध जमालगोटा, कुटकी, हर्र, निसोत और शुद्ध कुचला समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली वनाइए, पश्चात् उसमें अन्य औषधों का महीन चूर्ण मिलाकर एक दिन थोहर (सेहुंड

१ योगरत्नाकरमें "त्रैलोक्यतापहरण" नामसे लिखा है। उसमें थोहरके दूधके स्थानमें धतूरेके रसकी भावना लिखी है।

—सेंड)के दूधमें घोटकर २—२ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इनमेंसे एक एक गोली शहदके साथ देनेसे नवीन ज्वर नष्ट होता है।

(नोट—यह रस विरेचक है, अतः गर्भिणीको न देना चाहिए।)

त्रैलोक्यतापहरणरसः (यो.र.। ज्वर)

(त्रैलोक्यडम्बर सं. २७६८ देखिए।)

(२७६९) त्रैलोक्यतिलकरसः

(र. र. स.। उ. अ. १५; र. रा. सु.। अर्श.)

कृष्णाभ्रकस्य सत्वं च शोधितं काचटङ्कणम् ।
रेतयित्वा रजः कृत्वा भर्जयित्वा घृतेन तत् ॥
अष्टांशसस्यकोपेतं पुटेद्वारत्रयं ततः ।
त्रिवारं नृपवर्त्तेन लुङ्गस्वरसयोगिना ॥
चतुर्वारं च वर्षाभूवासामत्स्याक्षिकारसैः ।
गुग्गुलुत्रिफलाक्वाथैस्त्रिंशद्वाराणि यत्नतः ॥
तुल्यांशरसगन्धोत्थकज्जल्याऽष्टांशभागया ।
पुटेत्पश्चाच्छतं वारान्मर्दयेच्च पुटे पुटे ॥
शोधितं रेतितं कान्तं तीक्ष्णं च घृतमर्दितम् ।
पुटेदष्टांशदरदैः संयुक्तं लकुचाम्बुना ॥
दशवारं तथा सम्यक् तालं शुद्धं मनोह्वया ।
तथा विंशतिवाराणि बलिना मीनदृग्रसैः ॥
दशवाराणि ताप्येन कृष्णगोघृतयोगिना ।
उभयं समभागं तत्पुटेन्निर्गुण्डिकारसैः ॥
रसगन्धककज्जल्या दशवारं पुटेत्पुनः ।
तस्मिन्नष्टांशभागेन क्षिपेद्वैक्रान्तभस्मकम् ॥
राजावर्त्तं कलांशेन समभागेन पर्पटी ।
तत्सर्वं परिमर्द्याथ भावयित्वाऽऽर्द्रकाम्बुना ॥
गुडूच्याः स्वरसेनापि भूकदम्बरसेन च ।
भृङ्गराजरसेनापि चित्रमूलरसेन च ॥
व्योषगजाकिनीकन्दैर्भूयोप्यार्द्रद्रवेण च ।
पटचूर्णमतः कृत्वा क्षिपेच्छुद्धकरण्डके ॥
त्रैलोक्यतिलकः सोयं ख्यातः सर्वरसोत्तमः ।
सर्वव्याधिहरः श्रीमाञ्छम्भुना परिकीर्त्तितः ॥
उदावर्त्तं च विड्बन्धं व्यथाश्च जठरोद्भवाम् ।
लोहलं मन्दबुद्धित्वं शूलित्वमपि वन्ध्यताम् ॥
सूतिरोगानशेषांश्च शूलं नानाविधं तथा ।
परिणामाख्यशूलञ्च तथा भिन्द्यात्समुत्कटम् ॥
रक्तगुल्मं च नारीणां रजःशूलं च दुःसहम् ।
अनुपानं च पथ्यं च तत्तद्रोगानुरूपतः ॥

१—कृष्णाभ्रक सत्व, काचका चूर्ण और शुद्ध सुहागा समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके ज़रासे घीमें सेक लीजिए, फिर उसमें उस समस्त चूर्णका आठवां भाग तूतिया मिलाकर सम्पुटमें बन्द करके पुटमें फूंकिए, इसी प्रकार तूतियाके साथ ३ पुट देकर अमलतासकी जड़के रसमें घोटकर टिकिया बनाकर सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके पुट दीजिए। इसी प्रकार अमलतासकी जड़के रसमें ३, बिजौरे नींबूके रसमे ४ और पुनर्नवा, वासा, मछेछी, गूगल और त्रिफलाके रस या क्वाथमेंसे प्रत्येकमें घोट घोटकर ६—६ पुट दीज़िए। तत्पश्चात् समान भाग पारे और गन्धककी बनी हुई कज्जली उपरोक्त चूर्णसे आठवां भाग लेकर उसमें मिलाकर (नींबूके रसमें घोटकर टिकिया बनाकर) सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंक दीजिए। इसी प्रकार हर बार आठवां भाग कज्जली मिलाकर घोटकर ५० पुट दीजिए।

२-शुद्ध तीक्ष्ण लोह तथा कान्त लोहका चूर्ण समान भाग लेकर उसे १ दिन घीमें घोटकर उसमें उसका आठवां भाग शिंगरफ (हिंगुल) मिलाकर वढलके रसमें घोटकर टिकिया बनाकर, सुखाकर, सम्पुटमें बन्द करके गजपुटकी अग्नि दीजिए। इसी प्रकार दश पुट दीजिए, हर बार आठवा भाग शिंगरफ मिलाकर वढलके रसमें घोट लेना चाहिए। फिर समान भाग मिला हुवा शुद्ध हरताल और मनसिलका चूर्ण उक्त लोह चूर्णका आठवां भाग लेकर उसमें मिलाकर वढलके रसमें घोटकर गजपुटकी अग्नि दीजिए। इसी प्रकार १० पुट दीजिए। हरताल और मनसिलका चूर्ण हर वार मिलाकर वढलके रसमें घोटना चाहिए। इसी प्रकार हर वार आठवां भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर मछेछीके रसमें घोटकर २० पुट और हरवार आठवां भाग शुद्ध स्वर्णमाक्षिकका चूर्ण मिलाकर काली गायके घृतमें घोटकर १० पुट दीजिए।

३-अब उपरोक्त दोनो (कृष्णाभ्रक सत्व और लोह) भस्म समान भाग लेकर एकत्र खरल करके उसमें उसका आठवां भाग कज्जली मिलाकर संभालूके रसमें घोटकर गजपुट दीजिए। इसी प्रकार हर वार कज्जली मिलाकर और संभालूके रसमें घोटकर १० पुट दीजिए।

अब इसमें आठवां भाग वैक्रान्त भस्म, सोलहवां भाग राजावर्तभस्म और समान भाग 'रसपर्पटी' मिलाकर सबको १-१ दिन अद्रकके रस, गिलोयके रस, गोरखमुण्डीके रस, भंगरेके रस, चीतेकी जड़के क्वाथ, त्रिकुटाके क्वाथ, भांगके स्वरस या क्वाथ और सूरण (जिमिकन्द)के क्वाथमें घोटकर अन्तमें अद्रकके रसकी एक भावना देकर महीन चूर्ण करके सुरक्षित रखिए।

इसके सेवनसे उदावर्त, मलावरोध, उदरशूल, बुद्धिकी मन्दता, वन्ध्यत्व, सूतिका रोग, अनेक प्रकारके शूल, विशेषत. भयङ्कर परिणामशूल, रक्तगुल्म और असह्य रजः शूल (रजोदर्शनके समय होनेवाली पीडा) इत्यादि अनेक रोग नष्ट होते हैं।

पथ्य और अनुपान रोगानुकूल देना चाहिए। (मात्रा-२ रत्ती।)

(२७७०) त्रैलोक्यनाथरसः

(यो. र.; र. चं.; र. का. धे.। पाण्डु.; बृ. यो. त.। त. ७४; यो. त.। त. २५)

पलानि चत्वारि रसस्य पञ्च
गन्धस्य सत्त्वस्य गुडूचिकायाः।
व्योपस्य चूर्णस्य च तालमूल्याः
सशाल्मलस्येह पलत्रयं स्यात्॥

पृथक् पृथक्पड् गगनस्य चाष्टौ
लोहस्य सर्वं त्रिफलाजलेन।
घृष्टं चतुःषष्टिदिनं तदर्धा-
स्युर्भावना मार्कवजद्रवस्य॥

शिग्रुत्थनीरेण च षोडशाष्टौ
तथाऽनलोत्थाद् गृहकन्यकायाः।
आर्द्रद्रवस्येति रसोऽयमुक्तः
पाण्डुक्षयश्वासगदादिहर्त्ता॥

क्षौद्रेण वा शर्करया घृतेन
कर्षार्धमेतस्य भजेत्प्रयत्नात्।

रसेन सार्द्धं यवचिञ्चिकायाः
शोथाधिके वा जयपालमिश्रः ॥
वज्रीघृतेनापि समस्तमद्या-
न्मृगाङ्कसूतप्रतिपादितं यत् ।
त्रैलोक्यनाथप्रकटीकृतोऽयं
नरेन्द्रयोगीन्द्रमतादनर्घ्यः ॥

शुद्ध पारद ४ पल, शुद्ध गन्धक ५ पल, गिलोयका सत, त्रिकुटेका चूर्ण, तालमूली (मूसली) और मोचरसका चूर्ण ३–३ पल (१५–१५ तोले), तथा अभ्रकभस्म ६ पल और लोहभस्म ८ पल लेकर, प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाइए और फिर उसमे अन्य औषधोका चूर्ण मिलाकर ६४ दिन त्रिफलाके क्वाथमें, ३२ दिन भंगरेके रसमे, १६ दिन सहंजनेकी छालके रसमें और ८–८ दिन चीतेके क्वाथ, घृतकुमारी (ग्वारपाठे) के रस और अद्रकके रसमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे पाण्डु, क्षय और श्वासादि रोग नष्ट होते हैं।

मात्रा—७॥ माशे (१० आनेभर)। अनुपान—मधु अथवा घी और मिश्री।

शोथ रोगमें स्वर्णक्षीरी (सत्यानासी) की जड़के स्वरस या क्वाथ अथवा थोहर (सेंड-सेहुण्ड) के दूधके साथ पके हुवे घृतके साथ अथवा यथोचित मात्रानुसार (१ रत्ती तक) शुद्ध जमालगोटेके साथ खिलाना चाहिए। शेष पथ्यादि मृगाङ्क रसके समान पालन करना चाहिए।

(व्यवहारिक मात्रा १ माषा।)

(२७७१) त्रैलोक्यमोहनो रसः

(र. रा. सु. । प्रमेह)

शुद्धसूतस्तथागन्धो वङ्गभस्म शिलाजतुः ।
मौक्तिकं च समं सर्वं शुष्कमादौ विमर्दयेत् ॥
पाषाणभेदक्काथेन कुमारीस्वरसेन च ।
मूर्वागुडूचित्रिफलाकषायेण पृथक् पृथक् ॥
दिनानि पञ्च सम्मर्द्य घर्मे संशोषयेत्ततः ।
काचकुप्यां विनिक्षिप्य मुखं तस्य विमुद्रयेत् ॥
माषान्नविषचूर्णानां कल्केन भिषगुत्तमः ।
संस्थाप्य वालुकायन्त्रे चतुर्यामं विपाचयेत् ॥
चोपचीनीचूर्णेन माषमानेन योजितः ।
त्रैलोक्यमोहनो नाम्ना गुञ्जामात्रो रसोत्तमः ॥
पर्णखण्डेन दातव्यः प्रमेहमथनः परः ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, वङ्गभस्म, शिलाजीत और मोती समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके चूर्ण बनाएं, फिर उसे पखानभेदके क्वाथ, घृतकुमारी (ग्वारपाठा)के स्वरस और मूर्वा, गिलोय तथा त्रिफलाके क्वाथमें पृथक् पृथक् ५–५ दिन घोटकर धूपमें सुखाकर, कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशीमें भरकर उसके मुखपर खिड़ियामिट्टी आदिकी डाट लगाकर उसपर उर्दका आटा, बछनागका चूर्ण और चूना पानीमे मिलाकर अच्छी तरह लगा दीजिए कि जिससे धुंवां न निकल सके। इस शीशीको वालुकायन्त्रमें रखकर ४ पहरकी अग्नि दीजिए और यन्त्रके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर पीस लीजिए।

इसमेंसे १ रत्ती रस १ माशा चोपचीनीके चूर्णके साथ मिलाकर पानमे रखकर खानेसे प्रमेह रोग नष्ट होता है।

(२७७२) त्रैलोक्यविजयरसः [१]

(र. र. स. । उ. ख. अ. २०)

सूतभस्म समं गन्धं मृतायस्ताम्रगुग्गुलुः ।
त्रिफलाविषमुष्टी च चित्रकश्च शिलाजतु ॥
वरुणाम्लेन सञ्चूर्ण्य प्रतिनिष्कद्वयं द्वयम् ।
क्षिपेत्तस्मिन्विशोष्याथ क्रमान्निष्कं सदा लिहेत्॥
त्रैलोक्यविजयश्चासौ सर्वकुष्ठहरो रसः ॥

पारदभस्म (अभावमें रससिन्दूर), शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, गूगल, त्रिफलाका चूर्ण, शुद्ध कुचलाका चूर्ण, चीतेका चूर्ण और शिलाजीत समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके वरनेकी छालको काञ्जीमें पकाकर उसके साथ घोटकर सुरक्षित रक्खें।

इसके सेवनसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं।

(व्यवहारिक मात्रा-४ रत्ती। अनुपान-बावची या त्रिफलेका क्वाथ।)

(२७७३) त्रैलोक्यविजयरसः [२]

(र. र. स. । उ. ख. अ. २०)

रसं गन्धं विषं तालं स्वर्णक्षीरी रुदन्तिका ।
वरुणाम्लेन सञ्चूर्ण्यप्रतिनिष्कद्वयं द्वयम् ॥
त्रैलोक्यविजयः सर्वकुष्ठघ्नो निष्कमात्रया ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वछनाग (मीठा तेलिया), शुद्ध हरताल, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी)की जड और रुद्रवन्तीका पञ्चाङ्ग समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाइए और फिर उसमें अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर सबको, वरनेकी छालको काञ्जीमें पकाकर उसके साथ घोटकर चूर्ण करके रखिए।

इसके सेवनसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं।

(२७७४) त्रैलोक्यसुन्दररसः [१]

(र. र. स.। उ. खं. अ. १९; रसें. चिं. म.। अ. ९; र. का. धे.; र. चं.; र. र.; र. रा. सुं.। उदर)

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृताभ्रं सैन्धवं विषम् ।
कृष्णजीरं विडङ्गं च गुडूचीसत्त्वचित्रकम् ॥
एला चैव यवक्षारं प्रत्येकं स्याद्रसार्धकम् ।
दिनं निर्गुण्डिकाद्रावैर्बीजपूररसैर्दिनम् ॥
मर्दयेच्छोषयेत्सम्यक् रसस्त्रैलोक्यसुन्दरः ।
गुञ्जाद्वयं घृतैर्लेह्यो वातोदरकुलान्तकः ॥
पलमेकं चित्रमूलं द्विगोमूत्रैश्चतुर्जलैः ।
पाच्यं यावद्भवेत्कल्कं घृतं कल्कं च योजयेत्॥
पलैकश्च यवक्षारं क्षिप्त्वा पक्त्वाऽवतारयेत् ।
तत्कर्षैकं पिबेच्चानु स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, सेंधानमक, शुद्ध वछनागविष, काला ज़ीरा, वायविडङ्ग, गिलोयका सत, चीता, इलायची और यवक्षार आधा आधा भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बना लीजिए, तत् पश्चात् उसमें अन्य औषधियोंका सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर १-१ दिन संभालू और विजौरेके रसमें घोटकर सुखाकर सुरक्षित रखिए।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करनेसे वातोदर रोग नष्ट होता है।

अनुपान—१ प्रस्थ (१ सेर) घी, २ सेर गोमूत्र, ४ सेर पानी और ५-५ तोले जवाखार तथा पानीमें पीसा हुवा चित्रकमूल एकत्र मिलाकर पकावें। जब पानी और गोमूत्र जल जाय तो घृतको छानकर रक्खें।

उपरोक्त रस खानेके पश्चात् इसमेंसे १। तोला घृत पीना चाहिए।

इस रसके सेवनकालमें चिकना और गर्म भोजन करना चाहिए।

(२७७५) त्रैलोक्यसुन्दररसः [२]

(र. र. स.। उ. खं. अ. १९; र. चं.। पाण्डु)

रसगन्धकलोहाभ्रगुडूचीसत्वसूकराः।
त्रिफलाशिग्रुमूलानि भृङ्गसारेण भावयेत्॥
त्रैलोक्यसुन्दरः सोऽयं सघृतक्षौद्रशर्करः।
मृगाङ्कवत्पथ्यभुजः पाण्डुशोफं नियच्छति॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक-भस्म, गिलोयका सत, बाराहीकन्दका चूर्ण, त्रिफलाचूर्ण और सहंजनेकी जड़की छालका चूर्ण समान भाग लेकर पारे गन्धककी कज्जली बनाकर उसमें अन्य औषधोंका चूर्ण मिलाकर १ दिन भंगरेके रसमें घोटकर (१-१ माशेकी) गोलियां बनाकर रक्खें।

इसे घी, शहद और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे पाण्डु और शोषरोग नष्ट होते हैं।

इसपर पथ्यादि मृगाङ्क रसके समान पालन करना चाहिए।

(२७७६) त्रैलोक्यसुन्दररसः [३]

(र. का. धे., र. सा. सं.। पाण्डु.)

मानश्चैकं ततः सूतं[2] षडभ्रं वसुलौहकम्।
गन्धकं त्रिफला व्योषं चूर्णं मोचरसस्य च॥
मुसली चामृतासत्वं प्रत्येकं पञ्च भागिकम्।
भावयेत्सर्वमेकत्र त्रिफलानां कषायके॥
भावनाविंशतिर्देया दशरात्रं सुभावनाः।
शिग्रुचित्रकमूलाभ्यामष्टधा च पृथक् पृथक्॥
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम रसो निष्कमितो हितः।
सितया च समं क्षौद्रैः शोथपाण्डुक्षयापहः॥
ज्वरातिसारसंयुक्तं सर्वोपद्रवनाशनः॥

शुद्ध पारद १ भाग, अभ्रकभस्म ६ भाग, लोहभस्म ८ भाग, शुद्ध गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, मोचरस और मूसलीका चूर्ण तथा गडूचीसत्व ५-५ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाइए, तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर त्रिफलाके क्वाथकी १० दिनमें २० भावना दीजिए; फिर सहंजनेकी छालके रस या क्वाथ और चीतेकी जड़के क्वाथकी पृथक् पृथक् ८-८ भावना देकर ४-४ माशेकी गोलियां बना लीजिए।

इसे शहद और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे शोथ, पाण्डु, क्षय और उपद्रव सहित ज्वराति-सारका नाश होता है।

(व्यवहारिक मात्रा—१ माशा।)

(२७७७) त्रैलोक्यसुन्दररसः [४]

(रसें. सा. सं.। सं. ज्वर)

रसगन्धकयोर्माषौ प्रत्येकं कज्जलीकृतौ।
शक्रश्च मुसली चैव धुस्तूरं केशराजकम्॥
देवदाली जयन्ती च तथा मण्डूकपर्णिका।
एषां पत्ररसैः शाणैः शिलायां खल्लयेत्पुनः॥

---

१ यह रस लगभग "त्रैलोक्यनाथ"के समान ही है।

२ जारितञ्च चतुः सूतमिति पाठान्तरम्।

शोषयित्वा वटी कार्या त्वनेका राजिकोपमा।
त्रिदोषजं ज्वरं हन्ति तथा प्रबलकोष्ठकम् ॥
तप्ते तु नारिकेलस्य जलं देयं प्रयत्नतः।
यदा वटी न कार्या तु तदा खाद्या तु रक्तिका॥
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम सन्निपातहरो रसः ॥

२-२ माषे शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धककी कज्जलीको कुड़े (कुरैया) मूसली, धतूरा, काला भंगरा, देवदाली (विण्डाल), जयन्ती और मण्डूकपर्णीमेंसे प्रत्येकके पत्तोंके ४-४ माषे स्वरसमें घोटकर सरसोंसे बडी गोलियां बनाएं।

यदि एक गोलीकी मात्रा कम प्रतीत हो तो १ रत्ती मात्रानुसार खिलाना चाहिए, और यदि इससे दाह हो तो नारयलका पानी पिलाना चाहिए।

(२७७८) त्रैलोक्यसुन्दररसः [५]

(पर्पटीरस) (र. र. स. । उ. खं. अ. १२)

विमर्दिताभ्यां रसगन्धकाभ्यां
नीरेण कुर्यादिह गोलकं तम् ।
भाण्डे नवीने विनिवेश्य पश्चा-
त्तद्गोलकस्योपरि ताम्रपात्रम् ॥
सार्धं मुहूर्त्तं विनिरुन्ध्य धीमा-
नुद्दीपयेद्दीप्तकृशानुनाऽस्य ।
अधस्ततः सिद्ध्यति पर्पटीयं
नवज्वरारण्यकृशानुमेघः ॥
विलिप्य पूर्वं रसनाश्च तालु-
देशं च सिन्धूद्भवजीरकार्द्रैः ।
वल्लोन्मितां चार्द्रकतोयमिश्रा-
मेनां नियोज्य स्थगयेत्पटेन ॥
घर्मोद्गमो यावदतः परं च
तक्रौदनं पथ्यमिह प्रयोज्यम् ।
कुर्याद्दिनानां त्रितयं यदीत्थं
ज्वरस्य शङ्काऽपि तदा भवेत्किम् ॥

समान भाग शुद्ध पारे और गन्धककी कज्जलीको पानीमें घोटकर उसका एक गोला बनाइए और उसे कपड़मिट्टी की हुई हाण्डीमें रखकर उसके ऊपर शुद्ध ताम्रकी कटोरी ढककर जोड़को गुड़ चूनेसे बन्द कर दीजिए। अब इसे चूल्हेपर चढाकर ३ घड़ी तक तीव्राग्निपर पकाइए और फिर हाण्डीके स्वांगशीतल होनेपर कटोरीके भीतर लगे हुवे रसको सावधानीपूर्वक निकालकर सुरक्षित रखिए।

प्रथम सेंधानमक और ज़ीरेके चूर्णको अद्रकके रसमें पीसकर रोगीकी जीभ और तालुपर उसका लेप करा दीजिए, फिर उपरोक्त रसमेंसे ३ रत्ती लेकर अद्रकके रसमें मिलाकर खिलाइए, और गर्म कपड़ा उढाकर लिटा दीजिए।

इसके खानेके बाद पसीना आता है, और इसे तीन दिन तक सेवन करनेसे नवीन ज्वरका भय नहीं रहता।

पथ्य—छाछ भात।

(२७७९) त्र्यम्बकाभ्रम् (भै. र. । स्वरभेद.)

अभ्रं मेचकमारितं पलमितं
व्याघ्रीबलागोक्षुरम् ।
कन्यापिप्पलिमूलभृङ्गवृषकाः
पत्रं तथा बादरम् ॥

धात्रीरात्रिगुडूचिकाः पृथगतः
सत्वैः पलांशैर्युतम् ।
सम्मर्द्याति मनोरमं सुवलितं
कृत्वा यदा सेवितम् ॥
वातोत्थं कफपित्तजं स्वरगतं
यच्च त्रिदोषात्मक-
मृत्युच्चैर्वदतो हतं बहुविधं
पानीयदोषोद्भवम् ॥
कासं श्वासमुरोग्रहं सयकृतं
हिक्कां तृषां कामला-
मर्शांसि ग्रहणीं ज्वरं बहुविधं
शोथं क्षयश्चार्बुदम् ॥
हन्ति त्र्यम्बकमभ्रमद्भुततरं
वृष्यातिवृष्यं परम् ।
वह्नेर्वृद्धिकरं रसायनवरं
सर्वामयध्वंसि तत् ॥

१ पल (५ तोले) निश्चन्द्र अभ्रकभस्ममें कटेली, बला, गोखरु, घृतकुमारी (ग्वारपाठा), पीपलामूल, भांगरा, बासा, बेरीके पत्ते, आमला, हल्दी और गिलोयमेंसे प्रत्येकका ५-५ तोले स्वरस मिलाकर अच्छी तरह घोटकर (३-४ रत्तीकी) गोलियां बना लीजिए ।

इनके सेवनसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और अधिक बोलने या खराब पानीके उपयोगसे उत्पन्न स्वरभङ्ग तथा खांसी, श्वास, उरोग्रह, यकृत्, हिक्का (हिचकी), तृषा, कामला, अर्श, संग्रहणी, ज्वर, अनेक प्रकारका शोथ, क्षय, अर्बुद और अन्य कितने ही रोग नष्ट होते हैं ।

यह अद्भुत गुणकारी गोलियां अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्द्धक), अग्निवर्द्धक और रसायन है ।

(२७८०) त्र्यम्बकेश्वररसः

(र. र. स. । उ. ख. अ. २१)

सूतकंस्य पलं पञ्च पलैकं ताम्रचूर्णकम् ।
जम्बीराणां द्रवैः पिष्टं सूततुल्यं च गन्धकम् ॥
नागवल्लीदलैः पिष्टं ताम्रपिष्टिं प्रकल्पयेत् ।
रुध्वा लघुपुटैः पच्याद्भूधरे यामपञ्चकम् ॥
आदाय चूर्णयेत्तुल्यैस्त्र्यूषणैः सममिश्रितैः ।
अर्धाङ्गकम्पवातार्त्तो भक्षयेच्च द्विगुञ्जकम् ॥

शुद्ध पारा और गन्धक ५-५ पल तथा शुद्ध ताम्रचूर्ण १ पल (५ तोले) लेकर प्रथम ताम्र और पारेको एकत्र खरल करें, जब ताम्र पारेमें मिल जाय तो गन्धक मिलाकर कज्जली बनावें और फिर उसे १-१ दिन जम्बीरी नींबू तथा पानके रसमें घोटकर गोला बनाकर उसे शरावसम्पुटमें बन्द करके लघुपुटमें फूंकिए और फिर नींबूके रस और पानके रसमे घोटकर ५ पहर तक भूधरयन्त्रमे पकाइए । तत्पश्चात् यन्त्रके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधको निकालकर पीसकर उसमें उसके बराबर त्रिकुटाका चूर्ण मिला लीजिए ।

इसे २ रत्तीकी मात्रानुसार सेवन करनेसे अर्द्धाङ्ग और कम्पवात नष्ट होता है ।

(२७८१) त्र्याहिकारिरसः [१]

(भै. र. । ज्वर.)

रसगन्धशिलातालं सर्वैरतिविषा समा ।
रसस्य द्विगुणं लौहं रौप्यं लौहाद्वि सम्मितम् ॥

पिचुमर्दरसेनापि विष्णुक्रान्तारसेन च।
सर्वं सम्मर्द्य वटिकाः कुर्याद् गुञ्जात्रयोन्मिताः॥
हन्यादतिविषाक्काथसंयुतोऽयं रसोत्तमः।
त्र्याहिकादीञ्ज्वरान् सर्वान् रक्षांसीव रघूद्वहः॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल और शुद्ध हरताल १-१ भाग, अतीसका चूर्ण इन सबके बराबर, लौहभस्म २ भाग और चांदीभस्म आधा भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनाइए, फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सबको १-१ दिन नीम और विष्णुक्रान्ता (कोयल)के रसमें घोटकर ३-३ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें अतीसके क्वाथके साथ सेवन करनेसे त्र्याहिक (तिजारी) इत्यादि समस्त ज्वर नष्ट होते है।

(२७८२) त्र्याहिकारिरसः [२]

(र. चं.; रसें. सा. सं.। ज्वर.; र. रा. सुं.। ज्वर.)

रसकेन समं शङ्खं शिखिग्रीवञ्च पादिकम्।
गोजिह्वया जयन्त्या च तण्डुलीयैश्च भावयेत्॥
प्रत्येकं सप्तसप्ताथ शुष्कं गुञ्जाचतुष्टयम्।
जरणेन घृतेनाद्यात्त्र्याहिकज्वरशान्तये॥

खपरिया और शङ्खभस्म १-१ भाग तथा तूतियाभस्म चौथाई भाग लेकर, एकत्र पीसकर; वनगोभी, जयन्ती और चौलाईके रसकी पृथक् पृथक् सात सात भावना देकर ४-४ रत्तीकी गोलियां बना लीजिए।

इन्हें जीरेके चूर्ण और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे तिजारी आदि ज्वर नष्ट होते हैं।

१ रसेन गन्धं शङ्खञ्चेति पाठान्तरम्।

(२७८३) त्र्यूषणादिगुटिका [१]

(वं. से.। पाण्डु)

त्र्यूषणं त्रिफला दारु हरिद्रे नीलिनीफलम्।
द्राक्षा चेन्द्रयवं मुस्ता मञ्जिष्ठा कटुरोहिणी॥
शतावरी शिग्रुबीजं चित्रकं गजपिप्पली।
शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका॥
पाठा भल्लातकं दन्ती विशाला सदुरालभा।
शठी मधुरसा रास्ना विडङ्गञ्च समाक्षिकम्॥
एतैश्चूर्णैः समैर्वापि लोहं द्विगुणमावपेत्।
यावशूकञ्च संभृत्य गवां मूत्रेण पाचयेत्॥
ततोऽक्षमात्रां गुटिकां पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
पाण्डुरोगं जयत्याशु ब्रह्मदण्ड इवासुरान्॥
कृमिकुष्ठप्रमेहार्शो ग्रहणीदोषशोथहा।
भगन्दरश्वासकासप्लीहगुल्मोदरापहा॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, नीलका फल, मुनक्का, इन्द्रजौ, मोथा, मजीठ, कुटकी, शतावरी, संहजनेके बीज, चीता, गजपीपल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेली, पाठा, भिलावा, दन्तीमूल, इन्द्रायणकी जड़, धमासा, कचूर, मुलैठी (अथवा मूर्वा), रासना, बायविडंग और सोनामक्खीभस्म १-१ भाग, लोहचूर्ण इन सबके बराबर और सबसे दो गुना जवाखार लेकर सबका चूर्ण करके गोमूत्रमें पकाएं और गाढ़ा होनेपर १-१ कर्ष (१। तोले) की गोलियां बना लें।

इन्हें तण्डुलाम्बु (चावलोंके पानी)के साथ सेवन करनेसे पाण्डुरोग अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह गोलियां कृमि,

कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, ग्रहणी, सूजन, भगन्दर, श्वास, खांसी, प्लीहा (तिल्ली), गुल्म और उदर रोगोका नाश करती है ।

(२७८४) त्र्यूषणादिगुटिका [२]

(र. र. । शिर.)

त्रीणि कटूनि तथातिविषाणि
क्षारयुतौ त्रिफला त्रिवृतानि ।
दन्तीनिवासकलोध्रनतानि
चन्दनवारिभकणामृतकानि ॥
ग्रन्थिकपुष्करमूलघनस्य
तिक्तककट्फलकेन्द्रयवस्य ।
त्वग्दलमेघनीलोत्पलकस्य
बालमूलालसजातिफलस्य ॥
द्रव्यमिदं पिचुमात्रक्रमेण
चाष्टपलानि तथायसकस्य ।
अष्टपलन्तु शिलाजतुकस्य
शुभया कृतं द्व्यक्षसमम् ॥
शुभवासरखादन् कालशुभम्
मुखदारुणरोगशिरोव्यथनम् ।
हन्ति भ्रमं पटलं तिमिरञ्च
पिष्टकशुक्रमथार्बुदकञ्च ॥
पलितहरं सुखकामकामकरं
युवतीरमणे पिब दुग्धसमम् ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, अतीस, जवाखार, सज्जीखार, हर्र, बहेड़ा, आमला, निसोत, दन्तीमूल, बासा, लोध, तगर, चन्दन, गजपीपल, सुगन्धबाला, गिलोय, पीपलामूल, पोखरमूल, मोथा, कुटकी, कायफल, इन्द्रजौं, दालचीनी, तेजपात, नागरमोथा, नीलकमल, कच्ची-मूली, शुद्ध हरताल और जायफल । इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण १-१ कर्ष (१।-१। तोला); तथा आठ आठ पल शिलाजीत और लोहभस्म, एवं २ कर्ष बंसलोचनका चूर्ण लेकर सबको एकत्र पानीके साथ मर्दन करके गोलियां बना लीजिए ।

इनके सेवनसे मुखरोग, शिरोरोग, भ्रम तथा आंखोके पटल, तिमिर, पिष्टक, शुक्ररोग और अर्बुद तथा पलितरोग नष्ट होकर कामशक्ति बढती है ।

यदि इन गोलियोको कामशक्तिकी वृद्धिके लिए सेवन करना हो तो दूधके साथ खाना चाहिए।

(२७८५) त्र्यूषणादिमण्डूरम् [१]

(र. का. धे. । अम्लपित्त)

पृथक् त्र्यूषणमक्षांशं वन्ध्या लोहोद्भवं पलम्।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च कर्षद्वयमपि क्षिपेत् ॥
प्रसारण्याः पलायाश्च वीजपूरच्छदस्य च ।
सवीजपीतवल्ल्याश्च लतायाश्चोरकस्य च ॥
निष्पीडितं रसं तेषां पृथगष्टपलं पलम् ।
मण्डूरस्य पलान्यत्र चत्वारिंशच्च दापयेत् ॥
सर्वाण्येकत्र विधिवत्क्वाथ्यमानं विशोषयेत् ।
ततो मण्डूरमादाय श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं तथा ॥
हिंग्वष्टमाशकं व्योषं प्रत्येकं वेदमापकम् ।
धात्र्याः पञ्चपलान्यत्र चूर्णं दद्याच्च तानि वै॥
पृथक् पलानि पञ्चैव शर्करामधुनोरपि ।
पाषाणभेदचूर्णं तु पलानां पञ्चकं हरेत् ॥
धान्यजीरकसिद्धेन सर्पिषा प्राग्विमर्दयेत् ।
एतन्मण्डूरमादौ तु मध्येऽन्ते भोजनस्य च ॥

कुर्वन्पयोऽनुपानेन शूली शूलं त्रिदोषजम् ।
परिणामकृतं सर्वं हन्यादेतन्न संशयः ॥
अम्लपित्तविकारेषु परिणामभवेषु च ।
त्र्यूषणाद्यमिदं ख्यातं भैषज्यममृतोपमम् ॥

सोंठ, मिर्च और पीपल १।-१। तोला, वाञ्झककोड़ेकी जड़ और लोह भस्म ५-५ तोले; तथा हर्र, बहेड़ा और आमला २॥-२॥ तोले। प्रसारिणी (गन्धेलघास), बिजौरेके पत्ते, मालकंगनीके बीज और चोरपुष्पीका स्वरस ८-८ पल (४०-४० तोले) तथा शुद्ध मण्डूरका चूर्ण ४० पल लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्निपर पकाइये और जब समस्त रस शुष्क हो जाय तो औषधको पीसकर महीन चूर्ण बना लीजिए और फिर उसमें १० माशे हींग, ५-५ माशे हर्र, बहेड़ा और आमला, तथा आमलेका चूर्ण २५ तोले, मिश्री ५ पल (२५ तोले) और शहद ५ पल तथा पाषाणभेद (पखानभेद) का चूर्ण ५ पल मिलाकर सबको एकत्र खरल कराइये और फिर उसे जीरे तथा धनियेके क्वाथ और इन्हींके कल्कसे पके हुवे घीमें घोटकर सुरक्षित रखिये।

इसे भोजनके आदि, मध्य और अन्तमें सेवन करनेसे सन्निपातज शूल, परिणाम शूल और अम्लपित्त अवश्य नष्ट हो जाता है।

(२७८६) त्र्यूषणादिमण्डूरम् [२]

(र. रा. सुं.; र. सा. सं.। पाण्डु.)

खिन्नमष्टगुणे मूत्रे लोहकिट्टं सुशोधितम् ।
पाकान्ते त्र्यूषणं वह्निवरादार्वीसुरद्रुमान् ॥
विडङ्गबीजचूर्णं च मुस्तं किट्टं समं क्षिपेत् ।
प्रातः कर्षं भजेदस्य जीर्णे तक्रौदनं भजेत् ॥
हलीमकं पाण्डुरोगमर्शांसि श्वयथुन्तथा ।
ऊरुस्तम्भं जयेदेतत्कामलां कुम्भकामलाम् ॥

शुद्ध मण्डूरके चूर्णको आठ गुने गोमूत्रमें पकाइये और जब वह गाढा हो जाय तो त्रिकुटा, चीता, त्रिफला, दारुहल्दी, देवदारु, मोथा और बायविडङ्गका समान भाग एकत्र मिला हुवा चूर्ण उसके बराबर लेकर उसमे मिला दीजिये।

इसे प्रतिदिन प्रातःकाल १। तोला मात्रानुसार सेवन करने और औषध पच जाने पर तक्र भातका आहार करनेसे हलीमक, पाण्डु, अर्श, शोथ, उरुस्तम्भ, कामला और कुम्भकामलाका नाश होता है। (व्यवहारिक मात्रा-३ माशा)

(२७८७) त्र्यूषणादिमण्डूरवटिकाः

(भै. र.; धन्व; भा. प्र.। ख. २. पाण्डु.)

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ।
दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिको देवदारु च ॥
एषां द्विपलिकान्भागान्कृत्वा चूर्णं पृथक् पृथक् ।
मण्डूरचूर्णं द्विगुणं शुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेन्नरः ।
उदुम्बरसमाकारान् वटकांस्तान्यथाग्नि च ॥
उपयुञ्जीत तक्रेण जीर्णे सात्म्यञ्च भोजनम् ।
मण्डूरवटिका ह्येताःप्राणदाःपाण्डुरोगिणाम् ॥
कुष्ठानि जठरं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् ।
अर्शांशि कामलां मेहं प्लीहानं शमयन्ति च॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, बायविडंग, चव, चीता, दारुहल्दीकी छाल, सोनामक्खीभस्म, पीपलामूल और देवदारका चूर्ण २-२ पल (१०-१०

तोले) तथा सबसे २ गुना शुद्ध सुरमेके समान काला मण्डूर चूर्ण लेकर प्रथम मण्डूरको आठ गुने गोमूत्रमें पका लीजिये और फिर उसमें अन्य औषधियोंका चूर्ण मिलाकर गूलरके फलके समान मोदक बना लीजिये।

इन्हें अग्नि बलोचित मात्रानुसार, तक्रके साथ सेवन करना और औषध पचने पर पथ्य भोजन करना चाहिये।

यह 'मण्डूरवटिका' पाण्डुरोगियोके लिए जीवनदाता हैं तथा कुष्ठ, शोथ, उदररोग, उरुस्तम्भ, कफ, अर्श, कामला, प्रमेह और प्लीहाका नाश करती है।

(२७८८) त्र्यूषणाद्यं लौहम् [१]

(र. सा. सं.; र. रा. सु.। शोथ.; रसे. चि.। अ. ९)

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकं
चूर्णश्च पीतं त्रिफलारसेन।
शोथं निहन्यात्सहसा नरस्य
यथाशनिर्वृक्षमुदीर्णवेगः ॥

लोहभस्म तथा त्रिकुटेका चूर्ण और यवक्षार समान भाग मिलाकर त्रिफला काथके साथ सेवन करनेसे शोथ अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(मात्रा—१ माशा)

(२७८९) त्र्यूषणाद्यं लौहम् [२]

(र. का. धे.; यो. र.; र. र., र. सा. सं., धन्वं., र. चं.; र. रा. सु.। मेदो.; रसे. चि.। अ. ९)

त्र्यूषणं विजयां चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्।
वागुजीसैन्धवञ्चैव सौवर्चलसमन्वितम् ॥

१ त्रिफलेति पाठान्तरम्।
२ विडंगमिति पाठान्तरम्।

अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा।
स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥
मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम्।
नाहारे यन्त्रणा कार्या न विहारे तथैव च ॥
त्र्यूषणाद्यमिदं लौहं रसायनवरोत्तमम् ॥

त्रिकुटा, भांग, चव, चीता, विड्लवण (खारी नमक), उद्भिजलवण, बाबची, सेंधानमक और सञ्चल (काला नमक)। इन सबका चूर्ण १-१ भाग और लोहभस्म सबके बराबर लेकर सबको एकत्र खरल करके रखिये।

इसे घी और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे स्थूलता, प्रमेह और कुष्ठ नष्ट होता तथा बलवर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

इसपर किसी विशेष परहेज़की आवश्यकता नहीं है।

(मात्रा २-३ माषे।)

(२७९०) त्वगाद्या गुटिका (ग.नि.। गुटि.)

त्वगेलागन्धकश्चैव गुग्गुलुः समभागतः।
कुर्याद्वातारितैलेन गुटिका वातरोगिणाम् ॥

दालचीनी, इलायची और शुद्ध गन्धकका चूर्ण तथा शुद्ध गूगल समान भाग लेकर सबको अरण्डीके तैलमें घोटकर गोलियां बना लीजिए।

इनके सेवनसे वातरोग नष्ट होते है।

(मात्रा—१ से ३ माशे तक। अनुपान—गर्म जल।)

॥ इति तकारादिरसप्रकरणम् ॥

अथ तकारादिमिश्रप्रकरणम्।

(२७९१) तक्रपानम् [१]

(यो. चि.। मिश्रा.)

यथा सुराणाममृतं प्रधानं
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः।
न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः
न तक्रसेवी व्यथते कदाचित् ॥
शशिकुन्दहिमोज्वलसन्निभं
परिपक्ककपित्थसुगन्धरसम्।
युवतीकरनिर्मलनिर्मथितं
पिबमानवसर्वरुजापहरम् ॥
शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोच्छेदे तथामये।
वृद्धकोष्ठे च दुष्टेऽग्नौ अर्शोगुल्मेऽथवामये ॥
शस्तं भुक्तं च तक्रं स्यादमीषां सर्वदा हितम्।
सर्वकाले प्रशस्तं तु अजाजीलवणान्वितम् ॥
इति तक्रगुणान् ज्ञात्वा न दद्याद्यस्य तं शृणु।
क्षये शोषे तथा क्षीणे नोष्णकाले शरत्सु च ॥
न मूर्च्छाभ्रमतृष्णासु तथा पैत्तरसोद्धके।
न शस्तं तक्रपानञ्च करोति विषमान्गदान् ॥

जिस प्रकार देवताओंको अमृत सबसे अधिक सुखकर होता है उसी प्रकार संसारमें मनुष्योंके लिए तक्र हितकारी है।

तक्र सेवन करनेवाले व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होते, और तक्रसे नष्ट हुवे रोग पुनः नहीं उभरते।

जिस तक्रका रङ्ग बरफ़के समान सफ़ेद हो और जिसमें पके हुवे कैथके समान गन्ध और स्वाद हो उसके पीनेसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

अग्निमांद्य, कफजरोग, उदरवृद्धि, अग्निविकार, अर्श और गुल्ममें तथा शीतकालमें तक्र पीना अत्यन्त हितकारी है।

तक्रमें सेंधानमक और ज़ीरेका चूर्ण मिलाकर पीना सदैव लाभदायक होता है।

यद्यपि तक्र इतना गुणकारी है तथापि क्षय, शोष, क्षीणता, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा और पित्तज रोगोंमें तथा शरद ऋतु (अश्विन–कार्तिक) और ग्रीष्मकालमें तक्र पीनेसे अनेकों भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं अत एव इन अवस्थाओंमें तक्र कभी न पीना चाहिए।

(२७९२) तक्रपानम् [२]

वातोदरि पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्।
शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥
यवानीसैन्धवजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी।
सन्निपातोदरी तक्रं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥
बद्धोदरी तु हपुषादीप्यकाजाजीसैन्धवैः।
पिबेद् छिद्रोहरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु सलिलोदरी।
मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥
युक्तं प्लीहोदरी जातं सव्योषमुदकोदरी।
गौरवारोचकानाहमन्दवन्ह्यातिसारिणाम् ॥
तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्प्यते।
नातिसान्द्रं हितं पाने स्वादुतक्रमपेलवम् ॥

तक्रमें—

वातोदरमें—सेंधानमक और पीपलका चूर्ण मिलाकर;

पित्तोदरमें—मधुर तक्रमें मिश्री और स्याहमिर्चका चूर्ण मिलाकर;

कफोदरमें—अजवायन, सेंधा, जीरा और त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर;

सन्निपातोदरमें—त्रिकुटेका चूर्ण, यवक्षार और सेंधानमक मिलाकर;

बद्धोदरमें—हाऊबेर, अजवायन, जीरा और सेंधेका चूर्ण मिलाकर;

छिद्रोदरमें—पीपलका चूर्ण और मधु मिलाकर;

जलोदरमें—त्रिकुटा, जवाखार और सेंधेका चूर्ण अथवा केवल त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर;

प्लीहोदरमें—शहद, तैल, बच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सेंधेका चूर्ण मिलाकर;

पीना चाहिए।

तक्र—शरीरका भारीपन, अरुचि, अफारा, अग्निमांद्य, अतिसार और वातकफज रोगोंमें अमृतके समान गुणकारी है। जो तक्र न अधिक गाढ़ा हो न अधिक पतला, और स्वादमें मीठा हो वह पीना चाहिये।

(२७९३) तक्रप्रयोगः

(च. सं. । चि. स्था. अ. ९ अर्श.)

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत्।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ॥
वातश्लेष्मार्शशां तक्रात्परं नास्तीह भेषजम्।
तत्प्रयोज्यं यथा दोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा ॥
सप्ताहं वा दशाहं वा पक्षं मासमथापि वा।
बलकालविशेषज्ञो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत् ॥

चीतेकी जड़को छाछ (तक्र)में पीसकर मिट्टीके घड़ेके भीतर उसका लेप कर दीजिए और फिर उसमें दूध भरकर दही जमाइये। यह दही या इसका तक्र बनाकर पीनेसे अर्श नष्ट होती है। वातज और कफज अर्श (बवासीर)के लिए तक्रसे अधिक उत्तम अन्य एक भी औषध नहीं है।

बलकालादिके अनुसार कफज अर्शमें घृत रहित और वातज अर्शमें घृत सहित तक्र सात दिन, दश दिन, १५ दिन या एक मास तक सेवन करना चाहिए।

(२७९४) तक्रयोगः (भा. प्र.। खं. २ अरो.)

राजिकाजीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिङ्गु सनागरम्।
सैन्धवं दधि गोः सर्वं वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत् ॥
तावन्मात्रं क्षिपेत्तत्र यथा स्याद्रुचिरुत्तमा।
तक्रमेतद्भवेत्सद्यो रोचनं वह्निवर्द्धनम् ॥

राई, भुना हुवा जीरा, भुना हुवा हींग, सोंठ और सेंधानमकका महीन चूर्ण करके रुचिके अनुसार गायके दहीमें मिलाकर, उसे अच्छी तरह मथकर कपड़ेसे छान लीजिये।

इस तक्रको पीनेसे रुचि और अग्निकी वृद्धि होती है।

(२७९५) तक्रसेवनविधिः (धन्व.। संग्र.)

ग्रहणीरोगिणां तक्रं संग्राही लघु दीपनम्।
सेवनीयं सदा गव्यं त्रिदोषशमनं हितम् ॥
दुःसाध्यो ग्रहणीदोषो भेषजैर्नैव शाम्यति।
सहस्रशोऽपि विहितैर्विना तक्रस्य सेवनात् ॥
यथा तृणचयं वह्निस्तमांसि सविता तथा।
निहन्ति ग्रहणीरोगं तथा तक्रस्य सेवनम् ॥

संग्राह्या धेनवः श्रेष्ठास्तक्रपानाय रोगिणाम् ।
तासां पयस्तत्र गुणा जायन्ते वर्णभेदतः ॥
पीतायाःमारुतं हन्ति श्वेतायाः पित्तजान् गदान्।
रक्ताया गोः कफं हन्ति कृष्णाया गोस्त्रिदोपजित्।
अरण्ये चारयेद्धेतुं नातितृणलतान्विते ।
पीतोदकाभाविस्रम्भात् मन्दं मन्दं प्रचारयेत्॥
तासां दुग्धं परिग्राह्यं तक्रार्थं भिषजां वरैः ।
दुग्धमक्वथितं वाते पित्ते त्वीपक्कृतं हितम् ॥
कफे त्रिदोपजे रोगे पादोनक्वथितं शृतम् ।
तदीपदम्लसंयोगात्कठिनं दधि शस्यते ॥
तदल्पजलसंयुक्तं मथनं मथितं भवेत् ।
तक्रमुद्धृतसारन्तु शुण्ठीचूर्णयुतं पिबेत् ॥
शनैर्शनैर्हरेदन्नं तक्रं तु परिवर्धयेत् ।
तक्रमेव यथाहारो भवेदन्नविवर्जितः ॥
तक्रं सात्म्यं यथा कुर्यान्नैवान्नं तत्र भक्षयेत् ।
बुभुक्षायां पिपासायां पिबेत्तक्रं सनागरम् ॥
श्रमं न कुर्याद्बहुशो न कुर्याद्बहुभाषणम् ।
न कुर्यान्मैथुनं तक्रपाने क्रोधं विवर्जयेत् ॥
एवं यः सेवते तक्रं ग्रहणी तस्य नश्यति ।
शीघ्रमेव न संदेहःश्रीर्यथा द्यूतकारिणः ॥
प्रशान्ते ग्रहणीरोगे ह्यन्नं गृह्णाति योगतः ।
अन्नत्यागविधानेन गृह्णीयाच्च शनैः शनैः ॥
ग्रहणीरोगिणां तक्रं हितं दोप त्रयापहम् ।
कालकूटविषं साक्षात् अन्यथा परिसेवितम् ॥
तस्माद्यत्नेन संसेव्य तक्रं संग्रहणीगदे ।
शस्तं नातः परं किञ्चित् ग्रहणीरोगशान्तये ॥
न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न
तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ।
यथा सुराणाममृतं सुखाय
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥

संग्रहणीवाले रोगीके लिए तक्र, संग्राहि, लघु और दीपन है। सदैव गायका ही तक्र सेवन करना चाहिए क्यों कि वह त्रिदोष नाशक होता है। चाहे कितनी ही औषधें क्यों न सेवन कराई जायं; दुस्साध्य ग्रहणी रोग तक्रके विना शान्त नहीं होता।

जिस प्रकार तृणके ढेरको अग्नि क्षणभरमें भस्म कर देता है, और जिस प्रकार सूर्यके सम्मुख अन्धकार नहीं ठहर सकता उसी प्रकार तक्र सेवनसे संग्रहणी रोगभी अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है।

संग्रहणीके रोगीको तक्र सेवन करानेके लिए यथोचित वर्णवाली गायें पालनी चाहियें क्यों कि तक्रमें गायके रंगके अनुसार पृथक् पृथक् गुण होते हैं। यथा—

पीली गायका तक्र वायुनाशक, सफेद गायका पित्तनाशक और लाल गायका कफनाशक होता है तथा काले रंगकी गायका तक्र त्रिदोपको नाश करता है।

गायोंको ऐसे वनमें चराना चाहिए कि जहां अधिक वेलें (लता) और तृण न हों। एवं उन्हें निर्मल जल पिलाना और धीरे धीरे टहलाना चाहिए। तक्रके लिए ऐसी गायोंका ही दूध ग्रहण करना चाहिए।

वायुदोपमें कच्चा, पित्तमें थोड़ा पकाकर और कफ तथा त्रिदोषमें पकते पकते पौना दूध शेष

रहने पर उसमें ज़रासी दही डालकर जमाना चाहिए। दही अधिक खट्टी न होनी चाहिए और कठिन होनी चाहिए।

इस दहीमें थोडासा पानी डालकर खूब मथना और उसमेंसे घी निकालकर तक्रमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

धीरे धीरे अन्न कम करके तक्र बढ़ाते जाना चाहिए यहां तक कि अन्तमें तक्रके अतिरिक्त अन्य सब प्रकारका खान पान बन्द कर देना चाहिए और भूख प्यासमें केवल शुण्ठिचूर्णयुक्त तक्र ही पिलाना चाहिए।

तक्रसेवन कालमें अधिक परिश्रम, अधिक भाषण और मैथुन तथा क्रोध न करना चाहिए।

जिस प्रकार द्यूतक्रीडासे लक्ष्मी नष्ट हो जाती है उसी प्रकार विधिपूर्वक तक्र सेवन करनेसे संग्रहणी अवश्य ही अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाती है।

रोग शान्त होनेके पश्चात् भी एकदम अन्नाहार न करना चाहिए बल्कि जिस प्रकार धीरे धीरे अन्नत्याग किया था उसी प्रकार धीरे धीरे तक्र कम करना और अन्न बढ़ाना चाहिए।

विधिवत् सेवन करनेसे तक्र तीनो दोषोंकी संग्रहणीका नाश करता है। परन्तु नियम विरुद्ध सेवन किया जाय तो वही कालकूट विषके समान प्राणघातक भी है। इस लिए संग्रहणी रोगमें तक्र अन्यन्त सावधानीपूर्वक सेवन करना चाहिए।

संग्रहणीके लिए तक्रसे अच्छी अन्य कोई भी वस्तु नहीं है।

तक्रसेवी मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता और न ही तक्रके द्वारा नष्ट हुवे रोग पुनः उभरते हैं। जिस प्रकार देवताओंके लिए अमृत सुखकारी है उसी प्रकार संसारमें मनुष्योंके लिए तक्र हितकारी है।

(२७९६) तक्रहरीतकी

(यो. र.; यो. त. । त. २२, वृ. यो. त. । त. ६७)

त्रिकंसे तक्रस्य द्विकुडवपटोः पथ्टिरभयाः ।
पचेद्व्यस्थ्यः सार्धं घृततिलजविश्वाग्निकुडवैः ॥
समावाप्याजाजीमरिचचपलादीप्यकपलै-
लिहन्नेतां वह्निं द्रढयति विकारांश्च जयति ॥

उत्तम जातिकी ६० हर्रे लेकर उनकी गुठली निकाल डालिये, फिर उन्हें १२ सेर तक्रमें पकाइये और पकते समय उनमें ४० तोला सेंधा नमक डाल दीजिये। जब हरीतकी गल जायं और अवलेहके समान पाक हो जाय तो उसे अग्निसे नीचे उतारकर उसमें २०–२० तोले घी, तिलका क्षार तथा सोंठ और चीतेका चूर्ण, और ५–५ तोले जीरा, स्याहमिर्च, पीपल और अजवायनका चूर्ण मिला दीजिए।

इसके सेवनसे अग्नि दीप्त होती है।

(मात्रा—१ तोला। अनुपान—जल।)

(२७९७) तण्डुलादिकृशरा

(हा. सं. । स्था ३ अ. ६)

तण्डुलारक्तशालीनां भागद्वयेन धीमता ।
भृष्ट्वा तिलांश्च सङ्कुट्य तदर्धेन विमिश्रितान् ॥
भृष्ट्वा तत्समं मुद्गांश्चैकीकृत्वा तु साधयेत् ।
सिद्धां च कृशरां सम्यक् घृतेन सह भोजयेत् ॥
एकाहान्तरतं यस्तु तीव्राग्निस्तस्य नश्यति ॥

लाल शाली चावल २ भाग, तथा तिल और मूंग १-१ भाग लेकर तीनोंको पृथक् पृथक् मन्दाग्नि पर भून लीजिए; फिर तिलोको थोड़ा कूटकर तीनो चीजोंको एकत्र मिलाकर रखिये।

हर तीसरे दिन इसकी खिचडी बनाकर उसमें घी डालकर खानेसे भसक रोग शान्त होता है।

(२७९८) तण्डुलाम्बुसेकः (ग. नि.। मसू.)

पाददाहं प्रकुरुते पिटिका पादसम्भवा।
तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तन्दुलाम्बुना॥

यदि मसूरिकामें पैरोमें फूंसिया निकलें और उनमें दाह हो तो उनपर बार बार चावलोंका पानी (धोवन) डालना चाहिये।

(२७९९) तर्कार्यादिनिषेचनम्
(ग. नि.। ऊरुस्त. २१)

तर्कारीविल्वसुरसाशिशुवत्सकनिम्बजैः।
पत्रमूलफलैस्तोयं शृतमुष्णं निषेचनम्॥

ऊरुस्तम्भ रोगमें रोगस्थानपर अरणी, बेल, तुलसी, सहंजना, कुडा और नीमके पत्र, मूल और फलोंसे पके हुवे पानीके तरेडे देने चाहिएं।

(२८००) तार्क्ष्योऽगदः
(सु. सं। क. अ. ५.; वं. से। विष.; आ. वे. वि.। अ. ८२)

प्रपौण्डरीकं सुरदारु मुस्ता
कालानुसार्य्या कटुरोहिणी च।
स्थौणेयकं ध्यामकपद्मकानि[१]
पुन्नागतालीससुवर्चिकाच॥
कुटन्नटैलासितसिन्धुवाराः
शैलेयकुष्ठे तगरं प्रियङ्गु।
रोध्रं जलं[२] काञ्चनगैरिकञ्च
समं गन्धं चन्दनसैन्धवञ्च॥
सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा
शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि।
एषोऽगदस्तार्क्ष्य इति प्रदिष्टो
विषं निहन्यादपि तक्षकस्य॥

पुण्डरिया, देवदारु, मोथा, कृष्णसारिवा, कुटकी, थुनेर, गन्धतृण (मिर्चियागन्ध), कमलपुष्प, नागकेसर, तालीसपत्र, सज्जी, केवटी मोथा, इलायची, सफेद संभालु, शैलेय (भूरि छरीला), कूठ, तगर, फूल प्रियंगु, लोध, नेत्रबाल, सोनागेरु, गन्धक, चन्दन और सेंधा नमक समान भाग लेकर महीन चूर्ण बनाकर शहदमें मिलाकर गायके सींगमें भरकर रख दीजिए।

यह तार्क्ष्यगद सर्पविषको नष्ट करता है।

(२८०१) तालकाद्या मषी
(ग. नि.। नाडीव्र.; रा. मा.। नाडी.)

दहेत्पुटे तालकतन्दुलीयौ
तुल्यांशकौ तत्र भवेन्मषी या।
तत्पूरिता रोहति दुष्टनाडी
दुष्टव्रणो वा चिरकालजातः॥

हरताल और चौलाईका पञ्चाङ्ग बराबर बराबर लेकर दोनोंको एकत्र पीसकर सम्पुटमें बन्द करके पुटमें फूंक लें; और सम्पुटके स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे भस्मको निकालकर महीन पीस लें।

१ ध्यामकगुग्गुलुनीति पाठान्तरम्।
२ लोध्राञ्जनमिति पाठान्तरम्।

इसे घाव या नासूरके भीतर भरनेसे दुस्साध्य घाव भी भर जाता है।

(२८०२) तिलक्काथधारा (वृ यो.त.। त.९४)

अहिमतिलजधारा निष्पतन्ती विदूरा-
दपनयति हि शूलं शूलिनः शूलदेशे।

शूलके स्थानपर तिलोंके उष्ण क्वाथकी धार देनेसे शूल नष्ट हो जाता है।

(२८०३) तिलस्नानम् (यो. र., वं से.। नेत्र.)

स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चाक्षुष्यमनिलापहम्।

तिलोंको पीसकर शरीर पर मलकर स्नान करना वायुनाशक और नेत्रोके लिए हितकारी है।

(२८०४) तिलादिकवलः (वं. से.। मु. रो.)

तिलभवबीजपावकसिततरसिद्धार्थकल्पितः-
कवलः।
उष्णाम्बुसम्प्रयुक्तो द्विजतलसञ्जातशोथहरः॥

तिल, चीता और सफेद सरसों समान भाग लेकर चूर्ण करके गर्म पानीमें मिलाकर उसके कवल[3] धारण करनेसे मसूढोंकी सूजन नष्ट होती है।

(२८०५) तिलादिगण्डूषः
(यो. र.; ग. नि.। मुख; भा. प्र। म. ख. मुख.)

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च।
सलोध्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः॥

तिल, नीलोफर (नील कमल), घी, खाण्ड, और लोध ४-४ तोले लेकर, ८ गुने दूधमें मिला लें और फिर उसमें दूधसे ४ गुना पानी मिलाकर पकावें। जब पानी जल जाय तो छानलें।

इसके कुल्ले करनेसे मुंह जल जानेसे उत्पन्न हुई दाह नष्ट होती है।

(२८०६) तिलादिस्वेदः (यो. र.। गुल्म.)

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च।
श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक्॥

तिल, अरण्डीके बीज, अलसीके बीज और सरसो समान भाग लेकर सबको पानीके साथ पीसकर लोहपात्रमें लेप कर दीजिये। इसे थोड़ा गरम करके इससे कफज गुल्मको सेकना चाहिये।

(२८०७) त्रिवृताद्यगदः (च. द.।)

त्रिवृद्विशाला मधुकं हरिद्रे
मञ्जिष्ठवर्गो लवणं च सर्वम्।
कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि
शृङ्गे निदध्यान्मधुना युतानि॥
एषोऽगद हन्त्युपयुज्यमानः
पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगः।
अवार्यवीर्यो विषवेगहन्ता
महागदोनाम महाप्रभावः॥

निसोत, इन्द्रायण, मुलैठी, हल्दी, दारुहल्दी, मञ्जिष्ठादिगण, त्रिकुटा और सेंधा नमकका महीन चूर्ण समान भाग लेकर सबको शहदमे मिलाकर गायके सींगमें भरकर रख दीजिये।

इसे पीनेसे अथवा मलने या इसकी नस्य लेने या अञ्जन लगानेसे विष नष्ट होता है।

---

३ मुखमें पानी भरकर थोड़ी देरतक मुख चलाते रहें फिर कुल्ला करदे। इसीका नाम कवल धारण करना है।

४ सक्षौद्रविति पाठान्तरम्।

(२८०८) **तृषानाशकान्नम्** (वृं.मा.। तृष्णा.)

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम् ।
भोजयेत्तेन शाम्येते छर्दितृष्णे चिरोत्थिते ॥

लाल चावल (सांठी)के भातको ठंडा करके शहद डालकर खानेसे पुरानी वमन और तृष्णा शान्त होती है ।

(२८०९) **त्रिकट्वादिवर्त्तिः**

(भै. र. । आना., वृं. मा. । आ.; व. से.। गुल्म.)

वर्त्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ।
मधुनि गुडे वा पक्त्वा पाय्वीरितांगुष्ठपरिमाणा ॥
वर्त्तिरियं दृष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता ।
आनाहोदावर्त्तप्रशमनी जठरगुल्मनिवारिणी च ॥

त्रिकुटा, सेधा, सरसो, घरका धुंवा, कूठ और मैनफलका चूर्ण समान भाग लेकर सबको मधु या गुड़में पकाकर अंगूठेके बराबर मोटी बत्ती बनावें ।

इसे घृतसे चिकना करके धीरधीर गुदामें चढ़ानेसे अफारा, उदावर्त और गुल्म नष्ट होता है । अनुभूत है ।

(२८१०) **त्रिफलादिसेकः**

(यो. र., वृ. नि. र. । नेत्र.)

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः ।
पिष्टैः सिताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥

त्रिफला, लोध, मुलैठी, खाण्ड और नागरमोथेको पानीके साथ पीसकर खांडके पानीमें घोलकर, बारीक कपड़ेसे छानकर आंखोंपर उसके छपके देनेसे रक्ताभिष्यन्द नष्ट होता है ।

(२८११) **त्रिवृतादिवर्त्तिः** (वृ. मा. । व्रण.)

व्रणान्विशोधयेद्वर्त्त्या सूक्ष्मास्यान्सन्धिमर्मगान् ।
कृतया त्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥

निसोत, दन्तीमूल, लाङ्गली (कलिहारी) की जड़ और सेंधेके समान भाग महीन चूर्णको शहदमें मिलाकर उसमें स्वच्छ और महीन कपड़े की बत्ती भिगोकर उसे घावके भीतर रखनेसे सन्धि और मर्म स्थानोके छोटे मुंहवाले घाव शुद्ध हो जाते हैं ।

॥ इति तकारादिमिश्रप्रकरणम् ॥

॥ इत्योम् ॥

समाप्तोऽयं

द्वितीयो भागः

चैत्र शु. १५ सं. २००३ वै.



चिकित्सा-पथ-प्रदर्शिनी
अर्थात्
भारत-भैषज्य-रत्नाकर
(द्वितीय भागकी)
रोगानुसारिणी सूची



भूमिका

एकही रोगके, पृथक् पृथक् रोगियोमें प्रायः भिन्न भिन्न लक्षण और उपद्रव पाए जाते हैं, अत एव किसी एक रोगके भी, सभी रोगियोको एक ही औषध नहीं दी जा सकती। रोग एक होने पर भी लक्षणोकी विभिन्नताके अनुसार प्रत्येक रोगीके लिए विभिन्न औषध-योजना करनी आवश्यक होती है। अतएव रोगनिदानके पश्चात् प्रत्येक चिकित्सकके सम्मुख एक आवश्यक प्रश्न उपस्थित होता है, और वह यह कि-"इस रोगके लिए शास्त्रोंमें जो बहुसंख्यक प्रयोग विद्यमान् हैं उनमेंसे, इस रोगीकी वर्तमान् अवस्थाके लिए कौनसा प्रयोग अधिकसे अधिक लाभदायक सिद्ध होगा।" नवीन चिकित्सकोकी कौन कहे, यह प्रश्न, अनुभवी वैद्योके हृदयोमें भी न्यूनाधिक चिन्ता उत्पन्न किये बिना नहीं रहता।

आयुर्वेदिक ग्रन्थोमें प्रयोगोंकी गुणावलि इतने विस्तारसे लिखी गई है, और उनके छन्दो-बद्ध होनेके कारण हो या किसी अन्य कारणसे, वह इतनी अधिक विशृङ्खिल है कि उसके आधार पर उक्त प्रश्नको हल करना बड़ा ही कठिन प्रतीत होता है।

यह रोगानुसारिणी सूची लिखकर मैंने इसी कठिनाईके निराकरण करनेका प्रयत्न किया है। यद्यपि यह सूची अत्यन्त दोषपूर्ण और अपूर्ण है, तथापि मुझे आशा है कि इसके अवलोकनसे दो बातोंके ज्ञात करनेमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है—एक तो यह कि किसी रोगमें किन लक्षणों और उपद्रवोंके उपस्थित होंने पर कौन औषध प्रयुक्त करनी चाहिए और दूसरी यह कि किसी प्रयोगके गुणोंमें उसी अधिकारके अन्य प्रयोगोंसे क्या विशेषता है।

मुझे विश्वास है कि जो वैद्यविद्यार्थी इसे मननपूर्वक अवलोकन करेंगे उन्हें चिकित्साक्षेत्रमें अवतीर्ण होनेपर यह एक योग्य मार्गदर्शकका काम देगी, और अन्य वैद्य एक उपयोगी हैण्डबुक या याददास्तकी भांति, इसका उपयोग कर सकेंगे। साथ ही यह "भारत-भैषज्य-रत्नाकर" भी इस सूचीके योगके कारण 'प्रयोग संग्रह' की श्रेणीसे निकलकर **चिकित्साग्रन्थ** कहलानेका अधिकार प्राप्त कर सकेगा।

इस सूचीमें रोगानुक्रमके विषयमें प्राचीन पद्धतिका अनुसरण न करके अकारादि क्रमका अवलम्बन लिया गया है, और इस स्थलके लिए वही अधिक सुविधाजनक प्रतीत होता है।

अहमदाबाद
वैशाख शु. १३

गोपीनाथ

अनुक्रमाणिका



चिकित्सा-पथ-प्रदर्शिनी

१ अग्निमांद्यविसूचिकाजीर्णाधिकारः

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७२६	चित्रकादिचूर्णम्	अग्निमांद्य, पसली-शूल, गुल्म, अर्श।
१९८६	जठराग्निवर्द्धनचू.	जठराग्निवर्द्धक
१९९३	जरणादिचूर्णम्	पाचन,दीपन, रोचक
२००९	ज्वालामुखीचूर्णम्	अग्निदीपक है।
२३८६	त्वगाद्यमुद्वर्तनम्	हैजेमें होनेवाली हाथ पैरोंकी ऐंठन

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३०१	गन्धकवटी	रोचक, पाचक
१३०२	,, ,,	स्वादिष्ट है, हैजा, अतिसार, अजीर्ण।
१३०३	,, ,,	कोष्ठबद्धता, अजीर्ण
१३०४	,, ,,	अग्निदीपक है।
१३०५	गन्धकादिवटी	विसूचिका
२०२१	जीरकाद्या गुटिका	अजीर्ण, अलसक, विसूचिका, अफारा
२४१०	त्रिवृतादि मोदकः	अग्निमांद्य

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४३०	त्रिफलावलेहः	भस्मक

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
२०३६	जीरकघृतम्	अग्निवर्द्धक,अर्शनाशक
२४६३	त्र्यूषणाद्यं घृतम्	मन्दाग्नि

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१३७९	गन्धकतैलम्	अग्निदीपक
१८०७	चित्रकाद्यं तैलम्	प्रवृद्धशूल
१८०९	चुक्रादि ,,	विषूचिकामें होनेवाली हाथ पैरोंकी ऐंठन
१८१०	,, ,,	विसूचिका

आसवारिष्टप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१८१५	चुक्रसन्धानम्	अग्निदीपक है।
२४८३	तक्रारिष्टः	अग्निदीपक, रोचक

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
२४९६	तालमूलादि लेपः	विसूचिका

अञ्जनप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१४५९	गरुडाञ्जनम्	अजीर्ण
१४६७	गुटिकाञ्जनम्	विसूचिका

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१८७७	चण्डाग्नि रसः	अग्निदीपक

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१८०	ज्वालानल रसः	अजीर्ण,हृल्लास, वमन, आलस्य, अरुचि।
२२०१	टङ्कणादिवटी	अग्निवर्धक है।
२७५१	त्रिफलालौहः	भस्मक

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१८३	जम्बीरद्राव	अजीर्ण, अग्निमांद्यादि
२७९६	तक्रहरीतकी	अग्निवर्द्धक,मलशोधक
२७९७	तण्डुलादिकृशरा	भस्मक

२ अतिसाराधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११०८	गङ्गाधरक्काथः	वेगवान अतिसार
११५९	गिरिमल्लिकार्द्यक्षीरम्	रक्तातिसार
१२११	गोकण्टकादि	आम, कफातिसार
१६७२	चविकापल्लवयोगः	अतिसार
१६७४	चव्यादिक्काथः	कफातिसार, वमन
१६८५	चित्रकादिक्काथः	वातकफातिसार
१६८६	" "	आम और वेदनायुक्त अतिसार
१९६८	जम्ब्वादि स्वरसः	कफातिसार,रक्तातिसार
१९६९	" "	रक्तातिसार
१९७२	जलत्रिक योगः	दाह और शूलयुक्त पित्तातिसार
२२११	तण्डुलीय मूलप्रयोगः	रक्तातिसार
२२२८	तिलादिकल्कः	"

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२३०	गङ्गाधरचूर्णम्	सर्व प्रकारके अतिसार
१२३१	" "	वेगवान् अतिसार
१२३२	" "	" "
१२३३	" "	पुराना भयङ्कर अतिसार,संग्रहणी, शोथ, खांसी, ज्वर, तृष्णा।
१२३४	गङ्गाधरचूर्णम्	प्रवाहिका, संग्रहणी, अतिसार।
१२३५	" "	संग्रहणी, शूल, प्रवाहिका, अतिसार। प्रसूतिरोग।
१२५५	गुडविल्वम्	रक्तातिसार,आम,शूल।
१६९४	चन्दनयोगः	रक्तातिसार,रक्तपित्त, प्यास, दाह।
१७१५	चिञ्चावीजयोग·	अतिसारको तुरन्त रोकता है।
१७२१	चित्रकादिचूर्णम्	वेदनायुक्त कफपित्तज अतिसार
१९८९	जम्ब्वादिचूर्णम्	रक्तपित्त, अतिसार
१९९१	जयाखण्डचूर्णम्	आमातिसार तथा रक्तातिसारमें अकसीर
१९९७	जातिफलादियोगः	वेगवान पुराना अतिसार, शूल और रक्तयुक्त अतिसार।
२३५२	त्रिफलादिचूर्णम्	भयङ्कर रक्तातिसार, रक्तप्रवाह (बालकोंके लिये विशेष उपयोगी है।)

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२३७८	त्रुट्यादिचूर्णम्	आम निकाल देता है
२३८०	त्र्यूषणादि ,,	प्रबल आमातिसार

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७३४	चतुःसमागुटिका	आमातिसार, अफारा, विसूचिका
२०१५	जातिफलादिवटी	प्रबल अतिसार

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०२७	जम्बूत्वचाद्योऽवलेहः	आमयुक्त, दुर्गन्धित, जलके समान तथा पीपवाले भयङ्कर अतिसारमें अत्युत्तम

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४६२	त्र्यूषणादिघृतम्	प्रवाहिका (पेचिश)

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४९६	गगनायसरसायनम्	पित्तातिसार
१४९८	गङ्गाधरचूर्णम्	दुस्साध्य अतिसार
१४९९	गङ्गाधर रसः	अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी
१५००	,, ,,	सर्वातिसार, ग्रहणी
१९३१	चिन्तामणिरसः	सन्निपातज अतिसार, संग्रहणी
२११५	जातिफलरसः	आमातिसार, रक्तग्रहणी
२७०४	तृप्तिसागररसः	सन्निपातातिसार

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१८४	जलतैलप्रयोगः	रक्त और आमयुक्त पुराने अतिसारको शीघ्र नष्ट करता है।
२२०५	टिण्डुकादि पुटपाकः	समस्त प्रकारके अतिसार

३ अपस्माराधिकारः

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०५९	जीवनीयो यमकः	अपस्मार
२४७५	त्रिफलातैलम्	अपस्मार (नस्य)

अञ्जनप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४७२	ग्रहोपशमनार्थमञ्जनम्	अपस्मार, ग्रह, राक्षस
१४७३	,,	,, ,, ,,

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१८७२	चण्डभैरवः	अपस्मार
२७१३	त्रिकत्रयाद्यं लोहम्	अपस्मार, उन्माद, वायु

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६१६	गिरिकर्णीमूलयोगः	गलेमें बांधनेसे अपस्मार नष्ट होती है।

संख्या प्रयोगनाम मुख्य गुण संख्या प्रयोगनाम मुख्य गुण

४ अम्लपित्ताधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११९३	गुडूच्यादिक्काथ·	अम्लपित्तज छर्दि
१६८४	चित्रकादिक्काथः	अम्लपित्त, कोष्ठदाह
१९४९	छिन्नादिकषायः	अम्लपित्त
१९५६	छिन्नोद्भवादिक्काथः	पित्त, अम्लपित्त।
२२७९	त्रिफलादिक्काथः	अम्लपित्त, छर्दि, ज्वर

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२३३९	त्रिकट्वादिचूर्णम्	प्रवृद्ध अम्लपित्त(शीघ्र गुण करता है।)

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३११	गुडादिमोदकः	पित्तकफ, अग्निमांद्य

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३५८	गुडादिघृतम्	वातज अम्लपित्त

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२५६७	ताम्रद्रुतिः	दुस्साध्य अम्लपित्त, शूल।
२७४२	त्रिफलादिमण्डूरम्	अम्लपित्त
२७४८	त्रिफलादिमण्डूरम्	अम्लपित्तज शूल
२७८५	त्र्यूषणादि ,,	अम्लपित्त,परिणामशूल

५ अरोचक तथा स्वरभेदाधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१९८३	जीवनीयक्षीरम्	पैत्तिक स्वरभङ्ग

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१९५८	छत्रादिचूर्णम्	सर्व प्रकारकी अरुचि
२२२५	तिन्तडीपानम्	अरुचि। (स्वादिष्ट)
२३८२	त्र्यूषणादिचूर्णम्	अरुचि
२३८७	त्वगेलाद्यं ,,	अत्यन्त रुचिवर्द्धक
२३८८	त्वङ्मुस्तादि ,,	रोचक, मुखशोधक

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४१८	त्र्यूषणादिवटी	अत्यन्त रोचक, अग्निवर्द्धक।

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०३८	जीरकाद्यं घृतम्	कफपित्तज अरुचि,वमन

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२७९४	तक्रयोगः	रोचक, अग्निदीपक

६ अर्शोऽधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११६१	गुडार्द्रकयोगः	बवासीर, कब्ज़।
१२१८	गोजिह्वादिक्काथः	६ प्रकारकी अर्श, गुदाकी पीड़ा, खुजली, रक्तस्राव
१६६६	चन्दनादि-दार्व्यादिश्चक्काथः	रक्तार्श
१६८१	चित्रकमूलादियोगः	अर्श
१६८७	चित्रकादिप्रयोगः	अर्श

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२५६	गुडशुण्ठ्यादियोगः	आम, अजीर्ण, अर्श, कोष्ठबद्ध
१२५७	गुडहरीतकीयोगः	अर्श, पित्त, कफ, खुजली, पीड़ा।
१२६३	गुडाद्यं चूर्णम्	अर्श, मलावरोध।
१६३४	घृतभर्जितहरीतकी	वायुका अनुलोमन करती है।
१६९१	चतुस्समप्रयोगः	अर्श, ज्वर, पाण्डु।
१७२९	चिरविल्वाद्यंचूर्णम्	रक्तार्शके मस्से
२३१८	तिलसप्तक ,,	अर्श, मन्दाग्नि, ज्वर, पाण्डु।
२३२३	तिलादिप्रयोगः	पुरानी पित्तज अर्श (शीघ्रगुण करता है।)
२३२४	तिलादिप्रयोगः	अर्श, श्वास, खांसी, पाण्डु, ज्वर।
२३३३	त्रपुषादियोगः	पित्तज अर्श

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७३५	चतुस्समो मोदकः	अर्शनाशक, बलवर्द्धक
१७३८	चन्द्रप्रभा गुटिका	अर्श, ज्वर, मन्दाग्नि, अतिसार, शुक्रदोषादि अनेक रोग
२३९६	त्रिकटुकादिमोदक	गुदरोग, अग्निमांद्य।

गुग्गुलुप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३३५	गुग्गुल्वादिवटी	अर्श(शीघ्रगुणकारी है)

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३३९	गुडभल्लातकः	अर्श, पाण्डु, प्रमेह, संग्रहणी।
१७५२	चव्यादिलौहम्	अर्श, गुदशूल, पाण्डु, सूजन, प्लीहा।
१७५६	चित्रकादि भल्लातकावलेहः।	अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, अरुचि, शूल।

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७६५	चव्यादिघृतम्	अर्श, वातरोग, अश्मरी

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१८०८	चित्रकाद्यं तैलम्	अर्शके मस्से काट देता है।

आसवारिष्टप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४८५	ताम्बूलासव	अर्श, कफज रोग

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४३३	गुञ्जासूरणलेपः	अर्शाङ्कुर (मस्से)
१४५३	गौरीपाषाणलेपः	,, ,,
२०८०	ज्योतिष्कवीजलेपः	रक्तार्श

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५६७	गुदजहररसः	अर्श, गुदशूल
१८६६	चक्राख्यरस	द्वन्द्वज और सन्निपातज अर्श
१८६९	चक्रेश्वरो रसः	वातार्श(बादीबवासीर)
१८७१	चण्डभास्करोरस	अर्श, शोथ, पाण्डु, ज्वर
२११७	जातिफलादिवटी	अर्श, अग्निमांद्य।
२६८८	तीक्ष्णमुखरस.	सर्व प्रकारका अर्श

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२६८९	तीक्ष्णमुखरसः	सर्व प्रकारकी अर्श
२६९०	तीक्ष्णमुखरसः	पित्तज अर्श

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२७९३	तक्रप्रयोगः	

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६१८	गुञ्जादिवर्तिः	गुदामें रखनेसे अर्श नष्ट होती है।
१६२३	गोमयपिण्डादिस्वेदः	मस्सोंके लिए सेक
२१९२	जालिनीफलवर्तिः	मस्से नष्ट होते है।

७ अश्मर्यधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२२२	गोपालकर्कटीयोगः	३ दिनमें अश्मरीका नाश कर देता है।
२२२९	तिलादिक्काथ	शर्करा, अश्मरी

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२८३	गोक्षुरादिचूर्णम्	अश्मरिपातक
२३२०	तिलादिक्षारयोगः	अश्मरी
२३२१	,, ,, ,,	शर्करा, अश्मरी।
२३३५	त्रपुषीबीजादि योगः	शर्करा (शीघ्र गुणकारी है।)
२३४३	त्रिकण्टकादिचूर्णम्	अश्मरी (७ दिनका प्रयोग)

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४३९	तृणपञ्चमूलाद्यं घृतम्	शर्करा, अश्मरी

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५४३	गन्धकादियोगः	अश्मरी,शर्करा,मूत्रकृ.
२७५९	त्रिविक्रमोरसः	शर्करा, अश्मरी

८ उदररोगाधिकार*

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११५४	गवाक्षीकल्कः	सर्व उदररोग
१२२४	गोमूत्रयोगः	शोथोदर
१६७३	चव्यादिक्काथः	उदररोग

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२४८	गवाक्ष्यादिचूर्णम्	उदररोग
१७१९	चित्रकादिक्षारः	प्लीहा,शूल,गुल्म,अर्श
२३२८	तुम्बर्वादिकं चू.	उदररोग, शूल,गुल्म, अफारा
२३२९	तुम्बर्वादिकं चू.	उदररोग,शूल,गुल्म, अफारा

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७६४	चित्रकलेहः	उदररोग,प्लीहा,गुल्म
१७५९	चित्रकावलेहः	उदररोग,गुल्म,तिल्ली।

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७७९	चित्रकादिघृतम्	कफोदर

* जलोदर तथा यकृत्प्लीहाधिकार पृथक् लिखा गया है।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	तैलप्रकरणम्	
२०६३	ज्योतिष्मतीतैलः	विरेचक
	आसवारिष्टप्रकरणम्	
१४०७	गुग्गुल्वासवः	समस्त उदररोग, प्लीहा
१८१३	चविकासव	उदररोग, गुल्म।
	रसप्रकरणम्	
१९४१	चूलिकावटी	शोथोदर, गुल्म, प्लीहा
२६०७	ताम्रेन्द्ररसः	उदररोग, कफवायु।
२७३८	त्रिपुरसुन्दरो रसः	आमाशयरोग
२७५४	त्रिभुवनकीर्ति	समस्त उदररोग
२७६७	त्रैलोक्यडम्बर	,, ,,
२७७४	त्रैलोक्यसुन्दर	वातोदर
	मिश्रप्रकरणम्	
२१८३	जम्बीरद्रावः	यकृत, प्लीहा, गुल्म, शूल, अफारा, अष्ठीला पार्श्वशूलादि।

९ उदावर्ताधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	गुटिकाप्रकरणम्	
१२६७	गुडाष्टकम्	उदावर्त, शूल, शोथ
२४०८	त्रिवृतादि गुटिका	मलावरोध
२४११	त्रिवृतादि मोदक	उदावर्त, शूल, कोष्ट-विकार
२४१५	,, वटिका	अफारा

१० उन्मादाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
१६७६	चाङ्गेरीप्रयोगः	उन्मादको ३ दिनमें नष्ट करता है।
	अवलेहप्रकरणम्	
१७५१	चन्द्रावलेहः	पित्तज उन्माद, शरीरकी दाह।
	घृतप्रकरणम्	
१७८३	चैतसघृतम्	चित्तविकार
१७८४	,, ,,	उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार
	अञ्जनप्रकरणम्	
२५४८	त्र्यूषणाद्यञ्जनम्	अपस्मार, उन्माद
	नस्यप्रकरणम्	
१४७८	गिरिकर्णीमूलयोगः	भूतबाधा, ग्रह।
१४८३	ग्रहोपशमनार्थनस्यम्	भूत, ब्रह्मराक्षस
	रसप्रकरणम्	
१८७३	चण्डभैरवो रस	भूतोन्माद, ग्रह
१८७९	चतुर्भुजरस	उन्माद, अपस्मार
१८८१	चतुर्मुखो रसः	अपस्मार, उन्माद
१९४३	चैतन्योदयरस	तत्वोन्माद
२५६१	ताण्डवाग्निलौहम्	ताण्डवरोग

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण

११ उपदंशाधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२१०	गैरिकादिक्काथः	पित्तज उपदंश
१९७०	जयादिक्काथ	लिङ्गव्रणोंको धोनेके लिए
१९६९	जातिप्रवालरसादि	उपदंश
२२६७	त्रिफलाक्काथः	उपदंशके घाव धोने योग्य पानी।

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२३७	गन्धकयोग.	उपदंश
१७३२	चोपचीनीयोगः	फिरङ्गरोग
१७३३	चोपचिन्यादिः	उपदंश, व्रण, कुष्ठ।

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७६०	चोपचीनीपाकः	उपदंश, व्रण, कुष्ठ।

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३९९	गृहधूमादितैलम्	उपदंशकी खुजली और सूजन
१४००	गोजिह्वातैलम्	सर्व प्रकारके उपदंशोंमें घाव भरनेके लिए।
२०४८	जम्ब्वाद्यं तैलम्	उपदंशव्रण
२०५४	जात्यादितैलम्	उपदंशव्रण
२०५५	जात्यादितैलम्	उपदंश, भगन्दर।

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४४४	गैरिकादिलेपः	पित्तज उपदंशव्रण
१४४८	गोपीचन्दनलेप.	उपदंशव्रण
२०७१	जातीफलादि ,,	उपदंशके व्रणोंको शुद्ध करता और भरता है।
२५०८	तुत्थादिमलहरम्	उपदंश, फिरङ्गरोग
२५०९	तुत्थादिलेपः	उपदंश
२५२३	त्रिफलामषीलेप·	उपदंशव्रणको शीघ्र भरता है।

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१९४५	चोपचीनीवाष्पः	लिङ्गव्रण

१२ कर्णरोगाधिकारः

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२९८	गोशृङ्गवचादि चू.	कर्णवर्द्धक

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२३९५	त्रिकटुकादिगुटी	बधिरता

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३७८	गन्धक तैलम्	कर्णनाडी(कानकानासूर)
१३८०	गन्धक तैलम्	कर्णनाडी(कानकानासूर)
१३९२	गुञ्जाफलतैलम्	कर्णपालीको बढाता और कोमल करता है
१७८७	चतुष्पर्णतैलम्	पूतिकर्ण

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७८८	चतुष्पल्लवतैलम्	पूतिकर्ण
२०४५	जम्ब्वादितैलम्	कर्णपालीकी सूजन
२०४६	,, ,,	पूतिकर्ण
२०४७	जम्ब्वाद्यंतैलम्	कर्णस्राव
२०५०	जातिपत्रादितैलम्	पूतिकर्ण

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	लेपप्रकरणम्	
१४४२	गैरिकादिलेपः	कर्णमूल
	मिश्रप्रकरणम्	
१६२२	गोमक्षिकाहरयोगः	कानसे मच्छर निकालनेकी विधिः।

१३ कासाधिकारः

कषायप्रकरणम्

११९०	गुडूच्यादिकाथः	खांसी, श्वास
१२०८	गुरुपञ्चमूलीकाथः	कास, श्वास
२२३६	तृणपञ्चमूलादिपयः	पित्तज खांसी

चूर्णप्रकरणम्

१२९९	ग्रन्थिकादिचूर्णम्	खांसी
१७२३	चित्रकादि ,,	कफज खांसी
१७२८	चिन्तामणि ,,	श्वास, कास
२००७	जीवन्त्याद्यं ,,	५ प्रकारकी खांसी
२३४०	त्रिकटूवादि ,,	खांसी
२३५७	त्रिफलादि ,,	,,

गुटिकाप्रकरणम्

१६३५	घनादिगुटिका	३ दिनमें खांसी, श्वास को नष्ट करती है।
२०२३	जीवकाद्यो मोदकः	कास, क्षत, क्षीणता
२४००	त्रिजातादिगुटिका	खांसी, रक्तवाली खांसी, ज्वर, क्षत, पार्श्वशूल, हिक्का, भ्रम इत्यादि।

अवलेहप्रकरणम्

१७५८	चित्रकाद्यवलेहः	खांसी, श्वास, उदररोग

घृतप्रकरणम्

१३६४	गुडूच्यादिघृतम्	वातजकास, अग्निमांद्य
१३६५	,, ,,	कास, श्वास, क्षय, गुल्म

तैलप्रकरणम्

१७९९	चन्दनाद्यं तैलम्	खांसी, राजयक्ष्मा

धूपप्रकरणम्

१८४४	चिञ्चादिवर्तिः	कास

धूम्रप्रकरणम्

२०८४	जात्यादिधूम्र	कास
२०८५	,, ,,	,,

रसप्रकरणम्

१५६६	गुणमहोदधिरसः	खांसी, श्वासादि सैंकड़ों रोग

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१९०१	चन्द्रामृतवटी	पांच प्रकारकी खांसी, रक्तथूकना, ज्वर, श्वास, तृष्णा, भ्रम
१९०२	चन्द्रामृतलोहम्	गरदोषज खांसी, ज्वर तृष्णा,भ्रम और दाह युक्तखांसी तथा अन्य हर प्रकारकी खांसी
२५७०	ताम्रपर्पटी	कास, समस्त रोग
२५९०	ताम्रभैरवो रसः	खांसी, श्वास, पीनस
२५९७	ताम्ररसायनम्	खांसी, श्वास, कफ
२६०९	ताम्रेश्वरो रसः	क्षतज खांसी
२६७८	तालेश्वररसः	कास, स्वरभङ्ग
२६८६	तिक्तत्रयरसः	पित्तज खांसी, ज्वर, गलरोग,तृष्णा, दाह
२७२५	त्रिनेत्ररसः	पित्तज कास
२७२७	" "	" "

१४ कुष्ठ तथा त्वग्दोषाधिकारः*

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११९६	गुडूच्यादिक्काथः	त्वग्दोष, व्रण, शोथ
१९७५	जलशैवालयोगः	खुजली
२२८७	त्रिफलादिक्काथः	पित्तकफकुष्ठ
२२९६	" "	दोषपाचक

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२३६	गन्धकचूर्णम्	पामा, खुजली
२२८७	गन्धकप्रयोगः	कुष्ठ
१९८८	जम्बूदलाद्युद्वर्तनम्	पसीना,दुर्गन्ध(उबटन)
२३१६	तिलवाकुचीयो.	कुष्ठ(१ वर्षका प्रयोग)
२३२५	तिलादिप्रयोगः	कुष्ठ, (बल और मेघावर्द्धक)
२३४८	त्रिफलादिचूर्णम्	दाह, खुजली,पामा, रक्तदुष्टि विस्फोटक, मण्डलादि

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७४२	चित्रकगुटिका	मण्डल, खुजली
२०११	जयन्तीवटी	कुष्ठ
२०१२	जयागुटी	" क्षय
२३९९	त्रिजातगुटिका	कण्डूनाशक(रेचक)

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३५३	गुग्गुलुतिक्तकं घृत	त्वग्दोष, कुष्ठ, गण्ड-माला, शून्यता
१३५४	गुग्गुलुपञ्चतिक्त	सड़े हुवे कुष्ठ, विसर्प
१३५५	" "	कुष्ठ,वातरक्त, गण्ड-माला,भगन्दर,नासूर
२४३२	तिक्तकं घृतम्	पित्तकुष्ठ,दाह,विसर्प खुजली, विस्फोटक, श्वित्र।
२४५५	त्रिफलाद्यं घृतम्	जिसमें नख, केश और स्नायु गल गए हों वह कुष्ठ।

* वातरक्त पृथक लिखा गया है।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
	तैलप्रकरणम्	
१३७७	गण्डीरादितैलम्	मण्डल, किटिभकुष्ठ
१३८२	गन्धपिष्टितैलम्	खुजली
१३८५	गुग्गुल्वादिसूर्य-पाक तैलम्	कुष्ठ
१८०२	चित्रकतैलम्	पुराना श्वेतकुष्ठ, मण्डल सिध्म कण्डु, विसर्प
२०५७	जीरक तैलम्	तरखुजली
२०६०	जीवन्त्याद्यो-यमकः	किटिभ, सिध्म, विपादिका
२६०१	ज्योतिष्मतितैलम्	श्वेतकुष्ठ
२४७२	तृणकतैलम्	कुष्ठ
	लेपप्रकरणम्	
१४११	गन्धकादिलेपः	सिध्म
१४१५	,, ,,	,,
१४१६	,, ,,	श्वेतकुष्ठ
१४१७	गन्धपाषाणलेपः	पामा, कच्छु
१४२२	गिरिकर्णीयोगः	श्वेतकुष्ठ
१४२४	गुग्गुल्वादिलेपः	कुष्ठ
१४२५	गुञ्जादिलेपः	श्वित्रकुष्ठ
१४२६	,, ,,	कुष्ठ
१४२७	,, ,,	गजचर्म, दद्रु, कण्डू, रकस
१४३१	गुञ्जाफलादिलेपः	श्वेतकुष्ठ
१४३५	गुडादिलेपः	पैरफटना
१४३८	गृहधूमादिलेपः	श्वित्र, मण्डल, सुप्ति
१४४९	गोमूत्रादिलेपः	रकस
१४५१	गोशकृदादिलेपः	पामा, कच्छु
१८१७	चक्रमर्दादि ,,	सर्वकुष्ठ
२८१८	,, ,,	दद्रु
१८१९	,, ,,	,,
१८२०	,, ,,	किटिभ
१८२२	चतुरङ्गुलपर्णादि	कुष्ठ
१८३५	चन्द्रशूरादिलेपः	दादको अवश्य नष्ट करता है।
१८३६	चिञ्चापत्ररसयोगः	दादके कृमि नष्ट करता है। (अत्यन्त सरल योग)
१८३८	चित्रकादिलेपः	मण्डल कुष्ठ
१८४०	,, ,,	,, ,,
२०६८	जलादिलेपः	पित्त, कफज कुष्ठ
२४८९	तमालपत्रादियोगः	सिध्म, किलास
२४९१	ताम्बूलचूर्णादिलेपः	शरीरकी दुर्गन्धि
२४९३	तालकादिलेपः	सिध्म
२४९४	,, ,,	श्वित्र
२५१०	तुम्बर्वाद्युद्वर्तनम्	किटिभ, सिध्म, भिलावेकी सूजन, दाद, कपाल कुष्ठ।
२५१४	त्रिफलादिप्रयोगः	विपादिका
२५१८	त्रिफलादिलेपः	श्वित्र
	रसप्रकरणम्	
१५०२	गजचर्मारिरसः	गजचर्म
१५१४	गन्धककल्पः	पामा, खाज
१५२६	गन्धकप्रयोगः	,,

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५२७	गन्धकयोगः	कण्डू,पामा,विचर्चिका
१५३०	गन्धकयोगः	कण्डू, पामा, पुरानी विचर्चिका
१५३१	,, ,,	पामा(३ दिनका प्रयोग)
१५३३	गन्धकरसायनम्	१८ प्रकारके कुष्ठ
१५६०	गलत्कुष्ठनाशकरसः	गलत्कुष्ठ
१५६१	गलत्कुष्ठारिरसः	गलत्कुष्ठ, वातरक्त, किलास
१६४१	घनसङ्कोचनामरसः	पित्तजकुष्ठ
१८७४	चण्डभैरवोरसः	सर्वकुष्ठ
१८७५	चण्डरुद्ररसः	विचर्चिका
१८८७	चन्द्रकान्तरसः	कुष्ठ
१८९०	चन्द्रप्रभावटी	श्वेतकुष्ठ
१८९१	,, ,,	पामा
१८९५	चन्द्रशेखरो रसः	कुष्ठ,शतारुक,गलत्कुष्ठ
१८९९	चन्द्राननो रसः	कुष्ठ
१९११	चर्मकुष्ठाररसः	चर्मकुष्ठ
१९१२	चर्मभेदीरसः	,,
१९१३	चर्मान्तको रसः	,,
२१०२	जन्तुघ्नीगुटिका	२–३ वारके प्रयोगसे कुष्ठके कृमि निकल जाते हैं।
२१२९	ज्योतिष्पुञ्जोरसः	चर्मकुष्ठ
२५६०	ताण्डवरसः	गलत्कुष्ठ
२५७७	ताम्रभस्मयोगः	दुस्साध्य औदुम्बर कुष्ठ
२५९५	ताम्रयोगः	कोठ,उदर्द,शीतपित्त
२६११	तारकेश्वरीगुटिका	सर्व प्रकारके कुष्ठ
२३३९	तालकादिवटी	शीतपित्त

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२६४०	तालकेश्वररसः	१८ प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, प्रमेह पीडिका
२४४१	,, ,,	गलत्कुष्ठ, सुप्ति, मण्डल, कृष्णकुष्ठ, विचर्चिकादि सर्व कुष्ठ।
२६४३	,, ,,	गलत्कुष्ठ, वातरक्त, शीतपित्त,मण्डल, दाद
२६४४	,, ,,	वातरक्त, रोमविध्वंस
२६४५	,, ,,	उपद्रवसहित वातरक्त उपदंश,विसर्प,कण्डू
२६४६	,, ,,	समस्त देहमें व्याप्त कुष्ठ जिसमें शिराऐं दीखती हों।
२६४७	,, ,,	वातरक्त, श्वेतकुष्ठ
२६४८	,, ,,	समस्त कुष्ठ
२६४९	,, ,,	,, ,,
२६५०	,, ,,	,, ,,
२६५१	,, ,,	खुजली,पीप,पीड़िका और कृमियुक्त कुष्ठ; नासिका आदि गल जाना।
२६५२	,, ,,	सर्व प्रकारके कुष्ठ
२५५३	,, ,,	सर्वकुष्ठ (अत्यन्त अग्नि दीपक)
२६५४	,, ,,	गलत्कुष्ठ
२६५५	,, ,,	सर्वकुष्ठ

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२६५६	तालकेश्वर रसः	श्वेतकुष्ठ (३ दिन बाद छाला पड़ताहै)
२६५८	तालचन्द्रोदयः	कुष्ठरोगमें अकसीर
२६६६	तालमन्त्रेश्वर	मण्डलकुष्ठ
२६८१	तालेश्वरो रसः	वातमण्डल, वातरक्त
२६८२	,, ,,	सर्वकुष्ठ
२६८३	,, ,,	,,
२६८४	,, ,,	वायु, वातरक्त, कुष्ठ, भगन्दर
२६८५	,, ,,	वमन और स्राव तथा कृमियुक्त गलत्कुष्ठ
२७१५	त्रिगन्धरसः	औदुम्बर कुष्ठ
२७४०	त्रिफलादि गुटिका	दद्रु, किलासकुष्ठ
२७४३	,, मोदकः	समस्त त्रिदोषज कुष्ठ
२७७२	त्रैलोक्यविजय	सर्वकुष्ठ
२७७३	,, ,,	,,

मिश्रप्रकरणम्

१९४५	चौपचीनीवाष्पः	कुष्ठ, वातरक्त, व्रण

१५ कृमिरोगाधिकारः

कषायप्रकरणम्

२२५४	त्रिकट्वादिक्वाथः	पेटके कृमि
२२८०	त्रिफलादिक्वाथः	,, ,,

चूर्णप्रकरणम्

१९५९	छोहाराद्यं चूर्णम्	कृमिरोग

घृतप्रकरणम्

२४५२	त्रिफलाघृतम्	कृमि
२४५६	त्रिफलाद्यं घृतम्	कृमि

लेपप्रकरणम्

२४९५	तालमूलादिलेपः	कृमिनाशक

रसप्रकरणम्

२१०२	जन्तुघ्नीगुटिका	२-३ वारके प्रयोगसे उदरके कृमि निकल जाते हैं।

१६ गलगण्डगण्डमालाधिकारः

कषायप्रकरणम्

११११	गण्डमालाहर	पुरानी गण्डमाला
१११२	,,	गण्डमाला
१११३	,,	गण्डमाला, अपची, कामला
११५८	गिरिकर्णिका मूल	गण्डमाला
१९७१	जलकुम्भी क्षारयोगः	गलगण्ड
२२२४	तिक्तालाबुयोगः	,,
२२९९	त्रिफलायोगः	गण्डमाला, गलगण्ड

गुग्गुलुप्रकरणम्

२४२४	त्रिफलादिगुग्गुलुः	गण्डमाला, उरुस्तम्भ

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	घृतप्रकरणम्	
२०३५	जीमूतकादिघृतम्	प्रवृद्ध अपची
	तैलप्रकरणम्	
१३७५	गण्डमालापहं तैलम्	गण्डमाला
१३९०	गुञ्जा „	दुस्साध्य गण्डमाला
१३९१	गुञ्जाद्यं „	अपचीकी सब अवस्थाओंमें उपयोगी है।
१७८५	चक्रमर्दादिसिन्दूरः	दुस्साध्य गण्डमाला
१८००	चन्दनाद्यं तैलम्	अपचीको समूल नष्ट करता है।
२४७१	तुम्बीतैलम्	गलगण्ड

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	लेपप्रकरणम्	
१४१३	गन्धकादिलेपः	गण्डमाला
१४२०	गिरिकर्णिकालेपः	उपद्रवयुक्त गण्डमाला
२०६७	जलकुम्भीभस्मलेपः	पुराना गलगण्ड
२०७७	जयपालपत्रलेपः	गण्डमाला
	नस्यप्रकरणम्	
१४७४	गण्डमालाहरनस्य	गण्डमाला
१४७५	„ „	गण्डमाला, अपची
	रसप्रकरणम्	
१५०३	गण्डमालाकण्डनरसः	दुस्साध्यगण्डमाला

१७ गुल्मरोगाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
२२२७	तिलक्काथः	रक्तगुल्म
२२४७	त्रायमाणक्काथः	पित्तगुल्म
	चूर्णप्रकरणम्	
१२७६	गुल्मनाशकचूर्णम्	गुल्म, अश्मरी
१२७७	गुल्महरचूर्णम्	सर्वगुल्म, उदररोग:
	गुटिकाप्रकरणम्	
१३०६	गुडचतुष्टय.वटिका	गुल्म,अर्श,अग्निमांद्य
१७४१	चिञ्चाक्षारवटी	सर्वगुल्म,शूल,अजीर्ण
	घृतप्रकरणम्	
१७८१	चित्रकाद्यं घृतम्	वातगुल्म, शूल, अफारा, अग्निमांद्य
२४४१	त्रायमाणाद्यं घृतम्	पित्तज तथा रक्तज गुल्म
२४५९	त्रिवृतादिमिश्रकस्नेहः	कफज गुल्म
२४६०	त्रिवृताद्यं घृतम्	गुल्म
२४६५	त्र्यूषणाद्यं „	वातज गुल्म
	रसप्रकरणम्	
१५६८	गुल्मकालानलो	सर्व प्रकारके गुल्म
१५६९	„ „	सर्वगुल्म, विशेषतः वातगुल्म
१५७०	गुल्मकुठाररसः	सर्वगुल्म, हृदय पसली और उदरशूल, अजीर्ण
१५७१	„ „ „	सर्व गुल्म

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५७२	गुल्मगजाराती	गुल्म
१५७३	गुल्मनाशनरसः	५ प्रकारके गुल्म, अग्निमांद्य
१५७४	गुल्ममदेभसिंहोरसः	पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, अग्निमांद्य, पित्त
१५७५	गुल्मवज्रिणीवटी	गुल्म,आनाह, अजीर्ण शूल
१५७६	गुल्मशार्दूलरसः	सर्वगुल्म,उदरशोथ,
१५८१	गोपीजलः	गुल्म,शूल, पित्तरोग,
१९३३	चिन्तामणिरसः	गुल्म, शूल, अफारा, विबन्ध
२५८०	ताम्रभस्मयोगः	सर्व प्रकारके गुल्म

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६११	गुल्महरीवर्तिः	गुदामें रखनेसे गुल्म नष्ट होता है।
२८०६	तिलादिस्वेदः	कफज गुल्मपर सेक
२८०९	त्रिकट्वादिवर्तिः	गुल्म,उदावर्त,अफारा

१८ ग्रहणीरोगाधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११९९	गुडूच्यादिक्वाथः	अग्निमांद्य, आम संग्रहणी
१९५५	छिन्नोद्भवादिकषायः	संग्रहणी
१९६६	जम्ब्वादिक्वाथः	दुस्साध्य संग्रहणी, सर्वातिसार
२२२३	तिक्तानवको	गुदशूल, पित्तग्रहणी

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३००	ग्रन्थिकादिचूर्णम्	संग्रहणी, मन्दाग्नि, अर्श
१७००	चन्दनादिचूर्णम्	पित्तजग्रहणी
१७१०	चव्यादिचूर्णम्	संग्रहणी
१७२४	चित्रकादिचूर्णम्	"
१९९६	जातिफलादिचूर्णम्	"
१९९९	जातिफलाद्यंचूर्णम्	वातकफजग्रहणी,मन्दाग्नि, अरुचि, क्षय
२००८	ज्वालामुखचूर्णम्	सामग्रहणी,अन्त्रऔर जठरके समस्त विकार
२३५१	त्रिफलादिक्षारः	संग्रहणी,पाण्डु,अफारा,अर्श,अग्निमांद्यादि
२३८४	त्र्यूषणाद्यं चूर्णम्	संग्रहणी,शूल,अफारा अर्श

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३१६	ग्रहणीकपाटवटिका	ग्रहणी, रक्तातिसार
१३१७	ग्रहणीशार्दूलवटिका	अनेक वर्णका अतिसार, भयङ्कर प्रवाहिका
१७४३	चित्रकादिगुटिका	आम, अग्निमांद्य
२०२०	जीरकादिमोदकः	सर्वप्रकारकी ग्रहणी पेटकी गुड़गुड़ाट, आम,अतिसार, ज्वर

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	अवलेहप्रकरणम्	
१३४६	ग्रहणीविजयावलेहः	सामातिसार,पक्वातिसार,वेदनायुक्तप्रवाहिका, पुरानी संग्रहणी, अर्श
	घृतप्रकरणम्	
१७६४	चन्दनाद्यं घृतम्	पित्तजग्रहणी
१७६७	चव्याद्यं ,,	प्रवाहिका, गुदभ्रंश, गुदशूल, वंक्षणशूल
१७६८	चाङ्गेरी ,,	संग्रहणी,अफारा,ज्वर
१७६९	,, ,,	संग्रहणी, गुदभ्रंश, अफारा, गुदशूल, प्रवाहिका
१७७२	,, ,,	ग्रहणी, शूल, गुदभ्रंश, ज्वर।
१७७३	,, ,,	ग्रहणी,पार्श्वशूल,गुल्म
१७७४	चित्रक ,,	ग्रहणी, शोथ, शूल, अर्श
	तैलप्रकरणम्	
१४०३	ग्रहणीमिहिरतैलम्	अतिसार, ग्रहणी, उदरपीड़ा
	आसवारिष्टप्रकरणम्	
१८१४	चित्रकाद्योरिष्टः	संग्रहणी, शोथ,अर्श, पाण्डु
२४८४	तक्रारिष्टः	संग्रहणी, शोथ, अग्निमांद्य

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	रसप्रकरणम्	
१४९१	गगनसुन्दरोरसः	ग्रहणी,ज्वर,क्षय,अर्श
१४९२	,, ,, ,,	ग्रहणी
१४९८	गङ्गाधरचूर्णम्	,,
१५५१	गन्धाश्मपर्पटी	ग्रहणी,आमशूल,अर्श
१५८८	ग्रहणीकामदवारणसिंहः	भयङ्करसंग्रहणी,ज्वर विसूचिका,अग्निमांद्य, शूल,सामग्रहणी,रक्तग्रहणी
१५८९	ग्रहणीकपर्दपोटली	वातप्रधान ग्रहणी
१५९०	ग्रहणीकपाटरसः	सामग्रहणी, रक्तग्रहणी, शूल
१५९३	,, ,, ,,	त्रिदोषज ग्रहणी
१५९४	,, ,, ,,	ग्रहणी
१५९५	,, ,, ,,	सामग्रहणी,आमातिसार
१५९६	,, ,, ,,	ग्रहणी, गुल्म, क्षय
१५९७	,, वज्रकपाट	सर्वग्रहणी,आमातिसार
१५९८	संग्रहग्रहणीकपाटरसः (वृहद)	सर्वप्रकारकी ग्रहणी, ज्वर, अरुचि
१५९९	ग्रहणीकपाटोरसः	प्रवलग्रहणी
१६००	,, ,, ,,	ग्रहणी,अतिसार,शूल, अरुचि,ज्वर (२-३ वारमें ही लाभ हो जाता है।
१६०१	,, ,, ,,	सर्व प्रकारकी ग्रहणी
१६०२	,, ,, ,,	रक्तग्रहणी,रक्तातिसार

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६०३	ग्रहणीकपाटोरसः	ग्रहणी, शोथ, ज्वर
१६०४	,, ,, ,,	सैकड़ोंयोगोंसेआराम न होनेवाली भयङ्कर संग्रहणी, आम, शूल, ज्वर, शोथ।
१६०५	,, ,, ,,	ग्रहणी
१६०६	ग्रहणीगजकेसरी	रक्तग्रहणी, पुराना रक्तातिसार, शूल, आम।
१६०७	,, ,, ,,	ग्रहणी(मलशीघ्र बांध देताहै, अफारा नहीं लाता)
१६०८	ग्रहणीगजपञ्चानन	ग्रहणी
१६०९	ग्रहणीगजेन्द्रवटिका	अनेक प्रकारकी ग्रहणी, ज्वरातिसार, गुदभ्रंश।
१६१०	ग्रहणीवज्रकपाटरसः	ग्रहणी
१६११	,, ,, ,,	,,
१६१२	ग्रहणीशार्दूलचूर्णम्	ग्रहणी,अतिसार,ज्वर, तृष्णा,विशेषतःशोथ और जीर्णज्वर।
१६१३	ग्रहणीशार्दूलरसः	प्रसूताकी ग्रहणी, कास, आम, शूल।
१६१४	ग्रहणीहररसः	ग्रहणी
१६१५	ग्रहण्यारिरसः	ग्रहणी, पुराना रक्तातिसार,शूल, ज्वरादि
१८७६	चण्डसंग्रहगदैककपाटरसः	संग्रहणी, अतिसार, ज्वर
१८८२	चतुर्मूर्तिरसः	ग्रहणी, अतिसार, विषमज्वर
१९२१	चित्राम्बररसः	रक्तग्रहणी,आम,शूल
२११६	जातिफलादिग्रहणीकपाटरसः	आमरक्त और शूलयुक्त संग्रहणी।
२११८	जातिफलाद्यावटिका	पुरानी संग्रहणी,आम, असाध्य संग्रहणी।
२११९	जीरकादिचूर्णम्	ग्रहणी, अतिसार,आम (शीघ्र गुणकारी है)
२५५६	तक्रवटी	संग्रहणी,शोथ,पाण्डु
२५९४	ताम्रयोगः	ग्रहणी, शूल, क्षय, अम्लपित्त
२५९६	ताम्ररसायनम्	ग्रहणी,अर्श, अम्लपित्त
२७५३	त्रिफलालौहः	ग्रहणी, अर्श, शोथ
२७६२	त्रिसुन्दरोरसः	उपद्रवयुक्त ग्रहणी

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६२४	ग्रहणीरोगे पथ्यादि	
१६२५	ग्रहण्यामाहारकल्पना	अनेकप्रकारके पथ्य
२७९१	तक्रपानम्	
२७९२	,, ,,	
२७९५	तक्रसेवनविधिः	

१९ छर्द्यधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११७०	गुडूचीहिमः	वमन
११७३	गुडूच्यादिकाथः	पित्तजछर्दि
१६४९	चन्दनादिकल्कः	वमन
१६६८	चन्दनादिपानम्	„
१९४६	छर्दिनिग्रहणो कषायदशकः	„
१९६४	जम्बूपल्लवादिकाथः	वमन, अतिसार
१९६५	„ „	वमन
१९६७	जम्ब्वादिशीतकषायः	„
१९७६	जातिपत्ररसादि	पुरानी छर्दि

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६९३	चन्दनचूर्णयोगः	वमन
१९९०	जम्ब्वादियोगाः	कफज छर्दि
२३४७	जातिफलादि चू.	घृणित पदार्थों के देखने, सूंघने आदिसे उत्पन्न वमन

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०२९	जातीरसावलेहः	वमन

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१९६१	छर्द्यन्तको रसः	हृल्लास, छर्दि, अरुचि, अम्लपित्त, हृदय पीड़ा।
२१२०	जीरकादिरसः	वमनको शीघ्र नष्ट करता है।
२७०६	तृष्णाछर्दिहरोरसः	छर्दि, तृष्णा

२० जलोदराधिकार

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२३७६	त्रिवृतादिचूर्णम्	सर्वप्रकारका जलोदर

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५६१	गलत्कुष्ठारिरसः	पुराना जलोदर
१५७२	गुलमगजाराती	स्त्रियोंका जलोदर
१९३४	चिन्तामणिरसः	जलोदर, शूल, शोथ
२११३	जलोदराररिसः	जलोदर (विरेचक)
२११४	„ „	„ („)

२१ ज्वरातिसाराधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११७४	गुडूच्यादि-	ज्वरातिसार, छर्दि, दाह, तृषा
११८९	„	ज्वरातिसार, कुक्षिशूल
११९१	„	„ सूजन
१२१३	गोकर्णादि	ज्वरातिसारको ४-५ दिनमें नष्ट करताहै।
१२२७	घनसप्तक	ज्वरातिसार, रक्तातिसार

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	रसप्रकरणम्	
१४९०	गगनसुन्दरो रसः	रक्तातिसार, ज्वर
१८९२	चन्द्रप्रभावटी	त्रिदोषज ज्वरातिसार
१९२९	चिन्तामणिरसः	ज्वरातिसार,शूल,अफारा
१९३१	”	”
२७०४	तृप्तिसागररसः	ज्वर,सन्निपातातिसार

२२ ज्वराधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११५७	गायत्र्यादिकषायः—	रक्तदोषज ज्वर
११६५	गुडूचिकादि	सर्वज्वर, छर्दि, तृषा, प्रतिश्याय, दाह, अरुचि
११६७	गुडूचीस्वरसः—	कफज जीर्णज्वर, प्लीहा, कास
११७६	”	रात्रिको आनेवाला पुराना ज्वर
११७७	”	पित्तज्वर,तृष्णा,छर्दि, शूल।
११७८	”	पित्तज्वर
११८१	”	तृतीयक ज्वर
११८२	”	वातज्वर
११८३	”	पित्तज्वर, शोष, भ्रम
११८४	”	सन्निपात, खांसी, प्यास,दाह,मलमूत्रादिका अवरोध, तन्द्रा
११८७	”	वातज्वर
११८८	”	पित्तकफज्वर
११९२	”	सर्व ज्वर
११९४	”	वातज्वर
११९७	”	विषमज्वर
१२००	गुडूचीस्वरसः—	उपद्रवयुक्त पित्तज्वर
१२०१	”	ज्वरपाचक
१२०२	”	वातज्वर
१२०३	”	”
१२०४	”	”
१२०५	”	”
१२०६	गुडूच्यादिगणः	सर्वज्वरनाशक, दीपन
१२०७	गुडूच्यादिपुटपाकः	पुराना कष्टसाध्य वातपित्तज्वर
१२२६	ग्रन्थिकादिक्काथः	सन्निपात, पसीना, प्रलाप, शूल, शीत, सूतिकारोग
१२२७	ग्रन्थिकादिक्काथः	सन्निपात सम्बन्धी वातविकार
१२२८	” ”	तीव्रवातज्वर
१६२६	घनचन्दनादि	पित्तज्वर,छर्दि,तृषा, दाह
१६२८	घनादि	शीतज्वर
१६४६	चतुःषष्टिकक्काथः	वातज्वर, वातपीड़ा
१६५७	चन्दनादिक्काथः	पित्तज्वर
१६६०	” ”	ज्वर
१६६३	” ”	पित्तकफज्वर, दाह तृषा, वमन।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१६६१	चन्दनादिपाचन	गर्भिणीका ज्वर
१६६४	,, ,,	दाहज्वर, अरुचि
१६६५	,, ,,	मोतीझारा
१६६७	,, ,,	ज्वरनाशक, पाचक
१६७७	चातुर्भद्रम्	कफपित्तज्वर, आम, ग्रहणी
१६७८	चातुर्भद्रकपञ्चमूलादि काथ'	सन्निपात
१६७९	चातुर्भद्रम्	वातकफज्वर
१९४८	छिन्नादिकषाय:	पित्तज्वर
१९५२	,, ,,	जीर्णज्वर
१९५३	,, पाचनम्	पित्तज्वरपाचक है।
१९५४	छिन्नोद्भवादिकषाय:	वातज, पित्तकफज ज्वर
१९५७	,, काथ:	कणकसन्निपात, अग्निमांद्य
१९७३	जलधरादि ,,	प्रलाप
१९८०	जात्यादि ,,	ज्वरान्तर्गत मलवन्ध
१९८५	ज्वरहरोकषायदशक:	ज्वर
२२०८	तगरादि काथ:	प्रलाप, सन्निपात
२२१४	तिक्तादि ,,	सन्निपात,दाह,मलावरोध, प्रलाप,श्वास, खासी, तृषा।
२२१५	,, ,,	सतत ज्वर
२२१६	,, ,,	भयङ्कर ज्वर
२२१७	,, ,,	सन्निपात,रात्रिजागरण,दिवानिद्रा,मुखशोष, दाह, तृषा, कास।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२२१८	तिलादि काथ:	पित्तज्वरपाचक
२२१९	,, ,,	कफज्वर, खांसी
२२२०	,, ,,	रक्तपित्त, ज्वर
२२२१	,, ,,	लौटलौट आनेवाला ज्वर
२२२२	,, ,,	ज्वरमें विरेचन कराने के लिए उत्तम।
२१९५	ज्वरनाशकवस्ति:	ज्वर
२१९६	ज्वरनाशनोविरेक:	,,
२१९७	ज्वरहरिबस्ति	,,
२२३३	तुलसीपत्ररस:	विषमज्वर
२२४०	त्रायन्त्यादिकषाय:	कफपित्तज्वर
२२४१	,, ,,	हारिद्रक सन्निपात
२२४२	,, काथ:	सन्ततादि ज्वर
२२४३	,, ,,	अभिन्यास ज्वर, कफज्वर
२२४४	,, कषाय:	पित्तज्वर
२२४६	,, ,,	पित्तकफज्वर
२२५५	त्रिकट्वादिक्काथ:	कुण्ठकुब्ज सन्निपात
२२५७	त्रिकण्टकादिक्षीर:	कफज्वर,मलमूत्रावरोध
२२५९	त्रिकर्षिकादिकषाया:	सन्निपात,द्वन्द्वजज्वर
२२६६	त्रिफलाक्काथ:	विषमज्वर
२२६९	त्रिफलादिकषाय:	पित्तकफज्वर
२२७०	,, ,,	वातकफज्वर
२२७१	,, ,,	वातपित्तज्वर
२२७३	,, ,,	कफजज्वर
२२७४	,, ,,	,, ,,

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२२८१	त्रिफलादि क्वाथ	कफज्वर, खांसी, गलरोग
२२८४	,, ,,	ज्वर, खांसी
२२९१	,, ,,	पित्तकफज्वर
२३०२	त्रिवृतादि ,,	सर्वज्वर (भेदक है)
२३०४	त्र्यूषणादि ,,	प्रवल सन्निपात

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२५३	गुडजीरकयोगः	विषमज्वर, अग्निमांद्य
१२८७	गोजिह्वादि चूर्णम्	शीतज्वर
१२९६	गोरोचन ,,	सर्वज्वर
१६८९	चणकाद्युद्धूलनम्	अधिक पसीनेको रोकता है।
१७०२	चन्दनादिलौहम्	विषमज्वर
१७०४	चन्द्रकला चूर्णम्	ज्वर, पाण्डु, अतिसार, अरुचि
१७२७	चित्राङ्ग्यादि ,,	विषमज्वर, अग्निमांद्य
२०००	जीरकयोगः	विषमज्वर, अग्निमांद्य शीत
२००३	जीरकादि चूर्णम्	शीतज्वररोधक
२३१०	तालीसादि ,,	ज्वर, खांसी, श्वास, अतिसार, वमन, प्लीहा, शोथ, अफारा आदि
२३११	,, ,,	ज्वर, ज्वरके समस्त उपद्रव, अर्श (बालकोंके लिए विशेष हितकारी—पौष्टिक, स्वरवर्द्धक)
२३१५	तिक्ताचूर्णम्	कफपित्तज्वर(रेचकहै)
२३४१	त्रिकट्वादि चूर्णम्	सन्निपात, वायु
२३५३	त्रिफलादि ,,	ज्वर, खांसी, श्वास
२३६०	,, ,,	विरेचन
२३६३	त्रिफलाप्रयोगः	चातुर्थिकज्वर
२६६९	तृवृच्चूर्णम्	ज्वर, दाह, भारीपन, शूल (भेदी है)

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३१३	गुडूचीमोदकः	विषमज्वर(रसायनहै)
१३१४	गृहधूमगुटिका	जीर्णज्वर
२०१०	जयन्तीवटी	योगवाही
२०१४	जयावटी	,,
२०२४	जयपालवटी	जीर्णज्वर(विरेचकहै)
२०२६	ज्वरनाशिनीगुटिका	(रेचक)
२४०४	त्रिफलादि मोदकः	वातज्वर, कास, पार्श्वशूल, अरुचि।
२४१४	त्रिवृतादि ,,	सन्निपात

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७४८	चतुरङ्गावलेहः	ज्वरसम्बन्धी खांसी, अरुचि, श्वास, मूर्च्छा
१७५३	चतुर्भद्रावलेहः	ज्वर, खांसी, श्वास

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३६३	गुडूच्यादि घृतम्	ज्वर, खांसी, श्वास, अजीर्ण
१३६६	,, ,,	ज्वर

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३६७	गुडूच्यादिघृतम्	पुरानाज्वर, प्लीहा, अग्निमांद्य, खांसी, शूल, ग्रहणी
१३७०	गोपीज्यादिघृतम्	विषमज्वर, शिरपीड़ा, पार्श्वपीड़ा, अरुचि, छर्दि
१७६३	चन्दनादि ,,	चातुर्थिक विषमज्वर तिजारी, श्वास, कास
२४३७	तिल्वकाद्यं ,,	जीर्णज्वर, शोथ, पाण्डु

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७८९	चन्दनबलालाक्षादि०	सर्वज्वर, दाह, शिर पीड़ा, खाज, खांसी, (शरीरको पुष्ट करता है।)
१७९३	चन्दनादितैलम्	समस्तज्वर (वस्तिके योग्य)
१८०१	चन्दनाद्यं तैलम्	ज्वर और दाहको तुरन्त शान्त करताहै।
२०५१	जात्यादितैलम्	सन्निपातज्वर
२४६६	तप्तराज ,,	घोरसन्निपात, शिर-शूल, भयङ्कर दाह, स्वेद।

आसवारिष्टप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४८६	त्रायमाणासवः	ज्वर; सन्निपात, खांसी पाण्डु।

धूपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४५५	गुग्गुल्वादिधूपः	सर्व ज्वर
१८४३	चातुर्थिकज्वरेधूपः	चातुर्थिकज्वर

अञ्जनप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४५९	गरुडाञ्जनम्	शीतज्वर
२०९४	ज्वरनाशकाञ्जनम्	जिस नेत्रमें आंजा जाय उसके दूसरी ओरके आधे अङ्गका ज्वर उतर जाता है।
२०९५	,,	,,
२०९६	,,	द्व्याहिकज्वर
२१०४	जयमङ्गलोरसः	ज्वर (नस्य)
२५४३	तुरङ्गलालाद्यञ्जनम्	तन्द्रा

नस्यप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१००	ज्योतिष्मतितैलनस्यम्	तन्द्रा
२१०१	ज्वरनाशकनस्य	जिस नासापुटमें नस्य दी जाय उस ओरका ज्वर उतर जाता है।
२१०४	जयमङ्गलोरसः	ज्वर (नस्य)

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४२५	गगनाद्यो रसः	सन्निपातज्वर
१५०५	गदमुराररिसः	सन्निपात, ज्वर (तीव्र रेचक)
१६०६	,, ,,	आमज्वर

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५०७	गदमुराररिसः	रेचक है।
१५०८	" "	आमज्वर
१५०९	गन्धककज्जली	ज्वर, छर्दि, क्षय, रक्तातिसार
१५४८	गन्धामृतोरसः	ज्वर
१५५३	गरुडरसः	समस्तज्वर, प्रवल सन्निपात, कफ, वायु
१८६५	चक्ररसः	तन्द्रा, दाह और तृषा सहित घोर सन्निपात।
१८६८	चक्रिकारसः	१३ प्रकारके दुस्साध्य सन्निपात
१८७८	चण्डेश्वरो रसः	सर्वज्वरोंमें उत्तम है।
१८९६	चन्द्रसुधारसः	पित्तज्वर,दाह, भयङ्कर तृष्णा, मूर्च्छा, हिक्का, वमन।
१९०४	चन्द्रोदयो रसः	जीर्णज्वर, खांसी, श्वास।
१९१४	चातुर्थिकगजाङ्कुशः	तिजारी, चौथिया आदि ज्वर।
१९१५	चातुर्थिकनिवारण	चातुर्थिक (चौथिया)
१९१६	चातुर्थिकारिरसः	" (")
१९१७	"	" (")
१९१८	"	" (")
१९१९	"	चातुर्थिकादि समस्त विषमज्वर
१९२२	चिन्तामणिरसगुटिः	आमज्वर, सन्निपात
१९२३	"	ज्वर
१९२४	चिन्तामणिरसः	सन्निपात,जीर्णज्वर, विषमज्वर, प्लीहा, अफारा, खांसी, मन्दाग्नि
१९२५	"	सर्वज्वर, तिजारी चौथियाआदि, छर्दि, अतिसार, अजीर्ण (ज्वरोंमें विशेष उत्तम है।
१९२८	"	आठ प्रकारके ज्वर
१९२९	"	नवीन ज्वर, जीर्णज्वर, सन्निपात, विषमज्वर,अतिसार, शूल, शोथ, अफारा
१९३०	"	सर्वज्वर
१९३४	"	अजीर्ण ज्वर (रेचक है)
१९३५	चिन्तामणिरसः	ज्वर, शूल
१९३६	चिन्तामणिवटिका	जीर्णज्वर
१९३८	चूडामणिरसः	धातुगत विषमज्वर, कामज और शोकजनितज्वर, कास शिरशूल, ग्रहणी।
१९४०	चूडामणिरसः	सर्वज्वर
१९४२	चैतन्यभैरवोरसः	सन्निपात ज्वरकी मूर्च्छा।
२१०३	जयमङ्गलोरसः	पुरानादुस्साध्यज्वर, मज्जागत ज्वर

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१०४	जयमङ्गलोरसः	अञ्जन या नस्यसे सन्निपातको नष्ट करता है
२१०५	,, ,,	भयङ्कर सन्निपात, अचेतनता
२१०६	जयरसः	शीतज्वरको १ ही दिनमें खोता है।
२१०७	जयवटिका	ज्वर, श्वास, खांसी, पाण्डु (विरेचक है)
२१०९	जयागुटिका	विषमज्वर, खासी, श्वास, क्षय, अरुचि, अतिसार, हृदयशूल
२१२१	जीर्णज्वराङ्कुशः	जीर्णज्वर,क्षय,खांसी अरुचि
२१२२	जीर्णज्वरारिरसः	जीर्णज्वर, अजीर्ण
२१२३	,, ,,	,, ,,
२१२५	जीवनानन्दाभ्रम्	विषमज्वर, प्लीहा, यकृत,वमन, खांसी, अरुचि।
२१३०	ज्वरकालकेतुरसः	आठ प्रकारके ज्वर
२१३१	ज्वरकुञ्जरपारीन्द्र	दैनिक, तिजारी, चातुर्थिकादि विषम ज्वर, शोथ, खांसी।
२१३२	ज्वरकृन्तनोरस	सर्वज्वर
२१३३	ज्वरकेसरीरसः	पित्तज्वर,दाह,सन्निपात
२१३४	ज्वरगजसिंहरसः	ज्वर
२१३५	ज्वरघ्नी गुटिका	सर्व प्रकारके ज्वर
२१३६	ज्वरघ्नीवटी	विषमज्वर,सन्निपात
२१३७	ज्वरधूमकेतु	नवीन ज्वर

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१३८	ज्वरध्वान्तदिवाकरः	नवीनज्वर(विरेचक)
२१३९	ज्वरनागमयूरचूर्णम्	साध्यासाध्य सन्ततादि ज्वर, कामशोकोद्भवज्वर, दाह, शीतज्वर, चातुर्थिक विपर्ययः, प्लीहा, शोथ,तृष्णा, खांसी, शरीरकी पीड़ा।
२१४०	ज्वरपञ्चाननोरसः	सन्निपात
२१४१	,, ,,	नव ज्वर, अत्यन्त ताप, (४ घड़ीमें ज्वर उतार देता है)
२१४२	ज्वरभैरवचूर्णम्	समस्त ज्वर, अनेक देशोंके जलवायुसे उत्पन्न ज्वर, विरुद्धौषधसे उत्पन्नज्वर, प्लीहा,यकृत,अरुचि, शोथ, शिरशूल।
२१४३	ज्वरभैरवोरसः	जीर्णज्वर,खांसी,शूल
२१४४	,, ,,	जीर्णज्वर, शूल
२१४५	,, ,,	समस्तज्वर(रेचकहै)
२१४६	,, ,,	नवीनज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वरादि को १ ही दिनमें नष्ट करता है।
२१४७	,, ,,	कफपित्तज नवीन तथा विषमज्वर, श्वास।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१४८	ज्वरमातङ्गकेसरी	आमज्वर, अग्निमांद्य
२१४९	ज्वरमुरारि रसः	आमज्वर
२१५०	" "	अत्यन्त अजीर्णऔर कब्ज़ वाला ज्वर, शरीरका जकड़ना, खांसी,शोथ, यकृत्, प्लीहा।
२१५१	ज्वरराज रसः	समस्तज्वर,चातुर्थिक
२१५२	ज्वरशतघ्नी	सन्निपातमें अद्भुत्
२१५३	ज्वरशूलहरोरस	पसीना आकर समस्त ज्वर उतर जाते हैं।
२१५४	ज्वरसिंहरसः	चातुर्थिकादि
२१५५	ज्वरहरोरसः	समस्त ज्वर
२१५६	ज्वरहारीरसः	नवीन ज्वर, अजीर्ण
२१५७	ज्वराङ्कुशः	वातपित्तज्वर
२१५८	" रसः	शीतज्वरमें अत्युपयोगी
२१५९	" "	विषमज्वर
२१६०	" "	तरुणज्वर,जीर्णज्वर, विषमज्वर।
२१६१	" "	समस्तज्वर (रेचकहै।)
२१६२	" "	१पहरमें ज्वर रोकता है। (संखियेका योग है।)
२१६३	" "	रोजाना,तिजारी आदि शीतज्वर।
२१६४	" "	विषमज्वर, मन्दाग्नि
२१६५	" "	सन्निपातजजीर्णज्वर
२१६६	" "	समस्त ज्वर

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१६७	ज्वराङ्कुश रसः	ज्वर, विसूचिका
२१६८	" "	८ प्रकारके ज्वर
२१६९	ज्वरान्तको रसः	चातुर्थिक, तृतीयक, सन्तत, आमज्वर।
२१७०	ज्वरारि रसः	दैनिक, तृतीयकादि ज्वरोंको ३ दिनमें नष्ट करता है।
२१७१	" "	कफपित्तज्वर, शूल।
२१७२	" "	घोर नवीन ज्वर, सन्निपात।
२१७३	" "	ज्वरको २-३ दिनमें ही खो देता है।
२१७४	" "	ज्वर, (रेचक है)
२१७५	ज्वरार्यगद	" (")
२१७६	ज्वरार्यभ्रम्	समस्त ज्वर, प्लीहा, यकृत्,शोथ,हिचकी खासी, अरुचि।
२१७७	ज्वराशनिरसः	विषमज्वर, दाह, खांसी, वमन।
२१७८	ज्वरेभसिंहोरस	तीव्र कफवातज्वर, शीतज्वर, हृद्रोग।
२१७९	" "	ज्वर
२५५७	तरुणज्वरारिः	शीतपूर्व तथा दाह-पूर्व ज्वर।
२५५८	"	विरेचन होकर ज्वर नष्ट हो जाता है।
२५६४	ताम्रकः	ज्वर, खांसी, प्लीहा पाण्डु।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२५६८	ताम्रपर्पटी	कफवातज्वर ३ दिनमें नष्ट हो जाता है।
२५७८	ताम्रभस्मयोगः	कफज्वर
२६०५	ताम्रामृताख्यं रसायनम्	ज्वर, प्लीहा, कास, पाण्डु, अर्श।
२६२५	तालकाङ्कोरसः	तृतीयक, चातुर्थिकज्वर
२६३७	तालकादिज्वराङ्कु.	शीतज्वर
२६३८	,, ,,	शीतज्वर १ दिनमें खोता है।
२६४२	तालकेश्वररसः	शीतज्वर
२६८०	तालकेश्वररसः	वारीके ज्वर(म्लेरिया)
२७०२	तुत्थादिकज्वराङ्कुशः	विषमज्वर
२७१७	त्रिगुणाख्योरसः	सन्निपातज्वर
२७२४	त्रिनेत्ररसः	,, ,,
२७३३	त्रिपुरभैरवोरसः	नवज्वर, विष्टम्भ, कृमि
२७३६	,, ,,	सर्वज्वर
२७३७	,, ,,	सन्निपात, कफ, वायु, शिरशूल, उदरपीड़ा
२७३९	त्रिपुराररस	जलदोषज ज्वर, शोथ, अतिसार, तिल्ली।
२७५०	त्रिफलालोहः	सर्वज्वर
२७५५	त्रिभुवनकीर्ति	सन्निपात, सर्वज्वर
२७६३	त्रैलोक्य चिं. म.	जीर्णज्वर, जलदोष, खांसी।
२७६८	त्रैलोक्यडम्बर	नवज्वर
२७७७	त्रैलोक्य सुन्दर	सन्निपात
२७७८	,, ,,	पसीना लाकर ज्वर उतारता है।
२७८१	त्र्याहिकारिरसः	तृतीयकादि ज्वर
२७८२	,, ,,	,, ,,

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१८५	जलधाराप्रयोगः	ज्वरका तीव्र सन्ताप

२३ तृष्णाधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२२३९	तृष्णानिग्रहणो-कषायदशकः	तृष्णा

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२००१	जीरकादिचूर्णम्	तृष्णा
२००२	,, ,,	,,

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२३९३	तृष्णाघ्नीगुटी	प्रबलतृष्णाको तुरन्त शान्त करती है।

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१८२७	चन्दनादिलेपः	तृष्णा

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२७०५	तृष्णाहारीरसः	भयङ्कर तृष्णा
२७०६	तृष्णाछर्दिहरोरसः	तृष्णा, छर्दि

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२८४८	तृष्णानागकान्नम्	पुरानी तृष्णा, वमन।

२४ दाहाधिकारः

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७०१	चन्दनादिचूर्णम्	अङ्गदाह, शिरोदाह, शिर घूमना, रक्त-पित्तादि

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७५०	चन्दनाद्यवलेहः	भयङ्कर दाह, मूर्च्छा, भ्रम।
१७५१	चन्द्रावलेहः	हाथपैर और शरीरकी प्रबल दाह, चक्कर, आना, मूर्च्छा।

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१८३०	चन्दनादिलेपः	दाह

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१८८५	चन्द्रकलारसः	अन्तर्दाह, बाह्यदाह, (ग्रीष्मकालमें विशेष उपयोगी है।)

२५ नासारोगाधिकारः

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२६२	गुडादियोगः	पीनस
१९९२	जयापत्रयोगः	प्रतिश्याय
२३८३	त्र्यूपणादिचूर्णम्	प्रतिश्याय (विशेषतः कफ)

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७४४	चित्रकादिगुटी	पीनसको पकाती है
२३८९	तालीसादिगुटिका	पीनस, स्वरभंग, अरुचि।

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७५५	चित्रकहरीतकी	पीनस, कृमि, अग्निमांद्य

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३९८	गृहधूमादि तैलम्	नासार्श
१८०४	चित्रकादि तैलम्	"
२४७३	त्रिकटुकाद्यं तैलम्	पूतिनस्य

धूम्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६३९	घृतादि धूमः	क्षवथु (छीकआना)
१८४५	चातुर्जात धूम्रम्	प्रतिश्याय
२०८३	जात्यादिधूम्रः	पीनस

२६ नेत्ररोगाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११८०	गुडूच्यादिक्काथः	समस्त नेत्ररोग
१६८३	चित्रकादि ,,	तिमिर
२२६२	त्रिफलाकषायः	नेत्ररोग,मुखरोग,कामला
२२६३	,, क्काथ.	पित्ताभिष्यन्द, दाह
२२६४	,, ,,	सूजन
२२६५	,, ,,	तिमिर
२२९०	त्रिफलादि ,,	अन्धता
२२९८	,, विरेचन	वातज तिमिर
	चूर्णप्रकरणम्	
१२९७	गोरोचनादिचूर्णम्	लगण(पलककीफुंसी)
२३६६	त्रिफलायोगः	समस्त नेत्ररोग
	अवलेहप्रकरणम्	
२०३०	जीरकखण्ड	नेत्रोंको वल देता है।
२४२९	त्रिफलापाकः	समस्त नेत्ररोग, शिरोरोग।
	घृतप्रकरणम्	
१३६८	गोघृततर्पणम्	तिमिर, अभिष्यन्द, अश्रुस्राव।
२०४३	जीवनाद्यंघृतम्	तिमिर
२४४४	त्रिफला ,,	रतौंधा, नेत्रस्राव, तिमिर।
२४४५	,, ,,	तिमिर, स्राव, काच, सूजन।
२४४६	त्रिफला घृतम्	त्रिदोषज तिमिर
२४४८	,, ,,	नेत्रवलवर्द्धक
२४५१	,, ,,	तिमिर,नक्तान्ध्य (रतौंधा), स्राव, खाज, नेत्रकी कलुपता, कषायता, सूर्य और अग्नि इत्यादिसे हत दृष्टि।
२५५३	त्रिफलाद्यं ,,	तिमिर
२४५४	,, ,,	रक्तविकार,रक्तस्रावके कारणउत्पन्ननेत्ररोग, नक्तान्ध्य, तिमिर, मन्ददृष्टि,धूपमें आंख न खुलना (चौंद लगना) आदि।
२४५७	त्रिफलादिघृत(महा)	आसन्नदृष्टि, दूरदृष्टि, मन्ददृष्टि और अन्य समस्त नेत्ररोग।
	तैलप्रकरणम्	
१४०१	गोमयाद्यंतैलम्	तिमिर, (नस्य)
२४७८	त्रिफलाद्यं ,,	कफज तिमिर
	लेपप्रकरणम्	
१४२१	गिरिकर्णीपुष्पलेपः	कुकूणक
१८२८	चन्दनादिलेपः	अभिष्यन्द, दाह, तोद।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१८३७	चिञ्चास्वरलेपः	नेत्रोकीलाली, सूजन खड़क, स्राव।

अञ्जनप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४५७	गन्धकद्रुतिः	पिल्ल, काच, कुकूणक
१४५८	गरुडवर्तिः	दृष्टिवर्द्धक
१४५९	गरुडाञ्जनम्	रात्र्यन्धता (रतौधा)
१४६०	,,	दृष्टिवर्द्धक
१४६१	गिरिकर्णाद्यक्षिपूरणम्	नेत्रफूला
१४६२	गुञ्जामूलाञ्जनम्	तिमिर, अन्धता
१४६३	गुटिकाञ्जनम्	कुकूणक
१४६४	,,	तिमिर, कांच, कण्डू, फूला, अर्जुन, अर्म।
१४६५	,,	दिवान्ध्यम, रतौधा
१४६६	,,	नेत्राभिष्यन्द, (आंख दुखना)
१४६८	गुडूच्यादिवर्तिः	समस्त नेत्ररोग
१४६९	गुडूच्याद्यञ्जनम्	पिल्ल, अर्म, तिमिर, काच,खाज, लिङ्गनाश
१४७०	गुहामूलाञ्जनम्	पिल्ल
१४७१	गोपयःसर्पिषोयोग.	नेत्रोंको स्वच्छ करताहै
१८४६	चातुर्दशाङ्गीवर्तिः	तिमिरमें विशेष उपयोगी (शिलालेखसे प्राप्त)
१८४७	चन्दनाञ्जनम्	तिमिर
१८४८	चन्दनादिचूर्णाञ्जनम्	शुक्र (फूला), अर्म
१८४९	चन्दनादिवर्तिः	शिरोत्पात
१८५०	,, ,,	तिमिर
१८५१	चन्दनाद्यञ्जनम्	नेत्रव्रण, शुक्र (फूला)
१८५२	चन्दनाद्या वर्तिः	सर्व नेत्ररोग
१८५३	चन्द्रकला वर्तिः	शुक्र,जलस्राव,पिल्ल, तिमिर,खाज, काच।
१८५४	चन्द्रप्रभागुटी	फूला, तिमिर, पटल, निशान्ध्यं (रतौंधा)।
१८५५	चन्द्रप्रभावर्तिः	लालधारियां, पटल, रात्र्यन्धता(रतौंधा), तिमिर, मल।
१८५६	,,	तिमिर,पिष्टक, पटल, पुष्प (फूला)
१८५७	चन्द्रोदयावर्तिः	खुजली, आंखकी रसौली, ३ वर्षका फूला, रतौंधा।
१८५८	चन्द्रोदयावर्तिः	पिल्ल,खुजली, तिमिर
१८५९	चिञ्चाद्यञ्जनम्	स्राव, पिच्चिट, अर्जुन, काच।
१८६०	चूर्णाञ्जनम्	फूला,तिमिर, पिच्चिट, अर्बुद।
१८६१	,,	खुजली, रक्तस्राव, पलकोंके रोग।
१८६२	,,	मल,कण्डू,कफ,काच
२०८६	जह्वास्थिवर्तिः	अन्धता
२०८७	जातिपत्ररसाञ्जनम्	नक्तान्ध्य (रतौंधा)
२०८८	जातिपुष्पादिगुटी	काच,अन्धता,तिमिर
२०८९	जातिपुष्पाद्यञ्जनम्	तन्द्रा
२०९०	,,	नेत्रपाक

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०९१	जात्यादिवर्तिः	नेत्रोंसे रक्त निकलना
२०९२	जात्याद्याश्च्योतनम्	शुक्र (फूला)
२२००	टङ्कनाद्यमञ्जनम्	पलकोंके रोग, खाज रक्तस्राव ।
२५२६	तन्द्राहरीवर्तिः	तन्द्रा
२५२७	तमालपत्रादिवर्तिः	शुक्र, (फूला)
२५२८	ताप्याद्यञ्जनम्	,, ,,
२५२९	ताम्बूलादियोगः	नवीन नेत्राभिष्यन्द (आंख आना)
२५३०	ताम्रद्रुतिः	समस्त नेत्ररोग
२५३१	,,	काच, अर्म, पिल्ल, अभिष्यन्द,व्रण,शुक्र
२५३२	तालकादिप्रयोगः	पिल्ल
२५३३	तालकाद्यञ्जनम्	क्लिन्नवर्त्म
२५३४	तिमिरनाशिनीवर्तिः	काच,तिमिर, पटल,
२५३५	तुत्थकाद्यञ्जनम्	बहुतपुरानापिल्लरोग अश्रु, खुजली, सूजन
२५३६	तुत्थप्रयोगः	शुक्र (फूला)
२५३७	,, ,,	पलकोंके रोग
२५३८	तुत्थादिचूर्णाञ्जनम्	नवीन नेत्राभिष्यन्द (आंख आना)
२५३९	तुत्थादिप्रयोगः	दृष्टिवर्द्धक
२५४०	तुत्थादिवर्तिः	पिल्ल, अर्म, पोथकी, पूयालस ।
२५४१	तुत्थाद्यञ्जनम्	बहुत पुराना फूला
२५४२	,, ,,	समस्त प्रकारके अभिष्यन्द (आंख आना), शूल ।
२५४४	तुलस्याद्यञ्जनम्	आंख आना,नेत्रोंकी पीड़ा (खड़क)
२५४५	त्रिकट्वाद्यञ्जनम्	तिमिर, पटल, शुक्र
२५४६	त्रिफलादिरसक्रिया	कृमिग्रन्थि
२५४७	त्र्यूषणादिवर्तिः	कफ, क्लेद, कण्डू ।

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५३६	गन्धकरसायनम्	दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है ।
२७४१	त्रिफलादि चूर्णम्	समस्त नेत्ररोग तथा ऊर्ध्वजत्रुगत रोग
२७४४	त्रिफलादि योगः	समस्त नेत्ररोग
२७४९	त्रिफलारसायन	दृष्टिको स्वच्छ करता है ।

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२८०३	तिलस्नानम्	दृष्टिवर्द्धक
२८१०	त्रिफलादिसेकः	रक्ताभिष्यन्द

२७ पाण्डुरोगाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
१२२३	गोमयरसादियोगः	पाण्डु
२२८६	त्रिफलादि क्वाथः	कामला, पाण्डु।
२२९३	,, ,,	कामला
	चूर्णप्रकरणम्	
१२९४	गोमूत्रहरीतकी	पाण्डु
२३७९	त्र्यूपणादि चूर्णम्	कामला
	गुटिकाप्रकरणम्	
१३१०	गुडादिमण्डूरम्	पाण्डु
	घृतप्रकरणम्	
२४६१	त्र्यूषणादि घृतम्	पाण्डु,हलीमक,खांसी
	तैलप्रकरणम्	
१७९२	चन्दनादि तैलम्	पाण्डु, मन्दज्वर।
	आसवारिष्टप्रकरणम्	
१४०९	गुडारिष्टः	पाण्डुरोग
२४८७	त्रिफलारिष्टः	पाण्डु,सूजन,अरुचि, खांसी।
	अञ्जनप्रकरणम्	
१८५४	चन्द्रप्रभागुटी	कामला

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	नस्यप्रकरणम्	
२०९८	जालिनीफलादि	कामला
	रसप्रकरणम्	
१८९८	चन्द्रसूर्यात्मको रसः	पाण्डु,कामला,हलीमक, ज्वर, अरुचि।
२१२४	जीवननामारसः	पाण्डु,हलीमक,कामला, शोथ।
२५६२	ताप्यादिचूर्णम्	कामला
२७०७	त्रिकटुकादिलौहम्	,,
२७१२	त्रिकत्रयाद्यंलौहम्	कामला,पाण्डु, ज्वर
२७३२	त्रिनेत्राख्यो रसः	पाण्डु
२७४५	त्रिफलादि लेहः	पाण्डु,कामला, शोथ
२७४६	त्रिफलादि लोहम्	पाण्डु, हलीमक, शोथ, ज्वर।
२७४७	,, ,,	कामला
२७५७	त्रियोनि रसः	पाण्डु, शोथ
२७६१	त्रिसङ्कटो रसः	पाण्डु
२७७०	त्रैलोक्यनाथ	पाण्डु, शोथ
२७७५	त्रैलोक्यसुन्दर	पाण्डु, शोथ
२७७६	,, ,,	पाण्डु, शोथ, क्षय, ज्वर।
२७८३	त्र्यूषणादिगुटिका	पाण्डु, कृमि आदि
२७८६	,, मण्डूरम्	पाण्डु,कामला,शोथ
२७८७	,, ,,	,, ,, ,,

२८ प्रमेह, मधुमेह तथा मूत्रातिसाराधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११६८	गुडूचीस्वरसः	प्रमेह
१२१७	गोक्षुरादि क्वाथः	पित्तज प्रमेह
१६४४	चणकयोगः	असाध्यप्रमेहनाशक, सरल प्रयोग।
१६५८	चन्दनादि क्वाथः	ओजोमेह
१६७१	चम्पकमूलकषायः	मूत्रातिसार
१६७५	चव्यादि क्वाथः	कफजप्रमेह
१९४७	छिन्नादिकषायः	सर्पिमेह
२२२६	तिन्दुकादि क्वाथः	उपद्रवयुक्त लसिका और माञ्जिष्ठ मेह।
२२७२	त्रिफलादि कषायः	फेनप्रमेह
२२८२	" क्वाथः	सर्व प्रमेह
२२८८	" "	बहुमूत्र
२२९५	" "	प्रमेह
	चूर्णप्रकरणम्	
१२२९	गगनायसचूर्णम्	प्रमेह,अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, कास।
१२३८	गन्धकयोगः	प्रमेहपीड़िका
१६९६	चन्दनादिचूर्णम्	लसिका मेह, पीप और रक्तवाला प्रमेह (सोज़ाक), तृष्णा, ज्वर।
१६९९	चन्दनादिचूर्णम्	शुक्रप्रमेह, खांसी, ज्वर, अर्श।
२३०६	तालकन्दादि योगः	मूत्रातिसार
२३५५	त्रिफलादि चूर्णम्	सर्व प्रमेह
	गुटिकाप्रकरणम्	
१३१५	गोक्षुरकादिवटी	वातजप्रमेह, मूत्राघात
१७३६	चन्द्रप्रभा गुटिका	प्रबल प्रमेह
१७३७	" "	प्रमेह,निर्बलता,ज्वर, अश्मरी, शुक्रविकारादि
१७३९	" वटी	प्रमेह,मूत्रकृच्छ्र,अश्मरी, शुक्रतारल्य, अण्डवृद्ध्यादि अनेक रोग (प्रमेहकीप्रसिद्ध औषध है।)
२३९७	त्रिकटुकादिमोदकः	भयङ्कर प्रमेह
२४१७	त्रोटहरीगुटिका	वातजप्रमेह,कफरोग
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३३७	गोक्षुरादि गुग्गुलुः	प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, प्रदर, वायु
२४२८	त्र्यूषणादिगुटिका	प्रमेह, मूत्राघात, उदररोग।
	अवलेहप्रकरणम्	
१३४४	गोकण्टकाद्यवलेहः	मधुप्रमेह, मूत्रकी दाह,मूत्ररुधिर,शुक्रस्राव।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३४९	गोक्षुरपाकः	प्रमेह, अर्श, क्षीणता (वाजीकरण है।)
१३५०	गोक्षुरपाकः	प्रमेहनाशक, वीर्य-स्तम्भक, वाजीकरण

घृतप्रकरणम्

२४४२	त्रिकण्टकादिघृतम्	पित्तप्रमेह।

आसवारिष्टप्रकरणम्

१८११	चन्दनासवः	शुक्रमेह
१८१२	"	शुक्रदोष, सर्वप्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, औपसर्गिक मेह।

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४९६	गगनायसरसायन	सर्व प्रकारके प्रमेह (अत्यन्त बलवर्द्धक)
१५२५	गन्धक प्रयोगः	प्रमेहके लिए अद्भुत
१५२९	गन्धकयोगः	२० प्रकारके प्रमेह, प्रमेहपीड़िका
१५६५	गुडूच्यादिमोदकः	रक्तपित्त, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पाददाह, प्रदर, सोमरोग।
१८८६	चन्द्रकलावटी	सर्व प्रमेह
१८८९	चन्द्रप्रभारसः	दुस्साध्य प्रमेह
१८९३	चन्द्रप्रभावटी	समस्त प्रमेह
१९०६	चन्द्रोदयो रसः	२० प्रकारके प्रमेह, पित्त
२११२	जलजामृतरसः	सर्व प्रमेह
२६१२	तारकेश्वरो रसः	प्रमेह, बहुमूत्र
२६१४	" "	बहुमूत्र
२६१५	" "	"
२७७१	त्रैलोक्यमोहन	प्रमेह

२९ बालरोगाधिकारः

कषायप्रकरणम्

१११०	गजपिप्पल्यादि	सर्वातिसार
१६८०	चिञ्चापत्रादिक्वाथः	शीतलाको रोकता है।

चूर्णप्रकरणम्

१२५८	गुडादिचूर्णम्	संग्रहणी
१६३२	घनादिचूर्णम्	खांसी, वमन, ज्वरातिसार।
१६३३	घनादिचूर्णम्	वमन, ज्वर
१७१३	चातुर्जातादि-सम्भारकः	अजीर्ण, श्वास, खासी, निर्बलता, कृशता
१९८७	जम्बूकपुष्पादि	हिक्का (हिचकी)
२३२७	तूगाचूर्णम्	खांसी, श्वास
२३४२	त्रिकट्वादिचूर्णम्	स्वरको सुधारता है।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	गुटिकाप्रकरणम्	
१३१८	ग्रहनाशिनीगुटिका	ग्रहनाशिनी (पान, अञ्जन, धूप. स्नानादिमें प्रयुक्त)
	घृतप्रकरणम्	
१७७०	चाङ्गेरीघृतम्	ग्रहणी, अतिसार
१७७१	चाङ्गेरीघृतम्	गुदभ्रंश
	तैलप्रकरणम्	
२४८२	त्वगादितैलम्	अजीर्ण, विषूचिका
	धूपप्रकरणम्	
१४५६	ग्रहघ्नधूपः	स्कन्दोन्माद,पिशाचादि



३० भगन्दराधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३२४	गुग्गुलुप्रयोगः	भगन्दर
१३३४	गुग्गुल्वादियोगः	भगन्दर,कुष्ठ, गुल्म, नाड़ीव्रण।
२४२३	त्रिफलागुग्गुलुः	भगन्दर, शोथ,अर्श, गुल्म।
	तैलप्रकरणम्	
१८०६	चित्रकाद्यं तैलम्	भगन्दरके लिए शोधन और रोपण है, घावके स्थानका रंग पूर्ववत् कर देता है।
	लेपप्रकरणम्	
२०८१	ज्योतिष्मत्यादि	भगन्दरके घावको शुद्ध करता है।
२५०१	तिलादिकल्कः	भगन्दर,नासूर,उपदंश और घावोंका शोधन रोपण
२५०३	तिलादिलेपः	भगन्दर
२५०५	„ „	रक्तस्राव और वेदनायुक्त भगन्दर
	रसप्रकरणम्	
१६४०	घनगर्भरसः	भगन्दर
१९२०	चित्रविभाण्डको	„
२५७५	ताम्रभस्मप्रयोगः	सर्वदोषज भगन्दर, व्रण
२८१६	त्रिगुणाख्यं ताम्र	भगन्दर

३१ भग्नाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	चूर्णप्रकरणम्	
१२८८	गोधूमचूर्णम्	सन्धिभग्न, अस्थिभग्न
	तैलप्रकरणम्	
१३८१	गन्धतैलम्	भग्नरोग

३२ मसूरिकाधिकारः

	कषायप्रकरणम्	
११७९	गुडूच्यादिकाथः	उपद्रवयुक्तवातपित्तज मसूरिका
११८६	गुडूच्यादिकाथः	वातजमसूरिका के पाककालमें उपयोगी है।
११९५	गुडूच्यादि	मसूरिकाको जल्दी पकाता है।
१६५०	चन्दनादि कल्कः	मसूरिकाकी प्रारम्भिक दशामें उपयोगी है।
१६५९	चन्दनादिकाथः	शीतलाका ज्वर
१९७८	जातिपत्रादिकाथः	मुखपाक, कण्ठरोग।
	चूर्णप्रकरणम्	
१७१६	चिञ्चाबीजादि चू.	शीतलाको निकलनेसे रोकता है।
	मिश्रप्रकरणम्	
२७९८	तण्डुलाम्बुसेकः	पैरोंकी पीड़िकाओंकी दाह

३३ मस्तिष्करोगाधिकारः

	कषायप्रकरणम्	
१६५६	चन्दनादिकाथः	मस्तिष्कका छोटा हो जाना
	चूर्णप्रकरणम्	
१२७५	गुडूच्यादिरसा.चू०	स्मरणशक्तिवर्द्धक है
	तैलप्रकरणम्	
२०६२	ज्योतिष्मतितैलम्०	बुद्धिवर्द्धक
२४६७	ताम्रगर्भतैलम्	" (३ वर्षका प्रयोग)

३४ मुखरोगाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
१२०९	गृहधूमादिक्काथः	उपजिह्वा
१९७७	जातिपत्रादि ,,	मुखपाक
२२८५	त्रिफलादि ,,	,,
	चूर्णप्रकरणम्	
१९९४	जरणादि चूर्णम्	मसूढ़ोंकेघाव, पीड़ा, सूजन,खूननिकलना, दांतोंका हिलना।
१९९५	जातिपत्रादि ,,	मुखकी दुर्गन्ध, दांतोंकी पीड़ा, मसूढ़ोंकी खाज, दन्तकृमि, आदि।
२३१३	तिक्तार्क ,,	मसूढ़े, गले और मुखके रोग (मञ्जन)
२३३१	तेजोह्वादि-दन्तधावन	मसूढ़ोंका रक्तस्राव, खुजली, पीड़ा (मञ्जन)
	गुटिकाप्रकरणम्	
२०१८	जात्यादि गुटिका	दन्त, ओष्ठ, जीभ और तालुके रोग। (सुगन्धित है)
२३९४	तेजोवत्यादि ,,	समस्त गलरोग
२४०२	त्रिफलादि ,,	गलरोहिणी,मुखशोष, मुंहकीदुर्गन्ध इत्यादि
	अवलेहप्रकरणम्	
२०२८	जातिपत्रादिलेहः	स्वरको सुधारता है।
	घृतप्रकरणम्	
१३६३	गुडूच्यादिघृतम्	वाणीकी विकलता, हकलाना।
	तैलप्रकरणम्	
१३७६	गण्डीरादितैलम्	समस्त मुखरोग
२०५२	जात्यादि ,,	दांतका नासूर
२४६८	ताम्रादि ,,	मुंहकी झांई, व्यङ्ग, कलौंस,वलि(झुर्रियां) आदि नाशक, सौन्दर्यवर्द्धक।
	लेपप्रकरणम्	
१४५०	गोरोचनादिलेपः	मुखदूषिका (मुंहासे)
१८३१	चन्दनादि ,,	व्यङ्गनाशक,सौन्दर्यवर्द्धक।
२०६९	जातिपत्रादि,,	व्यङ्ग, लाञ्छन (कलौंस)
२०७२	जातिफलादि लेप	यौवनपीड़िका(मुंहासे)
२०७३	जीरकादि ,,	व्यङ्ग, लाञ्छन
२०७५	जीवन्त्यादि ,,	होठ फटना
२०७६	,, ,,	गाल फटना
२५१२	तैलादि ,,	मसूढ़ोंके घाव

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	रसप्रकरणम्	
१८८०	चतुर्मुखो रसः	जिह्वा, दन्त ओर मुखरोग
	मिश्रप्रकरणम्	
१६१७	गुञ्जादिमूलयोगः	चबानेसे दन्तपीड़ा नष्ट होती है।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१९०	जातिपत्रयोगः	मुखपाकादि, दांत-हिलना
२८०४	तिलादिकवलः	मसूढोंकी सूजन
२८०५	„ गण्डूष	मुंह जल जाय तो उसकी दाह

३५ मूत्रकृच्छ्रमूत्राघाताधिकारः

कषायप्रकरणम्

११०९	गङ्गावतीमूलयोगः	मूत्रावरोध
११६०	गुडदुग्धयोगः	मूत्रकृच्छ्र, शर्करा, उष्णवात
१२१४	गोक्षुरक्वाथः	मूत्रकृच्छ्र, उष्णवात (सोज़ाक)
१२१५	„	मल रोकनेसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र
१२१६	गोक्षुरक्वाथः	मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्रशुक्र
१२१९	गोधापदीमूलयोगः	भयङ्कर मूत्राघात
१२२०	गोधावन्यादि	मूत्राघातको तुरन्त नष्ट करता है।
२२३५	तृणपञ्चमूलादि	पित्तज मूत्रकृच्छ्र, मूत्रमार्गसे होनेवाला रक्तस्राव।
२२५६	त्रिकण्टकादिक्वाथः	मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी
२२५८	त्रिकण्टकादि-सिद्धपयः	मूत्रकृच्छ्र
२२६१	त्रिफलाकल्कः	मूत्रकृच्छ्र
२२९४	त्रिफलादिक्वाथः	१३ प्रकारके मूत्राघात

चूर्णप्रकरणम्

१२५१	गुडक्षारयोगः	मूत्रकृच्छ्र, शर्करा
१२६४	गुडामलकयोगः	„ रक्तपित्त, श्रम, शूल।
१७०६	चम्पकादिचूर्णम्	मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, रक्तपित्त।
२३३२	त्रपुषीबीजादि	पित्तज मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शर्करा, बस्तिशूल।
२३३४	„ „	मूत्रकृच्छ्र
२३५०	त्रिफलाचूर्णम्	मूत्राघात (पेशाब बन्द होना)

गुग्गुलुप्रकरणम्

२४२०	त्रिकण्टकादि	मूत्राघात, वातज मूत्र-कृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	घृतप्रकरणम्	
१७७७	चित्रकादिघृतम्	मूत्राघात, मूत्रग्रन्थि, उष्णवात, वस्ति-कुण्डली।
२४४३	त्रिकण्टकाद्यं घृतम्	मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी।
	लेपप्रकरणम्	
२५१२	त्रपुषीबीजादि	मूत्रकृच्छ्र

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	रसप्रकरणम्	
२११२	जलजामृतरसः	मूत्रकृच्छ्र
२६१३	तारकेश्वरो रसः	„
२६१४	„ „	मूत्राघात
२७३०	त्रिनेत्राख्यो रसः	मूत्रकृच्छ्र
	मिश्रप्रकरणम्	
१६४२	घनसारादिवर्ति	मूत्रमार्गमें लगानेसे मूत्रावरोध नष्ट होता है।

३६ मूर्च्छाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	चूर्णप्रकरणम्	
२३६१	त्रिफलादिनांयोगः	मूर्च्छा
	रसप्रकरणम्	
२५७६	ताम्रभस्म प्रयोगः	मूर्च्छा, भ्रम
२५७९	„ „ योगः	मूर्च्छा

३७ मेदोरोगाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११८५	गुडूच्यादिक्काथः	मेदवृद्धि
	चूर्णप्रकरणम्	
१२७४	गुडूच्यादियोगः	मेदोरोग
१७०९	चव्यादिचूर्णम्	मेदरोग, अग्निमांद्य
२३०७	तालपत्रक्षारः	मेदोवृद्धि
२३८५	त्र्यूषणाद्यं चूर्णम्	स्थूलता, कफ, अग्निमांद्य
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३२७	गुग्गुलुरसायनम्	मेदोरोग, कफज और वातज रोग
२४२६	त्र्यूषणादि गुग्गुलुः	कफवायु और मेदज दुस्साध्य रोग।
	तैलप्रकरणम्	
२४७७	त्रिफलादितैलम्	मेद, आलस्य, कफ
	रसप्रकरणम्	
२७५६	त्रिमूर्तिरसः	मेद, शोथ, आमवात
२७८७	त्र्यूषणादिलौहम्	स्थूलता

३८ यकृत्प्लीहाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१२७२	गुडूच्यादि चूर्णम्	यकृत्, प्लीहा, पाण्डु, अग्निमांध, अरुचि, परदेश के पानीसे उत्पन्न हुवा ज्वरादि

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१३०७	गुडपिप्पलीमोदकः	प्लीहा, यकृत्, बालकों के लिए विशेष उपयोगी।
१३०८	,, ,,	प्लीहा, ज्वर
२३१९	तिलादिक्षारः	यकृत्, प्लीहा, गुल्म, अग्निमांध
२३८१	त्र्यूषणादिचूर्णम्	प्लीहा

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७५७	चित्रकादिलौहम्	प्लीहा, यकृत्, ज्वर, शोथ

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७७५	चित्रकघृतम्	प्लीह, ज्वर, अफारा, गुल्म, अरुचि, पार्श्व-पीडा, यकृत्।
१७७६	चित्रकपिप्पली घृ.	यकृत्, प्लीहा

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५४२	गन्धकादिपोटली	यकृत्, प्लीहा
२५६६	ताम्रकल्पः	दुस्साध्यप्लीहा, यकृत्, ज्वर।
२६०८	ताम्रेश्वरगुटिका	प्लीहा, यकृत्, पाण्डु

३९ रक्तपित्ताधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१२१२	गोकण्टकादि-सिद्धपयः	मूत्रमार्गगत रक्तपित्त
१६५३	चन्दनादिपेया	रक्तपित्त
१६५४	,, क्वाथः	अत्यधिक रक्त जाना
१६५५	,, ,,	रक्तपित्त
१६६२	,, ,,	कफजरक्तपित्त, तृष्णा, खांसी, ज्वर।
२२३७	तृणपञ्चमूलीपयः	मूत्रमार्गगत रक्तपित्त
२२८९	त्रिफलादिक्वाथः	दाह, पित्तशूल

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
१६३१	घननादादियोगः	रक्तप्रवाह
१७१७	चित्रकचूर्णयोगः	नकसीर (नाकसे रक्त आना)
२३०९	तालीसचूर्णम्	रक्तपित्त, कफपित्तज खांसी, स्वरभेद, श्वास

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
२४१२	त्रिवृतादिमोदकः	रक्तपित्त, सन्निपात ज्वर।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	लेपप्रकरणम्	
१८२२	चन्दनादिलेपः	रक्तपित्त
	रसप्रकरणम्	
१५४४	गन्धकादिरसः	रक्तपित्त
१८८५	चन्द्रकलारसः	ऊर्ध्व तथा अधोगत रक्तपित्त, विशेषतः रक्तकी वमन और स्त्रियोंका रक्तस्राव।

४० रसायनवाजीकरण तथा नपुंसकताधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
१२२१	गोधूमादियोगः	बलवर्द्धक
१६४५	चणकरसायन	पित्तकफरोग, प्रमेह
१६२९	घृतदध्यादियोगः	वृद्धावस्थाकोरोकताहै
	चूर्णप्रकरणम्	
१२३९	गन्धकयोगः	देहको सुन्दर करता है
१२७१	गुडूच्यादिचूर्णम्	वाजीकरण
१२७५	गुडूच्यादि र. चू.	स्मरणशक्तिवर्द्धक
१२८२	गोक्षुरचूर्णम्	कुप्रयोगजनित नपुंसकता
१२८४	गोक्षुरादिचूर्णम्	अत्यन्त वाजीकरण
१२८५	,, ,,	,, ,,
१७१८	चित्रकप्रयोगः	बल, कान्ति, आयु और मेधावर्द्धक
१७३०	चूर्णरत्नम्	वीर्यवर्द्धक
२३१२	तालीसाद्यचूर्णम्	क्षय, खांसी, ज्वर, रक्तपित्त, अतिसार, हाथ पैरोंकी दाह इत्यादि।
२३४४	त्रिकण्टकादि चू०	अत्यन्त वाजीकरण है
२३४५	,, प्रयोगः	,, ,,
२३५९	त्रिफलादियोगः	आयुवर्द्धक, रसायन
२३६५	त्रिफलायोगः	वार्द्धक्यहर
	गुटिकाप्रकरणम्	
२०१६	जातिफलादिवटी	शुक्रस्तम्भक
२०१७	,, ,,	,, ,,
२३९८	त्रिकण्टकाद्यमोदकः	वाजीकरण
२४०६	त्रिफलादिवटी	शुक्रतारल्य, इन्द्री शैथिल्य
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३२६	गुग्गुलुरसायनम्	कान्ति, बल, बुद्धि और आयुवर्द्धक।
	अवलेहप्रकरणम्	
१३३८	गुडकुष्माण्डकावलेहः	कृशता, अग्निमांद्य, वीर्यकी कमी, क्षयरोग।
१३४५	गोक्षुरादिलेहः	वाजीकरण
१३४७	गोक्षुरपाकः	वीर्यस्तम्भक, वाजीकरण, पौष्टिक।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३४८	गोक्षुरपाकः	अत्यन्त वाजीकरण
१९६०	छोहारापाकः	वाजीकरण, पौष्टिक

घृतप्रकरणम्

२०४०	जीवन्तीयमकः	शुक्रवर्द्धक (अनुवासन योग्य)
१३६९	गोधूमाद्यं घृतम्	लिङ्गशैथिल्य, शुक्रक्षय

तैलप्रकरणम्

१७९०	चन्दनादितैलम्	वीर्य और कामशक्ति वर्द्धक

आसवारिष्टप्रकरणम्

२४८५	ताम्बूलासवः	रसायन

रसप्रकरणम्

१४९७	गगनेश्वररसः	आयुवर्द्धक
१५१०	गन्धककल्पः	यौवन देता है।
१५११	” ”	रोगनाशक, आयुवर्द्धक
१५१२	” ”	शौर्य, वीर्य, दीर्घायु, दिव्यदृष्टि और सुरूप प्राप्त होता है।
१५१३	” ”	जरा(वृद्धावस्था)नाशक
१५२१	गन्धकतैलपातनम्	कामोत्तेजक, अग्निवर्द्धक
१५३४	गन्धकरसायनम्	सर्वरोग

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५३५	गन्धकरसायनम्	वलिपलितनाशक, अग्निवर्द्धक
१९०७	चन्द्रोदयरसः	सर्वरोग
१९०८	” ”	” ”
२११०	जरामरणहरोरसः	रसायन
२१११	जराहरोरसः	जरा (१ मासका प्रयोग)
२५६३	ताप्यादिरसायनम्	समस्त रोग
२६३२	तारसुन्दरीवटी	अत्यन्त वाजीकरण
२६३४	तालकराजरसः	वृद्धावस्थाको रोकता है
२६६९	तालवटिका	बल, वीर्य, दृष्टि, शक्तिवर्द्धक।
२७२९	त्रिनेत्ररसः	बलवीर्यवर्द्धक, सर्व रोग नाशक

मिश्रप्रकरणम्

१६२१	गोधूमाद्यापूपलिका	अत्यन्त वाजीकरण पूरियां।
२१८६	जलनस्यम्	दृष्टिवर्द्धक।
२१८७	जलप्रयोगः (उषापान)	खांसी, श्वास, ज्वर, अतिसार, कुष्ठ, मूत्र-विकार, नज़ला, जुकाम, नेत्ररोगादि वृद्धि और दृष्टिवर्द्धक
२१८८	जलप्रयोग	मेधा और दृष्टिवर्द्धक।
२१९४	ज्योतिष्मतिरसा०	

४१ राजयक्ष्मा तथा क्षीणताधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	चूर्णप्रकरणम्	
१२७०	गुडूच्यादिगणः	राजयक्ष्मा
१६९२	चतुर्दशाङ्गलौहः	खासी, ज्वर, श्वास, क्षय
१७११	चव्यादिचूर्णम्	क्षय
२००५	जीवकादि ,,	रक्तक्षीणतासे उत्पन्न कृशता
२००६	जीवन्त्याद्यं ,,	बलपुष्टिवर्द्धक (उबटन)
२२०५	तवराजादिचूर्णम्	क्षय, भ्रम, दाह, शिरपीड़ा।
२३२२	तिलादि ,,	क्षय
२३२६	तिलाद्यं ,,	शोष
	गुटिकाप्रकरणम्	
२४०७	त्रिफलाद्यागुटिका	राजयक्ष्मा, ज्वर, खांसी, रक्तपित्त, वमन
	अवलेहप्रकरणम्	
१७६१	च्यवनप्राशावलेहः	राजयक्ष्मा, क्षीणता।
	घृतप्रकरणम्	
१७६६	चव्यादिघृतम्	क्षयकी खांसी
१७९८	चन्दनाद्यं तैलम्	ज्वर, क्षय, (शरीरको पुष्ट करता है।)
२०४१	जीवन्त्यादिकं घृतम्	राजयक्ष्मा, शिरशूल
१०४२	जीवन्त्याद्यं ,,	एकादशरूप क्षय
	नस्यप्रकरणम्	
२५५०	तालकादिनस्यम्	कफज क्षय
	रसप्रकरणम्	
१९००	चन्द्रामृतरसः	राजयक्ष्मा
१९०१	चन्द्रामृतवटी	,,
१९३२	चिन्तामणिरसः	क्षय, खांसी, अरुचि, ज्वर।
१९३९	चूडामणिरसः	क्षयरोग
२५५९	तरुणानन्दरसः	अत्युग्र राजयक्ष्मा, क्षय, उरःक्षत, खांसी, अरुचि, जीर्णज्वर, शोथ, अतिसार।
२७०९	त्रिकट्वादिलौहम्	क्षय, खांसी, ज्वर, शोथ।
२७६५	त्रैलोक्य चिन्तामणि रसः	क्षय, कास, तृषा, शोथ।

४२ वातरक्ताधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११६९	गुडूचीस्वरसादि	वातरक्त
११७५	गुडूच्यादिक्वाथः	वातरक्त, खाज, कुष्ठ
२२६८	त्रिफलादिकल्कः	शूलयुक्त वातरक्त
	चूर्णप्रकरणम्	
१२६८	गुडूचीलौहम्	वातरक्त
२३७०	त्रिवृतादिचूर्णम्	पित्तयुक्त वातरक्त
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३३०	गुग्गुलुवटी	भयङ्कर वातरक्त, पैर और समस्त अङ्गका फट जाना।
२४२१	त्रिफलागुग्गुलु.	दुस्साध्य वातरक्त, कुष्ठ, व्रण (३ सप्ताहका प्रयोग है।)
२४२५	त्रिफलायोगुग्गुलुः	वातरक्त, कुष्ठ, श्वित्र
	घृतप्रकरणम्	
१३५६	गुडघृतम्	वातरक्त, विसर्प, कफरक्त।
१३५९	गुडूचीघृतम्	वातरक्त
१३६०	„ „	„ कुष्ठ
२०३९	जीवनीयघृतम्	„

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	तैलप्रकरणम्	
१३९३	गुडूचीतैलम्	वातरक्तकी हर अवस्थामें उपयोगी है। स्वेद, खुजली, पीड़ा
१३९५	„ „	वातरक्त
	लेपप्रकरणम्	
१४४१	गृहधूमादिलेपः	वातकफ प्रधान वातरक्त
१४५२	गौरसर्षपलेपः	वातरक्तकी पीड़ा
	रसप्रकरणम्	
२६४०	तालकेश्वररसः	वातरक्त
२६४१	„ „	„
२६४३	„ „	„
२६४४	„ „	„
२६४५	„ „	„
२६४७	तालकेश्वरोरसः	वातरक्त
२७२२	त्रिनेत्ररसः	गलिताङ्ग वातरक्त, आमवात।
	मिश्रप्रकरणम्	
१९४५	चोपचीनीवाष्पः	वातरक्त



४३ वातव्याध्यधिकारः[1]

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११६६	गुडूचीक्काथः	आमवात
१२२५	ग्रन्थिकादिक्काथः	ऊरुस्तम्भ
१६८८	चोपचीनीप्रयोगः	वातव्याधि
२२०७	तगरमूलादिक्काथः	आमवात
	चूर्णप्रकरणम्	
१७२०	चित्रकादिचूर्णम्	आमाशयगतवायु
१७२२	,, ,,	आमवात
२३४९	त्रिफला ,,	ऊरुस्तम्भ
२३५३	त्रिफलादि ,,	,,
२३६२	त्रिफलाद्यं ,,	सुप्तिवात
	गुटिकाप्रकरणम्	
२०२५	ज्योतिष्मतिगुटिका	समस्तवातरोग
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३३६	गुडूच्यादिगुग्गुलुः	क्रोष्टुशीर्ष
२४१९	त्रयोदशाङ्गगुग्गुलुः	गृध्रसि, कटिग्रह, हनुग्रह, योनिरोग।
२४२२	त्रिफलागुग्गुलुः	आमवात,सूजन,ज्वर
२४२४	,, ,,	ऊरुस्तम्भ
२४२७	त्र्यूषणादि गुटिकागु०	सन्धि, अस्थि और मज्जागत आमवात
	घृतप्रकरणम्	
२४३५	तिल्वकघृतम्	एकाङ्गगततथा सर्वाङ्गगत वातरोग
२४३६	,, ,,	वातव्याधिमें विरेचनोपयोगी है।
	तैलप्रकरणम्	
१३८१	गन्ध तैलम्	पक्षाघात, आक्षेपक अर्दित, तालुशोष, मन्यास्तम्भ। (छाती, कन्धे और ग्रीवाको पुष्ट करता है।)
१३९४	गुडूची ,,	वातव्याधिमें अनुवासन योग्य है।
१३९७	गृध्रसीहर ,,	गृध्रसी, ऊरुग्रह
१४०२	ग्रन्थिकादि,,	पक्षाघात
१७९१	चन्दनादि ,,	८० प्रकारके वातरोग, वातरक्त, मर्म और अस्थिकी चोट।
२४८०	त्रिशतीप्रसारिणी तैलम्	सन्धि, अस्थि और शिरागतवायु।
	लेपप्रकरणम्	
१४२९	गुञ्जाफललेपः	अपबाहुक,विश्वाची, गृध्रसी

[1] ऊरुस्तम्भ और आमवात इसीमें सम्मिलित हैं।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण

नस्यप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०९९	जिङ्गिन्यादिनस्यम्	मन्यास्तम्भ, अपबाहुक।

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४८७	गगनगर्भरसः	कफयुक्त वायु
१४८८	गगनगर्भावटी	वातकफजरोग
१४९४	गगनादि ,,	वातपित्तजरोग
१५४९	गन्धाश्मगर्भरसः	स्पर्शवात
१५५०	,, ,,	कम्पवात, स्पर्शवात
१५६४	गुञ्जागर्भरसायनम्	ऊरुस्तम्भ
१८७९	चतुर्मुजरसः	समस्त वातव्याधि विशेषतः कम्पवात।
१८८१	चतुर्मुखरसः	ऊरुस्तम्भादि
१८८४	चतुःसुधारसः	समस्त वातव्याधि
१९२६	चिन्तामणि रसः	कफान्वितवायु, पित्तयुक्तवायु
२७१८	त्रिगुणाख्योरसः	कम्पवात
२७३४	त्रिपुरभैरवः	समस्त वातव्याधि
२७६४	त्रैलोक्य चिं. म.	,, ,,
२७८०	त्र्यम्बकेश्वर	अर्धाङ्गवात, कम्पवात

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१९४५	चोपचीनीवाष्पः	समस्त वातजरोग, विशेषतः सन्धिपीड़ा
२७९९	तर्कार्यादिसेचन	ऊरुस्तम्भ

४४ विषाधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१११५	गरुडीमूलयोग.	सर्पविष
१६५१	चन्दनादिकल्कः	मकड़ी (लूता) का विष
१६६९	चन्दनादिप्रयोगः	सर्व प्रकारके विष
१९७४	जलवेतसादियोगः	विष
२२०९	तण्डूलीयकमूलयोगः	सर्पविष
२२७७	त्रिफलादिक्वाथः	पारदविष

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२४७	गवाक्षीचूर्णम्	मूषकविष
१३७९	गृहधूमादि	सर्पविष
१२९५	गोरोचनचूर्णम्	शृगाल, बिलाव, मण्डूक और सांपका विष
१७०५	चन्द्रोदयोगदः	सर्वविष
१७१४	चिञ्चादिचूर्णम्	मूषकविष
१७३१	चूर्णागदः	स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम विष

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३५१	गरविषहरघृतम्	गरविष
१३६८	घृतसैन्धवयोगः	वृश्चिकदंशकी तीव्र पीड़ा।
२४३१	ताण्डुलीयकं घृतम्	समस्त विष

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१८०३	चित्रकमूलतैलम्	मूषकविष

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४२३	गिरिकर्ण्यादिलेप	मकड़ीका विष
१४४६	गोजिह्वायोगः	दन्त और नखकाविष
१८२३	चन्दनादिलेपः	लूता(मकड़ी)काविष
२०७४	जीरकादिलेपः	वृश्चिक विष
२०७९	जयपाललेपः	„ „

धूपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४५४	गुग्गुलुधूपनम्	रक्तकीटदंश
२५२५	तालनिम्बादियोगः	वृश्चिकदंश

अञ्जनप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०९३	जैपालाञ्जनम्	सर्पदष्टकी मूर्च्छा

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५५२	गरनागनरसः	गरविष
२६०३	ताम्रसुवर्णयोग.	स्थावर विष

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२८००	तार्क्ष्योऽगदः	सर्पविष
२८०७	त्रिवृताद्यगदः	सर्वविष

४५ विसर्पाधिकारः

कषायप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११५६	गायत्र्यादिक्काथः	विसर्प, दाह, ज्वर, वमन, मूर्च्छा।
२२४९	त्रायमाणादिक्काथः	उपद्रवयुक्त विसर्प
२२६४	त्रिफलाक्काथः	विसर्पज्वरकेलिए रेचन

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२३७७	त्रिवृतादिशोधनम्	विसर्पमें विरेचन
१३७२	गौराद्यं सर्पिः	विसर्प, मकड़ी आदिका विष, व्रण।

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३७३	गौर्यादिघृतम्	पित्तज विसर्प, नासूर, शिरोरोग, मुखपाकादि।

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७८६	चणकादितैलम्	विसर्प

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४१९	त्रायन्त्यादिलेपः	कफज विसर्प
२५१७	त्रिफलादिलेपः	„ „

४६ वृद्ध्याधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
२२५२	त्रिकट्वादिक्वाथः	कफवातजवृद्धि
२३०३	त्र्यूषणादिक्वाथः	वातकफज अण्डवृद्धि
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३२३	गुग्गुलुप्रयोगः	पुरानीवातज अण्डवृद्धि
	घृतप्रकरणम्	
१३५२	गव्यघृतादियोगः	अण्डवृद्धि
२४५८	त्रिवृतादिघृतम्	अन्त्रवृद्धि, व्रण, शोथ और समस्त अन्त्र-विकार।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	तैलप्रकरणम्	
१३८३	गन्धर्वहस्ततैलम्	अन्त्रवृद्धि
	आसवारिष्टप्रकरणम्	
१८१३	चविकासव	अन्त्रवृद्धि
	लेपप्रकरणम्	
१८२६	चन्दनादिलेपः	पित्तजवृद्धि
२४९०	तर्कारिकादिलेपः	अण्ड "
२५२१	त्रिफलादिलेपः	" "

४७ व्रणाधिकारः[1]

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११५५	गाङ्गेरुकी स्वरसः	शस्त्रादिके ताज़ेघावकी वेदना तुरन्त नष्ट करता है।
२२७६	त्रिफलादिक्वाथः	दुर्गन्धित और पीडा युक्त व्रण।
२२८३	" "	व्रणशोधक
	चूर्णप्रकरणम्	
१२८०	गृहधूमादिचूर्णम्	मेदसे दुष्ट व्रणको सुखाता है।
२१९८	टङ्कणप्रयोगः	कुनख

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३२२	गुग्गुलुगुटिका	दुष्ट व्रण, भगन्दर, अर्श, पीडिका।
१३२८	" वटकः	व्रणशोधन, रोपण, मलशोधक।
१३२९	गुग्गुलुवटिका	नाडीव्रणको शुद्ध करता है।
	घृतप्रकरणम्	
१३७१	गौराद्यं घृतम्	नासूर तथा सब प्रकारके व्रणोंकोशुद्ध करता है।

१ ग्रन्थ्यर्बुद भी इसीमें सम्मिलित है।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३७४	गौर्याद्यं घृतम्	गहरे, पुराने, गले सड़े तथा पीड़ा, दाह और स्राववाले घावों को भरता है।
२०३२	जात्यादि घृतम्	सूक्ष्ममुखवाले, गहरे, स्राव और पीड़ायुक्त, मर्माश्रित व्रण भरते और सूख जाते हैं।
२०३३	जात्यादिघृतम्	पीड़ा और रक्तस्राव वाला नासूर, अग्निदग्ध व्रण।
२०३७	जीरकघृतम्	अग्निदग्ध व्रण
२४३३	तिक्तादिघृतम्	घाववाले स्थानके रंगको सुधारता है।

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७९५	चन्दनादितैलम्	सद्यव्रणको भरता है
१७९६	„ यमकः	अग्निदग्ध व्रणको तुरन्त भरता है।
१७९७	„ रोपणतैलम्	व्रणरोपण है।
२०५३	जात्यादिरोपण „	विषजव्रण, कटिदंश, शस्त्रव्रण, अग्निदग्ध, दन्तनखादिका घाव, कील इत्यादिसे विंध जाना आदि समस्त प्रकारके घाव।
२४६९	तालीसाद्यं „	तुरन्तका घाव(क्षत)

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१४१०	गदादिलेपः	गांठको पकाता है।
१४१३	गन्धकादिलेपः	अर्बुद (रसौली)
१४३४	गुडगृहधूमलेपः	अत्यन्त पीड़ा और सूजनवाले, पुराने कफवातज व्रण
१४३७	गुणवतीवर्तिः	व्रण और नाड़ीव्रणके लिए उत्तम मरहम
१४३९	गृहधूमादिलेपः	सर्व प्रकारके व्रण
१४४०	„ „	सिध्म, पामा, विचर्चिका।
१४४७	गोदन्तलेपः	अत्यन्त कठिन व्रणको भी पकाकर फोड़ देता है।
१८४१	चिरविल्वादिलेपः	व्रणको शीघ्र पकाकर फोड़ देता है।
२०६६	जम्ब्वाम्रपल्लवादि	व्रणवाले स्थानकारंग ठीक करता है।
२०७०	जातिपुष्पादिलेपः	बढ़े हुवे मांसको काटता है।
२०७८	जैपाललेपः	बढ़े हुवे मांसको काटता है।
२४९७	तालादिलेपनम्	पीपवाले और कृमि युक्त हर प्रकारके व्रण, उपदंश।
२५०२	„ लेपः	व्रणकी सूजन, दाह, पीड़ा और रक्तस्रुति।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२५०४	तालादिलेपः	वातज व्रणकी दाह और पीड़ा
२५०६	तिलाष्टकम्	व्रणशोधक
२५०७	तुगाक्षीर्यादिलेपः	अग्निदग्धव्रण
२५२२	त्रिफलामषीलेपः	,, ,,

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	मिश्रप्रकरणम्	
१६४३	घृतावसेचनम्	ताज़े घावका उपाय
२१९१	जात्यादिवर्तिः	नासूर
२८०१	तालकाद्यामषी	दुष्ट नाड़ीव्रण
२८११	त्रिवृतादिवर्तिः	सूक्ष्म मुखवाले व्रणोंको शुद्ध करती है।

४८ शिरोरोगाधिकारः

कषायप्रकरणम्

१९५१	छिन्नादिक्वाथः	शिरशूल,आधासीसी, नेत्रशूल।
२२५३	त्रिकट्वादि	शिरशूल

तैलप्रकरणम्

१३८६	गुञ्जातैलम्	केशवर्द्धक है।
१३८७	,, ,,	आधाशीशी,शिरशूल, भौं, कनपटी और कानकी पीड़ा।
१३८८	,, ,,	दारुण खुजली, शिर का कुष्ठ।
१३८९	गुञ्जातैलम्	अरुंषिका (शिरकी फुंसी)
१७९४	चन्दनादितैलम्	केशवर्द्धक, पलित-नाशक।
१८०५	चित्रकादि ,,	यूका (जू)को नष्ट करता है।
२०५६	जात्यादि ,,	इन्द्रलुप्त
२०५८	जीवकाद्यं ,,	वातपित्तज शिरोरोग
२४७४	त्रिफलातैलम्	अरुंषिका
२४७६	त्रिफलादि ,,	७ दिनके प्रयोगसे आयुभरके लिए बाल काले हो जाते हैं।
२४७९	त्रिफलाद्यं ,,	अरुंषिका
२४८१	त्वगादि ,,	शिरोरोग (नस्य)

लेपप्रकरणम्

१४२८	गुञ्जापत्रादिलेपः	केश गिरना
१४३०	गुञ्जाफललेपः	दारुण
१४३२	गुञ्जालेपः	केशवर्द्धक
१४४५	गोक्षुरादिलेपः	,,
१८२१	चण्ड्यादिलेपः	दारुण
१८२४	चन्दनादिलेपः	पित्तज शिरोरोग शङ्खक
१८२९	,, ,,	पित्तज शिरोरोग
१८३३	,, ,,	
२०६५	जपाकुसुमलेपः	इन्द्रलुप्त
२४९८	तिक्तपटोलीपत्रयोगः	,,
२४९९	तिलपर्णीबीजलेपः	शिरपीडा
२५००	तिलपुष्पादिलेपः	इन्द्रलुप्तके लिए अत्यन्त प्रशंसित।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२५१५	त्रिफलादियोगः	केशरञ्जक (५ मास तक वाल काले रहते हैं।)
२५१६	„ „	„
२५१९	त्रिफलादिलेपः	अकालपलित
२५२०	„ „	केशरञ्जन

नस्यप्रकरणम्

१४७६	गान्धार्यादिघृतनस्यः	आधाशीशी
१४७७	गिरिकर्णिकानस्यः	„
१४७९	गुडनागरादिनस्यः	मस्तकशूल
१४८०	गुडादिनस्यम्	आधाशीशी
१४८१	„ „	ऊर्ध्वजत्रुगत समस्त रोग

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०९७	जपापुष्परसनस्यम्	सात दिनमें बाल काले हो जाते हैं।
२५४९	ताम्बूलादिनस्यम्	भ्रू और कनपटीकी पीड़ा तथा मस्तक और नाकके कृमि।
२५५१	त्वक्पत्रादिनस्यम्	पित्तज शिरोरोग

रसप्रकरणम्

१४८९	गगनसुखरसः	सूर्यावर्त
१८८८	चन्द्रकान्तरसः	सात दिनमें सूर्यावर्तादि को नष्ट करता है।
२७८४	त्र्यूषणादिगुटिका	शिरोव्यथा

४९ शीतपित्तोदर्दाधिकारः

कषायप्रकरणम्

११११४	गम्भारीदुग्धयोगः	शीतपित्त
२२९७	त्रिफलादिविरेचनम्	शीतपित्तनाशक विरेचन

चूर्णप्रकरणम्

१२५४	गुडदीप्यकयोगः	उदर्द
१६९४	चन्दनयोगः	शीतपित्त

५० शूलाधिकारः

कषायप्रकरणम्

१६८२	चित्रकादिक्वाथः	आमशूल
२२९२	त्रिफलादिक्वाथः	शूल, दाह।

चूर्णप्रकरणम्

१२६१	गुडादिमण्डूरम्	परिणामशूल
१२६९	गुडूच्यादिचूर्णम्	वातशूल, हृदयशूल
१२९३	गोमूत्रसिद्धमण्डूरम्	सन्निपातज शूल
१६९०	चतुस्समचूर्णम्	शूल, अग्निमांद्य
१७२५	चित्रकादि „	सर्वशूल, विशेषतः, परिणामशूल, यकृत्-शूल, प्लीहशूल।

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२२४८	त्रायमाणादिक्वाथः	पित्तशूल
२३३०	तुम्बर्वादि चूर्णम्	कफज शूल
२३३६	त्रिकटुकादिचूर्णम्	कफवायु, शूल। (दीपन है।)
२३५४	त्रिफलादि ,,	सर्व प्रकारके शूल
२३६८	त्रिलवणादि ,,	कफजशूल

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१७४०	चपलामण्डूरम्	पक्तिशूल
१७४५	चित्रकादिमोदकः	परिणामशूल
१७४६	चित्रकादिवटकः	आमशूल, पसलीका दर्द, हृदयशूल।
१७४७	चतुःसममण्डूरम्	शूल, अग्निमांद्य, अम्लपित्त।
२३९१	तिलादिगुटिका	शूल (उत्तम बाह्योपचार)
२३९२	तिलादिवटी	पुराना परिणामशूल

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३४१	गुडाद्यं मण्डूरम्	१ वर्षका पुराना परिणामशूल

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३५७	गुडपिप्पलीघृतम्	परिणामशूल, अम्लपित्त।

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५०१	गजकेशरी	भयङ्कर शूल
१५०४	गदमदनदहनोरसः	पसलीशूल, अग्निमांद्य, अरुचि।
१५३२	गन्धकरसायनम्	सर्वशूल
१५८५	गौडो रसः	,, दाह।
१८८३	चतुःसमलोहम्	हृदय, पसली, कमर, यकृत्, प्लीहा और शिरका शूल।
२५६५	ताम्रकः	परिणामशूल, अजीर्ण
२५७३	ताम्रभस्मप्रयोगः	शूल, अम्लपित्त।
२६०४	ताम्रादिप्रयोगः	उपद्रवयुक्त शूल
२६०६	ताम्राष्टकम्	तीव्रशूलको शीघ्र नष्ट करता है।
२६३३	तारामण्डूरम्	पक्तिशूल, मन्दाग्नि।
२७१४	त्रिकत्रयाद्यंलौहम्	भयङ्कर शूल
२७२१	त्रिदोषशूलहरः	त्रिदोषज शूल
२७२३	त्रिनेत्ररसः	पक्तिशूल
२७२८	,, ,,	,, ,,
२७३५	त्रिपुरभैरवोरसः	परिणामशूल
२७४८	त्रिफलामण्डूरम्	अम्लपित्तज शूल
२७५२	,, लौहः	शूलको तुरन्त हरता है

मिश्रप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२८०२	तिलक्वाथधारा	शूलहर बाह्योपचार

५१ शोथाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	गुटिकाप्रकरणम्	
११६२-६४	गुडार्द्रकादि-योगः	शोथ
२२७५	त्रिफलादिक्काथः	"
२२७८	" "	शोथ, व्रण, भगन्दर
	चूर्णप्रकरणम्	
१२५९	गुडादिचूर्णम्	शोथ, शूल, आमाजीर्ण।
१२६०	" "	सर्व प्रकारके शोथ
१२६५	गुडार्द्रकयोगः	शोथ, श्वास, खासी, ज्वर, संग्रहणी।
१२६६	" "	शोथ
१२९२	गोमूत्रमण्डूरम्	सर्वाङ्गगत शोथ
२३०१	त्रिवृतादिक्काथः	पित्तज शोथ
२४०६	त्रिफलादिवटिका	शोथ, पाण्डु, भगन्दर।
	गुग्गुलुप्रकरणम्	
१३२५	गुग्गुलुप्रयोगः	शोथ
१३३३	गुग्गुल्वादियोग ४	"
	घृतप्रकरणम्	
१७८०	चित्रकादिघृतम्	शोथ, अर्श, गुल्म
१७८२	चित्रकोत्थितंघृतम्	शोथ, अर्श, अतिसार
	आसवारिष्टप्रकरणम्	
१४०५	गण्डीराद्यरिष्टः	शोथ, हिक्का, अर्श
	रसप्रकरणम्	
१९४१	चूलिकावटी	उदरशोथ
२१२७	जैपालरसः	शोथ, पाण्डु (विरेचक है)
२५५५	तक्रमण्डूरम्	शोथ, पाण्डु
२५७३	ताम्रभस्मप्रयोगः	शोथ, ग्रहणी
२७०८	त्रिकटुकादिलौहम्	शोथ
२७१०	त्रिकट्वाद्यंलौहम्	"
२७११	" "	भयङ्कर शोथ, स्थूलता, उदरशोथ।
२७३१	त्रिनेत्राख्योरसः	दुस्साध्य शोथ
२७३२	" "	" " गुल्म
	मिश्रप्रकरणम्	
१६२०	गोधूमादिपोलिका	शोथ
२७८८	त्र्यूषणाद्यंलौहम्	शोथको शीघ्र हरता है।



५२ श्लीपदाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
११७२	गुडूच्यादिकल्कः	श्लीपद
२२१३	ताम्बूलपत्रयोगः	"
	चूर्णप्रकरणम्	
१२७३	गुडूच्यादिचूर्णम्	श्लीपद
	लेपप्रकरणम्	
१४३६	गुडूच्यादिलेपः	श्लीपद
१८३९	चित्रकादिलेपः	"
	रसप्रकरणम्	
१८७०	चक्रेश्वरो रसः	श्लीपद

५३ श्वासाधिकारः

	चूर्णप्रकरणम्	
२३३७	त्रिकटुकादिचूर्णम्	श्वासको शीघ्र नष्ट करता है।
	गुटिकाप्रकरणम्	
१३०९	गुडादिगुटिका	श्वास, खांसी
२४०१	त्रिपुरभैरवीवटी	कफको नष्ट करती है
	अवलेहप्रकरणम्	
१३४०	गुडादिलेहः	वातज तीव्र श्वास
१३४२	गुडाद्यवलेहः	श्वास
१३४३	गुडावलेहः	श्वासको समूल नष्ट करता है। २ सप्ताहका सरल प्रयोग है।
	घृतप्रकरणम्	
२४३४	तिक्ताद्यं घृतम्	श्वास, खांसी।
	रसप्रकरणम्	
२५९७	ताम्ररसायनम्	श्वास, खासी, प्रवृद्ध कफ।
२६१०	ताम्रेश्वरोरसः	श्वास, सूतिकारोग

५४ स्त्रीरोगाधिकारः

	कषायप्रकरणम्	
१११६–११२७	गर्भरक्षक-योगाः	गर्भके प्रथम माससे १२ वें मास तक प्रत्येक मासका शूल और गर्भका हिलना।
११२८–११३५	गर्भरक्षक योगाः	प्रथम माससे आठवें मास तक गर्भपात, गर्भचलन और शूल

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
११३६-११५३	गर्भिणी-शूलहराः	प्रथम माससे ११वें मास तक होनेवाली गर्भिणीकी पीड़ा।
११९८	गुडूच्यादिक्वाथः	योनिकी खाज
१६३०	घोषकस्वरसः	योनिकन्द
१६५२	चन्दनादिकल्कः	पैत्तिक प्रदरको ३ दिनमें नष्ट करता है
१६६१	" क्वाथः	गर्भिणीका ज्वर
१९६२	जपाकुसुमयोग·	गर्भरोधक
१९६३	जपादियोगः	गर्भपोषक
१९८१	जीवकपुत्रकवीज-योगः	बच्चोंका अल्पायुमें मर जाना।
१९८४	ज्योतिष्मतिप्रयोगः	रजप्रवर्तक है।
२२१०	तण्डुलीयकल्कः	रक्तप्रदर
२२१२	तण्डुलीयमूलप्रयोगः	वन्ध्याकरणम्
२२३०	तिलादिक्वाथः	रक्तप्रदर, दाह
२२३१	"	नष्टार्तव
२२३२	"	"
२२३४	तुलसीपत्र स्वरसः	प्रसवके पश्चातका शूल
२२५०	त्रायमाणादिक्वाथः	स्तन्यशोधक

चूर्णप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१२४५	गर्भस्तम्भनयोगः	गर्भरक्षक है।
१२४६	" "	" "
१२४९	गाढीकरणयोगः	योनिसङ्कोचक
१२७८	गुह्यदौर्गन्ध्यनाशक-योगः	योनिदुर्गन्ध
१२८१	गैरिकादिचूर्णम्	योनिकन्द
१६९८	चन्दनादिचूर्णम्	चार प्रकारका प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तपित्त।
१७०३	चन्दनाद्यं चूर्णम्	गर्भाशयविकार
२००४	जीर्णचेलीभस्म	पीडितार्तव
२१९९	टङ्कनादिचूर्णम्	योनिकी खाज
२३०८	तालीसगैरिकयोगः	वन्ध्याकरणम्
२३१७	तिलमूलादिचूर्णम्	पुष्परोध, वातगुल्म
२३३८	त्रिकटुकादियोगः	मक्कलशूल

गुटिकाप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०१३	जयादिवटी	जरायुशूल, ऋतुदोष, कटिशूल।
२०१९	जीरकादिमोदकः	योनिरोग
२०२२	" "	सूतिकारोग, ग्रहणीमें विशेष उपयोगी

अवलेहप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०३१	जीरकाद्यवलेहः	प्रदर, ज्वर, दाह, क्षय।

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१३६१	गुडूच्यादिघृतम्	योनिगत वातविकार नाशक, गर्भस्थापक
२०३४	जात्यादि "	योनिकी दुर्गन्ध
२४३८	तुरङ्गगन्धा "	वन्ध्यत्व

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४५९	त्रिवृतादिमिश्रकः	योनिशूल

तैलप्रकरणम्

१३८४	गर्भविलासतैलम्	गर्भशूल,शोणितस्राव
१३९६	गुडूच्यादि „	वातज योनिशूल
२४७०	तिलतैलादियोगः	पुत्रोत्पादक

आसवारिष्टप्रकरणम्

२०६४	जीरकाद्योऽरिष्टः	सूतिकारोग, ग्रहणी, अतिसार।

लेपप्रकरणम्

१४१८	गाढीकरणलेपः	योनिसङ्कोचक
१८३४	चन्दनादिलेपः	गर्भिणीका शोथ
२५११	तुम्बीपत्रादियोगः	प्रसवकेपश्चात् भगको संकुचित करता है।

धूपप्रकरणम्

२०८२	जम्ब्वादिधूपः	योनिदोष
२५२४	तण्डूलकण्डनधूपः	योनितोद

रसप्रकरणम्

१४९३	गगनादिलौहम्	सोमरोग(अवश्य नष्ट करता है)
१५५४	गर्भचिन्तामणि	गर्भिणीका ज्वर,दाह, सन्निपात, प्रदर, सूतिका रोग।
१५५५	„ „	गर्भिणीके समस्तरोग
१५५६	„ „	„ „

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५६७	गर्भपालरसः	गर्भके प्रथम माससे नवम मास तकके समस्त रोग।
१५५८	गर्भविनोदरसः	गर्भिणीके समस्त रोग
१५५९	गर्भविलासरसः	गर्भिणीका शूल,ज्वर, विष्टम्भ, अजीर्ण।
१५७२	गुल्मगजारातीरसः	स्त्रियोंका जलोदर
१५७७	गुह्यरोगारिरसः	स्त्रि पुरुषोके गुह्य रोग।
१८६७	चक्रिकावन्धरसः	नागोदर, जलकूर्म, उपविष्टक, गुल्मादि
१८८५	चन्द्रकलारसः	रक्तस्रावमें विशेष उपयोगी।
१९०३	चन्द्रांशुरसः	जरायुदोष, भयङ्कर योनिशूल, योनि-कण्डु, स्वरोन्माद, योनिविक्षेप।
२१०८	जयसुन्दरोरसः	वन्ध्यत्व
२३३६	तालकादिगुटिका	प्रसूताके वातजरोग
२७६९	त्रैलोक्यतिलक	भयङ्कर रजःशूल

५५ स्नायुकरोगाधिकारः

चूर्णप्रकरणम्

१२९१	गोधूमादिचूर्णम्	नहरुवा

५६ स्वरभेदाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	चूर्णप्रकरणम्	
१७०७	चव्यादिचूर्णम्	कफज स्वरभंग, पीनस।
२३५८	त्रिफलादि प्रयोग	स्वरभेद
	रसप्रकरणम्	
१५८४	गोरक्षवटी	स्वरभंग
२७७९	त्र्यम्बकाभ्रम्	हर प्रकारके स्वर-भंगमें अत्युत्तम।

५७ हिक्काधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	कषायप्रकरणम्	
१६७०	चन्द्रसूरक्वाथः	वेगवती हिक्का
	चूर्णप्रकरणम्	
२३६४	त्रिफलाप्रयोगः	हिचकी, श्वास।
	घृतप्रकरणम्	
२४४०	तेजोवत्यादिघृतम्	हिक्का, श्वास, हृदय और पार्श्वकी पीड़ा।
	रसप्रकरणम्	
१५२४	गन्धकपिष्टिरसः	५ प्रकारकी हिक्का
२२०६	डामरेश्वराभ्रम्	भयङ्कर हिचकी, श्वास
२५७२	ताम्रभस्मप्रयोगः	हिचकी
२६७८	तालेश्वररसः	हिचकी, स्वरभङ्ग, कास।

५८ हृद्रोगाधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
	चूर्णप्रकरणम्	
१२८९	गोधूमपार्थचूर्णम्	समस्त हृद्रोग
१२९०	गोधूमादि ,,	प्रवृद्ध हृद्रोग
२३१४	तिक्ताद्यं ,,	हृद्रोग, शूल।
२३७५	त्रिवृतादि ,,	कफज हृद्रोग
	अवलेहप्रकरणम्	
१७५१	चन्द्रावलेहः	हृद्रोग, भ्रम, मूर्च्छा, प्रवल दाह, वमन।
	रसप्रकरणम्	
१९२७	चिन्तामणिरस.	समस्तहृद्रोग, फुफ्फुस रोग, श्वास, ज्वर।
२७२६	त्रिनेत्ररस	समस्त हृद्रोग
२७६०	त्रिविष्टपरसः	हृदयशूल

परिशिष्ट

१—धातुशोधनमारणाद्यधिकारः

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१५१५	गन्धक गन्धनाशनम्	
१५१६	„ गन्धहरणम्	
१५१८	„ ग्रासविधिः	
१५१९	„ जारणम्	
१५२०	„ „	
१५२२	गन्धकदोषाः	
१५२३	गन्धकद्रुतिः	
१५२८	गन्धक भेदाः	
१५३७	„ शुद्धिः	
१५३८	„ शोधनम्	
१५३९	„ „	
१५४१	कूर्मपुटेन गन्धक-शोधनम्	
१५४५	गन्धपिष्टि (बन्धनम्)	
१५४६	„ „	
१५६२	गिरिसिन्दूरगुणाः	
१५६३	गिरिसिन्दूरोत्पत्तिः	
१५७८	गैरिकगुणाः	
१५७९	गैरिकभेदाः	
१५८०	गैरिकशोधनम्	
१५८२	गोमेदगुणाः	
१५८३	गोमेदलक्षणम्	
१५८६	गौरीपाषाणभेदाः	
१५८७	गौरीपाषाणशोधनम्	

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१९१०	चपललक्षणगुणाः	
१९३७	चुम्बकः	
२१२६	जयपालगुणशोधने	
२१२८	जयपालशोधनम्	
२२०२	टङ्कणक्षारः	
२२०३	टङ्कणशोधनम्	
२२०४	„ „	
२५७१	ताम्रभस्मनिरुत्थी-करणम्	
२५८१	ताम्रभस्मविधिः	लोणी रसेन
२५८२	„ „	३ पुटी, १ पुटी, ४पहर(पारदयोगसे)
२५८३	„ „	४ अहोरात्र । रस-सिन्दूर भी साथ में बन जाता है। (पारदयोगसे)
२५८४	„ „	४ पहरी। गन्धक योगेन
२५८५	„ „	अधिक परिमाणमें बनानेके लिए उप-योगी। रस सिन्दूर भी साथमें बनता है। २ दिन लगते है। (पारदेन)

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२५८६	ताम्र भस्मविधिः	३ पहर अग्नि । १ वराहपुटतालयोगसे।
२५८७	,, ,,	सोमनाथी। गर्भयन्त्र पाचित । १ पहरी । पारद, हरताल और शिलायोगसे ।
२५८८	ताम्रभस्मशुद्धिः	
२५८९	ताम्रभस्मामृतीकरण	
२५९१	ताम्रमारणम्	पारद योगसे
२५९२	,, ,,	पारदयोगसे ४पहरी
२५९३	,, ,,	गन्धकयोगसे ६ पुटी
२५९८	ताम्रविकारशान्तिः	अशुद्ध ताम्र भक्षण विकार
२५९९	ताम्रशुद्धिः	
२६००	,, ,,	
२६०१	,, ,,	
२६०२	,, शोधनम्	
२६१६	तारक्रिया प्रकार	चान्दी बनाना
२६१७	,, ,,	,, ,,
२६१८	,, ,,	,, ,,
२६१९	,, ,,	,, ,,
२६२०	तारमारणम्	३ पुटी चांदीभस्म (वनस्पति योगसे)
२६२१	,, ,,	पारद योगसे चांदी भस्म (८ पहरी)
२६२२	,, ,,	पारदगन्धतालेन । (२ पुटी)
२६२३	,, ,,	तालयोगसे । १पुटी

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२६२४	तार मारणम्	१२ पुटी । पारद तालेन ।
२६२५	,, ,,	३० पुटी । माक्षिक योगसे
२६२६	,, ,,	माक्षिकयोगसे
२६२७	,, ,,	१४ पुटी । माक्षिक योगसे
२६२८	,, ,,	१४ पुटी । हरताल योगसे
२६२९	,, शोधनम्	
२६३०	,, ,,	
२६३१	तारस्य विशेषशोधनम्	
२६५८	तालभस्मप्रकारः	कुष्ठ
२६६९	तालभस्मप्रयोगः	,,
२६६०	तालभस्मविधिः	,,
२६६१	,, ,,	,, व्रण
२६६२	,, ,,	वातव्याधि
२६६३	,, ,,	कुष्ठादि
२६६४	,, ,,	वातरक्त
२६६५	,, ,,	
२६६७	,, मारणम्	कुष्ठ, वातरक्त, फिरङ्गरोग ।
२६६८	,, ,,	सिद्धमते। अनेकरोग
२६७०	तालशुद्धिः	
२६७१	तालशोधनम्	
२७७२	,, ,,	
२६७३	तालसत्वपातनम्	
२६७४	,, ,,	

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण	संख्या	प्रयोगनाम	मुख्यगुण
२६७५	तालसत्वपातनम्		२६९६	तुत्थशोधनम्	
२६७६	,, ,,		२६९७	,, ,,	
२६७७	,, ,,		२६९८	,, ,,	
२६९१	तुत्थनिर्माणविधिः		२६९९	,, ,,	
२६९२	तुत्थभस्मविधिः		२७००	तुत्थसत्वपातनम्	
२६९३	तुत्थमारणम्		२७०१	तुत्थात्ताम्रनिस्सा-रणविधिः	
२६९४	तुत्थमुद्रिका	छूनेसे ही विष नष्ट करती है।	२७०३	तुत्थोत्थताम्रशुद्धिः	
२६९५	तुत्थविकारशान्तिः		२७५८	त्रिवङ्गभस्म	

२–औषधिकल्पाधिकारः

१४८४	गुडूचीकल्पः	२१८२	ज्योतिष्मतिकल्पः
१४८५	,, ,,	२५५२	तुवरक ,,
१८६३	चतुरङ्गुलकल्पः	२५५३	त्रिफला ,,
१८६४	चित्रक ,,	२५५४	,, ,,

३–मिश्राधिकारः

कषायप्रकरणम्

११७१	गुडूच्यानुपानम्	
१६४७	चतुरम्लम्	
१९८२	जीवनीयकषायदशकः	
२२३८	तृप्तिघ्नोकषायदशकः	
२२५१	त्रिकटुकादिगणः	
२२६०	त्रिफला	
१२८६	गोक्षुरादिपञ्चमूलम्	
१७१२	चातुर्जातम्	
२३४६	त्रिगन्धम्	
२३७१	त्रिवृतादिचूर्णम्	ग्रीष्म कालीन विरेचन
२३७२	,, ,,	वर्षा ,, ,,
२३७३	,, ,,	शरत् ,, ,,
२३७४	,, ,,	हेमन्त ,, ,,

चूर्णप्रकरणम्

१२४३	गन्धद्रव्याणि	विष्णुतैलादिमें पडते है।
१२४४	,, ,,	,, ,, ,,

गुटिकाप्रकरणम्

१३१२	गुडादिमोदकः	विरेचक
२४०३	त्रिफलादिगुटिका	योगवाही

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४१३	त्रिवृतादिमोदक:	राजाओंके योग्य विरेचन
२४१६	त्रिवृदष्टकमोदक:	पित्तप्रकृतिके लिए उत्तम विरेचन

घृतप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
१६३६	घृत धोनेकी विधि:	

तैलप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२०४९	जयपाल तैलम्	तीव्र विरेचक

लेपप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२४९२	तालकादियोग:	लोमनाशक

रसप्रकरणम्

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२५७४	ताम्रभस्मप्रयोग:	विरेचक

संख्या	प्रयोगनाम	मुख्य गुण
२१८९	जलमज्जनमृत-प्रतिकार:	पानीमें डूबना

